वङ्गलानुवाद महाराष्ट्रियसे संक्षिप्ततया अनुवादित–

—प्राचीनग्रन्थ—

(योगिसम्प्रदायाविष्कृतिः)

—अनुवादक—

हरिद्वारस्थ योगाश्रम संस्कृत पाठशालीय–

प्रथमच्छात्र–चन्द्रनाथ योगी ।

प्रकाशक—म० शिवनाथ योगी ।

पता– मु०-योगाश्रम, गेट पीछे–दूधेश्वररोड.

पो० शाहीबाग–अहमदाबाद ।

प्रथमावृत्ति– वि. सं १९८०.
शके. १८४५.
प्रतीक १०००. सन. १९२४.

मूल्य, रूपया ३. तीन

न दे शकने वालेको मुफ्त, परन्तु दूसरे
मंगानेमें फक्त, डाक खर्च तो
भेजना ही होगा ।

यह ग्रन्थ अहमदाबादस्थ मोटी हमाममें विद्यमान
उत्कृष्ट मुद्रणालयके मालिक पटेल. पुरुषोत्तम
शंकरदासजीने छापा—

(सूचीपत्र)

प्रकरण संख्या　　　　　　　　　　　　　　पृष्ठ संख्या

१ समर्पण .... क
२ चित्रपरिचय .... घ
३ कृतज्ञता .... ङ
४ स्फुटता .... च
५ आवश्यकीय सूचना १
६ भूमिका ४

॥ अध्याय ॥

१ नवनारायण कैलासगमन वर्णन ६
२ श्रीमत्स्येन्द्रनाथोत्पत्ति १५
३ श्रीगोरक्षनाथोत्पत्ति २२
४ श्रीगोरक्षनाथ तप ३१
५ श्रीमत्स्येन्द्रनाथ हनुमान् युद्ध.... .... ३६
६ श्रीमत्स्येन्द्रनाथवीरवैतालवशीकरण ४१
७ श्रीमत्स्येन्द्रनाथ भद्रकाली युद्ध ४६
८ श्रीमत्स्येन्द्रनाथ वीरभद्र युद्ध.... .... ५२
९ श्रीमत्स्येन्द्रनाथ चामुण्डा युद्ध ५७
१० श्रीमत्स्येन्द्रनाथ पशुपति नृपसमागम ६५
११ श्रीमत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ मिलाप ७५
१२ श्रीगहनिनाथोत्पत्ति ७९
१३ श्रीज्वालेन्द्रनाथोत्पत्ति ८६
१४ श्रीकारिणपानाथोत्पत्ति ९३
१५ श्रीनागनाथोत्पत्ति ९९

प्रकरण संख्या		पृष्ठ संख्या
१६	श्रीचर्पटनाथोत्पत्ति	१०७
१७	श्रीरेवननाथोत्पत्ति	११६
१८	श्रीरेवननाथ यमपुर गमन	१२८
१९	श्रीचर्पटनाथ तीर्थयात्रा	१३६
२०	श्रीदेवराज सावरविद्याग्रहण	१४४
२१	श्रीमत्स्येन्द्रनाथ त्रिविक्रमराजशरीर प्रवेशकरण	१४७
२२	श्रीमाणिकनाथोत्पत्ति	१५६
२३	श्रीमत्स्येन्द्रनाथ समाधिविघ्न	१६२
२४	श्रीमीननाथ वरप्रदान	१८०
२५	श्रीमद्योगेन्द्र गोरक्षनाथ महोत्सव	१८५
२६	श्रीमद्योगेन्द्र गोरक्षनाथ कालिका युद्ध	१९४
२७	श्रीमद्योगेन्द्र गोरक्षनाथ कैलासगमन	२००
२८	श्रीज्वालेन्द्रनाथ हिंगलाज समागम	२०९
२९	श्रीकारिणपानाथ समाधि	२१८
३०	श्रीचर्पटनाथ रेवननाथ कैलास गमन	२२३
३१	श्रीमीननाथ भ्रमण	२२७
३२	श्रीधुरन्धरनाथ भ्रमण	२३७
३३	श्रीकरणारिनाथ भ्रमण	२४७
३४	श्रीनिरञ्जननाथ भ्रमण	२६४
३५	श्रीज्वालेन्द्रनाथ भ्रमण	२७३
३६	श्रीमद्योगेन्द्र गोरक्षनाथ भ्रमण	२८६
३७	श्रीभर्तृ जन्मचर्य्या	२९६
३८	श्रीभर्तृनाथ वैराग्य	३०५
३९	श्रीज्वालेन्द्रनाथ कूपपतन	३१५
४०	श्रीज्वालेन्द्रनाथ कूपनिःसरण	३२७
४१	श्रीभर्तृनाथ उज्जयिन्यागमन	३४२
४२	श्रीगोपीचन्द्रनाथ चम्पावती मिलाप	३५३
४३	श्रीदूरङ्गतनाथ समाधि	३६४
४४	श्रीनाथ पर्यटन	३७२
४५	श्रीचौरङ्गिनाथ शालिपुरागमन	३८०

प्रकरण संख्या		पृष्ठ संख्या

४६ श्रीचौरङ्गिनाथ भ्रमण ३९४

४७ श्रीभर्तृनाथाद्रिवहन ४०४

४८ श्रीनाथ भिक्षार्थ पर्यटन ४१२

४९ श्रीनाथ नैपाल राज्य परिवर्तन करण ४१९

५० श्रीनाथान्तर्धान ४२८

॥ विविध विषय ॥

१ शास्त्रानुकूल समाज ४३४

२ कर्णकुण्डल ४३७

३ योगियोंका सिद्धान्त और कर्तव्याकर्तव्य ४४०

४ योगवित्का कर्तव्य ४४१

५ गुरु ४४२

६ व्यवहार ४४३

७ आदेश ४४७

८ भर्तृनाथजी ४५०

९ भर्तृहरिशतक ४५३

१० सावधान ४५६

११ धन्यवाद ४६४

१२ ओंग ४६८

निज जाति देश कुल वेषका ही, कुछ भी नहीं अभिमान जिसे।
वह पुरुष नहीं पशु ही है निरा, कहीं मिलता नहीं सम्मान तिसे॥

चन्द्रनाथ योगी. शिवनाथ योगी.

समर्पण

पुण्यश्लोक ! पाठक महोदयजी ! जिस, आपके हस्त युगलसे उद्धृत लगभग ६०० वर्षसे लुप्तप्रायः ग्रन्थको महाराष्ट्रिय भाषासे अनुवादित कर चन्द्रनाथयोगीने मेरे समर्पण किया है, उसको मैं भी प्रकाशित कर आपके कर कमलमें समर्पित कर देता हूं। और ऐसा करनेके साथ २ ही कुछ उपयोगी बातें भी कहडालता हूं। मनुष्यको चाहिये कि वह जिस किसी भी मत वा समाजमें प्रविष्ट हो पहले उसका सिद्धान्त ठीक २ समझ ले। ऐसा न करनेसे (धोबीका कुत्ता घरका न घाटका) वाली कहावत सम्मुख आ खडी होती है। आप जिस ग्रन्थको अपने हस्त युगलमें धारण-कर सत्कृत कर रहे हैं इसमें श्रीमहादेवजीके प्रियपात्र मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ आदि योगेन्द्रोंके कर्तव्य-कलाप एवं उच्चाभिलाषा और सिद्धान्तका अच्छा चित्र खींचा हुआ है। जिसके देखने और समझनेसे आपको अपना वर्तमानकालिक कृत्य तुच्छ और किम्प्रयोजन जान पडेगा। और आपके हृदयमें सहसा यह भाव उत्पन्न हो जायेगा कि अहो ! हमें धिक्कार है जिस वस्तुकी खोजनाके लिये अथवा जिस पदपर पहुँचनेके लिये हमने घरबार छोडा और यह वेष धारण किया था उसका सौमा भाग भी हम प्राप्त नहीं करके। खैर मुझे बहुत कुछ नहीं कहना है ग्रन्थ आपके हस्तमें आ ही चुका है इसमें जो रहस्य है वह आपकी दृष्टि और बुद्धि गत हो ही जायेगा। परं यह कहें विना मैं शान्त नहीं हो सकता हूं कि जो महानुभाव, अपने आपको उक्त योगाचार्योंका अनुयायी मानता हो वा उनका सेवक होनेका अभिमान रखता हो वा उनके सिद्धान्त और विलक्षण चमत्कारोंका ज्ञाता बनना चाहता हो, उसका सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वह इस ग्रन्थको अपने प्राणोंकी तुल्य समझकर सदा अपने पास रक्खे। ऐसा करनेसे ही उसका अनुयायी पना ज्ञाता पना सफल हो सकता है अन्यथा नहीं। प्रतिज्ञा यह है कि इसके पढनेसे यदि आपके अकर्मण्य और निर्जीव जैसे शरीरमें कर्मण्यता और नूतन जीवनका संचार न हो जाय तो इस उक्तिकी असत्यताका जो दोष हो सकता है उसको मैं अपने ऊपर लेनेको तैयार हूं। एवं यह

स्पष्ट कह देता हूं कि मैं कोई द्रव्य एकत्रित करनेकी इच्छावाला दुकानकार मनुष्य नहीं हूं जो इस प्रकारकी प्रतिज्ञा कर यह चाहता हूं कि ग्रन्थकी बहुत बिक्री हो और इसके मूल्य द्वारा मैं धनाढ्य बन जाऊं। किन्तु मैं एक ऐसा पुरुष हूं जो यह चाहता हूं कि इस ग्रन्थश्री कृपासे जैसे मैंने अपनी सम्प्रदायके विषयमें कुछ अनुभव प्राप्त कर अपने व्यतीत आज्ञानिक जीवनपर पश्चात्ताप किया है इससे हमारे प्रिय पाठकभी वञ्चित न रहें। इसपर भी यदि यह कहो कि फिर ऐसा है तो मूल्य नहीं लेना चाहिय। तो मैं यह कह देता हूं कि मैंने सोचा था अपने साम्प्रदायिक महन्त महानुभावोंसे चन्दा कर यह कार्य करूं। परं मेरा अन्तःकरण इस बातके सफल होनेमें साक्षी न हुआ। इसी लिये मैंने किसी ढंगसे यह कार्य कर और इसका फल आपको समर्पित करके पैसा लेना उचित समझा है। यह भी इसलिये नहीं कि मैं अपने उपभोगार्थ ले रहा हूं। किन्तु एक और अपनी सम्प्रदायके इतिहासको मैं आपके समर्पण करने वाला हूं। जो आधुनिक कालका होगा। जिसका यही अनुवादक आरम्भ करने वाला है। ठीक उसीके प्रकाशनार्थ आपसे इसका मूल्य लिया जा रहा है। अतएव आप सहर्ष और निर्विकल्प हो इसे ग्रहण करें। इसके पढनेसे आपके वे सन्देह जो अबतक आपके शरीरमें विराजमान होंगे, सब निवृत्त हो जायेंगे। इस ग्रन्थमें पचास अध्याय हैं। जिनमें, योगिसमाज कबसे और किस कारणसे संगठित हुआ। इसके मुख्याचार्य कौन २ हुए। और वे कबतक योगका उपदेश करते रहे। उनकी योगशिक्षा प्रणाली कैसी थी। गुरु मत्स्येन्द्रनाथजीके विद्यमान होनेपर भी उनके शिष्य गोरक्षनाथजी समाजके मुख्य विधाता क्यों और किस कारणसे तथा कब और किस स्थानपर माने गये। बारह वर्षमें गोदावरीसे योगि संघ कजली क्यों जाता है और कबसे जाने लगा है। गोरक्षनाथजी, गोरखमढी, ज्वालाजी, गोरखपुर, कलकत्ते, नैपाल, मक्का. आदि स्थानोंमें कब गये और वहां क्या २ किया। मत्स्येन्द्रनाथजी, सिंहलद्वीपके मृतक राजाके शरीरमें प्रविष्ट क्यों हुए थे और कब हुए थे तथा उनको फिर उसी शरीरमें गोरक्षनाथजी कैसे लाये। और उन्होंने भर्तृ, तथा पूर्णको शिष्य कब बनाया और कैसे बनाया। भर्तृनाथ और पूर्णनाथने विक्रम तथा शालिवाहनका यज्ञ कैसे कराया। मैनावतीने अपने पुत्र गोपीचन्दको योगी होनेके लिये कैसा विचित्र उपदेश दिया और उसके स्वार्थी मन्त्रियोंने उसका कैसा बेअकला और उलटा अर्थ लगाया। जिससे उनके ऊपर महान् आपत्तियोंके बादल छा गये। जिनको गोरक्षनाथजीने दूर किया। और गोपीचन्दको ज्वालेन्द्रनाथजीका शिष्य बननेको बाध्य किया। इत्यादि घटनाओंका सविस्तार वर्णन है। अतएव इन चरित्र रत्नोंसे गुंफित इस ग्रन्थको मैं आपके करकमलमें सार्पित करता हूं। भगवान्

आदिनाथजीसे प्रार्थना करता हूं यह आपके मनोरथको सफल करने वाला हो। यद्यपि कहीं २ यह अपने कठिन और कटु शब्दोंसे आपको नाराज भी करनेका साहस करेगा। क्योंकि अनुवादकने अपने हृदयकी झालोंके विवश हो लेखनीके प्रवाहसे उनको लिख देना पडा है। तथापि आपको चाहिये कि उनकी ओर विशेष ध्यान न देकर उनके उद्देशके ग्रहण करनेकी चेष्टा करें। कारणकि लेखक मौका पडनेपर प्रायः ऐसा लिखा ही करते हैं। साथ ही यह भी समझना कि वर्तमान दशा सब समाजोंकी ही ऐसी है तथापि अपने विषयमें सबको ही ऐसा कहनेका अधिकार है। ठीक यही सोचकर अनुवादकने ऐसे सब्द लिख दिये हैं॥

भवदीय– ग्रन्थ प्रकाशकः—

शिवनाथ योगी.

॥ चित्रपरिचय ॥

यह चित्र उस समयका है जब कि श्रीनाथजी वि० सं० ४०० के करीब पाञ्चाल देशस्थ कांगडा प्रान्तके अन्तर्गत हिमालयके आरम्भक पर्वतपर विराजमान ज्वाला-देवीके भवनमें पहुँचे। वहां आपके स्वागतार्थ प्रकटित देवीने कहा कि योगिराज! लीजिये भोजन ग्रहण कर मेरा आतिथ्य स्वीकृत कीजिये। यह सुन आपने कहा कि हम अपने दोनों प्रकारके शौचकी रक्षार्थ आपका यह भोजन ग्रहण नहीं करेंगे। क्योंकि यह भोजन मांस मदिरासे संस्कृत है। देवीने कहा कि यह ठीक है परं क्या इसके ग्रहणसे आभ्यन्तरिक शुद्धि नष्ट हो जायगी। मेरी समझमें तो शुद्धि नष्ट होनेका हेतु मानसिक खोटे विचार हैं। अतः वे त्याग देने चाहियें बस शुद्धि तैयार है। आपने कहा कि क्या इस प्रकारके अग्राह्य भोजनके ग्रहणार्थ हस्त पसारना मनका खोटा विचार नहीं है किन्तु अवश्य है। और यह भी बात है कि ऐसे भोजनसे अन्तःकरणपर मलीनता आती है। जिससे मन अधिकतर खोटे विचारोंमें ही लीन रहता है। अतः हमारे लिये यह त्याज्य है। देवीने कहा कि तो और विधि बतलाइये। परं आतिथ्य अवश्य अङ्गीकार करना होगा। अधिक क्या आपने कहा अच्छा यदि यही बात है तो शुद्धतासे चुल्हा चेताइये। और पानी डालकर हण्डीके नीचे अग्नि प्रज्वलित कीजिये। अब हम मांगकर लाते हैं जबतक वापिस लौटें तबतक हमारी आज्ञाकी रक्षा कीजिये। इस प्रकार देवीको आज्ञापित करनेके अनन्तर हस्तमें पात्र धारण कर श्रीनाथजी भिक्षार्थ पर्यटन करने लगे। जो कुछ दिनमें मानपुर (आधुनिक प्रसिद्ध नाम गोरखपुर) में पहुँचे। ठीक उसी दिनसे इस बातका स्मारक चिन्ह गोरखपुरमें खिचडीका चढावा और ज्वालाजीमें गोरख डब्बी नामकी हण्डी आजतक विद्यमान है। पाठक! श्रीनाथजीने देवीका भोजन ग्रहण न करके भिक्षा मांगकर खाना क्यों उचित समझा, उनके इस प्रत्यक्ष चारित्रका उद्देश समझकर इससे कुछ शिक्षा प्राप्त करना॥

प्रकाशकः—

इस ग्रन्थमें जो यह श्रीनाथजीका फोटू रक्खा गया है इसका कुल खर्च, श्रीयुत जयराम मास्तरकी पत्नी श्रीमती यशोदाबाई डोसीने दिया है॥

करलेना चाहिये। इसी अभिप्रायसे उन्होंने ज्वालेन्द्रनाथजीसे प्रश्न कर समीपस्थ उनके शिष्यका परिचय मांगा। उन्होंने उत्तर दिया कि तुम्हें विशेष निर्णयसे क्या प्रयोजन यह भी एक रमताराम है। यह सुनकर भैरवोंने विचार किया कि ज्वालेन्द्रनाथका आश्रय ले ऊपर जानेकी इच्छासे यह भी कोई मार्गमें पीछे लगलिया है। इसी लिये उन्होंने ज्वालेन्द्रनाथजीसे कहा कि अच्छा आप तो जाइये परं इसको नहीं जाने देंगे। यह श्रवण कर नाथजी कुछ मुस्कराते हुए, इसकी यह और तुम जानों हमें तो अपने कार्यसे प्रयोजन है, यह कह वहांसे प्रस्थानित हो कुछ दूर आगे एक शिलापर बैठ उनके कुतूहलकी परीक्षा करने लगे। गुरुजीके आभ्यन्तरिक मनोरथका अवगमन कर तवतक उनका शिष्य वहीं खड़ा रहा। जिसे आगे बढनेसे द्वारपालभैरव बार २ निरोधित कररहे थे और वह उनसे जाने देनेकी बार २ प्रार्थना कररहा था। परन्तु इन नीचेकी मीठी वार्ताओंसे कोई प्रयोजन सिद्धि न देखी गई। अतएव उसने एकाएक अन्तमें गुरुप्रदत्त विद्याओंसे काम लेनेका दृढ सङ्कल्प कर, प्रथम, सम्भतः मैं अपनेको ज्वालेन्द्रनाथजीका शिष्य प्रकट कर दूं तो सहजमें ही झगड़ा तय होजायेगा, यह सोचकर उनसे कहा कि मैं भी इन्हींका शिष्य हूं। ऐसी दशामें केवल मुझे ही रोक रखकर उनसे वियोगित करना आपलोगोंको उचित नहीं है। इसके उत्तरमें भैरवोंने कहा कि ज्वालेन्द्रनाथका शिष्य है तो कुछ पराक्रम और चमत्कार दिखला। जिससे तेरा मार्ग निष्कण्टक हो. और निरोधमें असमर्थ होनेके कारण हमको भी बुराईका मुख न देखना पडे। यह सुन उसने सोच लिया कि अनायाससे कार्य सिद्धि नहीं है। इसी लिये उसने महिमा सिद्धिके प्रभावसे अपने शरीरको तेजस्वी एवं दीर्घस्थूलाकार बनाया। और गदा हस्तमें लेकर वह भैरवोंकी ओर झपटा। उधर वे प्रथमतः ही तैयार थे। कुछ इसके शीघ्र पारिवर्त्तनिक शरीराकारको देखकर और भी सचेत होगये। युद्धाग्नि प्रज्वलित होउठा। पारस्परिक प्रहार शब्द एवं हुङ्कारसे सुखासीन वन्यजीव त्रस्त हुए इधर उधर भागने लगे। ठीक समयपर आ प्राप्त होनेवाले अष्टभैरवोंको अपनी अधिक संख्याका अभिमान था परं उनका वह अभिमान झूठा निकला। और बहुत देर तक युद्ध होते रहने पर भी वे उसको साध्य न बनासके। एवं उसको भी अपने बल और कष्ट सहन दृढताका विश्वास होनेसे यह अहंकार हो गया था कि मैं इन्हें अब ठीक बनादेता हूं। परं वैसा न हुआ किन्तु यह निश्चय हो गया कि इस कृत्यसे पालापार न होगा। अतएव उसने गादेय युद्धका परित्याग कर मान्त्रिक आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। जिसकी शेषसहस्रजिव्हाओंकी तरह लपलपाती हुई आग्नेयलटाओंसे पर्वत दग्ध होने लगा। यह देख तत्काल ही भैरवोंने वार्षिक अस्त्रद्वारा उसका उत्तर देकर दंदह्यमान पर्वतको शान्त किया। इसी प्रकार

योगाचार्य श्रीगोरक्षनाथजी, ज्वालादेवी

BLOCKS BY—THE CALCUTTA PICTURE HOUSE,
49, Harrison Road, Calcutta.
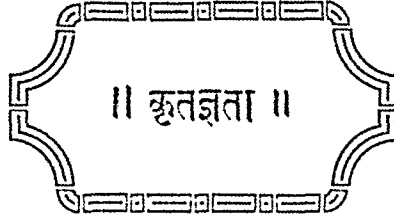
मेरे श्रद्धास्पद भरतनाथजी महाराज ! जब मैं आपके सम्मुख अपनी सम्प्रदायमें ऐसे इतिहासके होनेकी अत्यन्त आवश्यकता बतलाया करता था तब आप अपने मुखारविन्दसे यह अमृतायमान वचन निकाला करते थे कि हां देशमें अन्वेषणा करनी चाहिये सम्भव है कहीं न कहीं मिल जायेगा । और उसके प्रकाशनमें जो खर्च होगा उसको मैं सहर्ष अपने ऊपर लेता हुआ न केवल योगाचार्योंका कृपा पात्र बन जाऊंगा बल्कि मैं अपने उत्तरदायित्वसे भी मुक्त हो सकूंगा । परन्तु बलिहारी उस विकाल कालकी । जिसने इस ग्रन्थके प्रकट होनेसे पहले ही आपको अपने पञ्जोंमें दबालिया । हाय ! वह ग्रन्थतो मिल गया और मेरे द्वारा अनुवादित भी हो गया पर मैं इसे किसके अर्पण करूं । आज आपका करयुगल कहां है मैं जिसमें इस ग्रन्थको समर्पित करता । आपके कमलनेत्र कहां हैं इसको जिनका विषय बनाता और जिनके अवलोकनसे इसको पवित्र करता । खैर जो भी कुछ हो आप अपना वचन पूरा किये बिना ही जो आगमलोकके यात्री बन बैठे इससे यह नहीं सोचना कि मैं आपकी सहायतासे वञ्चित रहनेसे आपका कुछ भी उपकार न समझूंगा । बल्कि मैं यावज्जीवन अपनेको आपका कृतज्ञ बनायें रक्खूंगा । क्यों कि आपके साथ जो व्यवहार हुआ वह ईश्वरेच्छासे ही हुआ है । अतः उसमें आपका कोई दोष नहीं है । यदि आप जीवित रहते तो मुझे विश्वास था अवश्य अपना वचन पूरा करते । पर वह मेरा कम दुर्भाग्य नहीं जो आप मेरे ऊपर शीघ्र ही अपना वियोगात्मक वज्रपात कर बैठे । खैर मैं अपने उछलते हुए हृदयको पत्थरवत् बनाकर अन्दिर ही बन्ध करलेता हूं । और एकबार फिर जीवनभर आपका कृतज्ञ रहनेकी प्रतिज्ञा करनेके साथ २ इस ग्रन्थको महात्मा शिवनाथजीके समर्पण कर देता हूं ॥

आपका शोकाग्निविदग्ध हृदय प्रेमज शिष्य--चन्द्रनाथ योगी.
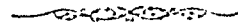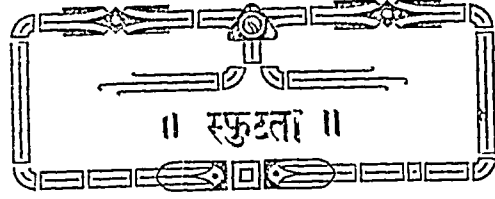
पाठक ! महोदयजी आपको भूमिकाके ८ में पृष्ठकी टिप्पणीमें (यह ग्रन्थ ६ ना. भ. सा. के कर्ता नरहरिके गुरु ज्ञानदेवजीकी बङ्गलानुवादित हस्त लिपी वि. सं. १८३०की लिखी हुई है। किसी कारणसे इन पं. जीके पिताके हस्तगत हुई थी) यह लिखा हुआ मिलेगा। परं इसका यह अर्थ नहीं समझना कि ऊपरोक्त सं० में ज्ञानदेवजीके द्वारा यह लिपी लिखी गई थी। किन्तु ज्ञानदेवजीकी लगभग पैनेपान्सौ वर्ष पहले अनुवादित की हुई लिपीका किसी अन्यने जीर्णोद्धार किया था, जैसा कि शके. १२१२ में गीताके ऊपर किये उनके भाष्यका शके १५१५ में एक नाथजीने जीर्णोद्धार किया, और फिर १८०० में गणेश शास्त्रीने उसका उद्धार किया। आपतो शके सं. ११९७ में उत्पन्न हुए थे। और योगेन्द्र गोरक्षनाथजीके शिष्य महात्मा गैनीनाथजीके प्रशिष्य हुए थे। आपकी जन्मभूमि महाराष्ट्र देश थी इसी लिये महाराष्ट्रिय भाषामें आपने, योगिसम्प्रदाया विष्कृति, गीताभाष्य, अमृतानुभव, आदि कतिपय ग्रन्थ लेखनीका विषय बनाये। आपके कुछ काल पहले योगि समाजमें ग्रन्थों विषयक विप्लव हुआ था। ठीक उसी समय किसी बङ्गलाभाषी महानुभावने इस ग्रन्थकी रक्षा की जिसका फिर इन ज्ञान नाथजीने महाराष्ट्रियमें अनुवाद किया। आपका महाराष्ट्रमें उतना ही आदर है जितना कि पंजाब और संयुक्त प्रान्तमें, नानक, और कबीरदासजीका है। आपका विस्तृत जीवन चरित्र ज्ञानेश्वरी गीतामें देखिये। शम् ॥
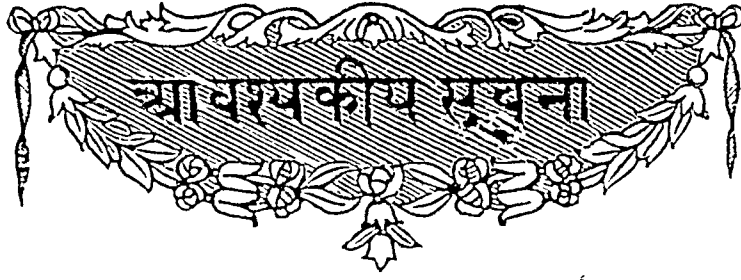
मेरे श्रीपद तथा स्वस्तिपदभाग् हृद्यपाठकवृन्द क्षमा कीजिये भगवान् न करे मैं ऐसा करूं तथापि सम्भव है लेखनीके प्रवाहसे मुख छोटा और बात बडी कह बैठूं ? आज आपके मन्दस्पन्द जलस्थलीय विमलकमलोपमलोचनों-की प्राथमिक दृष्टिसम्पातात्मक सेवामें जिस विषयको समर्पित करता हुआ मैं सौभाग्योपलब्ध हुआ हूं यह ऐसा है जिसके श्रवण तथा पठन मननोत्तर आपको विदित होगा कि ईश्वरने समस्त मनुष्योंको इनके अदृष्टानुकूल इस पृथिवीपर जो अवतीर्ण किया है वह इसी लिये नहीं कि ये असंख्य कल्पोंपर्यन्त कुक्कर कृमियों की तरह सांसारिक विविध व्याधियोंसे पीडितही रहें जायें ? और वास्तविक सुखका तो क्या साधारण सुखका भी ये कभी मुखतक न देखने पायें, किन्तु जिस प्रकार कोई बडा व्यापारी विविध सामग्री प्रदानकर अपने भृत्योंको परदेशमें प्रेषित करता है और उनके क्रयविक्रयात्मक व्यापारसे वह जिस प्रकार उनकी बुद्धिमत्ताकी परीक्षा करता है तथा सौभाग्यवश उनका व्यापार अनुकूल निकलाते वह प्रसन्न हो जिस प्रकार उनको सदा अपने पास रखनेकी इच्छा करता है. ठीक इसी प्रकार ईश्वरभी विविध सामग्रीके साथ मनुष्योंको इस सांसारिक बाग बाहारमें प्रेषित करता है, तथा इनके द्वारा अनुष्ठित होनेवाले व्यापारसे इनकी बुद्धिमत्ताको परीक्षित करता है। परन्तु उन महानुभावोंको एकबार नहीं अनेकबार धन्यवाद है जो ईश्वर प्रदानित सामग्रीको समझते हैं। और उसके अनुकूल प्रयोगद्वारा ईश्वरको प्रसादितकर उसके समीपवासी बन जाते हैं, इस पवित्र आर्यवर्त्तमें ऐसे मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ आदि अनेक महापुरुष हो गये हैं, जिन्होंने ईश्वरप्रदत्त सामग्रीको न केवल स्वयंही समझा बल्कि स्वयं समझकर दूसरोंको समझाते हुए उनको अपना प्रतिवेशी बनालिया। और संसारमें जो मनुष्य अपने आपको अल्पज्ञ क्षुद्रप्राणी समझते हुए और इसीलिये अनेक दुःख भोगते हुए सहसा यह कह डालते हैं कि भाई इस संसारमें आकर कौन सुखी हुआ है। यहांतो

जो आते हैं। वे दुःख भोगनेकेलिये ही आते हैं। और यह दुःख कभी छूट भी नहीं सकताहै। क्योंकि इसलोकका नामही मृत्युलोक है। अनेक दुःखोंका अनुभव करनेपरभी बार२ मरना जन्मना तो इसलोकमें आनेका मुख्य उद्देश ही है। फिर ऐसे दुःखसे मुक्त होनेकेलिये हम क्या प्रयत्न करें। हमको तो कभी न कभी चेंटीकेद्वारा समुद्रका पान होना तो सम्भव हो सकता है पर इस सांसारिक दुःखत्रयसे मुक्त होनेका कोई लक्षण दिखाई नहीं देता है। ऐसा कहने और हस्तीकी तरह अपने आपके बलको न समझनेवाले मनुष्योंकेलिये वे महापुरुष यह आदर्श उपस्थित कर गये हैं कि अये शास्त्रज्ञान और सत्सङ्गसे विमुख लोगो तुम ऐसा समझकर अपने आपका अधःपतन मत करो, सम्भालो२ और देखो तुम क्याहो तथा क्या बन सकते हो और कहां तक पहुँच सकते हो। तुमने ईश्वरका इतना बडा कोई अपराध नहीं किया है जिसके निमित्तसे कुपित हो उसने सदाकेलिये तुमको दुःखमेंही डाल देना समुचित समझा हो, बल्कि उसको हार्दिक धन्यवाद देना चाहिये, उसने तुह्मारी अपनीही गलतीसे अपने ऊपर आरोपित किये दुःखोंको नष्ट करनेकेलिये उपाय रच डाले हैं वेभी दूर नहीं तुह्मारे पास ही हैं। तुम उनको न देखो और उनका उपयोग न समझो तो इसमें ईश्वरका कोई कशूर नहीं। अतएव तुम फिर सचेत हो और सम्भालो अपने आपको देखो तुह्मारे इस शरीरमें ईश्वरने क्या२ और कैसी२ अद्भुत शक्तियां छिपा रक्खी हैं। जिनके द्वारा तुम जहां तकभी पहुँचना चाहो पहुँच सकते हो इस बातका प्रमाण आज हम लोग तुह्मारे सम्मुख खडे हैं। दुःखत्रयका तिरस्कार भी कर चुके हैं। क्यों ऐसा क्यों हुआ यह इसीलिये हुआकि हमने तुह्मारे जैसी अज्ञानाच्छादित भ्रमणात्मक बुद्धिका परित्याग करते हुए कुछ प्रयत्न किया। और ईश्वर प्रदत्त सामग्रीको समझा इति। ऐतिहासिक रहस्यज्ञ मेरे प्रियपाठक जरा सोचिये और ध्यान दीजिये आज संसारमें उन मत्स्येन्द्रनाथादि महापुरुषोंका पाञ्चभौतिक वपु हम लोगोंकी दृष्टिगोचर नहीं है पर उनका अक्षुण्ण यश भारतीय समस्त आबालवृद्ध लोगोंके हृदयागारमें विराजमान है। यह क्यों और क्या बात है आजतो उनयोगाचार्योंके विषयमें वा उनकी अद्भुत शक्ति शालिताकी परिचायक कहीं कथा वा व्याख्यान भी नहीं होते हैं फिर क्या कारण है भारतीय सभ्यसमाजके हृदयमें उनके प्रति असाधारण भक्ति तथा उनका परिचय आज तकभी तादवस्थ्य विद्यमान है। वह यही कारण है कि उन महानुभावोंने ईश्वर प्रदत्त सामग्रीको समझा और खूब समझा। तथा इस पाञ्चभौतिक शरीरसे वही परम पुरुषार्थ प्राप्तिरूप कार्य लिया जिसके उद्देशसे इस मनुष्य शरीरकी उपलब्धि होती है। फिर कोई वजह नहीं कि ऐसे महापुरुषोंका यशविस्तृत एवं अक्षय नहो परन्तु नेकी नवकोश

भूमिका

॥ नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥
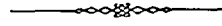
असत् वस्तु सत् और सत् वस्तु कभी असत् नहीं हो सकती है भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी इस उक्तिपर दृढ विश्वास रखता हुआ मैं निशङ्क होकर यह कहनेकेलिये अत्युत्सुक हो सकता हूं कि योगरूप वस्तु कोई अभावात्मक एवं नूतन कल्पित वस्तु नहीं है, प्रत्युत भावरूप तथा अनादि कालारम्भ सृष्टि सहचारी है, अतएव प्रत्येक युगमें होनेवाले योगियोंने इसकी प्रसिद्धि कर इसके सद्भावकी ही पुष्टी की है, और इसके द्वारा उन योगेन्द्रोंने जो लाभ उठाया है वह वास्तविक है, अर्थात् मनुष्ययोनि मिलनेका मुख्य प्रयोजन जो परमपुरुषार्थाख्य मोक्षप्राप्ति है वे उसीमें कृतकार्य हुए हैं। इस पवित्र भारतमें ऐसे जैगीषव्य कपिलादि अनेक योगी हो चुके हैं। जो आगम प्रतिपाद्य प्रलयमेंभी जलस्थ कमल-पत्रवत् निःसङ्ग रहते हैं। और परिणाभित प्रकृतिके विचित्राकारका अवलोकन करते हुए अपने आपको धन्य समझते हैं। परंतु संसारमें कतिपय लोग ऐसे देखे जाते हैं जो इस वातको बालकोंकी कहांनी बतलाकर नासिका सङ्कुचित किया-करते हैं। ठीक है यदि यह केवल मेरीही कपोल कल्पित बातहो तो यह कहांनी और इसके कहनेवाला मैं बालक बननेकेलिये तैयार हूं। एवं उनमहाशयोंका नासिका सङ्कुचित करनाभी न्याय सङ्गत हो सकता है। परन्तु ऐसीबात नहीं है। मैं जो

कुछ स्वकीय लेखनी द्वारा लिख रहा हूं वह आचार्योंकाही लिखा हुआ है इसके निश्चयार्थ आपने वह प्रकरण अवलोकित करना चाहिये जो योगेन्द्र जैगीषव्य और आवट्यजीके पारस्परिक सम्वादान्वित हैं। वहां जैगीषव्यजीने स्वयं स्वकीय मुखारविन्दसे यह कहा है कि (दशसु महाकल्पेषु विपरिवर्तमानेन मया) अमुःकार्यकृतमिति शेषः) अर्थात् दशमहाकल्पोंके प्रलयमें भी अक्षुण्ण प्रतिपत्तिसे विद्यमान रहते हुए मैंने अमुक कार्य किया। एवंकपिलजीके द्वारा निर्मित सांख्यशास्त्रके उद्देशसे शङ्कोत्थापन-कर्ता किसी वादीने कहा है कि (आगमाभिहितविषय एव प्रेक्षावद्भिरङ्गीकर्तव्यः अर्थात् प्रकृतिपुरुषभेदजिज्ञासु मनुष्य वेदकथित विषयको ही स्वीकृत किया करते हैं फिर सृष्टिसे प्राथमिक विद्वान् कपिलजीके शास्त्रमें वे श्रद्धा कैसे करें। क्योंकि सृष्टिके साथ प्रकट होनेवाले वेदका ज्ञान वेदसे पश्चात् उत्पन्न होनेवाले मनुष्यमें सम्भव हो सकता है नाकि वेदोत्पत्तिसे पहलेही विद्यमान रहनेवालेमें। इत्यादि शङ्काकाभी यही उत्तर प्रदान किया गया है कि कपिलजीने प्राथमिक कल्पस्थ वेद पढाथा उसका ज्ञानही उनके इस सांख्यशास्त्रमें विद्यमान है। अतएव यह शास्त्रभी आगमाभिहित विषयक होनेके कारण सर्व सम्मत हो सकता है इसमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं है। पाठक सम्भव है इस वृत्तसे आप समझ गये होंगे कि जिसके प्रभावसे उक्त महापुरुष इतने शक्तिशाली हो गये जो प्रलयकालमेंभी अक्षुण्ण रहे ऐसी योगरूप कोई वस्तु अवश्य है। होते हुए भी अत्यन्त दुर्विज्ञेय और सर्वोत्कृष्ट है। जिसका अधिक क्या यहां तक महत्व दिखलाया है कि (ब्रह्मादयोऽपित्रिदशाः पवनाभ्यास तत्पराः) अर्थात् योगका वास्तविक रहस्य समझनेकेलिये ब्रह्मा–विष्णु–महेश–महानुभावभी पवनके आहारसेही शरीरकी स्थिति रखनेका अभ्यास करने लगे। और इस अभ्यासमें निपुणता प्राप्त कर उन्होंने योगका तत्व समझा। जिसके प्रभावसे ब्रह्माजी सृष्टि रचनात्मक कार्यमें समर्थ हुए। विष्णुजी सृष्टि पालनात्मक कार्यमें कुशलता प्राप्त कर सके। महेशजी उत्पत्ति निरोध रहित हुए सृष्टि संहारात्मक कार्यमें प्रभु निश्चित हुए। इसी योगके प्रभावसे योगी याज्ञवल्क्य–मत्स्येन्द्रनाथ–गोरक्षनाथ–ज्वालेन्द्रनाथ–कारिणपानाथ–आदि महानुभाव संसारमें अपनी अक्षुण्ण कीर्तिका

योगक्रिया प्रदान करनेकेलिये भारतमें प्रेषित कियेथे । उनके शिष्य श्री महादेवजीकाही अंशस्वरूप गोरक्षनाथ नामसे प्रसिद्ध हुए । जो इन मत्स्येन्द्रनाथजीके अधिक कृपा पात्र होनेके कारण योगिसम्प्रदायके प्रवर्त्तक अर्थात् मुख्याचार्य सम्मतहुए । जिनकी आजपर्यन्त तादवस्थ्य प्रसिद्धि है । तद्नु औग्धी ज्वालेन्द्रनाथ, कारिणपानाथ,गहनिनाथ, चर्पटनाथ, रेवननाथ, नागनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचन्द्रनाथ ये आठयोगी प्रसिद्ध हुए । इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथजीसे लेकर गोपीचन्द्रनाथतक ये दशयोगेन्द्र योगिसम्प्रदायके मूल पुरुष समझे जाते हैं । यद्यपि इन महानुभावोंसे अतिरिक्त इनके द्वारा योगशिक्षा प्राप्तकर इनके शिष्य प्रशिष्य लोक प्रसिद्ध चौरासी सिद्ध ऐसे शक्तिशाली हुए हैं जो किसीबातमें भी इनसे न्यून कोटिके नहीं थे । तथापि जिसपुरातन ग्रन्थका अनुवादकर मैं उसे प्रियपाठकोंकी पुण्योपलब्ध सेवामें समर्पित करनेकेलिये अग्रसर हुआ हूं इस बहु प्रयत्नोपगम्य ग्रन्थमें इन्हीं उक्त दश महापुरुषोंको मुख्य स्वीकृत किया गया है । इनका तथा इनकी अपूर्वयोग दीक्षा प्रणालीका वर्णन इस ग्रन्थमें यथा स्थानोंपर किया गया है । मुझे आशा है मेरे प्रियपाठक उन विविध दोषोंको जो दो कारणोंसे इस ग्रन्थमें मि[illegible] हो गये हैं निकालकर इस ग्रन्थको शुद्ध अथवा छन्दोबद्ध बनाकर प्रतिष्ठित करेंगे । दो कारणये प्रथम ग्रन्थका विदेशी भाषामें होना द्वितीय इस विषयमें कुछ दिन लगातारसाध्य सिद्धिकेलिये चिन्ताग्रस्त रहनेके कारण मेरा शिरोरुजाभिभूत हो जाना । इतना होनेपरभी इस ग्रन्थ प्रसिद्धिकेलिये मैंने जो देशाटनद्वारा शारीरिक और [illegible] मानसिक कष्ट उठाया है उसके प्रत्युपकारार्थ अपने आपको धन्यवाद देनेके लिये [illegible] पाठकोंको निमन्त्रित नहीं कर सकता हूं । एवं•न मुझे इसका कोइ [illegible]ही है । यदि [illegible] वह यही हो सकता है कि मैं स्वयंतो इस ग्रन्थको जिस अवस्थामें देखना चाहता था । नहीं बनासका परं तद्वत् बनानेकेलिये विद्वत्पुरःसर प्रियपाठककी लेखनी सज्जीकृत होनेमें कारणी भूत हुआ । तुष्यतुगिर्वाग्वाणी ।

(इस [illegible] तथा जिनकी सहायतासे यह विरहित नहीं है उनका नाम)
योगि सम[illegible] १ नवनाथ [illegible] २ नवनाथ चरित्र ३ नाथपन्थोदय ४ दत्तप्रबोध ५ [illegible] ६ सिंहा[illegible] ७ (इनकी उपलब्धि) १ नं. दाक्षिणात्य भाषामेंलिखित श्री ओङ्कारनाथजीकी आचार्य आये हुए सोन्हापुर निवासी पं. चन्द्रकिशोरजी

के सकाशसे खेड़ी घाटपर उपलब्ध हुआ[1]। २ नं० महाराष्ट्र भाषामें छपा हुआ गोदावरी त्रिमुखस्थदुलीचेसे उपलब्ध हुआ ३ नं० महाराष्ट्र भाषामें छपा हुआ उज्जयिनीस्थसिंह पुरी मोहल्लेमें रहनेवाले पं. उमादत्त भाऊके सकाशसे उपलब्ध हुआ ४ नं. महाराष्ट्र भाषामें लिखित लालबागरोडपर स्थान इन्दोर निवासी पं. गणेशदत्तसे उपलब्ध हुआ। ५ नं. हिन्दीभाषामें लिखित मुम्बईस्थ गिरगाँव चाल नं–२ में रहनेवाले पं. केशव महादेवसे उपलब्ध हुआ। ६ नं. हिन्दी भाषामें छपा हुआ मुम्बई कालबादेवीरोड मारवाडी एसोसिएशन पुस्तकालयसे उपलब्ध हुआ। ७ नं पुरातन संस्कृत लिखित उज्जयिनीस्थ महाराष्ट्र विद्यालयके अध्यापक पं. दामोदरजीसे उपलब्धहुआ। शम्। पाठक मङ्गलाभिकाङ्क्षी हरिद्वारस्थ योगाश्रम।

संस्कृत पाठशालीयच्छात्र चन्द्रनाथ योगी

---

१ यह ग्रन्थ ९ ना. भ. सा. के कर्ता नरहरिके गुरुज्ञानदेवजीकी बङ्गलानुवादित हस्त लिपी सम्वत १८३० की लिखीहुई है। किसीकारणसे इन पं. जी के पिताके हस्तगत हुईथी॥

(अथ)

योगि सम्प्रदाया विष्कृतिः

॥ अध्याय १ ॥

ज्योतिर्भिर्यस्य शुक्लंजगदपिसकलं दृश्यते प्राणभाग्भिः
चेष्टायस्य प्रभावैर्भवति प्रतिदिनं स्थावरे जङ्गमेच ॥
सम्पन्नं सर्व वीजं भवतिभुवि प्रभो यस्यचाति प्रतापैः
तंहि त्रैलोक्यनाथं पुरुष इति समाख्या प्रसिद्धं नमामि १
शान्तं सिंहासनस्थं सुयति नुतियुजश्वेतनाथस्य शिष्यम्
धर्मज्ञं धर्मवीरं मुददतमिह योगाश्रमे योगविद्याम् ॥
योगाचार्य्यशरण्यं प्रमुदितहृदयं पूर्णनाथाभिधानम्
ध्यात्वाहंचन्द्रनाथोहि निजगुरुवरं आरभेग्रन्थभाषाम् २
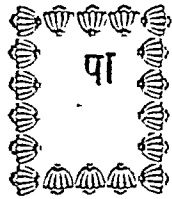
पाठकवर आइये आप मेरे हृदयसे हृदय सम्मिलितकर मुझे आरम्भित विषयमें अपरिमित प्रयत्न करनेका उत्साह प्रदान कीजिये। इस समयजबकि प्रत्येक समाज संगठन और जाति तथा उनके प्रत्येक मनुष्य हम किस रीतिसे अपनी उन्नति के शिखरपर पहुँच सकते हैं। इस प्रकारकी भावनाओंमें लीन हैं। बल्कि लीनही नहीं यथासाध्य उपायोंकी अन्वेषणाभी कर रहे हैं।, तब मुझे उचित नहीं कि मैं उनकी कार्यावलीको देखता तथा इस रहस्यको स्वकीय हृदयस्थानमें अवकाश देता हुआ भी अकर्मण्यताके साथ बैठा रहकर उनकी ओर झूरता रहूं। और स्वीय हृदयात्मक ,समुद्रमें उत्पन्न होने वाली अनेक भावनेय तरङ्गोंको इसीमें विलीन करलूं। किन्तु आज जिसप्रकार अनेक भारतीय वीर अपने समाज संगठन और जातिके उत्कर्षार्थ यथा साध्य प्रयत्न लीन हैं तद्वत् मैं भी क्यों न हो जाऊं। जिनभावनाओंने उक्त महानुभावोंको उक्त प्रयत्नमें

कटिबद्ध किया है उनभावनाओंसे मैं भी रिक्त नहीं हूं। यही कारण है अनेक बाधायें उपस्थित होते हुए भी मैं औद्देशिक पथसे एक पदभी पीछे न हटकर आग्रसर ही होता हूं। तथा समयानुसार सम्भवित उपाय लेखनी उत्थानके द्वारा मैंने जो भी कुछ स्वकीय जातिरूप योगिसमाजका लाभ सोचा है उसको उपस्थितकर अपने किञ्चित् उत्तरदायित्वसे विमुक्त होनेकी सम्भावना करता हूं। और इस बातको स्पष्ट कहदेता हूं कि संसारमें यदि किसीकी प्रतिष्टा देखी जाती है तो वह दो कारणोंसे आबद्ध है। या तो प्रतिष्ठित पुरुष स्वयं ऐसे गुणोंवाले हों जिन्होंसे मोहित हुए लोग उनकी विनत्र अभ्यर्थना करनेमें उत्काण्ठित हो जायें। या उनके पूर्वजोंके जोकि लोक हितैषितापर अपना सर्वस्व न्योछावर कर चुके हों प्रभावशाली चमत्कारोंका कथा आदिके द्वारा लोगोंके हृदयोंपर प्रकाश डाला जाताहो। जिससे लोग यह विचार कर कि ये भी उन्हीं महापुरुषोंकी सन्तान हैं उनके सत्कारमें अग्रसर हों। यह उदाहरण लोकमें प्रसिद्ध ही है जो मैंने स्वयं कई एक स्थानोंपर अनुभवित किया है। संसारके इतिहासमें जिस घरानेका चरित्र श्रद्धास्पद समझा जाता है उस घरानेका मनुष्य चाहे उन प्रख्यात गुणोंका भण्डार न हो स्थानान्तरमें जाने पर उक्त बुद्धिसे प्रेरित लोगोंद्वारा कुछ प्रतिष्टाको अवश्य प्राप्त होता है। परन्तु खेद है और कष्टके साथ लिखना पडता है आज योगिसमाज दोनों प्रतिष्टाओंमें किसीकाभी आश्रयभूत नहीं है। न तो इसमें स्वयंवे गुण हैं जिनसे संसार इसको श्रद्धेयदृष्टिसे देखे और न पूर्वाचार्य्योंकी अपूर्वलोक हितैषिताकाही इसे कुछ ज्ञान है जिसको लोगोंके अभिमुख प्रस्फुट कर उनके हृदयोंपर उसका कुछ प्रकाश डाल सकै। जिससे लोग अद्भुतशक्तिशाली जनोंद्धारक महात्माओंकी सन्तान समझकर इसको प्रतिष्ठित करें। असलमें आधुनिक योगि समाजको पूर्व योगाचार्य्योंकी अपूर्वलोक हितैषिताका ज्ञान होता भी कैसे दीर्घकाल होनेके कारण न तो उसकी परिचायक गाथाही किसीके कण्ठस्थ रही एवं न उसका प्रबोधक कोई इतिहासही प्रचलित रहा जिससे योगिसमाज स्वयं उसका ज्ञान प्राप्त कर उसको संसारमें विस्तृत करता। क्यों ऐसा क्यों हुआ यदि यह कहें कि आजपर्यन्त योगि समाजमें विद्वान् नहीं हुए तो सर्वथा असम्भव है विद्वानोंका न्यूनाधिक भाव होने परभी अत्यन्त अभाव कहना निर्मूल है। आजभी टूटी फूटी दशामें सन्तोषजनक विद्वान् विद्यमान हैं। फिर विद्वान् भी हुए हों परं उन्होंने उपरोक्त वार्ता सूचक इतिहास रचनेकी उपेक्षा की हो ऐसा भी सम्भव नहीं है। तो फिर क्या कारण है जो आधुनिक समय वैसा इतिहास जगत् प्रसिद्ध नहीं है। इसका कारण यही है और इतिहास प्रसिद्ध न होनाही इस बातकी पुष्टी करता है कि अवश्य ऐसा हुआ होगा। जैसा कि सुनाजाता है वैक्रमिक १४०० शताब्दीके आसपास योगि समाजात्मक समुद्रमें महान् अज्ञानात्मक एक

ऐसा तुफान उठाथा जो कतिपय सुयोग्य योगी महात्माओं के अनेक प्रयत्न करनेपर भी ऐतिहासिक ग्रन्थात्मक जहाजों को डुबो कर रसातलमें पहुँचायें विना न रहा। इसका स्पष्टार्थ यह हुआ किसी देशकाल विचारशील योगीने या खैर योगेन्द्र गोरक्षनाथजीने ही समझ लीजिये योगियोंको यह परामर्श दियाथा कि योग साधनीभूत कई एक खतरनाक क्रियाओंको जो कि गुरुद्वाराही पुरुषको साध्य हो सकती हैं। न तो स्वयं कागजपर लिखना और न किसी अन्यको लिखाना ऐसा करनेपर लिखितके अनुसार कोई गुरुके विनाही उनमें प्रवृत्त हो जायेगा तो उसे लेनेके वदले देने पडजायेंगे। उनकी इस आज्ञाका कुछ कालतो ठीक२ रीतिसे व्यवहार होता रहा। अनन्तर योगि समाजकी काया पलटने लगी। अनधिकारी आलसी पुरुषोंका इसमें प्राधान्य होने लगा। सहज २ समस्त क्रियायें लुप्त होने लगी पढने लिखनेकी ओरसे भी मुख मोडनेके अभिप्रायसे उपरोक्त वार्ताका यह अर्थ निश्चितकर लिया कि श्रीनाथजी की आज्ञा है योगियोंके लिये पढना लिखना महा पाप है। बस क्याथा कुछ दिनमें यह अर्थ खूब परिपक्व हो गया। अब वह समयथा जिसमें योगि समाजके अनेक ग्रन्थ विद्यमान थे। उनके विषयमें अनधिकारी निरक्षर भट्टाचार्य योगियोंकी शङ्का उत्पन्न होने लगी कि श्री नाथजीकी आज्ञा नहीं है तो अमुक योगी क्यों पढे और उन्होंने ये ग्रन्थ क्यों लिखे। अन्तमें किसी दिन तीर्थादि के उपलक्ष्य पर समुदाय समाजमें यह प्रस्ताव पासही हो गया कि पढनेवाले योगी मूर्ख थे जिन्होंने पढने और ग्रन्थ रचना करनेके द्वारा श्रीनाथजीकी आज्ञाका भङ्गकर उन्हें तिरस्कृत किया है। अतएव जहां कहीं भी मिलें उन्होंके ग्रन्थोंको नष्ट करना योगी मात्रका कर्तव्य है। (हाय अविद्या तेरा बुराहो। तू योगिसमाजमें घुसकर आज यह क्या करा बैठी। इस कृत्यके स्मरणसे मेरा हृदय जितना कम्पित और दंदह्यमान होता है। उतना औरंगजेबकी हिन्दुओंको मुसलमान बनाने और इनकार करें तो कत्ल करनेकी आज्ञाका स्मरण करनेसेभी नहीं होता है)। अस्तु उसी समयसे भारत व्यापी अज्ञानान्धकारावृत योगि समाज अपने कथनकी पूर्ति करनेमें कटिबद्ध हुआ। जिससे कुछही दिनमें समस्त ऐतिहासिक ग्रन्थोंका अवसान हो गया। परन्तु ईश्वरकी गति बडी ही विचित्र है। वह मनुष्योंको हरएक प्रकारके दावपेच, शिखला करभी बिल्लीकी तरह कोई एक युक्ति अवशिष्ट रखलेता है। यही कारण हुआ आज्ञानिक योगियोंके लाख शिर पटकने परभी पूज्य योगाचार्योंकी अश्रुतपूर्व असाधारण लोक हितैषिताका परिचायक ग्रंथ स्वकीय अभावका सुख न देखसका। किसी दूरदर्शी योगी अथवा गार्हस्थ्य महानुभावके द्वारा अनुवादित हो अपनी आन्तर्धानिक उपस्थिति रखनेमें समर्थ हुआ। और सहज २ कई एक शाखाओंमें विभक्त हो अपनी कथाओंके द्वारा फिर भारतीयलोगोंको विशेषकर के बङ्गाली और महाराष्ट्रिय लोगोंको रञ्जित करने लगा। सौभाग्यका विषय है यह लेख परम्परामें परिणत

हुआ अमूल्य ग्रन्थ इसकी गवेषणार्थ प्रयत्नलीन हुए मेरे हस्तगत हो गया। जिसका आरम्भ इस प्रकार है कि संसारमें मनुष्योंके ऊपर होनेवाली ईश्वरकी विशेष दृष्टि दो कारणोंसे प्रेरित समझनी चाहिये। जिनमें प्रथम कारण मनुष्यका धर्मानुष्ठान और द्वितीय अधर्मानुष्ठान है। धर्मानुष्ठानसे मनुष्यके ऊपर ईश्वरकी मङ्गलप्रद दृष्टि होती है तो अधर्मानुष्ठानसे अमङ्गलप्रद दृष्टि होती है। जिन्होंमें विशेषता समान ही है। मार्कण्डेय आदि ने धर्मानुष्ठानसे ईश्वरकी मंगलप्रद विशेष दृष्टिका अनुभव किया है तो हिरण्यकशिपु आदिने अधर्मानुष्ठानसे ईश्वरकी अमङ्गलप्रद विशेष दृष्टिका अनुभव किया है। इसी प्रकार जब२ मनुष्य धर्माधर्मका विशेष रीतिसे अनुष्ठान करते है तब २ ईश्वर उनके ऊपर विशेष दृष्टि कर कोई ऐसी प्रथाप्रचलित करता है जिसके द्वारा उनके अनुष्ठानानुकूल फल उपस्थित होता है। द्वापरयुगके अन्तिम भागमें ठीक ऐसाही अवसर उपस्थित हुआ था। कितनेही मनुष्य धर्मानुष्ठानकी पराकाष्ठा दिखलाते हुए ईश्वरकी नित्य यही अभ्यर्थना करतेथे कि भगवन् आपसे बिछडे रहकर हमने बहु मूल्य समय नष्ट किया है। इससे हमारी जो हानि हुई है वह और कहीं नहीं आपके समीप आनेपर ही पूरी हो सकती है। अतएव आप कृपा करें और शीघ्र एक ऐसा उपाय हमारे सामने रक्खें जिससे हमको आपके समीप पहुँचनेमें सुभीता प्राप्त हो। उनकी इस प्रैतिक एवं कारुणेय प्रलपनाने ईश्वरपद वाच्य भगवान् महादेवजीका आसन विचालित करदिया। यह देख श्रीमहादेवजीने शीघ्र उधर ध्यान दिया। और समीपागत नारदजीको बदरिकाश्रमस्थ नव नारायणोंके पास जाकर प्रबोधित वृत्तसे उन्हें विज्ञापित करनेका परामर्श दिया। नव नारायण ऋषभराजाके पुत्रथे। इनके यद्यपि जड़भरतादि अनेक भ्राता ऐसे थे जिन्होंके शुभ्रस्वच्छ यशसे मानों भारतवर्ष अत्यन्त धवलित हो यगा था। तथापि उन्होंमें कविनारायण, करभाजन नारायण, अन्तरिक्ष नारायण, प्रबुद्ध नारायण, आविर्होत्र नारायण, पिप्पलायन नारायण, चमसनारायण, हरि नारायण, द्रुमिलनारायण, ये नारायण पदान्वित नव महानुभाव तो ऐसे विरक्त और ब्रह्मनिष्ठ हुए हैं मानों अन्य भ्राताओंके यशसे धवलित हुए इस भारतमें इन्होंने कोटिसूर्य्य औरभी उदित करदिये। यही नहीं ये महानुभाव ऐह लोकागमनका जो वास्तविक उद्देश है उसको अच्छी प्रकार समझ करही शान्त न होगये बल्कि जिस किस उपायसे उसको प्राप्तही कर दिखलाया। यही कारणथा सांसारिक साधारण जीवोंकी तरह बार २ कालके शिकार न बनकर आप दीर्घसमयसे अक्षुण्णभावतया इतस्ततः भ्रमण करते रहे। येही पुण्यश्लोक जब कि बदरिकाश्रममें एकत्र बैठे हुए आत्मज्ञान विषयमें सानन्द परामर्श कर रहे थे तब नारदजीने उपस्थित हो श्रीमहादेवजीका सन्देश उद्घोषित किया। जिसको सुनकर आप लोगोंने कहाकि धन्यभाग दीनबन्धु भगवान् श्रीमहादेवजीने हमारे ऊपर दृष्टिपात किया।

और अपने चिन्त्यकार्यकी पूर्तिके लिये हमको सर्वथा योग्य एवं विश्वासपात्र समझा। परन्तु हम स्पष्टरूपसे यह पूछना चाहते हैं आप इस बातका सम्यक्तया विवर्णकरदें कि श्रीमहादेवजीने किस कार्य सम्पादनाके लिये हमको आज्ञापित किया है। नारदजीने कहा उन्होंने मेरे द्वारा आपलोगोंको इस उद्देशसे आज्ञापित किया है कि आप जहांतहां योगमार्गका उद्धार कर उन मुमुक्षुजनोंका जो इस उपाय प्राप्तिके लिये आभ्यन्तरिक भावसे उनकी अभ्यर्थना कर रहे हैं उद्धार करें। नारायणोंने कहा कि तथास्तु नारदजी आप अपने अभीष्ट स्थानको जाइये। हम इस आज्ञाके पूर्ण करनेका प्रयत्न करेंगे। यह सुन धन्यवाद वाक्योंका प्रयोग करते हुए इधर नारदजी प्रस्थानित हुए तो उधर इस विषयमें विष्णुभगवान्से कुछ परामर्श करनेके अभिप्रायसे नव नारायणभी वहांसे प्रस्थान कर गये जो अविलम्बसेही वैकुण्ठी भगवान्की सेवामें उपस्थित हो श्रीमहादेवजीकी उपलब्ध आज्ञाको किस रीतिसे पूर्ण किया जाना चाहिये इत्यादि प्रश्न करने लगें। आपने कहा कि हम स्वयं अवतरण करनेवाले हैं जिसके लिये श्रीमहादेवजीकी कुछ सम्मति प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। अतएव चलो वहीं चलेंगे जिससे सब कार्य असन्दिग्ध हो जायेंगे। यह सुन नारायणभी इस बातके लिये सहमत हो गये। जिनको साथ लेकर विष्णुजी शीघ्र कैलासस्थ श्री महादेवजीके समीप पहुँचे। पारस्परिक आभिवादनिक कृत्यके अनन्तर यथोचित आसनोंपर बैठनेका निर्देश करते हुए भगवान् कैलासनाथजीने उनसे स्वकीय आगमानिक हेतु पूछा। विष्णुजीने निजोद्देश प्रकट कर नारायणोंका प्रस्ताव भी सम्मुखीन किया। और प्रत्यक्षरूपसे कह सुनाया कि ये आपकी आज्ञा पालनमें अत्युत्कण्ठित हैं परं विधिका निश्चय प्राप्त करना चाहते हैं। श्री महादेवजीने उत्तर दिया कि आपके कार्यक्रमका अनुष्ठान आपकी ही इच्छापर निर्भर होगा। परं नारायणोंको अब अधिक विलम्ब करना उचित नहीं है। इनको चाहिये कि कुछ आगे पीछे जहांतहां भारतमें अवतार धारण कर संसारानलसन्तप्त हृदय मुमुक्षुजनोंको उद्धृत करें। हम भी। जिसमें हमारा भेद मानना अनुचित होगा फिर* गोरक्षनाथ नामकी एक व्यक्ति प्रकटित करेंगे। वह और तुम सब मिलकर योगात्मक अद्वितीय औषधद्वारा दुःखत्रयसे पीड़ित त्राहि२ शब्दान्वित मुमुक्षु जनोंकी रक्षा कर उनको सन्मार्गमें

---

* इस फिर कथनसे यह निश्चय है महादेवजीने पहलेभी गोरक्षनाम्नी व्यक्ति को प्रगट किया है। यही प्रवाद परम्परासे योगियोंमें प्रचलित भी है कि महादेवको वशमें करनेकी इच्छासे प्रकृतिदेवीने एकवार घोर तप किया था। इसीलिये देवीका मान रखने और अपनेको बचाने के हेतुसे महादेवजीने स्वयं गोरक्षनाथ नामसे प्रसिद्ध हो कृत्रिमपुतले महादेवका उससे विवाह किया। कभी रहस्य खुलनेपर देवीने फिर इसको वशमें करनेका उद्योग किया। परंविफल मनोरथ हुई। पश्चिम दिशासे आई भवानी गोरक्षछलने आईजिओ इत्यादि आख्यानसे यह वृत्त आजतकभी गायाजाता है

लगाना। आपकी इस चेतावनीपर शिर झुकाकर नारायणोंने कहा कि भगवन् हमको यह और सूचित कर दीजिये कि हम किन २ नामोंसे प्रसिद्ध होंगे।-आपने कहा कि तुम्हारे में जो कविनारायण हैं ये मत्स्येन्द्रनाथ नामसे प्रसिद्ध होंगे। करभाजननारायण गहनिनाथ नामसे प्रसिद्ध होंगे। अन्तरिक्ष नारायण ज्वालेन्द्रनाथ नामसे प्रसिद्ध होंगे। प्रबुद्ध नारायण कारिणपानाथ नामसे प्रसिद्ध होंगे। पिप्पलायन नारायण चर्पटनाथ नामसे प्रसिद्ध होंगे। चमसनारायण रेवननाथ नामसे प्रसिद्ध होंगे। हरिनारायण भर्तृनाथ नामसे प्रसिद्ध होंगे। द्रुमिलनारायण गोपीचन्द्रनाथ नामसे प्रसिद्ध होंगे। और कवि नारायणके अवतारी मत्स्येन्द्रनाथ हमसे ही योगदीक्षा प्राप्त करेंगे। गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथसे योगदीक्षा ग्रहण करेंगे। गहनिनाथ गोरक्षनाथसे दीक्षा लेंगे। ज्वालेन्द्रनाथ हमारेसे दीक्षा प्राप्त करेंगे। कारिणपानाथ ज्वालेन्द्रनाथसे ग्रहण करेंगे। चर्पटनाथ मत्स्येन्द्रनाथसे ग्रहण करेंगे नागनाथ गोरक्षनाथसे ग्रहण करेंगे। रेवननाथ मत्स्येन्द्रनाथसे ग्रहण करेंगे। भर्तृनाथ गोरक्षनाथसे दीक्षालेंगे। गोपी चन्द्रनाथ ज्वालेन्द्रनाथसे योगशिक्षा प्राप्त करेंगे। इसप्रकार पारस्परिक दीक्षासे दीक्षितहो तुमलोग मृत्युलोकमें विचरते हुए जनोंका उद्धार करोगे। जाओ हमारी आज्ञाको कार्यरूपमें परिणत करनेका अनुकूल अवसर प्राप्त करो। श्री महादेवजीकी इस आज्ञाको शिरोधार्य समझ कर अभिवादनानन्तर नव नारायण फिर बदरिकाश्रममें आ विराजे। इति श्री नवनारायण कैलासगमन वर्णननामक १ अध्याय

अनुवादक—चंद्रनाथ योगी

॥ अध्याय २ ॥

बदरिकाश्रममें आनेके अनन्तर नवों भ्राताओंने भगवान् श्रीमहादेवजीकी आज्ञानुसार कुछ कालभेदसे जहांतहां अवतार लेनेका दृढ निश्चय किया। ठीक इसी निश्चयके अनुकूल प्रथम अपने अष्ट भ्राताओंसे माननीय कवि नारायणजी वियोगित हुए। जिन्होंने भृगुवंशीय किसी प्रतिष्ठित ब्राह्मणके गृहमें अवतार धारणकर माता पिताको असाधारण आनन्द समुद्रमें निमग्न कर दिया। परं हाय कुछही देरमें पितानेजब ज्योतिषशास्त्रका अवलोकन किया तब उसे मालूम हुआ कि पुत्र अनिष्टकारक गण्डान्त नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है। अतएव उसने अपने अनिष्टके भयसे सहसा पुत्रोत्पत्तिके आनन्दका परित्याग कर लड़केको सचे समुद्रमें डालदिया। जिसको जलमें गिरते ही एक स्थूलतनु मत्स्यने हड़फ (निगल) लिया। परन्तु परमात्माकी गति अत्यन्त ही विचित्र एवं अगम्य है। मारनेवालेस वह बचानेवाला बहुत प्रबल है। यही कारण हुआ विधाताकी रक्षासे रक्षित हो वह लड़का कालके मुखमें न जाकर मत्स्यके उदरमें ही आसनासीन हो घोर तप करने लगा। इसी दशामें परिणत हुए उसके अनेक वर्ष व्यतीत हो चले। उसके कठिन तपसे भगवान् महादेवजीका हृदय दयासे परिपूर्ण हो गया। ठीक इसी समय किसी एकान्तिक स्थलमें बैठे हुए भगवान् कैलासनाथजीसे देवी पार्वती-जीने कहा कि महाराज कृपा करो और मुझे अमरकथा सुनाओ। जिससे मैं भी आपकी तरह अजगमर हो बार २ के जन्ममरणसे रहित हो जाउंगी। यहसुन श्री महादेवजीने कहा कि अये पार्वति! अमरकथा भी कोई कथा है तुझे इस बातका ज्ञान कैसे हुआ। क्योंकि, हमने आजपर्यन्त अमरकथाका सुनाना तो दूर रहा उसका तुझे नाम तकभी नहीं बतलाया है। आपके इस प्रश्नका उत्तर देती हुई देवीने कहा कि एक दिन नारदमुनि कैलासमें आयेथे। वे आते ही आपकी रुण्डमालाकी स्तुति करने लगे। तब मेरे सहसा यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि ये इतने रुण्ड किसके हैं। बल्कि इस बातका निश्चय करनेके लिये मैंने नारदजीसे ही प्रश्न किया। उन्होंने बतलाया कि ये रुण्ड किसीके नहीं केवल तुह्मारे ही हैं। तुह्मारा अनेक बार जन्म और मरण हुआ है। अतएव प्रतिजन्मस्थ शरीरके शिरको श्री महादेवजीने अपनी प्रसन्नताके लिये मालामें धारण किया है। तब मैंने फिर पूछा कि महाराज। यह जन्म मरण मेरा

अनेकवार क्यों होता है। उन्होंने स्पष्ट कह सुनाया कि अमर कथाका न श्रवण करना ही तुह्मारे वार २ जन्म मरणका कारण है। अतएव तुमने यदि जन्ममरण रूप परम्पराके असह्य दुःखका परिहार करना है तो श्री महादेवजीसे अमरकथाका श्रवण करो। श्री महादेवजी अमरकथाके प्रभावसे ही उस दुःखसे विमुक्त हुए सदा शिव कहलाते हैं। इस प्रकार अमरकथा की महिमाका निरूपण कर नारदजीतो इन्द्रपुरीको चले गये। मैं उसी दिनसे कथा श्रवण योग्य स्थानकी अन्वेषणामें तत्परथी। सौभाग्य वह अनुकूल स्थान भी आज प्राप्त हो गया इसलिये अवश्य मेरे ऊपर कृपा करो। परन्तु प्रथम आपसे मेरी यह अभ्यर्थना है जब ऐसी अमूल्य अद्वितीय वस्तुको आप अच्छी तरह जानतेथे तो आपने आजतक मेरेसे गुप्त क्यों रक्खी। पार्वतीजीका यह नम्रतायुक्त वाक्य सुनकर श्री महादेवजीने कहा कि पूर्व तू इस विद्याकी अधिकारिणी नहीं थी। इसी लिये इस गोप्यवस्तुको आजतक हमने तेरेसे छिपाकर रक्खा है। अब तू अधिकारिणी हुई है। अतःअब हम तेरेको अमरकथा सुनायेंगे। इस प्रकार पार्वतीजीको सन्तोष देकर श्री महादेवजी समुद्रतटपर आये। और अपने कृत्रिम शब्दघोषसे समीपस्थ पशु पक्षियोंको दूर कर पार्वतीजीको अमरकथा सुनाने लगे। कुछ देरमें जिस किसी प्रकारसे आपका यह कार्य समाप्त हो गया। पार्वतीजीकी असावधानतापर हुङ्कारा भरनेवाले शुक* (तोता) के वृत्तान्तसे निवृत्त हो आप फिर ज्योंही उस आसनपर आ विराजे त्योंहीं एकाएक आपकी दृष्टि समीपस्थ जलमें स्थित बालकको निगलजाने वाले पूर्वोक्त मत्स्यके ऊपर पडी। और इसीके अन्तर कवि नारायणका अवतारी बालक विराजमान है यह दृढ निश्चय कर आपने आकर्षण मंत्रका प्रयोग किया। जिससे आकृष्ट हुआ वह मत्स्य बहिर निकला। तथा श्रीमहादेवजीके तेजसे स्तम्भित हो तटपर स्थित रह गया। और उसके मुखद्वारा एक असाधारण रूपवान् बालकका निःसरण हुआ। वह निकलते ही सम्मुखीन स्थलपर विराजमान श्री महादेव और पार्वतीको नमस्कार कर उनके चरणोंमें गिरा। यह देखकर श्री महादेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। तथा समस्त वृत्तान्त जानते हुए भी उससे उसका समाचार पूछने लगे। तदनु उसने अपने आनुभविक ज्ञानसे समग्र वृत्तान्त सुना डाला। इससे और भी प्रसन्न हो श्री महादेवजीने पार्वतीजीकी

---

* अमरकथा सुननेवाला यह शुक शुकदेव नामसे वेदव्यासजीका पुत्र प्रसिद्ध हुआ। व्यासजी द्वापरके अन्तमें कृष्णजीके समकालमें हुए हैं इससे निश्चय हुआ श्री महादेवजीने पार्वतीको अमरकथा द्वापरके अन्तमें सुनाईथी। उसी समय मत्स्यसे एक बालकका उद्धार कर स्वकीय शिष्य बनाने पर मत्स्येन्द्रनाथ नामसे प्रकट करनेसे यह बात स्पष्ट हो गई कि मत्स्येन्द्रनाथजीका प्रादुर्भाव द्वापरके अन्तमें हुआ। तदनु उनके शिष्य गोरक्षनाथजीका प्रादुर्भाव हुआ। इसप्रकार द्वापरसे योगि समाजकी प्रतिष्ठा हुई। योगिसमाजका अभिप्राय नाथपन्थमें हैं. १

ओर निर्देश करते हुए कहा कि यह तुम्हारा पुत्र है इसको ग्रहण करो और पुत्रकी चेष्टाओंसे स्कन्दकी तरह संस्कृत करो। यह सुन भगवती भवानीने उसको गोदमें बैठा लिया। और मुखचुम्बनादि क्रियाओंके द्वारा स्कन्दकी तुल्य उससे अत्यन्त प्रेम किया। तदनन्तर पुत्र मत्स्येन्द्र जगत्में तेरा यश प्रख्यात होगा। तू पुत्र निश्चित होनेके कारण हमारा भी यश विस्तृत करता हुआ संसारमें निर्भयताके साथ विचरते रहना. यह कहकर दोनों अपने अभीष्ट स्थानको चले गये। इधर वह लड़काभी उनके पवित्र आशीर्वादसे प्रफुल्लित चित्तवाला होकर समुद्रके तटस्थ प्रान्तोंमें भ्रमण करने लगा। और इधर उधर कई एक मास पर्यन्त भ्रमण करनेके अनन्तर कुछ दिनमें पूर्वीसमुद्र तटस्थ कामाक्षादेवीके स्थानमें पहुँचा। यहां उसने कुछ दिनकी कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हो देवीका वर ग्रहण किया। और श्री महादेवजीको और भी प्रसन्न करनेके लिये फिर कठिन तपश्चर्य्यामें सँलग्न होनेका दृढ सङ्कल्प किया। बल्कि सङ्कल्प ही नहीं इस कार्यको पूरा कर देनेके अभिप्रायसे वहांसे बदरिकाश्रमका उद्देशकर प्रस्थान कर दिया। कुछ दिनमें यह भी यात्रा समाप्त हो गई। यहां एक अच्छा निर्विघ्न पर्वत देखकर उसने तप करना आरम्भ किया। अर्थात् पार्वती सहित श्री महादेवजीके ध्यानपूर्वक ऊपरको मुख किये हुए दाहिने पैरके अंगुष्टपर समग्र शरीरका भार रखकर दोनों हस्तोंसे बद्धाञ्जलिहो नेत्रोंकी समस्त चञ्चलताको दूर कर उसने वायु आहारके अभ्यासद्वारा पूरे बारह वर्ष व्यतीत किये। और शीतोष्णताके अत्यन्त कठिन कष्टको अपने शरीरपर ही धारण किया। यही नहीं उसने इस प्रकार घोर तप किया कि समीपस्थ भूमिपर तृण उगनेसे उसका शरीर तो तृणसे आच्छादित होही गया था। किन्तु शरीर शुष्क होकर इस तरह प्रतीत होता था मानों अस्थि ही अवशेष रह गई हों। अस्तु, जब बारह वर्ष पूरे हो चले तो उसकी तपश्चर्य्याका असाधारण फल तैयार हुआ। जिसकी प्रेरणासे प्रेरित हुए नारदजीके बदरिकाश्रमकी यात्रा करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। और वे कुछ देरमें जहां बालक कठिन तपश्चर्यामें तत्पर हो रहा था अकस्मात् उसी मार्गसे आ निकले। एवं चलते समय एकाएक उनकी दृष्टि कुछ २ दीखनेवाले तपस्वी बालककी ओर पड़ी। उसका तृणसे आच्छादित शुष्क शरीर देखते ही नारदजी कुछ विस्मितसे हुए आभ्यन्तरिक रीतिसे उसे नमस्कार करनेके साथ २ उसके जनक मातापिताको हार्दिक असंख्य धन्यवाद देने लगे। और उसके तपका महत्व वर्णन करनेके अभिप्रायसे अमरापुरीको प्रस्थान कर गये। वहां पहुँचते ही इन्द्रके अभिमुख बालकका अखिल वृत्तान्त प्रकट कर नारदजीने इन्द्रको भी उसके दर्शन करनेको बाध्य किया। नारदजीकी वाणी सुनकर इन्द्रने निश्चय करलिया कि निस्सन्देह यह बात ठीक है। यही कारण हुआ वह उसी समय नारदजीके साथ घटनास्थलमें पहुँचा। और ज्योंही विमानसे उतर तपस्वीके सम्मुख हुआ

त्योंही महाकष्टमें परिणत उस बालकके दर्शनकर अत्यन्त विस्मित हुआ। तथा मुखमें अङ्गुलि देकर अन्य देवताओंकी ओर इसारा करते हुए कहने लगा कि हमने आजतक ऐसा तपस्वी नहीं देखा है। अतएव जिसने ऐसे पुत्र रत्नको उत्पन्न किया है उन्हें अनेक हार्दिक धन्यवाद है। ऐसे असाधारण पुत्रको पैदा कर उन्हें इस असार संसारमें अपना स्वच्छ यश विस्तृत करडाला है। इस प्रकार आश्चर्य प्रकट कर धन्यवाद देनेके अनन्तर इन्द्र अपने स्थानको चला गया। पश्चात् ब्रह्माजीको भी इस वृत्तकी सूचना मिली। वह भी तपस्वीका दर्शन करनेके लिये बदरिकाश्रममें पहुँचा। और बालकका घोर तप देखकर स्वकीय मुखसे असंख्य धन्यवाद प्रदानपूर्वक श्रद्धेय श्लाघा करने लगा। तदनु अनेक हर्षवर्द्धक वाक्योंका प्रयोग कर वह भी ब्रह्मपुरीको चला गया। परन्तु तपस्वीका घोर तप देखकर ब्रह्माजीका हृदय करुणासे परिपूर्ण हो गया था। अतएव अन्य कार्यमें व्यग्र रहते हुए भी ब्रह्माजीका चित्त तपस्वीके दृश्यको विस्मृत नहीं करता था। यहांतक कि एक दिन ब्रह्माजीने विचार किया कि वह बालक तपस्वी अत्यन्त दुःख उठा रहा है। अतः किसी प्रकारसे अब उसको इस महाकष्टसे मुक्त कराना चाहिये। अन्ततः वह एक दिन स्वयं विष्णुपुरीमें गमनकर उक्त वृत्तान्तसे विष्णुजीको सूचित करनेको बाध्य हुआ। तबतो विष्णुजी भी तपस्वीके तपश्चर्याकाठिन्यको देखनेके लिये उत्कण्ठित हुए। और कुछ देरमें ब्रह्माजीके सहित बदरिकाश्रममें आये। बालकका अवलोकन करते ही विष्णुजी विस्मित हो ब्रह्माजीसे कहने लगे कि श्री महादेवजीको बुलाकर इसको अबतो तपसे मुक्त कराना चाहिये। ब्रह्माजी पहले ही, इस बातकी पुष्टीमें तैयार थे। अतः उन्होंने कहा कि चलिये आप और हम दोनों ही कैलासमें जाकर श्री महादेवजीके समक्ष इस प्रस्तावको उपस्थित करेंगे। अनन्तर दोनों महानुभाव ही कैलासमें पहुँचे। तथा उक्त तपस्वीका समस्त वृत्तान्त सुनाने लगे। साथ ही उसके मुक्त करनेकी भी प्रार्थना करने लगे। उधर श्री महादेवजीने भी उनका प्रस्ताव स्वीकृत करलिया। और उनके साथ तत्काल ही घटना स्थलपर चलनेकी तैयारी की। कुछ ही देरमें स्वकीय वाहनोंपर आरूढ हो तीनों देव बदरिकाश्रममें आये। बालकका महा घोर तप देखकर श्री महादेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। और कहने लगे कि हे तपस्विन्, अब तुम्हारा तप पूर्ण हुआ हम अतीव प्रसन्न हैं। तुम हमसे कुछ वरदान मागो। भगवान् महादेवजीका यह वचन सुनकर बालक तपस्वीने उधर दृष्टि डाली। एवं तीनों महानुभावोंको उपस्थित देख आभ्यन्तरिक रीतिसे नमस्कार कर वह कहने लगा कि हे दयासागर दीनबन्धो ! यदि आप सचमुच मेरे ऊपर प्रसन्न हैं और अभीष्टानुकूल वर देना चाहते हैं तो मैं और कुछ न मांगकर आपसे यही वर मागंता हूं कि आप मुझे अपना स्वरूप प्रदान करदें। अर्थात् मुझे अपने वेषसे विभूषित करदें। यह सुनकर तीनों देव परस्परमें एक दूसरेकी ओर देखकर मुस्कराने लगे। तथा श्री महादेवजीने

कहा कि कोई अन्य वर मांगो। क्योंकि तुह्मारा अवतार जिस विशेष कार्य पूरा करनेके लिये हुआ है। तुम उसको इस समय कठिन व्रतके अवलम्बन वशसे भूल गये हो। अतएव उस कार्य सिद्धिके अनुकूल किसी अन्य वरकी याचना करो तो बहुत ही ठीक होगा। उसने कहा कि आप ठीक कह रहेहें तथापि में आपके स्वरूपसे सुशोभित होकर उस औदेशिक कार्यका सञ्चालन करना चाहता हूं। बालकका यह निश्चय देख श्री महादेवजीकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। वे तथास्तु कहकर उक्त दोनों देवोंसे विदा हो तपश्चर्य्याविमुक्तबालक तपस्वीके सहित कैलासमें आये। और अगले दिन उसे अपना वेष स्वीकृत कराने लगे। प्रथम शिरमें विभूति डालकर विभूतिस्नान कराया। एवं स्नान करानेके साथ२ उसका महत्त्व अर्थात् अभिप्राय भी समझाया कि अये शिष्य हमने जो तेरे शिरपर डाला है यह भस्म अर्थात् मृतिका है। अतएव इसके डालनेद्वारा हम तुझे यह उपदेश देते हैं कि तुम आजसे *पृथिवी हो जाना। और जिसप्रकार अच्छी वा बुरी वस्तु रखनेसे यह पृथिवी कभी प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रकट नहीं करती है ठीक इसी प्रकार कोईभी सांसारिक मनुष्य अपने ज्ञानसे वा अज्ञानसे तुह्मारे साथ अच्छा व्यवहार करे वा कुत्सित व्यवहार करे तुम पृथिवीकी तरह कभी प्रसन्न और अप्रसन्न न हो कर सदा एक रसही बने रहना। अर्थात् पृथिवीकी तुल्य जड़ हो जाना। चेतनता केवल अलख पुरुषका प्रिय बनकर आत्मोद्धारके लियेही समझना। अथवा इस भस्मी डालनेके द्वारा हमारा यह अभिप्राय समझना कि अग्नि संयोगके पहले जिसकी यह भस्मी बनी है वह काष्ठ था। जिसमें काठिन्यादि अनेक गुण थे। और उसकी व्यावहारिक अनेक वस्तुभी बन सकती थी परन्तु अग्नि संयोग होनेपर काष्ठकी यह दशा हो गई कि इसके वे काठिन्यादि कुत्सित गुण न जानें कहां चले गये। अब इसमेंसे उन अनेक वस्तु बननेका भी सम्भव नहीं रहा। ठीक इसी प्रकार हमारे संयोगसे पहले सम्भव है तुह्मारे शरीरमें भी किसी न किसी अनुचित कर्य्योंका प्रवेश होगा। और तुम अनेक सांसारिक व्यापार भी कर सकते थे परन्तु हमारे संयोगसे ज्ञान प्राप्तकर अब ऐसा हो जाना कि उस ज्ञानरूप अग्निसे काष्ठकी तरह उन कुत्सित कर्य्योंको भस्मसात्कर डालना। तदनन्तर श्री महादेवजीने उसे जलस्नान कराया। और स्नान करानेके साथ २ उसकाभी अभिप्राय समझाया कि अये शिष्य जिसको हम तुह्मारे ऊपर छोड रहे हैं इसके वर्षानेवाला मेघ है। इस जलके शिरपर छोडनेका हमारा यह अभिप्राय है कि तुम आजसे इसके वर्षाने-वाला मेघ बनजाना। और जिस प्रकार वह मेघ जलस्थल में समान दृष्टिसे वर्षता है

---

* यद्यपि मत्स्येन्द्रनाथजी प्रथमतः ही महान् योगी थे। और किसी भी शिक्षासे अनभिज्ञ नहीं थे तथापि प्रणाली प्रतिष्ठाकेलिये श्री महादेवजीने उन्हें सब प्रक्रिया बतलानी पड़ी ऐसा समझना चाहिये।

॥ योगि सम्प्रदाया विष्कृतिः ॥

..। प्रकार सांसारिक सभीश्रेणिके लोगों पर तुम समान दृष्टिसे वर्ताव करना। अथवा जल डालनेका हमारा यह भी अभिप्राय है कि इस जलका शीतल स्वभाव है अतएव तुम आजसे जल बन जाना। और जिस प्रकार हजार बार तपाने परभी यह अपना स्वभाव नहीं छोडता है तथा ऊपर डालनेपर अग्निको प्रशान्त कर देता है ठीक इसी प्रकार कोई सांसारिक पुरुष तुह्मारी परीक्षाके अभिप्रायसे अथवा अपने कुत्सित स्वभावके अनुरोधसे तुह्मारे अनेक तर्कना लगाये तो भी तुम जलकी तरह अपना स्वभाव नहीं छोडना अर्थात् अपने सात्त्विक आत्मबलद्वारा उसको शान्तही कर डालना, तदनन्तर श्री महादेवजीने उसको नाद जनेउ पहनाकर उसकाभी अभिप्राय समझाया कि अये शिष्य यह काष्टादिका बनाया हुआ जो हमने तुह्में प्रदान किया है यह नाद है, नादका दूसरा अर्थ शब्द है, जो गुरु समझा जाता है।* अतएव तुम आजसे इस नाद अर्थात् शब्दसे अपनी उत्पत्ति समझना। हमारे नाद अर्थात् शब्दसे उत्पन्न होनेके कारण आजसे तुमने नूतन जन्म प्राप्त किया है। यह नाद ठीक इसी बातको जितलाता है यह समझना चाहिय। और यह नाद जिसमें अवलम्बित है यह ऊर्णादिसे निर्मित किया हुआ जनेउ नामसे व्यवहृत किया जाता है। यह जिस प्रकार सांसारिक लोगोंके जनेउसे भिन्न है इसी प्रकार तुमभी आजसे अनेक अतथ्य व्यवहार परिणित सांसारिक लोगोंसे भिन्न हो चुके हो। यदि अपने उद्देशको भूलकर उनलोगोंके व्यवहारमें प्रविष्ट हो गये तो कल्याणपथ प्राप्त करना तो दूर रहा तुह्में अधिक हानि उठानी पडेगी। अतएव सदा अपने स्वच्छ उद्देशसे मतलब रखना। इसप्रकार प्रत्येक वस्तु धारण करानेका ठीक २ अभिप्राय बतलाकर श्री महादेवजीने अपने कुण्डलादि कई एक चिन्ह उसके समर्पण किये। तथा उसे मत्स्येन्द्रनाथ नामसे प्रसिद्ध किया। और पूर्ण अधिकारी निश्चितकर उसको योग क्रियाओंमें प्रेरित किया। (पाठकवृन्द मुझे खेद है आज जिस समयमें मैं श्री महादेवजीके द्वारा प्रदानित शिक्षाओंको अपनी लेखनीसे प्रकट कर रहा हूं यह वह समय है जबकि आज इन शिक्षाओंका बिलकुल अभावसा दीख रहा है। अभाव दीखना भी ठीक ही है जबकि आजकलके धनाढ्य महन्त तो शिमला, मनसूरी, नैनीताल आभू आदि ठण्डे स्थलोंमें हवा बदलेके लिये जाते हैं और पीछेसे स्थानमें उनके नामके शिष्य बनाये जा रहे हैं। जिस विचारेने वेष लेनके अवसरमें जिस व्यक्तिकाशब्द गुरु

---

* शब्द गुरु और श्रोता चेला-योगियोंका यह भी सिद्धान्त है। परं आधुनिक योगियोंका क्योंकि शब्दग्राह्य वस्तु है उसका गुरु होना असंगत है। अतः उसका ग्रहण करानेवाली व्यक्ति ही गुरु हो सकती है। गुरुके उपदेशात्मक शब्दका गुरु कहना व्यवहार मात्र है ऐसा तो ठीक समझा जा सकता है। परं श्री महादेवजीने वा लेख तने ही किस अभिप्रायसे शब्दको गुरु बतलाया है यह बात चिन्तनीय है।

समझा जाता है उसका मूँह मत्थातक नहीं देखा है भला उसमें उपरोक्तादि गुरु शिक्षाओंका सम्भव कैसे हो सकता है ; किन्तु कभी नहीं हो सकता। यही कारण है बाना लेनेपर कितनेही योगी अपने मुख्योद्देशका पालन न करते हुए इन चिन्होंमें विशेष श्रद्धा नहीं रखते हैं। क्योंकि कोई भी चिन्ह हो वह किसी अभिप्रायसे शून्य रहता हुआ धारण करने योग्य नहीं समझा जाता है ; किन्तु उसके अभिप्रायकी पहले ठीकर ध्यानमें आ जानेकी आवश्यकता है जभी उसकी धारणा में श्रद्धा और सत्कार प्रकट हो सकता है। और उससे सूचित होने वाले अभिप्रायसे मनुष्य लाभ भी उठा सकता है। परन्तु खेद है जिसने बाना लेते समय स्वयं गुरुका मूह माथा न देखकर उससे कुछ नहीं सीखा तो वह जब किसी अन्यको बाना देगा तो उसे क्या शिखलायेगा)। अस्तु श्री महादेवजी जैसे गुरु और मत्स्येन्द्रनाथ जैसे अद्वितीय अधिकारी शिष्यके कार्यमें विलम्ब ही क्या हो सकता था। अतएव वह कुछ ही दिनमें असाधारण योगवित् बन गया। तत् पश्चात् श्री महादेवजीने मध्यम तथा कनिष्ठ अधिकारी पुरुषको किस ढंगसे योग क्रियाओं में प्रविष्ट करना चाहिये उसको समस्त भेद भी बतलाया। अर्थात् आपने कहा कि अये शिष्य उत्तम अधिकारी तो केवल अभ्यास वैराग्यकी ही सहायतासे योग पारंगत हो सकता है यह बात तुमसे छिपी नहीं है। क्यों कि तुम उत्तम अधिकारी हो। तुमने इसी उपाय द्वारा योगका मर्म समझकर इस बातसे ज्ञातता प्राप्त करली हैं। परं मध्यम अधिकारीको योग वित् बनाना हो तो उसके तपः, स्वाध्याय, और प्रणिधान ही विशेष उपकारी समझने होंगे। इसके अतिरिक्त यदि कनिष्ठ अधिकारीको भी तुम योगदीक्षा प्रदान करना उचित समझो तो उसे यमनियमादि आठ उपायों द्वारा ही योग निपुण बनासकोगे। मत्स्येन्द्रनाथजी ने यह तत्त्व बडी शीघ्रताके साथ समझ लिया। अतएव शिष्यकी यह दक्षता देखकर महादेवजी आतीवानन्दित हुए। और उसे सावरी विद्याका मर्म समझाने लगे। वह कतिपयलक्ष मंत्रात्मक साबरी विद्याके अवगमनानन्तर—वातास्त्र—कामास्त्र पर्वतास्त्र—आग्नेयास्त्र—वासवास्त्र—गरुडास्त्र—दानवास्त्र—मानवास्त्र—इत्यादि अनेक आस्त्रिक विद्यामें भी निपुण हो गया।

इति श्री मत्स्येन्द्रनाथोत्पत्ति वर्णन नामक २ अध्याय

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय ३ ॥
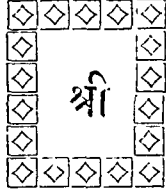
श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने योगमें सम्यक् कुशलता प्राप्त करनेके अनन्तर योग प्रचारमें यथार्थताका बीज अङ्कुरित करनेके लिये श्रीमहादेवजीकी प्रेरणानुरोधसे चिरकालावधिक समाधिमें प्रवेश किया। सौभाग्यकी बात है आपका यह समय कुशलताके साथ व्यतीत हो गया। इसके अनन्तर आपने कैलाससे अन्य स्थलमें भ्रमण करनेकी इच्छासे श्रीमहादेवजीके समक्ष प्रस्ताव किया। तत्काल ही अमोघ आशीर्वादके सहित अनुकूल अनुमति मिलनेपर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी वहांसे प्रस्थानित हुए। और वे कुछकाल पर्यन्त इतस्ततः भ्रमण करते २ श्री गङ्गाजीके तटस्थ प्रदेशोंमें आये। यहांसे अम्बादेवीके स्थानमें पहुँचे। वहां अतीव रमणीय ऐकान्तिक स्थान देखकर आपका चित्त अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ। यही कारण था आप कुछ दिन तक वहीं निवास करते रहे। अनन्तर वहांसे भी आप मार्तण्ड पर्वतपर पहुँचे। और नागपत्र नामक एक वृक्षके नीचे विश्रामकर सूर्य आदि देवताओंके निमित्त आपने एक अनुष्ठान किया। जिसकी समाप्ति होनेपर इन्द्रादि सभी देवता उपस्थित हुए। और प्रसन्नतापूर्वक बर देनेके लिये उत्कण्ठित हुए कहने लगे कि हे योगिन् हम सब देवता तेरे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। अतएव किसी अभीष्ट वरकी याचना करो। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि यदि आप लोगोंकी ऐसी कृपा है और वर देना चाहते हैं तो आवश्यकता पडनेपर हम शीघ्र उपस्थित होंगे यह वचन प्रदान करनेकी कृपा करो। यह सुन एकमति होकर सभी देवताओंने तथास्तु २ शद्बकी घोषणा कर वह वचन प्रदानित किया। और स्वकीय विमानारूढ हो निज २ स्थानको प्रस्थान किया। उधर कुछ काल मार्तण्ड पर्वतपर निवासकर मत्स्येन्द्रनाथजीने फिर जान्हवीके तटस्थ प्रान्तोंमें विचरना आरम्भ किया। और शनैः २ इधर उधरके कतिपय मास पर्यन्त होनवाले भ्रमणके अनन्तर आप बङ्ग देशस्थ मायागिरि नामक पर्वतपर पहुँचे। यहां भी कुछ काल व्यतीत कर फिर उडीसादेशकी ओर प्रस्थानित हुए। वहां जाकर जगन्नाथपुरीमें आपने श्री जगन्नाथजीके दर्शन करनेके अनन्तर अनेक प्रान्तोंको पारकर कुछ दिनमें गोदावरी गङ्गाके समीप वर्ती प्रदेशमें पदार्पण किया। इसी

प्रान्तके एक चन्द्रगिरि नामक नगरमें जब आप पहुँचे तब तो आप भिक्षाके बहाने किसी अन्य असाधारण कार्य सम्पादित करनेके लिये अलक्ष्य पुरुषके नामकी घोषणा करते हुए नगरमें प्रविष्ट हुए। और स्वकीय चिन्त्यकार्य साधनानुकूल गृहकी अन्वेषणा करने लगे। इतने ही में सदाचारनिष्ट वसिष्ट गोत्रका एक सुराजनामक ब्राह्मण आपके सम्मुखीन हुआ। जो आपको देखते ही आपके चरणोंमें गिरा। और साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके पश्चात् बड़ेही आदरके सहित आपको अपने गृहपर ले गया। तथा अनेक प्रकारका भोजन तैयार कराकर एक स्वच्छ थालमें परोस स्वयं कार्यान्तरके लिये बाहिर चला गया। साथ ही ब्राह्मणीको संकेत कर गया कि मैं किसी विशेष कार्य सम्पादनके अनुरोधसे बहिर जाता हूं तुम महात्माजीके सत्कारमें कुछ उठा न रखना। यह सुनकर सरस्वतीजीने शिर झुकाकर पतिकी आज्ञा स्वीकार की। और मत्स्येन्द्रनाथजी की सेवामें विशेष चित्त दिया। अर्थात् मत्स्येन्द्रनाथजीके आगे भोजनका थाल रखकर स्वयं व्यजन (पंखा) ले वायु करने लगी। जिससे अतीवानन्दके साथ भोजनकर आप अत्यन्त प्रसन्न हुए। ठीक इसी अवसरमें सरस्वतीने महात्माजीको एक अन्य दिव्य आसनपर बैठाकर कुछ फल समर्पित किये। और पंखा ले फिर वायु करनेके द्वारा उसने अपनी श्रद्धाकी पराकाष्टा दिखलाई। एवं अत्यन्त उदासीन हो नेत्रोंमें जल भरकर कुछ कहनेके लिये उत्सुक हुई परं लज्जाके कारण कुछ भी न कह सकी। उसकी यह विचलित दशा देखकर मत्स्येन्द्रनाथजी स्वयं ही पूछ उठे कि देवि कहिये अकस्मात् क्या हुआ। ऐसा कौन दुःख आ प्राप्त हुआ जिसने तुह्मारे हृदयको इतना त्रास दिया है। इस समय जो दुःख तुह्में प्राप्त हुआ है उसे अवश्य प्रकट करो मैं सत्य बोलता हूं उसका निवारण करके ही तुह्मारे गृहका अन्न सार्थक करूंगा। तब आपका तथ्य वाक्य सुनकर उसपर विश्वास रखती हुई ब्राह्मणीने कहा कि भगवन् आप समस्त वृत्तान्त जानते ही हैं तथापि मेरेसें जो पूछते हैं तो मैं कह देती हूं अन्य वस्तु तो आपकी महती कृपासे सभी पर्याप्त हैं। परन्तु कोई पुत्र ही नहीं है। जिसके विना हमारी यह सम्पत्ति किम्प्रयोजन है। अतएव इसी शोकसे ग्रस्त होनेके कारण मेरी ऐसी खिन्न दशा हो गई है। आगे आप समर्थ हैं। यदि कुछ भी दयाकी दृष्टिसे मेरी और देखेंगे तो मैं विश्वास रखती हूं और साभिमान कह डालती हूं कि मैं अवश्य अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लूंगी। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजीके हृदयमें और भी दयाका प्रवाह आरम्भ हो चला। इसी लिये आपने अपनी झोलीमें हस्त डाला। उससे एक चुटकी विभूतिकी निकाल कर सरस्वतीको प्रदानित की.

साथ ही कह सुनाया कि इसको अवश्य खा लेना इसके प्रभावसे तुम्हारे एक अद्वितीय पुत्र उत्पन्न होगा। उसके विषयमें मैं यह तो प्रतिज्ञात्मक वाक्य नहीं कह सकता कि वह तुम्हारी सम्पत्तिका उपभोग करेगा परं यह अवश्य है कि तुम्हारे गृहमें जन्म लेनेसे तुम्हारा और स्वयं उसका यश इस लोकमें ही नहीं तीनों लोकोंमें प्रस्तृत हो जायेगा। और जिस प्रकार असंख्य तारा गणके मध्यमें चन्द्रमा विराजमान है वैसे ही वह भी सर्व सिद्ध समाजमें शिरोमणि हुआ सुशोभित होगा। बल्कि इतना ही नहीं यहांतक कि अनेक देव-दानव उसकी वन्दना किया करेंगे। और हम उसको मंत्र प्रदान करेंगे. देखना कभी हमारे वचनमें अविश्वास कर बैठे। इस विभूतिको अवश्य खा लेना। हम लोग रमतेराम हैं। निःप्रयोजन किसी एक जगहपर अधिक निवास करना उचित नहीं समझते हैं। अतः जाते है बारह वर्षमें फिर यहां आयेंगे। भगवान् आदिनाथ करें तुम्हारा सदा ऐसा ही विश्वास बना रहे। इस प्रकार ब्राह्मणीको यथेष्टसन्तोषितकर मत्स्येन्द्रनाथजी फिर तीर्थ-यात्रार्थ प्रस्थान कर गये; इधर सरस्वतीने सादर ग्रहण की हुई भस्मीको एक वस्त्रमें बान्ध कर अल्मारीमें रख दिया। और वह गृहकार्यान्तरमें व्यग्र हो गई। इतने ही में एक पड़ोसिन (समीपगृहवाली स्त्री) उसके गृहपर आई। उसको देखते ही सरस्वतीके झटिति वह बात याद आगई। अतः उसने उसके समक्ष कहा कि अये वहिन आज एक बडे ही पहुँचे हुए महात्मा हमारे घरपर आयेहैं। हमने उनको श्रद्धाके साथ विविध भोजन खिलायाथा जिससे वे महात्मा अतीवानन्दित हुए। और अपने हस्तसे एक चुकटी विभूतिकी मुझे दे गये। जिसके खानेसे महा तेजस्वी लडका उत्पन्न होगा। यह सुनकर पडोसिन बोली अये वहिन मैंतो आजतक यही जानतीथी कि तू बहुत चतुर है। परन्तु आज मालूम हुआ कि तूतो प्रथमदर्जे की भोली है। भला कभी भस्मी खानेसे भी पुत्र हुआ करता है। यदि उस महात्माकी विभूतिमें पुत्र उत्पन्न करनेकी शक्ति होती तो तू प्रथम यही सोचकर देख वह अपनी उदर पूर्ति के लिये भिक्षा मांगता हुआ घर २ क्यों फिरता। किसी एक जगहपर बैठकर ही सर्व सामग्रियोंका उपभोग कर सकताथा। अतएव मुझे तो विश्वास नहीं होता है कि वह जो कुछ कह गया है कहांतक सत्य है। आगे तेरी इच्छा भस्मी खाना अथवा न खाना। यह सुन सरस्वतीने कहा कि वहिन मैं भूल नहीं कर रही हूं सच पूछिये तो मुझे तूही भ्रममें पड़ गई मालूम होती है। महात्मा-ओंका घर २ भिक्षा मांगना और फिरना केवल अपनी उदर पूर्तिके निमित्त नहीं परोपकारके लिये ही समझना चाहिये। ये लोग अपने आपमें जिस मनुष्यका विश्वास निश्चित करलेते हैं उसका असाधारण उपकार कर डालते हैं। ठीक यही वृत्तान्त हमारे विषयमें भी समझना उचित है। रहं गई विभूतिमें पुत्रोत्पत्ति करणानुकूल शक्तिकी बात, वह यदि

हमारा विश्वास न हो तो शक्ति भी अशक्तिका कार्य कर सकती है। परन्तु यह बात नहीं है हमारा तो पूर्ण विश्वास है। इसीलिये इस विभूतिकी शक्ति हमारा कार्य पूरा करेगी। क्योंकि विश्वासमें ही देव है संसारमें यह बात किसीसे छिपी नहीं है। इस प्रकार पड़ौसिनने आभ्यन्तरिक ईर्ष्यासे सरस्वतीकी जो विभूति खाने में अश्रद्धा उत्पन्न करनेका प्रयत्न कियाथा उसके वाक्य सुननेसे सरस्वतीके दृढ विश्वासमें किञ्चित् भी शिथिलता न आई। और उसने सश्रद्धा विभूतिको खाही लिया। तदन्तर कतिपय दिन व्यतीत होने पर सरस्वतीको स्वकीय हृदयस्थ गर्भका अनुभव हो आया। जिससे उसके पूर्ण विश्वास में और भी दृढता हो गई। अतएव वह प्रतिदिन मत्स्येन्द्रनाथजीके स्वरूपका ध्यान करती हुई आभ्यन्तरिक रीतिसे ईश्वरकी कृपादृष्टिके विषयमें अनेक धन्यवाद प्रकट करने लगी। एवं यहभी चिन्तन करने लगी कि कब वह दिन आयेगा जिसमें पुत्रका मुख देखनेसे हमारा यह सांसारिक भोग सफल होगा। इसी तरह अनेक प्रकारके सङ्कल्प करते कराते पुत्रोपलब्धिका समय भी निकट आ पहुँचा। दोनों पतिपत्नियोंको अपने प्रत्येक कार्यमें सफलता प्राप्त होने लगी। तथा उनको अपने विषयमें समस्त प्रकारके शुभलक्षण दिखाईदेने लगे। ज्यों हीं प्रसवकाल अतिसमीप आगया त्योंही सुराजने अपने अपर ग्रामनिष्ठ सम्बन्धियोंके यहां सूचना देदी। यह खबर होतेही बडे साहसके साथ अनेक नरनारियोंने उपस्थित हो सुराजके घरकी शोभा बढा दी। ठीक ऐसे ही अवसरपर दो ही दिनके बाद लड़का उत्पन्न हुआ मानों अर्ध रात्रीके समय अत्यन्त अन्धकारमें चन्द्रमाका प्रादुर्भाव हो गयाहो। जिसके असह्य तेजको देखकर एकबार तो सरस्वती तथा धाय आदि अन्य उपस्थित स्त्रियोंके नेत्रबन्ध हो गये। यह देख परमहर्षके साथ सम्बन्धी घरोंमें सूचना देदी गई। बस क्याथा सूचना मिलते ही अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे। और मङ्गल गायन होने लगे। अनेक प्रकारसे दान पुण्य भी होने लगे। लक्ष्मीकी अधिकता होनेके कारण सुराज ब्राह्मण सहर्ष दान करता हुआ अपने मनमें इतना आनन्द-हो रहाथा मानों आज उसे त्रिलोकीका राज्य मिल गया है। अस्तु। इसी प्रकारके आनन्दात्मक समुद्रमें निमग्न हुए उसके ५ पांच वर्ष व्यतीत हो चले। तबतो उसने विचार किया कि हम लोग ब्राह्मण हैं हमारा मुख्य कार्य प्रथम विद्यामें कुशलता प्राप्त करना है। अतएव इस चिरआचरीत्यनुसार ऐसी अवस्थासे ही लडकेको विद्याभ्यासके लिये नियुक्त करदेना सर्वथा उचित होगा। ऐसा परामर्श करते २ कतिपय मास बीत गये पर अभीतक पुत्रको किसी विद्वान्के अर्पण नहीं किया। कारण कि उस समय उसके चित्तमें दो प्रकारकी खींचातानी हो रहीथी। एक तो यह थी कि सुराज स्वयं महाविद्वान् और सदाचार निष्ठ वास्तविक ब्राह्मण था। अतः अपने ब्राह्मणत्वकी रक्षार्थ पुत्रको किसी

पण्डितके समर्पण करना चाहताथा। और पुत्रको भी अपने तुल्य सदाचारी बनाना चाहताथा द्वितीय यहथी कि प्रत्येक चेष्टाओंसे पुत्र अत्यन्त सुयोग्य मालूम होताथा इसी हेतुसे सुराजका लड़केके ऊपर अपरिमित मोह होनेसे अपने नेत्रोंके आगेसे उसको दूर भी करना नहीं चाहताथा। अन्ततः उसने अगले दिन में अवश्य लड़केको विद्याध्ययनके लिये किसी विद्वान्के अर्पण कर दूंगा ऐसा दृढ निश्चय करके इस विषयमें अपनी पत्नीका भी मत लेना उचित समझा। आजका दिन व्यतीत हुआ। सायंकालका आगमन होनेपर भोजनादिसे निवृत्त हो जब ब्राह्मण ब्राह्मणी एक स्थाननिष्ट हुए तब अनुकूल अवसर जानकर सुराजने उक्त प्रस्ताव किया। जिसके सुनतेही ब्राह्मणी कहने लगी कि नहीं में अभी बालकको कहीं नहीं भेजूंगी, अधिकतो क्या में एकक्षण भी अपने नेत्रोंसे दूर करना नहीं चाहती हूं। फिर यह भी बात है कि अभी तो यह बालक ही है न्यूनसे न्यून बारह वर्षका तो होने दीजिये। अभी विद्या पढनेके लिये बहुत समय अवशेष है। इसके उत्तरमें सुराजने कहा कि विद्याभ्यासके लिये पांच वर्षकी अवस्थासे ही बालकको प्रयत्न लीन करना चाहिये। यह सब ऋषिमुनियोंने स्वीकार किया है। फिर तू क्यों हठ करती है। इत्यादि प्रकारसे ब्राह्मणीको बहुत ही समझाया। परन्तु पुत्रकी भूखी सरस्वतीका पुत्रमें इतना स्नेह था उससे उसका एकक्षण मात्रका वियोग भी न सहा जाताथा। यह देख आखिर ब्राह्मण भी निष्फल प्रयत्न होकर चुप बैठ गया। इसी प्रकार आठ वर्ष व्यतीत होगये। बालक यद्यपि यथा समय खेलके लिये सहयोगियोंके साथ क्रीडास्थलमें भी अवतरित होताथा तथापि अधिक समय गौओंकी सेवासे ही सम्बन्ध रखताथा। ब्राह्मणी तो चाहतीथी कि यह घरसे कभी कहीं बहिर न जाय परं वह सहर्ष गौओंकी सेवार्थ अपने भृत्यके साथ २ क्षेत्रमें भी चला जाताथा। ठीक इसी प्रकार करते कराते जब पूरे एकादश वर्ष चले गये तब ब्राह्मणने फिर प्रस्ताव किया। और कहा कि ब्राह्मणि कुछ विचार कीजिये क्या तेरा हठ वस्तुतः ठीक है यह कहनेके लिये कोई सहमत होगा। कभी नहीं। तू चाहतीथी कि लड़का मेरी दृष्टिके अभिमुख ही रहै परं कहिये क्या यह बात रही। यद्यपि यह गमनानुकूल क्रियाशून्य रहा तबतक तो अवश्य तेरी इच्छा पूर्ण होती रही। तथापि अब कहिये क्या बालकको प्रतिक्षण दृष्टिगोचर ही रखती है। वह तो गोसेवासक्त हुआ जङ्गलमें भी जानेलगा है। अतएव अब तो उसे विद्याभ्यासके लिये नियुक्त करदेना ही उचित है। और एक विशेष वार्ता यह है सायद तेरे ध्यानमें है वा नहीं जिस पूज्यपाद योगेन्द्रजीकी महती कृपासे हमने यह पुत्र रत्न प्राप्त किया है उसका कहनाथा कि मैं बारह वर्षमें वापिस लौटूंगा। अतएव उस महात्माके आगमनसे पहले अब इस बालकको अवश्य किसी पाठशालामें प्रविष्ट कर देना चाहिये। अन्यथा महात्माजी

आयेंगे और बालकको विद्याविहीन देखेंगे तो अवश्य कोपान्वित होंगे। उनका कुपित होना हमारे लिये अमङ्गलका देनेवाला है। यह सुन ब्राह्मणीने लडकेको पाठशालामें भेजदेनेकी सम्मति देदी। अबतो सुराज सहर्ष पुत्रको लेकर पाठशालामें पहुँचा। तथा एक सुयोग्य पण्डितके समीप जाकर कहने लगा कि अये विद्वन् हमारे पुत्रके ऊपर भी कृपा कीजिये। और इसे विद्यामें निपुण कर दीजिये। इसके प्रत्युपकारार्थ हम आपको उचित पुरस्कारसे प्रसन्न कर देंगे। पण्डितजीने कहा कि तथास्तु आप सानन्द अपने घर जाइये हम जहांतक होगा आपके पुत्रको विद्वान् बनानेके लिये कुछ उठा न रक्खेंगे। यह सुन अत्यन्त प्रसन्न मुख हुआ सुराज अपने घर आया। इसी प्रकार एक वर्ष और भी व्यतीत हो गया। ठीक इन्हीं दिनों उधरसे अकस्मात् निर्दिष्ट समयावधिपर महात्माजी भी आ निकले। उन्हें देखते ही ब्राह्मण ब्राह्मणी दोनों तथा अन्य प्राश्रृणिक सब लोग आपके चरणोंमें गिर गये। और उन्होंने आपको अत्यन्त आदरके सहित एक दिव्य आसनपर बैठाया। नाना प्रकारका भोजन भी कराया। बडी प्रसन्नताके साथ भोजन करनेके अनन्तर श्री मत्स्येन्द्रनाथजीने सुराजसे कहा कि हमने जो पुत्र दियाथा वह कहां है। उसने उत्तर दिया कि भगवन् विद्याध्ययनके लिये विद्यालयमें जाता है। आज भी वहीं गया है सायंकाल होने पर आयेगा। यदि आज्ञा हो तो अभी बुला भेजूं। आपने कहा कि नहीं २ ऐसी कोई विशेष आवश्कता नहीं है सायंकाल ही सही जब आयेगा तब ही हमनें जो कुछ उसको कहना है सो कहलेंगे। ठीक इसी समय जब कि सुराजके घर यह वार्ता हो रहीथी तब किसी ने विद्यालयमें जाकर लडकेसे कहा कि वे ही महात्मा बारह वर्षके अनन्तर आज फिर तुह्मारे घर पर पधारे हैं। यह सुन तत्काल ही लडकेने विनम्र प्रार्थनापूर्वक शिक्षकसे स्वकीय घर जानेकी आज्ञा ली। तथा अनुमति मिलनेपर वह शीघ्र ही उपस्थित हो योगेन्द्रजीके चरणोंमे गिरा। उसकी अतीव शील स्वभावको सूचित करनेवाली नम्रता युक्त नमस्कारको देखकर मत्स्येन्द्रनाथजीकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। अतएव उसको गोदमें बैठाकर आप उससे कुशल वार्ता पूछने लगे। लड़केने सुकोमल वाणीद्वारा उत्तर दिया कि भगवन् मैं इस समय विद्याभ्यास कर रहाहूं आपसे अविदित नहीं स्वयं जानतेही हैं कि विद्या दुष्पार है। इतना होनेपर भी आपका जब पूर्ण अनुग्रह है तो मैं विश्वास करता हूं विद्यामें कुछ न कुछ सफलता अवश्य प्राप्त कर लूंगा। यही नहीं मेरे लिये कुछ दिनमें दुष्पार भी विद्या सुपार हो जायेगी। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजी और भी आनन्दित हुए। और आन्तर्धानिक रीतिसे उसको मन्त्र प्रदान कर आपने अपना पूर्वोक्त वचन पूरा किया। एवं यह कार्य सम्पादित कर फिर तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान किया। इधर प्रातःकाल होते ही स्नान भोजनादि से निवृत्त होकर लडका पाठशाला में पहुँचा और विनम्रभावसे बद्धाञ्जलि होकर शिक्षकसे

कहनेलगा कि आज मुझे बहुत पाठ पढाओ । पण्डितजीने मत्स्येन्द्रनाथजी के प्रदत्तमन्त्रकी कुछ भी खबर नहीं थी। अतएव उसने कहा कि नहीं थोडा २ पाठ पढो जब कण्ठस्थ न होतो अधिक पाठ लेनेकी कौनसी जरूरतहै । इसके उत्तर में लडकेने कहा कि नहीं २ आप इसबातका कोई सन्देह न करें। आप जितना जो कुछ मुझे पढायें उतनाहीं पश्चात् सुनतेजायें इसप्रतिज्ञा के अनुकूलही यदि मैं आपको करदिखलाऊं तो कल पाठदेना अन्यथा नहीं । यहसुनकर पण्डितजी कुछ विस्मित हुए । और स्वीय हृदयागार में संकल्प विकल्प उठा रहेथे कि क्या वस्तुतः लडका सत्य बोलता है वा नहीं । यदि सत्य है तो यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि यह कोई साधारण पुरुष है । प्रत्युत कोई विचित्र शक्ति शाली देवही किसी कारणसे प्रकट हुआ है । परन्तु अन्त में विचारने लगे कि जो होगा सो अव प्रकट हो जायेगा प्रथम इसको पढा करतो देखलें । अतएव जव पण्डितजी लडकेको अधिकसे अधिकपाठ पढाचुके तब कहनेलगे कि अबतो बहुतपाठ हो गया है यदि आगे पढना है तो पहले इसे सुनादो। मत्स्येन्द्रनाथजी द्वारा प्रदत्त मन्त्रके प्रभावसे लडकेका हृदय प्रथमही विद्याका भण्डार हो चुकाथा। अतः वह शिक्षक के पढाये पाठको प्रवाहसे सुनाने-लगा । जिसे सुनकर पण्डितजी को आत्यन्तिक आश्चर्य के समुद्रमें निमग्न होनापडा । यही नहीं उसने यहांतक किया कि बडी शीघ्रताके साथ सुराजजी के घरपहुँचकर सहर्ष उसके पुत्रकी श्लाघा करनेलगा । अस्तु) समग्रमनुष्यों की ओरसे श्रद्धेयदृष्टिसे देखाजाने-वाला वह लडका कुछहीदिनमें शिक्षकविद्याओंका पारदर्शी हो गया । यहदेख सुराजने सोचा कि लडका पूरा विद्वान् हो गया है आगे और पढने की तो आवश्यकताही नहीं रही। एवं जो शास्त्राभिहित ब्रह्मचर्यावस्था है वह भी बीतीजारही है। अतएव अबतो इसका बिवाहकरने के लिये किसी सुयोग्य कन्या की गवेषणा करनीचाहिये । ठीक इसी विचार में लीन हुए उसके कतिपय दिन व्यतीतहोगये । उधर लडकेकी बाल्यावस्थासेही गोसेवा में अधिक प्रीतिथी। इसी लिये वह एक दिन अपने भृत्यकेसाथ ही गौओं और उनके छोटे २ बत्सोंसे अनेक प्रैतिक व्यवहार करता हुआ जङ्गल में चलागया । और गौओंका नोकर तो रक्षक है ही यह विचार कर एक वृक्षके नीचे सो गया । वह कुछही देर सोने पायाथा इतने ही में उस वृक्षके छिद्र में रहने वाले सर्पने आकर उसको दंशलिया । तदनन्तर अधिक देर सूता देखकर उसको जगाने के लिये गोपाल वहां आया । आतेही देखता क्या है लडका नहीं केवल लड़केका शरीर ही वहां पडा है । और उसकी ऐसी दशा. जिसका आवागमन पृथिवीपर दिखाई दे रहा है. इस सर्पके ही कारणसे हुई है । अन्ततः रोता पीटता और अत्यन्त निराश हुआ वह तो गौओंको लेकर ग्रामकी ओर चला गया । इधरसे ठीक अवसर पर भगवान् आदिनाथ और पार्वतीजी दोनों वहां

आ निकले। एवं ज्योंही उस वृक्षके समीप पहुँचे त्योंही वह मृतक लडका उनकी दृष्टि गोचर हुआ। देखते ही पार्वतीजी ने कहा कि महाराज कैसा सुन्दर लड़का मरा पडा है। यदि आप इसको सजीव करदेंगे तो इसके माता पिता आपको असंख्य धन्यवाद देंगे। श्रीमहादेवजी पहले ही यह चाहते थे। और इसी कार्यके लिये इधर आयेथे। अतएव आपने खैर मुझे इसके मातापितातो धन्यवाद देंगे वा न देंगे पर इसको तो जिलाही देता हूं यह कहकर देवीका प्रस्ताव स्वीकृत करते हुए उसे सन्तोषित किया। और अपने तृतीय नेत्रके अवलोकन द्वारा प्रथम मृतक लडके के शरीर को भस्मप्राय बनाकर मन्त्र प्रभावसे फिर सजीव कर दिया। तत्काल ही वह सचेत हो उठा। और उसने अपने सम्मुख खड़ी दो अलौकिक व्यक्तियों को देखा। देखते ही अत्यन्त कृतज्ञताके साथ वह उनके चरणों में गिरा। इससे प्रसन्न हो श्री महादेवजी ने उसको एक अमूल्य मन्त्र दिया। जिसके प्रभावसे उसका अपने ग्राम और मातापिता की ओर कुछ भी स्नेह न रहा। अतएव वह जब श्री महादेवजी कैलास को रवाने हो गये तब स्वयं भी ग्रामकी तरफ न जा कर किसी वनस्थ ऐकान्तिक स्थानकी अन्वेषणा करने लगा। इसी प्रकार भ्रमण करते २ जब कतिपय दिवस व्यतीत हो गये तब एकदिन उसे श्री मत्स्येन्द्रनाथजी भी उसी वनमें मिल गये। लड़के ने महात्माजी को देखते ही उनके चरणों का आश्रय लिया। तथा कहा कि भगवन् मुझे भी आप अपना शिष्य बनालें। क्यों कि अधिक विलम्ब होनेसे अब मैं अपना मङ्गल नहीं देखता हूं। मत्स्येन्द्रनाथजी यह पहलेसे ही चाहते थे और इसी प्रतीक्षा में फिरते थे। अतएव उसकी अभ्यर्थना सुन आप अतीवानन्दित हुए। और समस्त वृत्तान्त जानते हुए भी उसे भूलाकर उसका परिचय पूछने लगे। उसने आदिसे अन्ततक जो उसके साथ बीत चुका था समस्त समाचार कह सुनाया। तदनु मत्स्येन्द्रनाथजीने पूछा कि क्या तू मुझे भी पहचानता है। उसने कुछ मुस्कराते हुए कहा कि भगवन् यद्यपि अबसे पहले मैं कुछ भ्रममें पड़ा हुआ था तथापि आपके इस प्रश्नसे मेरी वह दशा न रही। अबतो मैं आपको केवल पहचान ही नहींगया अच्छी तरह यह समझ गया हूं कि संसारमें मेरा सर्वस्व आपही हैं। उसके इस कथनसे मत्स्येन्द्रनाथजीका हृदय और भी प्रफुल्लित हो गया। और उन्होंने उसको अपना अनुयायी बनाने का निश्चय कर लिया। एवं कुछ ही दिनके बाद उन्होंने जो बप गुरुजीसे प्राप्त किया था सभी उसको दे दिया। और उसको स्व समीपस्थ गुरूपलब्ध समस्त योग विद्या, सावर विद्या, तथा आत्मिक विद्याओं में भी निपुण कर दिया। एवं कहा कि तुह्मारी गो सेवामें अधिक प्रीति रही है अतः हम तुह्में आजसे

गोरक्षनाथ* नामसे सन्कृत करते हैं. संसार में तुह्मारी इसी नामसे प्रसिद्धि होगी, । यह सुन अत्यन्त श्रद्धा के साथ शिर झुकाकर गोरक्षनाथजी ने गुरुजी के उपकार पर कृतज्ञता प्रकट करी ।

इति श्री गोरक्षनाथोत्पत्ति वर्णन नामक ३ अध्याय ।

अनुवादक—चंद्रनाथ योगी

---
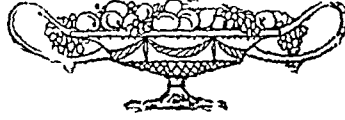
* हमारे कितनेक भोले भाई गोरक्षनाथजी की उत्पत्ति नहीं मानते हैं और इसबात की आपत्ति करते हैं कि वे योनि में आये तो साधारण मनुष्योंसे उनका भेद ही क्या रहा । क्यों कि हमतो उनको अजन्मा ईश्वर मानते हैं । परं ध्यान रखना चाहिये ऐसी भी उत्पत्ति मानने में कोई हानि नहीं हैं । कारण कि मरणेके वक्त जिस प्रकार योगी परतन्त्रतासे नहीं अपनी ही इच्छासे शरीर का त्याग करते है ठीक इसी प्रकार उत्पत्तिके वक्त भी स्त्री पुरुषके अंशसे तैयार हुए पुतले में प्रविष्ट हो लोगोंको गर्भसे उत्पन्न हुआ जितलाते हैं । इसी रीतिसे रामकृष्णादि के तुल्य वे कहीं किसीके घर प्रकट हुए तो कोई हानि नहीं । और अजन्मा एवं अमर नामभी उसीका है जो परतन्त्रतासे अनेक कष्टके साथ जन्मता मरता नहीं किन्तु स्वतन्त्रतासे कष्ट रहित हुआ जन्म मरण धारण करता है ।

॥ अध्याय ४ ॥

पाठक ध्यान रखिये श्रीगोरक्षनाथजीको सजीव करते समय श्रीमहादेवजीने जो अपना गूढ़ मंत्र प्रदान कियाथा उससे यद्यपि आपका हृदय इतना महत्त्व प्राप्त कर चुकाथा कि आपने तप आदिका अवलम्बन किये विनाही योगमें पूर्ण कुशलता प्राप्त करलीथी। तथापि प्रथा प्रचलित करनेके लिये और तपश्चर्या आवश्यकीया है यह वार्ता सूचित करनेके लिये कुछ काल पर्यन्त तप करना ही उचित समझा। तथा गुरुजीके सम्मुख इस बातको प्रकट भी करदिया। अतएव इस विषयमें प्रसन्नता सूचित करते हुए श्री मत्स्येन्द्रनाथजी कुछ दिन गोदावरीके तटस्थ उस स्थानमें निवास करके सशिष्य बदरिकाश्रममें पहुँचे। वहां एक रमणीय स्थल देख कर आपने अपना आसन स्थिर किया। और आन्तरिक भावसे श्री महादेवजीकी स्तुति करी। जिसने श्री महादेवजीका ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया। अतएव शिष्यकी अभ्यर्थनापर पूरा ध्यान देते हुए श्री महादेवजी अविलम्बसे ही बदरिकाश्रममें आये। इधर मत्स्येन्द्रनाथजीने ज्योंही गुरुजीको आते हुए देखा त्योंही आसनसे उठ दोचार पद आगे चलकर स्वागतिक वाक्योंका प्रयोग करते हुए उनको साष्टाङ्ग प्रणाम की। ठीक इसी प्रकार गुरुजीका अनुकरण करते हुए गोरक्षनाथजीने भी श्री महादेवजीका सत्कार किया। इसतरह पारस्परिक अभिवादन प्रत्यभिवादनके अनन्तर जब तीनों महानुभाव यथायोग्य स्थलपर बैठ गये तब श्री महादेवजीने कहा कि मत्स्येन्द्रनाथ किस कार्य विशेषके लिये हमारा स्मरण किया गया है। उत्तरार्थ उन्होंने कहा कि यह हमारा शिष्य गोरक्षनाथ कुछ दिन पर्यन्त तप करनेमें नियुक्त होना चाहता है। अतएव कठिन तपश्चर्या कालमें कुछ समयके लिये किसी दूसरे निरीक्षक पुरुषकी आवश्यकता है। मैं यहां निवास कर इस कार्यमें सहायता नहीं देसकता हूं। कारणकि मैंने नीचेके प्रान्तोंमें जाकर किसी विशेष कार्यका आरम्भ करना है। यह सुन दयानिधि भगवान् महादेवजीने कहा कि ठीक है तुम इसको तप करनेमें प्रोत्साहित करो। इसके शरीर वा तप विधिमें कोई हानि नहीं आयेगी। हम स्वयं इसकी रक्षा करनेके लिये उत्कण्ठित हैं। क्या तुम नहीं जानते मनुष्यको ऐकान्तिक स्थानमें बैठकर स्वकीय चित्तको स्वाधीन रखते हुए मेरी प्रार्थना करना

ही मुश्किल है। परन्तु वैसे पुरुषकी सर्व प्रकारसे रक्षा करना मेरे लिये कोई कठिन बात नहीं है। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। और गोरक्षनाथजीकी ओर इसारा करते हुए कहने लगे कि धन्य धन्य तुह्मारे भाग्य जोकि त्रिलोकीके नाथ स्वयं तुह्मारी रक्षाके लिये प्रथमतः ही साकांक्ष हैं। तदनु शिष्य प्रशिष्यसे सत्कृत हो श्री महादेवजीतो कैलासके लिये प्रस्थानित हो गये। इधर मत्स्येन्द्रनाथजीने जिसमें पैरका अङ्गुष्ठा प्रविष्ट हो सकता हो ऐसी एक लोहेकी खोली तैयार कराई। और एक दिन अच्छा मुहूर्त देख-कर उसे गोरक्षनाथजीके अङ्गुष्ठेमें पहनाया। एवं ऊर्ध्वबाहु तथा नासिकाग्रदृष्टि कराकर बारह वर्षके लिये शिष्यको तप करने में नियुक्त किया। और त्रिलोकीके नाथ इसके रक्षक हैं ही यह स्मरण कर गोरक्षनाथजीसे कहा कि बेटा हमतो नीचे देशान्तरकी भूमिपर भ्रमण करनेके लिये जाते हैं भगवान् अलक्ष्य पुरुष करे तुह्मारा कल्याण हो। परन्तु मैं प्रस्थानके समय एक वार्ता तुह्में बतला देता हूं केवल दत्त चित्त होकर उसे सुन लेने मात्रसे ही कार्य सिद्ध नहीं होगा प्रत्युत उसका प्रतिक्षण स्मरण रखना होगा। और वह यह है कि कतिपय दिनोंमे तुह्मारा तप खण्डित करनेके लिये स्वर्गसे बडी २ सुन्दर अप्सरायें तथा देवता आयेंगे तथा अनेक प्रकारके लोभ नृत्यादि दिखलाकर तुह्मारा चित्त मोहेंगे। एवं ब्रह्मा विष्णु महेशजीका नकली रूप धारण कर झूठा वरदान देनेके लिये तैयार होजायेंगे। तथा कहेंगे कि हे तपस्विन् अब तुम तप करना छोडदो क्यों कि तुह्मारा तप पूर्ण होगया है। इसीलिये हम सब तुह्मारे ऊपर प्रसन्न हैं तुम वर मांगो। परन्तु तुम उनके ऐसे प्रलोभनमें आना तो दूर रहा उनकी ओर दृष्टितक नहीं करना। यह देख उन्हें स्वयं झखमारकर वापिस लौटना पडेगा। गुरुजी की यह अन्तिम आज्ञा शिर धरते हुए गोरक्षनाथजीने अतीव कोमल वाणीसे नम्रतापूर्वक उनको प्रस्थान करनेके लिये कहा। तदनु मत्स्येन्द्रनाथजीने वहांसे प्रस्थान किया। और चलते समय एकवार आप फिर कहउठे कि देखना देवताओंके छल बड़ेही दुर्विज्ञेय होते हैं। मैं बारह वर्षकी पूर्तिके समय जब वापिस लौटूंगा तब ही तुमको बैठा दूगा। इस अवधिके पूर्व बैठो तो तुह्मे मेरी ही आन है यह कहकर मत्स्येन्द्रनाथजी तो गमन करगये। गोरक्षनाथजी वायुके आहारसे ही शरीरकी वृत्तिका सञ्चालन करनेके लिये अभ्यास करने लगे। कुछ ही दिनमें आपका यह अभ्यास परिपक्व होगया। जिससे शरीर शुष्क हो लकड़ी जैसा बन गया। त्वचा अस्थियोंमे प्रवेशकर ऐसी प्रतीत होतीथी मानों है ही नहीं। शरीरके चौतरफ कुशादितृण इस प्रकार ऊग गयाथा जिससे तपस्वीजीका शरीर आच्छादित हो गया। केवल मन्दस्पन्द कमलकी तरह स्फुरण करते हुए तेजस्वी नेत्र ही तृण झरोखेसे चमकते दिखाई देतेथे। आपके इस कठिन तप प्रतापसे वहां वर्षा अधिक होतीथी। जिससे जगह २ पर जलके

झरने वह रहेथे। और फल फूलोंसे युक्त वृक्षोंके ऊपर बैठकर फल खाते हुए नाना प्रकारके पक्षी नाना ही प्रकारके मधुर २ शब्द कर रहेथे. अनेक प्रकारके पुष्पोंकी सुगन्धसे सुगन्धित हुआ पर्वत ऐसा शोभायमान हो गयाथा मानों दूसरा कैलास ही तैयार होगया हो! ठीक ऐसे ही अवसरमें हिमालय पर्वतकी सैर करनेके अभिप्रायसे विमानारूढ हुए वसुजी स्वर्गसे आ रहेथे। उन्होंने ज्योंही इस पर्वतके ऊपर पदार्पण किया त्योंही इसकी औद्दामनिक सुगन्ध वसुजी के विमान तक पहुँची। यह देखते ही वसुजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। और आभ्यन्तरिक विचारसे कहने लगे कि क्या कारण है यह पर्वत जितना सुगन्धयुक्त है उतना अन्य कोई नहीं जान पड़ता है। अच्छा नीचे उतर कर देखना चाहिये। अतः जब वसुजी नीचे आये और विमानसे उतर इधर उधर भ्रमण करने लगे तबतो पर्वतकी शोभाने वसुजीका चित्त इस प्रकार मस्त बना दिया कि कुछ क्षण तो उनको अपने विमानका भी स्मरण न रहा। अनन्तर जब अपने आपमें आये तो अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करने लगे। तथा कहने लगे कि हमने अब जैसी इस पर्वतकी शोभा कभी पहले नहीं देखीथी। क्या ही आश्चर्य है बिना ही वसन्त ऋतु हुए यहां के वृक्षोंने वसन्त ऋतुको बुला भेजा है। परन्तु मालूम होता है यह व्यतीकर स्वतः नहीं अवश्य यहां किसी जगहपर कोई महा पुरुष विराजमान होगा। जिसके तप और भाग्यने इस समय वसन्त ऋतुका आकर्षण कर लिया है जिसके द्वारा पशुपक्षी और वृक्ष स्वीय २ यौवनकी सूचना दे रहे हैं। अस्तु, उस समय वसुजीने वनकी शोभा देखकर इन्द्रपुरीके नन्दन वनसे भी अधिक आनन्द प्राप्त किया। उधरसे ठीक इसी अवसर पर श्री महादेवजी भी अकस्मात् यहीं आ निकले। जिन्हें देखते ही वसुजीने यथा योग्य प्रणाम किया। इसका उत्तर देते हुए श्री महादेवजीने कहा कि वसुजी चलो तुमको एक तपस्वी के दर्शन करायेंगे। वसुजीने कहा चलिये भगवन् आपकी कृपासे मुझे भी आज उस महानुभावका दर्शन हो जायेगा। तदनु दोनों महानुभाव जब गोरक्षनाथजी के समीप गये तब समस्त शरीरका भार पैरके एक अङ्गुष्ठपर धारण किये हुए तथा रुधिर शुष्क हो जाने के कारण पिञ्जर हुए ऊर्ध्ववाहु शरीर वाले एक तपस्वी उनके दृष्टिगोचर हुए। जिन्हें देखकर उनकी कठिनसे कठिन अवस्थाका मर्म समझते हुए वसुजीका हृदय दयासे परिपूर्ण हो आया। अतएव उसने श्रीमहादेवजीसे कहा कि भगवन् यह तपस्वी अत्यन्त घोर तप कर रहा है ऐसा तप करता हुआ कोई आज पर्यन्त हमारे देखनेमें नहीं आया है। इसके माता पिता और गुरुजी को धन्यवाद है जिन्होंने ऐसे सुपात्र पुरुषको पैदा किया और तपकरने में इतना दृढ विश्वासित किया है। अब इसका तप पूर्ण हो गया है अतः बैठा देना चाहिये। श्री महादेवजीने कहा

कि इसने बारह वर्षकी अवधि रखकर तपकरना आरम्भ कियाहै इसलिये यह उसी अवधिपर बैठाया जायेगा। इसके उत्तरमें वसुजी और क्या कहते,अतः तदनन्तर श्री महादेवजी के कथन पर अच्छा आपकी इच्छा यही कहना पडा। तदनन्तर श्री महादेवजी तो कैलासको चले गये। और वसुजी इन्द्रकी सभामें पहुँचे। वहां जाकर उन्होंने गोरक्षनाथजी के तपकी प्रशंसा की। तत्काल ही इन्द्रके भी गोरक्षनाथजी के तप स्थान देखनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। तथा विमान तैयार कर लेनेकी आज्ञा देते हुए उसने वसुजीसे कहा चलो ऐसे महात्मा का हमको भी दर्शन करालाओ। वसुजी फिर वापिस लौटने को तैयार होगये। और विमानारूढ हुए दोनों महानुभाव कुछ देरमें धटनास्थल में आये। गोरक्षनाथजी के तप काठिन्यको देख कर आभ्यन्तरिक रीतिसे विस्मित हुआ इन्द्र, यह तो घोर तपमें प्रवृत्त है ऐसा न हो कभी मेरा राज्य प्राप्त करना ही इसका उद्देश हो। यह विचार कर अत्यन्त शोकान्वित हुआ। तथा अनेक भावोंमें परिणत हुआ वापिस ही लौट गया। राजधानीमें पहुँच कर उसने एक महती सभा की। जिसमें सभी श्रेणिके देवता विराजमान थे। उन सबके समक्ष इन्द्रने प्रस्ताव किया तथा आज्ञा दी कि जिस किसीउपाय से गोरक्षनाथका तप खण्डित करना चाहिये। अन्यथा बहुत सम्भव है वह मेरा पद स्वायत्त कर लेगा। उसके कर्मचारियोंने उसकी इस आज्ञाका सत्कार करना ही उचित समझा। अतएव उन्होंने उस समय इन्द्रजी की आज्ञा स्वीकृत कर अनन्तर अनेक प्रकारके भोजन तथा गान्धिक द्रव्योंके सहित बडी २ मनोहारिणी रूपवती अप्सरायें एवं अनेक रूपान्तर धारण क्रियामें चतुर देवता गोरक्षनाथजी के तपस्थान में भेजे। यह देख किसी देवताने इन्द्रको इस बातसे सचेत किया कि गोरक्षनाथजी के रक्षणकी जुम्मेदारी श्री महादेवजी ने ग्रहण की है। अतएव उनकी प्रक्रिया खण्डन के द्वारा ऐसा न हो कभी और ही अनिष्ट उत्पन्न हो जाय। उसने इस चेतावनी पर उपेक्षा प्रकट कर, नहीं यह कार्य अान्तर्धानिक रीतिसे किया जायेगा यह कहते हुए उनको जानेकी आज्ञा दे ही डाली। वे छली लोग गोरक्षनाथजी के तपस्थान में आये। यद्यपि उनकी यह कार्यावली श्री महादेवजीसे भी छिपी न रही थी तथापि आपने, हम गोरक्षनाथका कुछ अनिष्ट तो नहीं होने देंगे परं देखें इसमें दृढता कितनी और मत्स्येन्द्रनाथका अन्तिम वचन याद है कि नहीं, यह सोचकर उनको अपने चरित्र करनेका अवसर दे दिया। अस्तु) उन देवताओं ने जब गोरक्षनाथजी के विस्मापक शरीर की दशा देखी तब तो उनके रोम खडे हो गये। तथा उनके हृदयात्मक सागर में करुणात्मक तरङ्गायें झकोले मारने लगी। साथ ही अपूर्व तपस्वी निश्चित कर उनके हृदय में भय भी उत्पन्न होता था। इसी हेतुसे उन्होंने गोरक्षनाथजीके विषय में किसी भी प्रकारका छल कपट न करके उनको निर्विघ्न रहने देने के लिये इन्द्रको सूचित

करना पड़ा। परन्तु वे विचारे क्या करते और कब तक ऐसा कर सकते थे आखिर तो इन्द्रके नौकर ही थे। यही कारण हुआ उसकी सदण्ड आज्ञा सुनकर उनको अपना कृत्य करना ही पड़ा। अर्थात् उन्होंने प्रथम तो मधुरसे मधुर वस्तुसेवन के लिये गोरक्षनाथजी को ।-त किया! बल्कि यहां तक कि उनके मुखमें मिठाई लगाकर आस्वादन लेने के भ्रमसे व्यर्थ ही कष्ट दिया। पर जब इस कृत्यसे उनको कुछ भी सफलता प्राप्त न हुई अर्थात् तपस्वीजी ने खाना तो दूर रहा उनकी ओर दृष्टितक भी न करी तब तो फिर महात्माजीके अति समीप आकर अप्सरायें अनेक प्रकारसे नृत्य करने लगीं। और शृङ्गार विषय के विविध स्वरोंसे राग गाने लगीं। पर श्री महादेवजी के प्रशिष्यने अपना आसन दृढ रखते हुए उनकी ओर अपने चित्तको कभी न जाने दिया। तथा गुरुजी के वचनका स्मरण करते हुए उसका प्राण जाने तक पालन करनेका निश्चय करलिया। अन्ततः वही हुआ जो श्री मत्स्येन्द्रनाथजी ने प्रथमतः ही कह डाला था। अर्थात् अप्सरायें कूद २ कर अत्यन्त श्रमित हो गईं। अतएव वापिस लौट कर इन्द्रपुरी को चली गईं। वहां जानेपर इन्द्रसे प्रार्थनाकी कि भगवन् वह तपस्वी कोई साधारण पुरुष नहीं है। उसने हमारा सब प्रयत्न विफल कर डाला। यह सुन कुछ कुपित और निराश हुआ इन्द्र उन्हीं छली देवताओं के सहित गोरक्षनाथजी के समीप आया। एवं ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों देवोंका नकली रूप धारण कर कहने लगा कि हे योगिन् आसन खोलकर बैठजाओ; तुम्हारा तप समाप्त हो गया है। हम तीनों देव प्रसन्न होकर तुम्हें वर देनेके निमित्तसे यहां आये हैं। अतः अब हमारे से कुछ वर मांगो। परन्तु तपस्वीजी के तो गुरुजीका वाक्य हृदयमें समा गया था। एवं उनका दृढ निश्चय था कि गुरुजीके आये बिना ब्रह्मादि देवता छै मासतकभी मेरेसे बैठनेका अनुरोध करें तो भी नहीं बैठूंगा। यही कारण हुआ इन्द्रका भी प्रयत्न निष्फल रहा। जिससे इन्द्रको और भी कुछ भय हुआ। और वह अपनी राजधानीको लौट गया। वहां जानेपर भी प्रतिदिन इसी वार्ताका ध्यान रखताथा कि अवश्य ऐसा अवसर उपस्थित होनेवाला जान पड़ता है जिसमें सायद ही मेरा पद तादवस्थ्य रहै। यद्यपि इन्द्रकी दृष्टिमें उसका पद उसे बहुत बडा और अच्छा मालूम होताथा परन्तु गोरक्षनाथजी की दृष्टिमें वह पद लेशमात्र भी सुख देने वाला नहीं दीख पडताथा। अस्तु कतिपयदिनोंमे जब तपश्चर्यावस्था की समाप्तिका दिन समीप आ गया तब श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी भी वहां आ पहुँचे। और अपने परमप्रिय सुपात्र शिष्यको उसी तरह खडा हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। कुछ ही क्षणोंके अनन्तर उधरसे श्री महादेवजी भी वहीं आगये। दोनों की पारस्परिक आदेश २ आत्मक प्रणामके अनन्तर श्री महादेवजीने अपने शिष्यसे कहा कि अबतो इसको बैठा देना उचित है। इस प्रकार गुरुजीकी आज्ञा प्राप्त कर मत्स्येन्द्रनाथजीने गोरक्षनाथजीका

आसन खुला दिया। और उसको अपनी गोदमें बैठा कर अत्यन्त सत्कृत किया। शिष्यको अपना वचन पूरा करते हुए देख कर मत्स्येन्द्रनाथजीके इतना प्रेम उत्पन्न हो गयाथा कि उनके नेत्रोंमे जल भरआया। तदनु श्री महादेवजीने भी प्रशिष्यको गोदमें बैठाकर शिष्यका अनुकरण करते हुए असंख्य धन्यवाद दिया। तथा मत्स्येन्द्रनाथजी की अनुमतिके अनुसार फिर कैलासको प्रस्थान किया। उधर मत्स्येन्द्रनाथजी कुछ दिन बदरिकाश्रममें निवास करके गोरक्षनाथजीको एकाएकी भ्रमण करने की अनुमति दे स्वयं फिर नीचेंके प्रान्तोंमें आकर विचरने लगे.

इति श्री मद्गोरक्षनाथ तपवर्णन नामक ४ अध्याय।

अनुवादक–चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय ५ ॥

श्री मत्स्येन्द्रनाथजी शनैः २ देशाटन करते तथा निजभक्तोंको योगक्रियाओंका उपदेश देते हुए कतिपय प्रान्तोंको पारकर वङ्ग देशमें पहुँचे। और यहांसे समुद्रके समीपवर्ती प्रान्तोंमें भ्रमण करते हुए कुछ दिनमें जगन्नाथपुरीमें आये। यहां श्रीजगन्नाथजीके दर्शन मेले करनेके अनन्तर अनेक तीर्थोंके दर्शन तथा स्नान करते हुए आप कतिपय वर्षों में सेतुबन्धरामेश्वर पर आये। और गुरुजीसे प्राप्तकी हुई मन्त्रात्मक सावरी विद्याका कहीं प्रयोग कर उसके विषयमें दृढ निश्चयता प्राप्त करनेके लिये किसी अनुकूल उपायका निरीक्षण करने लगे। ठीक आपके अभिमतानुकूल कार्य करनेका आपको एक सुभीता भी मिल गया। और वह यह था कि श्रीरामभक्त हनुमान्जीके साथ, जो कि कुछ कालसे इसी जगहपर विराजमान था, मिलाप होगया। बस इसीके संसर्गसे आपने अपना कार्य सम्पादित कर उसमें निश्चयता प्राप्त करना स्थिर किया। उधर आपका यह अभिप्राय हनुमान्जीसे भी छिपा न रहा। अतएव मत्स्येन्द्रनाथजीके चिन्तित कार्य सम्पादनामें अनुकूलता उपस्थित करनेके उद्देशसे हनुमान्जी पूछउठे कि आप कौन है और क्या कार्य करते हैं तथा कहां आपका स्थान है। मत्स्येन्द्रनाथजीने उत्तर दिया कि हम योगी हैं। मत्स्येन्द्रनाथ यति हमारा नाम है। योगोपदेशद्वारा निज भक्तोंको इस असार संसारसे पार करना ही हमारा कार्य है। स्थान किसी एक जगह पर नहीं है। समग्र संसार ही हमारा स्थान है। चाहेंजिधर जायें और चाहें जहां रहें। यह सुन हनुमान् बोल उठा कि तुम यति कैसे हो यति तो मैं हूं। सांसारिक लोग भी मुझे ही यति कहते हैं। तुमको तो कोई भी यति नहीं कहता है। बल्कि यति कहनातो दूर रहा तुमको कोई जानता भी नहीं है। मैंने भी आज ही तुह्मारा नाम सुना तथा तुमको देखा है। ऐसी दशामें तुह्मारा अपने आपको यति बतलाकर प्रसन्न होना सर्वथा अनुचित है। मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि हम सर्व देशोंमें विचरते हैं अतः सब लोग हमको जानते हैं। बल्कि यही नहीं सर्व सिद्ध और विद्वज्जन भी हमको अच्छी तरह जानते हैं। हनुमान्ने कहा कि

अयं क्यों अतथ्य वाणी बोलते हो कि हमको सर्व सिद्ध और विद्वज्जन जानते हैं। हम पूछते हैं भला कहिय तुह्मारे में ऐसी क्या शक्ति है जिस वशात् वे लोग तुमको जानें और उनमें तुह्मारी प्रसिद्धि हो। मत्स्येन्द्रनाथजीने उत्तर दिया कि यदि हमारी शक्तिको देखनेकी इच्छा है तो तुम स्वयं देखसकते हो। वस क्या था आप लोगोंको तो अपने गूढाभि प्रायसे सांसारिक लोगोंमें सावर विद्याका महत्त्व स्थापित करनाथा। अतएव इतना सुनते ही हनुमान्के एकदम कृत्रिम क्रोध प्रकट होगया। और वह कहने लगा कि अच्छा अब तुह्मारी शक्ति तथा तुह्मारे यतित्वको देखूंगा। देखें तुम यति हो कि हम। तदनन्तर मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि अच्छा २ अवश्य ऐसा ही होना चाहिये हमारा यतित्व झूठा वनाकर हमको मिथ्या भाषी प्रमाणित करो। परन्तु यह याद रखना कि अपनी समग्र शक्तिसे कार्य लेकर कुछ उठा न रखना। हनुमान्ने कहा कि कुछ क्षण ठहरो अभी मालूम होता है मैं तुह्मारे यतित्व की पूजा कर हालता हूं। इस कार्यके लिये मुझे किसी अन्य सहायक की भी आवश्यकता नहीं है। क्या तुम मेरे जगत् प्रसिद्ध सामर्थ्यको नहीं जानते हो जो एकाकीने ही विस्तृत समुद्र उल्लँघ कर समग्र लङ्कापुरीको भस्मसात् करडाला था। और अशोकवाटिकाको नष्टभ्रष्ट कर बड़े २ तेजस्वी प्रभावशाली राक्षसोंका हनन करते हुए श्री सीताजीकी खवर लायाथा। तथा जब अहिरावण लक्ष्मणजीके सहित श्री रामजीको पातालमें ले गयाथा तव समग्र युद्धकुशल राक्षसोंको पराजितकर उनको निज सेनामें लायाथा। एवं लक्ष्मणजीके शक्ति लगी तब मैंने ही उत्तराखण्डस्थ द्रौनागिरि नामक पर्वतको अपने बलसे उठाकर लंकामें ला स्थापित कियाथा। तथा लक्ष्मणजीका प्राण वचायाथा। इतना कहकर हनुमान् ऊपर नीचे कूदने तथा घोरशब्द करने लगा। यह सुन और देख मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि अये हनुमन् तू बडा ही चञ्चल है। तेरी इस चञ्चलतासे और किसीकी नहीं तेरी ही हानि होगी। अवतो हनुमान् विस्तृत और भयंकर रूप धारणकर विविध स्वरसे चिल्लाने लगा। तथा अधिकाधिक तुफान करता हुआ शान्त न हो कर पर्वतकी ओर चला। वहां जातेही एक भारमय पत्थर उठाकर उसने मत्स्येन्द्रनाथजीकी ओर फैंका। परन्तु उन्होंके न लगकर वह उनके समीपमें गिर पड़ा। यह देख हनुमान्ने शीघ्रताके साथ गदा उठाई। जिससे मत्स्येन्द्रनाथजी के ऊपर प्रहार किया। दुर्भाग्य वह भी व्यर्थ हुई। और उसके हस्तसे छुट कर पृथिवी पर गिर पड़ी। इसी अवसर पर मत्स्येन्द्रनाथजी ने कहा कि अये चञ्चल तू शान्त हो जाय हमारे सम्मुख तेरा प्रयत्न सफल न होगा। कारण कि हम नाथ हैं और तू दास है। अतः हमारा तेरा युद्ध भी प्रशंसनीय नहीं है। वल्कि आज पर्यन्त कहीं भी स्वामी सेवकका युद्ध नहीं देखा तथा सुना गया है। पाठक ध्यान रखिये दोनों महानुभावोंका युद्ध कोई द्वेष मूलक नहीं

किन्तु संसारमें सावरविद्याका महत्त्व प्रकट करने के प्रयोजन से ही था। तथापि यह देखने में आता है कहीं २ बातों का बतंगड़ा भी बन जाया करता है; अतएव बातों २ में मत्स्येन्द्रनाथजी के मुखसे निकल जाने वाले कटु वाक्यों को सुनकर कुछ सचे क्रोधका आश्रय लेता हुआ हनुमान् आग्नेयास्त्रका सन्धानकर उसका प्रयोग करने के लिये उद्यत हुआ। जिसके उठाने मात्रसे ही चौतरफ अग्नि प्रकट हो गई; अग्निके प्रज्वलित होनेसे अनेक पशुपक्षी व्याकुल हो उठे। यह देख मत्स्येन्द्रनाथजी ने अपनी झोलीसे एक चुकटी विभूति निकाल कर उसे वार्षिक मन्त्रके साथ प्रक्षिप्त किया; जिसके अमोघ स्वभावसे जल धारा पड़ने लगी; जिससे तत्काल ही आग्नेयास्त्रका तेज हत हो गया। और सभी पशुपक्षी फिर आनन्दालाप करने लगे। इससे हनुमान् अतीव निराश हुआ, आभ्यन्तरिक रीतिसे बड़ाही विस्मित हुआ। अन्ततः सचेत हो कर अनेक वृक्ष पत्थर उखाड़ २ मत्स्येन्द्रनाथजी के ऊपर फेंकता हुआ मौलिनामक पर्वत के समीप पहुँचा। तथा उसको उठाकर मत्स्येन्द्रनाथजी के ऊपर छोड़ना ही चाहताथा ठीक उसी समय उन्होंने ऊपर को दृष्टि करी। तथा एक हस्त ऊपर को उठाकर कहा कि बस वहीं ठहर जाय, तब तो वह वहीं रुक गया। और उसमें से टूट २ कर पत्थर नींचे गिरने लगे, अन्तमें वह मौलिनामक पर्वत हनुमान् के हस्तोंसे छुटकर शिरपर आ गया; ऐसा होनेके साथ २ ही मत्स्येन्द्रनाथजी के मन्त्र वशात् हनुमान् की सब शक्ति जाती रही, अतएव वह चलने पकड़ने, हिलने, आगे पीछे पैर उठाने में अ समर्थ हुआ, एवं विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिये। मेरेतो पर्वतके भारसे प्राण पक्षी हुए जा रहे हैं, यदि यह दुःख शीघ्र निवारित न हुआ तो मेरी अवश्य भयंकर दशा होगी (अस्तु) उधर इतने ही कृत्यसे मत्स्येन्द्रनाथजी सन्तुष्ट न हुए थे। उन्होंने इस अवसर पर स्वयंभी आग्नेयास्त्रका प्रयोग कर दिया; जिससे पर्वत अत्यन्त तप्त हो उठा, तबतो अग्निसे दंदह्यमान हनुमान्ने बड़ी शीघ्रताके साथ अपने पिता वायुको स्मृतिगत किया, तत्कालही वायुने ध्यान धर देखा कि आज अकस्मात् यह क्या हुआ। मेरा पुत्र हनुमान् कोई साधारण व्यक्ति नहीं है; जो सहज ही किसी से तिरस्कृत हो जाय। अथवा जो भी कुछ हो उस के समीप जा कर ही देखना उचित है। तदनु वायुदेव शीघ्र ही प्रकट हुए; उनका हनुमान् तथा मत्स्येन्द्रनाथजीके ऊपर दृष्टिपात हुआ। यह देखते हो उसने अपने पुत्रसे कहा कि अये पुत्र तूने अति अज्ञानका कार्य कियाहै। क्या तू नहीं जानताथा कि ये मत्स्ये-न्द्रनाथजी पूर्ण पुरुष कवि नारायणके अवतारी हैं। यह सुनकर भी हनुमान् तो न बोला। परं फिर वायुदेवने मत्स्येन्द्रनाथजीके समीप आ कर कुछ सत्कारमय वाक्योंद्वारा उनको सन्तुष्ट बनानेका प्रयत्न किया। तथा कहा कि मैं आपकी शक्तिशालिताको अच्छी तरह जानता हूं।

हनुमान् उससे अनभिज्ञ था जिसने आपके साथ द्वेषता जैसा व्यवहार किया। अतएव अब आप कृपया दासपर क्षमाप्रदान करें। उसकी इस विनम्र अभ्यर्थनाके साथ २ विनम्र हुए मत्स्येन्द्रनाथजीने फिर अपनी झोलीसे भस्मी निकाली। और उसे प्रावृपेण्य मन्त्रके साथ मौलि पर्वतकी ओर फेंक दिया। जिससे प्रज्वलित हुआ पर्वत शीघ्र शीतल हो गया। और हनुमान्के शिरसे उतर कर जहां पहले था वही जा स्थिर हुआ। इसके बाद कुछ विभूति और भी निकालकर मत्स्येन्द्रनाथजीने उसको शक्ति सञ्चारक मन्त्रके सहित प्रक्षिप्त किया। जिससे हनुमान् पूर्ववत् शक्तिमान् होगया। यह देख कुछ मुस्कराता हुआ हनुमान् मत्स्येन्द्र-नाथजीके समीप आया। और विविध प्रकारसे उनकी स्तुति करता हुआ बार २ धन्यवाद देने लगा। तथा अज्ञाततासे निकलजानेवाले अनुचित वाक्योंके विषयमें क्षमा प्रार्थना करने लगा। इसपर मत्स्येन्द्रनाथजीने कृतज्ञता प्रकट की। और कहा कि अये हनुमन् मुझे विश्वास है जो अपना अभिप्राय है उससे तुम विचालित न हुए होगे। यह सुन मुस्कराकर हनुमान्ने नहीं २ कहा। तदनु फिर वायुने हनुमान्की ओर इसारा करते हुए कहा हे हनुमन् तुम ऐसे महा मासे फिर कभी विरोध नहीं करना। इन की जितनी शक्ति और विद्या इन्द्रको भी प्राप्त नहीं है। फिर हमारी तुम्हारी तो बात ही क्या है। ये चाहें तो सबको वशमे करसकते है। परं स्वयं किसी के वशमें नहीं हो सकते हैं। हां नम्रतायुक्त पुरुष भक्तिसे अवश्य इनको भी वशमें करसकता है अन्यथा नहीं। यह सुनकर हनुमान्ने कहा कि अच्छा जो हुआसो तो होगया। जो फिर वापिस नहीं आता है परं इस निमित्त एक पूर्ण शक्ति कवि नारायणके दर्शन तो हुए यह भी ईश्वरकी महती कृपा ही समझनी चाहिये। अये मत्स्येन्द्रनाथजी अब आप पूर्ण शान्त हो जायें। और मेरा यह शक्तिशस्त्र जिसको मै आपके समर्पण करना चाहता हूं ग्रहण करलें। मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि मन्त्रात्मक एक सावरी विद्यारूप अस्त्र मेरे समीप इतना शक्तिशाली ह जिसके सम्मुख अन्य किसी भी अस्त्रशस्त्रकी कुछ पेश नहीं जाती है। फिर तुम्हारे शक्तिशस्त्रसे हमारा कौन कार्य साध्य हो सकता है। हनुमान्ने कहा कि यह ठीक है आपका जो महत्व है वह अब छिपा नहीं रहा है उसको हम अच्छीतरह समझगये हैं। बल्कि इसी हेतुसे हम अपने कृत्यपर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए एक उपहार स्वरूपसे यह शक्ति शस्त्रप्रदान करते हैं। इत्यादि प्रकारसे होनेवाले उसके विशेष आग्रहानुरोधसे मत्स्येन्द्रनाथजीने शक्तिको अपना लिया। और देशान्तर पर्यटनके लिये वहांसे प्रस्थान किया।

इति श्रीमत्स्येन्द्रनाथ हनुमान् युद्धवर्णन नामक ५ अध्याय।

अनुवादक–चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय ६ ॥

श्री मत्स्येन्द्रनाथजी रामेश्वरसे गमन कर जनों को योगका उपदेश देते हुए कुछकालमें बारामलेश्वरमें पहुँचे। वहांके मांडवा नामक एक ग्रामकी कुछ दूरीपर बाह्यस्थलमें एक देवीका मन्दिर था आपने उसीको ऐकान्तिक स्थान जान कर उसमें अपना आसन स्थिर किया। वहां सायंकाल तक बैठे हुए आप अलभ्य पुरुषका ध्यान करते रहे। ग्रामसे कोई भी मनुष्य आपके समीप न आया। तब तो आपने विचार किया कि सम्भव है यह स्थान विघ्न सहित होगा। क्यों कि इसमें लोग कभी आते दिखाई नहीं देते हैं। अस्तु) इसी प्रकारके सङ्कल्प विकल्प करते हुए आपका दिवस तो व्यतीत हो गया परन्तु जब रात्री देवीका आगमन हुआ और अन्धकार ने अपना पूरा अधिकार जमालिया तब उस मन्दिर के समीपस्थ एक शून्य स्थलमें सहसा सैंकडों दीपक प्रज्वलित हो उठे। जिन्होंके तेज समूह ने अन्धकारको पराजित कर दूर भगा दिया। ठीक उसी समय मत्स्येन्द्रनाथजीकी दृष्टि उधर पहुँची। देखते क्या हैं सैंकडों दीपक तथा मसालें जल रही हैं। और सहस्रों मनुष्य वहां खडे हुए दृष्टिमें आते हैं। एवं कोई आ रहा है तो कोई जा रहा है। कुछ देरके बाद उनकी मनुष्यों जैसी चेष्टा न देखकर तथा जब दिनमें ही यहां कोई मनुष्य नहीं आता है तो रात्रीको कैसे आ सकता है इस विचारसे निश्चय किया कि अवश्य ये पिशाच हैं। ठीक इसी भयसे लोगों ने इस मन्दिर में आना छोड दिया है। परं यह भी अच्छा हुआ मुझे शुभ अवसर मिल गया। आज इन सबको अपने वश में करूंगा। यह दृढ निश्चय कर आपने अपनी झोलीसे विभूति निकाली। और शक्ति आकर्षण मन्त्र पढकर उसे उनकी तरफ फेंक दिया। तत्कालही समस्त भूत जडी भूत हो गये। उनकी चलने बैठने हिलने की अखिल शक्ति जाती रही। जैसा जो खडा बैठा चलता हुआ था वह प्रतिमाकी तरह उसी प्रकार स्थित रहा। हां इतना अवश्य हुआ कि वाणी किसीकी भी बन्ध न हुई थी। यह देख प्रेतलोग अत्यन्त विस्मित हुए परस्परमें कहने लगे कि अहो आश्चर्य है ऐसा तो कभी, हुआ न सुना गया है। आज अकस्मात् यह क्या विचित्र घटना उपस्थित हुई। और किसकारणसे

हुई कोई कारणभी इस समय दृष्टिमें नहीं आता है। हमनें तो केवल बैताल जो हमारा राजा है उसकी सभामें जानेके लिये यह उत्साह दिखलाया था: परं अब क्या करें वहां कैसे जायें हमारा तो सर्व प्रयत्न निष्फल हुआ। यदि वहां समय पर न जानें पायेंगे तो न जानें बैताल हमको कितना कठोर दण्ड देगा; इस समय तो यहां पर कोई भी ऐसा नहीं दीख पडता है जो हमको इस अज्ञात व्याधिसे मुक्त करै वा हमारी सूचना बैताल के यहां भेजदे ठीक जिस समय ये भूत ऐसा परामर्श कर रहे थे उसी समय उधर बैतालकी सभामें अनेकानेक भूत आकर सम्मिलित हो चुके थे। परन्तु इधरके इन भूतोंकी प्रतीक्षा की जा रही थी। कुछ देर होनेपर वहां प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि क्या कारण है उस मण्डलके भूत अभीतक भी न आये। यह सुनकर कई एक प्रधान भूतोंने बैताल को उस मण्डलके भूतोंसे विपरीत भडकाया। और कहा कि महाराज वे अत्यन्त प्रमत्त हैं अनेकबार आपकी आज्ञाका भङ्ग करचुके हैं हम लोगोंको दया आती है इसी कारणसे आपको सूचना नहीं दी जाती हैं। परन्तु क्या करें कबतक इसतरह निर्वाह हो सकता है। साक्षात् आपके सम्मुख भी वे अपनी धृष्टता दिखलाते हैं। तब तो बैताल उनके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। ठीक इसी अवसरपर बैतालके मान्त्रियोंने कहा कि कारण न जानकर सहसा कुपित होना तथा उनके लिये कठोर दण्डका सोचना उचित नहीं है। अतएव किसी चतुर कर्मचारीको उधर भेजकर उनके समयपर उपस्थित न होनेके कारणको जानों। तथा उनको युक्तिसे समझाओ फिर भी यदि वे अनुकूल न होंगे तो अवश्य दण्डनीय समझेजायेंगे। यह सुनकर बैतालने अपना एक प्रधान राजकर्मचारी उधर भेजा। और उसे कहसुनाया कि आप उनको शान्तिके साथ लेवालाओ। तबतो बैतालकी आज्ञा प्राप्तकर राजपुरुष उसी ग्रामके भूतस्थलमें आया। वहां देखता क्या है सहस्रोंभूत उपथित हैं जिनमें कितने तो खडे हैं और कितनेक बैठे हैं। परं चलते फिरते नहीं दीख पडते हैं। अन्ततः अतीव समीप आकर सरदारने पूछा कि क्या आप लोग आज बैतालकी सभामें नहीं चलोगे। उन्होंने उत्तर दिया कि हम लोग वहीं आनेके लिये एकत्रित हुएथे परन्तु ऐसी अज्ञात व्याधि उपस्थित हुई है जिससे हमारी चलने फिरने की समस्त शक्ति जाती रही है। और शरीर पत्थरकी तरह स्थूल होगया है। यदि किसी प्रकार यह कष्ट निवारित हो जाय तो हम कुछ भी विलम्ब न करेंगे अभी आपके साथ शीघ्रतासे वहां पहुँच सकते हैं। यह सुनकर सरदारने बडा आश्चर्य माना। एवं विचार किया कि मालूम होता है यहांपर कोई मन्त्रज्ञ आया होगा। जिसके सकाशसे इनकी यह दशा हुई है। तदनन्तर जब वह इधर उधर चलकर देखने लगा और उसी देवीके मन्दिरमें आया तबतो उसकी दृष्टि मत्स्येन्द्रनाथजीके ऊपर पड़ी। और उनका वेष उसकी तादृश ही दृष्टिमें आया। तबतो उसने अनुमानसे ही

निश्चय करलिया कि ठीक यह कृत्य इसी व्यक्तिका कियाहुआ है । अतएव उसने मत्स्येन्द्र-नाथजीसे कहा कि अये तू कौन है । सच बतला इनभूतों को तेरे ही सकाशसे यह असह्य कष्टावस्था प्राप्त हुई है क्या । यदि ठीक २ ही बात है तो मेरा यह कहना अन्यथा न होगा कि आज अवश्य तुम मृत्युके मुखमें पड़ जाओगे । क्यों कि इनका राजा जो बैताल है वह बड़ा ही बली और प्रतापी है जिसके कोपाग्निसे तुम्हें अवश्य दग्ध होना पडेगा । यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि और वार्ता तो सब रहनेदो प्रथम यह बतलाओ कि तुम यहांतक चलकर कैसे आये हो । उसने कहा कि मैं इनमें सम्मिलित नहीं था मैं तो इनके सभामें उपस्थित न होनेके कारणको जाननेके वास्ते बैतालने यहां भेजाहूं । तब मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि जाओ बैतालकी सभामें मेरा नाम लेना और कहदेना कि एक मत्स्येन्द्रनाथ नामका योगी है उसने समस्त भूतोंको बान्धकर अपने वशमें किया है । जिन्होंको छोडना भी स्वीकार नहीं करता है । सरदारने कहा कि मैं सत्य बोलता हूं मेरा वचन मानों बैताल बड़ा ही विकाल है जो इस वृत्तान्तके सुनते ही तुमको मारडालेगा । मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि अये महानुभाव आप अधिक बातें न कर अपने अभीष्ट कार्यमें दत्तचित्त होजायें हम आपके प्रतापी बैतालसे किञ्चत् भी भय नहीं करते हैं । बैताल आपके लिये ही विकाल काल दिखाई देता होगा जिस अवसरपर हमारे साथ उसका साक्षात्कार होगा उस समय देखना उसका प्रताप किधर जाता है । तदनु मत्स्येन्द्रनाथजीके बचनोंको ठीक २ याद कर सरदार बैतालकी सभामें पहुँचा । और पूर्वोक्त समग्र वृत्तान्त सुनाया कि एक मत्स्येन्द्रनाथ नामके योगीने समस्त भूतोंको बान्ध रक्खा है । मैंने बहुत ही उसको समझाया परं उसने उनको छोडना स्वीकार नहीं किया । बल्कि छोडना तो दूर रहा उसने यहांतक कहडाला कि तुम जाओ बैतालको सूचित करदो ये भूत नहीं छोडेजायेंगे । इसकेलिये बैताल जो शक्ति व्यय कर सकता है करे । आगे आपके अधीन है उचित समझो सो करो । यह सुनते ही बैतालने देशान्तरके आये हुए अनेक भूतोंकी एक बडी सेना तैयार कर घटनास्थलमें प्रेषितकी । वह कतिपय क्षणमें मत्स्येन्द्रनाथजीके अभिमुख आ खडी हुई । तत्काल ही आपने अपनीं झोलीसे एक चुकटी विभूति निकाली । और प्रामत्तिक मन्त्रके जापपूर्वक उसको सेना की ओर फैंक दिया । जिससे प्रेत लोग आपसमें ही युद्ध करने लगे । युद्ध करते २ समग्र रात्री बीतचली उनका युद्ध समाप्त नहीं हुआ । कितने ही प्रेत मारेगये कितने ही पलायित होगये । तबतो मत्स्येन्द्रनाथजीने एक चुकटी और फैंक दी जिससे सेना युद्ध करनेसे तो बन्ध होगई परं प्राथमिक प्रेतोंकी तरह चलनादिक्रियाओंसे शून्य होगई । उधर जब रात्री समाप्त होचली तबतो बैतालने अपना एक दूत और भेजा । और कहा कि अत्यन्त शीघ्र जाओ देखो प्रातःकाल होनेको आया अबतक कुछ भी

समाचार नहीं आया सेनाका क्या हाल है । यह आज्ञा मिलनेपर दूत वहां पहुँचा । और सेनाको जहां की तहां मूर्च्छान्वित हुई स्थित देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ । इस समय सेनाकी दशा जो उसने देखी वह ऐसी थी जिसको वह धैर्यके साथ अधिक देरतक न देख सका । और अधीर होकर सहसा वापिस लौट गया । वहां जाकर वैतालके समक्ष सेना की कठिन अवस्थाका समस्त वृत्तान्त सुनाडाला । जिसके सुननेपर कुछ क्षण तो मानों वैताल मूर्च्छित ही होगयाथा ऐसा मालूम होताथा अन्तमें सचेतसा होकर कहने लगा कि ऐसे पुरुषके साथ विरोध करना उचित नहीं है । यदि करेंगे तो हमारी भी वही दशा होगी । कारण कि अपने पास वह सामग्री नहीं जो उसके पास है । इसीलिये उसके साथ विरोध खड़ा करने पर हमारी विजय होनी भी अनिश्चित ही है । इस दृढ निश्चयके अनन्तर बहुत भूत लेकर वैताल मत्स्येन्द्रनाथजीके समीप आया । तथा आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकारकी विनम्र अभ्यर्थना करता हुआ कहने लगा कि महाराज मैं प्रेतोंका स्वामी वैताल हूं आपसे सनति निवेदन करता हूं कि आप कृपा कर अब इन भूतोंको मुक्त करदें । आपने कहा कि यह बात ठीक है मैंने इनको सदा इसी प्रकार निश्चेष्ट रखनेके लिये ही यह कृत्य नहीं किया है पर मैं चाहता हूं जिस अभिप्रायसे मैंने इस अनुष्ठानका अवलम्बन किया है आप लोग उसे ठीक २ समझलें । वैतालने कहा कि यद्यपि हमने आपके इस कृत्योद्देशका अनुमान करलिया है । पर अनुमान सर्वत्र सत्य नहीं निकलता है । अतएव सम्भव है हम आपके अभिप्रायसे विपरीत कर बैठ । इसलिये आपको उचित होगा कि सबके समक्ष प्रत्यक्षतया अपने उद्देशको घोषितकर सुना दें । आपने कहा कि प्रेतोंकी मुक्तिके बदले में तुम्हें यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि हम आपकी आज्ञासे कभी मुख न मोड़ेंगे । वैतालने कहा कि अच्छा ऐसा ही होगा । जबतक वर्तमान प्राणोंका मेरे इस विग्रहमें सञ्चार होता रहेगा तबतक आपकी आज्ञाका पूर्ण रीतिसे पालन किया जायगा । आपने कहा कि समय पडनेपर शीघ्र उपस्थित होनेकी वाचा दो । और इस बातको अपने हृदयमें ठीक २ जमा लो कि केवल वचन देनेसे ही आप कृतकार्य न होंगे जबतक कि उसकी रक्षा करनेके लिये दृढ निश्चय न कर लेंगे । वैतालने कहा कि मैं अपने प्राणोंका नाम लेचुका हूं । अतः ये रहेंगे तबतक आपकी आज्ञा शिरोधार्य समझी जायेगी । परन्तु इतना आप को भी ध्यान रखना होगा कि जिस किसी भी कार्यके लिये जब मेरा आह्वान कियाजाय तब मेरा आहार तो अवश्य उपस्थित करना पड़ेगा । आपने कहा कि यद्यपि हम इस विषयमें कोई निश्चयात्मक नियम नहीं कर सकते है तथापि ऐसे अवसरपर जहां कभी उचित समझागया तो यह आहार उपस्थित किया-जायेगा । अगत्या वैतालने इस बातपर आखिर सन्तोष करना ही पडा । तदनु मत्स्येन्द्रनाथजीने अपनी झोलीसे विभूति निकालकर शक्तिसञ्चारक मन्त्रके साथ उसे प्रेतोंकी ओर फैंक दिया ।

जिससे वे समस्त प्रेत फिर पूर्ववत् शक्तिमान् होगये। यह देख मत्स्येन्द्रनाथजीको प्रणाम करनेके पश्चात् समस्त भूतोंके साथ वैताल अपने स्थानको चला गया। और समय २ पर आहूत हुआ मत्स्येन्द्रनाथजीका कार्य सिद्ध करने लगा .

इति श्री मत्स्येन्द्रनाथ वीरवैताल वशीकरणवर्णन नामक ६ अध्याय।

अनुवादक—चंद्रनाथ योगी

॥ अध्याय ७ ॥

श्री मत्स्येन्द्रनाथजी वारामलेवारसे गमन करके शनैः २ भ्रमण करते हुए कोकन देशमें आये। और वहांके आड्गल नामके ग्रामकी जिस पवित्र भूमिमें भगवती देवी भद्रकालीका मन्दिर था ठीक उसीके समीपस्थ स्थलमें आपने अपना आसन स्थिर किया। देवीका मन्दिर जितना ही रमणीय था उतना ही चित्तको आह्लादित और शान्त करने वाला भी था। यही कारण था मेलेके समय असंख्य लोग देवीको प्रसन्न करने और अनेक लोग मन्दिरकी शोभा देखनेके लिये यहां आतेथे। इतने अधिक लोगोंका संगठन होना इस बातको सूचित करताथा कि उस समय जितनी देवी भारतमें विराजमान थी उन सबमें इसीका उच्चासन था, अतएव इस देवीकी बड़े ही धूमधामके साथ पूजा हुआ करतीथी। जिसकी श्रद्धाभक्ति और दार्शनिक लाभकी चौतरफ घोषणा होरही थी। श्री मत्स्येन्द्रनाथजीको यही घोषणा प्रेरित कर इधर लाई थी। अतएव भोजनादिसे निवृत्त हो आप कुछ देरमें अपना आसन रक्षित कर देवीके दर्शनार्थ मन्दिरमें गये। परं जिस समय आप मन्दिरमें पहुँचेथे उसी समय देवी किसी कारण वशात् चिन्ताकुल हुई बैठी थी। उसी अवसरपर उपस्थित हो आपने उसके अभिमुख अपना शिर झुकाया। और कहा कि मातः हम बहुत दूरसे आपकी महिमा सुनकर दर्शनार्थ यहां आये हैं। अतः आप हार्दिक प्रसन्नता प्रकट कर हमको अपने पवित्र दर्शनोंका लाभ करायें। देवी प्रथमतः ही अपने प्राकृतिक स्वभावमें नहीं थी। अतः उसने आपकी अभ्यर्थनापर विशेष ध्यान नहीं दिया। यह देख आत्यन्तिक विनम्र भावसे मत्स्येन्द्रनाथजीने पूर्ववत् फिर प्रार्थना की। यह सुन कुछ नासिका सङ्कुचित कर देवी कह उठी कि तुम कहांसे दुःख देनेकेलिये यहां आखड़े हुए। जाओ चलेजाओ यात्राके उपलक्ष्यपर यहां आना अब हम अन्य कार्यमें दत्तचित्त हैं. मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि भगवति आप जानती हैं हम ऐसे पुरुष नहीं हैं जो इतने समयतक यहीं बैठे हुए भिक्षान्नसे उदर पूर्ति करते रहें। किन्तु तबतक तो न जानें हम कहांतक पहुँचेंगे और कौन २ कार्य करेंगे; अतएव आप कृपा करें और अपने दर्शनसे, जिसमें कि प्रेम झिलकता हो, मुझे पवित्र कर मेरा ऐहागमन सफल करें। हां

यदि आप अपने चिन्त्य कार्यसे कुछ देरमें ही निवृत्त होनेवाली हों तो मुझे समय निर्धारित कर आज्ञा दीजिये मैं निर्दिष्ट समयपर फिर उपस्थित हूंगा। परं खेद है ईश्वरीय इच्छा कुछ और ही थी। और मत्स्येन्द्रनाथजीने जिसको एकवार मातः, इस सम्बोधनसे सत्कृत कियाथा उसके सम्मुख विवश हो आह्निक प्रयोग करनाथा। अतएव अवश्यम्भावी समयके अनुकूल प्रेरित हुई देवी कह उठी कि जाओ२ मैं कहचुकी हूं तुम चलेजाओ नहींतो मेरे असली रूपका दर्शन होगा। जिसके प्रकट करनेके साथ तुम्हारा काल भी अवश्यम्भावी होगा। इससे मत्स्येन्द्रनाथजी समझ गये कि अन्त होगया। इस देवीमें कितना अहंकार प्रविष्ट होगया है। आश्चर्य है साधारण मनुष्य भी अतिथिके सत्कारार्थ अग्रसर हुआ देखा जाता है। इसपर भी यदि उसकी भक्तिसे कोई उपस्थित हुआहो तो फिर कहना ही क्या है। परं दुःख है यह इतना नहीं विचारती है कि यह अतिथि जिसकी शरणमें आया है वह मैं कौन हूं। और यह अतिथि भी कौन है। आखिर फिर आपने कहा कि देवि मैं तृतीयवार फिर आपसे अभ्यर्थना करता हूं आप हार्दिक प्रेम दिखला कर हमारा हर्ष बढायें। यह सुन देवी क्रोधान्वित हुई। और कहने लगी कि क्या तुम मेरा पराक्रम नहीं जानते हो जो इतना हठ कर रहे हो। यदि मैं अपने आपे में आगई तो तुम्हें मेरे तेजमें इस प्रकार लीन होना पडेगा जैसे पतङ्ग अग्निमें होता है। यह सुनकर आपने सोच लिया कि ठीक है प्रार्थनासे कार्यसिद्धि नहीं है। अतः अवतो हमको भी अपनी शक्ति अवश्य प्रकट करनी चाहिये। इसीलिये आपने कहा कि देवि आप मुझे अपनी शक्तिसे अनभिज्ञ बतलाती हो परं मैं कहता हूं कि आप भी मेरी शक्तिसे अनभिज्ञ ही हो। अन्यथा आप मेरा इतना अनुचित तिरस्कार नहीं करती। अब मैं इस बातके लिये तैयार हूं आपने जो पराक्रम दिखलाना हो सो दिखलाओ। आपने छोटा समझकर मेरा तिरस्कार किया है परं याद रहे सूर्य देखनेमें तो छोटा ही दीखपड़ता है तथापि अपने असह्य तेजपूँञ्जसे समस्त संसारको प्रकाशित करता है। तद्वत् ही आप मुझे भी जानो। यह सुन घृत डालनेसे प्रज्वलित अग्निकी तरह उत्तेजित हो देवीने कहा कि जटाजूट और भस्मी आदिसे शिवरूप धारण कर जो तुम हमको अपना भय दिखलाते हो हम इस धोखेकी बातोंसे डरनेवाली नहीं हैं। मुझमें वह शक्ति है जिसके द्वारा यहीं उपस्थित रहती हुई मैं जगत्की रक्षा करती हूं। और राजा को रंक तथा रंक को राजा बनासकती हूं। अतएव तुम समझो मेरे साथ विवाद करनेसे तुम्हें लाभके स्थानमें हानिका मुख देखना पडेगा, क्यों कि तुम मेरे सामने कुछ नहीं हो अर्थात् तुच्छ हो; तृणके समान हो। मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि बलिराजाके सम्मुख वामन भगवान् प्रथम तुच्छही मालूम होतेथे किन्तु समस्त राज्य दे करभी वह उनके पदक्रमकी पूर्ति न करसका। ठीक ऐसाही आप

मुझेभी समझलो ; बस क्याथा ज्यों ही मत्स्येन्द्रनाथजीने ऐसा कह कर अपने वाक्यकी समाप्तिकी त्योंही देवीने अपने अस्त्रका आश्रय लिया । और वह प्रहार करनाही चाहतीथी ठीक उसी समय मत्स्येन्द्रनाथजी ने अपनी झोलीसे कुछ विभूति निकाली । और आग्नेय मन्त्रके जाप पूर्वक उसे आकाशकी ओर फैंक दिया । जिससे तत्कालही चारों दिशा अग्निमय हो गई । इस भयङ्कर उष्णतासे व्याकुल हो घोर शब्द करती हुई भद्रा देवी हस्तमें त्रिशूल धारण कर मत्स्येन्द्रनाथजी की ओर अग्रसर हुई ; यह देख उसकी अनुयायिनी डङ्कनी, शङ्कनी, योगिनी भी विविध शस्त्र धारण किये हुए उसके साथही मत्स्येन्द्रनाथजी के ऊपर टूट पडी । ठीक उसी अवसरमें मत्स्येन्द्रनाथजी ने फिर विभूति निकाली । और उसे रुद्रशक्ति मन्त्रके साथ ऊपरको फैंक दिया । जिसके अमोघ प्रभावसे प्रेरित हुए ग्यारह रुद्र प्रकटित हो गये तथा प्रकट होतेही मत्स्येन्द्रनाथजीकी सहायता के लिये तत्पर हुए । यह देखकर भद्रा अत्यन्त विस्मित हुई सोचने लगी कि मालूम होता है यह अपने विषयमें जो उपमा दे रहा था ठीक वैसाही है । अतः नहीं जानती अन्तमें क्या होनेवाला है । हमारी जय होगी वा इसीकीही । तथापि एकवार मैं अपने भाग्यकी परीक्षा करलेती हूं । इस परामर्श के अनन्तर उसने विकाल रूप धारण किया । तथा घोर शब्द कर अनेक वाणोंका प्रहार किया । ठीक उसी अवसर पर देवीका महाघोर शब्द सुनकर वायु सेवनार्थ आकाशमें भ्रमण करने वाले देवता लोग अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए कहने लगे कि क्या कारण है आज अकस्मात् यह क्या हुआ जो देवी क्रुद्ध हो गई है । तदनु अपने २ विमानोंपर आरूढ हुए वे युद्ध स्थलमें आये । और देवीका विस्मापक घोर युद्ध देखने लगे । भद्रिका बडेही कुशल गणोंके सहित युद्ध कर रहीथी । जिसके युद्ध कौशल्यको देखकर देवतालोग निश्चय करते थे कि इसके साथ विवाद कर मत्स्येन्द्रनाथजी ने बडी भूल की है । इस समय मत्स्येन्द्रनाथजी शान्त स्वभावसे खडे हुए देवीके युद्ध चातुर्यका तथा उसकी शक्तिशालिताका अनुमान कर रहेथे । देवीने जब आपको इस प्रकार सानन्द खडे देखा तब तो अपने प्रयोगित वाणों को निष्फल गये निश्चित कर अमोघ वज्रास्त्र छोडा । उसको इस अन्तिम अस्त्रके सफल होनेकी पूर्ण आशाथी परं हतभाग्य प्रबलमन्त्रसे निरुद्ध हो वह भी किम्प्रयोजनही रहा । यह देख देवीके शोकका कुछ ठिकाना न रहा । अबतो बहिरसे आग्नेयास्त्रकी और अन्तरसे शोककी अग्निसे दंदह्यमान हुई वह विचलित सी हो गई । तदनन्तर अनुयायिनी योगिनियों के प्रबल उत्साहसे उत्साहित हो कुछ देरमें वह फिर अपने होशमें आई । और अकर्मण्यता प्रकट न करनेके लिये उसने अनपेक्षित भी एक धूम्रवाण और छोड़ा । जिससे चारों दिशा अन्धकारमयी होगई । इसके ऊपर मत्स्येन्द्रनाथजीने वायवीय मन्त्रके

साथ विभूति फैंक दी जिससे प्रवलवेगवायु चलने लगा। अवतो धूमका एक जगह ठहरना असम्भव होगया। कुछ ही देरमें देखते २ न जानें धूम कहांसे कहां चला गया। तदनन्तर मत्स्येन्द्रनाथजीने फिर कुछ विभूति फैंकी। जिससे देवीको मूर्च्छा प्राप्त होगई। यह देख अन्य शङ्किनी योगिनियोंने महा कोलाहल किया जिसके श्रवणमात्रसे भयभीत हुए पशुपक्षी इधर उधर दौडने लगे। ऐसी दशामें आवश्यकता इस वातकी थी कि उन विचारियोंको कुछ शान्तिका अवलम्बन कराया जाता। पर वात उलटी ही हुई। भद्रिकादेवीने पृथिवीपर गिरते २ और भी महा भयङ्कर सोर मचाया जिसको सुनकर प्रतीत होताथा मानों प्रलयकाल समीप आगया है। उस घोर शब्दसे प्राणियोंके भयकी तो कौन क्या वात कहे पर्वत भी कम्पते दिखाई देतथे। वृक्ष स्वतः ही पृथिवी से अधर हो इधर उधर दौड़ने लगेथे। इस प्रकार यद्यपि कुछ देरके लिये समस्त प्राणी सङ्कटमें पड गयेथे तथापि यह कहना उचित नहीं कि उस समय देवी सुखका अनुभव करती हो। वह मूर्च्छित हो उस दशामें पहुँचीथी जिसको अपने प्राणोंका भी सन्देह होने लगाथा। इसी हेतुसे अत्यन्त शीघ्रताके साथ उसने श्री महादेवजीका स्मरण किया। तथा अभ्यर्थनाकी कि भगवन् इस अवसर पर मुझे महासङ्कट प्राप्त हुआ है। अतः शीघ्र रक्षा करो२। इस समय आपके अतिरिक्त मेरा कोई आश्रय नहीं है। हे कैलासाधीश में आपकी दासी हूं। अतः शीघ्र उपस्थित हुइये। यह सुन भक्तवत्सल दयानिधि श्री महादेवजीसे कुछ क्षण भी कैलासमें न ठहरागया। देवीकी आर्त्तवाणी सुनकर आपका हृदय आर्द्रीभूत होगया। अतएव आप तत्काल ही वहांसे प्रस्थान कर घटनास्थलमें पहुँचे। ठीक उसी समय जब कि मत्स्येन्द्रनाथजीने श्री महादेवजीको अकस्मात् सम्मुख आते देखा तव कतिपयपादक्रम आगे वढकर शिर नमन तथा आदेश २ शब्दपूर्वक उनका स्वागत किया। शिष्यकी प्रणतिका प्रत्युत्तर दे श्री महादेवजीने कष्टदशामें पड़ी हुई देवीकी ओर देखा। और मत्स्येन्द्रनाथजीसे कहा कि देवी तो घोर कष्टका अनुभव कररही है। तुम धन्य हो जिसका पराजय करना दुःसाध्य था उसको तुमनें नीचा दिखला दिया। एवं इसको जो अपने सामर्थ्यका महान् अभिमान था और उससे वडे २ राक्षसोंको पराजित कर यह अपने आपको अजयमान वैठीथी आज इसको पराजित कर तुमने यह दिखलादिया कि किसीका भी संसारमें अपने आपको अजयमानना सर्वथा अनुचित है। कारणकि इस प्राकृतिक संसारमें एकसेएक अधिक शक्तिशाली अवश्य रहता है। तथा किसी अभिमानीके अभिमानको खण्डिन कर अपने आत्माको सर्वके प्रत्यक्ष दिखला देता है। इस वातका परिचय तुमने अच्छा दे डाला है। अतएव हम तुह्मारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुम अपने अभीष्ट वर की याचना करो। उसे प्रदान कर हम अपने वचनकी रक्षा करेंगे। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि भगवन् जब मैं आपका शिष्यत्वही ग्रहण कर

चुका हूं तब मैं यह नहीं जानता कि जो कुछ दातव्य वस्तु आपके पास थी वह आपने मुझसे छिपाकर रक्खी होगी। ऐसी दशामें बतलाइये मैं आपसे और क्या मागूं। तथापि आपके वचनकी सफलतार्थ मैं आपसे इसी वरकी याचना करता हूं कि मेरे ऊपर आप सदा ऐसी कृपादृष्टि रक्खें कि मैं आपने मार्ग में अविचलित भावसे चलता रहूं। श्री महादेवजीने कहा कि अच्छा ऐसा ही होगा। आज तुह्मारे ऊपर हम अशेष प्रसन्न हुए हैं। कारण कि तुमने आज एक बहुत बडा कार्य कर दिखलाया है। बल्कि इतनाही नहीं तुमने हमारे शिष्यत्वको प्रकाशित कर संसार के इतिहासमें उसे चिरस्थायी बना डाला है। पर अब तुह्में उचित है देवीको शीघ्र स्वास्थ्य की प्राप्ति कराओ। यह अपने अभिमानका पूरा फल पाचुकी है। मत्स्येन्द्रनाथजीने यद्यपि अपने अभियास्त्रका प्रथमही उपसंहार कर लियाथा जिससे भद्रिकासे अतिरिक्त कोई प्राणी इस समय कष्टाभिभूत न था तथापि देवीकी मूर्च्छा निवारणार्थ समन्त्र विभूति प्रक्षिप्तकर आपने शीघ्र गुरुजी की आज्ञाका पालन किया। अबतो भद्रिका शीघ्र सचेत हो उठी। और सम्मुख उपस्थित श्री महादेवजी के चरणोंमें गिरी। तथा अभ्यार्थना करने लगी कि भगवन् मैं आज आपकी महती कृपासेही सजीव विराजमान हूं। अतएव प्राप्तावसरिक अमोघ दयाके विषयमें आपको एकवार नहीं बार २ धन्यवाद है। आप सदा भक्तों के हितकारी और स्वल्प प्रार्थनासे शीघ्र उपस्थित हो उनको अपने आशुतोषत्वका परिचय देने वाले हो। यह सुन श्री महादेवजीने कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसको समझाया कि तुमको इस मत्स्येन्द्रनाथके साथ विवाद करना उचित नहीं था। परन्तु अच्छा जो कुछ हुआ सो तो हो चुका। आगेके लिये सचेत रहनेकी आवश्यकता है। कारण कि यह योगी है किसीसे भी तिरस्कृत नहीं हो सकता है। अतः तुमको हरएक समय इसके अनुकूल रहना चाहिये। श्रीमहादेवी भद्रिकाने आपकी सूचनापर सश्रद्धा शिर झुकाया। और वह मत्स्येन्द्रनाथजीसे अपने कृत्यके विषयमें क्षमा करने के लिये प्रार्थना करने लगी। एवं कहने लगी कि अये मत्स्येन्द्रनाथजी मैं आपकी शक्तिसे सर्वथा अनभिज्ञ थी। अतः अनभिज्ञता वशात् जो मैंने कुछ अनुचित कह सुना डाला हो उसपर आप क्षमा प्रदान करें। तथा ऐसा न समझें कि मैं आभ्यन्तरिक भावसे आपके विषय में द्वेष रक्खूंगी कारण कि मैं जानती हूं यद्यपि आपका अपने कल्याणके निमित्ततो अपनी सिद्धियोंका चमत्कार दिखलाना व्यर्थ है। तथापि मुमुक्षु, जनोंको अपनी ओर आकर्षित करने के लिये तथा अभिमानियोंके अभिमानको नष्टकर उनके हृदयमें वैराग्य स्थापित करने के लिये ऐसा कर दिखलाना कोई व्यर्थ बात नहीं है। अतएव अब मैंभी सदा आपकी आज्ञानुकूल ही रहूंगी। और जोकुछ आप कहेंगे उसे शिरोधार्य समझुंगी। यह सुन कृतज्ञता प्रकट करते हुए मत्स्येन्द्रनाथजीन कहा कि बस इतनाही

करना तुम भी हमारी प्रातावसरिक सहायताके लिये तत्पर रहना । देवीने कहा कि यदि मैं आपकी आज्ञाको पूरी न करूं तो ब्रह्महत्यादि दोषोंसे दूषित होजाऊं। यह सुन देवीको धन्यवाद दे, श्रीमहादेवजी तो कैलासको गये, और मत्स्येन्द्रनाथजी गदा तीर्थ के लिये प्रस्थानित हुए।

इति श्री मत्स्येन्द्रनाथ भद्रकाली युद्ध वर्णन नामक ७ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय ८ ॥

श्री मत्स्येन्द्रनाथजीने जन्मजन्मान्तरोंके पापनाशक, अतिपवित्र सर्वतीर्थोंमें मान्य, श्रीगदातीर्थमें जाकर स्नान किया। और उसी क्षेत्रमें विराजमान श्री हर-हरेश्वर महादेवजीका दर्शन किया। इसी प्रकार स्नान दर्शनादि करते हुए आपके कतिपय दिन व्यतीत होगये। एक दिन अकस्मात् कहींसे आ निकलनेवाले वीरभद्रसे आपका मिलाप हुआ। उसे देखते ही आपने प्रथम प्रणाम करते हुए आदीश २ शद्वकी घोषणा की। और बडे आदरसम्मानके साथ उसे अपना आसन प्रदान कर विनम्र भावसे उसकी कुशल वार्ता पूछी। इसीप्रकार अभिवादन प्रत्यभिवादन करते कराते आप लोगोंका कुछ ही काल व्यतीत हुआथा, इतने ही में बीरभद्र कह उठा कि अये महानुभाव अन्य बात तो सब ठीक है आपके सत्कार और विनम्र भावपर मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूं परं प्रथम यह बतलानेकी कृपा कीजिये कि आपका परिचय[१] क्या है। यह सुनकर मत्स्येन्द्र-नाथजीने उत्तर दिया कि यदि आप केवल मेरे नामसे परिचित होना चाहते हों तो मेरा नाम मत्स्येन्द्रनाथ है। तदतिरिक्त संक्षेपसे समस्त परिचय लेना चातेहों। तो वह यह है कि मैं आपका[२] छोटा भ्राता हूं। यह सुन वीरभद्रकी भ्रूकुटी कुछ ऊपरको चढ गई। अतएव उसने कहा कि आपने निःसन्देह यह असत्य भाषण किया है। यदि आप मेरे भ्राता होते तो मुझ जैसेही तो होते तथा मुझ जैसा पराक्रम और पौरष भी रखते। इनका अभाव सूचित करते हुए भी आप मेरे भ्राता बननेका दावा रखते हैं तो इसकातो यही अर्थ होसकता है जैसा कि किसीका अपने उद्देशसे किसी उच्च कुलका नाम लेकर अपना गौरव बढाना होता है। इसपर मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि पराक्रम और पौरष कोई ऐसी वस्तु

---

१ यह सम्भव नहीं कि वीरभद्रको मत्येन्द्रनाथजीका परिचय प्रथम न होगा। इतना होनेपर भी उनका अनभिज्ञता प्रकट कर विवादमें परिणत होजाना किसी गूढ रहस्यका द्योतक है। २ श्री महादेवजीने दोनोंको ही पुत्रत्वेन स्वीकार कियाथा।

नहीं जो वस्त्रादिकी तरह प्रत्यक्षतया शरीरपर धारण कीजाती हों जिनको देखकर आप निश्चय करलें कि हां इसके पास पराक्रम और पौरुष दोनों विद्यमान हैं। किन्तु वे तो क्रियाके पूर्व अप्रत्यक्ष रहते हैं। अतः उनके प्रत्यक्ष करनेके लिये प्रासावसरिक क्रियाकी अत्यन्तावश्यकता है। यह सुनकर कुछ देर तो वीरभद्र चकितसा हो मत्स्येन्द्रनाथजीके मुखकी ओर देखता रहा तथा यह विचार करता रहा कि इसको किसका इसारा है स्वयं निर्बल जैसा दीखपडता हुआ भी अपना पराक्रम प्रत्यक्ष दिखलानेके अभिप्रायसे मुझे युद्धात्मक क्रिया आरम्भ करनेके लिये बाध्य कररहा है। अन्तमें उसने कहा कि यह ठीक है पाराक्रमिक क्रियाके विना किसीका पराक्रम प्रत्यक्ष नहीं होता है। परं मैं पूछना चाहता हूं कि क्या आपका पराक्रम भी इसी ढंगसे अर्थात् युद्धात्मक क्रियासे ही प्रत्यक्ष होगा। मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि न तो मैं इस बातके लिये उत्कण्ठित हूं और न मैंने यह इस अभिप्रायसे कहा है कि आप मेरे साथ युद्ध करके मेरा पराक्रम देखें। किन्तु मैंनेतो जो सत्य बातथी वही आपके अभिमुख कही है। इसका आप जैसा चाहें वैसा अर्थ लगा सकते हैं। वीरभद्रने कहा कि खैर जो भी कुछहो परन्तु पुरुष अपने आपकी जिस किसी भी कोटीमें गणना करता हो उसके अनुकूल गुण प्राप्त करना ही उसे सर्वथा उचित है। अतः यदि आपने मेरा भ्रातृत्व ग्रहण किया है तो आपको चाहिये कि पौरुषादिमें मेरी समता प्राप्त करलें। मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं अतएव मुझे लज्जा आती है मैं जो पराक्रम प्राप्त करचुका हूं वह आपके सम्मुख नहीं दिखा सकता हूं। कारण कि मेरे ऐसा करनेसे, आपके इस मन्तव्यमें जैसा कि आप मुझे समझबैठे हैं, धोखा उपस्थित होगा। जिसके द्वारा आपको भी अपने मन्तव्यपर पश्चात्ताप करना पडेगा। वीरभद्रने कहा कि यदि यह बात है तो आप निःसन्देह रहें अन्तमें क्या होगा यह तो ईश्वर ही जानें परं इस समय आपके पराक्रमको देखनेसे मुझे जितनी प्रसन्नता होगी उतना धोखा कभी नहीं होसकता है। मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि अच्छा फिर यह बतलाइये किस ढंगसे आप मेरे पराक्रमकी परीक्षा करेंगे। उसने कहा कि प्रथम मल्लयुद्धसे ही होनी चाहिये। अन्तमें जैसा अवसर प्राप्त होगा उसके अनुकूल विचार कियाजायेगा। यह बात मत्स्येन्द्रनाथजीको भी स्वीकृत हुई। और दोनों महानुभावोंका मल्लयुद्ध होना आरम्भ हुआ। युद्ध करते २ बहुत देर होगई दोनोंमेंसे कोई भी पराजित न हुआ। आखिर मत्स्येन्द्रनाथजी

यह सोचकर, कि वड़ा भाई प्रसन्न होजायेगा, जानकर नींचे गिरगये। उनका यह मनोभाव वीरभद्रसे भी छिपा न रहा। अतएव इस व्यवहारसे वह अत्यन्त क्रुद्ध होउठा। उसने सोचा कि मत्स्येन्द्रनाथने स्वयं पराजित हो मेरा अपमान किया है। कारण कि इसका यह अर्थ निश्चित होसकता है कि मत्स्येन्द्रनाथके पराजित करनेमें वीरभद्र असमर्थ था उसका मान रखनेके अभिप्रायसे मत्स्येन्द्रनाथ स्वयं पराजित होगया।(यथार्थ में बातथी भी ऐसी ही। ईश्वरकी अलक्ष्य गतिके अनुसार, या यों कहिय कि इन महानुभावोंने अपना अतथ्य मनोमालीन्य दिखलाकर सांसारिक लोगोंको किसी प्रकारकी शिक्षा देनीथी। खैर जोभी कुछ हो दोनों महानुभावोंका आस्त्रिक युद्ध होना आरम्भ हुआ। वीरभद्रने साधारण पुरुषकी तरह प्रतीत होनेवाले अपने छोटे भाई मत्स्येन्द्रनाथजीसे प्राप्त हुए तिरस्कारका निवारण करनेके लिये मल्लयुद्धका परित्याग कर नागास्त्रका आश्रय ग्रहण किया। जिसके छोडते ही लपलपाती हुई जिह्वाओंवाले अनेक सर्प प्रकट हो मत्स्येन्द्रनाथजीकी और दौड़े। यह देख मत्स्येन्द्रनाथजीने उसके ऊपर समन्त्र गारुड़ास्त्रका प्रयोग किया। जिसने समस्त सर्पोंका उपसंहार कर उसे बेकार करडाला। यह देख वीरभद्र कुछ चकितसा होगया। और उसने फिर रुद्रास्त्रसे प्रहार किया। उसके ऊपर मत्स्येन्द्रनाथजीने अस्त्रास्त्रका प्रयोग किया। जिसने वीरभद्रके बाणको व्यर्थीभूत बनादिया। इसी प्रकार उसने जितने बाणोंको प्रयोगित किया उन सबका मत्स्येन्द्रनाथजीने न केवल निवारण ही किया बल्कि उनके सकाशसे अपने आपका बाल तक भी बांका न होने दिया। इसप्रकार मत्स्येन्द्रनाथजीको निर्वाध देखकर वीरभद्रने युद्ध करना छोडादिया। और अपने मन ही मन यह विचार करनेलगा कि अहो क्या ही विचित्र घटना है मैंने कैसे २ विकाल अस्त्र छोडे परं वे मत्स्येन्द्रनाथको कुछ भी बाधित न करसके। नहीं जानते यह कैसा पुरुष है मुझेतो इसको भ्राता कहने में ही घृणा दिखाई-देतीथी यहतो वह निकला जिसको हम ज्येष्ठभाई कहें तो भी अनुचित नहीं होसकता है। तदनु वह शान्त पुरुषकी तरह हंसकर मत्स्येन्द्रनाथजीको धन्यवाद देनलगा। तथा कहने-लगा कि भ्रातः बस परीक्षा होचुकी आपका मेरा भ्रातृत्व सम्बन्ध बतलाना जहां मुझे नासिका सङ्कुचित करनेके लिये बाध्य करताथा वहां अब मैं आपको अपना भ्राता समझने में अपना महान् गौरव निश्चित करता हूं। यदि किसी प्रकार मेरी प्रमत्ता सूचित हुई हो तो क्षमा कीजिये। यद्यपि वीरभद्रने इस तरह ऊपरीभावसे मत्स्येन्द्रनाथजीको

प्रसन्न चित्त बना दिया। परं इस कृत्यसे उसके आन्तरिक मर्ममें गहरा आघात पहुँचाथा। कारण कि जब वह आजतक किसीसे भी तिरस्कृत नहीं हुआ था और उसने अनेक देव, दानव, किन्नर गन्धर्वोंको निस्तेज बना डाला था, तब अपना मान मर्दन करने वाले मत्स्येन्द्रनाथजीके साथ वह अपनी आभ्यन्तरिक सहानुमति कैसे रख सकताथा! खैर जो भी कुछ हो आभ्यन्तरिक हो वा बाह्य वीर भद्रकी प्रसन्नतासे मत्स्येन्द्रनाथजी भी अती वानन्दित हुए। और वीरभद्रकी विनम्रवाणीपर कृतज्ञता प्रकट करने लगे। (मेरे हृद्य पाठक वृन्द, सम्भव है आप इस बातपर अरुचि प्रकट करते होंगे कि जब योगियोंके लिये मोक्षका साधक ज्ञान और ज्ञानका साधक निरन्तर सामाधिक अवस्था है, तब उसमें निरन्तर प्रवृत्ति न रखते हुए स्वकीय सिद्धियोंके प्रयोग द्वारा किसीको नींचा ऊंचा दिखानेसे क्या साध्य है अर्थात् ऐसा करना निष्प्रयोजन है। अतएव मत्स्येन्द्रनाथजी के, न केवल योगी हो कर बल्कि योगिसमाजके प्रथम पुरुष हो कर भी, ऐसा करादिखलानेमें कोई तत्वता प्रतीत नहीं होती है। परन्तु आपको इस परामर्श के पूर्व भद्रकाली के कथन पर ध्यान रखते हुए उसके मन्तव्यपर विश्वास करना चाहिये जैसा कि उसने बतलाया है कि आपका अपने कल्याणकेलिये अनपेक्षित भी सिद्धि चमत्कार, मुमुक्षुजनों को अपनी ओर आकर्षित करनेमें सहायक और इसी हेतुसे अपेक्षित तथा अत्यर्थ है। इसके अतिरिक्त सिद्धियोंके प्रयोगमें मत्स्येन्द्रनाथजीका और भी आशय छिपा हुआ है। और वह यह है कि आप इस बातको संसारमें खूब प्रकट करदेना उचित समझते थे कि योगमें निपुणता प्राप्त करना न केवल मोक्षके अधिकारियों को ही लाभ पहुँचा सकता है, बल्कि जो मनुष्य संसारमें अपना उत्कर्ष चाहते हैं, वा राष्ट्र निर्माण करना चाहते हैं, और सार्वभौम बनना चाहते हैं उनके लिये भी असाधारण लाभ पहुँचा सकता है। वे मनुष्य जो कार्य, लक्षोंसैनिकोंसे कतिपय वर्षोंतक पूरा नहीं कर सकते हैं, वही कार्य इस कुछ कालके प्रयत्नसे साध्ययोगके प्रभावद्वारा बातकी बातमें सिद्ध कर सकते हैं। इसके विषयमें उदाहरणकी अन्वेषणार्थ कहीं दूर जानेकी आवश्यकता ही नहीं है। जिस वीरभद्रने बडे २ योधाओंका अभिमान खण्डित कर दक्षका यज्ञ ध्वंसित कर डालाथा उसी वीरभद्रकी मत्स्येन्द्रनाथजी के सम्मुख एकभी बात पेश न गई। अस्तु) जो भी कुछ हो असल बाततो यह है आज कलके हमलोग उनके अभिप्रायको समझ नहीं पातेहैं। और अनभिप्रायको उनका समझ कर अपने आपको भूलके मार्गपर

चलाते हुए भी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। और यदि कोई महानुभाव उसको सच मुच भूल समझकर उसपर स्वयं न चलता हुआ हमको ज्यों २ चेतावनी देता है और उस भूलके मार्गपर चलनेसे बन्ध करनेका प्रयास करता है त्यों २ हम अधिकाधिक उसकी पुष्टी कर उसीको ग्रहण किये जाते हैं अस्तु)। श्री मत्स्येन्द्रनाथजी वीरभद्रसे सत्कृत हो देशान्तर पर्यटन के लिये प्रस्तुत हुए।

इति श्री मत्स्येन्द्रनाथ वीरभद्र युद्धवर्णन नामक ८ अध्याय।

अनुवादक—चंद्रनाथ योगी.

॥ अध्याय ९ ॥

श्री मत्स्येन्द्रनाथजी गदातीर्थसे गमन करने के अनन्तर जनों को योगात्मक अद्वितीय औषधका मर्म समझाते हुए कुछ कालमें श्री द्वारकापुरीमें पहुँचे। वहां जब नगरी में यह सूचना विस्तृत हुई कि श्री मत्स्येन्द्रनाथ योगी आज यहां पधारे हैं तबतो बहुत मनुष्य दर्शन करने के लिये आये। तथा जिसकी जैसी शक्तिथी उसके अनुसार सभी लोग भेटपूजा लाकर मत्स्येन्द्रनाथजी के अर्पण करने लगे। कितने ही पुरुष जो असार संसारके विविध दुःखोंसे आकुल हो मत्स्येन्द्रनाथजीकी विशेष सेवामें तत्पर हो गये थे वे आपके द्वारा उन विविध दुःखोंकी विनाशक योगरूप असाधारण औषधका तत्त्व समझकर सदाके लिये सुखी बन गये। कुछ समय तक इस कार्य को पूरा कर श्री मत्स्येन्द्रनाथजी यहांसे भी देशान्तर भ्रमण के लिये प्रस्थानित हो गये। और कच्छ, सिन्धु, आदि कई एक देशोंका उल्लँघन कर आप कतिपय मासमें, अनेक प्रकारके पुष्पोंकी सुगन्धसे सुगन्धित, नाना फल संयुक्त वृक्षोंकी मालासे आच्छादित, असंख्य जलझरनों वाले, अति शोभायमान, श्रीमहादेवी हिङ्गलाजके पर्वतमें, पहुँचे। यहां प्रत्येक स्थानमें देवियोंका बड़ाही प्राधान्य था। और एक सुशोभित स्थानमें श्री हिङ्गलाज देवीका अति रमणीय सिंहासन विराजमानथा। जिसमें सहस्त्रों तो क्या लक्षोंका सुवर्ण लगा हुआ था। ठीक इसीके ऊपर षोडश कलाओंसे सुशोभित श्री महादेवी हिङ्गलाज विराजमान थी। जिसके चार भुजा और शिरपर स्वर्णमय मुकट शोभा पारहा था। जिस वशात् सुन्दर रूपवती जगदम्बिका श्री महादेवीजीका रूप और भी दिव्यतर दीखपडता था। ऐसी ही दशामें विराजमान हुई, ऋद्धि सिद्धिकी दात्री, सन्तहितकारिणी पवित्रदृष्टि वाली, श्री हिङ्गलाजदेवी तीनोंलोक चौदह भुवनकी रक्षा करती थी। जिसकी सेवाके लिये अनेक देवियां हरएक समयपर उपस्थित रहतीथीं। और द्वारपर अष्ट भैरव सदा नियुक्त रहते थे। इसी महादेवी हिङ्गलाजजीके दर्शन के निमित्त श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी वहां पहुँचे।

और ज्यों ही पर्वतके ऊपर चढने लगे त्योंही भैरवकी दृष्टि आपके ऊपर पडी। उसने देखतेही आपको ऊपर जानेके लिये निषिद्ध करदिया। साथ ही पूछा कि तुम कौन हो तुह्मारा नाम क्या है किस कारणसे यहां आये हो। आपने उत्तर दिया कि हम योगी हैं मत्स्येन्द्रनाथ हमारा नाम है। श्रीमहादेवी हिङ्गलाजजी के दर्शनार्थ यहां आये हैं। यह सुन भैरवने कहा कि खैर कुछ हो परं ऊपर जाने नहीं पाओगे। आपने कहा कि क्यों यह क्या कारण है हम ऊपर क्यों नहीं जा सकते हैं। उसने कहा कि पर्वके अतिरिक्त समयमें किसीभी मनुष्यको, खास करके पापी को महादेवीके दर्शन करनेका न तो कोई अधिकार है और न ऐसे मनुष्यको ऊपर जानेदनेके लिये देवीकी आज्ञा ही है। अतएव मुझे यह जाननेका पूरा प्रमाण मिलजाय कि आप वैसे मनुष्य नहीं हैं और श्रद्धाके साथ महादेवीके दर्शन निमित्त ही यहां आये हैं तो मैं ऊपर जानेके विषयमें कोई आपत्ति नहीं करूंगा। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजीके मुखसे कुछ आभिमानिक* वचन निकला। और वह यह था कि आपने कहा कि हम स्वयं तो पापी नहीं परन्तु पापियोंके इस दुःखमय असार संसार रूप समुद्रके पार होनेके लिये नौका रूप हैं। अतएव श्री महादेवीके दर्शन करनेसे हमको रोकरखना उचित नहीं होगा। भैरवने कहा कि यह सब ठीक है परं मैं आपके, कि हम पापियोंके पार होनेके लिये नौका रूप हैं, इस कथन पर सन्तोष नहीं करसकताहूं। और शंका करताहूं कि आप ऊपर जानेके अयोग्य मालूम होते हैं। आपके इस कथनने आपकी श्रेष्ठतापर आघात पहुँचा कर ही मेरे उक्त निश्चयमें सहायता दी है। कारण कि ऐसे पुरुषको क्या आवश्यकता पडी जो देवीके दर्शनार्थ यहां आता। यदि आताभी तो अपने मुखसे अपनी ऐसी कीर्तिका कभी वर्णन नहीं करता। अतः ऐसा कहकर तुमने यह प्रकट करदिया कि तुम कोई छली पुरुष हो। अपने महत्त्वकी डींग हांककर हमारी आँखोंमें धूलि डालना चाहते हो। परं यहां क्या छद्मता चल सकती है। अतः जाओ वापिस लौट जाओ जो कुछ यहां तक आ गये हो सो माफ किया जाता है। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि अहो क्या ही आश्चर्यकी बात है यदि तुह्मारे पूछनेके अनुरोधसे हम अपना याथार्थ्य न बतलाते तो हमारा ऊपर जाना रोका जाता। और बतलाया तो भी

* जिस बातका पूरा अर्थ जिस मनुष्यमें घटता हो उसके विषयमें स्पष्ट कहदेना अभिमान नहीं कहलाता है। बल्कि इससे यह सूचित होता है कि उसका अपने कर्तव्य पर पूरा विश्वास है।

रोका जाता है। बल्कि रोकाही नहीं हमको छलियोंकी उपाधिसे विभूषित किया जाता है। तदनु आपने निश्चय किया कि इसको हम अपनी वास्तविक स्थितिका और कैसे निश्चय करावें। हम अपने विषयमें श्रेष्ठता और सत्यता सूचित करनेके लिये जितने ही वाक्योंका प्रयोग करेंगे यह हमको उतनाही झूठा और छली समझेगा। अन्ततः आपने कहना पडा कि खैर जो भी कुछ हो हम छली हैं देवीके दर्शन करनेके अयोग्य हैं बल्कि सब दोषोंके भण्डार हैं और पापियोंके भी पापी हैं परं यह बतलाइये किसी भी प्रकार ऊपर जाने दोगे कि नहीं। भैरवने प्रतिज्ञात्मक कहा कि नहीं तुम ऊपर नहीं जा सकोगे। कारण कि हमने तुम्हारे आमत्वको जैसा है वैसा समझलिया है। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथ-जीने आन्तरिक भावसे स्मरण किया कि अहो ठीक कहाहै सत्यतासे कार्यमें विलम्ब ही होता है। परं करें क्या दूसरा उपाय दृष्टिगोचर नहीं है। अतएव आपने उसको सचेत किया कि अये भैरव तू अकेला है। यदि मैं ऊपर जाना चाहूंगा तो तेरेलिये मेरा रोका जाना असम्भव होजायेगा। परं इस घटनासे पूर्व में यही प्रार्थना करलेना उचित समझताहूं कि तुम मेरे मार्गमें कण्टकस्वरूप न बनो। और मुझे निर्विघ्न जाने देकर श्रीमहादेवीके दर्शनोंका लाभ उठाने दो। भैरवने कहा कि तुम्हारा मुझे कण्टक बतलाना अपनी धृष्टताका दिखलाना है। कोई चोर चोरी करनेकेलिये घरमें घुसे तो उसका निरोध करनेवाला रक्षक कण्टक कैसे कहाजासकता है। जब वह सेवकता और रक्षकतासे नियुक्त कियाजाचुका है तो क्या उसका यह कर्तव्य नहीं है कि जिसपर उसका विश्वास न हो उसको स्वामीके घरमें जहांतक होसके प्रविष्ट न होनेदे। ठीक यही कर्तव्य मेरा भी है। इतना होनेपर भी मैंतो अबतक यही सोच रहाथा कि तुम जहांतक आगे बढआये हो इसपर कुछ न कहूं। और क्षमाप्रदानकर शान्तिके साथ वापिस लौटादूं परं उलटा चोर कोतवालको दांडे-वाली कहावतके अनुसार तुमतो अकेला समझकर मेरे ऊपर ही कृपा कररहेहो। अतः तुम अवश्य दण्डके भागी हो। अब मैं तुम्हें तुम्हारे असली आपेमें लाकर छोडूंगा। तुम हुसियार होजाओ। यह सुनते २ मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि अये भैरव, तुम सत्य समझो हम जितना कुछ करसकते हैं उतना ही निष्कपटतासे कहडालते हैं। हमारे शुद्ध हृदयसे निकलनेवाले शब्दोंका तुम जो भी कुछ अर्थ लगाओ, लगासकतेहो। रहगई हमको दण्डित करनेकी बात, हम फिर सत्य कहडालते हैं तुम्हारे अकेलेके द्वारा तो यह कार्य होना दूर

रहा तुम आठों भैरव मिलकर आओ तो भी हम दण्डित नहीं होसकते हैं। बस क्याथा। इससे भैरवके शरीरमें प्रज्वलित हुई अग्निको और भी घृत मिलगया। जिसकी उष्णतासे विवश हो भैरव युद्ध करनेकेलिये शीघ्र तैयार होगया। यह देख मत्स्येन्द्रनाथजीने अपनी झोलीपर हस्त डाला। और उससे एक चुकटी विभूति निकालकर उसे रुद्रशक्तिमन्त्रके जापपूर्वक अपने मस्तकपर धारण करलिया। जिसके अमोघ प्रभावसे आप महातेजस्वी हुए युद्धके लिये खडे होगये। ठीक इसी समय भैरवने प्रथम आपके ऊपर अपने साधारण अस्त्रोंका प्रहार किया। जो मन्त्रशक्तिसे निषिद्ध हुए मत्स्येन्द्रनाथजी तक पहुँच भी न सके। उनका व्यर्थ परिश्रम देखकर उसने और भी कतिपय अस्त्र छोडे। परं मत्स्येन्द्रनाथजी अपने स्थानपर तादवस्थ्य ही डटे खडेरहे। किसी भी अस्त्रशस्त्रके समीप न आनेसे आपका बाल तक बांका न हुआ। तत्काल ही किसीके द्वारा सूचना मिलने पर प्रधान द्वारपर विद्यमान रहनेवाले अवशेष सात भैरव भी घटनास्थलमें आपहुँचे। और बड़ी तड़कभडकके साथ मारलो २ पकडलो २ आदि अनेक प्रकारके भयंकर शब्दोंकी घोषणा करते हुए अत्यन्त समीप आकर अपने २ वातास्त्र–कामास्त्र–ब्रह्मास्त्र–रुद्रास्त्र–दानवास्त्र–कृतान्तास्त्र–इन सातों अस्त्रोंका प्रयोग करने लगे। उधर मत्स्येन्द्रनाथजी भी अचेत नहीं खड़ेथे। अतएव आपने प्रत्येक अस्त्रका प्रतिद्वन्द्वी मन्त्र पढकर कुछ विभूति उधर प्राक्षिप्त की। जिसके अमोघ प्रभावसे सातों अस्त्र निष्कार्य होगये। जिनका फिर प्रहार करना व्यर्थ समझागया। तदनु मत्स्येन्द्रनाथजीने एक चुकटी भस्मी और फैंकी। जिस वशात् अष्ट भैरवोंके शरीरकी समस्त शक्ति क्षीणजैसी होगई। ऐसा होनेपर वे मूर्च्छित हो महादुःखी हुए। और त्राहि २ हा कष्ट शब्दोंकी कारुणेय घोषणा करनेलगे। इसी अवसर पर इस घटनाके द्रष्टा किसी अनुचरने महादेवी हिङ्गलाजजीके सम्मुख उपस्थित हो यह समग्र वृत्तान्त कहसुनाया। और कहा कि एक ऐसा मनुष्य आया है जैसा हमने कभी आजपर्यन्त न देखा न सुना है। जिसके द्वारा महाबली अष्ट भैरवोंको भी मूर्च्छावत् अपरिमित कष्टका अनुभव करना पडा है। अतः आपने उनकी जहांतक होसके शीघ्रताके साथ सहायता करनी चाहिये। विलम्ब होनेपर न जानें वे किस दशामें परिणत होजायेंगे। यह सुन महादेवीने, ऐसा कर दिखलाना मनुष्यका कार्य नहीं है, यह कहकर अपने मुखपर उदासीनता धारण की। और वह अनेक प्रकारके सङ्कल्पविकल्पात्मक समुद्रमें गोते

खानेलगी। परन्तु अन्तमें कुछ सावधान हो उसने चामुण्डादेवीको बुलाया। तथा समझाया कि अपने पर्वतपर कोई मनुष्य आया है जो जानपड़ता है कोई तान्त्रिक होगा। जिसने अष्ट भैरवोंको भी सुनाजाता है मूर्च्छित करडाला है। अतः तुम जाकर उनकी सहायता करो। और देखो ऐसा कैसा मनुष्य है। हिङ्गलाज देवीकी आज्ञा प्राप्तकर अनेक गण अनेक देवी और योगिनियोंके सहित चामुण्डा बडे धूमधामसे तैयार हो युद्धस्थलमें आई। और मूर्च्छित अष्ट भैरवोंको देखनेके अनन्तर मत्स्येन्द्रनाथजी को देखतेही अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी। तथा अधैर्य के साथ सहसा कह उठी कि अये छद्मवेषी तुमने किस कारणसे भैरवोंको इतना कष्ट दिया है। क्या तुमने हमारे पराक्रमकी ओर कुछ भी दृष्टि नहीं डाली। हम उसी महादेवी हिङ्गलाजकी अनुयायिनी हैं जो तीनोंलोक चौदह भुभनकी रक्षा करने वाली है। इतना होनेपरभी तुमने अष्ट भैरवोंको जकडी भूत बनाकर न केवल हमारा तिरस्कार किया है। बल्कि जगदम्बिका भगवती हिङ्गलाज देवीका तिरस्कार किया है। अच्छा जो भी कुछ हो तुमारी इस लापरवाही का तुम्हें अभी नतीजा मिल जायेगा तुम कुछक्षण ठहरो। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथजी को सचेत करती हुई चामुण्डाने अपने चारों हस्तोंमें शस्त्र धारण किये। यह देख मत्स्येन्द्र नाथजीने विनम्रभावसे सूचना दी कि भगवति, हिङ्गलाजकातो मैं दास हूं इसी लिये सुदूर देशसे चलकर बडी श्रद्धाके साथ उनके दर्शन करने के लिये यहां आया हूं। परं इसका यह अर्थक भी नहीं हो सकता कि जहां मैं हिङ्गलाजजीका दास हूं वहां अष्ट भैरवोंका वा आपका तथा किसी अन्यका द्वेषी हूं। जिससे भैरवोंके साथ वा आपके साथ मुझे कुछ विवाद करना पडे। किन्तु मैं तो किसीसे द्वेष कराना वा उसे कष्ट देना अपने मनसे भी नहीं चाहता हूं। इतना होनेपर भी मेरे द्वारा जो भैरवोंको कष्ट पहुँच रहा है इस विषयमें आप सहजसे ही अनुमान कर सकती हैं कि इन भैरवोंकाही कोई असाधारण अपराध है न कि हमारा। तथापि क्या करें जब इन्होंने हमारा निरोध ही नहीं किया बल्कि हमको पापी आदि अनुचित शब्दोंसे भी अलङ्कृत किया तबतो हमको भी अपनी शक्तिका भरोसाथा। अतएव उसके अनुकूल कार्य करना ही पडा। इस कथनसे देवीका प्रवर्द्धित क्रोध कुछ शान्त हुआ सही परं तोभी वह अपने सज्जीकृत शस्त्रको प्रयोगित किये विना न रही। ठीक उस अवसरपर जबकि चामुण्डाने शस्त्रको प्रहृत किया तब मत्स्येन्द्रनाथजीने

भी बडी चतुराई के साथ स्थानका परिवर्तन कर उसके वारको व्यर्थ किया। इसी प्रकार अन्य सहायकोंका भी, जो कि चामुण्डाके साथही सहसा टूट पडे थे, प्रहार निष्फल किया। यह देख कुछ हतोत्साह हुई समस्त देवी और योगिनी मारलो २ पकडलो २ के अनेक थोथे शब्द करने लगी। तथा अन्य अनेक असाधारण अस्त्रोंका प्रयोग करने लगी। इतना होनेपर भी उनके प्रत्येक अस्त्रका उत्तर देते हुए मत्स्येन्द्रनाथजी अपने प्राकृतिक शान्त स्वभावसे एक स्थानमें डटे खडे रहे। चामुण्डाने अपने पक्षके समस्त अस्त्रोंको किम्प्रयोजन जानकर फिर शस्त्रसे धावा किया। परं मत्स्येन्द्रनाथजी इसवार भी स्फूर्तिके साथ स्थान बदल कर अन्यत्र जा खडे हुए। और उनके शास्त्रिक प्रहारसे सर्वथा निःसङ्ग ही रहे। अबतो देवियोंका उत्साह बिलकुल शिथिल हो गया। वे व्यर्थ परिश्रम हुई एक दूसरीकी और देखने लगी। तथा आत्यन्तिक आश्चर्य सूचक शब्दोंका उद्घाटन करने लगी। इतना होनेपर भी उनके आश्चर्यकी अभी समाप्ति नहीं होने पाई। कारण कि मत्स्येन्द्रनाथजीने औन्मादिक मन्त्रके जाप पूर्वक कुछ विभूति उनकी ओर फैंक दी। जिसके अनिवार्य प्रभावसे समस्त देवी और योगिनी उन्मत्त हो गई। जिन्होंने अपने २ शस्त्र पृथिवी पर रख वस्त्र भी दूर फैंक दिय। जो वायु द्वारा शीघ्र उडा दिये गये और वे स्वयं नग्न हो मत्स्येन्द्रनाथजी की कुछ ही दूरीपर असाधारण नृत्य करने लगी। इसी प्रकार करते २ बहुत देर हो गई। वे नाच कूद कर अत्यन्त श्रमित हो गई। तबतो मत्स्येन्द्रनाथजीने कुछ विभूति फिर उधर फैंकदी। जिससे उनकी उन्मत्ता दूर हुई। और वे एक दूसरी की और देखकर हंसने लगी। तथा कहने लगी कि अहो यह क्या माया हुई कहांतो हम बडे जोर सोरके साथ युद्ध करने के लिये यहां आईथी कहां हमारी यह दशा हो गई कि वस्त्र शून्य हो नृत्य करने लगी। अस्तु) उक्त प्रकार परामर्श कर अत्यन्त लज्जित हुई देवियां शीघ्र दौडकर हिङ्गलाजके समीप गई। उसने जब कि दूरहीसे शिरोमणि चामुण्डा आदि देवियों को वस्त्र विरहित देखा तबतो महाशोक प्रकट किया। तथा अत्यन्त समीप आनेपर उसने उनसे पूछा कि अये तुह्मारी यह क्या दशा और कैसे हुई। उन्होंने समग्र वृत्तान्त जो कि उनके साथ बीतचुकाथा कह सुनाया। और कहा कि आज पर्यन्त ऐसा पुरुष कभी न देखा और सुना गया था। जो युद्ध विद्या एवं अन्य विद्याओंमें इतना प्रवीण हो। जिसने अष्ट भैरवोंकी ही नहीं हमारी यह हास्यास्पद तथा लज्जाप्रद दशा करडाली है। हिङ्गलाज देवीने फिर

पूछा कि वह किस प्रकारका पुरुष है तथा उसका चिन्ह क्या है। उन्होंने बतलाया कि शिरपर जटा गलेमें शेली कन्धमें छोटीसी झोली आदि चिह्नोंसे चिह्नित वह भस्माङ्गी पुरुष है। जिसका स्वभाव निर्मल और चेहरा असह्य तजस्वी दीख पडता है। यह सुनते ही महादेवी हिङ्गलाजने प्रसन्न मुखसे कहा कि वह तो मेरा पुत्र है। भैरवोंने अन्याय किया जो उसको ऊपर आनेसे रोक रक्खा। चलो हम चलकर अपने पुत्रको समझा देती हैं। इस कथनकी सत्यता देखने के लिये समस्त देवी तैयार हो हिङ्गलाजमाता के साथ फिर घटनास्थलको लौटी। ये ज्योंही उसस्थानके समीप पहुँची त्योंही मत्स्येन्द्रनाथजी की दृष्टि इधर पड़ी। तत्काल ही षोड़शकला युक्त जगज्जननी भगवती महादेवी हिङ्गलाजको सम्मुख आते देख मत्स्येनाथजीने अपना आसन छोड़दिया। और कतिपय कदम आगे चलकर माताका स्वागत करने के अनन्तर आपने उसके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया। तथा विविध प्रकारसे उसकी स्तुति भी करी। आपके इस सद् व्यवहारसे सत्कृत हो अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक हिङ्गलाजजीने आपको अपने गोदमें बैठा लिया। एवं अनेक प्रैतिक चेष्टाओं का उद्गारकर उसने आपकी हार्दिक कुशल वार्ता पूछी। आपने हिङ्गलाजके गोदमें बैठाने के समय जैसे ही मन मोहनी बालकरूप धारण किया था ठीक उसीके अनुकूल अत्यन्त मधुर वाणीसे उत्तर प्रदान किया। जिससे प्रसन्न भी महादेवी और प्रसन्न हुई। और मत्स्येन्द्रनाथजीसे कहने लगी कि अये पुत्र इन भैरवोंने तुह्मारे साथ जो भी कुछ सभ्या सभ्यवर्ताव किया हो उसपर क्षमा प्रदान करो। तथा इन भैरवोंको अब तादवस्थ्य सचेत-कर दो। क्योंकि ये अब अपने प्रामत्तिक कृत्यका पर्याप्त फल पा चुके हैं। माताजी की यह उचित वाणी सुनकर आप परम हर्षित हुए। तथा उसके कथनानुसार आपने अपनी झोलीसे कुछ भस्मी उद्धृतकर भैरवोंकी तरफ प्रक्षिप्तकी। जिससे तत्काल ही सावधान हो समस्त भैरव अत्यन्त स्नेह के साथ आपकी तथा आपके प्रबल साहसकी प्रशंसा करने लगे। उनके इस निष्कपट प्रवचनपर मत्स्येन्द्रनाथजीने कृतज्ञता प्रकट की। और अपने विषयमें भी आपने उनसे क्षमा करने की प्रार्थना की। प्रार्थना समाप्त होतेही भगवती हिङ्गलाजने मत्स्येन्द्रनाथजीसे कहा कि पुत्र मैं तुह्मारे ऊपर महान् प्रसन्नता प्रकट करती हूं और तुह्में सूचित करती हूं कि मेरेसे तुम किसी अभीष्ट वरकी याचना करो। मत्स्येन्द्र-नाथजीने हस्त सम्पुटी कर अभ्यर्थना करी कि मातः जब आपने मुझे अपना पुत्र स्वकार

किया है तव यह कहना असङ्गत नहीं कि आपकी मेरे ऊपर असाधारण कृपा है। फिर इससे अतिरिक्त अन्य आपके समीप कौन वस्तु है जो इसके महत्त्वको न्यून करने वाली हो। वल्कि सच्च पूछें तो मुझे आवश्यकता ही इस वातकी थी कि में आपकी कृपाका पात्र वनजाऊं। आज वह दिन भी ईश्वरीय इच्छासे उपस्थित हो चुका जिसमें मेरा अभिष्ट पूर्ण हुआ। यह सुन देवीने कहा कि यह ठीक है तथापि मैंने तुमको पुत्रत्वेन स्वीकार किया है और इसीलिये मेरी तुह्मारे ऊपर पूर्ण कृपा है इसी वातका सूचक एक मन्त्रात्मक अस्त्र में तुह्में प्रदान करना चाहती हूं। जिसके प्रहृत करनेपर परिपन्थी अवश्य तुह्मारे वश गत हो जायेगा। मत्स्येन्द्रनाथजीने अत्यन्त श्रद्धाके साथ उसे ग्रहणकर देवीके चरणों में शिर झुकाया। और उससे प्रस्थान करनेकी आज्ञा मांगी। श्रीहिङ्गलाजजीने कहा कि पुत्र आया हुआ स्थान भी तो देखता जाय। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजी माताजी के साथ मन्दिरमें गये। तथा कुछ दिन सानन्दनिवास करने के अनन्तर वहांसे प्रस्थानित हुए।

इति श्रीमत्स्येन्द्रनाथ चामुण्डा युद्धवर्णन नामक ९ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय १० ॥

श्री मत्स्येन्द्रनाथजी हिंगलाजसे चलकर शनैः २ भ्रमण करतेहुए तथा जनोंको योगक्रियारूप अद्वितीय औषधद्वारा इस असार संसारके त्रिविध दुःखसे विमुक्त करतेहुए कतिपय मासके अनन्तर अयोध्यापुरीमें पहुँचे। वहां एक पशुपति नामका राजा, जो कि ठीक श्रीरामचन्द्रजीके वंशमें उत्पन्न हुआथा, राज्य करताथा। जो श्रीरामजीकी गद्दीके ऊपर, अपने आपको कीटकी तुल्य समझता हुआ पैरतक नहीं रखताथा। और श्रीरामजीके उद्देशसे निर्मित की हुई राजगद्दीके सम्मुख ही नीचेकी तरफ एक साधारण आसनपर बैठकर उनकी प्रतिमाका ध्यान कियाकरताथा। एवं इसी कर्ममें प्रवृत्त रहकर प्रतिदिन एक प्रहर व्यतीत कियाकरताथा। अस्तु। एक दिन ऐसा हुआ जब कि मत्स्येन्द्रनाथजी भिक्षाकेलिये नगरीमें गये तब जिस मन्दिरमें श्रीरामचन्द्रजी की गद्दीथी, जिसका कि राजा प्रतिदिन दर्शन करने तथा सत्कार करने जाताथा। दैवयोगसे आप उसी मन्दिरके द्वारपर जा निकले। ठीक वही समय राजाके पूजार्थमन्दिरमें आनेका था। अतएव राजासाहिब भी वहीं आनिकले। और ज्योंही पालकीसे उत्तर कर मन्दिरमें जानेलगे त्योंही मत्स्येन्द्रनाथजी भी उसके पीछे २ मन्दिरमें प्रविष्ट होनेकेलिये अग्रसर हुए। ठीक उसी अवसरमें एक राजपुरुषने पुरःसरहो आपको समझानेके अभिप्रायसे कहा कि महाराज अपरिचित पुरुषको मन्दिरमें प्रविष्ट होनेदेना, ऐसी राजासाहिबकी आज्ञा नहीं है। अतःआप कृपा कर वापिस लौट जायें। तब मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि हम रमतेराम अभ्यागत योगी हैं। बहुत दूरसे भ्रमण करते हुए केवल दर्शनार्थ ही यहां आये हैं। इसवास्ते दर्शन करनेसे हमको रोक रखना आप लोगोंको उचित नहीं। यह सुन द्वारपालोंने उत्तर दिया कि हमारे कर्तव्य और कल्याणकारास्ता ही यह है कि हम अपने स्वामीकी तथा उसके वचनकी तनमनधनसे पालना करें। और उसकी आज्ञाके विरुद्ध कुछ भी कार्य न करें। अतः जब उसकी आज्ञा ही यह ऐसी है कि कोई अपरिचित पुरुष मन्दिरमें न घुसने पावे तो ऐसी दशामें हमारे लिये कौन ऐसा रास्ता खुला रहगया कि जिसका अनुसरणकर हम आपको मन्दिरमें जानेदें। हां होसकता है यदि शिविकासे उत्तरनेके समकालमें ही

आप राजासाहिबसे इस विषयकी प्रार्थना करते और वह आपके अप्रातिहत गति होनेकी हमको चेतावनी देते तो कोई वजह नहीं हम आपको रोकरखते । परं करें क्या ऐसातो हुआ नहीं । ऐसी दशामें यदि हम आपको मन्दिर प्रविष्ट होनेदें तो हमारी खैर नहीं होसकती । उनके ये युक्तियुक्त वाक्य सुनकर भी मत्स्येन्द्रनाथजी कुछ मुस्कराये । और उनका अपराध उपस्थित करनेकेलिये आपभीतर ही घुसने लगे । यह देख द्वारपालोंका दिमाकगर्म होगया । और उन्होंने कहा कि अये भिक्षुक, उचित रीतिसे समझाने पर भी यदि आप नहीं मानते हैं तो हमको अपने यथार्थ बलका आश्रय लेनापड़ेगा । यह सुन मन्दिर प्रवेशकी आशा छोडकर मत्स्येन्द्रनाथजी वहांसे अपसरित होगये । और भिक्षा करनेके अनन्तर शीघ्र अपने आसनपर आ विराजे । वहां कुछ क्षण स्थिर रहनेपर जब आपको व्यतीत पूर्वघटनाका स्मरण हो आया तब आपने आभ्यन्तरिक दृष्टिसे देखा कि राजा पशुपति मन्दिरस्थित श्रीरामचन्द्रजीकी गद्दीके सम्मुख पड़ा हुआ साष्टांगप्रणाम कर-रहा है । तत्काल ही आपने अपनी झोलीसे विभूति निकालकर समन्त्र उधर फैंकदी । जिसका उद्देश राजाको निश्चेष्ट करनाथा। अतएव राजापशुपति उसी समय जड़ीभूत होगया। उसकी उठने चलने हिलनेकी समस्त शक्तिक्षीण जैसी होनेसे शरीर पत्थरवत् स्थूल होगया। इस आकस्मिक दुर्विज्ञेय घटनाका अनुभव कर राजा अत्यन्त ही विस्मित हुआ । परं वह इस आशापर कि सम्भव है कुछ देरमें यह अज्ञात व्याधि शान्त होजायेगी, मौनताके साथ तद्वत् स्थिर रहा। और ईश्वरकी अलक्ष्यगतिपर विवेचना करता रहा। तथापि बहुत देर होगई उसका उस व्याधिसे छुटकारा न हुआ। यह देख समीपस्थ सेवकलोग भी आन्तर्धानिक रीतिसे कुछ २ सान्देदिक बार्ता करनेलगे। आखिर ज्यों २ क्षणव्यतीत होनलगे त्यों २ उनका सन्देह अधिकाधिक प्रवर्द्धित होनेलगा । और वे भीतर ही भीतर विचारने लगे क्या कारण है अन्य रीतिसे पूजा न करके महाराज साष्टाङ्गनमस्कारमें ही दत्तचित्त होगये। अबतो भोजनका समय भी आ उपस्थित हुआ । ठीक इसी अवसरमें राजाको विलाम्बित जानकर मन्त्री भी वहां आगया । द्वारपर आते ही उसने जब पार्श्ववर्त्ती लोगोंके मुखद्वारा तथा भीतर जाकर स्वकीय नेत्रोंद्वारा राजाकी वह दशा देखी तबतो वह भी चकित रह गया । और हस्त जोड़कर राजासे कहनेलगा महाराज आज अकस्मात् यह क्या घटना हुई। क्या आपका नियमतो स्खलित नहीं होगया जिससे भगवान् रामचन्द्रजीने ही कुपित हो आपको यह दण्ड दियाहो । राजाने उत्तर दिया कि मुझे नहीं मालूम क्या हुआ और कौन देव कुपित होगया है । और देव ही क्रुद्ध हुआहो मुझे यह भी विश्वास नहीं होसकता है । कारणकि मुझे अपने कर्तव्यपर पूरा निश्चय है मेरेसे कोई ऐसा कृत्य नहीं बनाहै जो सरासर अनुचित हो। और उसके उद्देशसे देव मेरे ऊपर कुपित होगया हो । मानलिया कि

किसी अज्ञात रीतिसे हमारी कुछ भूल होगई हो पर मुझे यह विश्वास नहीं होता कि उस अज्ञात भूलपर कुपित हो देव मुझे इतना कठिन दण्ड दे । इससे तो मेरी यह दशा होगई है कि मेरी उठने चलनें हिलनेकी समग्र शक्ति नष्ट होगई । यह सुन मन्त्री और भी आश्चर्यान्वित हुआ । और सेवकोंके सहित राजाके हस्तपैर दबानेलगा। परं वह स्वाभाविक व्याधि नहीं थी जो किसी चिकित्सासे चलीजाती । अतएव मन्त्रीने दबाने तथा अन्य अनेक उपचारोंसे उसको राजाके शरीरसे निकाल दूर करनेका बहुत ही प्रयत्न किया तो भी वह टससे मस न हुई । अर्थात् मन्त्रीके प्रयत्नको सफलता न प्राप्त हुई । इससे मन्त्रीके शोकका ठिकाना न रहा । और वह समीपस्थ सेवक तथा द्वारपालोंसे पूछने लगा कि तुम लोगोंने द्वारपर आये किसी महात्माका तिरस्कार तो नहीं किया है । जिसके कोप वशात् महाराजकी यह दशा हो गई हो । उन्होंने उत्तर दिया कि हां एक महात्मा आज अवश्य यहां आये थे । जिन्होंने महाराजकी साथ ही मन्दिर में प्रविष्ट होनेका साहस किया था । परं उसके अनेक बार प्रयत्न करने पर भी हमने उसको भीतर न जाने दिया। क्यों कि हमारे लिये ऐसी ही आज्ञा है। जिसका पालन करना हमारा कर्तव्य था । सोई हमने किया । जिससे वे महात्मा वापिस तो लौट गये । परं सम्भव है इस व्यवहारसे उनके आशा स्थानमें आघात पहुँचा होगा । और बहुत सम्भव है यह कृत्य भी उन्हींने उपस्थित किया हो । उनके इस कथनसे मन्त्रीकी अन्तरात्मामें यह बात खूब समागई कि निःसन्देह यह घटना ऐसे ही उपस्थित हुई है। अतएव उसने पूछा कि वे कैसे ढंगके महात्मा थे । उनका पूरा २ परिचय दो जिससे उनकी अन्वेषणा कर उनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया जाय । उन्होंने कहा कि वह बड़ाही तेजस्वी पुरुष था । जिसके कर्णोंमें कुण्डल गलेमें शेली कक्षमें झोली शरीर पर भस्मी लगी हुईथी । यह सुनकर मन्त्रीने समग्र वृत्तान्त मन्दिरस्थ राजा साहिब के समक्ष कह डाला । तत्काल ही राजाने आज्ञा प्रदानकी कि वह महात्मा जिस प्रकार मिलसके सोई उपाय करो । मन्त्रीने शीघ्रही राजपुरुषों को विज्ञापित कर मत्स्येन्द्रनाथजीकी अन्वेषणा के लिये नगरसे बाहर भेजदिया । तथा यह कह सुनाया कि एक दो कोश पर्यन्त के जितने बागबगीचे हैं सबमें देखना किसी न किसीमें वे महात्मा तुम्हें अवश्य मिलजायेंगे । राज पुरुष मन्त्रीकी आज्ञापर शिर झुकाकर नगरसे बाहर निकले । और कई एक मण्डलियोंमें विभक्त हो प्रत्येक आरामका निरीक्षण करने लगे । सौभाग्यवश उनमेंसे एक मण्डली सरयू नदी की ओर रवाने हुई । और महात्मा प्राय ऐकान्तिक स्थलको ही रुचिकर समझा करते हैं यह विचार करती हुई ज्यों ही इधर उधर दृष्टि प्रक्षिप्त करने लगी त्यों ही उसकी

दृष्टि सरयू नदीके तटस्थ श्मशानों में विद्यमान एक बट वृक्षकी छायामें सानन्द बैठे हुए मत्स्येन्द्रनाथजी के ऊपर पडी। राजपुरुष आपको देखतेही आभ्यन्तरिक भावसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। एवं कुछ क्षणमें आपके समीप जाकर अनेकवार साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगे। तथा कहने लगे कि भगवन् क्षमा कीजिये हम आपको कष्ट देनेके लिये आये हैं। आपके चरणारविन्दको हमारे राजासाहिबने स्मृत किया है। अतः हम दासों तथा महाराजके ऊपर आप अपनी महती कृपा करें। और नगरमें चलकर अपनी चरणरजसे उनका उद्धार करें। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि हमलोग योगी हैं। क्षुधानिवारणार्थ एकवार ही नगरीमें भोजन लेनेके लिये जाते हैं। फिर विनाप्रयोजन नगरीमें जाना उचित नहीं समझते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी बात है कि हमलोग स्वतन्त्र हैं किसीका कभी कोई अपराध नहीं करते हैं इसीलिये हम किसीका भय भी नहीं रखते हैं। फिर हमें क्या आवश्यकता है जो किसीके महलमें जायें और उसका दुःख देखकर अपनी आत्माको भी दुःखमें डालदें। इसपर राजपुरुषोंने कहा कि यह ठीक है आपके बचनके प्रत्येक अक्षर सत्यतासे परिपूर्ण होरहे हैं जिनके विषयमेंतो हमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं। परं हमलोग यह समझते हैं कि आपलोग महात्माओंका देशाटन, परोपकारके उद्देशसे है न कि स्वार्थके लिये। फिर किसी आत्माके सुखप्रदानार्थ आपका नगरीमें जाना निष्प्रयोजन कैसे कहाजासकता है। अतएव हमको यह पूर्ण आशा है कि आप हमारी प्रार्थनापर पूरा ध्यान देकर नगरमें चलनेकेलिये प्रस्तुत होजायेंगे। मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि यह कार्य तो वैद्य लोगोंका है। उन्हें शीघ्र ही बुलाकर, राजाको क्या दुःख है, इस बातसे परिचित करदो। वे यथानुकूल औषध प्रदान कर उसे सम्भवित दुःखसे मुक्त करेंगे। राजपुरुषोंने कहा कि बड़े २ सुबुद्धि वैद्योंको बुलाकर महाराजकी खूब चिकित्सा कराचुके हैं। परं उनका समस्त प्रयत्न निष्फल हुआ है। और हुआ भी ठीक ही है। कारणकि यदि ऐसी शारीरिक व्याधि जिसका कि उन्हें निदान मालूम हो, उपस्थित होजाय तो सम्भव है अनुकूल औषधद्वारा उसका निवारण करसकते। परं करें क्या वह, जिसका कुछ निदान हो, ऐसी पित्तादि दोष पूरित शारीरिक व्याधि नहीं है। उसका परिहार करना सर्वथा आपकी अत्यन्त पवित्र चरणरजके ही अधीन है। यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजीका हृदय यद्यपि दयासे परिपूर्ण होगयाथा। तथापि उन्होंने कुछ विचार कर एकवार फिर चलनेको इनकार किया। और साफ २ कह सुनाया कि हम नहीं चलेंगे तुम जाओ उनसे नहींतो और किसी अच्छे वैद्यको बुलाकर राजाकी औषध कराओ। देखो सायद ईश्वरीय इच्छा अनुकूल निकले। और राजा स्वस्थ होजाय। आपके इस निराशोत्पादक उत्तरको सुनकर राजपुरुषोंका वह आनन्द, जो कि आपके प्राप्त होनेसे

उपलब्ध हुआथा, समस्त जातारहा। अतएव कुछ राजपुरुषतो वहीं रहे और कुछकोंने नगरीमें जाकर मत्स्येन्द्रनाथजीके मिलनेका तथा उनके नगरीमें न आनेका समग्र वृत्तान्त मन्त्री लोगोंके समक्ष वर्णित किया। तत्काल ही विविध प्रकारकी भेंटपूजा तैयार कर बड़े २ सरदारोंके सहित रथमें बैठेहुए मन्त्रीलोग उसी स्थलमें आये। और कुछ दूरसे पदाति हुए नम्रपैरोंसे बहुत समीपमें प्राप्त हो आपके चरणोंमें गिरे। तथा समस्त सामग्री समर्पित कर अभ्यर्थना करनेलगे कि भगवन् कृपा कीजिये महात्माओंका अवतार परोपकारके उद्देशसे ही हुआकरता है। आज हमारे राजासाहिब अत्यन्त असह्य दुर्विज्ञेय व्याधिसे ग्रस्त हैं। अतएव यदि आप शीघ्रताके साथ उनकी रक्षा न करेंगे तो नहीं कहसकते कि वे सजीव रहजायेंगे। मत्स्येन्द्रनाथजीने अब अधिक मत्काई करना उचित नहीं समझा। और करुणार्द्रभृत हृदयकी अनिवार्य प्रेरणासे आप उनके साथ नगरीमें जानेको बाध्य हुए। वहां ज्योंही राजाने मत्स्येन्द्रनाथजीको आते हुए देखा त्योंही शरीरमें चेष्टाका अभाव होनेसे अपने मन ही मनमें अनेकबार नमस्कार की। और उनके अतीव समीप आजानेपर अत्यन्त कोमल वाणीद्वारा सत्कारपूर्वक पुनः नमस्कार की। तथा कहा कि भगवन् महात्मालोग परोपकारी होते हैं यह वृत्त, समस्त विश्वव्यापी होनेके कारण, किसीसे छिपा नहीं है। ऐसी दशामें मैं आशा करता हूं यदि आज्ञानिक भाव वशात् हमलोगोंसे भूल भी होगई हो तो आप अवश्य उसपर क्षमाप्रदान करेंगे। तब मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि आप लोग जो कुछ कहरहे हैं वह सर्वथा योग्य है परन्तु प्रथम आप यह कहें मैं किसलिये यहां बुलायागया हूं। राजाने उत्तर दिया कि भगवन् आप सर्व कुछ जानते हुए भी हमसे पूछते हैं यहतो केवल आप अपना रूप छिपाते हैं। पर क्या वास्तविकमें अब हमारे हृदयसे आप दूर होसकते हैं। कभी नहीं। आपने अपने विषयमें हमारी वह श्रद्धा उत्पन्न की है जिसका जबतक यह वर्तमान शरीर और ये प्राण सम्मिलित रहेंगे तबतक पूरी तरहसे परिचय दियाजायेगा। यह जो कुछ मैं कहरहाहूं आप इसको अन्यथा न समझें। क्यों कि मैं श्रीरामचन्द्रजीके वंशमें जन्मा हूं। इसी वंशकी प्राण जायें पर वचन न जाई, यह सर्वलोक प्रसिद्ध उक्ति आपसे भी छिपी नहीं है। अतः मुझदासके वाक्यपर विश्वासित हो कर अब मेरेको इस दुःसह्य वेदनासे विमुक्त करें। मत्स्येन्द्रनाथजीने, अच्छा फिर इस प्रकार किसी महात्माका तिरस्कार नहीं करना, यह कहते हुए अपनी झोलीसे एक चुकटी विभूति निकाली। और उसको मन्त्र पढने के बाद राजाकी ओर फेंकदिया। तत्काल ही राजा साहिब बैठे हो गये। और बैठते ही फिर मत्स्येन्द्रनाथजीके चरणोंमें गिरते हुए कहने लगे कि भगवन् आज आपके महान् अनुग्रहसे ही हमारा सजीव रहना है। अन्यथा कबतक ऐसी दशामें हम अपने

प्राणोंको रख सकते थे। हमें अवश्य ही शीघ्रताके साथ किसी न किसी दिन विकाल कालके मुखमें जाना ही पडता। अब हम चाहते हैं आप अपने नामसे हमको विज्ञापित करें। जिससे आपके शुभाक्षरान्वित नामके प्रकाशका प्रतिविम्ब हमारे हृदयपर अपनी स्थितिकरे। तदनन्तर मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि हमारा नाम मत्स्येन्द्रनाथ है। सम्भवतः प्रथम भी यह नाम तुमने कभी न कभी अवश्य सुना होगा। यह सुनकर राजाने कहा कि हां भगवन् इस नामका अवश्य हमने श्रवण किया हुआ है। परन्तु आपके विषयमें लोगोंके मुखसे निकली वाणीको सुनकर हम किञ्चित् भी विश्वास न कर रहे थे। यही नहीं आपकी सिद्धिविषयक वार्ताओंको अ तथ्य समझ कर उनके श्रवण करने की उपेक्षा भी किया करते थे। और उन वार्ताओंका सत्य होना इतना असम्भव समझते थे जितना आकाशमें पुष्पका होना। परन्तु वह ईश्वर कैसा दयालु है कैसा भक्तवत्सल है कैसा न्यायी है जिसने आज हमको साक्षात् आपके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है। और हमारे कठोर हृदयमें स्थित उस अविश्वासको नष्ट भ्रष्ट कर पूर्ण रीतिसे यह प्रकट कर दिया है कि जैसी आपकी महिमा कीर्ति लोगोंके मुखसे उच्चरित हुई वाणीसे सुनीजातीथी आप ठीक वैसेही हैं। इस प्रकार राजा पशुपतिने अनेक तरहके शब्दोंद्वारा मत्स्येन्द्रनाथजीकी महिमा तथा स्तुति प्रकट करके एक अतिसुन्दर स्वर्णमय सिंहासन मंगाया। और उसके ऊपर मत्स्येन्द्रनाथजीको बैठाकर उनकी विधिवत् पूजा की। तथा कतिपय मासके बाद गुरुमन्त्र ग्रहणपूर्वक उनका शिष्यत्व भी स्वीकृत किया। यही नहीं यहांतक कि वह मत्स्येन्द्रनाथजीके दर्शन कियेविना तथा उनकी आज्ञा विना भोजन तक ग्रहण नहीं करताथा। और मत्स्येन्द्रनाथजीके सम्मुख कभी अपनी अधिक प्रसन्नता प्रकट नहीं करताथा। यह देख एक दिन मत्स्येन्द्रनाथजीने, क्या कारण है राजाने हमारा शिष्यत्व ग्रहण किया है तथा हमारी सेवामें हीं अधिकांश समय व्यतीत करता है तथापि मालूम होता है किसी मर्मभेदी दुःखने इसका हृदय अतीव कष्टान्वित कररक्खा है यही कारण है जितना राजाओंको प्रसन्न चित्त रहना चाहिये उतना यह नहीं देखाजाता है, यह विचार कर उससे कहा कि राजन् तुमको किस विषयकी चिन्ता है जिस वशात् तुम प्रतिदिन उदासीन रहतेहो। अब हमारे सम्मुख प्रकट करो। हम अवश्य उसका परिहार करेंगे। यह सुन हस्तसम्पुटी कर अत्यन्त कोमल वाणीद्वारा पशुपति राजाने कहा कि भगवन् आपके महान् अनुग्रहसे हमारे सर्वसम्पत्ति विद्यमान है जिसका आपको भी साक्षात्कार हो चुका है। एवं पुत्र भी पर्याप्त और बहुत अनुकूल हैं। अतः इस विषय आदि की मुझे स्वप्नमें भी चिन्ता नहीं है। किन्तु जिस भारत विख्यात यशवाले रघुकुलमें मैंने जन्म लिया है उसी इस कुलके अद्वितीय भूषण श्रीरामचंन्द्रजीकी सम्मान एवं श्रद्धापूर्वक बहुत समयसे भक्ति करते हुए भी मैंने आजपर्यन्त

उनके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। यही कारण है इसी एकमात्र चिन्तासे आक्रान्त हुआ मेरा हृदय कभी प्रसन्नता युक्त नहीं होता है। यों तो प्रस्तावानुरोधसे कभी न कभी अवश्य समयानुकूल वार्तालापमें हंसना तथा चित्तको प्रसन्नतान्वित सूचित करना-पड़ता है। परं आभ्यन्तरिक रीतिसे नहीं। मन अवश्य इसी विषयमें लीन रहता है। अतएव यदि आपकी महती कृपा वशात् मेरी यह चिन्ता अपने अभीष्टको प्राप्त होनेपर मुझे विमुक्त करदे तो फिर कौन ऐसा पुरुष है जो मेरेसे अधिक अपने आपको उत्तम तथा पुण्यशाली मानता हो। तदनन्तर मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि अच्छा अच्छा अब तुम इस चिन्ताको निःसन्देह अपने हृदयसे उठा दो। हम अवश्य तुमको रामचन्द्रजीका दर्शन करायेंगे। तथा साथ ही जिस दुष्प्राप्य अद्भुत योगक्रियासिद्ध शक्तिका प्रभाव, अखिल संसारमें अपनी महती प्रतिष्ठा जमा चुका है एवं जिसयोगशक्तिद्वारा हमने निखिल देवी देवताओं को अपने विषयमें प्रसन्न कर उनसे वरदान प्राप्त किया है उसी योगशक्तिका परिचय तुमको कुछ दे चुकने पर भी अब फिर देंगे। परन्तु यह सर्व कुछ आपलोगों के विश्वास पर ही निर्भर है। यदि पूर्ववत् मिथ्या उक्ति समझकर मेरे वाक्यों पर पूरीतरह विश्वास न किया जायेगा तो कभी आप लोग अपने अभीष्टको प्राप्त न कर सकेंगे। यह सुनकर राजा तथा मन्त्री लोगोंने कहा कि नहीं २ महाराज ऐसा कभी नहीं हो सकता है जो कि हम आपके वचन को विश्वास मय न समझते हों। यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजीने झोलीसे एक चुकटी विभूति निकाली और मन्त्र सहित उसको राजा तथा राजाके पार्श्ववर्ती कई एक मनुष्यों के मस्तकमें लगा दिया। पश्चात् वे उनको सरयू नदी के तटस्थ किसी ऐकान्तिक स्थानमें ले गये। और वहां जानेपर आपने फिर अपनी झोलीसे विभूति निकाली। तथा धूम्र मन्त्र पढकर उसको आकाशकी ओर फेंक दिया। जिससे तत्काल ही आकाशसे लेकर पृथिवी पर्यन्त घोर अन्धकार छा गया। जिसने सूर्यनारायणके प्रकाशको पराजित कर अपना पूरा अधिकार जमा लिया। यहांतक कि समीप खड़े हुए राजा तथा राजपुरुष परस्परमें एक दूसरे को देख न सकते थे। अतएव इस प्रकार धूम्रकी अधिकता होनेसे राजासाहिब व्याकुल हो गये। और उनके नेत्रोंसे जल बहने लगा। यह देख विवश हो कर राजाने मत्स्येन्द्र-नाथजीसे कहा कि महाराज यह धूम्र कम हो जाय तो अच्छा है। क्यों कि यह हमारे नेत्रोंमें प्रवेश कर हमको अतीव दुःखान्वित कर रहा है। तब मत्स्येन्द्रनाथजी ने कहा कि आपलोग क्षत्रिय हैं क्यों इतने शीघ्र भयभीत होते हो। परमात्मा की बहुत ही विचित्र गति है नहीं जानते किस समय कौन घोर विघ्न आ उपस्थित हो जाय। मनुष्यको धैर्यान्वित होते हुए उसे सहिष्णुतासे निवारित करने के लिये अवश्य अपने आपमें कुछ

साहस तथा सहन शक्ति रखनी चाहिये। यह कहते हुए आपने फिर झोली से विभूति निकाल कर समन्त्र आकाशमें फैंकदी। जिससे अत्यन्त वेगयुक्त वायु चलने लगा। और छोटे २ वृक्ष उखड कर इधर उधर दौडने लगे। ऐसा होनेसे पृथिवीपर बड़ाही कोलाहल आरम्भ हुआ। फिर कुछ क्षण के बाद यह उत्पात शान्त कर आपने एक चुकटी विभूति और निकाली। तथा आकर्षण मन्त्र के साथ उसको सूर्यकी तरफ फैंक दिया। तत्काल ही सूर्यनारायण मूर्तिमान् हो कर नीचे उतरे। और निश्चेष्टसे हो गये। ऐसा होनेसे सहसा समग्र पृथिवी पर अन्धकारसा छा गया। तत्काल ही श्री महादेवजी कैलाससे अयोध्या-पुरीमें आये। इसी प्रकार विष्णु तथा ब्रह्माजी भी गरुड तथा हंसपर आरूढ हो कर वहीं आ उपस्थित हुए। वहां सूर्यको मूर्छित देखकर श्री महादेवजी ने शिष्यसे कहा कि तुमने सूर्यनारायणको किस प्रयोजनसे इतना कष्ट दिया है। मत्स्येन्द्रनाथजीने उत्तर दिया कि यह पशुपति राजा हमारा शिष्य सूर्यवंशमें उत्पन्न हुआ है और बडाही धर्मात्मा तथा नीतिज्ञ है। यही नहीं आजकल समग्र भारतमें जितने राजा हैं उन सबमें इसकी सबसे अधिक कीर्ति तथा महिमा है जो भारतके बालसे वृद्धतक सर्व के हृदयमें अपनी स्थिति जमायें हुए है। तथापि इसको अबतक सूर्यने दर्शन नहीं दिया है। इसी हेतुसे हमने इसको अपने मन्त्र द्वारा यहां बुलाकर कष्टान्वित करना पडा है। तब विष्णुजी ने कहा कि अच्छा अब इसको इस कष्टसे विमुक्त करो हम समझा देंगे यह सदा आपकी आज्ञानुकूल रहेगा। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजी ने अपनी झोलीसे एक चुकटी विभूति निकालकर सूर्यनारायण की तरफ फैंक दी। जिससे तत्काल ही सूर्य दुःख रहित एवं सचेष्ट हो गया। और श्री विष्णुजी के कथनानुसार कह उठा कि हे मत्स्येन्द्रनाथजी आजसे लेकर मैं सदा आपकी आज्ञानुकूल ही कार्य करा करूंगा। आप हमारे जैसे उपकारी लोगोंके ऊपर सदा कृपा करते रहें। और इतनी शीघ्र ऐसे असह्य कष्टसे व्यथित न किया करें। किन्तु हमारे योग्य जो कोई कार्य उपस्थित हो जाय तो प्रथम उससे हमको सूचित करना उचित समझा करें। यदि सूचना के अनन्तर आपकी आज्ञाका सम्मानपुरःसर पालन नहीं किया जाय तो आपका इस प्रकार कष्ट देना सर्वथा उचित और, न्याय पूर्वक है। अच्छा जो कुछ हुआ सो तो हुआ अब आप कहें मेरे विषयमें क्या आज्ञा है जिसके कारण मुझे इतने कष्टका अनुभव करना पड़ा है। तब मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि इस हमारे शिष्य पशुपति राजाको प्रसन्न चित्त होते हुए दर्शन देकर सन्तुष्ट करो। और अपना वचन दो आपको जिस जगह जिस समय याद करें उसी जगह उसी समयपर उपस्थित होनाहोगा। तब सूर्यनारायणने उत्तर दिया कि यह पशुपति हमारा वंशज है इसलिये पुत्रकी तुल्य है इसके ऊपर हम सदा प्रसन्न रहते हैं यह निःसन्देह सत्य जानों। आगे

भी आजकी सदृश ही हम दर्शन देनेको तैयार हैं यदि इसकी इच्छा होगी तो। एवं आपको भी तीनों देवोंके समक्ष ही वचन देते हैं आप जिस स्थानपर जिस समय हमारा आह्वान करेंगे उसी स्थानपर तत्काल ही हम उपस्थित होजायेंगे। यदि हम इस वचनका उल्लङ्घन करें तो तीन प्रकारकी हत्यासे आक्रान्त होजायें। इसके बाद सूर्यनारायण अपने पूर्वस्थानको गये, और विष्णुजी तथा ब्रह्माजीने भी मत्स्येन्द्रनाथजीको वर प्रदान किया। तथा कहा कि हमारे इस वरपर पूर्ण रीतिसे विश्वास रखना। अब हम अपने स्थानको जाते हैं तुम्हारा कल्याण हो। इस प्रकार आशीर्वाद प्रदान कर तीनों देवता स्वीय २ स्थानोंको चलेगये। केवल मन्त्री लोगोंके सहित राजा तथा मत्स्येन्द्रनाथजी ही अवशिष्ट रहगये। तत्काल ही फिर राजाने पूर्वप्रस्ताव किया कि भगवन् श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन तो नहीं हुआ। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि हां अभी दर्शन कराते हैं कुछक्षण शान्ति करो। पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथजीने झोलीसे विभूति निकाली और आकर्षण मन्त्रके साथ फैंक दी। बस यथाथा हस्तमें धनुष धारण कियेहुए पूर्वश्रुतरूपसे तत्काल ही श्रीरामचन्द्रजी प्रकट होगये। यह देख समन्त्री राजा उनके चरणोंमें गिरा। और उसने कहा कि हे भगवन्! हे दयालो! आप धन्य हैं आपने मुझकीटपर अनुग्रह कर अपने पवित्र दर्शनसे मुझे कृतार्थ किया है। अतः आपका दास मैं आजीवन आपकी प्रतिमाका ध्यान करता हुआ आपके यश तथा आपकी कृपालुताको विस्तृत करूंगा। तब श्रीरामजी, राजाके ऊपर और भी अतीव प्रसन्न हुए। और अपने हस्तको उसके शिरपर धरकर कहने लगे कि हेराजन्! तुम भी धन्य हो जो-सांसारिक पदार्थोंके कीट न बनकर सवैराग्य ईश्वराराधनमें ही अधिकांश समय व्यतीत कररहेहो। यही नहीं बल्कि तुमने अपने सदाचारपूर्वक दृढभक्तिप्रभावसे हमको मानों अपने वशमें ही करडाला है। इसी हेतुसे हम स्वयं उपस्थित हैं तुम अपना अभीष्ट वर मांगो। तब अत्यन्त नम्रतापूर्वक हस्तसम्पुटी कर राजाने कहा कि भगवन् आपकी महती कृपासे मुझे अन्य सर्व सम्पत्ति प्राप्त है। केवल मैं आपकी भक्तिसेही वञ्चित हूं, इस वास्ते अब मुझे आशा है इससे भी वञ्चित न रहूंगा। अवश्य आप मुझे अपने चरणोंका दास बनाकर इस संसाररूपार्णवसे पार करेंगे। अनन्तर अच्छा ऐसा ही होगा तुम अपने विश्वासको छोड नहीं बैठना, यह कहकर जब श्रीरामजी प्रस्थान करगये तब मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि राजन्! कहिये तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई वा नहीं। यह सुन राजा मत्स्येन्द्रनाथजीके

चरणोंमें गिरा। और हस्त जोड़कर कहनेलगा कि हेभगवन् ! आपको वार २ धन्यवाद है· आपकी महती कृपासे ही मेरेको तीनों देव तथा रामजीके दर्शन कर अपना जीवन सफल करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतः इस महान् उपकारके लिये मैं सदा आपका कृतज्ञ रहूंगा।

इति श्री मत्स्येन्द्रनाथ पशुपति नृप समागम वर्णन नामक १० अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी
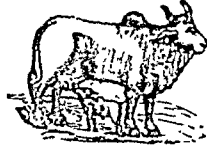
॥ अध्याय ११ ॥

श्री मत्स्येन्द्रनाथजी अयोध्यापुरीसे प्रस्थान कर शनैः २ विचरते विचरते अपने समीपमें आये सांसारिक दुःखान्वित पुरुषोंको योगक्रियाके उपदेशद्वारा दुःखत्रयसे विमुक्त करते हुए बङ्गदेशमें पहुँचे। उधरसे गोरक्षनाथजी भी भ्रमण करते तथा योगोपदेशरूप दुष्प्राप्य अद्वितीय ओषधिद्वारा निजभक्तोंको इस असार संसारमें होनेवाले आध्यात्मिकादि कष्टोंसे राहित करते हुए उसी बङ्गलादेशमें आ निकले। परन्तु एक ही देशमें इधर उधर भ्रमण करनेपर भी कुछ ही अन्तर रहजानेसे अधिक समय तक उनका सम्मेलन नहीं हुआ। अन्तमें एक दिन कनकगिरि, नामक ग्राममें दोनों गुरु शिष्योंका मिलाप हुआ। वहां जब गोरक्षनाथजीने मत्स्येन्द्रनाथजीको देखा है उसी समय अपने गुरुजीका दर्शन कर वे इतने प्रसन्न हुए हैं उनकी प्रसन्नताका अनुभव, यातो ईश्वरको है वा, वे ही जानते होंगे। मैं इस विषयमें कुछ न कहसकताहूं। तथापि अतीव प्रेमसे हुए अश्रुपातने अवश्य यह सूचित किया कि उससमय गोरक्षनाथजीकी प्रसन्नता कोई अद्वितीय ही थी। (अस्तु) उधरसे समस्त सुगुणान्वित गुरुभक्त अपने परमस्नेही शिष्यको देखकर मत्स्येन्द्रनाथजीकी भी प्रसन्नताकी कोई सीमा न रही। यही नहीं उन्होंने सप्रीति गोदसे लगाकर अतीव रसमयी वाणीसे उनका कुशल वृत्तान्त पूछा। तब गोरक्षनाथजीने कोमल वचनोंद्वारा गुरूक्त वाक्योंका उत्तर देते हुए कहा कि स्वामिन्, आपकी महती कृपानुसार मैंने कुशलतासे भ्रमण किया है। कहीं किसी समय भी किसी प्रकारका दुःख अनुभावित नहीं करना पड़ा है। इसी प्रकारकी वार्तालाप करते २ भोजनका समय समीप आपहुँचा। यह देख मत्स्येन्द्रनाथजीने गोरक्षनाथजीको भिक्षा लानेके लिये सूचित किया। तत्काल ही गुरुजीकी आज्ञा मिलनेपर गोरक्षनाथजी समीपस्थ कनकगिरि नामक नगरमें भोजन लेनेके वास्ते पहुँचे। यह नगर ब्राह्मण लोगोंका था। अतएव एक ब्राह्मणके द्वारपर जाकर आपने अलक्ष्य शब्दका उच्चारण किया। उसे सुनते ही एक माई बहिर निकली। और एक योगीको द्वारपर खड़ा देख सप्रीति हस्तसम्पुटी किये हुए कहने लगी महाराज! आप कृपाकर यहीं बैठकर भोजन करलें। यह सुनकर गोरक्षनाथजीने कहा कि मातः! आप सत्य कहती हैं परन्तु मेरे गुरु महाराज ग्रामसे बहिर आसनपर विराजमान हैं। उनको प्रथम भोजन कराकर

पीछे में भोजन करूंगा । यही शिष्यका धर्म भी है गुरुके भोजन किये विना प्रथम ही शिष्यके भोजन करना उचित नहीं । अतः वहां लेजाने के लिये भोजन दे सकती हैं तो दें । यह सुन गोरक्षनाथजी के सौन्दर्यसे प्रथमतःहीं प्रसन्नता पूर्वक मोहान्वित हुई ब्राह्मणी, देखो परमात्मा की क्या ही विचित्र गति है उसने इसको भी कैसी अपूर्व सुन्दरता दी है, यह विचार करतीं हुई गोरक्षनाथजी से कहने लगी कि अच्छा महाराज वहीं ले जाओ । परन्तु कृपाकर प्रथम यह तो बतलाओ तुम्हारा नाम क्या है । और आप किसके शिष्य हैं। गोरक्षनाथजी ने प्रत्युत्तरमें कहा कि मेरा नाम गोरक्षनाथ है । और योगिराज श्री मत्स्येन्द्र नाथजी का शिष्य हूं । तदनन्तर अत्यन्त भक्तिके साथ, वडे आदि नाना शाक युक्त सप्रेम भोजन ला कर हस्त जोडे हुए ब्राह्मणी कहने लगी लीजिये महाराज भोजन वहीं ले जाइये। फिर भी कभी दर्शन देना और भोजन ले जाना आपका ही घर है । गोरक्षनाथजी ने भिक्षापात्र पूर्ण करा कर ब्राह्मणी को आशीर्वाद दिया । और शीघ्र ही गुरुजी के समीप आ कर तथा भिक्षापात्र गुरुजी के आगे रख हस्तसम्पुटी कर कहा स्वामिन् ! भोजन कीजिये । एक ही माई ऐसी श्रद्धा वाली मिली जिसने अपने घरसे ही पात्र पूर्ण करडाला मत्स्येन्द्रनाथजी प्रसन्नता पूर्वक पात्र ग्रहण कर भोजन करने लगे । तथा भोजनके अतीव स्वादिष्ट होनेसे उसके, विशेष कर के, वडों के विषयमें बहुत ही प्रशंसा करने लगे । अर्थात् भोजन करते हुए कुछ शिरको हिलातेजायें और वडे बहुत स्वादिष्ट हैं २ यह कहते जायें । तब तो गोरक्षनाथजीने सोचा कि गुरुजी खुलकर नहीं कहते हैं कि वडे और चाहियें परन्तु बार २ की प्रशंसासे अनुमान होता है गुरु महाराज तृप्त नहीं हुए हैं । अन्ततः गोरक्षनाथजीने कहना ही पड़ा कि गुरु महाराज आज्ञा हो तो और वडे लाऊं । तब मत्स्येन्द्रनाथजीने मन्दवाणीसे मुस्कराते हुए कहा कि अच्छा । यह सुन गोरक्षनाथजी भिक्षापात्र हस्तमें लेकर फिर नगरमें गये । और ब्राह्मणके गृहपर पहुँचकर ब्राह्मणीसे कहने लगे मातः, गुरुजीकी अभी तृप्ति नहीं हुई इसलिये कुछ वड़े और प्रदान करो । यह सुनते ही ब्राह्मणीने कहा महाराज मैंने प्रथम ही कहाथा कि फिर भी कभी आना और भोजन लेजाना यह गृह आपलोग महात्माओंका ही है । तथापि आप गुरुजीके बहानेसे वड़े मांगते हुए कुछ असत्य जैसा वचन कहते दीखपड़ते हो । यह मेरे मनको रोचनीय नहीं होता है । क्योंकि मैंने अभी आपका भिक्षापात्र पूर्ण कियाथा जिससे आपके गुरुजी तो अवश्य तृप्त हुए ही होंगे किन्तु तुमने भी भोजन अवश्य किया होगा । तथापि वड़े अतीव स्वादिष्ट होनेके कारण तुम्हारा और भी खानेका चित्त किया है इसीलिये पुनः भिक्षा करने आयेहो। तब गोरक्षनाथजीने उत्तर देते हुए कहा कि मातः, मैं सत्य कहताहूं यह केवल गुरुजीके लिये ही मांगरहाहूं न कि अपने लिये । मेरातो नियम ही यह है गुरुजीके तृप्त होनेपर

भोजन कियाकरताहूं । ब्राह्मणी कहनेलगी कि यह बात तो वास्तविक ही है ऐसा तो होना ही चाहिये परन्तु आपकी सत्यतामें क्या प्रमाण है कि ठीक आप अपने कथनानुकूल ही कियाकरते हैं । तब गोरक्षनाथजीने कहा कि जो मेरे वचनविषयक सत्यताकी परीक्षा करनी चाहती हो तथा मेरी गुरुभक्ति देखनी चाहती होतो जिस प्रकार कहो उसी प्रकार उसका परिचय देकर मैं अपने वचनको सत्यतान्वित एवं प्रामाणिक करसकताहूं । इसके उत्तरमें ब्राह्मणीने कहा कि अच्छा यदि यही बात है तो तुम गुरुजीके लिये बड़ोंको प्राप्त होगे मैं अभी लाती हूं परं जबतक मैं लाऊं तबतक बड़ोंके बदले में तुम अपना एक नेत्र निकाल-कर रखना । तत्काल ही यह कहकर ब्राह्मणी तो बड़े लेनेके लिये गृहमें प्रविष्ट हुई । उधर गोरक्षनाथजीने अपना एक नेत्र निकालकर अपने हस्तमें रखलिया । ज्यों ही बड़े लेकर ब्राह्मणी गृहसे बहिर आई और उसने गोरक्षनाथजीके नेत्रसे रुधिर निकलता हुआ देखा त्योंही ब्राह्मणी अतीव विस्मित हुई अपने आपको धिक्कार देती हुई कहने लगी कि हाय, मुझे क्या मालूम था ये सचमुच ही ऐसा करडालेंगे । अहो मैंने यह क्या अकस्मात् अनर्थ करडाला । तत्काल ही यह कोलाहल सुनकर और भी इधर उधरके अनेक स्त्रीपुरुष आ एकत्रित हुए । और उस वृत्तान्तको जानकर ब्राह्मणीको बार २ धिक्कार देन लगे कि देखो एक बड़ेके ऊपर ही इस दुष्टाने अद्वितीय रूपवान् कैसे दिव्य योगीको व्यङ्गित किया है । क्या इस दुष्टाको ज्ञात नहीं था यह साधारण व्यक्ति नहीं है । इसका अपने सत्यके विषयमें ऐसा करडालना क्या बड़ी बात है । यह सुनकर ब्राह्मणी अत्यन्त ही लज्जित हुई हस्तसम्पुटी करके कहनेलगी हे महात्मन्, मैं अज्ञातथी इसी हेतुसे आपको मैंने अपने वचनद्वारा इतना असह्य कष्ट दिया है । परन्तु अब मेरे ऊपर क्षमा प्रदान करो मैं अपने दुष्कृत्यपर स्वयं ही पश्चात्ताप करूंगी । यह सुन गोरक्षनाथजीने जलसे नेत्रका रुधिर धोडाला। और एक वस्त्र नेत्रके ऊपर लगाकर बड़ोंका पात्र पूर्ण करा आप गुरुजीके समीप आये। तबतो मत्स्येन्द्रनाथजीकी दृष्टि, जो कि गोरक्षनाथजी एक हस्तद्वारा वस्त्रसे नेत्रको आच्छादित कररहेथे, उधर पड़ी । देखते ही पूछा कि बेटा यह अकस्मात् क्या हुआ अभी तो यहांसे सकुशल गयाही था । कह २ सत्य कह क्या वृतान्त है । गोरक्षनाथजीने कहा कि आप प्रसन्नतापूर्वक भोजन करो मैं पीछेसे बतलाऊंगा । मत्स्येन्द्रनाथजी कहने लगे कि नहीं २ जबतक तू सत्य बात बतला नहीं देगा तबतक मैं एक ग्रास भी न खाऊंगा । तबतो गोरक्षनाथजीने अगत्या कहना ही पड़ा कि आपके लिये जो ये बड़े लाया हूं इनके बदले में बड़े देनेवाली माईने गुरुभक्ति देखनेके वास्ते मेरसे नेत्र देनेके लिये प्रार्थना कीथी। मैंने तत्काल यह अपना नेत्र निकालकर उसके अर्पण किया परन्तु ब्राह्मणी इस वृत्तको देखकर सविस्मय मूर्च्छित जैसी होगई । और फिर यह नेत्र लेना तो दूर रहा, स्वयं अपने

आपको धिक्कार देती हुई हाय २ देखो मैंने अकस्मात् कैसा अनर्थ करडाला, यह कहती हुई रोदन करने लगी। और फिर इस विषयमें अपनी अत्यन्त प्रमत्ता स्वीकृत कर उसने मेरेसे क्षमा करनेके लिये प्रार्थना की। तथा पर्याप्त वडोंसे पात्र पूर्ण किया। मैं भी उसपर क्षमाप्रदान कर सानन्द आपके समीप आपहुँचा। वस यही वृत्त है जो आपके चरणारविन्दमें कहचुका हूं। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजी अत्यन्त ही विस्मित हुए आभ्यन्तरिक भावसे कहने लगे कि अहो यह हमारा शिष्य कैसा दृढ विश्वासी और गुरुभक्त है। ऐसा अन्य कोई भी आजपर्यन्त हमने देखा तथा सुना नहीं है। यद्यपि तपकरण कालमें हमारी आज्ञानुसार छली देवता तथा अप्सराओंका प्रयत्न निष्फल कर इसने गुरुभक्ति विषयका अच्छा परिचय दियाथा। परन्तु इस दृष्टान्तसे इसने अपने विषयमें हमारी प्रीतिका मानोंप्रवाह चलादिया है। अतः अव हमको उचित है कि इससे कुछ भी गुप्त न रक्खें। तदनन्तर मत्स्येन्द्रनाथजीने नेत्रको उसी स्थानमें पूर्ववत् स्थापित कर विभूति लगा दी। जिस वशात् नेत्र तादृशही होगया। और वे प्रसन्नतापूर्वक सस्नेह उनसे कहने लगे कि वेटा हम तेरे ऊपर अतीव सन्तुष्ट हैं। क्योंकि तू अश्रुतपूर्व पुरुष है। तेरी गुरुभक्तिने हमारे हृदयको अच्छीतरह वशीभूत करडाला है। अतः वेटा हम यथार्थ कहते हैं तू वडा प्रतापी तथा यशस्वी होगा। यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि इसी लोकमें तेरी ख्याति होगी किन्तु तीनों लोकमें तेरी कीर्तिका ढोल वजेगा। और वड़े २ देव गण तेरी वन्दना करेंगे। यह कहकर आपने गोरक्षनाथजीका हस्त पकड़ उनको अपने गोदमें वैठा लिया। और कहा कि वेटा जितनी विद्या मेरे समीप अव है यह समस्त हम तेरेको प्रदान करते हैं। जिस वशात् संसारमें कोई तेरेको किसी भी विषयमें पराजित नहीं करसकेगा। और तू जीवन मुक्त होकर विचरेगा। यही नहीं सर्व सिद्धसमाजमें अग्रगणनीय तथा योगि समाजका प्रथमाचार्य तू ही सर्वके सम्मत होगा। अर्थात् इस सम्प्रदायका प्रवर्त्तक मानाजायेगा। एवं अपनी इच्छा मात्रसे ही जो करना सोचेगा सोई कर भी सकेगा। यह सुन गोरक्षनाथजी गुरुजीके चरणोंमें गिरे। और वद्धाञ्जलि हुए कहने लगे स्वामिन्, आपकी महती कृपा है तो मेरेको इस संसारमें कौन वस्तु असाध्य है। मैं अच्छीतरह जानता हूं कि संसारमें जो कोई वस्तु कठिन है तो एकमात्र यही है कि गुरुको प्रसन्न करना। जब ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ कि गुरु प्रसन्न हुए तो वस फिर तो असाध्य शब्द ही निराश्रय हुआ हृदयसे प्रस्थान करजाता है। गोरक्षनाथजी की इस प्रकार सादरकोमल वाणी सुनकर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी और भी प्रसन्न हुए। और अन्यत्र भ्रमणके लिये वहांसे प्रस्थानित हुए।

इति श्रीमत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ मिलाप वर्णन नामक ११ अध्याय।

अनुवादक–चंद्रनाथ योगी

॥ अध्याय १२ ॥

तदनन्तर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी वहांसे प्रस्थान कर चन्द्रगिरि ग्राममें आये। वहां ग्रामकी कुछ दूरी पर एक स्वच्छ तालाव था उसके ऊपर एक वृक्ष के नीचे आपने अपना आसन स्थिर किया। तथा वहां एक मास निवास कर गोरक्षनाथजी को अपनी अवशिष्ट सर्व क्रियाओं में निपुण किया। साथ ही, वातास्त्र, जलदास्त्र, कामास्त्र, वाताकर्षणास्त्र, पर्वतास्त्र, वज्रास्त्र, नागास्त्र, ब्रह्मास्त्र, रुद्रास्त्र, विरक्तास्त्र, दानवास्त्र, देवास्त्र, कालास्त्र, कार्तिकास्त्र, सर्पास्त्र, विभक्तास्त्र, मोहनास्त्र, मायास्त्र, आग्नेयास्त्र, धूम्रास्त्र, इत्यादि आस्त्रिक विद्यामें भी सुकुशल किया। इसी हेतुसे वहां मत्स्येन्द्रनाथजी की वहुत ख्याति हो गई। कितने ही सज्जनभक्त प्रतिदिन वहां आकर योग क्रियाओंका अभ्यास किया करते थे। क्योंकि उनका अवतार ही परोपकार के लिये हुआथा। अतएव वे यह नियम नहीं रखते थे कि सांसारिक पुरुषको योगसाधनीभूत क्रियायें न शिखलायें और जो सचमुच ही हस्तमें भिक्षा पात्र धारण कर पृष्टानुयायी हो जाय उसीही को शिखलायें। किन्तु जो इन क्रियाओंका अत्यन्त जिज्ञासु हुआ सप्रीति इनके सीखने में प्रवल उत्साहित हो कर उनके शरण आता था उसी को योग क्रियाओंका कुछ मर्म शिखला देते थे। क्यों कि उनको, अनधिकारी वहुत मनुष्यों को वाना दे कर अपना वेष वढायें, यह वार्ता स्वप्नमें भी रुचिकर नहीं थी। (अस्तु) इसी प्रकार जनोंको योगोपदेश करते २ एक मास व्यतीत हुआ। एक दिन का वृतान्त है नगरके छोटे २ अनेक वालक अपना खेल कूद करते हुए उसी तालावपर आये। और उन्होंने वृक्षके नीचे वैठे उक्त महात्माओं को देखा। तत्काल उनके समीप आ गये। और आदेश २ कर उक्त योगेन्द्रोंके चौतरफ वैठ गये। महात्माजी भी वालकों के साथ सप्रेम वार्तालाप करने लगे। ऐसा करने से वालकोंका महात्माओं के साथ अच्छा परिचय हो गया। इसी क्रमसे वे वालक प्रतिदिन आकर क्रीडारत हुए अपना समय व्यतीत किया करते थे। एक दिन मत्स्येन्द्रनाथजी शौचार्थ भ्रमण करते हुए कुछ दूरी पर वनमें चले गये। आसन पर केवल एकाकी गोरक्षनाथजी ही वैठे हुए थे। ठीक उसी समय वालक भी वहां आ उपस्थित हुए। और अपने खेलके

लिये तालावसे आर्द्र मृत्तिका निकाल कर उसके उष्ट्र ,अश्व, मनुष्य बनाने लगे । परन्तु किसी २ ने तो कुछ तादृश प्रतिमा निर्मितकी। अधिकोंसे अनेकवार उनका अनुकरण कर ने पर भी जब तादृश मूर्ति न बनी तबतो व्यर्थ प्रयत्न समझकर उन्होंने वह कृत्य छोड दिया। इसी प्रकार कुछ क्षण खेल कर उन लड़कोंने परस्पर में कहा कि अहो ठीक है चलो मृत्तिका ले चलें । महात्माजी से मूर्ति बना देनेकी प्रार्थना करेंगे । तत्काल ही जिन्होंसे मूर्ति न बनी थी उन सब लड़कोंका एकमता हो गया। और मृत्तिका लेकर वे गोरक्षनाथजी के समीप वृक्षके नीचे जहां उनका आसन था वहां उपस्थित हुए । और सविनय चरणोंमें शिर झुकाकर आदेश २ के अनन्तर गोरक्षनाथजीक चरण पकड़े हुए कहने लगे महाराज, गुरुजी, इस मृत्तिकाका एक मनुष्य बनादो । यह सुन गोरक्षनाथजीने उनको बहुत समझाया कि यह खेल अच्छा नहीं है कोई अन्य खेल किया करो । परन्तु बालस्व भावसे उनको यह वार्ता रुचिकर न हुई । और बार २ कोमल वाणी द्वारा कहते ही रहे कि मनुष्य बनादो २। तबतो बालकोंका दृढ प्रेम देखकर गोरक्षनाथजी को उनके विषय में दया आ गई । और कहा कि अच्छा हम आज अवश्य बनाकर रखदेंगे । रात्री को शुष्क हो जायेगा फिर कलके दिन तुम ले जाना । अब सायंकाल होने को आया है अतः अपने २ गृहपर चले जाओ । यह सुन बालक तो अपने गृहपर चले गये। उधर गोरक्ष-नाथजीन उस मृत्तिका का मनुष्याकार पुतला बनाकर रख दिया। समग्र रात्री रक्खा रहने से वह पुतला शुष्क हो गया । इधर मत्स्येन्द्रनाथजीने गोरक्षनाथजीसे कहा कि बेटा प्रातःकाल हो गया है शौच स्नानादिसे शीघ्र निवृत्त हो कर आजा । आसन पर रहना । पश्चात् हम जायेंगे । तत्काल ही गुरु आज्ञानुसार शौचादिसे निवृत्त हो कर जब गोरक्षनाथजी आसनपर आ बैठे । तो मत्स्येन्द्रनाथजी सानन्द घूमते हुए अतीव मनोहर वन वृक्षमाला को देखते २ कुछ दूरीपर चलेगये। ठीक इसी अवसरपर गोरक्षनाथजी अद्वितीय बैठे हुएथे। तत्काल ही उक्त लड़के भी क्रीड़ारत हुए वहीं आगये । और गोरक्षनाथजीसे कहनेलगे कि हे महाराज हमारा मनुष्य दीजिये । यह सुन गोरक्षनाथजीने उत्तर दिया कि हां अभी देते हैं कुछ क्षण शान्ति करो। इसके अनन्तर आपने आसनपर बैठ गुरु ध्यानपूर्वक सँजीवन मन्त्रका पाठ किया । जिसके समाप्त होते ही मृत्तिका निर्मित मार्तिक पुतलेमें दैवगत्यनुसार करभाजन-नारायणके सूक्ष्म शरीरका संचार होगया । तत्काल ही वह पुतला सचमुच बालकोंकी सदृश रोने लगा । यह देख अब लड़के भयभीत होनेलगे। और आभ्यन्तरिक भावसे कहनेलगे कि यह अकस्मात् क्या हुआ । बहुत क्या कहें उस समय लड़के बहुत विस्मित हुए भागने की राह देख रहेथे । अन्ततः उनसे वहांपर अधिक समय तक न रहागया । और वे भूत रे भूत २ यह कहकर ग्रामकी ओर हस्त बजाते हुए भाग गये । यह देख ग्रामीण लोगोंने

पूछा कि अरे लडको क्यों भागते हो क्या बात है। तब फिर लड़कोंने पूर्ववत् ही कहा कि भूतरे भूत २। लोगोंने कहा भूत कहां है हमको बतलाओ। लडके कहने लगे कि यह जो तलावपर महात्मा बैठा है उसके पास है। लोगोंको भी कुछ आश्चर्य जैसा वृत्त मालूम हुआ। अतएव चलो चलकर देखेंगे. यह कहकर कतिपय मनुष्य वहां गये। और उन्होंने देखा कि एक बच्चा अपने पैरोंके अङ्गुष्ठोंको चुग्वता हुआ अपने मधुर २ रोदनकी ध्वनि सुना रहा है। यह देख लोग अतीव विस्मित हुए आभ्यन्तरिक भावसे विचार कररहेथे कि यह क्या विचित्र घटना हुई। इस महात्माने मृत्तिकाका मनुष्य कैसे बनाडाला। अथवा ठीक है ईश्वर की दुर्विज्ञेय माया है। उसीकी कृपान्वित हो बड़े २ पुरुष जीवन मुक्तिका आनन्द लेते हुए और हम जैसे इस असार संसारके अन्यथा झगडोंमें व्यग्रचित्त हुए विषयभोगके कीटोंको अपनी अद्भुत शक्ति तथा कृपालुताका परिचय देते हुए विरक्त भावसे विचरते रहते हैं। तादृश ही ये महात्मा हैं। हमारा धन्यभाग है जो आज हमको ऐसे योगेश्वरोंका दर्शन प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार जिस समय सङ्कल्प विकल्पके सागरमें निमग्न हुए लोग गोरक्षनाथजीके समीप विद्यमान थे। ठीक उसी समय उधरसे सानन्द शौचस्नानादिक्रियासे निवृत्त होकर मत्स्येन्द्रनाथजी भी आपहुँचे। और उन्होंने ज्यों ही दूरसे अनेक मनुष्योंको वहांपर खड़े हुए देखा तोआप आभ्यन्तरिक रीतिसे कुछ शङ्कित हुए. परन्तुआपको वास्तविक समाचार अभीनिश्चयात्मक ज्ञातनहीं हुआथा। तबआप ठीकआसनपर आगये औरआपने उक्त बालकको वहीं रोता हुआ देखा तबतो सोच लिया कि ठीक मनुष्योंके सङ्घीभूत होनेका यही एकमात्र हेतु था। अनन्तर आप गोरक्षनाथजीसे पूछने लगे कि बेटा यह बालक कहांसे आया है और किसका है। महात्माजीने प्रत्युत्तर में समस्त पूर्ववृत्तान्त गुरुजीके चरणारविन्दमें नम्रतापूर्वक कह सुनाया। सुनते ही मत्स्येन्द्रनाथजी अतीव प्रसन्न हुए। और उन उपस्थित लोगोंके समक्ष गोरक्षनाथजीकी प्रशंसा करने लगे कि यह हामरा शिष्य बड़ा ही पहुंचा हुआ है। फिर आपने गोरक्षनाथजीसे कहा कि बेटा तू जानता ही है हमारी एक स्थानमें स्थिति नहीं है। आज यहां हैं तो कल वहां हैं। अतः ऐसी दशामें हमारे द्वारा इस बच्चेकी पालना होनी कठिन तो क्या असम्भव ही है। अतएव इसको किसी सुलक्षणा उत्तमकुलजास्त्रीकी सेवामें अर्पण करदेना ही अब सर्वथा उचित है। सम्भव है ऐसी कुलीना स्त्री ही इसका सस्नेह पोषण कर इसके भविष्यमें सहायता दे सकेगी। इसके अनन्तर सबालक दोनों गुरु शिष्य ग्राममें गये। और प्रत्येक मनुष्यसे इस बातकी जाच करने लगे कि हम एक बालक देंगे कोई कुलीन स्त्रीवाला गृह बतलाओ। यह सुन लोगोंने मधुसूदन नामक एक ब्राह्मण बतलाया। जिसकी पत्नीका नाम गङ्गा था। वह बड़ी ही शीलस्वभाव शुभगुणान्वित पतिव्रता स्त्री थी। ठीक लोगोंसे विज्ञापित हुए दोनों महानुभाव गृह पूछते२ उसी ब्राह्मणके द्वारपर पहुँचे। और उस वृत्तान्तसे

ब्राह्मणको सूचित करने लगे। मधुसूदन भी उक्त महात्माओंको देखते ही दोनोंके चरणोंमें गिरा। तथाउसने कहा कि भगवन्! आज आपलोगोंका बड़ा अनुग्रह हुआ स्वयं ही गृहपर आकर मुझ दासको अपने पवित्र दर्शनसे कृतार्थ किया। अब मैं चाहता हूं मेरे योग्य जो कुछ सेवा हो आप उसको शीघ्रही स्फुट करदें। जिसको विना ही विलम्बसे अपनी शक्तिकेअनुसार पूरी करनेके लिये तैयार होजाऊं। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजी अतीव प्रसन्न हुए। तथा कहने लगे कि हमारे समीप यह एक बालक है इसको सादर ग्रहण करके उचित रीतिसे पालपोप कर इसका भविष्य सुधारो। क्योंकि हम अच्छी तरह जानते हैं तुम एक बड़े सदाचार निष्ट पुरुष हो। इसी हेतुसे हम इस बालकको अन्य किसीके अर्पण न करके तुम्हारे ही समीप लाये हैं। क्योंकि इस कार्यको पूरा करनेकेलिये तुम्ह ही योग्य जानपडते हो। इसके बाद ब्राह्मण बोला कि भगवन्! प्रथम यह बतलाइये यह अत्यन्त छोटा बालक आप लोगोंके समीप कहांसे आया है। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजी तो प्रत्युत्तर देना ही चाहतेथे परन्तु उनसे भी प्रथम पार्श्ववर्ती वे लोग, जो आदिसे उस वृत्तान्तको अच्छी तरह जानचुकेथे, कहनेके लिये अग्रसर हुए। और उन्होंने ब्राह्मणको समस्त समाचार विदित कराथा कि ये बडे ही शक्तिवाले महात्मा हैं। हमने तो आजपर्यन्त ऐसे पहुँचे हुए महात्मा कहीं भी कोई नहीं देखे हैं। अतः जानपडता है ये अवश्य कोई न कोई अवतारी पुरुष हैं। तबतो मधुसूदन ब्राह्मण और भी प्रसन्न चित्त हुआ। तथा ईश्वरकी अलक्ष्य विचित्र गतिके विषयमें सानन्द असंख्य-धन्यवाद देता हुआ कहनेलगा कि अच्छा महाराज हम अपने प्राणोंकी तुल्य सस्नेह विधिपूर्वक इसकी पालना करेंगे। क्यों कि आपलोग महात्मा-ओंकी कृपासे अन्य सम्पत्ति तो मेरे समीप पर्याप्तथी। किन्तु कोई पुत्र ही ऐसा हमारे निमित्तमें अबतक नहीं हुआथा जो कि इस सम्पत्तिका उपभोग करे। ऐसी दशामें यह अकस्मात् जो आपलोगोंने अपनी महती दयालुताका परिचय दिया है यह बडा ही महत्त्वका है। यही नहीं आज आपलोगोंने एक होनहार बालकको मेरे लिये प्रदान कर संसारके इतिहासमें मेरे नामको सदाके वास्ते अमर करादिया है। और पुत्रके मुख दर्शनद्वारा सांसारिक भोगविलासके सफल करनेका सौभाग्य प्राप्तकर दिखलाया है। अतः इस उपकार के लिये आपलोगों को अनेकानेक सधन्यवाद नमस्कार है। यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजीने बालकको उसके अर्पण किया। और कहा कि मधुसूदन! यह बाततो ठीक है इस बालककेद्वारा जगत् के इतिहासमें तेरा नाम चिरस्थायी रहेगा। किन्तु सम्पत्ति विषयक सांसारिक उपभोग विषयमें कुछ तेरा भ्रम है। क्योंकि हम अब इस बातको स्फुट ही कर देते हैं तू इधर ध्यान देकर सुन। यह बालक, करभाजन नारायण,का अवतार है। इसी लिये सांसारिक भोग विलासमें यह कभी सँलग्न नहीं होगा। और विरक्त भावसे समय

व्यतीत करता हुआ किसी दिन तुमको ही नहीं असंख्य पुरुषों को अपनी शक्ति तथा महिमा का परिचय देगा। और इस मेरे शिष्य गोरक्षनाथसे शिक्षा ग्रहण करेगा। उस समय बड़े २ महेशादि देवता भी तुम्हारे गृहपर स्वयं उपस्थित होते हुए तुमको अपने पवित्र दर्शन द्वारा कृतार्थ करेंगे। बस क्या था मत्स्येन्द्रनाथजी की ऐसी असंभाव्य जैसी वाणी सुनकर मधुसूदन एकवार तो सङ्कल्प विकल्प के सागरमें मग्न हो गया। परन्तु जब उसने पूर्व प्रत्यक्ष घटनाका स्मरण किया तबतो वह विश्वासित हुआ महात्माओं के चरणों में गिरा। तथा कहनेलगा कि भगवन्. बालकको दीजिये आपकी आज्ञानुकूल सर्व कार्य ठीक होगा। अब इसके विषयमें अन्य कोई विशेष वार्ता कहनी होयतो कहें। तदन्तर मत्स्येन्द्रनाथजीने बालक को ब्राह्मण के अर्पण किया. और तुम तन मन, धनसे सस्नेह इसकी सब प्रकारसे पालना करते रहना. यह कह, साशीर्वाद वचनों द्वारा उसको सन्तुष्ट कर देशान्तरको प्रस्थान किया। इधर जब विधिवत् महात्माओंकी विदा करचुके तब ब्राह्मण ब्राह्मणी लडके की सुन्दरता के विषयमें मोहित हुए पारस्परिक अनेक वार्तायें करते हुए अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। और बार २ मुखचुम्बन कर लडके को कभी ब्राह्मणी अपनी गोदमें उठाती थी कभी ब्राह्मण अपनी गोदमें उठाता था। यही नहीं इस कृत्यसे वे अपने आपको अतीव धन्य मान ते हुए इस प्रकार के अभिमान में लीन थे कि आज समस्त पृथिवी पर हमारे जैसा कृतकृत्य मनुष्य कोई भी नहीं है। इसी प्रकार लालना करते २ कतिपय वर्ष व्यतीत हो गये। और लडकेका बडे २ पण्डित लोगों द्वारा शास्त्रोक्त विधिसे संस्कार करागया। और वह विद्याध्ययन करने के लिये एक सुयोग्य विद्वान् के अर्पण कियागया। लड़का बडा ही सुशील मातापितृभक्त तथा गुरुभक्तथा। और वृद्ध पुरुषों के सम्मुख प्रतिदिन नम्री भूत होकर रहने वाला था। यही नहीं उसका स्वाभाविक ही यह व्यवहार था कि प्रति दिवस योग्य वृद्ध पुरुषों में बैठकर कोई न कोई एक अच्छी शिक्षा अवश्य प्राप्त करना तथा निजग्राम आगत विरक्तिभाव महात्माओं की यथा साध्य सेवा कर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करना। एवं शिव मन्दिरादि देवालयोंमें भी यथा समय उपस्थित होता हुआ वह लड़का अपनी दृढ श्रद्धापूर्वक भक्तिद्वारा अपने होनहारत्व को सूचित करता था। इसी प्रकार करते २ बारह वर्ष पूरे होनेको आये। ठीक उसी समय उधर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने गोरक्ष-नाथजी को चन्द्रगिरि ग्राममें जाकर उक्त लड़के को निज शिक्षा देते हुए अपना शिष्य बनाने के लिये सूचित किया। तत्काल ही गुरु आज्ञा प्राप्त कर गोरक्षनाथजी एकाकी उक्तग्राममें आये और आपने उसी तलावपर अपना आसन किया। उधर ग्राम निवासी लोगोंको नाथजी के आ पहुँचने की सूचना मिली। तत्काल ही नगर के अनेक स्त्री पुरुष गोरक्षनाथजी के दर्शन करनेको आये। और यथाशक्ति भेंठ पूजा उनके अर्पण

करने लगे । एवं जब उक्त लड़के ने भी यह सूचना मिली कि वे ही महा॰ आपहुँचे हैं । तबतो वह अतीव प्रसन्नचित्त हुआ विद्यालयसे तत्काल ही स्वकीय गृह आया । उधर मधुसूदन तथा ब्राह्मणी प्रथमतः ही वहां जानेके वास्ते तैयार हो रहे थे केवल लड़केके ही पाठशालासे आजाने की बाट देख रहेथे । ठीक उसी समय गृह॰ लड़के का आना हुआ । तत्काल ही अनेक प्रकारकी भेंठ पूजा लेकर सपुत्र ब्राम॰ ब्राह्मणी भी महात्माजी की सेवामें उपस्थित हुए । वहां जिस समय लड़केने गोरक्षनाथज॰ को सम्मुख बैठा देखा तब तो अत्यन्त ही शीघ्रतासे अग्रेसर होकर वह अपने माता पिता॰ पहले ही गोरक्षनाथजी के चरणोंमें गिर गया । यह देख गोरक्षनाथजीने बालक वं॰ सस्नेह अपनी गोदमें बैठा लिया । और कहा किसकि बेटा कार्यमें सँलग्न है और कैसे अपन॰ समय व्यतीत कर रहा है । जिस विशेष कार्य के लिये तेरा अवतार हुआ है उसका भी कु॰ स्मरण है वा नहीं । यह सुन प्रत्युत्तर में लड़केने कहा कि भगवन् ! मेरा इस विषय जो कुछ कहन॰ है सो व्यर्थ है । क्योंकि जिस विषयक मुझे चिन्ता है वह आपसे छिपी नहीं है । यद्य॰ उपस्थित इन माता पिताओंकी आज्ञानुसार प्रतिदिन अध्ययनशालामें जाकर मैं कुछलौकि॰ विद्या प्राप्त करता हूं तथापि आपके आगमन होनेवाले आजके दिवसके प्राप्त होनेकी अधि॰ उत्कण्ठा रखताथा । ठीक अब वह इच्छा भी ईश्वरने पूर्ण की आपके आगमनका यह दिव॰ भी प्राप्त हुआ । अब आपकी आज्ञापर ही मेरा भविष्य निर्भर है । यह सुन उपस्थि॰ पुरुष बड़े ही विस्मित हुए और निश्चय करने लगे कि ठीक है यह लड़का अवश्य को॰ अवतारीपुरुष मालूम होता है । अस्तु, इसके बाद गोरक्षनाथजीने मधुसूदनसे कहा कि अ॰ इस लड़केको मुझे देदो । क्योंकि बारह वर्षकी मर्यादा, जो कि हमने इसके तुमको देने॰ समय करीथी, वह पूरी होगई है । तब मधुसूदन ब्राह्मणने कहा कि महाराज, अभी तो यह विद्या पढरहा है जब कुछ विद्या ग्रहण कर विद्वान् होजायेगा तब लेजाना । हमारीतो यह॰ सम्मति है आगे आपकी इच्छा रही जैसा अभीष्ट हो वैसा ही करें । गोरक्षनाथजीने कह॰ कि अबतक भी तुमलोग भ्रममें पडे हो । यह लड़का केवल तुम्हारी आज्ञाको शिरोधार्य॰ समझता हुआ तुमको प्रसन्न रखने के लिये ही प्रतिदिन पाठशालामें जाता है । औ॰ तुमलोगोंको विद्या पढता मालूम होता है । यथार्थ में यह विद्या नहीं पढता है यह स्वयं विद्वानोंका विद्वान् है । इस वार्ताको हम प्रथम भी स्फुट कर चुके हैं । परन्तु आप लोग गार्हस्थ्य कार्यों में व्यग्र रहते हैं । उस वार्ता को क्यों स्मरण रखते थे । यदि ऐसा न होता तो कभी इसके तादृश होनेमें तुम कुछ भी सन्देह न करते हुए इस को विद्या भण्डार समझते । तब तो मधुसूदन गोरक्षनाथजीके चरणोंमें गिरकर अपनी प्रमत्ताके विषयमें क्षमा करनेकी प्रार्थना करता हुआ कहने लगा लीजिये भगवन् ! आपका ही लड़का है आप

जानते ही हैं हम लोग सांसारिक विषय भोगों के कीट हैं। अतः क्षमा प्रदान करें। इसी प्रकारके वार्तालाप होते हुए सायंकाल आ पहुंचा। प्रातः होते ही गोरक्षनाथजीने महादेवादि देवताओंका स्मरण किया। तत्काल ही स्वकीय २ वाहनोंपर आरूढ होकर अनेक देवता वहांपर उपस्थित हुए। उसी समय सर्व देवताओंकी आज्ञानुसार गोरक्षनाथजीने उस लड़केको निजकुण्डलादि समस्त चिन्हान्वित कर, गहनिनाथ नामसे, प्रसिद्ध किया। और एक महोत्सव रचा जिसमें लोगोंको नाना प्रकारके भोज्य भी दिये गये थे। इस प्रकार जब कतिपय दिन तक उत्सव होकर समाप्त हुआ तब आगत समस्त देवताओंने गहनि-नाथजी के लिये अपना २ आशीर्वाद प्रदान किया। और अपने २ वाहनोंपर सवार होकर वे स्वकीय स्थानोंको गये। उधर गहनिनाथजीको लेकर गोरक्षनाथजी बदरिकाश्रममें गये। और बारह वर्षकी अवधि रखकर उससे भी अपने जैसा कठिन तप कराया। और स्वकीय अनेक विद्याओंमें निपुण कर जनोंको योगोपदेश प्रदानार्थ एकाकी भ्रमणकी आज्ञा दे स्वयं सानन्द देशाटनके लिये प्रस्थानित हुए कैलासमें पहुँचे।

इति श्री गहनिनाथोत्पत्ति वर्णन नामक १२ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय १३ ॥

श्री मत्स्येन्द्रनाथजी गोरक्षनाथजीको चन्द्रगिरि नामक ग्रामकी ओर भेजते ही स्वयं संसारके दुःखत्रयसे पीड़ित जनोंको योगोपदेशद्वारा सानन्द करते हुए मध्यप्रदेशमें भ्रमण करने लगे। तथा कतिपय वर्षतक भ्रमण कर फिर वहांसे भी प्रस्थान करगये और शनैः २ श्रीगङ्गा, यमुना, नदियोंके मध्यस्थ देशमें आपहुँचे। इसी देशस्थ हस्तिनापुर नामक नगरके बृहद्रथ[१] नामक राजाने पुत्रो पत्तिके उद्देशसे एक पुत्रेष्टीयज्ञका आरम्भ कियाथा। जिसमें दूर २ से बडे ही योगक्रिया कुशल योगी मत्स्येन्द्रनाथजीको तथा ऋषिमुनियोंको आमन्त्रित कियाथा। अतएव इस महोत्सवमें कतिपयदिन पहले ही से मत्स्येन्द्रनाथजी उपस्थित आ हुए। उधरसे अन्य ऋषि मुनि भी शनैः २ आनेलगे। कुछ ही दिनमें खासी भीड़ होगई। फिर राजाने प्रथम एक सभा की। और उसमें सनति हस्तसम्पुटी किये हुए आगत विद्वानोंसे प्रार्थना की कि आपलोग शुभमुहूर्तान्वित पक्ष तथा दिन देखकर यज्ञका आरम्भ करो। उन्होंने तत्काल ही राजाकी आज्ञानुसार कार्य आरम्भ करदिया। समस्त नदियोंका जल मङ्गाया गया। बडी २ ओषधियें मङ्गाई गई। तथा अनेक प्रकारके गान्धिक पदार्थ भी मंगाये गये। इस प्रकार नाना सामग्रियोंद्वारा यथावत् शास्त्रोक्त विधिसे यज्ञ कर अग्निदेवको प्रसन्न कियागया। तत्काल ही अग्निकुण्डसे एक मनोहर दिव्यरूपवान् अद्वितीय बालक उत्पन्न हुआ। जो शीघ्र ही राजाके समर्पण कियागया। जब राजाने बालककी सुन्दरता देखी तबतो वह अत्यन्त ही आनन्दित हुआ परमात्माकी महती कृपालुताके विषयमें बार २ धन्यवाद देने लगा। क्योंकि आजपर्यन्त राजाके कोई पुत्र नहीं हुआथा अतः इस लड़केके दर्शन करनेसे राजाको वह प्रसन्नता प्राप्त हुई मानों प्रसन्नताके विषयका आजका दिन राजाके लिये अद्वितीय ही है। अबसे पहले राजाको ऐसा आनन्द प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआथा। (अस्तु) राजा शीघ्र ही बालकको अपने प्रासादमें ले गया। और वहां जाकर उसे अपनी राणीके अर्पण किया। बस क्या था लड़केको देखतेही एकवार तो राणी मानों मूर्च्छित ही हो गईथी। परन्तु

---

१ यह राजा कुरुवंशान्तर्गत पुरुवंशमें हुआ है। जो युधिष्ठिरकी अपेक्षा २३ मां राजा था।

जब वह कुछ सचेत हुई तो उसने तत्काल ही लड़केको अपने गोदसे लगाकर ईश्वरकी महती कृपाके विषयमें राजाकी तरह असंख्य धन्यवाद दिया। तदनन्तर राजाने समस्त नगरमें बाजे बजनेके लिये तथा अनेकप्रकारके दान पुण्य करनेके लिये मन्त्रीलोगोंको आज्ञा दी। ठीक उसी समय नगरके प्रतिगृहमें अनेक प्रकारके मङ्गलमय गीत गाये जाने लगे। और नानाप्रकारके बाजे बजने लगे। एवं कितने ही क्षुधार्त्त पुरुषोंको अनेक प्रकारके भोज्य दिये गये। तथा सुयोग्य व्यक्तियोंको बहुतसा दान भी दिया गया। इस प्रकार जब अपरिमित आनन्दके साथ यह कार्य समाप्त होगया तब देशान्तरसे आये हुए सर्व ऋषि मुनि राजासे असाधारण सत्कार प्राप्त कर अपने २ आश्रमको चलेगये। केवल मत्स्येन्द्रनाथजी ही वहांपर विद्यमान रहे। क्योंकि उन्होंने विचार कियाथा कि यह लड़का अन्तरिक्ष नारायणका अवतारी है अतः अब मुझे वह कृत्य करना चाहिये जिससे राजा बाल्य अवस्थामें ही यदि इस लड़केको सांसारिक व्यवहारमें प्रवृत्त करे तो इस बालकको तत्काल अपने अवतार धारणके मुख्योद्देशका ज्ञान होजाय। और शीघ्रतया संसारके किम्प्रयोजन भोगविलासको तिलाञ्जलि देता हुआ उनका परित्याग कर बैठे (अस्तु) अगले दिन आपने राजाके यहां सूचना दी कि हम बालकका दर्शन करना चाहते हैं। अतः उसको एकवार हमारे समीपमें लाओ। मत्स्येन्द्रनाथजीकी सूचना मिलते ही राजाने बालकको उनके समीप ला उपस्थित किया। उधर नाथजीने मन्त्रपाठपूर्वक विभूतिकी चुकटी प्रथमतः ही तैयार कररक्खी थी वह बालकके मुखमें डाल दी और राजासे कहा कि अब लेजाओ। यह देख राजाने पूछा कि भगवन्! विभूति खिलानेका प्रयोजन हमको भी विदित होना चाहिये। प्रत्युत्तरमें मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि हमने इतने दिन तक यहां ठहरकर जो तुम्हारा अन्नजल अपने व्यवहारमें लगाया है उसीका यह बदला है। हमने इस लड़केको वह औषधि खिलाई है जिस वशात् यह लड़का कभी भी किसी प्रकारकी व्याधिसे ग्रस्त न होगा। और ऐसा प्रतापी होजायेगा जिसका यश समस्त भारतमें चिरस्थायी हो जावेगा। तदनन्तर मत्स्येन्द्रनाथजी तो देशान्तरको गमन करगये। राजा पुत्रको लेकर अपने प्रासादमें गया। और मत्स्येन्द्र-नाथजीकी प्रसन्नताका समाचार उसने अपनी राणीसे कहा। यह सुन राणी और भी आनन्दित हुई। इसी प्रकारके आनन्दसे उनके कुछ वर्ष व्यतीत हुए और राजाने समयानुकूल बालकका सर्व संस्कार करवाया। पश्चात् जब लडका ठीक षोडश वर्षका होगया। तथा विद्यामें भी अच्छी कुशलता प्राप्त करचुका। तब एक दिन सहसा राजाके चित्तमें यह विचार स्फुरित हुआ कि अब लडका विवाहयोग्य होगया है। इसलिये अब इस विषयमें कुछ उपाय होनाचाहिय। अस्तु) उक्त विचारसे राजाने एक दिन सभा की। उसमें मन्त्रीलोगोंके

प्रति आज्ञा दी कि कुमार विवाह योग्य होगया है यह आपलोगोंके प्रयत्न ही है अतः शीघ्रतासे किसी सुलक्षणा कन्या की अन्वेषणा करनी चाहिये। तत्काल ही राजाकी आज्ञा प्राप्त कर मन्त्रीलोगोंने कन्यान्वेषणाके लिये इधर कतिपय मनुष्य भेजे। और स्वयं विवाहार्थ सामग्री एकत्रित करने के लिये तत्पर हो गये। उधर उस लड़के को भी यह सूचना मिली कि पिताजी विवाहके लिये प्रयत्न कर रहे हैं। तबतो उसने अपने विवाहित मित्रोंसे पूछा कि विवाहार्थ प्रथमसे ही इतनी वस्तु एकत्रित की जा रही हैं वह विवाह *क्या वस्तु है। और उसका मुख्योद्देश क्या है। उन्होंने उत्तर दिया कि विवाहमें बडी धूमधामता होती है जिसमें अन्य भी इधर उधर के सम्बन्धी पुरुष बुलाये जाते हैं। तथा जिसका विवाह होता है उसको श्वशुरकी औरसे एक कन्या प्रदान की जाती हैं जिससे कुछ दिनके बाद पुत्र उत्पन्न होते हैं। और उस स्त्री के साथ सम्बन्ध करनेसे मनुष्यको अतीवानन्द प्राप्त होता है। परन्तु इसके साथ ही साथ मनुष्य संसार के चक्रमें ऐसा जकडीभूत हो जाता है कि नाना प्रकारके कष्टोंको अनुभवित करता हुआ भी वह इनसे मुक्त नहीं हो सकता है। बस क्याथा उस लडकेने जहां इतना सुना उसका नींचेका श्वांस नींचे और ऊपरका ऊपर ही रहगया। अनन्तर कतिपय क्षण बीतनेपर कुछ प्रबुद्ध हुआ अपने मन ही मनमें विचार करने लगा कि अहो, क्षणिक विषयानन्दके लिये इस असार संसार के जटिल जालमें जकडीभूत होना हमको रोचनीय नहीं है। ये सांसारिक मूढ लोग हैं जो अनित्य क्षणिक सुख के वास्ते अनेक प्रकारके कष्टोंका अनुभव करते हुए भी रात दिन उस क्षणिक सुखकी प्राप्तिका ही यत्न करते हैं। अथवा ठीक है ये बिचारे क्या करें आज्ञानिक अंधकारसे आच्छादित होनेसे इन लोगों की बुद्धि निर्मल नहीं है। यही कारण है ये लोग इस क्षणिक सुखसे अन्य भी कोई नित्य परमानन्दरूप सुख है इस बातको जानते ही नहीं है। परन्तु मैं तो इसबातको अच्छी तरह समझता हूं इस क्षणिक सुखका लिप्सु बनकर यदि सांसारिक अन्यथा व्यवहारके चक्रमें पड गया तो फिर किसी प्रकार भी इससे विमुक्त न होसकूंगा। अतः अब शीघ्रही इस चक्रसे दूर हो कर अपने आपको विमुक्त करलेना आवश्यकीय बात है। पश्चात् मङ्गलप्रद मुहूर्त देखकर वह राजमहलसे बहिर निकल गया। और रूपान्तर धारण कर श्री गङ्गाजीके तटस्थ प्रदेशमें भ्रमण करता हुआ हिमालय पर्वत में पहुँचा। तथा वहीं एक अच्छी विघ्न शून्य गुहा देखकर अपनी मतिके अनुसार भगवदाराधनमें सँलग्न चित्त हुआ। इधर जिसदिन

---

* सम्भव है राजाने एकही पुत्र होनेसे, और वहभी सुलक्षण होनेसे प्रासादमें ही उसेको अवरुद्ध रक्खाथा, जिससे उसको बाह्य संसारका यथेष्ट ज्ञान नहीं था, इसी लिये उसने विवाह के प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकटकरी ऐसा प्रतीत होता है

लड़का प्रासादसे निकल फिर लौटकर नहीं गया इससे प्रासाद के रक्षक राजपुरुषोंके कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ। और वे परस्परमें पूछने लगे कि कुमार साहिब एकाकी बहिर किसी जगह भ्रमणके लिये गये थे सायंकाल होनेपर भी अबतक वापिस न आये। सम्भवतः किसी मित्रके यहां रह गये होंगे। इसी प्रकारकी बात करते २ अर्धरात्री होने को आई। परन्तु लडका अबतक न लौटा। राजपुरुषों ने यह सूचना राजाको दी। उसके स्वप्नमें भी यह विचार उपस्थित नहीं हुआ कि कभी ऐसा हो जायेगा अतएव नगरके प्रधान राजकीय स्थानोंमें तथा उसके मित्र अन्य लड़कोंके स्थानमें उसकी अन्वेषणा करने के लिये राजाने राजपुरुषों को आज्ञा दी। ठीक उसी समय वे लोग इधर उधर दौडकर उसकी अन्वेषणा करने लगे अन्ततः जब वह उनलोगोंको कहीं भी न मिला तब उन्होंने शीघ्र राजाके यहां सूचना दी कि समस्त सन्दिग्ध स्थानोंमें हमलोग उसकी अच्छी तरह अन्वेषणा कर चुके हैं तथापि कुमारका कहीं पता न चला। आगे आपके अधीन हैं जैसी आज्ञा करें वैसा ही हम भी करने को तैयार हैं। यह सुनकर राजाका मुख शुष्क हो गया मानों कहीं से वज्रपात हो गया हो। क्योंकि उस लडके के समस्त योग्य गुणसम्पन्न तथा अतीव सुन्दरता युक्त और एक ही पुत्र होनेसे राजाका उस लडकेमें बहुत ही अधिक मोह था। यहांतक कि बारह वर्ष पर्यन्त तो प्रासादसे बहिर भी जाने देने की आज्ञा न देकर वह उसको अपने ही समीप रखता था। और प्रतिदिन उससे प्रकरणान्तर की बातें करके अत्यन्त प्रसन्नताके साथ गोदमें बैठानादि क्रियाद्वारा अपने आपको धन्य मानता हुआ कुछ न कुछ समय अवश्य व्यतीत करता था। ऐसी दशामें वह सहसा पुत्र रत्नकें खोये जानेरूप वज्रपातको कब सह सकता था। अतएव उस समय मूर्च्छित हुआ राजा कतिपय क्षण पर्यन्त तो मृतकके सदृश निश्चेष्ट हो गया। वह और ऐसा जान पडताथा मानों आज इसका जीवात्मा इसके इस प्राकृतिक स्थूल शरीरसे मुक्त हो कर अवश्य अगमलोककी यात्रा करेगा। परन्तु हत भाग्य ऐसा न हो कर दीर्घकाल पर्यन्त इस घोर दुःखसे आक्रान्त होनेके लिये उसके प्राण शरीरमें पूरी तरहसे अपना अधिकार जमायें ही रहे। अतः कुछ क्षण के बाद वह सचेष्ट जैसा हुआ सजल नेत्र हो कर अतीव दुःखमय विलाप करने लगा। ठीक उसी अवसर पर मन्त्री लोग एकत्रित हुए। और उन्होंने राजाको अनेक प्रकार के दृष्टान्त प्रमाण तथा नीति शास्त्रके सयुक्ति वाक्यों द्वारा बहुत ही शान्त करनेका प्रयत्न किया। परन्तु राजाके शान्ति कहां। ज्यों ही प्रतिदिन के सप्रीति पुत्रके हास्यमय क्रीडारूप व्यापारका वह स्मरण करता था त्योंहीं अधिकाधिक शोकग्रस्त होता था। अधिक क्या राजाकें उस तात्कालिक घोर दुःखका अनुभव या तो ईश्वरको वा राजा ही को होगा। अथवा राणी को होगा जो पुत्र के खोये जाने को सुनकर परमात्मासे प्राण ले लेने की प्रार्थना करती

हुई अन्धी जैसी हो गई थी। और वडे समृद्धिवाले एक साम्राज्य के स्वामीकी पत्नी हो कर भी उस समृद्धि शाली राज्य को किम्प्रयोजन समझती हुई अपने आपको एक महा दरिद्रदशास्थ स्त्री के समान जानती थी। अहो ईश्वर तेरी क्या ही अलक्ष्य गति है पुत्र प्रेमरूपी रत्न कैसा विचित्र रचा है जिसके अभाव में सब सम्पत्तिमय राज्य भी तृणवत् जान पडता है (अस्तु) उपायान्तराभावसे विचारे राजा और राणी कवतक इस दशामें रहकर अपना निर्वाह कर सकते थे अन्ततः शनैः २ पूर्ववत् फिर राज्य कार्यमें दत्तचित्त हो गये। वस अधिकसे अधिक मनुष्यके पीछे सांसारिक लोग अपनी इतनीही कृतज्ञता दिखला सकते हैं। अगम के लिये कोई किसी प्रकारकी भी सहायता दे नहीं सकता है। इस वास्ते अगम सुधार विषयक चिन्ता वाले पुरुषोंको गृहनिष्ट मिथ्या प्रेम युक्त मनुष्यों के त्याग पूर्वक अवश्य जगद्रक्षक विश्वम्भर ईश्वरकी शरणमें उपस्थित होना चाहिये। (अस्तु) उधर वह बालक पर्वत कन्दरामें बैठा भगवदाराधनमें तत्पर हुआ इस विचारमें लीन था कि किसी के सकाशसे दीक्षा अवश्य लेनी चाहिये। क्यों कि विना दीक्षाके मनमुखी क्रिया करनी शास्त्र विरुद्ध तो है ही किन्तु पूरी तरहसे उसका अनुभव करना भी दुर्धट है। इतने में देखता क्या है कि वनमें अकस्मात् अग्नि प्रज्वलित हो उठा जिससे बुरी तरहसे वनवृक्ष दाह होने लगे। और वडी शीघ्रतासे अग्नि बालकके समीप तक आ पहुँचा। तवतो वालक अतीव शोकग्रस्त हुआ विचार करने लगा कि अहो अव कहां चलना चाहिय कोई भी रक्षा स्थान कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है। ठीक उसी समय अग्निदेवने सोचा कि यह तो मेरा ही पुत्र है अतः इसको कभी नहीं जलने दूंगा। तदनन्तर लडके के समीप वर्ती अग्नि शीघ्रही शान्त हो गया। और मूर्तिमान् होकर बालकसे कहने लगा कि हे पुत्र! भय मत्त करो। हम तुमको कभी नहीं जलावेंगे। यह देख लडका कुछ विस्मितसा हुआ। और पूछने लगा कि सत्य वतलावें आप कौन हैं जो मेरे को पुत्र कहकर व्यवहार करते हैं। अग्निदेवने प्रत्युत्तरमें कहा कि हम अग्नि देव हैं तू हमारा पुत्र है इस लिये तेरी रक्षाके निमित्त हमने मूर्तिमान् होकर तेरे साक्षात् कारका विषय होना पडा है। लड़का बोला मैं तो राज कुमार हूं हस्तिनापुरके राजा मेरे पिता प्रसिद्ध हैं फिर आप मेरे पिता कैसे प्रमाणित हो सकते हैं। अग्निदेवने कहा कि तेरे पिता वृहद्रथके सन्तति न होती थी इसी हेतुसे उसने पुत्रेष्टी यज्ञद्वारा मेरे को प्रसन्न किया था। उसी समय प्रत्युपकारार्थ हमने तेरे को राजा के लिये प्रदान करना पडा था। यह सुन लडका अतीवानन्दित हुआ और अनेक प्रकारसे अग्निदेवकी स्तुति करने लगा। तब अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक अग्निदेवने कहा कि पुत्र हम तेरे ऊपर वहुत प्रसन्न हैं अतः हमारे से कोई वर मांगो। यह सुन लडका वोला अच्छा यदि यही वात है तो कृपया आप ऐसा उपाय वतलावें जिससे मैं परमज्ञान प्राप्त कर

जीवन मुक्तिका आनन्द लेता हुआ अपने उद्देशको सफल कर सकूं। तत्काल ही लड़केका ऐसा वचन सुनकर अग्निदेव उसको कैलासस्थ श्री महादेवजी के समीप ले गया, तथा अतीव नम्रतायुक्त हस्तसम्पुटी कर उसने श्री महादेवजीसे कहा कि हे कृपानिधान! दीनबन्धो! आप मेरे पुत्र इस लड़केको उपदेश करो जिससे यह परमानन्दको प्राप्त होसके। श्रीमहादेवजीने प्रसन्नतापूर्वक उसके प्रस्तावको स्वीकृत करते हुए कहा कि अच्छा आप निःसन्देह होकर अपने स्थानको जाइये हम आपके कथनानुसार सर्व कार्य ठीक करेंगे, क्योंकि इसके गृह परित्याग कर पर्वतमें आनेमें तथा दीक्षा ग्रहण करनेके लिये उत्कण्ठित होनेमें हमारी ही प्रेरणा कारणीभूत है। यह सुन अग्निदेव अतीव प्रसन्न हुआ और सानन्द श्रीमहादेवजीको नमस्कार कर अपने स्थानको प्रस्थान कर गया। उधर श्री महादेवजीने उस लड़केको मत्स्येन्द्रनाथजीकी सदृश अपने कुण्डलादि सर्व चिन्होंसे चिन्हित कर अमरमन्त्रका उपदेश किया। तथा कहा कि आजसे लेकर ज्वालेन्द्रनाथ, नामसे तेरी संसारमें प्रसिद्धि होगी। यह सुनते ही ज्वालेन्द्रनाथजी श्रीमहादेवजी के चरणोंमें गिरे। और अनेक प्रकारसे महादेवजीकी स्तुति करने लगे। इसके बाद श्रीमहादेवजी ने मत्स्येन्द्र-नाथादिकी सिद्धिका सर्व समाचार उसको सुनाया। और आज्ञा दी कि जाओ अब बदरिका-श्रममें जाकर तप करो परन्तु मार्तण्ड पर्वतमें होकर वहां जाना वहांके नागवृक्ष और सूर्य कुण्डके दर्शन करनेका बहुत ही महात्म्य है। मत्स्येन्द्रनाथने इसी पर्वतमें नागवृक्षके नीचे एक अनुष्ठान द्वारा सर्व देवताओंको प्रसन्न किया था। तत्काल ही श्रीमहादेवजीकी आज्ञा-नुसार सनति प्रणाम कर ज्वालेन्द्रनाथजीने कैलाससे प्रस्थान किया और कतिपय दिनोंमें मार्तण्ड पर्वतपर पहुँच कर सूर्यकुण्ड तथा नागवृक्षादिके दर्शन किये। अनन्तर आप शनैः २ फिर बदरिकाश्रममें पहुँचे। वहां दैवयोगसे आपको वही जगह प्राप्त हुई जिस पवित्र जगहपर श्री मत्स्येन्द्रनाथजीने महा घोर कठिन तप किया था। बस उसी जगहपर ज्वालेन्द्र-नाथजीने भी अपना आसन लगा लिया। यह जगह विघ्नरहित और बहुत ही अनुकूल थी जिसके समीप वर्त्ती बड़ी ही सुन्दर वृक्षपंक्ति थी और निर्मलजलके अनेक झरने इधर उधर बह रहे थे। अतएव सर्व ओर अनेक प्रकारके पुष्प लगे हुए थे जिन्होंकी मनमोहनी सुगन्धसे चित्त बहुत ही प्रसन्न होता था। एवं सफल वृक्षोंके ऊपर बैठे हुए पक्षी अनेक प्रकारके मधुर २ वाक्योंकी ध्वनि कर रहे थे। ठीक इसी जगहपर ज्वालेन्द्रनाथजीने तप करनेका निश्चय किया। और एक दिन शुभ तिथि, वार, मुहूर्तादि, देखकर आज ही तप आरम्भ करूंगा, यह दृढ निश्चय करते हुए आपने एक लोहेकी कीलभूमिमें गाड़कर उसके ऊपर अपने दाहिने पैरका अङ्गुष्ठा स्थापित किये हुए शरीरका भार उसके ऊपर अच्छी तरह जाचकर सर्वेन्द्रियोंकी चंचलताको तिलाञ्जलि देते हुए नाशाग्रभागमें दृष्टि स्थापित कर दोनों

हस्तोंको सम्पुटी किया। और अजपा नामक हंसमन्त्रके ध्यानमें आप लवलीन हो गये। तथा जबतक कन्दमूल फल जलादिका उपभोग करते रहे तबतक तो आप अवश्य यथा समय प्रत्येक क्रियाकी निवृत्तिके लिये कतिपय क्षण आसन भङ्ग करते रहे। परन्तु जब ठीक शरीर सम्बन्धी कुञ्जी अपने आपको मालूम हो गई और आप वायुका आहार करने लगे तब तो आपका उस झगड़ेसे भी पीछा छुट गया। इसी लिये आप निरन्तर ध्याननिष्ठ हो गये। ऐसी दशामें कुछ काल व्यतीत होनेपर ज्वालेन्द्रनाथजीका शरीर मत्स्येन्द्रनाथजीकी सदृश शुष्क पिञ्जर जैसा हो गया। कितने ही ऋषि, मुनि, तथा देवता लोग उनका तप देखकर अत्यन्त विस्मित हुए उनको असंख्य धन्यवाद देते थे। उसी प्रकार जब ठीक बारह वर्ष व्यतीत हो गये. तब मत्स्येन्द्रनाथजी भी अकस्मात् वहीं आ निकले। और उन्होंने ज्वालेन्द्रनाथजीका आसन खुलाकर उन्हें उस घोर तपसे विमुक्त किया। तदनन्तर ज्वालेन्द्र-नाथजीके शरीरकी जबतक पुष्टी हुई तबतक दोनों महानुभावोंने वहीं निवासकर पश्चात् देशान्तरमें भ्रमण करनेके लिये वहांसे प्रस्थान किया।

इति श्रीज्वालेन्द्रनाथोत्पत्ति वर्णन नामक १३ अध्याय।

अनुवादक—चंद्रनाथ योगी.

॥ अध्याय १४ ॥

एक समय किसी विशेष कार्यके लिये कितने ही देवता लोग एकत्रित होकर कृत-नाना शृङ्गार अति रूपवती अपनी २ स्त्रियोंके सहित श्रीगङ्गाजी के तटप पहुँचे। जिन्होंमें श्री ब्रह्माजी भी आकर सम्मिलित हुए थे। उधर श्री सरस्वतीजीने विचार किया कि समस्त देवताओंकी स्त्रियें नाना प्रकारके शृङ्गार करके गई हैं अतः मैं उनसे अधिक मनमोहनी शृङ्गार कर वहां जाऊंतो कहीं अच्छा है. अनन्तर सरस्वतीजीने अपना शृङ्गार करना आरम्भ किया। जिसका निरूपण होना दुष्कर है। अतः इस विषयमें मैं कुछ न लिखूंगा। सरस्वतीजीने कैसा रूप धारण किया होगा इसका उसकी प्रभुतासे ही आप लोग अनुमान कर सकते हैं (अस्तु) जब सरस्वती जिसजगहपर देवता लोग एकत्रित हो रहे थे, वहां आई तत्कालही श्रीब्रह्माजीकी दृष्टि उसके ऊपर पड़ी। देखतेही वे कामातुरहो उठे। उन्होंने बड़ी सावधानी के साथ कामको शान्त करने के लिये यत्न किया तथापि कामकी इतनी प्रबलता उत्पन्न हो गई थी जिसका शान्तकरना असाध्य हो गया। और शरीर से वहिर निकलकर उसने ब्रह्माजी को अपने बलका पूरी तरहसे परिचय दिया। यह देखकर ब्रह्माजी अत्यन्तही विस्मित हुए। और उन्होंने वीर्यको लेकर श्री गङ्गाजीके प्रवाह में छोड दिया। आगे एक जङ्गली मस्त हस्ती श्री गङ्गाजी में पडा स्नान कर रहा था दैव योगसे वह उसके कर्णमें जा कर स्थित हो गया। और कतिपय दिनोंमें वही वीर्य मनुष्याकार हो कर सचमुच बालक बन गया। जिसमें प्रबुद्ध नारायणने अपने सूक्ष्म शरीरको प्रविष्ट किया। ठीक उसी समय श्री मत्स्येन्द्रनाथजी और ज्वालेन्द्रनाथजी दैवगत्या श्री महादेवजीसे मिलने के लिये कैलास में गये। वहा पारस्परिक आदेश २ के अनन्तर श्री महादेवजीने प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा कि प्रबुद्ध नारायणका अवतार भी हो चुका है। यह सुन उक्त महात्माओंने पूछा कि भगवन्! कहिये कहां और किस प्रकारसे हुआ है। प्रत्युत्तरमें श्री महादेवजीने कहा कि किसी विशेष कार्यार्थ देवता लोग गङ्गाजी के तटस्थ ससस्रोत के समीपस्थ स्थल में एकत्रित हुए थे। जिन्होंकी अङ्गनायें भी साथमें थी। इसी अवसर पर अन्यस्त्रियोंकी देखा देखी सरस्वतीने सबसे अधिक मनमोहनी रूप धारण किया था। जिसके दर्शन मात्रसे

ब्रह्माजी काम करके अतीव खिन्न चित्त हो गये थे। और उन्होंने बडी सावधानी के साथ कामके रोकने के लिये प्रयत्न भी किया था। परन्तु काम अन्तः स्थिति न करके सहसा शरीरसे बहिर भूत हुआ। विवश होकर ब्रह्माजीने वीर्यको गङ्गाजीमें डाल दिया था। वही वीर्य बहता हुआ आगे धारामें लेटे हुए एक जङ्गली हस्ती के कर्णमें स्थित हो गया था। उसीका कतिपय दिनोंमें मनुष्याकार पुतला तैयार हुआ। और प्रबुद्ध नारायणजी ने उसमें अपनाजीवात्मा प्रविष्ट किया है। तब मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि भगवन्! उसको जिस विधिसे हो सके उसी विधिसे अब शीघ्र ही निकाल लेना उचित है। क्यों कि नहीं जानते हैं कब कर्णसे उसका पात होजाय। यदि अकस्मात् किसी अरण्य स्थानमें पात होगया तो महान् अनर्थ उपस्थित होजायेगा। क्योंकि यह वह अवस्था है जिसमें एकवार तो सर्व ही को परतन्त्र होनापड़ता है। यह सुनते ही श्रीमहादेवजीने उन्होंका प्रस्ताव स्वीकृत किया। और दोनों महात्माओंके साथ ही वे वहांसे प्रस्थान कर हरिद्वारके समीपस्थ बनमें आपहुँचे। वहां उन्होंने बनमें उस हस्तीको अन्वेषित किया। तथा उन दोनों महात्माओंको आज्ञा दी कि इसीके कर्णमें प्रबुद्धनारायण स्थित है जाओ आपलोग निःसन्देह होकर निकाल लो। परन्तु यह सुन ज्योंही वे दोनों महात्मा हस्तीकी तरफ अग्रसर हुए और मत्स्येन्द्रनाथजीके इसारेसे जब ज्वालेन्द्रनाथजीने बालकको निकालना चाहा त्योंही वह मस्त हस्ती सहसा उनकी ओर झपटा। ज्वालेन्द्रनाथजीने बड़ी चतुराईके साथ अनेकवार उसका प्रहार निष्फल किया और निश्चयात्मक यह समझलिया कि यह इस प्रकार-वंशगत होना सहज नहीं है। तब उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथजीसे कहा महाराज! यह तो बडा ही चञ्चल मालूम होता है अतः अवश्य किसी मन्त्रादिका आश्रय लेना चाहिये। मत्स्येन्द्रनाथजी बोले अच्छा कुछक्षण शान्ति करो हम इसकी चञ्चलता सब निकालते हैं। हम सोचतेथे ऐसे ही विना परिश्रम किये कार्यसिद्धि होजायेगी काहेके लिये इस विचारेको जकडीभूतकर कष्टान्वित किया, परन्तु क्या करें उपायान्तरके अभावसे अब अवश्य ऐसा करना ही पडेगा। अनन्तर उन्होंने अपनी झोलीसे एक चुकटी विभूति निकाली और मोहनी मन्त्रके साथ उसको हस्तीकी ओर फैंका दिया। तत्काल ही हस्ती ऐसा मोहित होगया जिससे सब चञ्चलता उसके शरीरको तिलाञ्जलि देकर प्रस्थानकर चली। ऐसा होनेपर हस्तीनिश्चेष्ट जैसा होकर एक जगह स्थित होगया। ठीक उसी समय श्रीमहादेवजीने ज्वालेन्द्रनाथजीको कुछ दूरीसे पुकार कर कहा कि अब तुम ऊंचेस्वरसे आवाज दो। जिससे वह बालक कुछ सावधान होजाय। यह सुन ज्वालेन्द्रनाथजीने ऊर्ध्वस्वरसे पुकारा कि प्रबुद्धनारायणके अवतारी सावधान होकर बहिर निकलो, अब वह समय आपहुँचा है जिसमें तुमने अपने उद्देशकी पूर्ति करनी है। इस प्रकार आवाजको सुनकर ज्योंही बालक कुछ बहिर आया त्योंही ज्वालेन्द्रनाथजीने उसको अपने हस्तोंमें

पकडकर कर्णसे बहिर निकाला। ठीक उसी समय जब ज्वालेन्द्रनाथजी बालकको श्रीमहादेवजीके तथा मत्स्येन्द्रनाथजीके समीप लाये तबतो अवश्य एकवार उसने श्रीमहादेवजी तथा उक्त दोनों महात्माओंको सनति नमस्कार किया। परन्तु पश्चात् प्रकृतिदेवीके नियमानुसार वह उस वाल्यावस्थाके अनुकूल ही अज्ञातावस्थास्थ बालकवत् अज्ञात होगया। यह देख श्रीमहादेवजी आज्ञा देतेहुए कहनेलगे कि ज्वालेन्द्रनाथ ! इस बालकको तुम अपने समीप रखना। और इसकी सर्व प्रकारसे रक्षा करते हुए इसको अपनी विद्यामें निपुण होनेकेलिये दीक्षादानपूर्वक अपने सर्व चिन्होंसे चिन्हित करदेना। देखना यह बडा ही प्रतापी होगा। समस्त जगत्में तुम्हारी कीर्तिका अच्छा विस्तार करेगा। यह सुन ज्वालेन्द्रनाथजीने जब महादेवजीकी आज्ञानुसार उसको अपने ही समीप रखना स्वीकृत किया तब श्रीमहादेवजी और मत्स्येन्द्रनाथजी दोनों कैलासको गमन करगये। उधर ज्वालेन्द्रनाथजी भी हरिद्वारसे नीचेके प्रान्तोंमें भ्रमण के लिये प्रस्थान करगये। और कतिपय वर्षोंतक निजभक्तोंको योगक्रियारूप परमौषध द्वारा नानाकष्टोंसे विमुक्त करते हुए इतस्ततः भ्रमण करते रहे। एवं सर्व प्रकारसे दत्तचित्त हुए बालकका विधिपूर्वक पालन-पोषण भी करते रहे। जब आपने समझलिया कि बालक अच्छा समझदार होगया है तब उसको कुण्डलादिसे युक्त कर उसे अपने यथार्थ वेषमें सम्मिलित किया। और गुरुमन्त्रदानपूर्वक उसमें अपना शिष्यत्व आरोपित किया। तथा कहा कि बेटा तू करीके कर्णसे प्रकट हुआ है अतः हम तेरा नाम, कारिणपानाथ, रखते हैं। आजसे लेकर इसी नामसे तेरी जगत्में प्रसिद्धि होगी। ऐसा होनेपर प्रत्युपकारार्थ कारिणपानाथजीने अपने गुरुजीकी सहर्ष कोमल वाणीद्वारा स्तुति की। और आप उनके चरणोंमें गिरगये। ज्वालेन्द्रनाथजीने समस्त गुणसम्पन्नसुयोग्य शिष्य जानकर अपनी अनेक विद्यायें उनको प्रदान की।अनन्तर जब अपने घरकी कई एक विद्याओं में उन्होंने निपुणता प्राप्त करली तब ज्वालेन्द्र नाथजी उनको बदरिकाश्रममें ले गये। वहां जानेपर भी कितनी ही विद्या उनको प्रदानकी। पश्चात् एक दिन शुभवार तथा नक्षत्रादि देखकर आप उनको तपमें तत्पर करने के लिये प्रयत्न करने लगे। अर्थात् आपने अपने कृत्यकी तुल्य ही एक लोहेकी कील भूमि में आरोपित कर श्री गणेशजी के ध्यान पूर्वक उसपर आरूढ होनेकी उनको आज्ञा दी।तथा सप्रेम अतीव कोमल वाणी द्वारा उनको धैर्यान्वित करते हुए बडी सावधानीसे सर्वेन्द्रियगत चाञ्चल्यको दूर भगाकर शरीरको निश्चल रखने के लिये सूचित किया। उन्होंने गुरु आज्ञाको शिरोधार्य समझ कर ज्वालेन्द्रनाथजी को अपने विषयमें निःसन्देह रहने के लिये कहा, तथा अत्यन्त दृढ प्रतिज्ञाके साथ चित्तमें धीरता धारण कर महा घोर तप करने के लिये गुरुनिर्दिष्ट कीलिका के ऊपर समस्त कलेवरका भार स्थापित किया। इसी प्रकार जब

ठीक बारह वर्ष व्यतीत होगये तब ज्वालेन्द्रनाथजीने उनको तप सम्बन्धी वेदनारूप कष्टसे मुक्त किया। उस समय कारिणपानाथजीका शरीर अत्यन्त ही कृष होकर लकडीकी सदृश दीखपडताथा। परन्तु आसन मुक्तिके अनन्तर दिनोंदिन पुष्ट होनेसे कतिपय दिनोंमें पूर्ववत् ही हृष्टतान्वित होगया। अतएव कितने ही दिन वहां निवास कर उन्होंने स्वकीय गुरु श्रीज्वालेन्द्रनाथजीसे और भी कुछ विद्या प्राप्त की। जिसके सकाशसे उन्होंने अपने आपको एक पूरा महायोगेश्वर बनालिया। इसी हेतुसे ज्वालेन्द्रनाथजीको पूरा विश्वास होगया कि यह बडा ही गुरुभक्त तथा उत्साही और मुमुक्षु पुरुष है। अतः उन्होंने दृढ निश्चय किया कि हम किसी दिन इसको अपनी शक्तिका परिचय देंगे। वल्कि ऐसा विचार कर इस वार्ताको उन्होंने अपने हृदयमें ही स्थित रक्खा। अनन्तर एक दिन प्रसन्न होत हुए आप कारिणपानाथजीसे कहउठे कि अभी तुम हमारी शक्तिसे अनभिज्ञ हो अतः हम आज तुमको अपनी शक्तिका परिचय देते हैं तुम सावधानीके साथ देखना विस्मत न होना। इधर इस प्रकार सप्रेम गुरु वाक्यको सुनतेही अयन्त प्रसन्न मुख होकर अपने मन ही मनमें कारिणपानाथजी यह मोद बढा रहेथे कि मैं धन्य हूं २ अतीव धन्य हूं प्रथमतो यह अच्छा सौभाग्य मिला है कि ऐसे पहुँचे हुए गुरु प्राप्त हुए। द्वितीय यह और भी अत्यन्त आनन्दकी वार्ता है कि इन्होंकी मेरे ऊपर पूरी कृपाकी दृष्टि है। उधर ज्वालेन्द्रनाथजीने विना ही विलम्बके अपनी झोलीसे एक चुकटी विभूति निकाली और वातमन्त्रके जाप सहित उसको आकाशकी ओर फैंक दिया। बस क्याथा तत्काल ही वडे वेगके साथ वायु चलने लगा। अधिक क्या वृक्ष भी समूल उखड २ कर भूमिपर गिरने लगे। इसीप्रकार कुछ समयतक वायुके चलते रहनेपर धूलिसे आकाश आच्छादित होगया। जिस बशात् सहसा पृथिवीपर घोर अन्धकार छा गया। उधर वायुके प्रवल वेगपूर्वक चलनेसे जो वृक्षोत्पाटन हो रहाथा उनके नींचे गिरनेके साथ २ छोटे मोटे पर्वतोंके पत्थर भी उनकी साथ ही नींचे गिरतेथे। जिन्होंके पारस्परिक संघर्षणसे ऐसा घोर शब्द होताथा मानों सचमुच प्रलयकाल ही आरम्भ होगया हो। अनन्तर ज्वालेन्द्रनाथजीने द्वितीय चुकटी और निकाली जिसके फैंक देनेसे शीघ्र ही वायु वेग दूर हुआ। इसीप्रकार तृतीय चुकटी फिर तैयार कर उसे आकर्षणमन्त्रके जाप सहित देवताओंको लक्ष्य करके फैंक दिया। जिस वशात् स्वर्गवासी देवतालोग अपने २ विमानोंपर आरूढ होकर तत्काल ही ज्वालेन्द्रनाथजीके समीप आ प्राप्त हुए। तथा कहनेलगे कहिये हमलोगोंको किस प्रयोजनके लिये स्मृत किया है। प्रत्युत्तरमें ज्वालेन्द्रनाथजीने कहा कि हमने अपने शिष्य कारिणपानाथको आपलोगोंके दर्शन करानेके लिये ही बुलाया है अतः अब आपलोगोंको उचित है अपने सहर्ष पवित्र दर्शनके साथ २ ही हार्दिक आशीर्वाद प्रदानसे इसको

कृतकृत्य करें। यह सुन सर्व इन्द्रादि देवता प्रसन्न हुए और साल्हाद एकसाथ ही कहउठे कि हमलोग कारिणपानाथजीके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। इसीलिये आभ्यन्तरिक भावसे साविनय निवेदन करते हैं ईश्वर अपनी अमोघ कृपा करे जिससे यह कारिणपानाथ ज्वालेन्द्रनाथजीमें दृढ भक्ति रखता हुआ संसारमें महती प्रतिष्ठाको प्राप्त हो। इसके अनन्तर अपने २ विमानोंपर बैठकर सर्व देवतालोग तो निज स्थानोंको प्रस्थान करगये। उधर कारिणपानाथजी महाल्हादान्वित हुए ज्वालेन्द्रनाथजीके चरणोंमें गिर। और अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करते हुए कहनेलगे कि स्वामिन्! आपको वार २ धन्यवाद हैं जिनकेद्वारा मुझ कीटको बडे २ देवताओंके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एवं देवताओंके दर्शनद्वारा तथा आशीर्वादद्वारा इस अतथ्य संसारके घोर दुःखोंसे मुक्त होकर मुझे अपने जीवनके सफल करनेका अवसर उपलब्ध हुआ है। अतएव इस उपकारके ऊपर मैं आपका सदा कृतज्ञ रहूंगा। यह सुनकर ज्वालेन्द्रनाथजी अपने सुलक्षण गुरुभक्त शिष्यपर और भी अधिक प्रसन्न हुए। और उन्होंने, वे देवता जो कि अपने वाक्यकी उपेक्षा कर कारिणपानाथजीको विना ही वरदान तथा आशीर्वाद प्रदान किये प्रमत्तासे अपने विमानोंपर सवार हो अपने आश्रमको चले जारहेथे, शीघ्रतासे विभूति निकालकर समन्त्र उनकी तरफ फेंक दी। जिस वशात् अन्य देवता, जोकि वरदान दे गयेथे वे तो तादृश ही गमन करते रहे परन्तु जो ला परवाहीसे चलेगयेथे उनके विमान वहीं ठहर गये। देवताओंके अनेक प्रकारसे यत्न करनेपर भी विमान आगे न चलकर वापिस ज्वालेन्द्रनाथजीके समीप ही आकर पृथिवीपर उतर पडे। इसके बाद आपने एक चुकटी और भी उनकी ओर फेंकी। यह मोहनमन्त्रके साथ फेंकी गई थी अतएव वे देवता और उनकी स्त्रियें अपने २ वस्त्रोंको दूर फेंककर परस्परमें नृत्य करने लगे। इसी तरह नृत्य करते २ कुछ समय व्यतीत हुआ और उधर वे सर्व नाच कूदकर शिथिल होगये। तब ज्वालेन्द्रनाथजीने कारिणपानाथजीको आज्ञा दी कि सबके वस्त्र उठालाओ। तत्काल ही उन्होंने गुरुवचनको पूरा किया। अनन्तर एक चुकटी और भी फेंकी गई जिससे देवतालोग प्रबुद्ध होगये। और परस्परमें एक दूसरेको नग्न देखकर विस्मितसे हुए बडे ही लज्जित हुए। अन्ततः जब यह निश्चय करालिया कि अवश्य यह इन ज्वालेन्द्रनाथजी की ही प्रेरित माया है। तबतो वे सब ही मिलकर सलज्जा आगे बढते हुए ज्वालेन्द्रनाथजीके समीपमें उपस्थित हुए। तथा कहनेलगे कि हे योगिन्! क्षमा कीजिये यदि हमलोगोंसे कोई अपराध होगया हो तो। क्योंकि उसकी निवृत्तिकेलिये जैसी आपकी आज्ञा होगी तिसके अनुकूल ही हम कार्य करनेको उत्सुक हैं। एवं आपकी योगसिद्धि देखकर आपके ऊपर हमलोग अतीव प्रसन्न चित्त हैं। अतएव हमलोगोंके साध्यानुकूल कोई वर मांगो। जहांतक हो सकेगा आपके वचनको

अवश्य सफल कियाजायेगा। यह सुन ज्वालेन्द्रनाथजीने कहा कि क्या आपलोगोंको अवतक मालूम नहीं हुआ है यह जो कारिणपानाथ मेरा शिष्य है यह प्रबुद्धनारायणका अवतारी है इसीको वरदान देनेकेलिये ही तो आपलोगोंको यहां बुलायागयाथा मेरा तो खास कोई कार्य नहीं था। परन्तु इस विषयमें आपलोग कुछ भी दृष्टि न देकर जैसे आयेथे वैसे ही वापिस लौट गये इसीलिये हमने आपलोगोंको इस कृत्यसे व्यथित करनापड़ा है। अव भी यदि आपलोग प्रसन्न हैं तो बहुत ठीक है इस मेरे शिष्यको ऐसा वरदान दो जिससे योगाक्रियामें अच्छी निपुणता प्राप्त कर इस संसारमें विख्यात कीर्ति होजाय। इसके अनन्तर ज्वालेन्द्रनाथजीके कथनानुसार कारिणपानाथजीको वर प्रदानकर सब देवतालोग अपने२आश्रमको प्रस्थान करगये। उधर ज्वालेन्द्रनाथजी अपने शिष्यके सहित बदरिकाश्रमके प्रधान २ स्थानोंमें भ्रमण करनेलगे। इसीप्रकार कतिपय दिनोंमें मार्तण्ड पर्वतपर भी पहुँचे। वहां जिस नागवृक्षके नीचे बैठकर एक अनुष्ठानद्वारा मत्स्येन्द्रनाथजीने देवताओंको प्रसन्न कियाथा वह पवित्र जगह भी कारिणपानाथजीको दिखलाई। एवं सूर्यकुण्डादिके दर्शन कराकर उनका और भी हर्ष बढाया। और एकाकी भ्रमण कर जनोंको योगोपदेश करते रहनेकी आज्ञा देकर स्वयं भी उसी कार्यार्थ पृथक् चलेगये।

इति श्रीकारिणपानाथोत्पत्ति वर्णन नामक १४ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय १५ ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे एक समय श्री ब्रह्माजी अपनी मण्डलीके सहित रेवा नदी के तटपरभी आकर विराजमान हुए थे। इस अवसरपरभी उनके साथ स्वमण्डलीके अनेक गण्यमान्य देवता पधारे थे, जो कि नाना भूषणोंसे भूषित अतीव मोहनी रूपवती अङ्गनाओंके सहित ही आये थे, ठीक इसी अवसरपर स्वदिव्याभूषणाभूषित श्री सरस्वती भी आ प्राप्त हुई थी, जिसके अवलोकनानन्तर स्मर-पीडित ब्रह्माजीका मनोवाञ्छित सहसा बहिर निर्गत होकर ब्रह्माजीके शरीरको व्यथित करता हुआ रचनात्मक कार्य्यमें सहायक बनाथा। क्योंकि प्रकृति पुरुष संयोगद्वारा सर्गोत्पत्ति है के कतिपय, योग सांख्य शास्त्रावलम्बी, आचार्योंने इस वार्ताको सबके समक्ष घोषित किया है। तदनुकूलही ब्रह्माजी इस प्रकारकी चेष्टा किया करते हैं। जब वे अपने अमोघ वीर्यद्वारा किसी महापुरुषकी रचना करनेकी अभिलाषा करते हैं तभी उनकी आज्ञानुसार देवताओंका एकान्तिक स्थानमें जाना, तथा सरस्वतीका, अद्वितीय रूप धारणकर उनके सम्मुख होना, आदिका साहस प्राप्त होता है। अतएव ब्रह्माजीके विषयमें कोई क्षुद्रबुद्धि पुरुष यदि यह कहनेको तैयार हो जाय कि ब्रह्माजी ऐसे कृत्यको मनोरञ्जनार्थ समझकर ही इसमें प्रवृत्त रहतेथे तो वे बडे ही विषयी और निर्लज्ज थे) तो यह वार्ता सङ्गत नहीं होसकती है। क्योंकि ब्रह्माजी सृष्टिके जनक हैं यह तो सबका ही अभिमत है। किन्तु साथमें यह भी अवश्य स्वीकृत करना पडेगा कि स्वसाध्य वस्तुमें पुरुष कभी इतना आसक्त नहीं होता है जितना हमारे कथन मात्रसे पाठकोंने ब्रह्माजीको समझलिया होगा। अतः सिद्ध हुआ ब्रह्माजीका यह कृत्य सर्गोद्देशसे ही है न कि आसक्ति मुख्योद्देशसे (अस्तु) शरीरसे बहिर निर्गत हुआ वह वीर्य ब्रह्माजीने रेवानदीके तटस्थ स्थलमें, ही स्थापित करदिया। जिसमेंसे कुछ मात्राओंको तो, आहाररूपसे तक्षककी कन्या. भक्षण कर गई। जिस वशात् कतिपय दिनोंमें ब्रह्माजीके अनिष्फल वीर्यने अपनी स्थिति जमा लेनेकी सूचना उक्त कन्याको दी। यह देख तक्षक कन्या अपने मन ही मनमें अतीव व्यथित हुई। परन्तु क्या किया जताथा वह स्वेच्छानुसार उत्सुकतासे किया हुआ कार्य नहीं था किन्तु आकस्मिक दैव घटनानुकूल

ईश्वर प्रेरित ही था । अतःदेखूं इसका क्या परिणाम होता है यह विचार कर अन्ततः उसने ईश्वरपर ही भरोसा रखकर शान्तिका अवलम्बन किया ; और वह कुटुम्बी पितादिके समक्ष अपना अङ्ग बडी चतुराईके साथ छिपायें रखती हुई सलज्जाकाल व्यतीत करने लगी । कुछ दिनके बाद उसका प्रसवसमय भी निकट आपहुँचा । यह समस्त वृत्त रेवाके तटस्थ स्थलमें रहनेवाले एक आस्तिक्य नामके ऋषिको मालूम था । और उसको यहांतक भी विदित हो गयाथा कि इस कन्याके उदरसे आविर्होत्रं नारायण, प्रकट होनेवाले हैं । अतएव उसने इधर उधरसे कई एक ऋषियोंको बुला भेजा । एवं उनके आनेपर सब एकत्रित होकर वे कन्याके समीप गये । वहां ज्यों ही कन्याकी दृष्टि स्वगृहागत ऋषियोंके ऊपर पड़ी तत्काल ही उसने दो चार पद आगे चलकर अपने पिताकी सदृश ऋषियोंके चरणोंमें बडी प्रीतिके साथ नमस्कार की । यह देख ऋषिलोग अतीव प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे हे पुत्रि ! जिसका तीनों लोकोंमें यश विस्मृत होगा तथा जो आविर्होत्रनारायणका अवतारी कहलावेगा और जिस वशात् तुम्हारा नाम भी संसारके इतिहासमें चिरस्थायी होजायेगा, इस प्रकारका एक लड़का तुम्हारे गर्भसे एकदो ही दिनके अन्तर्गत उत्पन्नहोनेवाला है । अतः तुम उसको नदीके तटस्थ जो यह एक वटका पेड़ खड़ा है अवश्य इसके विवरमें रखदेना । यह सुन वह कन्या अतीव प्रसन्न हुई । और वह प्रत्युत्तरमें ऋषियोंको कहनेलगी कि अच्छा मुनि श्रेष्ठो आपलोग निःसन्देह रहैं मैं अवश्य ऐसा ही करूंगी । यह भी ठीक हुआ, जो आपलोगोंने मेरेको भी इस वृत्तसे सूचित किया है । यदि यह वार्ता यर्थार्थ निकली कि अवश्य मेरे उदरसे वहिर भूत होनेवाले आविर्होत्रनारायण हैं तो यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि आज मेरेसे अधिक धन्य तथा भाग्यवती कोई अन्य स्त्री भी होगी । किन्तु उस समय तो मैं अपने आपको ही धन्य समझूंगी (अस्तु) यह सुनते ही ऋषिलोग स्वाश्रमको चलेगये । उधर दो ही दिनके बाद तन्नक कन्याके गर्भसे एक बालक प्रकट हुआ । तत्काल ही ऋषियोंके कथनानुसार बच्चेको वटके छिद्रमें रखकर वह तो सानन्द वापिस अपने गृहको प्रस्थान कर गई । उधरसे दैवयोगवशात् एक सदाचारनिष्ठ गरीब ब्राह्मण वटके पत्र लेनेके उद्देशसे अकस्मात् उसी वृक्षके नीचे आ निकला । ज्यों ही उसने दत्तचित्त होकर नीचेसे ऊपर पत्रोंकी ओर दृष्टि दी त्यों ही एक अतीव छोटे बालकके रोदनकी ध्वनि उसके श्रोत्रगत हुई । तत्काल ही उसने वटके ऊपर चढकर देखा तो सचमुच ही एक छोटा बालक उसकी दृष्टिमें आया । तब तो ब्राह्मण बड़ा ही विस्मित हुआ, और ईश्वरकी अलक्ष्यगतिके विषयमें अनेक धन्यवाद प्रदान करता हुआ बालककी मनमोहनी छवीको देखं अतीव प्रसन्न हुआ । अनन्तर साह्लाद वह उस बालकको अपने गृहपर ले गया.ठीक उसी समय आकाशवाणी हुई कि

हे अथर्ववेदिन्!(तनमनसे इस बालककी पालना करना)। यह सुनकर कौशिक ब्राह्मण इधर उधर देखने लगा. परन्तु अन्ततः जब कोई पुरुष भी उसकी दृष्टिगोचर न हुआ तो उसने अनुमान किया कि अवश्य यह कोई महापुरुष है। जिसने बालरूपसे प्रकट होकर कोई विशेष कार्य सम्पादित करना है। अतः इसकी रक्षाकी अधिक आवश्यकता है। इसी लिये यह वाणी भी मनुष्यवाणी नहीं किन्तु आकाशस्थ अदृष्ट देववाणी ही जान पड़ती है (अस्तु) इस प्रकारके सङ्कल्प विकल्पोंके सहित ब्राह्मण स्वकीय गृहमें जाही पहुंचा। और उस बालकको अपनी सुरादेवी नाम्नी स्त्रीके समर्पित किया। सुरादेवी बालकको देखकर महान् आनन्दित होकर ही शान्त न हुई किन्तु कतिपय क्षणके लिये तो मानों शरीरकी समस्त चेष्टासे शून्य हुई मूर्च्छित ही हो गई थी। अनन्तर जब उसको अपने आपकी खबर हुई. तब तो वह सहसा बोल उठी कि महाराज! कहो तो सही यह बालक कहांसे लाये हो तथा यह किसका बालक है. वह धन्य है जो इसकी माता है। ब्राह्मण बोला कि प्रिये! ईश्वरने तेरेको ही इसकी माता बननेका सौभाग्य प्राप्त किया है। अतः तनमनसे इसका पालन करो। जिससे बड़ा होनेपर यह संसारके इतिहासमें हम दोनोंके नामको चिरस्थायी करेगा। क्योंकि यह कोई अवतारी महापुरुष है मैंने इसी रूपसे बटविवरमें पड़ा हुआ उपलब्ध हुआ है। और जब मैं इसको उठाकर यहां लानेके लिये तैयार हुआ था उस समय आकाशवाणी भी हुई थी। जिसमें, इस बालककी अच्छी तरह पालना करना, यह चेतावनी थी। यह सुन ब्राह्मणी प्रसन्न हुई भी और अत्यन्त प्रसन्न हुई। मानों उसके पिपासार्दित मुखमें अमृतका सेचन हो गया हो (अस्तु) इसके बाद ब्राह्मणने पुत्र मिलनेकी सूचना अपने पार्श्ववासियोंको दी। तत्काल ही पडौसिन स्त्रियें आई और लड़केके मोहनी स्वरूपसे मोहित हुई सहर्ष अनेक प्रकारके मङ्गलमय गीत गाने लगी। ठीक इसी दिनके आरम्भसे कौशिककी दरिद्रताने उसके गृहसे प्रस्थान करनेके लिये अपने बधनेबोरिये बान्ध लिये। अतएव प्रतिदिन ब्राह्मण कौशिकजीके गृहमें इधर उधरसे लक्ष्मीका प्रवाह बढने लगा। ऐसा होनेसे कौशिक ब्राह्मण कुछही दिन पीछे काशीपुरीमें आया और एक अच्छी बड़ी पक्की हवेली खरीद कर उसमें निवास करने लगा। इस समय पर्यन्त लड़का भी अच्छा जानकार हो गया था जिसका निज जातिके अनुकूल सर्व संस्कार भी हो चुका था केवल विवाह ही अवशिष्ट रहा था। ऐसी दशामें लडका अपने सहकारियोंके साथ खेलमें रत रहकर ही समय व्यतीत करता था। एक दिन वह बहुत लडकोंको साथ लेकर श्रीगङ्गाजीकी रेतीमें गया, वहां जाकर उसने बटके पत्र तोड सब लडकोंके आगे पत्तल बनाकर रख दी, तथा लडकोंसे कहा कि जिसको जैसा रुचिकर हो वैसा ही खानेके लिये मांगो। यह सुन किसीने लड्डू, किसीने जलेबी, इत्यादि अनेक प्रकारके पक्वान मांगे। तादृश ही

पत्तलोंमें परोसे जानेपर लडके बडे ही विस्मित हुए, परन्तु बालावस्थास्थ होनेसे बालकोंके वह आश्चर्यता बहुत देरतक न रही, वे कुछ ही क्षणके बाद प्रसन्न होते हुए लड्डू, जलेबी खाने लगे। ठीक इसी अवसरपर श्रीगोरक्षनाथजी भी देशान्तरसे भ्रमण करते हुए वहीं घटनास्थलमें आ पहुँचे। और ज्यों ही आपकी दृष्टि लडकोंके ऊपर पडी तो आप भी उन एकत्रित लड़कोंका कौतुक देखने लगे। इतनेहीमें एक लडका बोल उठा कि ये महाराज, साधुजी पधारे हैं इनको भी भोजन करा दो। यह सुन तत्काल ही एक लड़का बड़ी शीघ्रतासे उधर जाकर गोरक्षनाथजीके चरणोंमें गिर गया। और उसने कहा कि महाराज! आप भी बैठिये यहां अनेक प्रकारके भोजन तैयार हैं जैसी आपकी इच्छा हो वैसे ही मिलेंगे। इस प्रकार बालकोंका कुतूहल और उनकी प्रेमभक्ति देखकर आभ्यन्तरिक भावसे मुस्कराते हुए गोरक्षनाथजी भी पंक्तिमें जा बैठे, तत्काल ही पत्तल परोसनेपर कौशिकपुत्रने हस्तसम्पुटी कर कहा कि भगवन्! जैसा आपको अभीष्ट हो वैसा भोजन अपने मनसे मांगो और पत्तलपर भोजन आजानेपर जीमना आरम्भ करो। गोरक्षनाथजी के निश्चय था कि यह लड़का आविर्हौत्र नारायणका अवतारी है अतः ऐसे पुरुषके लिये ऐसा होना क्या बडी बात है। अनन्तर गोरक्षनाथजीने उस लडके के कथनानुसार भोजन की मनोयाचना कर कुछ भोजन किया। पश्चात् उस कौशिकपुत्र के शिरपर हस्तधर कर आशीर्वाद देते हुए आप देशान्तरमें चले गये। इधर यह लडका प्रतिदिन ऐसा ही करता रहा कि सब लड़कों को एकत्रित कर श्री गङ्गाजीकी रेती में जा कर खेलाना और सबको मनोऽभीष्ट भोजन कराना। ऐसा करते रहनेपर उन लडकोंने अपने माता पिताओंको भी इस वृत्तसे सूचित किया। यह सुन उन्होंने कौशिक ब्राह्मणसे कहा कि तू अपने लड़केको इतने रूपये क्यों देता है। वह व्यर्थ ही इतना खर्च अपने शिरपर उठाता है, प्रतिदिन मिठाई खरीदकर बहुत लडकोंको खिलाया करता है। इस वास्ते उसकी खबरदारी रखना चाहिये सम्भवतः वह गृहसे चुरा कर ही ले जाता होगा। और यह भी बात है कि इस कृत्यसे दो बडी हानि होती हैं तुम्हारा द्रव्य खर्च होना और हमारे लडकोंकी आदत खराब होनी। ये ऐसे चटोरे होजायेंगे किसी दिन इधरसे लड्डू, पेडे आदि न मिलनेपर गृहकी किसी वस्तुको उठाकर हलवाईकी दुकानपर पहुंचेंगे। यह सुनकर कौशिक बोला आपलोग क्या कह रहे हैं मैं कभी एक पैसे तक भी इसको नहीं देता हूं रूपये तो बडी वार्ता है। अतः ऐसी दशामें आपलोगोंका यह कथन संगत नहीं है। इसके अनन्तर वे लोग चुप होगये क्योंकि उनलोगोंको इस वृत्तका सक्षात्कार नहीं था। केवल अपने लडकोंके कहनेसेही उन्होंने कौशिकको इतना कहना पडाथा। अतएव उन्होंने सोचा कि सायद यह बात झूठी ही हो बालकोंका तो स्वभाव होता है उनको झूठ आदिसे कोई घृणा नहीं होती है। इसलिये आज इस बातका निश्चय करना चाहिये। ठीक जिस

समय लडके निर्दिष्ट समयानुसार खेलके लिये क्रीडास्थलमें गये। उसी समय कौशिकको भी साथ लेकर कतिपय मनुष्य वहां पहुँचे। ठीक उसी अवसरपर लडके भोजन जीम रहेथे देखते ही सब लोग बडे विस्मित हुए। अन्ततः समयपर आ प्राप्त हुए देखकर कौशिक पुत्रने कहना ही पडा कि आपलोग भी पङ्क्तिबद्ध होजायें। और अभीष्ट भोजनका चिन्तन कर जीमना आरम्भ करदें। उन्होंने वैसा ही किया। और जब भोजन करनेके अनन्तर आचमन करचुके तब उनलोगोंने, जो कि कौशिकके निश्चिय करानेके लिये उसको साथ लायेथे, कौशिकसे कहा कि कहिये अबतो हमारी बातको निश्चयात्मक मानोंगे वा नहीं। क्यों कि तुम अब हमारे कहनेसे ही विज्ञापित नहीं हो किन्तु स्वयं दृष्टचित्रमें स्वादमरोचक भोजनसे उदर पूर्ति कर निःसन्देह होचुके हो। इसके बाद ठीक है आपलोग सत्य कहतेथे, यह कहकर कौशिकने अतीव प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्रको गोदमें उठालिया। और शिरके ऊपर हस्त धरके वह उसे सप्रीति पुचकारने लगा। इसी प्रकार अन्य समीप उपस्थित पुरुषोंने भी श्रद्धाकी दृष्टिसे सम्मानित बनाते हुए उस लडकेको असंख्य धन्यवाद दिया। और कहा कि हे कौशिक! तेरे गृहमें अवश्य यह कोई अवतारीपुरुष प्रकट हुआ है इसमें कोई सन्देहजनक बात नहीं है। अतः आज इस संसारमें तुम्हारे जैसा भाग्यशाली अन्य कौन पुरुष है जिसको स्वगृहमें ही प्रतिदिन ऐसे महापुरुषके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा। (अस्तु) अनन्तर वे सबलोग नगरीमें आये। अब तो यह बात कतिपय क्षणके बाद समस्त काशीपुरीमें प्रसृत होगई। अतएव जिस गली जिस कूचेमें देखतेथे उसीमें उस लड़केकी सिद्धिविषयक बातें श्रवण होतीथी। यह देख लड़केने अपने पिताको निःसन्देह कर एक क्षेत्र खुला दिया। जिससे अनेक दीन लोग मनोवाञ्छित भोजन खाते हुए अपना जीवन सफल करतेथे। इस वृत्तकी ध्वनि ग्रामान्तरोंमें भी पहुँची। एक दिन अन्य ग्रामोंमें विचरते हुए श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने भी उसकी महिमा सुनी। और काशीपुरीमें आकर पुरुषोंद्वारा अपनी आनेकी सूचना उसको दी। जब उसको यह समाचार मिला, कि एक बड़े तेजस्वी अद्वितीय योगी नगरीमें आये हैं जो कि अपना मत्स्येन्द्रनाथयति नाम बतलाते हैं उन्होंने हमारे द्वारा तुह्मारा आह्वान किया है इस लिये तुमको शीघ्र ही उनकी सेवामें उपस्थित होना उचित है, तबतो वह लड़का बिना ही विलम्बके वहां पहुँचा। और मत्स्येन्द्रनाथजीकी अत्यन्त नम्रतायुक्त यथोचित स्तुति करनेके अनन्तर कहने लगा भगवन्! कुछ सेवा आदिकी आज्ञा दीजिये जिस वशात् आपकी शुश्रुषामें सँलग्न हुए हमलोकोंका यह आजका दिन सफल होजाय। हम पापी निर्बुद्धि मलीन अन्तःकरण वाले मनुष्य हैं, नानाप्रकारके अयोग्य कर्मोंमें व्यग्र रहते हैं इसी लिये आप जैसे नगरीमें प्राप्त हुए महात्माओंकी कुछ सेवा नहीं बनपड़ती है।

तथापि आज मुझे पूरा विश्वास है आप हमलोगोंसे अपनी शरीर सम्बधी सेवा लेकर हमको अवश्य कृतार्थ करेंगे। यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि हम तुम्हारे ऊपर अतीव प्रसन्न हैं। जैसी इस समय तुम्हारी वृत्ति है इसको छोड बैठकर तुम संसारके अन्यथा चक्रमें न पड़जाना। किन्तु जबतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार विद्यमान है तबतक इसीका अवलम्बी रहना। अवश्य दयानिधि जगदीश तुम्हारी आवाजको श्रवण कर तुम्हारा कल्याण ही क्या समस्त संसारमें तुम्हारा यश विस्तृत कर तुमको संसारके इतिहासमें अग्रगणनीय तथा अमर बनादेगा। यह जो कुछ हम कहरहें हैं सो अन्यथा नहीं समझना। किन्तु हमारे इन वाक्योंको अपने निर्मल हृदयमें स्थापित कर छोडना। कभी समय प्राप्त होनेपर अवश्य इनकी सत्यता प्रमाणित होगी। परन्तु अब और कुछ सेवा न लेकर हम तुम्हारेसे इतनी ही सेवा लेके स्वात्माको सन्तुष्ट करना चाहते हैं कि तुम यह बतलाओ जिस वशात् इस नगरीमें तुम्हने इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त की है वह सिद्धि किससे प्राप्त की है। अर्थात् इसकी दीक्षाके लिये तुमने कौन गुरु धारण कियाथा। लड़का बोला कि भगवन्! मेरी १० दश वर्षसे भी कुछ कम ही अवस्था थी उस समय एक महात्मा यहां हमारे नगरमें आकर विराजमान हुएथे। जिन्होंने केवल मेरे साथ ही एकदिन वार्तालाप कियाथा। और एक मन्त्र भी सम्भवतः उन्होंने अवश्य देकर मेरे भाग्यकी लता बढाई थी। यद्यपि बाल भावसे वह इस समय विस्मृत होगया है। तथापि उनके अमोघ आशीर्वादद्वारा मनोवाञ्छा मात्रसे मेरी अनेक आकांक्षित सिद्धि प्रकट होने लगी। इसीलिये मैं अपने साथी लड़कोंको नगरीसे बहिर लेजाकर प्रतिदिन लड्डू, पेडे आदिका भोजन कराता था। एक दिन फिर अकस्मात् वेही महात्मा हमारे क्रीड़ास्थलमें आनिकले। ठीक उसी समय ससत्कार नमस्कारादिके अन्तर हमने उनको सप्रेम भोजन कराया। उनकी यथोचित स्तुति भी की। यह देखकर उन्होंने इस समय भी मुझको साह्लाद आशीर्वाद दिया जिसका फल यह हुआ मेरी और भी अधिक मनोरथ सिद्धि होने लगी। इसी हेतुसे मैंने भी अपने ऊपर उनकी पूर्ण कृपाका अनुमान कर सर्व साधारणके लिये अभीष्ट भोजन प्रदान करनेके वास्ते एक बृहत् अन्नक्षेत्र खोलकर इसकेद्वारा प्रतिदिन असंख्य दीन लोगोंको यथेष्ट भोजन प्रदान करना आरम्भ किया। परन्तु अब मुझे उन महात्माओंका नाम स्मरण नहीं है। हां यदि किसी जगहपर कभी वे सम्मुख होजायें तो मैं उनकी मूर्तिको देखकर अवश्य बतला सकता हूं कि ये वे ही महात्मा हैं। तदनन्तर महात्मा मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि उन महात्माओंका आकार क्याथा। अर्थात् वे किस वेषमें थे। लड़केने कहा कि उनका आकार ठीक आपके आकारमें मिलताथा। अर्थात् जो वेष आपका है यही उनका भी था। यह सुनते ही मत्स्येन्द्रनाथजी सहसा बोल उठे कि वहतो हमारा शिष्य गोरक्षनाथ है।

तब लड़का बोला कि ठीक यही बात है तो आप कृपा करें उनको कहींसे बुला दें । मैं उनका शिष्य बनूंगा । और यदि ऐसा न करें तो अपनाही शिष्य बनालें। मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि नहीं हमतो अपना शिष्य नहीं बना सकते हैं किन्तु उसीको बुलादेंगे । परन्तु सायंकाल होनेको आया है अब तुम अपने गृहपर जाओ यदि तुमने सांसारिक व्यवहारमें अपना अमङ्गल दीखपडा हो । अतएव गोरक्षनाथका शिष्यत्व ग्रहण करना निश्चय करलिया हो। तो हम रात्रीके समय उसको अवश्य बुलालेंगे तुम प्रातःकाल फिर हमारे पास आना। यह सुन लड़का अपने गृहको चला गया । उधर रात्री आनेपर मत्स्येन्द्रनाथजीने अपने शिष्य गोरक्षनाथजीका उद्देश ठहराकर नाद बजाया । जिस वशात् तत्काल ही गोरक्षनाथजी गुरुजीकी सेवामें आ उपस्थित हुए । यह देख आपने समग्र वृत्तान्त उनको सुनाडाला । गोरक्षनाथजी यह वृतान्त सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। उधर प्रातःकाल होते ही वह लडका भी आ पहुँचा । और वह देखते ही सप्रीति गोरक्षनाथजीके चरणोंमें गिरा तथा उसने कहा कि आप मुझे अपना शिष्य बनाकर अपने वेषमें मिलाओ मैंने दृढनिश्चय करलिया है अब आपका साथ नहीं छोड़ूंगा । और जबतक आप मुझे अपना शिष्य करना स्वीकार न करलेंगे तब तक भोजन भी नहीं करूंगा। इस प्रकार जब गोरक्ष-नाथजीने यह निश्चयात्मक समझ लिया कि ठीक यह ऐसा ही करेगा तबतो आपने उसके माता पिताको यह सूचना दी कि तुम्हारा पुत्र हमारे वेषमें सम्मिलित होना चाहता है। अतः इस विषयमें जो कुछ कहना चाहते हो तो कहो । यह सुनते ही उस लड़के की माता सहसा बोल उठी (हाय २) महाराज, ऐसा क्या अनर्थ करते हो हमारे तो यह एक ही पुत्र है । जिसके समस्त सुयोग्य गुणोंके ऊपर हम ही नहीं नगरमात्रके लोग बलिहारी हैं । अतः इस अद्वितीय पुत्रको अपने वेषमें मिलाकर हमारे वंशको समूल उखाडदेना आपको किसी प्रकार भी उचित नहीं है ! यह सुन गोरक्ष-नाथजीने कहा कि जो कुछ तुम कहती हो सो ठीक है तथापि इस विषयमें तुमने किञ्चित् भी सोच विचार नहीं करना चाहिये । क्योंकि यहतो तुमको मालूम ही है कि यह लडका तुम्हारे उदरसे प्रकट नहीं हुआ है । किन्तु वट वृक्षके विवरसे प्राप्त हुआ है । ऐसी दशामें भला विचार किया जाय कि क्या यह मनुष्यका चरित्र है. किन्तु कहना पडेगा यह अवश्य कोई दैविक ही घटना है । तथापि मोहान्धकारमें मग्न होकर तुम्हारा इसको अपना पुत्र मान बैठना तथा इसके विषयमें शोक उत्पन्न करना सर्वथा अनुचित है । हां आकाशवाणी के अनुसार तुमने जो सप्रीति तनमनसे इसकी पालना की है उसके लिये अवश्य तुम स्वर्गस्थ ऊंच आसनके अधिकारी हो । इसके बाद कौशिक की ओर इसारा कर आप कहने लगे कि यह लडका आविर्होत्र नारायणका अवतारी है जिस उद्देशका अवलम्बन कर यह

अवतरित हुआ है उस उद्देश सिद्धिका समय निकट आ पहुँचा है यह अवश्य वैसा करेगा इसमें यदि तुम इसको अपनी ओरसे उत्साहित करोगे तो और भी अच्छा होगा जिससे तुम्हारा नाम संसारके इतिहासनें चिरस्थायी हो जायेगा। अन्ततः कौशिक ने समझ लिया कि ठीक है यह अब अधिक दिन हमारे गृहपर नहीं रहेगा इससे अभी आज्ञा दे देना उचित है। ऐसे महात्माकी शिक्षा प्राप्त कर यह अवश्य अपना तथा हमदोनोंका कल्याण करने के लिये समर्थ होगा। क्योंकि हमने इन महात्माओं की महिमा सुन रक्खी है। ये अपने ढङ्गके एक अद्वितीयही हैं। यह विचार कर उसने अपने लडके को योगी होने की आज्ञा देदी। और कहा कि बेटा अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक तन मनसे इन महात्माओंकी सेवामें तत्पर रहना। तथा फिर कभी वापिस आकर उस स्वरूपमें भी हमें अवश्य दर्शन देकर मोहाग्निसे दग्ध हुई हमारी त्वचामें अपना प्रेमरूपी अमृत सींचना। इस प्रकार पिताकी आज्ञा मिलनेपर लडका आभ्यन्तरिक रीतिसे अतीव प्रसन्न हुआ और माता पिताके चरणोंमे सीस लगाकर उपस्थित अन्य साथी लडकों को तथा वृद्ध जनसमूहको शिर झुका कर नमस्कार करता हुआ महात्माओंके साथ चल पडा। शनै २ देशान्तरकी रम्मत करते हुए तीनों महानुभाव कतिपय मासके वाद बदरिकाश्रम में पहुँचे। वहां कुछ दिन ही निवास करके गोरक्षनाथजीने एक दिन अच्छा मङ्गलप्रद बार देख उक्त लडके को स्वकीय वेषमें सम्मिलित कर नागनाथ, नामसे प्रसिद्ध किया। अनन्तर जब वह कुण्डलादि चिह्नान्वित हुआ कुछ योग क्रियाओंमें निपुण हो चुका। तथा अनेक सिद्धिमय मन्त्र विद्याका अच्छी तरह ग्रहण कर चुका। तब पूरा मुमुक्षु जानकर महात्माजीने उसको तपकरने के लिये उत्साहित किया। अर्थात् बारह वर्षकी अवधि नियतकर उसको तप करने के लिये खडा किया। और समयानुकूल आहारादि प्रदानकरआपने अपने शिष्यसे वहघोर तप कराया जिस तपके प्रभावसे उसने ऐहलौकिक जन्म मरण रूप परम्पराके घोर दुःखका नाशकर ब्रह्मानन्दरूप दुष्प्राप्य वस्तुको प्राप्त किया।

इति श्री नागनाथोत्पत्तिवर्णन नामक १५ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय १६ ॥

रेवा नदीके तटस्थ स्थलमें ब्रह्माजीने अपने स्खलित वीर्यको जो रेतीमें स्थापित कियाथा उसमें से कुछ मात्राओं को तो तक्षक की कन्या खा गईथी। इस वृत्तान्त को हम पहले ही लिख चुके हैं। परन्तु अवशिष्ट वीर्य जो कि रेती में प्रविष्ट हो जानेसे तक्षककी कन्या के खानेसे वञ्चित रह गया था वही श्रीब्रह्माजीका अनिष्फल वीर्य समय प्राप्तकर वालूके अन्तर्गत ही मनुष्य बालकाकारमें हो गया। कतिपय दिनमें जब वह पुतला ठीक एक बालक के समान हुआ तभी उसमें पिप्पलायन नारायणने अपना सूक्ष्म शरीर प्रविष्ट किया। अतएव उस पुतलेसे श्रोत्रप्रिय मधुर रोदनकी कुछ ध्वनि होने लगी। उसी समय कुशा लेनेके लिये आया हुआ सत्य शर्म्मा, नामक वेद पाठी ब्राह्मण दैवयोगसे उसी स्थलमें आ निकला। अकस्मात् बालक की वह मधुररोदन ध्वनि उसके श्रोत्रेन्द्रिय गत हुई। तत्काल ही ब्राह्मण इधर उधर देखने लगा तो कोई पुरुष उसकी दृष्टि गोचर न हुआ। अन्ततः रोदन ध्वनिका उद्देश ठहराकर वह कुछ ही पद आगे चलाथा देखता क्या है एक वालूमय छोटेसे पूञ्जम से ही किसी बालकके रोदनका निस्सरण होता है। वह वालूपुञ्ज घटाकार हो गया था। उसके ऊपर तो अवश्य कुछ रेती प्रस्तृत थी परन्तु उसका अन्तर्गत दल कुछ कठिन हो गयाथा। जिससे उसके भीतर तुम्बी जैसी जगह विद्यमान थी उसमें से एक छिद्र ऊपरको निकला हुआथा ठीक उसी छिद्रसे बहिरभूत हुई बालककी रोदन ध्वनि ब्राह्मणको सुनाई दी थी (अस्तु) इस विचित्र घटना को देखकर ब्राह्मण कुछ साश्चर्य हुआ कतिपय क्षण तो, इसमें बालक अवश्य है किंचित् भी सन्देह नहीं परन्तु इस रेती के अन्तर्गत कैसे हुआ, इस प्रकारके विचार रूपी समुद्र में गोते खाता रहा। अन्ततः जब उसने ईश्वरकी अलक्ष्य गतिका स्मरण किया तबतो सर्व सङ्कल्प विकल्पों को त्याग कर वह उस बालकके निकालने को उत्सुक हुआ। और ऊपरकी कुछ शुष्क रेती हटाकर आर्द्ररेतीके घटाकार पूञ्जका हस्तसे भेदन करके उसने ज्योंही बालक निकाला त्योंही बालकके असह्य स्वरूपको देखकर सत्यशर्माके नेत्र खुले रहने केलिये इनकार करगये। ठीक उसी अवसरपर आकाशस्थ विमानारूढ देवता लोगोंने सहर्ष उस बालकके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की। अनन्तर जब ब्राह्मणके नेत्र खुले तबतो और भी अधिक विस्मित हुआ वह विचार करने लगा कि (अहो) विधाताकी महिमा दुर्विज्ञेय है

इतनी ही क्षणोंमें ये नानाप्रकारके अति सुगन्धित इतने अधिक पुष्प कहांसे और कैसे आये हैं। अथवा ठीक है हमने कारण सोच लिया यह अवश्य कोई अद्वितीय माहापुरुष इस ढङ्गसे प्रकट हुआ है। जिसके समस्त जगत्में विस्तृत होनेवाले भावी यशके आधिक्य की तथा इसके महत्त्वकी सूचना देवता लोगोंने पुष्पवर्षाकेद्वारा दी है। इत्यादि सङ्कल्प-विकल्प करता हुआ ब्राह्मण अन्ततः बालकको अपने गृहपर लेगया। वहां जाकर स्वकीय पत्नी चन्द्रिका, ब्राह्मणीको दिया। ब्राह्मणी लड़केको सहर्ष स्वीकार करती हुई अतीवानन्दित हुई, तथा ब्राह्मणकी मुखोच्चरित वाणीसे बालकके *उत्पत्ति ढङ्गको सुनकर बड़ी ही आश्चर्ययुक्त हुई। परन्तु कतिपय क्षणके बाद वह अपने चित्तमें आप ही समाधान करने लगी कि ठीक है ईश्वरकी कृपाके सम्मुख कौन वस्तु असाध्य है! अर्थात् कोई नहीं है। देखिये हम सांसारिक व्यवहारमें दिनरात्री लवलीन हुए वृद्धावस्थाके आक्रमणसे आक्रान्त होनेवाले हैं तथापि हम दोनोंको इस अवस्थातक भी पुत्रका मुख देखनेका अवसर न मिलाथा। परन्तु अब भी अच्छा हुआ इस उपान्त्यावस्थामें ईश्वरने अपनी महती कृपालुताका परिचय दिया। जिससे पुत्रका मुख देखकर हमारा ऐहलौकिक भोग सफल हुआ (अस्तु) इस वृत्तान्तकी सूचना नगरके सर्व लोगोंके श्रोत्रगोचर हुई। तत्काल कितने ही लोग इधर उधरसे बालकके देखनेको आये। कतिपय क्षणोंमें सत्यशर्म्मा ब्राह्मणका गृह दर्शन करनेकेलिये आये हुए मनुष्योंसे परिपूर्ण होगया। और ऐसी भीड़ हुई मनुष्योंका अन्तरसे बहिर बहिरसे अन्तर प्रविष्ट होना निकलना कठिन होगयाथा। एवं सैंकड़ों मनुष्य बालकके दर्शनार्थ आतेथे तथा सैंकड़ो दर्शन करके आश्चर्ययुक्त अनेक वार्तायें करते हुए अद्वितीय पुत्र रत्नकी प्राप्तिके विषयमें सत्यशर्म्माजीको असंख्य धन्यवाद देते हुए अपने २ गृहको जातेथे। साथ ही बालकके इस विलक्षण ढङ्गसे प्रकट होनसे तथा उसका अद्वितीय रूप देखनेसे लोगोंको यह भी निश्चय हो चुकाथा कि यह बालक अवश्य कोई

---

* अन्यदेशीय विधर्मी लोग इस बातके माननेको तैयार न हों तो भलायें न हों। परन्तु भारतीय लोग, जो कि स्वदेशीय इतिहासोंमें निष्ठा रखते हैं, कभी ऐसी उत्पत्तियोंमें अश्रद्धा नहीं कर सकते हैं। कारणकि वे लोग भारतमें होनेवाले अगस्त्य, और कार्तिकेय आदिकोंके उत्पत्ति ढंगको शिवपुराणादि ग्रन्थोंसे सदा सुनते एवं पढते रहते हैं। इनसे अतिरिक्त कितने ही ऐसे महानुभाव भी भारतमें विद्यमान हैं जो पुराणों और पौराणिक बातोंको विशेष श्रद्धेय नहीं मानते हैं। और दार्शनिक रहस्यज्ञ स्वामी दयानन्दजीके निर्देशानुसार दर्शनग्रन्थोंको ही श्रद्धास्पद समझा करते हैं। उन सज्जनोंको सांख्यदर्शनीय —मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न तथा— इत्यादिं सूत्रोंकी और ध्यान देना चाहिये। जोकि डंकेकी चोटके साथ इस बातको घोषित कररहे हैं कि निमित्त कारण माता पिताके सम्बन्धसे जायमान यह पाञ्चभौतिक शरीर इस नियमसे जकडीभूत नहीं होगया है कि वह सदा मातापितासे ही सम्भवित है। किन्तु अधिकतासे इस सम्बन्धद्वारा उत्पन्न होनेपर भी कभी २ तप योगआदि बलसे भी उत्पन्न हो जाता है। अतएवेति।

विशेष शक्तिशाली महापुरुष है। (अस्तु) जब शनैः २ अपने मनमोहनी दिव्यरूपद्वारा ब्राह्मण ब्राह्मणीको रञ्जित करता हुआ बालक पञ्चवर्षीय अवधिमें प्रविष्ट हुआ। तब सत्यशर्माने स्वजातिके अनुकूल शास्त्रोक्त विधिद्वारा उसका अखिल संस्कार कराया। अनन्तर उसके कुछ वर्षके बाद ही विवाह करनेकी चिन्ता उपस्थित हुई। और जिस किसी विधिसे शीघ्र ही इस कार्यको करदेना उचित समझकर वह प्रयत्नलीन हुआ। उधरसे एक दिन अकस्मात् ही नारदमुनि भी सत्यशर्म्माके गृहपर आनिकले ; और बालकको देख बड़े ही प्रसन्न हुए। अन्तमें उन्होंने विचार किया कि ठीक चर्पटनाथ. नामसे प्रसिद्ध होनेवाले ये, पिप्पलायन, नारायणके अवतारी हैं। तबतो नारदजी बिना ही विलम्बके कैलासमें पहुँचे वहां श्री महादेवजी, तथा मत्स्येन्द्रनाथजी, गोरक्षनाथजी ये तीनों महानुभाव एकत्रित ही मिल गये। पारस्परिक प्रणामके अनन्तर श्री महादेवजीने नारदजीसे कुशल वार्ता पूछने के पश्चात् यह भी पूछा कि नारदजी कहिये आप अभी कहांसे आ रहे हैं। यह सुन नारदजी आभ्यन्तरिक भावसे अतीवानन्दित हुए अपने मनही मन में विचार करने लगे कि आहा) लक्षण तो बहुत ही शुभ जान पडते हैं। मेरेलिये प्रस्ताव उपस्थित करने की कोई आवश्यकता न रही, त्रिलोकी के नाथ स्वयं मेरे अभीष्ट वृत्तको सुनना चाहते हैं (अस्तु) बादमें श्री महादेवजी के प्रश्नका प्रत्युत्तर देते हुए नारदजीने कहा कि भगवन्! मैं नीचेके प्रान्तोंमें भ्रमण करने गयाथा अतएव एक दिन रेवानदीके तटस्थ एक नगरमें जा पहुँचा। ठीक उसी नगरमें पिप्पलायन नारायणका प्रादुर्भाव हुआ है। जब मैंने उसके समीप जाकर ठीक यह वृत्त निश्चयात्मक जान लिया तभी उसकी सूचना दे देनी योग्य समझकर आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूं। अब आपके अधीन है जैसा अभीष्ट समझें वैसा करें ; मैं अपना कर्तव्य पूरा कर चुका हूं। यह सुनकर श्री महादेवजी सर्ववृत्तान्तको जानते हुए भी नारदजी के उत्साहको बढाने के वास्ते सहसा बोल उठे कि वाह २ नारदजी बहुत अच्छा हुआ तुमने बडेही अनुकूल समयपर सूचना देकर हमको सूचित किया है। मालूम हुआ ठीक जैसी तुम्हारी महिमा सुनीजाती थी तुम तादृश ही उपकारी पुरुष हो। परन्तु इसके साथ २ यह कार्य भी हम तुम्हारे ही शरीरसे सिद्ध होनेकी आशा करते हैं जिस किसी भी ढङ्गसे होसके उस लडके को तुम यहां ला प्राप्त करो। श्री महादेवजीकी इस आज्ञाको (तथास्तु) इस प्रकार स्वीकृत करते हुए नारदजी तीनों महात्माओं को प्रणामकर अतीव हर्षित हुए उक्त नगरमें पहुँचे। तथा अपनी योग क्रियाके प्रभावसे बालक स्वरूप बनाकर सत्यशर्म्मा के गृहपर गये। और सत्यशर्म्मासे कहने लगे कि हे विद्वन्! मैं विद्यार्थी हूं आपकी महती विद्वत्ताका श्रवण कर आपकी सेवामें प्राप्त हुआ हूं। अतः मुझे आशा है आप मेरी प्रार्थनाको स्वीकृत करते हुए मेरे लिये कुछ विद्या प्रदानकर अवश्य मेरे इस अभिलाषान्वित

दूरसे हुए आगमन को सफल करेंगे । इस प्रकार नारद के नम्रतायुक्त अतिकोमल वाक्यों को सुनकर सत्यशर्म्माजी चकित हो गये । और आभ्यन्तरिक रीतिसे विचारने लगे कि अहो, इस लडके की अभी वहुत कम अवस्था है तथापि यह किस प्रकार बडे मनुष्योंकी सदृश वात करता है । अतः यह अवश्य विद्याका अधिकारी है ; थोडे ही प्रयत्नसे विद्या प्राप्तकर अपनी विलक्षण बुद्धिका चमत्कार दिखलाता हुआ मेरे नामको भी प्रसिद्ध करेगा। तदनन्तर सहर्ष उस वालकके प्रस्तावको स्वीकृत करते हुए सत्यशमर्म्माजीने उसका हस्त पकड कर अपनी ओर खींचा । तथा गोदी मैं बैंठाकर बडे ही प्रेमके सहित उससे पूछा कि बेटा तू किस जातिका और कौन ग्राममें रहनेवाला है । क्या तेरे पिताजी विद्वान् नहीं थे जिन्होंने ऐसी बाल्यावस्थामें ही तेरेको अपने गृहसे निकाल कर वहिर कर दिया है । यह सुन प्रत्युत्तरमें वालरूप नारदजीने कहा कि महाराज मैं उज्जयिनी नगरीका रहने वाला हूं। और ब्राह्मणका लडका हूं । अबसे भी दो वर्ष पहले ही मेरे माता पिता स्वर्गलोकको पधार गये थे, उस समय से ही मेरे भाग्यने मेरी दुर्दशा करनी आरम्भ की है । जिस वशात् हरएक समय दुःखग्रस्त रहता हूं। यद्यपि माता पिताके स्वर्गलोक गमनानन्तर मेरे चाचा, आदि पडौसियोंने मेरे पालन पोषण के विषयमें कुछ दृष्टि दी थी तथापि वह पर्याप्त नहीं थी । वस्तुतः यह तो प्रसिद्ध वात है जिसको समस्त संसार ही जानता है कि पुत्र की पालना के लिये निज माता पिता की अपेक्षा प्रथम है। उनके अभावमें तो बच्चेकी अदृष्ट ही रक्षा करता है। न कि ऊपरके प्रेमवाले चाचा, ताऊ, आदि। यहसुन ते ही सत्यशर्म्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। और उनके हृदयमें दयाका प्रवाह प्रारम्भ हुआ । जिसवशात् उन्होंने शीघ्रही आज्ञा दी कि अच्छा बेटा तू मेरा धर्मका पुत्र रहा । अतः यहीं मेरे गृहपर सानन्द निवास कर । तेरा द्वितीय भ्राता यह चर्पट भी तेरे साथ ही रहेगा । तुम दोनों ही हमारे सकाशसे विद्याध्ययन करना । इस प्रकार वालकको सन्तोष देकर सत्यशर्माजीने अपनी ब्राह्मणीसे कहा कि ब्रामणि ! यह लडका है जोकि मैंने पुत्रत्वेन स्वीकार कर लिया है । अतः तेरा कर्तव्य है कि तू चर्पटको इससे किञ्चित् भी विशेष दृष्टिसे न देखे । किन्तु एक दृष्टिसे देखती हुई अर्थात् दोनोंको ही अपने उदरसे वहिरभूत हुए मानती हुई मेरी आज्ञाको शिरोधार्य समझकर इसका अवश्य विद्या विषयक उत्साह वढाना । सत्यशर्माके इस कथन को ब्राह्मणीने वडी ही श्रद्धाके साथ अङ्गीकार किया । और वह ठीक उसी कथनके अनुकूल दोनों लडकों की लालनादि करने लगी । उधर सत्यशर्म्माजीने दोनों लडकोंको विद्याभ्यास के लिये उत्कण्ठित किया । तत्काल ही दोनों महानुभाव विद्याध्ययन में तत्पर हुए । अस्तु) इसी प्रकार विद्याध्ययन करते २ कुछ ही समय व्यतीत हुआ था । एकदिन सत्यशर्म्माके किसी यजमानने आकर सत्यशर्म्माको निमन्त्रण दिया । तथा कहा कि आप प्रातःकाल

हमारे गृहपर पधारकर अवश्य भोजन करना; सत्यशर्म्माने भी उस निमन्त्रणको सहर्ष स्वीकार करते हुए कहा कि अवश्य ऐसा ही होगा। यदि किसी कारणान्तरसे मैं न भी आ सका तो अपने इन दोनों लडकों को अवश्य भेजूंगा : इसके लिये आप निःसन्देह होकर अपने गृहको जाइये। तदनन्तर यजमान के वहां से प्रस्थान करने के कुछ ही देर पीछे सत्यशर्म्माजी को किसी पत्र वाहक द्वारा एक पत्र प्राप्त हुआ। जोकि विद्वज्जन सभाकी ओरसे प्रेषित किया हुआ था और उस पत्रद्वारा सभानिष्ठ विद्वान् लोगोंने सत्यशर्म्माजीसे अवश्य आनेके लिये प्रार्थना की थी। अतएव सत्यशर्म्माजीने सभामें जाना ही उचित समझा। और प्रातःकाल होनेपर अपने दोनों पुत्रों को समझा दिया कि जो यजमान कल निमन्त्रण दे गया था तुम दोनों उसके गृहपर जाकर अवश्य भोजन कर आना। कोई संकोच न करना। वह हमारा प्राचीन और बहुत श्रद्धालु यजमान है। और यजमान मेरे विषयमें यदि कुछ पूछ ताछ करे तो तुम कहदेना कि पिताजी सभामें गये हैं। (अस्तु) सत्यशर्म्माजी तो सभाके लिये प्रस्थान करगये। उधर बालरूप नारद अपने कार्यके लिये अवसर देख ही रहेथे। अतएव उन्होंने सोचा कि सम्भवतः चर्पटको यहांसे निकालनेके लिये आजका यही अवसर उपयोगी होगा। इसके बाद कुछ देरमें वे दोनों यजमानके गृहपर गये। वहां जानेपर यजमानने उन दोनों ब्राह्मण पुत्रोंका अच्छा सत्कार किया और विधिपूर्वक उनका पूजन कर भोजन कराया। परन्तु भोजनके पश्चात् जब दक्षिणा देकर उनको विदा करने लगा तबतो दक्षिणा थोडी देखकर नारदजीने चर्पटसे कहा कि यजमान इतना धनाढ्य होकर क्या दक्षिणा देता है जिसके ग्रहण करनेसे भी लज्जा आती है। बस क्या था यह सुनतेही चर्पट बिगड़ उठा। और उसने कहा कि हे यजमान ! यह अपनी दक्षिणा लीजिये हम इतनी कम दक्षिणा नहीं लेंगे। यदि देनी है तो अच्छी पूर्ण दक्षिणा दो। तबतो यजमान कुछ क्रोधान्वित हुआ कहने लगा कि आपके पिताको मैं अनेकबार दक्षिणा दे चुका हूं परन्तु उस महानुभावने आजपर्यन्त कभी दक्षिणाके लिये अप्रसन्नता प्रकट नहीं की है। आपने तो प्रथम दिन ही झगड़ा आरम्भ करड़ाला। यह फैसला तो यजमानकी इच्छापर ही निर्भर है उसकी इच्छानुसार चाहे वह बहुत दक्षिणा दे चाहे न्यून दे। परन्तु उसके कृत्यमें घाट बाध कहना वा करना आपलोगोंको किसी प्रकार भी श्लाघनीय नहीं है। अतः इस समय मैं इतनी ही दक्षिणा देना उचित समझता हूं यदि स्वीकार कर आशीर्वाद प्रदान करें तो बडी खुशीकी वार्ता है अन्यथा आपकी इच्छा रही इस विषयमें हमको कोई शोक नहीं। क्योंकि हम अपना कर्तव्य पालन करचुके हैं (अस्तु) इसके बाद यजमानकी कुछ लापरवाही की वार्ता सुनकर चर्पट खिन्नचित्त होकर आभ्यन्तरिक भावसे विचारने लगा कि यह श्रद्धालु यजमान होता तो अवश्य यदि अधिक दक्षिणा नहीं देता तो

नम्रतायुक्त वाक्योंद्वारा इतनी कम इस दक्षिणासे ही हमको सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न करता। परन्तु यह कहता है इच्छा हो तो ग्रहण करो नहींतो इस विषयमें हमको कुछ शोक नहीं, तो ऐसी सत्काररहित इसकी दक्षिणाको हम लेना ही नहीं चाहते हैं। पश्चात् सहसा बोल उठा कि ले उठा हम तेरी दक्षिणाके अभिलाषी नहीं हैं, यह दक्षिणा किसी अन्य ऐसे दरिद्रीको देना जिसको कभी स्वप्नमें भी पैसा प्राप्त न होताहो। और जिसके गृहमें खानेके लिये अन्नतक न समयपर प्राप्त होता हो। यह सुनकर यजमानने दक्षिणाको वापिस उठा लिया। चर्पट कोरमचन्द हुआ अपने गृहको चलागया। जब सायंकाल हुआ तब उधर सभासे सत्यशर्म्माजी भी गृहपर आ पहुँचे। और वस्त्रादिको बदलकर स्नान सन्ध्यादिसे निवृत्त हुए। उसी समय किसी कार्य्यान्तर वशात् चर्पट कहीं गृहसे वहिर गया हुआथा। और अकेला बालरूप नारद ही वहांपर उपस्थित था। उसीसे सत्यशर्म्माजीने पूछा कि बेटा उक्त यजमानके यहां भोजन करने गयेथे। नारदजीने प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि हां पिताजी गयेथे। यजमानने जिस समय हम वहां पहुंचे हैं उसी समय बडी श्रद्धाके साथ हमारी आरती उतार कर पश्चात् हमें सप्रेम भोजन कराया। और भोजनानन्तर यथाशक्ति दक्षिणा भी हमारे अर्पण की। परन्तु मेरे भ्राता चर्पटने दक्षिणा वापिस फैंक दी। और कहा हम इतनी कम दक्षिणा नहीं लेंगे यदि दे तो पूरी दक्षिणा दें नहींतो अपनी यह भी उठाले। यह सुनकर यजमान कुछ आभ्यन्तरिक भावसे खिन्नचित्त हुआ कहने लगा कि तू कहांसे दरिद्री उत्पन्न हुआ जो प्रथम दिन ही झगडा करने लगा। कोई अन्य पुरुष इस वृत्तको सुनेगा तो क्या तुम्हारी स्तुति करेगा किन्तु अवश्य यही कहनेके लिये उत्सुक होगा कि यह कृत्य ब्राह्मणत्व के नष्टभ्रष्ट करनेवाला है, अतएव दक्षिणाके लिये यजमानसे कुछ कहडालना सर्वथा अनुचित है, यह वार्ता अवश्य आपलोगोंको प्रत्येक समय अपने हृदयमें स्थापित रखनी उचित है। आपके पिता अवश्य योग्य व्यक्ति हैं उन्होंने आजपर्यन्त अनेकवार मेरे सकाशसे दक्षिणा ग्रहण करनेपर भी अबतक कोई ऐसा शब्द नहीं कहा है जिससे कुछ लोभता प्रतीत होती हो। (अस्तु) यजमानके इतने कहनेपर भी चर्पटने कोई विचार नहीं किया। दक्षिणा वापिस फैंककर गृहपर आगया। जिससे यजमान बहुत ही कुपित हुआ। यदि यजमानने इस वृत्तको किसी अन्यपुरुषके श्रोत्रगोचर करडाला होगा तो सम्भवतः इससे आपकी बहुत निन्दा होगी। बस क्याथा सत्यशर्म्माजीने जहां इतना सुना तत्काल ही क्रोधवशात् उनके नेत्र लाल होगये। और वे सहसा उसको गाली देते हुए कहने लगे कि (अच्छा) क्या सचमुच ही ऐसा हुआ है। नारदने कहा कि हां पिताजी मैं सत्य कहता हूं। यदि इस विषयमें आपको कुछ भी सन्देह होतो आप यजमानजीके गृहसे इस वृत्तान्तकी सूचना मंगाले झूठ निकले तो अवश्य मैं दण्डनीय हूंगा।

यहसुन कर सत्यशर्म्माजी निश्चयात्मक समझ गये कि अवश्य यह वृत्त ठीक है। अनन्तर कह उठे कि आज उसे गृहपर आनेदे में उसकी अच्छी तरह खबर लूंगा। ठीक जिस समय सत्य शर्म्माजी चर्पट को कूटना अवश्य समझकर लाल पीले हुए उसके गृह आनेकी प्रतीक्षा कर रहेथे उसी अवसर पर अकस्मात् वह भी कहीं से आही पहुँचा। बस क्याथा उसको वार्ता करनेका अवसर भी न दे कर सत्यशर्म्माजीने उसको कूटना आरम्भ किया। और इतना कूटा कि चर्पट एक वारतो अपने आपको भी भूल गया था परन्तु जब सत्यशर्म्माजी शान्त होगये तबतो चर्पट कुछ होशमें हुआ गृहसे बाहिर निकल गया और नगरके बाह्यस्थलस्थ तालाबके ऊपर एक मन्दिर था उसमें पहुँचा। तथा वहां बैठकर बहुत ही रोदन करने लगा। उधर बालरूप नारद भी आभ्यन्तरिक नमस्कार कर सत्यशर्म्माजीसे कहने लगा कि पिताजी मैं भ्राताको बुलाकर लाताहूं वह कहीं बाहिर चलागया है। यह सुन क्रोधान्वित हुए सत्यशर्माने तो कोई उत्तर नहीं दियाथा परन्तु नारदने प्रत्युत्तरकी परवाह न करके वहांसे प्रस्थान कर ही दिया। क्योंकि श्रीमहादेवजी की प्रबल आज्ञाके अनुसार नारद चर्पटको अब शीघ्रही कैलासमें लेजाना उचित समझता था अतएव पिताजीकी सहर्ष पूरी आज्ञा न होनेपर भी नारदने वहासे प्रस्थान कर ही दिया। अन्ततः चर्पटकी अन्वेषणा करता हुआ जब ठीक उसी मन्दिरमें पहुँचा तबतो वह भी उससे मिलगया। तत्काल ही नारदने कहा कि अहो बड़े खेदकी बात है हमने तो आजपर्यन्त कोई भी ऐसा मनुष्य किसी को ताड़ना करता नहीं देखा है जैसा आज आपका पिता देखा है। देखिये इतने बडे पदको प्राप्त होकर भी अर्थात् इतना अधिक विद्वान् होकर भी इतना अधिक क्रोध रखता है यह सर्वथा अनुचित तो है ही किन्तु उसकी अपकीर्ति भी करानेवाला है। अतः ऐसे पुरुषके समीप रहना उचित नहीं है न जाने किस समय क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हुआ क्या वस्तु उठा मारे जिससे व्यर्थ ही प्राण जोखममें पड़जायें और इस संसारमें हुए जन्मका कुछ भी फल प्राप्त न करते हुए हम अपने अमूल्य जीवनको खो बैठें। नारदका यह वाक्य सुनकर चर्पटको गृहकी ओरसे और भी अधिक ग्लानि प्राप्त होगई। अतएव वह सहसा बोल उठा कि भाई तो कहिये और क्या करना उचित है। यदि पिताजीके समीप न रहना सोचकर मैं किसी देशान्तरमें ही प्रस्थान करना उचित समझूं तो क्या तेरी भी इसमें सम्मति है। नारद यह प्रथमतः ही चाहताथा इसी लिये उसने कहा कि (हां) बड़ी खुशीके साथ चल मैं एक ऐसी अच्छी पाठशालाका भेदी हूं जिसमें जाकर दोनों सुखके साथ विद्याध्ययन कर सकेंगे। और जब अच्छे विद्वान् हो जायेंगे उस अवस्थामें कोई मारकूटाईका भय भी नहीं रहेगा। तत्काल ही यह बात चर्पटने निश्चयात्मक समझकर नारदके साथ प्रस्थान किया। इस प्रकार वे दोनों कतिपय दिनोंमें कैलासाश्रम

पहुँचे वहां श्रीमहादेवादि तीनों महानुभाव उनकी प्रथमत: ही बाट देख रहेथे ठीक इसी अवसरपर इन दोनोंने उन्होंकी यथा विधि नमस्कार करी। यह देख श्रीमहादेवजीने सहर्ष नारदसे पृच्छा कि कहो कुशलता सहित तो रहे। बालरूप धारणपूर्वक ब्राह्मणके गृहपर कतिपय दिन निवास करनेसे किसी प्रकारके कष्टका अनुभव तो नहीं करना पडा है। नारदने अपना बालरूप यहीं आकर बदलाथा अतएव बालरूप विषयमें किये श्रीमहादेवजीके प्रस्तावका प्रत्युत्तर देते हुए नारदने कहा कि आपकी महती कृपा जिस पुरुषके ऊपर अपनी छाया रखती है उसको फिर कष्ट कहां अर्थात् उस पुरुषको कालत्रयमें भी कोई दुःख आक्रान्त नहीं कर सकता है। इसके अनन्तर नारदके अपना बालरूप हटाकर निजपूर्वरूप धारण करनेसे कुछ विस्मित हुए चर्पटके ऊपर श्रीमहादेवजीने अपना दृष्टिपात किया और उसको हस्त पकड़कर उसे सप्रेम अपने घुटनोंपर बैठा लिया तथा कहा कि बेटा कह कुछ सचेत भी है तू कौन है किस उद्देशसे इस संसारमें तूने यह अनभिज्ञता प्रधान अवस्था ग्रहण की है। बस क्या था कुछ तो तीनों महानुभावोंके दर्शन मात्रसे पहले ही उसका निर्मलान्तःकरण हो चुका था। फिर भी श्रीमहादेवजीके इस वाक्यने मानों उसके हृदयमें निजोद्देशका पूर्ण प्रकाश करडाला। अतएव अपनी दिव्यदृष्टिद्वारा स्वकीय उद्देशका स्मरण करके वह तदनुकूल ही नम्रतायुक्त हस्तसम्पुटी किये हुए श्रीमहादेवजीके वाक्यका प्रत्युत्तर प्रदान करता हुआ कहने लगा कि भगवन्! प्रकृति देवीके नियमको आप अच्छी तरह जानते ही हैं इसके विषयमें मेरा आपके समक्ष कुछ भी निरूपण करना व्यर्थ है। अर्थात् प्रकृतिके इस नियमको एकबार तो अवश्य सब ही को अङ्गीकृत करना पड़ता है कि बाल्यावस्थामें अनभिज्ञता सूचित कर तदनुकूल ही चेष्टा भी करना। ठीक यही वृत्त मेरा भी था परन्तु आपकी महती कृपाका पात्र बनकर जब मैं आपके पवित्र नेत्रोंका विषय हुआ तभीसे अवश्य मैं अपने मुख्योद्देशको समझ गया अब आपलोगोंकी सेवामें उपस्थित हूं जो आज्ञा प्रदान करेंगे मैं सश्रद्धा अवश्य उसको शिरोधार्य समझ कर अपने कर्तव्यका पालन करूंगा। यह सुन श्रीमहादेवजीने श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीकी ओर इसारा करते हुए कहा कि इन महात्माओंका शिष्यत्व स्वीकृत कर इनसे दीक्षा ग्रहण करना उचित है। क्योंकि ये हमारे ही शिष्य हैं और नानाप्रकारकी विद्याओंमें इतने निपुण हैं जितना अन्यकोई भी इस समय दृष्टिगोचर नहीं है। अतएव देखना भूलना नहीं तू हमारी आज्ञापर दृढ विश्वासी हुआ इनकी सश्रद्धा तनमनसे सेवा करता हुआ अवश्य इनसे शिक्षा प्राप्त कर अपने इस संसारमें प्राप्त हुए जन्मके मुख्योद्देशको प्राप्तकर संसारमें अपने यशको चिरस्थायी करडालना। इसके अनन्तर जब श्रीमहादेवजीकी आज्ञानुसार वे बदरिकाश्रमको गमन करगये तब वहां जाकर श्रीमत्स्येन्द्र-

नाथजीने चर्पटको अपने घुटनोंपर बैठा लिया। और सस्नेह मधुर २ वाणीद्वारा आप उससे बात करने लगे। और उसे कहा कि बेटा तू पिप्पलायन नारायणका अवतार है तथा मैं कवि नारायणका अवतार हूं अत पूर्ववृत्तान्तका स्मरण करके देख तेरा इस जन्म धारण करनेका लक्ष्य क्या है तथा अब तेरी किस अवस्थामें प्रवृत्त होनेकी आवश्यकता है। चर्पटने कहा कि भगवन्! आपकी कृपादृष्टिसे मैं अपने लक्ष्यको अच्छीतरह जानचुका हूं इसके विषयमें आप कोई चिन्ता न करें। परन्तु अब जो अवश्य कर्तव्य कृत्य है उसका आरम्भ करें अर्थात् जिससे मैं अपने उद्देशकी सिद्धिमें समर्थ हो सकूं तिसके अनुकूल सस्नेह मेरेको कुछ मन्त्र विद्याप्रदान कर अपने रूपमें प्रविष्ट करें। तदनन्तर श्रीमत्स्येन्द्र नाथजीने चर्पटको अपने गृहकी कुछ विद्या शिखलाई। और उसे अपना शिष्य बना कर कतिपय दिनोंके बाद उसको बड़े ही घोरतपमें नियत करदिया। जिसने गोरक्षनाथजीकी तुल्य अपने शरीरको शुष्क करडाला था (अस्तु) जब इसी प्रकार घोर तप करते २ पूरे बारह वर्ष व्यतीत होगये तब श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने उसको तपसे विमुक्त कर और भी अनेक विद्याओंमें निपुण किया। जिससे उस महानुभाव चर्पटनाथजीमें वह शक्ति प्रविष्ट होगई कि समस्त देशमें जितने इनसे पीछे महात्मा प्रकट हुए उनमेंसे कोई भी इनकी यथार्थ समताको प्राप्त न कर सका। अतएव इनके राघवनाथ, बालनाथ, तोटकनाथ, जाम्बुनाथ, नित्यनाथ, सोमेन्द्रनाथ, काकुत्सनाथ, भैरवनाथ ये अष्ट महासिद्ध योगी शिष्य प्रसिद्ध हुए। जिन्होंने इस चर्पटनाथजीकी कृपासे योगाक्रियामें अत्यन्त कुशलता प्राप्त कर संसारमें अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की।

इति श्रीचर्पटनाथोत्पत्ति वर्णन नामक १६ अध्याय।

अनुवादक—चंद्रनाथ योगी.

॥ अध्याय १७ ॥

एक समय श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी विचरते हुए नर्मदा संगत रेवानदीके तटस्थ बुंबुल. नामक एक ग्रामकी सीमामें पहुँचे। वहां रेवाके समीप ही एक बहुत अच्छा बनथा जहां कई एक तालाव विमल जलसे परिपूर्ण थे। अनेक प्रकारके वृक्षों की पंक्तिसे बन अत्यन्त शोभायमान हो रहाथा और ऐसा सघन था जिसमें निरन्तर गमन होना दुर्घट ही क्या असम्भव था। तथा अनेक प्रकारके व्याघ्र आदि हिंसक जीव भी उसमें अपना पूरा अधिकार किये हुएथे। अतएव मनुष्योंका आवागमन उसमें बहुत ही कम था। परन्तु मत्स्येन्द्रनाथजी तो इस प्रकारके हिंसक जीवोंसे उपस्थित होनेवाले उत्पातकी कुछ परवाह ही नहीं रखतेथे इसी कारणसे आपने उस एकान्तिक स्थानमें ठहरकर कुछ दिन निवास करनेका विचार किया। और एक तालावके तीरपर खडे हुए गहरी छाया वाले वटवृक्षके नीचे स्वात्माके निर्वाहानुकूल एक तृणमयी कुटिया निर्मितकी जिसमें आप सुख पूर्वक अपना समय बीताने लगे। इसी प्रकार जब कई एक मास व्यतीत हो गये और प्रतिदिन फल फूलोंका आहार करनेसे जब आपका चित्त कुछ निर्विण्णतान्वित हुआ तबतो आपने एकदिन रोटी आदिका आहार करना चाहा। अतएव कुछ कोशके अरसेमें स्थित बुंबुलनामक ग्रामको लक्ष्य ठहराकर उसकी तरफ चलना आरम्भ किया। और कुछ ही देरमें आप वहां आ पहुँचे तथा रोटीके लिये सुयोग्य गृहोंके द्वारपर खडे होकर अलक्ष्य शब्दका उच्चारण करने लगे। यह सुनकर गृहिणियोंने बडे प्रेमके साथ भोजन प्रदान किया। जिसको स्वात्मोदरपूर्ति के लिये पर्याप्त समझत हुए अधिक भोजन मांगना अनुपयुक्त जानकर आप पुनः स्वकीय कुटीको प्रस्थान कर गये। इसी प्रकार जब २ कभी चित्त रोटीके लिये उत्सुक होताथा आप तभी ग्रामसे भिक्षा ले जातेथे। जब आपको इस बनमें निवास करते हुए पूरा एक वर्ष होगया और इस ग्राममें भी आप कई एक चक्र लगाचुके तब कतिपय मनुष्योंने आपके विषयमें सन्देह प्रकट किया। वे कहने लगे कि ये महात्मा कभी २ भिक्षार्थ गाममें आते हैं मालूम होता है कहीं रेवाके तटस्थ ऐकान्तिक स्थानमें निवास करते होंगे। इनका आचरण बहुत ही अच्छा जान पडता है। ये

अवश्य कोई महासिद्ध आनन्दी योगी हैं जो जीवन मुक्तिका पूरा सुख प्राप्तकर रहे हैं(अस्तु) अकस्मात् अगले दिन फिर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी भिक्षार्थ वहीं आ निकले तत्काल ही उनको देखकर एक पुरुषने, जोकि क्षत्रिय जातिका था, अपने आभ्यन्तरिक विचारसे निश्चय किया कि ऐसे पुरुष तो महात्मा निष्परवाह होते हैं सम्भवतः मेरे को ठीक पता बतलावें वा नहीं। अतः आज इनके पीछे २ चलकर गुप्त रीतिसे इनका निवासाश्रम देखना चाहिये। अनन्तर यथा शक्ति इनकी सेवा कर कुछ अपना अभीष्ट प्राप्त करके मुझे इस असार संसारके भोगोंको सफल करनेका सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा। (अस्तु) जब श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी भिक्षा करके अपने आश्रयको चले तभी वह भक्त भी उनका अनुयायी हुआ। और अत्यन्त कुशलताके साथ अपने आपको प्रकट न करता हुआ नाथजी के निवासका अवलोकन कर अपने गृहको लौट आया। वहां आते ही उसने आभ्यन्तरिक भावसे निश्चय किया कि आजसे आरम्भकर प्रतिदिन नियमसे मैं महात्माजी की सेवामें उपस्थित हुआ करूंगा। अतएव सायंकाल होनेपर एक ताम्रमय वर्तन को दुग्धसे परिपूर्णकर वह सश्रद्धा महात्माजीके उद्देशसे उनके सम्मुख चला। यद्यपि वह बन अनेक प्रकारके व्याघ्रादि दुष्ट हिंसक जीवोंसे परिपूर्ण था तथापि उस सद्गृहस्थ महानुभावकी बहु दृढ भक्तिने, वा उसकी अत्यन्त उत्कट फल प्राप्ति की इच्छाने, उसका निर्मल हृदय इतना वज्रवत् कठिन करडाला था कि उन हिंसक प्राणियोंसे सम्भवित आकस्मिक विघ्नकी वह किञ्चित् भी परवाह न करता था (अस्तु) जब वह अकस्मात् पहुँचकर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीके आगे दुग्ध रखता हुआ उनके चरणोंमें गिरा और दुग्ध स्वीकृत करनेके लिये उनको सूचित करने लगा तबतो श्री मत्स्येन्द्रनाथजी सहसा बोल उठे कि अरे ! तू कौन है इस प्रकारके हिंसकजीवोंसे पूरित बनमें कैसे आया क्या कोई हिंसक जीव तेरेको मार्गमें उपलब्ध नहीं हुआ जिससे निर्विघ्न आ पहुँचा। इसका प्रत्युत्तर देता हुआ कृषक कहने लगा कि भगवन् ! यहांसे कुछ दूरी पर बुंबुलनामक एक ग्राम है उसीमें यह दास निवास करता है और यथा शक्ति आपकी सेवा करना चाहता है। दुष्ट व्याघ्रादि जीवोंसे पूर्ण इस बनके मार्गद्वारा निर्विघ्न आ पहुँचने का उत्तर यह है जब आप जैसे अद्वितीय महायोगेश्वरोंकी सेवार्थ ही उनकी शरणमें प्राप्त होना है अतएव उस पुरुषके ऊपर जब उनकी पूर्ण कृपामयी दृष्टि है तो मेरा अनुमान है आरण्य हिंसक जीवोंकी तो कथा ही क्या है कालभी उस पुरुषके ऊपर अपना बलात्कार नहीं कर सकता है। तदनुकूल ही मेरेको भी समझ लेना चाहिये अर्थात् मेरे ऊपर भी आपकी कृपादृष्टि है यही कारण है जिससे मेरा निर्विघ्न आगमन हुआ। अन्यथा ऐसा होना दुर्घट ही क्या असम्भव ही था (अस्तु) पश्चात् श्री मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि अच्छा जो कुछ हुआ सो हुआ परन्तु फिर कभी ऐसे विपरीत समय इस बनमें नहीं आना हम आजका दुग्धतो अपने व्यवहारमें ले सकते

हैं फिर कभी स्वीकृत नहीं करेंगे। क्योंकि इस समय हमने फल फूलोंका आहार करके ही कुछ दिन व्यतीत करनेका निश्चय किया है इसपरभी कभी रोटी के लिये उत्कट इच्छा होती है तो ग्रामसे भिक्षाकर यथा प्राप्त रोटी द्वारा अपने चित्तको सन्तुष्ट करते हैं। अतएव यदि दूधका भी कोई दिन उपभोग कर लिया तो प्रकृत निश्चय सविघ्न हो जायेगा। इसके अनन्तर कृषकने वडी श्रद्धाके साथ महात्माजीके चरण ग्रहण किये। और वह कहने लगा कि भगवन्! यह आपलोगोंकी ही आभ्यन्तरिक महती कृपा है जिस वशात् मैं इतना अवश्य निश्चय रखता हूं कि आपको न तो कोई फलके आहारकी आवश्यकता है न दूध ओर रोटीके आहारकी ही आवश्यकता है तथापि आप ग्राममें जाकर अत्यन्त मामूली वस्तु दो रोटीके लिये प्रार्थना करते हो यह केवल अपने आपको छिपाकर सांसारिक मेरे जैसे अज्ञान रूपान्धकारसे आच्छादित हुए जीवोंके कृत्योंका निरीक्षण करते हो। यही नहीं निजभक्तोंको किसी कुत्सित कृत्यमें सलग्न देखते हो तो उसका उद्धारकर उसे सांसारिक इतिहासमें अग्रगणनीय बनाडालते हो (अस्तु) यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजीने विचार किया कि यहतो वडा ही सुवोध तथा अधिकारी पुरुष मालूम होता है अतएव कुछ जिह्वा दबाकर मन्दवाणीसे (अच्छा तेरी इच्छा) यह कहते हुओंने अपने चित्तको अनुकूल सूचित किया। अर्थात् खुलकर आज्ञा न देकर अपने आभ्यन्तरिक भावसे मन्दवाणी द्वारा मानों प्रतिदिन दूध स्वीकार करने की आज्ञा देही डाली। इसी लिये वह भक्त भी दूधको महात्माजीके समर्पण कर सानन्द स्वकीय गृहपर आ गया। और फिर अग्रिमदिन भी उसने तद्वत् ही किया। इसी क्रमसे सेवा करते २ वारह वर्ष पूरे हो चले। तवतो आभ्यन्तरिक रीतिसे श्रीमत्स्येन्द्र-नाथजीने वहांसे प्रस्थान करनेका सङ्कल्पकर यह भी निश्चय किया कि इस भक्तने हमारी वहुत सेवा की है और हमारी सेवाके लिये अपने शरीरको तुच्छ समझकर इसने अपनी दृढ भक्तिद्वारा अपने ऊपर होनेवाली कृपाका हमारे हृदयमें अङ्कुर उत्पन्न करडाला है। अतएव आज किसी प्रकारके वरको स्वीकृत करने के लिये उसको अवश्य विज्ञापित कर उसके अभीष्ट की सिद्धि करेंगे. (अस्तु) जव वह भक्त नियत समयपर दूध ले कर वहां आया तव श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने उससे कहा कि भक्तजी यहां निवास करते रहते हमारे आज पूरे वारह वर्ष व्यथीत हो गये हैं अव हम चाहते हैं कि देशान्तरकी शैल करें। इसी लिये निश्चय है हम यहां पर अव वहुत दिन नहीं ठहरेंगे अतएव तुमने वडी श्रद्धाके साथ जो हमारी सेवाकी है उसके प्रत्युपकारार्थ हमसे कोई अभीष्ट वरमांगो। जिससे हमभी विनाही विलम्वसे उसकी पूर्तिकर सेवाको सार्थक्य करते हुए कृतकार्य हो जायेंगे। यह सुन कृषकने अत्यन्त ही हर्षके साथ आभ्यन्तरिक भावसे प्रसन्न होकर कहा कि भगवन्! आपकी महती कृपाके प्रतापसे न तो मेरे गृहमें उपभोग साधनी भूत किसी पदार्थकी न्यूनता है और न कोई

शरीरमें ऐसी व्याधि ही है जो दिनरात्री मेरेको व्यतिथ करती हो। एवं न आपसे अधिक किसी महात्मा वा देवता के दर्शन करने की ही मेरेको इच्छा है। किन्तु जिस बातकी मुझे चिन्ता है तथा जिसवातका उद्देश लेकर मैं आपकी सेवामें प्रवृत्त हुआ हूं उसकी पूर्ति करने के लिये आप प्रसन्न चित्त हो जायें। वह बात क्या है उसको मैं अब आपके समक्ष स्फुट ही करदेता हूं इस अवस्था तक मैं कई एक विवाह कर चुका हूं तो भी इस समयतक अपने अभीष्टको प्राप्त न हो सका हूं। अर्थात् मेरी पत्नी मुझे एक भी पुत्रका मुख न दिखलाकर स्वयं अगम लोककी यात्रामें तत्पर हो गई। तदनन्तर मैंने कुछ निराश होकर एक विवाह और भी कर ही डालाथा। जिसका फल यह हुआ कि इस स्त्री के गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ उसकी उत्पत्तिमात्रसे मैं अत्यन्त सन्तोषित हुआ था और परमात्माकी कृपाके मुझे अपने ऊपर अच्छे लक्षण दीखने लगे थे। यंही नहीं मैंने यहां तक विश्वास कर लिया था कि अबतक अपुत्र रहकर मैंने संसार के भोगोंको अवश्य निष्फल करडाला है परन्तु अब प्रेमपूर्वक पुत्र के हास्यमय लाड द्वारा उनको सफल करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा। पर हतभाग्य क्या करूं अत्यन्त खेदके साथ कहना पडता है वह मेरा मनोरथ सिद्ध न हुआ। उत्पत्तिके अनन्तर कुछ ही दिन व्यतीत होनेपर दुष्ट त्रिकाल कालने शीघ्रही मेरे एकमात्र उस पुत्र रत्नको अपने पञ्जोंमें दबालिया। जिसके मरणको देख हमारे ऊपर घोर विपत्तियोंका वज्रपात हुआ। उसको सहलेना सामान्य बात नहीं थी परन्तु उपायान्तराभावसे कब तक क्या किया जाताथा आखिर रो पीटकर शान्तही होनापडा अस्तु) अब अधिक क्या कहूं जो कहडाला है यह भी व्यर्थ ही है। क्यों कि आप स्वयं अन्तर्यामी हैं। अतएव कोई वृत्त आपसे छिपा हुआ नहीं है जिसकी मुझे विशेष व्याख्या करनेकी आवश्यता हो। इस वास्ते अब मैं चाहता हूं कि सर्व योग्य गुण सम्पन्न मातापितृभक्त पुत्र प्रदानके लिये ही आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायें। भक्तजी के ऐसे करुणामय वाक्य सुनकर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीका कोमल पवित्र हृदय दयामय होनेपरभी अधिक दयार्द्रीभूत हो गया। परन्तु जब दिव्य दृष्टि द्वारा देखा कि इसको पुत्रद्वारा यथेष्ट सुख प्राप्त होना असम्भव है क्योंकि ऐसा पुत्र कोई भी इसके निमित्तमें नहीं है जो इसके गृहमें रहकर अपने आत्मिक परिश्रमसे इसको सुख दे सके। अतएव अन्तमें अगत्या श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी ने स्फुट ही कहना पडा कि भक्तजी तुम्हारी इच्छाके अनुकूल पुत्र तुम्हारे निमित्तमें नहीं है यही ईश्वराज्ञा है। अतः किसी अन्यवरकी याचना करो जिससे हम शीघ्रही उसको तुम्हारे लिये प्राप्त कर सकेंगे। इसकेबाद कृषकने कहा कि भगवन्! मैं अन्य किसी वस्तुका अभिलाषी नहीं हूं केवल पुत्र प्राप्ति के लिये ही उत्कण्ठित हूं यदि आप आभ्यन्तरिक भावसे प्रसन्न हो गये हों तो उसीकी प्राप्तिका यत्न करें। तब श्री मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि

भक्तजी हम सत्य कहते हैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार तुमको तुम्हारे गृहमें रहता हुआ अपने शारीरिक प्रयत्नसे सुख देनेवाला पुत्र तुम्हारे निमित्तमें नहीं हैं । हां यदि थोड़े दिनके लिये सपुत्र बनना चाहते हो और फिर शीघ्रही उसके वियोग होनेपर उसके विषयमें पुनः दुःख उठाना चाहते हो तो अवश्य हम ऐसे पुत्रकी उपलब्धि कर सकते हैं। इसमें भी इतनी बात और ध्यान देने योग्य है हमारे सकाशसे उपलब्ध होनेवाला पुत्र न्यून अवस्थामें ही अवश्य अपने वियोगद्वारा कुछ दिनके लिये तुमको व्यथित करेगा परन्तु वह त्रिकालकालके पञ्जोंमें नहीं आवेगा । किन्तु सजीव ही किसी महात्माकी शरण लेकर वह वस्तु प्राप्त करेगा जिसके द्वारा स्वयं भवरूप सागरके पार होता हुआ तुमको भी पीछे न छोडेगा । और संसारके इतिहासमें तुम्हारे वृत्तको अमर करडालेगा । इस वास्ते ऐसे पुत्रकी अभिलाषा है तो कहिये २ शीघ्र कहिये जिसका प्रदान कर हम अपने आपको कृतज्ञतान्वित करें । यह सुनते ही कृषक श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीके चरणोंमें गिरा और कहने लगा कि अच्छा २ बहुत अच्छा भगवन्! यदि आपकी ऐसी ही कृपा है तो और क्या चाहिये । हमलोग अधिक समय कृषी कार्यमें संलग्न रहते हैं अतएव प्रायतासे हमलोग स्थूल बुद्धिवाले ही हुआ करते हैं यही कारण था मैंने इस बातका स्वप्नमें भी कभी स्मरण नहीं कियाथा कि मेरा इतना बड़ा भाग्य है जो ऐसे प्रसिद्ध अद्वितीय महानुभावका मेरे गृहमें प्रादुर्भाव होना सम्भव है (अस्तु) इसके बाद श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने सहर्ष अपनी झोलीसे एक चुकटी विभूति निकालकर मन्त्रजापपूर्वक भक्तजीके अर्पण की । तथा कह सुनाया कि गृहमें पहुँचते ही अभी इसको अपनी पत्नीको खिलादेना भूलना नहीं। यदि प्रमत्तासे इसको कहीं अन्य जगहपर डाल देगा और अपनी स्त्रीको न खिला सकेगा तो महान् अनर्थ होजायेगा । तथा तेरेलिये ऐसा कर बैठना मङ्गल प्रद न होगा और लेनेके देने पड़ जायेंगे । तबतो कृपक श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीके चरणोंका स्पर्श करता हुआ सहसा बोल उठा कि नहीं २ भगवन्! आप निस्सन्देह रहें ऐसा विपरीत अनर्थोत्पादक कृत्य कभी नहीं होगा । मैं अत्यन्त विश्वासके साथ कहता हूं गृह पहुँचते ही आपकी आज्ञा पूरी करके अन्य कार्यमें तत्पर हूंगा । अनन्तर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी बोले कि अच्छा अलक्ष्य पुरुष करे ऐसा ही हो । परन्तु अब गृहको जाइये समय कम रहगया है उधरसे हमने भी आज ही यहांसे प्रस्थान करनेका निश्चय किया है । फिर भी कभी यथेष्ट समयपर आकर तुमको दर्शन देवेंगे तथा तुम्हारे पुत्रका उच्च भाग्य स्फुट करेंगे । (अस्तु) इतना वचन कहकर (अच्छा तुम्हारा कल्याण हो हमतो अब चलते हैं) इस प्रकार आशीर्वाद देते हुए श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी तो वहांसे गमन करगये। और कृपक साल्हाद विभूति लेकर स्वगृहमें पहुँचा। और उसने जाते ही श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीकी आज्ञानुसार उसे अपनी

पत्नीको खिला दिया। पश्चात् अपनी स्त्रीको भी मत्स्येन्द्रनाथजीकी प्रसन्नताके विषयमें सूचित किया कि एक अद्वितीय महायोगेश्वरकी हमारे ऊपर कृपादृष्टि हुई है उन्होंने ही यह विभूति दी है जिसके प्रतापसे हम अब अपुत्र न रहेंगे अत्र य निर्दिष्ट समयपर हमको ऐसे पुत्रकी उपलब्धि होगी जिस वशात् इस संसारमें हमारा नाम प्रसिद्ध और चिरस्थायी होजायेगा। यह सुनकर कृषक पत्नी भी अतीवानन्दित हुई और उसने सहर्ष आकस्मिक होनेवाली ईश्वरकी दयालुताके विषयमें असंख्य धन्यवाद दिये। अनन्तर विलक्षण पुत्रोत्पत्तिके आनन्दमय शुभदिनकी ओर निरन्तर दिनरात टकटकी लगाये रहते हुए पतिपत्नियोंका सानन्द कुछ समय व्यतीत हुआ। उन दोनोंको प्रतिरात्रीमें अतीव अभिलाषी, चञ्चल गति, स्वकीयमन द्वारा पुत्रका खेलाना और प्रतिदिन शुभ लक्षण दीखपड़ने लगे। इसी हेतुसे भक्तने सश्रद्धा निश्चयात्मक समझ लिया कि अवश्य अब हमारा भाग्य पलटा खायेगा तथा महात्माजीके अमोघ वचनका पूरा परिचय लेकर हम इस ग्राममें ही नहीं किन्तु समस्त देश मात्रमें अपने आपकी प्रसिद्धि तथा कीर्ति श्रवण करेंगे। (अस्तु) कतिपय दिनके पश्चात् उसकी पत्नीके उदरमें श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीकी अनिष्फल मंत्र संशोधित विभूतिके दुःसह प्रभावसे गर्भने जब अपना पूरा अधिकार जमालिया और प्रतिदिन अपनी सावकाश स्थितिके लिये अन्तर्गत सङ्कुचित स्थानको विस्तृत करने लगा तबतो उसने पतिसे साफ २ कहसुनाया कि भर्तः! बस आजसे आप मुझे पुत्रवती समझ लें। यदि अभी यह बात सविकल्प कही रहरही होतो कुछ दिन और शान्त रहो फिर तो मेरी कोई आवश्यकता ही नहीं मेरा उदर स्वयं ही आपके निश्चय करानेके लिये प्रस्तुत होजायेगा। यह सुनकर कृषक और भी निःसन्देह होगया और उसकी यहांतक आशा की पूर्ति होगई मानों पृथिवी भी इधरसे उधर होजाय परन्तु पुत्र न होगा ऐसा कभी नहीं होसकता है। (अस्तु) कतिपय दिनके अनन्तर उसकी स्त्रीका मुख अतीव कान्तिमय होगया इसी क्रमसे प्रतिदिन उसके प्रत्येक अङ्गकी शोभा कुछ विलक्षण जैसी ही होती दिखाई देतीथी जिस वशात् थोड़े ही दिनोंमें उसके अतीव मनोहर प्रबल स्वरूपने स्वर्गस्थ रमणीय अप्सराओंके स्वरूपको पराजित कर सर्व साधारणके समक्ष अपनी विजयको सूचित किया। उसके अवलोकनानन्तर भक्तजी इस प्रकारके सङ्कल्प विकल्पमय सागरमें मग्न होगये कि (अहो) जिसके उदरमें सम्भव मात्रसे मेरी पत्नीका ऐसा अद्वितीय असह्य स्वरूप होगया तो नहीं कह सकते हमारा पुत्र इससे कितने अधिक रम्य सौन्दर्यवाला होगा। (अस्तु) इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत होनेपर उसके प्रतापी पुत्रका उत्पत्ति समय भी अतीव निकट आ पहुँचा यह देख शीघ्र ही अन्य ग्राम निवासी अपने सम्बन्धियोंको उसने इस वृत्तसे सूचित किया जिसके श्रवण मात्रसे कितने ही इधर उधरके ग्रामान्तरवासी

स्त्रीपुरुषोंने उसके गृहको वहां आते ही सङ्कुचित बनाडाला। ठीक इसी अवसरमें प्रिय दर्शन चमसनारायणके अवतारी उस लड़केका प्रादुर्भाव हुआ जिसका उदरसे वहिर निःसरण होनेसे एकवार तो इतना अधिक प्रकाश होगयाथा कि कुछ क्षणके लिये माता उपमाताओंके नेत्र इस प्रकार त्यक्तव्यापार होगयेथे जैसे सुषुप्ति अवस्थागत होते हैं (अस्तु) तत्काल ही समस्त नगरमें सूचना देदी गई अतएव प्रत्येक अनुकूल गृहोंमें मधुरध्वनिमय मङ्गलप्रद गीत गाये जाने लगे। उधर भक्तजीने भी यथाशक्ति प्रसन्नचित्त होकर क्षुधार्त्त अनेक दीन पुरुषोंको दान पुण्य करना प्रारम्भ किया अतएव भक्तजीके उदार हृदयका परिचय लेते हुए बहुतेरे लोगोंने मुक्तकण्ठसे उसकी प्रशंसा करी। और इस पुत्रोत्पत्तिसे जायमान उत्सवको एक अद्वितीय उत्सव वतलाया (अस्तु) इस प्रकार सानन्द जब यह समारोह समाप्त होगया तब ग्रामान्तरसे आये हुए लोग अपने २ गृहको प्रस्थान करगये। इधर कृषकने अच्छे २ सुयोग्य विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उनके द्वारा स्वकीय पुत्रका यथोचित सर्व संस्कार कराया और रेवन नामसे अलंकृत किया। लड़का भी बड़ा सुशील योग्य गुण सम्पन्न और मनोरञ्जकथा जिसके गुणोंपर सच्चे हृदयसे उसके मातापिता वलिहारी ही नहीं अपने प्राणतक न्योछावर करने तक तैयार रहतेथे (अस्तु) इसीप्रकार जब आनन्दमय समय व्यतीत होकर पूरे बारह वर्ष बीत चले तब स्वजातिके व्यापारानुकूल वह लड़का भी कुछ कृषीकृत्यमें प्रवृत्त होने लगा। एक दिन वह एकाकी ही जाकर जब अपने क्षेत्रमें कर्मरत हुआ तब कुछ ही देरके बाद उधरसे अकस्मात् श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी भी वहां आ निकले और एक गहरी छायामय वृक्षके नींचे उस लड़केके संमुख ही विराजमान हुए। क्योंकि श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीको यह तो सम्यक् मालूम ही था कि यह वही चमसनारायणका अवतारी लड़का है और यही उनका वचन भी था कि हम फिर अनुकूल समयपर वापिस लौटेंगे अतएव ठीक समयपर वहां प्राप्त होकर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने अपना वचन पूरा किया और उक्त लड़केको अब इस संसारके दुर्जय जटिलजालसे शीघ्र ही विमुक्त करना उचित समझा (अस्तु) श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीको सम्मुख बैठे देखकर सहसा लड़के रेवनके चित्तमें विचार उत्पन्न हुआ कि कोई महात्मा बैठे हैं इस समय श्रमका बडा जोर है इसी हेतुसे ये ग्राम तक न पहुँचकर यहीं विश्राम कर बैठे हैं अतः सम्भव है ये क्षुधार्त्त भी होंगे इनको रोटी के लिये पूछना चाहिये। इसके अनन्तर अपने वास्ते गृहसे लाई हुई रोटियों को ले कर वह लड़का वृक्ष छायामें स्थित महात्माजी के सम्मुख चला और वहां जाकर नम्रता युक्त नमस्कार पूर्वक कहने लगा महाराज! आपतो बड़े ही सुखका अनुभव कर रहे होंगे मेरी ओर देखो मैं कितना दुःखी हूं नींचेसे उष्ण भूमि अपना रंग दिखला रही है और ऊपरसे सूर्य अधिकाधिक धूपद्वारा शरीरको सन्तप्त किये

जा रहा है। यहसुन कर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी अपने मनही मनमें मुस्कराने लगे और कहने लगे कि हां भाई ऐसी ही बात है यह किसी मनुष्याधीन बात नहीं है जो कि सूर्यके शान्त करनेका प्रयास करे किन्तु यह ईश्वराधीन ही है उसीके प्रबल मनोरथ मात्रसे सूर्य प्रकाश मान है जो अपने स्वाभाविकोत्पन्न असह्य प्रतापद्वारा समस्त सृष्टिको उत्तप्त करे जा रहा है (अस्तु) पश्चात् लडके ने कहा कि महाराज! आपको क्षुधा लगी होगी इसलिये मेरी इच्छा है आप एकार्थ रोटीका कलेवा करें धूप शान्त होनेपर फिर ग्रामको पधारना और यथेष्ट भिक्षा करना। यद्यपि श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी उस लडके के ऊपर प्रथमतः ही प्रसन्नथे तथापि इस प्रकार की उसकी नम्र प्रार्थना और श्रद्धा देखकर अतीवानन्दित हुए। और अपने आगमन को तथा उसकी भक्तिको सार्थक करने के लिये आपने लडके को एकमन्त्र बतलादिया जो कि अन्नपूर्णाके प्रसन्न होनेका था। और साथ २ यह भी दृढ समझा दिया कि इसका प्रतिदिन पाठ करना अन्य किसी पुरुषोंको इससे परिचित न कर बैठना। अस्तु) इसी प्रकार की पारस्परिक वार्ता करते २ उधरसे सायंकाल होनेको आया यह देख श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि अच्छा आये तो है हीं चलो तुम्हारे पितासे भी मिल चलते हैं। यह सुनकर लडके ने भी अपनी सम्मति दी और कहा कि धन्यभाग ऐसा करें तो अत्यन्त ही खुशीकी बात है चलियें महाराज। तत्काल ही दोनों ग्रामको गये वहां जाते ही जब भक्तजीने महात्माजी को देखा है वह उसी समय अत्यन्त नम्र होकर उनके चरणोंमें गिरपड़ा। तथा कहने लगा कि हे दीनबन्धो कृपानिधान आपने अकस्मात् बडी कृपा करी स्वयं ही गृहपर आकर अपने मङ्गलप्रद शुभसूचक पवित्र दर्शनसे हम पापी जीवोंको पवित्र किया है अतएव अब हमारे योग्य जो सेवा हो उसकी पूर्तिके लिये आप हमको सूचित करें जिसको यथासाध्य विधिसे पूरी कर हम आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करें। तदनन्तर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि इस समय हम तुम्हारेसे कोई सेवा नहीं लेनी चाहते है किन्तु अबतो केवल हम अपने पूर्वोक्त वचनकी पूर्ति करनेके लिये ही यहां आये हैं। हा यदि कुछ दिन बीतनेपर तुम्हारे योग्य कोई कार्य उपस्थित होगा तो हम अवश्य उसके लिये तुमको सूचित कर तुम्हारी वचनपटुताकी परीक्षा लेंगे। इस समय किसी कार्य विशेषके वास्ते हम देशान्तरको जायेंगे इसी लिये अधिक निवास करना उचित नहीं समझते है अतः अब जाते हैं जगदीश करे तुम्हारा कल्याण हो, यह कहकर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी तो वहांसे प्रस्थान करगये। उधर उसी दिनसे रेवनने समस्त कार्यका परित्याग कर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीके प्रदान किये हुए मन्त्रका जप करना आरम्भ किया जिस वशात् अन्नपूर्णा प्रसन्न होकर रेवनके सम्मुख उपस्थित हुई तथा कहने लगी कि बेटा कह किस कार्यके लिये तूने मेरा आव्हान किया है। रेवन

बोला मातः! जिस वृत्तका उद्देश लेकर मैंने आपका आह्वान किया है क्या वह वस्तुतः आपसे छिपा हुआ है। किन्तु जिस समग्र विश्वव्यापी शुभ यशसे आप धवलित हुई सर्वमान्य बनी बैठी हैं और जिस अखण्ड यशसे आप बालसे वृद्ध तकके हृदयमें अपनी पूरी स्थिति जमायें हुए हैं तथा जिस दुष्प्राप्य अन्नवृद्धिरूप सिद्धिसे आप अन्नपूर्णा कहलाती हैं उसी अद्वितीय कीर्तिप्रद सिद्धिका वचन प्रदान करनेके लिये प्रसन्न होकर आप मेरे उत्कृष्ट भाग्यकी सूचना दें। यह सुनकर अन्नपूर्णा माईने, अच्छा ऐसाही होगा तू अबसे आगे जी खोलकर अन्नसम्बन्धी व्यवहार करना उसमें कभी न्यूनता नहीं आवेगी, यह कहकर स्वकीय आश्रमको प्रस्थान किया। ठीक उसी दिनसे विनाही विशेष प्रयत्नके अन्नकी वृद्धि होने लगी अतएव रेवनने अपने पिताको समझा दिया कि दीनलोगोंके लिये अन्नक्षेत्र प्रचालित करो उसमें जितना अन्न खर्च करना चाहो उतना ही करना कोठा कभी खाली नहीं होगा। अपने पुत्रका यह वचन सुनकर तथा श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीके आगमनका स्मरण कर भक्तजीको दृढ विश्वास होगया कि ऐसा होना इसकेलिये कोई बडी बात नहीं है श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीकी कृपासे प्रेरित हुआ ही पुत्र ऐसा कह रहा है सम्भव है नाथजी, जो उनका अभी आगमन हुआथा तब इसको अन्न सिद्धि विषयक कोई मन्त्र बतला गये होंगे (अस्तु) उसने स्वपुत्रके कथन मात्रसे अनेक उपयोगी जगहपर अन्नक्षेत्र प्रचालित किये जिनकेद्वारा प्रेममय भोजन प्राप्त कर अनेक दीन लोगोंका सुखमयकाल व्यतीत होने लगा अतएव क्षेत्रद्वारा अन्न पाने वाले मनुष्योंकी मुक्तकण्ठोच्चरित वाणीसे उन दोनों पिता-पुत्रोंका प्रतिदिन यश गाया जाने लगा। यही नहीं इस वृत्तकी ध्वनिने, देशान्तरों तक भी विस्तृत होकर, उनकी स्वच्छ कीर्तिको हरएक मनुष्यके हृदयमें स्थापित किया। (अस्तु) इस प्रकार जब उनके सानन्द कीर्तिमय कुछ दिन बीत गये तब एक दिन उसी नगरमें कहींसे विचरते हुए श्रीगोरक्षनाथजी भी आ पहुँचे और नगरके बाह्य स्थलमें एक सुन्दर तालावके ऊपर उन्होंने अपना आसन स्थिर किया और ज्योंही भोजनका समय आया त्योंही आप अपना भिक्षापात्र धारण कर भिक्षाके लिये नगरमें पहुँचे। बस क्या था आप ज्योंही नगरके दरवाजेपर गये त्योंही लोगोंने आपको सूचित करना आरम्भ किया कि रेवनका क्षेत्र खुला हुआ है महाराज! आप वहां जावें जैसी आपकी इच्छा होगी वैसा ही भोजन मिलेगा। गोरक्षनाथजीसे भी यह वृत्त छिपा नहीं था तथापि आप लोगोंसे पूछने लगे कि कौन रेवन है और उसको इस परोपकारके लिये किसने उत्साहित किया है जिसने इस प्रकार यहांके एवं देशान्तरके आनेवाले गरीब मनुष्योंके वास्ते इतना अनुकूल आराम कररक्खा है। यह सुन लोगोंने कहा कि रेवन एक क्षत्रियका बालक है उसने किसी महात्माके द्वारा उपलब्ध हुए मन्त्रसे अन्नपूर्णाको प्रसन्न किया है अतएव उसीकी

प्रेममयी अखिल कृपाके सकाशसे रेवन इस कृत्यमें कुशल हुआ जानपड़ता है बल्कि ऐसा ही श्रोत्र परम्परासे हमलोगोंने निश्चयात्मक समझा है। इसके अतिरिक्त जो कुछ यथार्थवृत्त है उसको आप ही जानते होंगे क्योंकि आप महात्मा हैं आप जैसे महायोगेश्वरोंको सृष्टि मात्रका वृत्त हस्तामलकी सदृश प्रत्यक्ष रहता है (अस्तु) लोगोंकी साथ इस प्रकार वार्तालाप होनेपर भी गोरक्षनाथजी रेवनके क्षेत्रमें न जाकर अन्यभक्त लोगोंके गृहसे भिक्षा ले वापिस ही लौट आये और अपने आसनपर बैठते ही आपने ऐसा मन्त्र पढ़ा जिसके वश हुए नानाप्रकारके पक्षी, और पशु, तथा मनुष्य, भी वहांपर आ उपस्थित हुए तत्काल ही श्रीगोरक्षनाथजीने अपने बटुवेसे विभूतिकी चुकटी निकाली और मन्त्रका जाप करनेके अनन्तर कुबेरका उद्देश ठहराकर वह आकाशकी ओर फेंक दी जिसका फल यह हुआ कि जो प्राणी जिस प्रकारका आहारी था वैसा ही आहार सबके आगे परोसा गया। यह देख सब जीव अपने २ उदरकी पूर्ति करने लगे और वहां एक प्रकारका बड़ा ही उत्साव जैसा होगया। बस क्याथा कतिपय क्षणमें यह वृत्तान्त समग्र नगरमें प्रसृत हुआ तत्काल ही इस वृत्तके दर्शनार्थ आनेवाले मनुष्योंका तांता लग गया। यह देख रेवनने पूछा कि आज आपलोग सब एकत्रित होकर कहां जारहे हैं। प्रत्युत्तरमें कईएक लोगोंने कहा कि क्या तुमको मालूम नहीं है जोकि सिद्ध ही क्या अद्वितीय योगेश्वर यहां आये हैं और तुमने तो दीनलोगोंके लिये ही अन्नक्षेत्र खोला है उन्होंने सब प्राणियोंके लिये जिसका जैसा आहार है वैसा ही प्रदान करना आरम्भ किया है (अस्तु) यह सुन रेवन कुछ विस्मितसा हुआ आभ्यन्तरिक भावसे विचार करने लगा कि सम्भवतः ऐसा ही होगा क्योंकि महात्माओंकी गति अपार है तथापि चलकर देखनातो चाहिये। तदनन्तर उसने भी यथेष्ट पूजार्थ सामग्री लेकर महात्माजीके दर्शन करनेके वास्ते प्रस्थान किया। जब कतिपय क्षणमें वह घटनास्थलमें पहुँचा तो देखता क्या है यथार्थ वही वार्ता है जैसी लोगोंके मुखसे श्रवण की थी (अस्तु) पहुँचते ही पूजासामग्री प्रदानपूर्वक उसने बड़े ही नम्र भावसे प्रेमके साथ गोरक्षनाथजीको प्रणाम की। पश्चात् गोरक्षनाथजीने भी कुशल वार्ता पूर्वक समस्त वृत्तान्त पूछा और कहा कि हमने सुना है तुमने बहुत मन्त्र प्राप्त किये हैं जिनकेद्वारा अन्नपूर्णा को प्रसन्न कर अटूट अन्नक्षेत्र प्रचलित किया है। रेवनने उत्तर देते हुए कहा कि महाराज! मैं किसे योग्य हूं यह सब आपलोगोंका ही प्रताप है जिससे मैं इस कृत्यमें सफलता प्राप्त करने के लिये समर्थ हुआ हूं। गोरक्षनाथजी ने कहा कि यह तो ठीक है तथापि मन्त्र दीक्षार्थ किसी महात्माको तुमने अवश्य गुरु धारण किया होगा अतएव हम चाहते हैं तुम उस महात्माके नामसे हमको परिचित करदो। रेवनने हस्तसम्पुटी कर नम्र भावसे कहा कि महाराज! आपका कहना यथार्थ है मन्त्र दीक्षा

के लिये अवश्य ही गुरु धारण करने की आवश्यकता है और मैंने भी ऐसाही किया है परन्तु जिस महानुभावके सकाशसे मैंने मन्त्र दीक्षा ली है उसके शुभाक्षरान्वित नामसे मैं भी अपरिचित हूं । हां इतना अवश्य है जिस वेषसे आप सुशोभित हैं इसी वेषसे वे सुशोभित थे । तथा अभी कुछ ही वर्ष व्यतीत हुए हैं यहां आकर उक्त महात्माजीने अपने पवित्र दर्शनद्वारा ग्रामनिवासी इन लागोंको भी पवित्र किया था । यह सुनते ही गोरक्षनाथजी सर्व वृत्तान्त जानते हुए भी फिर उससे पूछने लगे कि तुमसे कह गये हों वे महात्मा यहां कब वापिस आवेंगे । रेवनने कहा महाराज ! मुझसे उन महात्माओंने इस विषयमें भी कुछ नहीं कहा जिसको मैं आपके समक्ष प्रकट करूं । हां उनकी अब शीघ्रही लौटने की आवश्यकता है यदि आपको भ्रमण करते हुए किसी देशमें मिलजायें तो अवश्य उनको इधर आकर दर्शन देनेके लिये सूचित करना क्यों कि मैंने भी इस असाररूप संसारके व्यवहारसे ग्लानि आती है अतएव मैं उनका शिष्य बनूंगा जिससे इस संसारमें प्राप्तकिये मनुष्य शरीरका कुछ फल प्राप्त कर सकूंगा । अथवा मेरी मत्यनुसार उन महात्माओंमें और आपमें मुझे कोई विशेषता नहीं दीख पडती है अतः आपही मुझे अपना शिष्य बनालेतो बडे ही सौभाग्य की वार्ता होगी । यह सुन गोरक्षनाथजी बोले कि नहीं हमतो अपना शिष्य नहीं बना सकते हैं किन्तु तुमको पूर्ण वैराग्यका अनुभव हो चुका हो तथा उनका शिष्यत्व ग्रहण करने में तुम अपना कल्याण समझते हो तो हम उनको अधिक क्या आज ही रात्री के समय बुला सकते हैं । यह सुनकर रेवन अतीव प्रफुल्लित चित्त हुआ श्रीगोरक्षनाथजी के चरणोंमें गिरा और उसने कहा कि भगवन् ! यदि ऐसा हो सकता है तो इससे उत्तम और क्या है यह बडे ही आनन्दकी बात है आप अवश्य ऐसा ही करें ताकि मुझ इस दासको भी इस असारसंसाररूप सागरसे पार होनेका अवसर प्राप्त होजाय तदनन्तर गोरक्षनाथजीने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथजीका उद्देशकर नादकी ध्वनिकी जिससे अपनी योगसिद्धिके प्रभावसे तत्काल ही मत्स्येन्द्रनाथजी वहां आ उपस्थित हुए । उधर इस वृत्तकी सूचना रेवनके पिताको भी दे दी गई । वह प्रथम ही मत्स्येन्द्रनाथजीके द्वारा सूचित किया हुआ था अतएव इस विषयमें कुछ भी शोक न कर उसने तत्काल ही आज्ञादी कि महाराज ! आप मालिक हैं आपके कृत्यपर हमें पूरा विश्वास है आप जो भी कृत्य करना अभीष्ट समझेंगे वह निःसन्देह हमारे कल्याणार्थ ही होगा । इसकेबाद उनलोगोंको जो उस समय उपस्थित थे आशीर्वाद प्रदान कर गोरक्षनाथजी तो देशान्तर में भ्रमण करने के लिये प्रस्थान कर गये और मत्स्येन्द्रनाथजी अपने युक्ति युक्त वचनों द्वारा रेवनकी माताको, जो इस वृत्त को सुनकर कि पुत्र योगी होता है खिन्नचित्त हो गई थी, अच्छी प्रकार सन्तोषित कर स्वयं भी रेवनको साथ ले बदरिकाश्रममें पहुँचे । वहीं रेवनको भी स्वकीय-

कुण्डलादि चिन्हान्वित कर उसमें अपना शिष्यत्व आरोपित किया। और बारह वर्षकी निर्दिष्ट अवधि पर्यन्त अतिघोर तप कराकर उसको अपने आपे की सब कुञ्जी बतलादी। जिससे अपने उद्देशको समझता हुआ वह उसकी सिद्धिके लिये समर्थ हो कर मुख्य ब्रह्मानन्दरूप अमृतको पान करता हुआ इस असाररूप संसार समुद्रसे पार होनेके सौभाग्य को प्राप्त हुआ। जिसके शुभानुगन्वित रेवननाथ, इस नामसे कुछ दिन पीछे समस्त भारतमें ही क्या अन्य चीनादि देशोंमें भी वृद्धसे बाल तक कोई भी पुरुष अपरिचित न रहाथा। अस्तु) श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने रेवनको स्वशिष्य बना कर रेवननाथ, नामसे प्रसिद्ध करने के अनन्तर उसको अपनी समस्त विद्याओं में भी निपुण किया, अतएव जब श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने यह सोचलिया कि रेवननाथ अब एक अतुल्य शक्तिवाला हम जैसा ही महायोगेश्वर बन गया है तब स्वयं एकाकी देशान्तरकी गमनके लिये प्रस्थान कर रेवननाथजी को भी एकाकी भ्रमण करने के लिये सूचित किया।

इति श्री रेवननाथोत्पत्तिवर्णन नामक १७ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय १८ ॥

श्री रेवननाथजी बदरिकाश्रमसे भ्रमण करते हुए तथा योग क्रियारूप अद्वितीय औषधद्वारा निजभक्तोंको इस असत्य संसारके जटिल जालसे प्राप्त दुःखत्रयसे विमुक्त करते हुए कतिपय मासमें वापिस नर्मदासंगत रेवा नदीके तटस्थ एक तुण्डित, नामक ग्राममें पहुँचे और ग्रामके बाह्यस्थलमें एक विमल जल पूरित सुमनोहर वृक्षपंक्तियोंसे आवृत सरोवरके ऊपर वर्तमान वटके नीचे आपने आराम किया। एवं जब मध्यान्ह हो आया तब भोजनके लिये आप ग्राममें गये और हवनधूम्रसे धूपित द्वार वाले सुयोग्य गृह देखते ही अलक्ष्य शब्दकी ध्वनि करने लगे। यह देखकर गृहिणी स्त्रियोंने बडे प्रेमके साथ भोजन प्रदान किया। तदनन्तर भोजन कर फिर आप अपने आसनपर आ विराजे। बस प्रतिदिन आप इसी वृत्तिसे काम लेतेथे। अतएव उस ग्राम निवासी लोगोंकी रेवननाथजी में पूरी श्रद्धा हो गईथी। इसी लिये कुछ दिनके बाद लोगोंने बहुत ही आग्रह किया कि महाराज! आप ग्राममें जानेका परिश्रम न उठावें आपके वास्ते यही आसन पर ही भोजन आ जाया करेगा। इसी अवसरमें उन बात करने वाले मनुष्योंमें एक सरस्वतीदत्त ब्राह्मण भी था उसने सर्व लोगोंको सम्बोधन देते हुए कहा कि जबतक ये महात्माजी यहापर विराजमान रहेंगे तब तक मैं यथा शक्ति भोजनादिसे श्रद्धाके साथ इनकी सेवा करूंगा। इस विषयमें आप सब लोग निःसन्देह हो जायें। यह सुन जब सब लोगोंने इस बातको स्वीकृत कर महात्माजीसे, भी स्वकृति प्राप्त करली तब तो सरस्वतीदत्त बडी ही श्रद्धाके साथ आपकी प्रति दिन सेवा करने लगा। इसी प्रकार सेवा करते २ जब ठीक तीन ३ मास व्यतीत होगये और रेवननाथजीने ब्राह्मणकी अस्खलित सेवाकी परीक्षा कर ली तब एक दिन देशान्तर जानेके लिये उन्होंने ब्राह्मणको सूचित किया और ब्राह्मणके ठहरानेके वास्ते किये सप्रेम अत्यन्त आग्रहको अस्वीकृत कर वहांसे प्रस्थान करदेना ही उचित समझा। तदनन्तर जब ब्राह्मणने यह दृढ निश्चय करलिया कि यह महात्मा हैं किसीके बन्धनमें न रहकर स्वतन्त्र विचरते हुए जीवनमुक्तिका पूरा आनन्द लेते हैं अतएव अब मेरे आग्रहसे कुछ साध्य नहीं है. तबतो

उसने प्रार्थनाकी कि भगवन्! अच्छा यदि आपकी इच्छा है तो आप देशान्तरकी शैलके लिये प्रस्थान करना परन्तु आजतो चलते समय मुझ दासके गृहपर पधारकर वहां भोजन करते हुए अपने पवित्र चरणयुगलद्वारा गृहको भी पवित्र करते जायें; ब्राह्मणकी इस नम्र प्रार्थनाको बड़े प्रेमके साथ अङ्गीकार कर रेवननाथजी उसके गृहपर गये उधर इस उत्सवमें भाग लेनेके वास्ते सरस्वतीदत्तने अपने पार्श्ववर्त्ती स्वजातिके लोगोंको निमन्त्रण दिया कि आपलोग आज महात्माजीके प्रास्थानिक भोज्यमें सम्मिलित होवें और जैसा भोजन मेरे गृहपर बनेगा उसे सप्रेम ग्रहण करते हुए हमारे उत्सवकी शोभा बढ़ावें। यह सुनकर उन लोगोंने सरस्वतीदत्तकी बात शिरोधार्य समझकर उसको इस कार्यके लिये उत्साहित किया। बस क्या था सरस्वतीदत्तने पूरा ठाठ रोप दिया। नानाप्रकारके पक्वान और विविध प्रकारके शाक सहित रुचिकर भोजन तैयार कियेगये, जिनके बनाते २ दिनका अन्तिम प्रहर होगया (अस्तु) जिस समय रेवननाथजी भोजन करके निवृत्त हुए ठीक उस समय सायंकालका शुभ आगमन हुआही चाहता था. ठीक इसी ही अवसरमें अमोघ आशीर्वाद देकर ज्योंही श्री रेवननाथजी प्रस्थान करनेके लिये उद्यत हुए त्योंहीं सरस्वतीदत्त कतिपय ब्राह्मणोंके सहित उनके चरणोंमें गिरा और कहने लगा कि भगवन्! दिन बहुत थोड़ा रह गया है प्रस्थान करनेके बाद दिन रहते हुए किसी अग्रिम ग्राममें आप पहुँच नहीं सकते हैं। अतएव आजकी रात्री यहीं निवास करें। यद्यपि रेवननाथजीने चलनेके लिये अपना दृढ सङ्कल्प कर लिया था तथापि उनलोगोंके भक्तिपूर्वक पौनःपुनिक आग्रहके वशंगत होकर आखिर आपको ठहरना ही पड़ा। तब तो बड़ी ही प्रसन्नता के साथ एक पृथक् कमरेमें सरस्वतीदत्तने महात्माजीके वास्ते अत्युत्तमतासे शयन प्रबन्ध करदिया। और महात्माजी के आराम करने के अनन्तर सश्रद्धा मुट्ठी चापी आदिसे उनको भली प्रकार सन्तोषित किया। अतएव सरस्वतीदत्तकी अस्खलित श्रद्धामयी भक्तिने रेवननाथजी के निर्मल अन्तःकरणमें अपना अच्छा प्रभाव डाल दिया था। (अस्तु) इसके बाद रेवननाथजी सो गये। क्रमशः रात्री व्यतीत होनेलगी। जब ठीक लगभग अर्धरात्री बीतगई तब दैवगत्या सरस्वतीदत्तका पुत्र, जो कि एकही था मरगया। यह देख उसकी ब्राह्मणी अतीव क्लेशित हुई बड़े ही उच्चस्वरसे रोदन करने लगी। यहसुन झटपटाकर सरस्वतीदत्तने अपनी स्त्री को बड़ी शीघ्रताके साथ रोदन करनेसे बन्ध किया। और कह-सुनाया कि ब्राह्मणि! यह तो तुम निश्चयात्मक जानती ही हो दैवगतिके आगे किसीकी कुछ पेश नहीं जाती है अतः दैवगति वशात् मृतक हुए पुत्रके पीछे रोदन करनेसे किसी भी विशेष फलकी प्राप्ति दृष्टिगोचर नहीं आती है। किन्तु तुम्हारे इस उच्चघोषपरिणामय रोदनसे अपने गृहमें सोये हुए महात्माजीकी निद्राभङ्गपूर्वक जागृति हो गई तो महान् अनर्थ

उपस्थित हो जायेगा। क्योंकि आजतक मैंने इन महात्माकी अखण्डित सेवा की है। जिससे अपने विषयमें इनको कभी क्लेशित होना नहीं पडा है। परन्तु यदि तुम्हारे रोदन वशात् इनकी निद्रा भङ्ग हुई तो अवश्य इनको भी अपने इस दुःखमें भाग लेना पडेगा। अतः तुमको योग्य है रोदन को त्यागकर इन महात्माकी निद्रामें विघ्न उपस्थित न करो। (अस्तु) यह सुनकर ब्राह्मणी विनाही विलम्बके शान्त हो गई। क्योंकि वह पतिव्रता स्त्री थी अपने पतिके वचनकोभी ईश्वरकी तुल्य माननेवाली थी। (अस्तु) जिस समय ब्राह्मण ब्राह्मणी की ये बात हो रही थी उस समय रेवननाथजी जाग उठये। अतएव उन दोनोंकी वे बात रेवननाथजीने अच्छी तरह श्रवण की थी। इसलिये ज्योंही प्रातःकाल हुआ त्योंही रेवननाथजीने सरस्वतीदत्तसे पूछा कि रात्रीमें किसीका रोदन हमारे श्रोत्रगोचर हुआ था वह किसका रोदन था। और वह क्यों रोदन करता था इस बातका यथार्थ उत्तर देना उचित है। तबतो ब्राह्मणने कुछ भी गुप्त न रखकर रात्रीका सर्व वृत्तान्त, जिससे कि नाथजी पहले ही परिचित हो चुके थे, बतलादिया। जिसे सुनते ही रेवननाथजी सहसा बोल उठे क्या हमारे गृहमें होते हुए भी लडका मरगया! ब्राह्मणने कहा हां महाराज आप आज्ञा प्रदान करेंतो मृतक लडकेको आपके सम्मुख लाया जाय। रेवननाथजीने आज्ञा दी कि हां अवश्य ऐसा किया जाय। तबतो मृतक लडका उस जगहमें ला उपस्थित किया गया। देखते ही रेवननाथजी सहसा रक्त नेत्र हो उठे और कहने लगे कि अहो! यमराज कैसा धृष्ट है हमारे गृहपर होते समय भी उसने किञ्चित् खौफ न कर निर्दया के साथ पुत्रको अपने पञ्जोंमें दबाकर बिचारे इन भक्तोंको घोर करुणान्वित किया है (अच्छा जो हो) अब अपनी योग शक्तिका परिचय देता हुआ मैं आपलोगोंके दुःखका परिहार ही क्या आपके पुत्रको लाकर आपके सम्मुख उपस्थित करूंगा। अभी यमराजके समीप जाता हूं। परन्तु आपलोग मेरे वापिस लौटने के समय तक मेरी पूरी तरहसे श्रद्धाके साथ प्रतीक्षा करते हुए मृतकके शरीरको तादवस्थ्य रखना! जो भी कार्य सफल होता है वह विश्वासके विना नहीं होता है अतः तुम भूलना नहीं हम जाते हैं। अधिक विलम्ब करना अब उचित नहीं है! क्योंकि वहां जानेमें हमें जितना विलम्ब होगा उतना ही विलम्ब हमारी कार्यसिद्धिमें भी होना सम्भव है। अस्तु) रेवननाथजी की सम्भावनामयी प्रतिज्ञा सुन कर सरस्वतीदत्तादिको विश्वास हो गया कि अवश्य ये योगीराज हैं इनके लिये ऐसा कर दिखलाना कोई असम्भाव्य बात नहीं। अतएव मानों पुत्र आही गया हो इस प्रकार प्रसन्नचित्त होकर नाथजीके वचनमें अपनेको विश्वासित हुए की सदृश सूचित करता हुआ सरस्वतीदत्त कह उठा कि अच्छा भगवन्! ऐसा होगा तो अतीवानन्दकी बात है। क्योंकि इस लड़केसे पहले छै लड़के और भी एकवार मेरेको इस संसारमें सुखका पात्र बनाकर अपनी मृत्युद्वारा पुनः घोर दुःखमें

एकवार मेरेको इस संसारमें सुखका पात्र बनाकर अपनी मृत्युद्वारा पुनः घोर दुःखमें डालकर चलेगये हैं। यह सप्तम पुत्र था इसके सजीव रहनेके लिये मैंने अनेक बार आभ्यन्तरिक भावसे परमात्माकी प्रार्थना की थी। इसी हेतुसे मेरे कुछ विश्वास भी होगयाथा कि यह लड़का जीवित रहकर ऐहलौकिक सुखसे हमें सुखी करेगा। परन्तु हतभाग्य ऐसा होना जगदीश्वरको स्वीकृत न हुआ। और एकवार फिर हमें उसी दुःखका अनुभव करना पड़ा (अस्तु) इसके बाद रेवननाथजीने अपनी झोलीसे विभूतिकी चुकटी निकाली और मन्त्रका जाप कर भगवान् आदिनाथजीके ध्यानपूर्वक उसे अपने मस्तकपर धारण किया। और निःशङ्क होकर आप यमपुरीमें पहुँचे। वहां यमराजके प्रासादकी अन्वेषणा करनेपर आप ज्योंही प्रासादके अन्तर प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुए त्योंही प्रासादके द्वारस्थ यमराजगणोंने आपको अतीव क्रूर दृष्टिसे देख वहीं रोकदिया। और कहा कि अरे! मृत्युलोक वासी अधम मानुष! तू कैसा निर्बुद्धि निर्लज्ज पुरुष है जो अपने आपकी रक्षा न कर स्वयं ही यहां आगया है (अहो) अज्ञानकी क्या ही प्रबल महिमा है छोटेसे बड़े तक सर्व ही उत्तमाधम जीव यमपुरीको स्वप्नमें भी देखना नहीं चाहते हुए दिनरात इससे वञ्चित रहनेका ही उपाय अन्वेषित करते हैं। परन्तु इतना होनपर भी अज्ञानतराच्छादित मूढ मति यह स्वयं यहां प्रसन्न हो आ निकला। अरे! तू अब भी वापिस मृत्युलोकको लौट जाय हम यमराजको तेरी सूचना नहीं देंगे। क्योंकि अज्ञानाच्छादित होनेपर भी तू छलछिद्रसे शून्य एक भोलाभाला मनुष्य प्रतीत होता है अतएव हमलोगोंको तेरे विषयमें दया आती है। यह सुन रेवननाथजीने कहा कि हमारे आनेकी यमराजको सूचना दो क्योंकि उससे शीघ्र ही मिलकर हमें किसी विषयकी बात करनी हैं। और इस-बातको अपने हृदयसे उठा दो जो कि मृत्यलोक वासी जानकर हमको आपलोग घृणाकी दृष्टिसे देख बैठे हो। क्योंकि हमलोग योगी हैं अतएव किसी एक लोक वासी नहीं किन्तु स्वेच्छाचारी हैं तीनोंलोक ही हमारी वस्ति है हम चाहते हैं उसीमें निवास कर बैठते हैं इसमें कोई विशेष प्रमाणकी आवश्यकता नहीं हैं यदि आपलोग हमारे इस कथनको सत्य मानें तो हमारा यह प्रत्यक्ष प्रमाण जो कि हम मृत्युलोकसे यहां आकर दे चुके हैं यही बहुत है। और यदि इससे भी अधिक प्रमाणकी आवश्यकता होय तो यमराजके हमारे प्रस्तावको अस्वीकार करनेपर आपलोग स्वयं यहीं देखलेना। हम अभी कुछ न कहते हुए केवल इतना ही कहना उचित समझते हैं आपलोग शीघ्रताके साथ उसे सूचना दो। अन्यथा विवश होकर हमको ही प्रासादके अन्तर जाकर स्वयं सूचना देनी पड़गी। यह सुनते ही। उनमेंसे एक बोल उठा कि अरे! निलज्ज हमनेतो तेरे विषयमें दया प्रकट कीथी। परन्तु मालूम हुआ तू अवश्य दण्ड देने योग्य है। मृत्युलोक वासी क्षुद्रबुद्धि

मनुष्य होकर भी तू इतना अभिमान और हठकरता है कि स्वयं प्रासादमें घुसकर यमराजको सूचित करूंगा। क्या तुझको हमारी तरफसे किञ्चित् भी भय नहीं है जिससे तू ऐसा निर्भय हुआ मुखआई वार्ते लगाता है। रेवननाथजीने कहा कि तुम लोगोंकी तो कथा ही क्या है मैं तुम्होर राजासे भयकरने वाला नही हूं इतनी देर लगाकर मैंने तुमसे वार्ते इसलिये की हैं कि सहसा किसीके गृहमें घुस जाना नीति विरुद्ध है। परन्तु अब पन्दरह पलकी आज्ञा देता हूं यदि इस निर्दिष्ट समयके अन्तर्गत तुमलोग उसे सूचित नहीं करोगे तो तुम्हारा अमङ्गल कर अवश्य हम स्वयं उसे सूचित करनेके लिये तैयार हो जायेंगे। बस क्या था ज्योंहीं रेवननाथजीने अमङ्गलका नाम लिया त्योंही यमदूत सहसा अति क्रोधान्वित हुए कहने लगे अरे! दुष्ट तैयार हो अब तेरी मृत्यु निकट आनेको तैयार है। तब तो रेवननाथजीने अपनी झोलीसे विभूतिकी चुकटी निकाली। और शक्तिआकर्षण मन्त्रके साथ वह उनकी तरफ फैक दी। जिस वशात् तत्काल ही यमराज गण शक्तिहीन और जड़ीभूत होगये। ऐसा होनेपर इस घटनास्थलमें उपस्थित अन्यदर्शक लोगोंने यमराजको भी प्रासादमें जाकर इस वृत्तसे विज्ञापित किया। तबतो यमराज विस्मितमन हुआ पूछ उठा कि वह कौन और कैसा पुरुष है जिसने अपने पराक्रमद्वारा हमारे द्वारपालोंको पराजित कर जकड़ीभूत करडाला है। प्रत्युत्तरमें उन्होंने कहा कि एक मृत्युलोक वासी जैसा मानुप प्रतीत होता है तथापि उसकी अधिकतर सौन्दर्य तथा अतुल शक्तिशालिताका अनुभव कर हम निश्चयपूर्वक नहीं कहसकते हैं कि वह कोई मृत्युलोकवासी एक मनुष्य ही है वा अन्यलोकवासी कोई देव है। (अस्तु) ठीक इसी अवसरमें यमराजका एक मन्त्री कह उठा कि महाराज! यदि आपकी आज्ञा होय तो मैं इस वातका पूरीतरहसे निर्णय कर लाऊं. यह सुन आज्ञा मिली कि अच्छा शीघ्रतया वापिस आकर प्रत्युत्तर देना. बस क्या था इतना इसारा मिलते ही यममन्त्री घटनास्थलमें आया और उसने नाथजीसे समस्त वृत्तान्त पूछा। तत्काल ही उन्होंने भी अपने वृत्तसे यममन्त्रीको परिचित करदिया। ठीक उसी अवसरमें उसने वापिस आ कर यमराजको बतलाया कि वह मृत्युलोकसे आया है और अपनेको योगी कहता हुआ साथ ही यह भी कहता है कि यमराजको शीघ्र सूचना दो हमसे मिलें नहीं तो यथेष्ट कृत्यका आश्रय लिया जायेगा। यह सुनकर यमराज अतीव विस्मित हुआ आभ्यन्तरिक भावसे विचार करने लगा कि अवश्य यह कोई प्रवलशक्ति महायोगेश्वर है इसमें कोई सन्देहकी वात नहीं। क्योंकि ऐसा न होता तो द्वारपालोंको जड़ीभूत करना तो दूर रहा यहां हमारी नगरीमें उसका आना ही दुर्घट था (अस्तु) जो हो ऐसे पुरुषसे द्वेष कर बैठना अन्तमें मङ्गलप्रद नहीं दीखपड़ता है। अतएव अब प्रीति कर उसका सन्देश सुनना ही सर्वथा उचित है। इस प्रकार निश्चय

कर यमराजने आज्ञा दी कि जाओ उस महात्माको बड़ी नम्रताके साथ सप्रीति यहां बुला लाओ। तत्काल ही यमराजकी आज्ञा प्राप्तकर यम मन्त्री महात्माजीके समीप आकर प्रार्थना पूर्वक कहने लगा कि चलिये भगवन्! आपको प्रासादमें ही यमराजजीने मेरे द्वारा बुला भेजा है। यह सुनते ही सहर्ष रेवननाथजी उसके पीछे चल पड़े। ज्योंही आप यमराजके प्रासादमें गये और उनके ऊपर यमराजकी दृष्टि पड़ी त्योंही यमराजने अपना आसन छोड़ दिया। और दो चार पद आगे चलकर उसने उन्होंका स्वागत किया तथा हस्त पकड़ स्वकीय स्वर्णमय सिंहासन पर बैठाकर स्वयं नीचे बैठा हुआ अतीव नम्रताके साथ कोमल वाणीद्वारा महात्माजीसे कुशल वार्ता पूछने लगा, यह सुनकर रेवननाथजीने समस्त आद्यन्त वृत्त सुना डाला। अर्थात कहा कि जिसदिन रेवानदीके समीपवर्त्ती तुण्डित नामक ग्राममें निवास करनेवाले सरस्वतीदत्त ब्राह्मणके पुत्रको तुम ले आये थे उस दिन में भी उनके गृहमें ही ठहरा हुआ था। क्योंकि वह ब्राह्मण अत्यन्त ही श्रद्धालु और भक्ति विशिष्ट है। अतएव ऐसी दशामें मेरे उपस्थित होनेपर विचारे उस ब्राह्मणके अद्वितीय पुत्रको निर्दया के साथ गृहसे निकाल ले आना तुमको उचित नहीं था। क्यों कि मेरे विद्यमान होनेपर होनेवाले इस अनर्थका भार मेरे ऊपर ही है। द्वितीय यह भी है कि जब हमने इस प्रकारकी विद्या प्राप्त की है जो चाहें सो कर ही सकते हैं फिर उस विद्याके प्रतापद्वारा हम अपने भक्तोंका दुःख निवारण नहीं करेंगे तो हमारी वह अद्वितीय विद्या किम्प्रयोजना हो जायेगी। अतएव उसी के सकाशसे हमने यहां आकर तुमसे उस लड़केको वापिस लौटा देनेकी प्रार्थना की है। इस विषयमें यदि तुमलोग अनुकूल प्रत्युत्तर देते हुए लड़केको हमारे अर्पण करोगे तो अच्छा है नहीं तो विवश होकर हमने अपनी उस विद्यासे अवश्य कार्य लेना होगा। बस क्या था यमराजने जहां रेवननाथजी की यह दृढ़ प्रतिज्ञा श्रवण की तत्काल ही आभ्यन्तरिक भावसे निश्चय कर लिया कि अवश्य ऐसा ही हो जायतो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्यों कि यह योगी है योगीको अनेक प्रकारकी विद्या आया करती है जिसको जाननेका इन्द्रको भी सौभाग्य प्राप्त नहीं होता है, इत्यादि विचार कर यमराजने यथार्थ ही सुनाडाला। अर्थात् कहा कि भगवन्! यह कृत्य हमारे अधीन नहीं है क्योंकि आप स्वयं भी इसबातसे परिचित है हम श्री महादेवजीके भृत्य है अतः आप उनसे प्रार्थना करें यदि महादेवजी इस प्रस्तावको अङ्गीकृत करेंगे तो हम तत्काल ही उस लड़केको उसके गृहपर पहुँचा देंगे। क्योंकि हमलोगोंका केवल लाना और पहुँचा देना ही कार्य है। इसके बाद रेवननाथजी, अच्छा हम वहीं कैलासस्थ श्रीमहादेवजीके समीप जाते हैं, यह कहते हुए कैलासके सम्मुख चले और अपनी योगसिद्धि वशात् सूक्ष्म शरीर बनाकर पवनसङ्गी होगये। जिससे कतिपय क्षणमें ही श्रीमहादेवजीके द्वारपर पहुँचे।

जब ठीक भवनमें घुसने का उद्देश ठहराकर आपने द्वारके अन्दर पैर रक्खा तवतो स्थूल शरीर हुए रेवननाथजीको देखते ही श्रीमहादेवजीके द्वारपालगणोंने उनको अन्तर जानेसे रोकदिया। और अनेक प्रकारकी नम्रता युक्त प्रार्थना करनेपर भी उनको अन्तर न घुसने दिया। तवतो रेवननाथजीने सोचलिया कि नम्रतासे कार्यसिद्धिकी सम्भावना नहीं दीखपड़ती है। अतएव हमको अपने कृत्यका अवलम्बन करना ही उचित है। इसी हेतुसे उन्होंने तत्काल ही अपनी झोलीसे एक चुकटी विभूति निकाली। और शक्तिआकर्षण मन्त्रका जाप कर उसको द्वारपालोंकी ओर फैंक दिया। जिस वशात् समस्त द्वारपाल जड़ीभूत होगये। ठीक इसी अवसरपर किसी दर्शक अन्यगणने श्रीमहादेवजीसे जाकर कहा कि भगवन्! एक गन्धर्व जैसा दखिपडता है जोकि द्वारपर आ प्राप्त हुआ है और उसने समस्त द्वारपालोंको निश्चेष्ट करडाला है। अतएव आपने शीघ्रतया द्वारपालोंकी रक्षा करनी चाहिये। यह सुनते ही श्रीमहादेवजीने उनकी रक्षार्थ अष्टभैरव भेजे। ज्योंही अष्टभैरव द्वारपर आये और उन्होंने एक कृश शरीर व्यक्ति रेवननाथजीको सम्मुख खडे हुए देखा त्योंही अष्टभैरव वड़े आनन्दित हुए। तथा कहने लगे कि क्या यही व्यक्ति है जिसने द्वारपालोंको दुःखान्वित किया है। यहतो कुछ भी वस्तु नहीं है काहेंके लिये हमको यहां भेजा गया है। हमको इसके साथ युद्धकी बात करते भी लज्जा आती है। क्योंकि हमोरेंमेंसे किसी एकको भेज देते तो वही इसके होश भूलादेता। (अस्तु) जिस समय उन्होंने इस प्रकारके गर्वान्वित शब्द कहे तभी रेवननाथजीने विचार लिया कि जिन्होंको इतना अभिमान है वे कब शान्ति कर सकते हैं अतः इनको मैं ही प्रथम नतीजा दिखला देता हूं। तवतो शीघ्र ही रेवननाथजीने झोलीसे विभूति निकाली। और शक्ति आकर्षणमन्त्रका जाप करनेके अनन्तर विभूति फैंकनेसे पूर्व ही एकवार तो शान्तिके साथ समझा देना ही उचित समझकर उनसे कहा कि इस विषयमें हमारा कोई अपराध नहीं है। हमने श्रीमहादेवजीके समीप जाना चाहाथा परन्तु अनेक नम्र प्रार्थना करनेपर भी हमारी प्रार्थनाओंको तिरस्कारमय जानकर इन द्वारपालोंने हमको अन्तर जानेसे बन्ध किया। अतः हमको भी अपने कर्तव्यका विश्वास था जिस वशात् इनको जकड़ीभूत करना पड़ा है। अब रह गई आपलोगोंकी बात, यद्यपि अभीतक आपलोगोंको अपनी प्रवल शक्तिका गर्व है जिस वशात् हमको तुच्छ वस्तु वतला चुके हो तथापि हमको शान्तिके साथ सप्रेम अन्तर जाने को आज्ञा न मिलनेपर अवश्य आपलोलोंकी सांथ भी इस कृत्यको व्यवहृत कियाजायेगा। वस इत्याथा इतना सुनते ही अष्टभैरव रेवननाथजीके ऊपर टूट पड़े। उधर उन्होंने प्रथमतः ही विभूतिकी चुकटी तैयार कररक्खी थी। जिसके फैंकते ही अष्टभैरव अपने फलको प्राप्त हुए। तत्काल ही फिर किसी अन्यदर्शकने आकर श्रीमहादेवजीसे कहा कि भगवन्! उसने तो अष्टभैरवोंको

भी जड़ीभूत करडाला है नहीं जानते वह कैसा विचित्रशक्ति कोई देव है वा कौन है। यह सुन श्रीमहादेवजी बड़े विस्मित हुए विचार करने लगे कि अवश्य यह कोई योगी है। क्योंकि अष्टभैरवोंको पराजित करनेके लिये अन्य किसीकी शक्ति नहीं है। (अस्तु) आखिरको श्रीमहादेवजी वहां आये। और उन्होंने दूरसे अष्टभैरवोंको जड़ीभूत हुए पड़ा तथा श्रीरेवननाथजीको खड़ा देखा। उधरसे रेवननाथजीने भी श्रीमहादेवजीको ज्योंही सम्मुख आते हुए देखा त्योंही कुछ पद आगे चलकर उनकी साष्टाङ्गनमस्कार कर आदेश २ शब्दका उच्चारण किया तबतो स्वकीयरूप देखकर श्रीमहादेवजीने रेवननाथजीको पहिचान लिया। और कहा कि अन्तर क्यों नहीं प्रवेश किया इन विचारोंको किस वास्ते इतने कष्टका अनुभव करगया है। तब अतीव नम्रताके साथ हस्तसम्पुटी कर रेवननाथजीने कहा कि भगवन्! मैं आपके समीप ही अन्तर आनेका अभिलाषी था परन्तु अत्यन्त नम्रतायुक्त अनेक प्रार्थना करनेपर भी इनलोगोंने मेरेको अन्तर आनेके लिये आज्ञा न दी। इसीलिये मैंने इनको इनके अभिमानका फल दिखलाना पड़ा है। अन्यथा ऐसा कभी न होता। इसके बाद श्रीमहादेवजीने पूछा कि ऐसा क्या विशेष कार्य था जिससे तुमको हमारे पास आना पड़ा है। तबतो रेवननाथजीने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। और यमराजके साथ जो कुछ परामर्श हुआथा वह भी सुना डाला। यह सुनकर तत्काल ही श्रीमहादेवजी प्रसन्न होगये। और कह उठे कि अच्छा उस लड़केको अवश्य तुम्हारे अर्पण कियाजायेगा। परन्तु अब इन भैरवोंको पूर्ववत् सशक्ति करदेना चाहिये। क्योंकि ये अपनी अनभिज्ञताका फल पा चुके हैं। तबतो श्रीमहादेवजीके चरणोंमें शिर झुकाकर रेवननाथजीने अपनी झोलीमेंसे विभूति निकाली। जिसके जापपूर्वक फूंक देनेपर अष्टभैरव सचेत हुए। और श्रीमहादेवजीने उक्त लड़केको ले जानेके लिये सुभीता करदिया। तत्काल ही लड़केको लेकर रेवननाथजी तुण्डित ग्राममें पहुंचे। और आपने उसको सरस्वतीदत्तके अर्पण किया। यह देखकर उस समय सरस्वतीदत्तको तथा उसकी ब्राह्मणीको जो आनन्द प्राप्त हुआ उसकी अधिकताको या तो ईश्वर जानता होगा वा वे ही जानते होंगे। अतएव रेवननाथजीको असंख्य धन्यवाद देते हुए तथा अपने आपको अत्यन्त सौभाग्यशाली मानते हुए वे सुखसे काल व्यतीत करने लगे। उधर रेवननाथजी यह कार्य कर देशान्तरमें भ्रमण करनेके लिये प्रस्थान करगये।

इति श्रीरेवननाथ यमपुर गमन वर्णन नामक १८ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय १२ ॥

एक समय चर्पटनाथजी सानन्द बदरिकाश्रममें निवासकर रहेथे। उधरसे नारद मुनि भी उसी जगहपर आ निकले; क्योंकि चर्पटनाथजीका और नारदजीका प्रथमतः ही परस्परमें अतिगाढ स्नेह था। अतएव वे दोनों अधिक समय एकत्र रहते हुए तीर्थयात्रा किया करते थे। (अस्तु) परस्परमें नमस्कार करने के पश्चात नारदजीने कहा कि चर्पटनाथजी चलिये इसबार समस्त पृथिवी की परिक्रमा कर पीछे पाताल लोकके तीर्थोंकी यात्रा करेंगे। नारदजीका यह प्रस्ताव चर्पटनाथजीने स्वीकृत किया। और दोनों महानुभाव वहांसे गमन कर गये। एवं चारों दिशाओंके समुद्रों और तीर्थोंके स्नानकर वे कतिपय मासमें फिर बदरिकाश्रममें आये। वहांपर कुछ दिन निवास कर दोनों हीने पाताल लोककी यात्राके लिये प्रस्थान किया और कतिपय दिनमें बलिराजाके नगरमें पहुँचकर उन्होंने अपने आगमनकी सूचना दी। बलिराजाने भी सहर्ष उनका यथोचित स्वागत पूर्वक अच्छा आदर सम्मान किया। और नगरमें जो जो दर्शनीय वस्तुयेंथी उनको सबका दर्शन कराया। तथा वावन भगवानके दर्शन पूर्वक बलिराजाने उनको वहांसे विदा किया। इसके अनन्तर दोनों महानुभाव समस्त पाताल लोकमें भ्रमणकर तथा समस्त तीर्थोंका स्नान करते हुए सत्य लोकके तीर्थोंको लक्ष्य ठहराकर वहांसे सत्यलोकको प्रस्थान कर गये। आप ज्योंही सत्यलोकमें पहुँचे त्योंही वहां सहसा ब्रह्माजीसे उनका मिलाप हुआ। तत्काल ही ब्रह्माजीने चर्पटनाथजीका यथा विधि स्वागत कराया और वे उन्हें अपने सिंहासन वाले प्रासादमें ले गये। वहां चर्पटनाथजीका हस्त पकड़कर ब्रह्माजीने उनको अपने निकट ही आसन पर बैठा लिया। और कुशल वार्ता पूछने के अनन्तर सत्यलोकमें किये आगमनका निमित्त भी पूछा। ब्रह्माजीके प्रत्युत्तरमें चर्पटनाथजीने कहा कि हमारे आगमनका निमित्त आपके लोकस्थ तीर्थोंका स्नान तथा आपका दर्शन ही समझना चाहिये। यह सुन ब्रह्माजीने कहा कि बड़े ही सौभाग्यकी बात है जो आपका इस हेतु आगमन हुआ है। आप न्यूनसे न्यून पर्व पर्यन्त यहांपर निवास करें। आपको किसी भी वस्तुके लिये प्रतिकूलता उपस्थित न होगी। और पर्वके आगमन कालमें मैं स्वयं आपके साथ चलकर क्रमशः सर्व तीर्थोंका स्नान कराऊंगा।

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर नारदजीने विचार किया कि अबतो चर्पटनाथजीको कुछ दिन अवश्य यहां पर निवास करना ही पडेगा। अतः मैं तब तक यहां ठहर कर क्या करूंगा। तत्काल ही परस्परमें नमस्कार कर नारदजी वहांसे प्रस्थान कर गये। और कतिपय दिनमें वीणा बजाते हुए अमरापुरीमें इन्द्रकी सभामें पहुँचे। नारदजी ज्योंही इन्द्रकी दृष्टिका विषय हुए त्योंही इन्द्र सहसा बोल उठा कि आवो नारदजी लडाई कराने वाले। नारदजी इन्द्रका ऐसा वचन सुनकर कुछ खिन्न चित्त हुए। और क्रोधको स्फुट न करके उन्होंने इन्द्रको सूचित किया कि कुछ दिनके व्यतीत होनेपर इस वाक्यका फल दृष्टिगोचर होगा। हम तुम्हारी नगरीमें केवल दर्शनार्थ ही आये थे। उसके ऊपर यथोचित स्वागत न करके ऐसे वाक्यका प्रहार करना क्या तुम्हारे लिये सभ्यता सूचक था। अच्छा जो हुआ सो हुआ तुम अवश्य इस अनुचित भाषणके फलको प्राप्त होगे। हम ऐसा ही यत्न करके दिखलाते हैं तुम सचेत रहना। हमारा कोई दोष नहीं है हम प्रथम ही सूचित कर चुके हैं। यह कहकर नारदजी फिर चर्पटनाथजीके समीप सत्यलोकमें आ गये। उधर इन्द्रने नारदजीके वचन पर कोई विशेष दृष्टि न दी; और प्रमत्तके साथ अनेक प्रकार की क्रीडामें दत्तचित्त हुआ। उसके कुछ ही दिन व्यतीत होने मिलेथे ठीक उन्हीं दिनोंमें नारदजी भी अपने वाक्यकी सिद्धिके लिये, जो कि इन्द्रके प्रति कह आयेथे, यत्न कर चर्पटनाथजीको अमरापुरीमें लानेको उत्साहित हो रहे थे। फल यह हुआ कि नारदजीकी अनेक नम्र प्रार्थना सुनकर बार २ न चलनेका हठ करने पर भी चिरकालसे बने अपने मित्र नारदके वचन वशगत होकर चर्पटनाथजीको अमरापुरीमें जाने के लिये उत्कण्ठित होना ही पडा। अतएव कतिपय दिनमें चर्पट-नाथजीके सहित नारदजी अमरापुरीस्थ इन्द्रके बागमें पहुँचे। वहां नाना प्रकारके कुसुमोंकी सुगन्धसे सुगन्धित हुए उस बागकी अत्यन्त शोभाको देखकर चर्पटनाथजी अतीवानन्दित हुए। और कहने लगे कि नारदजी देखो कैसा अद्वितीय बाग है अत्यन्त क्लेशित भी पुरुष इसमें आकर इसके दर्शनमात्रसे ही एकबारतो अवश्य प्रफुल्लित चित्त हो सकता है देखो २ नारदजी इसमें कितने प्रकारके पुष्प और कितने प्रकारके कैसे २ सुन्दर फल लगे हुए हैं। तथा कितने प्रकारके एकसे एक विचित्र पक्षी परस्परमें अपनी २ मधुर वाणीकी ध्वनि कर रहे हैं जिसको सुनकर कौन पुरुष ऐसा है जिसका शोकाक्रान्त भी हृदय एकवार आनन्दग्रस्त न होगा। यह सुन कुछ क्षण तो नारदजी मौनताका परिचय देते रहे परन्तु जब चर्पटनाथजी फलोंकी प्रशंसा करते ही चले गये तब नारदजीने कहा कि महाराज! ऐसा क्या करते हो जो जो फल सुन्दर और मधुर दीख पडते हैं सोई तोड २ कर खावो। मैं भी खाता हूं। बस क्याथा इस प्रकार इसारा मिलनेपर चर्पटनाथजीने यथारुचि कुछ

फल खाये। उधर नारदजीने भी घाट न गुजारी उन्होंने खाये थोडे और तोड २ कर नीचे बहुत डाल दिये। क्योंकि जैसे भी हो नारदजीने तो युद्धका अवसर ही प्राप्त करना था। (अस्तु) इस प्रकार फल खा पी कर दोनों फिर कुछ कुसुम लेकर ब्रह्माजी के समीप आ गये। और वे पुष्प ब्रह्माजीके अर्पण किये। यह देखकर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। तथा पूछने लगे कि अत्यन्त ही शोभायमान और सुगन्धसे परिपूर्ण ये पुष्प कहां से लाये हो। प्रत्युत्तरमें नारद तथा चर्पटनाथजीने कहा कि अमरापुरीस्थ इन्द्रके नन्दन नामके बागसे लाये हैं। उत्तर श्रवण कर ब्रह्माजीने कुछ मन्दतासे कहा कि अच्छा किया हमको भी यही विश्वास होता था कि अमरापुरीमें ही ऐसे पुष्प होते हैं तथापि पूछ लेना ही उचित समझा अतएव हमारा अनुमान भी ठीक निकला। (अस्तु) अग्रिम दिन फिर चर्पटनाथजीको साथ लेकर नारदजी वहीं पहुँचे और पूर्व दिवसका अनुकरण कर वापिस लौट आये। यह देखकर बागके रक्षकोंमें बडी खलबली मचगई और साश्चर्य हुए वे अत्यन्त गौरताके साथ बागकी रक्षामें तत्पर हुए। तथा परस्परमें एक दूसरे को चेतावनी देने लगा कि अप्रमत्तासे रहना कोई अन्य पुरुष बागमें आकर फल फूलोंका विध्वंसकर चलाजाता है। अतः उसको पकड कर इन्द्रजीके यहां पहुँचा देंगे। जिससे उसको यथोचित दण्डमिलने पर हम कृत कृत्य हो जायेंगे। ऐसा विचार कर बाग रक्षक लोग बागके चौओर सावधान होकर बैठ गये। उधरसे नारदजी और चर्पटनाथजी भी निर्दिष्ट समयपर आ पहुँचे और अकस्मात् बागमें घुसते ही फलफूल तोडनेके लिये कटिबद्ध हुए। ये दोनों महानुभाव ज्योंही उन बाग रक्षकों की दृष्टिगोचर हुए त्योंही वे लोग दौडकर आये और सहसा उन दोनोंकी ओर टूट पडे। तथा कहने लगे कि अरे दुष्ट अपराधियो! बतलाओ तुम कहां रहते हो। धिक्कार है तुमको जो ऐसा कर्म करते हो प्रतिदिन चोरीकर अपना उदर पूर्ण करते हो। अच्छा कुछ क्षण शान्ति करो प्रतिदिवस ही फलफूल तोडकर गुप्तरूपसे भागजाते थे आज वह सब दिनका खाया पिया निकाला जायेगा। क्या तुमने अबतक हमारे स्वामी इन्द्रका नाम नही श्रवण किया था जो उसीके इस बागमें आकर चोरीकर्ममें दत्तचित्त हुए हो। यह सुनकर नारदजी तो बडी फुरती के साथ वहांसे निकल कर कुछ दूरी पर जा खडे हुए और चर्पटनाथजी वहीं खडे हुए उनकी सब बातोंका श्रवण करते रहे। परन्तु नारदजीके चलेजानेकी चर्पटनाथजीको खबर नही थी क्योंकि नारदजी पीछे खडेथे बाग रक्षकोंको आते देख चुपचाप पीछेसे सरक गयेथे, अतएव ज्योंही चर्पटनाथजीने पीछेको देखा तो नारदजी दृष्टिमें नहीं आये। तबतो चर्पटनाथजीने समझ लिया कि नारदजी सम्भवतः युद्धके भयसे ही चुप चाप प्रस्थानित हुए हैं तथापि इससे किञ्चिद् भी विचलित न होते हुए चर्पटनाथजी धैर्यके साथ स्वीयस्थानपर स्थित रहे। तथा आराम

रत्नकोंसे कहने लगे कि हमने आप लोगोंका कोई ऐसा अपराध नहीं किया है जिसके लिये आपका हमारे ऊपर ऐसे अपशब्दोंका प्रयोग करना संगत होसके। हां कुछ पुष्प ब्रह्माजी की सेवामें समर्पण करने के लिये अवश्य हमने तोडे हैं उनके विषयमें यदि अपराधी बतलाओ तो बतलाइये परन्तु हम इस बातको स्वीकृत करनेके लिये सहमत नहीं हैं क्योंकि पुष्पोंका उपयोग ही देवता तथा महान् पुरुषोंकी पूजाके लिये होना है तदनुकूल ही ब्रह्माजीके प्रसन्नार्थ हमने कुछ पुष्प तोड ही लिये तो कोई अन्यायकी बात नहीं। अतएव कोई तिरस्कार सूचक शब्द कहने की आवश्यकता नहीं है। यह सुनकर बागरत्नकोंसे रहा न गया क्योंकि इन्द्रके सेवक ही जो ठहरे। अतः बडे जोशमें आकर एक साथ बोल उठे कि अहो! देखो यह मर्त्यलौकिक मनुष्य कैसा धृष्ट है प्रतिदिन फलफूल नष्टकर अपराधी हुआ भी अपराधके विषयमें कुछ कहने सुननेको तिरस्कार समझता है। अच्छा कुछ क्षण ठहर तुझे इसका प्रतिफल देंगे यह कहते हुए सबने अपने २ शस्त्र उठाये और प्रहार करने के लिये अभिमुख हुए। यह देख चर्पटनाथजीने भी अपनी भस्मपेटीका आश्रय लेना पडा तथा उसमेंसे कुछ विभूति निकाल समन्त्र उधर प्रतिपक्षी जिधरसे वे अभिमानी शीघ्रतासे प्रहार करनेके अभिप्रायसे सम्मुखी भूत हुए थे। बस क्याथा विभूति छोडनाहीथा उससे सबके सब क्षणमात्रमें जकडी भूत हो गये जिन्हें अपने आपकी कुछभी स्मृति न रही और उनके मुखसे रुधिरकीधार प्रवाहित हो निकली। इसी अवसरपर और भी बागरक्षक जो उन्हींमें सम्मिलित न होसकेथे आये। और इनकी ऐसी दुर्दशा देखकर इन्द्रके द्वारपर पहुँचे। तथा समग्र वृत्तान्त जो कुछ बागमें हो चुकाथा उन्होंने इन्द्रको सुनाया। एवं साथ २ चर्पटनाथजीकी विचित्र शक्तिका भी उल्लेख किया जिसे श्रवण कर इन्द्रने उपेक्षाके साथ कहा कि अमुक नेताको सूचना दो कि कोई उत्पाती बागमें आया है जिसने बाग रक्षकोंको व्यथित किया है अतः कुछ सैनिकोंके सहित जाकर उसे यहां ले आवो जिससे वह उचित दण्डसे दण्डित होगा। यह आज्ञा मिलनेपर इन्द्रका कोई सेवक घटनास्थलमें आ पहुँचा। तबतक चर्पटनाथजी भी यह सोचकर कि देखें ये लोग क्या २ प्रयत्न करते हैं कौतुक देखनेके लिये वहींपर शान्त स्वभावसे स्थित थे। उन्हें देखकर इन्द्रसेवकने अपने योधाओंको आज्ञा दी कि पकड़ो २ देखो कभी कहीं भाग न जाय। यह सुनते ही पकड़ो २ मारो २ करते हुए सैनिकलोग उधर चर्पटनाथजीके बन्धनार्थ प्रधावित हुए। परन्तु विविध मानवी-लीला दिखलाने वाले चर्पटनाथजी क्या मूकों की तरह खड़ेथे उन्होंने भी फिर अपनी भस्मपेटिकासे कुछ विभूति निकालकर लक्ष्यसम्मुखीभूत कररक्खी थी अतएव वह उनकी ओर फेंक दी जिससे वे भी पूर्ववत् पृथिवीपर प्रसृत हुए अपने आपका विस्मरण कराये और उनके मुखसे रुधिर प्रवाहित हुआ। तदनन्तर कुछ समय बीतनेपर इनके जयपराजयकी

अन्वेषणार्थ इन्द्रने अपने दूत प्रेषित किये । उन्होंने जाकर देखा कि सबलोग अचेत पड़े हुए हैं यहांतक कि दूसरेको अपना वृत्तान्त सुनानेके लिये भी समर्थ नहीं हैं यह दशा देखकर वे लोग लौटकर इन्द्रके पास गये । और उन्होंने सब दृष्ट समाचारका वर्णन किया। यह सुन इन्द्र बड़ा ही कुपित हुआ । तथा उसने अपनी एक बड़ी सेना प्रेषित की और आज्ञा दी कि जावो उसे शीघ्र बान्धकर लावो । यदि कुछ क्रूरता दिखलावे तो वहीं मारडालो । इन्द्रकी यह आज्ञा मिलते ही उसकी प्रबल सेना बड़े ओजस्वी शब्द करती हुई बागमें, जहां चर्पटनाथजी विराजमान थे वहां पहुँची और उसने चक्राकार व्यूह बनाकर इस अभिप्रायसे, कभी यह भाग न जाय, चौतर्फका मार्ग अवरुद्ध किया । और इधर उधरसे वह अपने २ शस्त्रोंकी घोर वर्षाकरने लगी। इतना होनेपर भी चर्पटनाथजी उस शस्त्रवृष्टिसे किञ्चित् भी विचलित न हुए । और आपने कुछ क्षणके पश्चात् फिर पेटिकासे कुछ भस्म निकाल कर सेनाकी ओर प्रक्षिप्त की जिसके द्वारा सेनाकी वही गति हुई जो प्राथमिककी होचुकी थी । यह वृत्तान्त सुन इन्द्र और भी क्रोधान्वित हुआ । और स्वयं युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए उसने बडे २ वीर योधाओंकी एक महती सेना सजाकर युद्धार्थ रणभूमि बागमें चलनेके लिये बाजा बजवा दिया । बस क्या था कुछ क्षणमें विविधायुध धारी योधागण सज्जीकृत हुए हुंकार शब्दान्वित इन्द्रके आगे पीछे चलनेपर सहमत होगये । वे कुछ क्षणानन्तर जब बागमें पहुँचे तो इन्द्रने चर्पटनाथजीको सम्मुख खड़े देखा । और देखते ही सैनिकोंको प्रहार करनेकी आज्ञा दी । यह सुन योधालोग नानाप्रकारके अस्त्रशस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे । यह देख चर्पटनाथजीने इन्द्रको सूचित किया कि आप अपने योधाओंको शान्त करो । इनके व्यर्थ क्रोधसे कुछ साध्य नहीं है प्रत्युत इनको स्वयं अपनी हानि उठानी पड़ेगी क्योंकि इनके प्रहारसे हमारा बालतक बांका न होगा और हमको अपनी मन्त्रशक्तिसे कार्य लेना पड़ा तो निःसन्देह इन विचारोंको क्लेशित होना पड़ेगा अतः हम चाहते हैं कि आप स्वयं युद्ध कर जयपराजयका निश्चयात्मक फल अनुभवित करलें । यह सुन इन्द्रने तथास्तु कह उन सब योधाओंको एक स्थलमें खड़े रहकर स्वकीय जयपराजयकी प्रतिपालना करनेका आदेश दिया । तथा जब समस्त सैनिक लोग निर्दिष्ट जगहपर जा स्थित हुए तब इन्द्रने चर्पटनाथजीके साथ युद्ध करना आरम्भ किया और प्रथम चर्पटनाथजीको लक्ष्यकर इन्द्रने आग्नेयास्त्र प्रक्षिप्त किया यह देख नाथजीने वर्षास्त्र छोड़ा जिस वशात् इन्द्रका अस्त्र शीतल होगया और नाथजीको किञ्चित् भी क्लेशित न करसका । इसके अनन्तर इन्द्रने नागास्त्र छोडा जिसका नाथजीने गारुडास्त्रसे प्रतिरोध किया । इसी प्रकार जब इन्द्र अपने समस्त अस्त्रोंका प्रतिरोध देखकर हतोत्साह होगया तब लज्जा वशात् उसे कोई ऐसा उपाय न दीखपड़ा जिसका अवलम्बन कर अपना मुख

उज्वल करनके । अन्ततः कुछ विचारास्पद होकर वह सेनाको व्यूह भंगकर स्वीयस्थानपर चलेजानेकी आज्ञा देता हुआ स्वयं कैलासस्थ श्रीमहादेवजीकी सेवामें उपस्थित हुआ । और प्रार्थना करने लगा कि भगवन् ! जब २ अमरपुरीपर विपद आई है आपने उसका भलीप्रकार निवारण किया है अतः आपके अतिरिक्त और कोई मुझे अभीष्ट नहीं जिसके सम्मुख अपना कष्ट गायन करनके अतएव आप शीघ्र चलकर मेरा मुख उज्वल करें । यह सुन श्रीदीनबन्धु आशुतोष महादेवजीने साश्चर्य इन्द्रसे पूछा कि देवराज ! क्या बात है कैसे अधीर हुए जानपड़ते हो वह कारण तो बतलाओ क्या है जिससे तुम्हारी ऐसी अनुचित दशा हुई । अथवा असुरगणोंने ही आक्रमण कर अमरपुरी ध्वंसित करडाली क्या । महादेवजीके इस प्रत्युत्तरमें इन्द्रने कहा कि हमें दैत्यलोगोंके युद्धमें कभी इतना आश्चर्यान्वित और शोचित होना नहीं पड़ाथा जितना आधुनिक युद्धमें होनापड़ा है क्योंकि जितनी युद्धोपयोगी सामग्री हम रखते हैं दैत्योंके अधिकृत भी उससे न्यून नहीं है अतः समकोटिके युद्धमें पराजय होनेसे योधा उतना लज्जास्पद नहीं होसकता है जितना अल्पकोटिके युद्धमें पराजय होनेसे होता है। जिससे मेरा युद्ध हुआ है वह व्यक्तिमात्र है इसपर भी मार्त्यलौकिक मनुष्य जानपड़ता है जिसने कतिपय वीरोंको मूर्च्छित और ऐसा अचेत करडाला है जो पत्थर प्रतिमाकी तरह भूमिपर प्रसून है जिनके मुखसे शब्द भी नहीं निकलता है । यह सुन श्रीमहादेवजी इन्द्रके साथ अमरपुरीको प्रस्थानित होनेके लिये सहमत होगये । जो कुछ ही अवसरमें वहां पहुँचे । और इन्द्र तथा अनेक देवताओंके सहित घटनास्थलबागकी ओर अग्रसर हुए । जब कुछ क्षणके पश्चात् बागमें गये तो आपने अग्रिमस्थलस्थ सम्मुखस्थित चर्पटनाथजीको देखा । उधर चर्पटनाथजीकी दृष्टि जब सहसा महादेवजीके ऊपर पड़ी तो उन्होंने महादेवजीके चरणोंमें मानसिक नमस्कार कर इन्द्रको लक्ष्य करते हुए समन्त्र विभूति प्रक्षिप्त की जिससे इन्द्रकी भी वही दशा होगई । अर्थात उसे अपने शरीरका कुछ भी भान नहीं रहा कि मैं कौन हूं और कहांपर पड़ा हूं । यह देख समस्त देवता लोग विस्मित हुए चर्पटनाथजीके विषयमें अनेक प्रकारके प्रवाद करनेलगे । परन्तु श्रीमहादेवजीने चर्पटनाथजीको देखकर जानलियाथा कि यह मत्स्येन्द्रनाथका शिष्य चर्पटनाथ हमारा प्रशिष्य है । अतएव आप कुछ दूरीपर स्थित हुए देवता लोगोंको अपने प्रशिष्यकी विद्याओंका दिग्दर्शन करा रहेथे । श्रीमहादेवजीके इस अभिप्रायको चर्पटनाथजी भी समझ गये । और उन्होंने एक चुकटी विभूतिकी फिर छोड़ी जिसके साथ औन्मादिक मन्त्रकी योजना की गईथी इसीसे समग्र देवता अपने २ वस्त्राभरण उतार २ कर लज्जारहित हुए पारस्परिक गायन और नृत्य करने लगे। यह देख नगरमें बड़ा ही कोलाहल मचगया। और उन्मत्त लोगोंके गृहस्थ स्त्री बालक अतीव दुःखान्वित हुए। इसके अनन्तर श्रीमहादेवजीने

चर्पटनाथजीकी ओर इसारा किया जिससे वे शीघ्रताके साथ आकर उनके चरणोंमें गिरपड़े तथा सहर्ष अतीव प्रेमके साथ नम्रतायुक्त बड़े ही सुकोमल शब्दोंसे महादेवजीकी स्तुति करनेलगे। यह देख प्रसन्न होकर श्रीमहादेवजीने चर्पटनाथजीको अत्यन्त प्रेममयी वाणीसे सत्कृत किया। और आभ्यन्तारिक भावसे आनन्दित हुए चर्पटनाथजीको, तुमने मत्स्येन्द्रनाथजीका उपदेश चरितार्थ कर अपने आपको त्रैलोक्य प्रसिद्ध करडाला, यह कहते हुए धन्यवाद दिया। तथा इन्द्र आदि देवताओंको सचेत करनेकी आज्ञा दी। चर्पटनाथजीने श्रीमहादेवजीकी आज्ञाको शिरोधार्य समझकर फिर अपनी भस्म पेटिकासे विभूति निकाली और समन्त्र प्रक्षिप्त की जिससे इन्द्र तथा उसके सहकारियोंकी मूर्च्छावस्था अपहृत हुई। तदनन्तर श्रीमहादेवजीने इन्द्रको चर्पटनाथजीका परिचय सुनाया और कहा कि आप अपने चित्तमें कोई क्षोभ न करें चर्पटनाथने तुम्हें पराजित करनेकी अनुचित आकांक्षासे यह चमत्कार नहीं दिखलाया है किन्तु इसलिये कि यह योगी है योगविद्यामें इसने असीम कुशलता प्राप्त की है तथा साबरविद्याका मर्म अच्छीतरह अन्वेषित किया है अतः संसारके मोहान्धकार ग्रस्त और आलस्योपहत पुरुषोंको यह निश्चयात्मक ज्ञात होजाय कि अल्पज्ञ होता हुआ भी मनुष्य यदि कुछ पुरुषार्थ करे तो वह कहांतक अग्रसर होनेके लिये समर्थ होसकता ह अर्थात् अपनी प्रतिष्ठा और गौरवगरीमाकी सीमा कहांतक विस्तृत करसकता है, यह सुनकर इन्द्रने चर्पटनाथजीका हस्तग्रहण कर उनको अपनी छातीसे लगाया और अतीवानन्दके साथ पारस्परिक मिलाप कर दोनों ही सहर्ष श्रीमहादेवजीकी प्रशंसा करनेलगे एवं अन्य देवतालोग भी श्रीमहादेवजीकी स्तुति करते हुए अपने उस दुःखसे निवृत्त होनेके विषयमें हर्षध्वनि करनेपर उद्यत हुए और महादेवजीकी आज्ञाको प्राप्त होकर निज २ स्थानोंको प्रस्थानित होगये। केवल देवराज इन्द्र ही वहां विराजमान रहा। जब समस्त देवता चलेगये तो इन्द्रने चर्पटनाथजीकी फिर कुछ प्रशंसा की और कहा कि क्यों न हो जब आप देवोंके देव महादेवजीके प्रशिष्य हैं तो ऐसा होना आपके लिये स्वाभाविक ही है अतः मैं चाहता हूं कि जो मेरा तथा मेरे सेवकोंका इस विषयमें अपराध है उसको आप क्षमित करदें। यह सुनकर चर्पटनाथजीने कुछ हंसते हुए इन्द्रको विश्वासित किया कि निःसन्देह हमारा अभिप्राय जो श्रीमहादेवजीने बतलाया है वही है इसमें आपका वा अन्य किसीका कोई अपराध नहीं। हां यदि होसकता है तो वह भी हमारा ही है हमने नारदजीके कहनेसे बल्कि यह अनुचित किया कि ब्रह्मपुरीमें विविध प्रकारके पुष्प होनेपर भी आपकी बाटिकाके पुष्प लुञ्चित किये। अनन्तर श्रीमहादेवजीने देवराजको निज स्थानपर जानेकी आज्ञा दी। और जब पारस्परिक नमस्कारके पश्चात् इन्द्र प्रस्थानित होगया तो स्वयं चर्पटनाथजीको अभीष्ट स्थानपर जानेका परामर्श देते हुए कैलासपर

जाकर विराजमान हुए। उधर चर्पटनाथजी फिर सत्यलोकस्थ ब्रह्मपुरीमें लौटकर गये। और कुछ दिनमें पार्विक समय समीप आगया तो ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार तीर्थयात्राके लिये ब्रह्माजीके साथ प्रस्थानित हुए। इधर नारदजीने विचार किया कि सत्यलोकके तीर्थोंकी यात्रामें चर्पटनाथजीके सम्भवतः कतिपय दिन अवश्य लगेंगे अतः मेरा जबतक यहां व्यर्थ समय बीताना उचित नहीं है इसीलिये वे वहांसे गमन करगये। और वैकुण्ठादि लोकोंमें भ्रमण करते हुए एकवार फिर सुरलोकस्थ अमरपुरी इन्द्रकी नगरीमें जा उपथित हुए। ठीक उसी अवसरपर इन्द्रने, जो कि सभाके मध्यम भागमें एक रत्नकिरण भूषित उच्च सिंहासनपर विराजमान था उससे, उठकर नारदजीका सादर स्वागत किया। और अन्योन्य अभिवादनानन्तर किसी प्रसंग वशात् इन्द्रके मुखसे यह शब्द उच्चरित हुआ कि अबके हमको कुछ विपद उठानी पड़ीथी। तब हंसकर नारदजीने कहा कि सम्भवतः कोई लड़ाई करानेवाला आगया होगा। यह सुन इन्द्र कुछ लज्जित हुआ। तथा कहने लगा कि बाबा क्षमा कीजिये हमने तो पारस्परिक हास्याह्लादके उद्देशसे ऐसा कहडालाथा सो भी भविष्यमें ऐसा नहीं होगा। इसके प्रत्युत्तरार्थ नारदजीने कहा कि हमको भी उसी आपके उद्देशसे ऐसा करना पड़ा है वस्तुतः हमारा वा चर्पटनाथजीका कोई द्वेषतो आपके साथ हो ही नहीं सकता है। ऐसा-हो तो मार्त्यलौकिक मूढ लोगों और हमारे आपमें विशेषता ही क्या होसकती है अतः आप जानते ही हैं श्रीमहादेवजीके कथनानुसार हमारे जो चरित्र हैं अज्ञ लोगोंकी शिक्षार्थ हुआ करते हैं। एवं यदि चर्पटनाथ जैसे अद्भुत शक्तिशाली द्वेषाभिलाषासे किसीके साथ झगड़ा उपस्थित कर अपनी विद्यानष्ट करें तो उस विद्याकी प्राप्तिमें उनका असीम क्लेश उठाना व्यर्थ ही होजाय। इस प्रकार देवराजको आश्वासन देकर नारदजी पुनः ब्रह्मपुरीमें गये और जब ब्रह्माजीके साथ तीर्थयात्रासे निवृत्त हो चर्पटनाथजी भी आ पहुँचे तब अन्य अभीष्ट तीर्थोंकी यात्रा करते हुए मार्त्यलौकिक यात्राको लक्ष्य ठहराकर दोनोंही महानुभाव ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार वहांसे प्रस्थानित होगये, और कुछ दिनमें फिर बदरिकाश्रममें आकर निवास करने लगे।

इति श्रीचर्पटनाथ तीर्थयात्रा वर्णन नामक १९ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय २० ॥

नारदजी के इस पूर्वोक्त व्यवहारसे इन्द्र बडाही शोकाक्रान्त हुआ। और उसका चित्त इस प्रकारकी विचारणाके प्रवाहमें प्रवाहित हुआ कि अहो, इन योगी लोगोंने यह ऐसी अद्भुत विद्या कहांसे प्राप्तकी है जो किसी अन्य देव वा दैत्यके समीप नहीं देखी जाती है। अतएव ये लोग इस दुर्जय विद्यारूप शस्त्रके प्रभावसे विजयी हुए निशङ्कताके साथ तीनों लोकोंमें अप्रतिहत गतिसे विचरण करते हैं। और अपने कौतुकसे ही जिसको चाहें तिरस्कृत कर सकते हैं। इसका उदाहरण मैं स्वयं ही बन चुका हूं। अतः कोई ऐसा सदुपाय अन्वेषित किया जाय जिसके द्वारा मैं इन लोगोंके समीपसे इस विद्याको उपलब्ध कर सकूं। तत्पश्चात् एक दिन इन्द्रने अपने गुरु बृहस्पतिजीसे भी इस विषयमें परामर्श किया। बृहस्पतिजीने प्रत्युत्तरमें इन्द्रको ज्ञातकराया कि यह तो तुम स्वयं देख ही चुकेहो कि यह लोग अपार शक्तिशाली होनेके साथ २ स्वतन्त्र भी हैं। अतः इस कार्य सिद्धिके लिये उपायान्तराभावसे केवल कोई उपाय है तो सनम्रता सेवा ही हो सकता है। अतएव आप इसी उपाय द्वारा अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति के वास्ते अपने भाग्यकी परीक्षा करें। बस यह ही हमारी सम्मति है। यह सुनकर इन्द्रने फिर कहा कि आपका यह कथन सर्वथा सत्य है मुझे भी यही उपाय उचित जान पडता है। परन्तु सेवा भी किस रीतिसे और कहां पर की जाय मैं इस विषयमें सन्दिग्ध हूं। इस लिये इस विषयमें कोई निश्चय हो तो अच्छा है। यह सुनकर बृहस्पतिजीने बतलाया कि मेरी समझमें तो यह आता है कि समस्त योगियों को आप निमन्त्रण देकर अमरापुरीमें ही आहूत करें। और प्रकाशमें घोषित करदें कि आपलोग कृपया अवश्य शुभागमनसे कृतार्थ करें क्योंकि हमने दर्शन प्रसन्नार्थ समग्र योगियोंका चतुर्मासाकराने के लिये निश्चय किया है। बल्कि एक बात और करें वह यह है कि प्रसिद्ध योगिधोरेय मत्स्येन्द्रनाथादिकों के समीप एक विशेष सूचना भेजी जाय जिससे उनके आनेमें कोई सन्देह न रहजाय। गुरुजी की इस उचित सम्मतिको शिर झुकाकर अङ्गीकृत करते हुए इन्द्रने इस कार्यकी पूर्तिके लिये अपने कार्य कर्ताओंको आज्ञा देदी। जिससे शीघ्र भोजनोपकरण सञ्चित किये जाने लगे। और उक्त मन्त्रजपना

की घोषणा करदी गई। तथा अपने विश्वासी सेवकों के द्वारा मत्स्येन्द्रनाथजी, गोरक्षनाथजी, आदि बड़े २ योगियोंकी सेवामें विशेष सूचनायें प्रेषित की गई। यह समाचार उपलब्ध होतेही शनैः २ प्रसन्न चित्त अति प्रतापशाली जाज्वल्यमान शरीर कान्ति वाले दिगम्बर तपस्वी. आने लगे. इसी प्रकार कतिपय दिनोंमें समस्त इन्द्राभीष्ट महात्मा आ पहुँचे। जो एक उत्तम स्थानमें. जो प्रथमतः ही सज्जीकृत किया गयाथा. निवासित किये गये। और एक ऐसा प्रबन्ध किया गया कि जिससे प्रतिदिन प्रातःकालिक और सायंकालिक एक विशेष गोष्ठी हुआ करे। जिसके द्वारा उभय पक्षस्थ अनेक अपरिचित वार्ताओंका पारस्परिक बोध होसके। इसी क्रमसे समय व्यतीत होते हुए कितने ही दिन चले गये। परन्तु इन्द्रका यह अभिमत स्थिर नहीं हुआ कि कौन महात्माकी विशेष सेवा शुश्रूषाकर साबर विद्या प्राप्तकी जाय। अन्ततः उसने विचार विचारके अनन्तर रेवननाथजीको इस कृत्यके लिये लक्ष्य ठहराया। और तिरोभावसे उन्हींके ऊपर अधिक शुश्रूषाकी दृष्टि रखने लगा। अधिक क्या उनको इस रीतिसे प्रसादित किया कि वे इन्द्रको स्वकीय साबर विद्यारूप अद्वितीय शस्त्र प्रदान करने के लिये सहमत हो गये। और प्रकाशमें इन्द्रको यह भी कह सुनाया कि प्रकृत वार्ता प्रत्यक्षाकारमें परिणत की जाय तो और भी अच्छा है। क्योंकि आप लोगोंकी शुश्रूषाके वशीभूत हुआ मैं किसी प्रकार भी परिवर्तित तो नहीं हो सकता हूं परन्तु मुझे आशङ्का है कि कभी अन्तमें इसका फल अनुकूल न हो। और योगी लोग इस विधिको तस्करता वा. वञ्चना समझलें। रेवननाथजीकी इस सूचनापर उपेक्षारखते हुए इन्द्रने कहा कि पीछेकी बात पीछे देखीजायगी आप कार्य आरम्भ तो करें। यह सुन रेवननाथ-जीने इन्द्रके उत्पन्नतागर्भित उतावले पनको देखते हुए समझ लिया कि इसको अधीर होकर कार्य निकाल लेना ही रुचिकर है। अतएव उन्होंने विद्या प्रदान करनी प्रारम्भकी। । और कतिपय दिनमें उसे समस्त निज विद्यालङ्कारसे अलङ्कृत किया। अनन्तर जब यह कार्य समाप्त हो गया तो इन्द्रने आदानित विद्याकी पुष्टिकेलिये एक यज्ञकरना निश्चित किया। जिसका अत्यन्त समारोहके साथ वस्तु पुञ्ज एकत्रित कर आरम्भ भी करदिया गया। योग्य व्यक्तियोंको बड़े २ परितोषात्मक उपहार दिये गये। और बड़े २ आनन्दोत्सवोंके साथ पूज्य व्यक्तियोंकी अभ्यर्थना की गई। इतनेमें योगियोंका निर्दिष्ट सामयिक अवधिकाल भी आ पहुँचा। और आपलोगोंको विदा करनेकी विधि भी निश्चित करदी गई। ठीक जिस समय अनेक देवताओंके सहित उपस्थित होकर इन्द्रने सबके समक्ष इस बातको घोषित किया कि हे माननीय महात्मा पुरुषों! मैंने महात्मा रेवननाथजीके सकाशसे साबर विद्या ग्रहण की है अतः आपलोग सादर आशीर्वचन प्रदान कर मुझे इसके तत्काल फल देनेका शुभ वाक्य प्रयुक्त करें जिससे उपकृत हुआ मैं सदा आपलोगोंका यश गायन किया

करूंगा । इन्द्रकी यह क्षमता देखकर सब योगीलोग बिगड उठे । इतनेमें मत्स्येन्द्रनाथजीने इन्द्रको शाप देते हुए कहा कि हे इन्द्र ! तुमने हमलोगोंको क्या इसी अभिप्रायसे बुलाया था । अस्तु यह भी रहो यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा थी तो हमसे स्फुट क्यों नहीं कहा जिससे हम चाहते तो सानन्द साबर विद्याका प्रदान कर देते । परन्तु अब घातसे हम कहते हैं कि तेरी यह विद्या निष्फल रहेगी । यह सुनकर देवराज बडाही विचलित हुआ। और कहने लगा कि भगवन् ! खैर जो कुछ हुआ सो तो होगया परन्तु आप मेरे परिश्रम की ओर दृष्टिपात कर मुझे अनुगृहीत करें । जिससे इसशापकी निवृत्ति हो और मैं अपने अभीष्ट फलको प्राप्त हो सकूं । मत्स्येन्द्रनाथजीने इन्द्रकी इस अधीरताक्रान्त नम्रता युक्त सुकोमल अभ्यर्थनाका श्रवणकर आर्द्रीभूत चित्तकी प्रेरणासे कहा कि अच्छा द्वादश वर्ष तपश्चर्या द्वारा श्रीमहादेवजीकी अर्चना करो । और भविष्यमें किसी के साथ भी छल न करनेका निश्चय करो, और कहो कि किसीके साथ मैं छल करूं तो मेरी साबर विद्या नष्ट हो. जब ऐसा स्वीकृत करोगे तब तुम्हारा अभिलषित मनोरथ फलदाता होगा। इन्द्रने नाथजी के इस परामर्शको तथास्तु. कहते हुए शिरोधार्य समझा । और निर्दिष्ट कृत्यकी समाप्ति के उत्तर उक्त विद्याके लाभको उपब्ध हुआ । इसी प्रकार इन्द्रको प्रसन्नकर अनेक महानुभावोंने इस विद्यासे लाभ उठाया । परन्तु अन्तमें पारस्परिक छल कपटके दोषसे दूषित होकर यह विद्या नष्ट हो गई । हाय काल तेरी कैसी अगम्य गति है । जिस विद्याकी प्राप्तिमें योगाचार्यों और अनेक देवता लोगोंको अपरिमेय दुःख उठाना पडाथा आज उसका कहीं कुछ भी दिग्दर्शन नहीं होता है । सच कहा है (सर्वस्यन्य वशादगातस्मृतिपदंकालाय तस्मै नमः)

इति श्री देवराज साबर विद्या ग्रहण वर्णन नामक २० अध्याय ।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय २१ ॥

एकवार अपरिमित पुण्योपलब्ध पवित्र वस्तु योगरूप अद्वितीय औषध द्वारा जनों को दुःखत्रयसे विमुक्त करणार्थ देशाटन करते हुए श्री मत्स्येन्द्रनाथजीका और श्री गोरक्षनाथजीका किसी नगरमें शुभ समागम हो गया। और सानन्द अनेक नम्रप्रणामादिकके अनन्तर मत्स्येन्द्रनाथजीने. एकत्रित रहते हुए कुछ दिन भ्रमण करेंगे. यह आज्ञा प्रदानकी। गोरक्षनाथजीने गुरुजीकी आज्ञाको स्वीकृत करते हुए हर्ष प्रकट किया। तदनु साथ २ देशाटन करते हुए आप कुछ कालके अनन्तर राजधानी प्रयागमें जा निकले। जहां त्रिविक्रम. नामका राजा राज्य करता था। जो प्रजाको पुत्रवत् समझकर अपने आपको शास्त्रोक्त राजनैतिक विषयमें प्रसिद्ध कर चुकाथा। अतएव उसकी प्रजा भी उसे अपना प्राणप्रिय हृदयनाथ समझती थी। परन्तु जिसदिन उक्तदोनों महानुभावोंने नगरमें प्रवेश किया दैवयोग वशात् उसी दिन राजा ऐहलौकिक यात्रा समाप्त कर धर्मराजका अतिथि हो चुका था। इसी कारणसे नगरमें घोर कोलाहल और शोकका स्वराज्य दिखलाई दे रहा था! तथा नगरका बाजार बन्ध होनेके साथ २ अन्य दैनिक-अनेक व्यापार बन्ध थे। और कहीं भी चार मनुष्य खडे हुए आनन्द क्रीडामें सँलग्न नहीं दीख पडते थे। ठीक ऐसी ही दशामें नगरमें प्रविष्ट होते ही आपलोगोंने नगरवासियोंसे इस बातका मर्म जानना चाहा। जब लोगोंने उक्त घटनाका उनको अच्छी तरह परिचय दिया तब दोनों महानुभाव राजप्रासादकी ओर अग्रेसर हुए। वहां जानेपर देखातो प्रासादमें राणियोंका अतिकरुणामय हृदय विदारक क्रन्दन हो रहा है। जिसको सुनकर पत्थर हृदय भी करुणासे द्रवीभूत हो जाता था। अतएव, उस दुःखा क्रान्तराणियोंके रोदनने श्री गोरक्षनाथजीके हृदयपर बडा ही प्रभाव डाला। जिससे दयार्द्रीभूत हुए उन्होंने गुरुजीसे अनुरोध किया कि स्वामिन्! आप इन, राज मृत्यु दुःखरूप वज्रपाताक्रान्त प्राणियोंकी रक्षा करें। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजी बोले कि दुःख सुख तो सबके छायाकी तरह साथ ही लगा रहता है। अतः कहीं कभी दुःख अनुभवित करना पडता है तो कहीं कभी सुखका भी अवसर आताही है। फिर केवल दुःखको देखकर ही मनुष्यको सहसा अधीर

हो जाना उचित नहीं है। इसपर भी खैर पथ्यभङ्गतादिसे जायमान शारीरिक अन्य दुःखों की तो निवृत्ति भी हो सकती है। जिसके लिये अनेक ऋषि महर्षियोंने स्वनिर्मित ग्रन्थोंमें विविध औषधोंका उद्घाटन किया है। परन्तु मृत्युरूप दुःख ऐसा नहीं जिसके ऊपर उनमें की कोई औषधि आक्रमण कर उसका परिहार करसके। क्योंकि मृत्यु केवल ईश्वरीय आज्ञानुसार ही हुआ करता है। अतएव वह आज्ञा कोई अवरुद्ध नहीं कर सकता है। यह सुनकर कुछ हंसते हुए गोरक्षनाथजीने कहा कि स्वामिन्! आपका कहना सत्य है पर आपका कथन केवल उन पुरुषोंके विषयमें है जो स्वयं इस दुःखसे नहीं मुक्त हुए हों न कि अपने ऊपर। अतः मुझे विश्वास है कि आप चाहें तो वैसा भी कर सकते हैं। बल्कि आपतो कर ही सकते है यदि मुझे आज्ञा होतो मैं कर दिखला सकता हूं। परन्तु आपके समक्ष मेरा ऐसा करना अनुचित और सूर्यको प्रदीप दिखलाने के तुल्य है। मत्स्येन्द्रनाथजीने उक्त बात इसी लिये कही थी कि देखें हमारे शिष्यका हमारे में कहांतक विश्वास है! अतः गोरक्षनाथजीकी उपरोक्तवाणीको सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजी विश्वसित और प्रसन्न हो गये। इसी लिये हंसते हुए कहने लगे कि अच्छा तू बोल फिर क्या चाहता है। इसको सजीव करें वा और कुछ। तब गोरक्षनाथजीने प्रसन्न चित्तसे कहा कि क्या आप नहीं जानते हैं इस राजाके कोई पुत्र भी नहीं है। इसी लिये राजकर्मचारी आमात्यलोग घोर संकटमें हैं कि किसे राजासिंहासनपर बैठाना चाहिये। तथा इसी कारणसे राणियोंके मर्मभेदी क्रन्दनसे प्रासाद गूंजारित हो रहा है। जिसने मुझे अत्यन्त क्लेशित करडाला है। अतएव मैं चाहता हूं कि आप राजाके इस मृतकशवमें प्रविष्ट होकर इन लोगोंका दुःख दूर करें। और पुत्र प्राप्तिके अनन्तर राज्यकार्य ठीक सञ्चालित कर पश्चात् इसी कलेवरमें लौट आवें। इससे आपका अत्यन्त उपकार होगा। क्योंकि आपका तो देशमें भ्रमण ही इस उपकारार्थ है। यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजीने तथास्तु कहते हुए इस कृत्यके अनुकूल कोई ऐकान्तिक शुभस्थानकी अन्वेषणा करनेके लिये वहांसे प्रस्थान किया। और कतिपय क्षणमें आप नगरसे वाह्यस्थलस्थ एक महादेवजीके मन्दिरमें गये। जो राजकीय मन्दिर था जिसमें प्रतिअवसरपर राजा और उसका अन्तःपुर भी दर्शन करनेके लिये आताथा। बस उक्त कृत्यके योग्य उन्होंने इसी स्थानको यथोचित समझा। क्योंकि उसमें एक दुर्भेद्यगुहा भी थी। अतएव श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीने श्रीगोरक्षनाथजीसे कहा कि हम द्वादश वर्ष पर्यन्त की अवधि रखते हैं। अतः उस अवधितक हमारे इस शरीरकी गुप्त रक्षार्थ यह गुहा विशेष उपयोगी होगी। इसीमें हमारे शवको रखना कभी इसका परिवर्तन न करना। बल्कि शरीरको उचित रीतिसे संशोधित कर इस गुहाका द्वार बन्द करदेना। परन्तु प्रथम आवश्यकता इस बातकी है कि

मन्दिरका पूजारी जो यह एक ब्राह्मण है इसको बुलाकर इस गोप्यरहस्यसे सावधान करदिया जाना चाहिये । क्योंकि इस रहस्यज्ञाता तुमसे अन्य किसीको इसकी जानकारी हुई तो कुछ अनर्थ उपस्थित होनेकी आशंका है। गुरुजीके ये वाक्य सुनकर गोरक्षनाथजीने उस ब्राह्मण पूजारीको ऐकान्तिक स्थलस्थ मत्स्येन्द्रनाथजीके समीप ला उपस्थित किया । जिससे उन्होंने ब्राह्मणको स्वकीय मतानुकूल कर स्वचिन्तित वृत्तसे अवगतित किया । यहांतक कि उसको भयानक वचनोंद्वारा यह भी भीति दिखला दी गई कि तुम्हारे सम्बन्धसे यदि यह बात स्फुट होगई तो यह हमारा शिष्य गोरक्षनाथ बहुत ही अद्भुतशक्ति रखता है तुमको सकुटुम्ब भस्मीभूत कर डालेगा । यह सुन ब्राह्मणमें इतना साहस कहां था कि वह इस कार्यमें अपनी उपेक्षा प्रकट करता । अतः उसने इस कृत्यको गुप्त रखनेका पूरा नियम कर उन्होंको विश्वास दिलाया कि मैं कभी ऐसा उद्योग करनेको प्रस्तुत नहीं होऊंगा जिसके द्वारा आपके इस शुभ कार्यमें कोई किसी तरहकी बाधा उपस्थित हो सके हां अवश्यम्भावी आकस्मिक दैवघटनाके विषयमें मैं क्या कह सकता हूं । ब्राह्मणकी इस प्रतिज्ञापर विश्वसित होकर उन्होंने अपना कार्य आरम्भ किया। अर्थात् श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीन उक्त गुहामें प्रविष्ट होकर समाधिस्थ अवस्थाकी शरण ली । और उस शरीरसे पृथक् हो मृतक राजा त्रिविक्रमके देहमें प्रवेश किया । बस क्या था तत्काल ही राजासाहिब खड़े होगये । और देखने लगे तो उसका कल्पित विमान श्मशानभूमिमें रक्खा हुआ है। जिसके दग्धकरणार्थ एक सुयोग्य चिता तैयार की जारही है । और उसके चौतरफ अनेक राजकर्मचारी शोकाक्रान्त हुए नीची ग्रीवा किये बैठे हैं । तथा कुछ ही दूरीपर स्थित राजाका अन्तःपुर अपने करुणामय मर्म भेदी क्रन्दनसे और भी लोगोंके दुःखान्वित हृदयोंको-अधीर कर रहा है। यह देख राजा सब वृत्तान्तको जानते हुए भी. जनताको जिससे कोई सन्देह न होजाय, इसलिये पूछउठे कि "अहो" यह क्या बात है। आप समस्त लोग यहां क्यों आये हैं। और मुझे क्यों यहां श्मशानोंमें ला कर डाला है । तथा ये राणियां क्यों विलाप कररही हैं। यह अनहोनी अपूर्व विचित्र घटना देखकर प्रथमतो लोग कुछ विस्मित हुए । परन्तु शीघ्रताके साथ उस आश्चर्यताको छोड प्रसन्न मुख हुए राजाके प्रश्नोंका प्रत्युत्तर देनेके लिये प्रस्तुत होगये । और उन्होंने कहा कि महाराज ! आप स्वर्गवास करगयेथे इसलिये. तथा आपके कोई पुत्र नहीं हुआथा अतः इस विशेष चिन्तासे दुःखी हुए कि अब हमलोग अपना शिरताज किसको बनावेंगे, रोदन करते हुए आपके इस नश्वर शरीरका अग्निसंस्कार करनेके निमित्त यहां लायेथे । परन्तु हमलोगोंका बड़ा ही सौभाग्य है जो आपने फिर हमारे दुःखाक्रान्त अश्रुप्लावित नेत्रोंको शुष्क करतेहुए शोकाग्निसे दग्ध हृदयोंको सुशान्त किया । इस वृत्तके श्रवण करनेपर राजाने नगरमें चलनेकी आज्ञा दी

जिससे एक और सुन्दर विमान तैयार किया गया। और बड़े उत्सवसे राजाकी असवारी निकाली गई। नगरमें अनेक प्रकारके नृत्य गायन होने लगे। और क्षुधार्तोको तथा योग्य व्यक्तियोंको विविध प्रकारके अन्नादि दान दिये गये। बहुत क्या प्रत्येक गली और घरमें आनन्द मनाया गया। एवं सैनिक लोगोंको तथा अन्य राजकर्मचारियोंको यथोचित पुरस्कार भी दियेगये। तदनन्तर राजाने एक सभा कर यज्ञ करना निश्चय किया। जो उपस्थित सदस्योंने सर्वथा उचित कार्य बतलाकर अङ्गीकृत किया। और उसके साधन एकत्रित करनेकी आज्ञाके विषयमें प्रार्थना की। राजाने आज्ञा देदी। अतः शीघ्रतासे राजकीय लोग सामग्री सञ्चित करने लगे। जिससे कुछ दिनोंमें ही यज्ञका आरम्भ हुआ। और सकुशल समाप्त भी हो गया। जिसके समाप्त होने पर्यन्त राजाको एक पुत्र भी उपलब्ध हुआ जिससे और भी आनन्दोत्सव मनाया गया। और प्रतिदिन राजकार्य बड़ी ही कुशलता के साथ सञ्चालित होने लगा। उधर गोरक्षनाथ जीने गुरुजी की आज्ञानुसार मत्स्येन्द्रनाथजीके शरीरको निश्चिन्त औषधोंसे संस्कृत कर गुहाकाद्वार बन्ध करानेके अनन्तर कुछ दिन वहांपर निवास किया। परन्तु जब यह विश्वास होगया की अवश्य यहां कोई बाधा नहीं दीख पड़ती है तब वे अब यहां इतने दिन व्यर्थ व्यतीत करनेसे क्या साध्य है इसलिये अवधिसे पहले तो देशाटन कर किसी मुमुक्षु को संसारानलसे शान्त करके अपने इस चिन्ह धारण के उत्तरदायित्व को हल करना कहीं उचित है. यह विचार कर भ्रमणके लिये देशान्तरको चले गये। जिन्होंने गोदावरी नदीके तटस्थ स्थलमें भ्रमण करते २ धामा नगरके माणिक, नामके पुरुषको अपनी ओर आकर्षित करते हुए, जिसका आगे वर्णन आवेगा. अन्य मुमुक्षु जनोंको भी सांसारिक विपज्जालसे विमुक्त किया। इसी प्रकार एकादश वर्ष व्यतीत हो गये। उधर इस अवाधिनक महाराजा त्रिविक्रमका भी राजकार्यक्रम अत्यन्त ही कुशलताके साथ अतिक्रमित हुआ। परन्तु इसी अवसरपर एक आकस्मिक दुर्घटना उपस्थित हुई वह यह थी कि उक्त गुप्त वृत्तान्तकी एक ब्राह्मणीको, जो पुजारी ब्राह्मणकी पत्नीथी. मालूम हो गई। और वह जब कभी राजप्रासादमें कोई उत्सव होता था उस समय प्रधान राणीके संघमें क्रीडार्थ भी जाया आया करती थी। अतः एक दिन ऐसा ही कोई उत्सव उपस्थित हुआ जिसमें अपने प्रचलित नियमानुसार वह ब्राह्मणी भी प्रधान राणीके प्रासादमें पहुँची और विविध नृत्य गायन खेलकूदके समय जब राणी अत्यन्त विह्वल हो रही थी उस समय राणीको इस प्रकार आनन्दमें निमग्न देखकर उसे उक्त वृत्तान्तका स्मरण आ गया। तथा वह अपने चित्तमें कल्पनायें करने लगी कि अहो, मत्स्येन्द्रनाथजीकी अवधिमें केवल एक वर्षके अनुमान अवशिष्ट रहा है अतः हमारी राजराणी को अब यह आनन्द अधिक दिन अनुभवित करना न होगा। बल्कि

अधिक क्या वह इस दुःखद वृत्तको आगेके लिये गुप्त रखनेको अशक्य हो गई और प्रेमज दुःखग्रस्त जलनेत्र हुई अधीरतासे कह उठी कि हे राणी ! कुछ दिन इस सांसारिक सुखका अनुभव और करले अब यह अधिक दिन तेरे हस्तगत न रहेगा जीवन पर्यन्तके लिये इसका तुझसे वियोग होने वाला है ! यह सुनकर राणीका सब आनन्द न जानें कहां का कहां चला गया वह अतसुग्ध हुई विस्मयके साथ बोली कि सहचारिणि ! आज तुमने अकस्मात् यह क्या कहडाला तुम कुछ सचेत हो या नहीं। कहो क्रीडानन्दमें मग्न हो अज्ञात तासे ऐसा विपरीत भाषण कर रही हो वा अप्रमत्तताके साथ जानकारीसे। बतलाओर क्या बात है। प्रत्युत्तरमें एकबारगी आत्मगी कुछ भीति ग्रस्त हुई जिह्वा संकुचित करने लगी और उक्त कथन को उसने इधर उधरकी वार्ताओंमें मिश्रित करना चाहा। परन्तु राणीको उसका निर्णय किये बिना शान्ति कहा हो सकती थी अतएव उसके सत्यताके विषयमें अनेकबार अनुरोध करनेपर आत्मगीने विवश होकर जैसाका तैसा ही समस्त वृत्तान्त बतला दिया जिसके श्रवण मात्रसे राणी मूर्च्छित हो गई। पर विविध औषधोपचारके अनन्तर जब वह लब्धसंज्ञा हुई तो उसने उस आत्मगीके सहित सब सहचारिणी तथा दासियोंकी एक गुप्त मण्डली तैयार की और सबके सम्मुख कह सुनाया कि इस बातकी. जिसका कि हम निश्चय करेंगी. किसी द्वारा भी राजाको वा अन्यराज कर्मचारीको सूचना हो गई तो उसका कुटुम्ब पाशबद्ध किया जायगा अतः चिन्तित मन्त्रकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करना। हम मत्स्येन्द्र-नाथ योगीका शरीर जो अमुक मन्दिरकी गुहामें रक्खा हुआ है जिसे रक्षित कर वह हमारे पतिराजाके मृतक देहमें प्रविष्ट हुआ है उस शरीरको वहांसे निकालकर गुप्त रीतिद्वारा किसी ऐसी जगहपर प्रक्षिप्त करावेंगे जिससे वह शरीर योग्य न रहे और वह उसमें फिर प्रवेश न करसके। राणीका यह प्रस्ताव सबने शिरनमन पूर्वक स्वीकृत करलिया। तदनन्तर राणीने स्वमतानुकूल ही राजकर्मचारियोंको इस कार्यके लिये आज्ञा दी जिन्होंने बड़े ही तिरोभावसे इस कार्यको पूरा किया। अर्थात् श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीके गुहास्थ शरीरको बहिर निकालकर खण्डशःकर डालनेकेबाद जब वे उसको किसी एकान्तिक गुप्तस्थानमें छिपानेके वास्ते उद्यत हुए तब आकाशवाणी हुई कि हे कैलासनाथ! आपके मन्दिरमें अनर्थ हुआ है आप मत्स्येन्द्रनाथके शरीरकी रक्षा करो। इसके अनन्तर मन्दिरसे यह आवाज आई कि शान्त हो धीर धरो रक्षा की जाती है। बस जहां यह कथन समाप्त हुआ उधरसे श्रीमहादेवजी द्वारा प्रेरित हुई चतुर्भुजा भगवती चामुण्डा प्रकट होगई जो श्रीमहादेवजीकी आज्ञानुसार मत्स्येन्द्रनाथजीके शवको कैलासमें लेगई और उसने वीरभद्रसे महादेवजीकी आज्ञाको कह सुनाया कि यह वस्तु तुमको बड़ी सावधानीके साथ रक्षित रखनी होगी क्योंकि यह उनके पुत्र और शिष्य मत्स्येन्द्रनाथका शरीर है। यह वृत्त जानकर वीरभद्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ

और साभिमान कहने लगा कि अहो. शत्रु अनायाससे ही मारागया जिसे अपनी शक्तिका अत्यन्त अहंकार था और जिसने मुझे भी पराजित कियाथा। अतः अबतो सहजमें ही झगडा पार हुआ और कोई ऐसा है ही नहीं जो इस शरीरको मुझसे बलपूर्वक छीन लेगा। इत्यादि वाक्योंद्वारा अपना आनन्द प्रमोद प्रकट कर वीरभद्रने देवीको विदा किया। उधर देवीने भी वीरभद्रके उक्ताभिमानगर्भित समस्त वचन श्रीमहादेवजीके सम्मुख कथन कर स्वस्थानका मार्ग लिया। ठीक इसी अवसरपर एक दिन देशाटन करते हुए गोरक्षनाथजीने विचार किया कि निर्दिष्ट समय समीप आ पहुँचा है अतः प्रयाग चलकर गुरुजीके गुहास्थ शरीरको देखें उसका क्या हाल है। तदनु जब भ्रमण करते २ कुछ दिनमें आप वहां आ उपस्थित हुए हैं तब ब्राह्मणोंने हस्तसम्पुटी कर बड़े ही नम्र वचनोंसे उनको सूचित किया कि ऐसा २ वृत्तान्त गुजरा है आपकी इच्छा है जो चाहेंसो करें हमको कृपादृष्टिमें रक्खें या क्रोधज शापसे भस्मीभूत करें। परं मैं यह कहे बिना नहीं रहूंगा कि मैंने आपकी आज्ञा पालन करनेमें कोई त्रुटि नहीं रक्खी है तो भी जो कुछ दुःखदवृत्त होचुका है वह केवल दैवघटना समझनी चाहिये। यह सुन गोरक्षनाथजी एकवार तो अत्यन्त ही क्रोधित हुए और कहने लगे कि अच्छा तुम्हारा दोष नहीं है तो राणीको सहित सहचारियोंके भस्मसात् करूंगा परं फिर विचार किया कि नहीं राणी हमारी माता है उसने गुरुजीको अत्यन्तानन्द दिया है अतः वह ऐसे कृत्यका आखेट करनेके योग्य नहीं है। इसके अनन्तर स्वयं समाधिस्थ हुए ध्यानपूर्वक आप गुरुजीके शरीरको देखने लगे तो उन्हें मालूम हुआ कि वह कैलासस्थ वीरभद्रके अधीनस्थ है। यह जान ऐसा विचार कर. कि गुरुजीके शरीरको लाकर फिर मन्त्रोपचारद्वार वैसा ही बना लूंगा, उन्होंने वहांसे कैलासको प्रस्थान किया। और प्रथम महादेवजीकी सेवामें उपस्थित हो आदेशात्मक प्रणामके अनन्तर प्रकृतप्रस्ताव भी किया। यह सुनते ही महादेवजीने शरीरको लेजानेकी आज्ञा दी परन्तु साथ ही चामुण्डा सूचित अहंकार पूर्ण वीरभद्रके वचनोंको भी सुना डाला। और उन्होंने इसारेद्वारा आपको समझादिया कि सम्भवतः पूर्ववृत्तका स्मरण कर वह शरीर प्रदान करनेमें कुछ टालमटोल करेगा अतः उसे इसका उचित फल प्रदानकर जितलादेना कि ऐसे साभिमान व्यर्थ वाक्य कहनेसे ऐसा ही पुरस्कार मिला करता है। महादेवजीके इस आदेशको प्राप्तकर गोरक्षनाथजी उस स्थानमें गये जहां मत्स्येन्द्रनाथजीका खण्डकृत शव रक्खाथा। और अपने सहायक गणोंके सहित वीरभद्र उसकी रक्षाके लिये विराजमान था। कुछ क्षणमें ही आपने वहां उपस्थित हो आदेश २ की ध्वनि की। और अपना अभिप्राय वीरभद्रसे कहा। यहसुन उसके रक्तनेत्र हो गये। और उसने स्पष्ट कहदिया मैं मत्स्येन्द्रनाथके देहको नहीं दूंगा।

क्योंकि इसने मेरा तिरस्कार कियाथा। यह सुनकर गोरक्षनाथजीने उत्तर दिया कि यहतो ठीक है इन्होंने अवश्य तुमको युद्धमें पराजितकर तुम्हारा तिरस्कार किया था यह मुझसे छिपा नहीं है। परन्तु इस कृत्यसे तुम, मैं अपना बदला चुका रहा हूं, यह समझते हो तो तुम्हारी भूल है। कारणकि शरीरको न देनेसे वीरभद्रने अपना बदला चुकाया यह तो कोईभी कहनेको प्रस्तुत नहीं होगा। प्रत्युत इसमें तुम्हारी हानि है। अतः आवश्यकता इसी बातकी है कि इस विषयमें आप हस्तक्षेप न करें। यह देह मृत्तिका की तुल्य जड है। इसके ऊपर अधिकार कर वैर निर्यातित करना आपका अपनेको हास्यास्पद बनाना है। गोरक्षनाथजीके इस कथनपर उसने कुछ ध्यान नहीं दिया। देता भी कैसे वह जानता ही था कि मत्स्येन्द्रनाथको सँजीवनी विद्या आतीथी वही उसने अपने शिष्य गोरक्षनाथको शिखला रक्खी है। अतः उसके द्वारा यह मत्स्येन्द्रनाथको फिर सजीव कर डालेगा। जिससे एक तिरस्कार मूर्ति प्रबल शत्रु संसारसे गया हुआ फिर सम्मुख छातीपर आखड़ा होगा। तदनन्तर गोरक्षनाथजीने लक्षणोंसे जानलिया कि यह स्वमतानुकूल होना दुष्कर है। अतएव स्थिति जटिलरूप धारण करने वाली है। तबतो उन्होंको अधिक वादविवाद करना रुचिकर न समझकर स्पष्ट कहना पडा कि यातो शरीर समर्पित करदो नहीं तो समझलो जबतो पराजयमें ही गुजर गई थी अबकेवार शारीरिक कष्ट भी उठाना पड़ेगा। यह सुन वीरभद्रने इस बातका अभिमत किया कि अच्छा ऐसा होने दीजिये तभी आपको शरीर मिल सकेगा अन्यथा नहीं। परन्तु यह न समझना कि मत्स्येन्द्रनाथने हमको पराजित किया तो मैं भी करलूंगा। अतः कुछ सोच विचारकर कार्यारम्भ करना। क्योंकि हम अधिक संख्यक हैं तुम एक व्यक्ति मात्र हो। और परापर शक्तिका निरीक्षण कर किसी के साथ वैमनस्य करना ही बुद्धि मत्ता है। इसके प्रत्युत्तरार्थ गोरक्षनाथजीने कहा कि मुझे दुःख है जो कुछ तुमने कहा उन बातोंको मैं तो अपने हृदयमें स्थान दे रहा हूं परन्तु कहने वाले तुम नहीं दे रहे हो। ऐसा न होता तो कहिये आपको ही मेरी शक्तिका क्या निश्चय है कि मैं कितना शक्तिशाली हूं। तथा इस बातका आपको क्या निश्चय है कि युद्धमें मैं ही पराजित हूंगा। यह सुन वीरभद्रने खुले शब्दोंमें कहडाला कि जो हो हमारा निश्चय सत्य हो वा असत्य हो हम अपने चिन्तित मनोरथकी रक्षा अवश्य करेंगे। अतः आपकी कामना युद्धके लिये हो तो कीजिये। इस स्पष्ट घोषणाके अनन्तर युद्धारम्भ हुआ। जिसमें गोरक्षनाथजी नें कुछ विभूति मन्त्रोपचारके साथ वीरभद्रके गणोंको लक्ष्यकर प्रक्षिप्त की। जिसके द्वारा समस्त सहचारी मूर्च्छित हुए। और वीरभद्र एकाकी खड़ा रह गया। ठीक उसी अवसरमें गोरक्षनाथजीने उच्चस्वरसे वीरभद्रको ललकारा। तथा कहा कि आप जो अपने सहायकों की ओर देख अपनी शक्तिको अधिक मान बैठेथे वह शक्ति बेकार है। जिसके द्वारा आपको कोई सहायता नहीं मिल सकती है।

अतः अब हम दोनों ही स्वपक्षमें एक व्यक्ति मात्र हैं जिससे यह सहजमें ही मालूम हो सकेगा कि कौन अधिक शक्ति वाला है और किसकी जय पराजय हुई। आइये आगे हस्त बढ़ाइये अपने अमोघसे अमोघ शस्त्रको व्यवहृत की जिये। यह देख एक बारतो वीरभद्र कुछ शंकित मन हुआ। परं फिर, यद्यपि लक्षणोंसे जानपड़ता है कि फिर मुझे ही पराजित होकर लज्जित होना पड़ेगा तथापि आरम्भमें ही ऐसा मानकर हताश होना बुद्धिमान नहीं है, यह विचारकर शीघ्र युद्धके लिये ताल ठोककर खड़ा हो गया। उधर गोरक्षनाथजी भी तैयार ही खड़ेथे। जिन्होंने आज्ञा दी कि प्रथम मल्ल युद्ध करना चाहिये। अनन्तर जब इसमें सफलता प्राप्त न हो तो और विधिसे करना। अर्थात् तुम्हारी इच्छापर ही निर्भ रहै तुम चाहो जैसा युद्ध कर सकते हो। तुम कोई भी प्रकार अवशिष्ट न छोड़ना। ठीक तदनुसार ही मल्ल युद्ध होना आरम्भ हुआ। जिसे कतिपय दिन बीत गये परं वीरभद्रका मनोरथ सफली भूत न होने पाया। अन्तको स्वानुकूल आस्त्रिक युद्ध होने लगा। जिसमें वीरभद्रने प्रथम अपने वायवीय अस्त्रको प्रहत किया। जिसके उत्तरमें गोरक्षनाथजीने वायु शमनास्त्र छोड़ा। जिसद्वारा वह उत्पात शान्त हुआ जो वीरभद्रके उक्तास्त्रसे हुआ था। अर्थात् उसके वायवीयास्त्रसे बड़े २ वृक्ष तथा पर्वत की शिलायें उखड़ २ कर अनेक छोटे २ कन्दरास्थ वृक्षोंको नष्टभ्रष्ट कर रही थीं। जिसके इस आकस्मिक घोरकष्टसे आरण्य जीव त्रस्त हुए इधर उधर दौड़ रहे थे। अब उसकी शान्ति हुई। तदनन्तर वीरभद्रने आग्नेयास्त्र छोड़ा। जिसके प्रकोपसे समस्त प्राणी खिन्नचित्त हो उठे। और तृण वृक्षा दि भस्म होने लगे। इसके ऊपर गोरक्षनाथजीने वर्षास्त्र प्रक्षिप्त किया। जिससे सन्तप्तस्थावर जंगमको शान्ति मिली। इस अस्त्रको भी बेकाम देखकर वीरभद्रने नागास्त्र छोड़ा। जिससे अनेक सर्प विद्युतवत् जिह्वाओंको लपलपाते हुए गोरक्षनाथजी के सम्मुख इस प्रकार प्रधावित हो रहेथे मानों एकवार ही ग्रासकर जायेंगे। यह देख गोरक्षनाथजीने गरुडास्त्र छोड़ा। जिसने समस्त सर्प समूहको इस प्रकार संकुचित किया जैसे कूर्म अपने प्रसारित अङ्गोंको करलेता है। इसी क्रमसे जो २ अस्त्र वीरभद्रने छोड़े उन २ का गोरक्षनाथजीने बड़ी कुशलताके साथ प्रत्युत्तर दिया अतएव जब निरस्त्र होकर उसे कुछ भी उपायान्तर नहीं स्मृत हुआ तबतो उसने महादेवजीकी शरणमें जाना चाहा। परन्तु यह गोरक्षनाथजी ने भी समझ लिया और श्रीमहादेवजीके इसारे के अनुसार वह कार्य करना भी उचित समझा। अतएव उन्होंने समन्त्र कुछ विभूति उसको लक्ष्यकर प्रक्षिप्तकी। जिससे उसकी भी उसके सहायकों जैसी दशा हुई। तदनन्तर यह समाचार श्रीमहादेवजीके पास पहुँचा जिसका श्रवणकर वीरभद्रको सन्तोषित करने के लिये तथा उनका विवाद निवारण करने के लिये श्रीमहादेवजी वहां आये। और गोरक्षनाथजी की अद्भुत शक्तिके विषयकी प्रशंसा

करने लगे । एवं उन्होंने उनके द्वारा वीरभद्र और उसके सहायकों को सचेत कराया । तथा वीरभद्रकी प्रसंशा भी की । एवं इसबातपर उन्होंने विशेष जोर दिया कि प्रत्येक समय प्रत्येक व्यक्तिको इस बातका स्मरण करना चाहिये कि कभी अहंकारका कोई शब्द न कहे । यद्यपि यह सत्य है कि तुम गोरक्षनाथसे किसी प्रकार न्यून कोटिमें नहीं हो तो भी तुम्हारा पराजय क्यों हुआ इसका क्या कारण है वह यही है कि तुमने अभिमान किया अहंकार किया कि अब अन्य कौन ऐसा है जो मुझसे बल पूर्वक शरीरको छीन ले जाय । अतः उसीका फल स्वरूप यह पराजय है. इस प्रकार कहकर मत्स्येन्द्रनाथजीका शरीर दिला दिया । जिससे महादेवजीको आदेशात्मक नमस्कार कर गोरक्षनाथजी गुरुजी के शरीरको लेकर प्रयागराजमें आये । और मन्त्र तथा औषधोपचारद्वारा आपने शरीरको ठीक किया। इतनेमें द्वादश वर्षकी निर्दिष्ट अवधि भी आ पहुँची । तत्काल ही राजाने प्रकट रूपसे उसवार्ताकी घोषणा करदी । जिससे बड़ाही विस्मयान्वित कोलाहल तथा उत्सव उपस्थित हुआ । और मत्स्येन्द्रनाथजीके उक्त शरीरमें प्रवेश करते ही राजकीय शरीर मृतक हो गया उसका बड़ेही आनन्दके साथ शास्त्रोक्त विधिसे अग्निसंस्कार तथा उसकी अन्तिम क्रियाभी की गई । और एकादशवर्षीय राजकुमार, जिसका नाम धर्मराय था, राज सिंहासनाभिषिक्त किया गया । जिसको शिर झुकाकर प्रजाने सहर्ष स्वीकृत किया जिसने राज नैतिक ज्ञान और प्रजा वत्सलतामें पिताको भी न्यून कर डाला था ।

इति श्री मत्स्येन्द्रनाथ त्रिविक्रमराज शरीरप्रवेशकरण वर्णन नामक २१ अध्याय ।

अनुवादक—चन्द्रनाथयोगी

॥ अध्याय २२ ॥

अपने शिष्य गोरक्षनाथकी प्रेरणानुसार उक्तकार्य पूरा कर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी देशाटन के लिये प्रयागराजसे प्रस्थानित हुए। और उन्होंने निश्चय किया कि किसी ऐकान्तिक निरपाय पवित्र स्थान पर चलकर कुछ दिन समाधिस्थ हो ब्रह्मरन्ध्रसे अधःपाती अमृत विन्दुके आस्वादनानन्दका अनुभव करेंगे। इसी विचारसे ग्राम २ नगर २ भ्रमण करते हुए आप गोदावरी नदीके तटस्थ प्रदेशमें आये। तब गोरक्षनाथजीने प्रार्थना की कि भगवन्! इसी प्रान्तमें एक धामा नामक ग्राम है। जिसमें माणिक नामका एक भक्त है। वह बड़ा ही साधुसेवक तथा मुमुक्षु पुरुष है। जिसको मै कुछ प्रसाद, जब आप प्रयागमें शरीरान्तर प्रविष्ट हुए उस समयके भ्रमणमें, देगयाथा। अतः अब देखना चाहिये उसका क्या समाचार है। यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजीने उसे ग्रामकी ओर चलनेकी आज्ञा दी। और दो चार दिनमें भ्रमण करते एवं जनोंको अपने दिव्यदर्शन तथा अमृतमय सारगर्भित उपदेशात्मक वचनोंसे अतीवानान्दित करते हुए इसी धामा नामक नगरमें आ उपस्थित हुए। और माणिकके विषयमें उन्होंने ग्राम्यलोगोंसे वार्तालाप किया। प्रत्युत्तरार्थ लोगोंने कहा कि महाराज! कतिपय वर्ष वीत गये वह तो प्रमत्त होगया है। आपलोगों जैसा ही एक साधु यहां आयाथा जिसके साथ उसका कुछ पारस्परिक आलाप हुआथा। तत्पश्चात् नहीं जानते उसके क्या हुआ क्या नहीं उसकी जैसी दशा है वह घोर कठिन और भयानक है। हमलोगोंने इस अवस्थामें आजपर्यन्त किसी मनुष्यको नहीं देखा है। प्रारम्भमें तो वह अपने समस्त वस्त्रादि वस्तु सञ्चय की गठड़ी बनाकर शिर धारण किये हुए सप्ताहतक एक जगहपर स्थित रहता हुआ अलक्ष्य शब्दकी ध्वनि करता रहा। उसकी यह गति देखकर उसके अखिल कौटुम्बिक लोग तथा अन्य हम ग्रामीण लोग बड़े ही विस्मित हुए। और उसको ग्राममें लानेके लिये बाध्य कियागया। परं उसको एक जगहसे दूसरी जगहपर लानेका हमारा निरोध करना व्यर्थ ही था। क्योंकि उसका दैवगति वशात् पदक्रम होना बन्ध होगयाथा। यह देख हमलोगोंके आश्चर्यकी सीमा और भी अधिक बढ गई। और सब हस्तमर्दन करने

लगे कि अब इसकी क्या दशा होगी। तदनन्तर उसको जंगलसे ग्राममें ले जानेके विषयमें निराश होकर हमने उसको बैठनेके लिये कहा। परन्तु वह बैठनेमें भी कृत्यकार्य न हुआ। निरन्तर हस्तसम्पुटी किये अलक्ष्य शद्बकी घोषणा करता था। इस प्रकार इसके दुःखसे दुःखित कुटुम्बी लोगोंने बड़े २ ज्योतिषी पण्डितोंसे इस विषयमें परामर्श किया। एवं उन द्वारा बतलाई गई विधिके अनुसार यथा शक्तिदान पुण्य भी किया परन्तु उनका सब प्रयत्न निष्फल हुआ। यहांतक कि वह किसीका दिया हुआ भोजन भी नहीं खाताथा। और वायु वेगसे उड्डीयमान हुए वृक्षोंके शुष्क पत्ते, जो उसके वशंगत होतेथे, उन्हींको खा कर शरीरयात्राकी पूर्ति करताथा। अनन्तर जब समाहपूर्ण होगया तो उसका शारीरिक बन्धन खुला। और शिर धरी गठड़ीको वहीं डालकर ग्राममें न जाता हुआ जंगलमें ही इधर उधर भ्रमण करता रहा। क्षुधा लगनेपर वृक्षपत्तोंसे वा तृणसे ही उसकी निवृत्ति करलेताथा और कोई मनुष्य उसके साथ वार्तालाप करनेकी इच्छा प्रकट करता तो वह उसको कुछ भी प्रत्युत्तर न देताथा। यदि वह मनुष्य अधिक वार्ताओंसे उसको बाधित करता तो वह उस जगहसे भाग जाताथा। उसकी यह दशा देखकर लोगोंने भी आखिर पीछा छोड़ दिया। इसके बाद कतिपय दिन तक तो उसने ऐसी ही दशामें व्यतीत किये परन्तु जब उसको भी इस बातका निश्चय होगया कि अब मुझे कोई क्लेशित नहीं करेगा तबतो उसने एक ही जगहपर स्थित होकर तप करना आरम्भ किया। जो वाय्वाहारी हुआ आजतक उसी अवस्थामें है। जिसके दर्शनार्थ सुदूरवर्ती भी लोग आकर उसके विषयमें श्रद्धा प्रकट करते हुए उसे और उसके जन्मदाता माता पिताको हृदयसे असंख्य धन्यवाद देते हैं। एवं इस ग्रामवासी हमलोग भी उसे अपना शिरताज समझते हुए नित्य प्रातःकाल उसके चरणारविन्दमें नमस्कार किया करते हैं। क्योंकि हमको अत्यन्त प्रसन्नता और गौरव है कि हमारा ग्राम भी एक उत्तम तथा पवित्र ग्राम है। जिसने एक ऐसे अलौकिक विचित्र तपस्वीको अपनेमें उत्पन्न होनेके लिये स्थान दिया है जिसके पुण्योपलब्ध पवित्र और घोर तपने बहु संख्यक लोगोंकी अनुचित विषयान्धकारमें प्रसुप्त आत्माओंको जागृत करडाला है। एवं पुरातन तपस्वियोंकी गाथा सुनकर जो लोग एतादृश घोर तपको असम्भावीतथा कल्पित और स्वप्नेकी बातें कहाकरते थे उनकी आँखोंमें अपना तादृश घोर तपरूप अञ्जन लगाकर 'उनको दिखला दिया कि अरे! पामर जीवो असत्य अनुचित सांसारिक निस्सार जटिलजालमें बद्ध हुए तथा कर्तव्याकर्तव्य विमूढ हुए तुमलोग जैसा कुछ समझ बैठे हो वैसा नहीं है। किन्तु जो कुछ आप्त पुरुषोंने कहा वा शास्त्रोंमे लिखा है सब सत्य है। अतः किसीको इस संसारके व्यर्थ अस्थायी माया कृत्यसे कुछ ग्लानि होगई हो और इसी लिये वह मनुष्ययोनि प्राप्त करनेके

मुख्योद्देशको प्राप्त करनेमें प्रयत्नलीन होरहा हो तो आगे बढे मेरा अनुकरण करे । ग्राम्य लोगोंकी यह बात सुन मत्स्येन्द्रनाथजी आभ्यन्तरिक भावसे उसके ऊपर बड़े ही प्रसन्न हुए । और लोगोंके कथनपर कृतज्ञता प्रकट करते हुए उनको सूचित करने लगे कि वह पूर्वजन्मका मुमुक्षु तथा तपस्वी पुरुष है अतएव उसको इधर आकर्षित किया गया है । और उसको इधर आकर्षित कर इस दशामें प्राप्त करने वाला वह योगी यह हमारा शिष्य गोरक्षनाथ है जिसको आपलोग उसके साथ वार्तालाप करने वाला कह रहे हो । बस क्या था मत्स्येन्द्रनाथजी जहां इतना कहकर शान्त हुए उधर उनलोगोंने गोरक्षनाथजी तथा मत्स्येन्द्रनाथजीके चरणोंमें गिरना आरम्भ किया । और अनेक नम्र वचनोंद्वारा माणिकके आरम्भित वृत्तके पूछनेकी प्रार्थना की । यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजीकी आज्ञानुसार गोरक्षनाथजीने कहा कि गुरुजीके कथनानुसार वह शुभ संस्कारी पुरुष है । परन्तु प्रकृति देवीके नियमानुसार इस व्यावहारिक चक्रमें पतित होकर वह विस्मृत संस्कार होगयाथा । इसी लिये मैं उसको इस सांसारिक चक्रसे निकाल कर अभिलषित मार्गपर पहुँचानेकी इच्छासे यहां आया और उसके घर जाकर उसके कुटुम्बियोंसे पूछताछ करनेपर मालूम हुआ कि वह कृषिकर्म करनेके लिये क्षेत्रमें गया है । कुछ क्षणमें ग्रामसे भोजनकी निवृत्तिके अनन्तर मैं भी वहीं पहुँचा क्योंकि हमलोगोंका कार्य ही भवरूप सागरमें निमज्जनोन्मज्जन करते हुए मुमुक्षुजनोंको बहिर निकालकर उनको शुभ मार्गपर लगादेना है । अतएव मैं जब कृषिकर्मरत लोगोंसे माणिकका क्षेत्र पूछता हुआ उसके पास उपस्थित हुआ तब उसने मुझे योगी समझकर नम्र नमस्कार की । परन्तु मैंने उसके साथ कुछ क्षण अधिक वार्तालाप करना निश्चय कर उससे कहा कि भक्त मैं तो क्षुधासे पीडित हूं। यदि कुछ तुम्हारे समीप है तो दीजिये जिससे क्षुधा शान्त होजाय । यह सुनकर उसने निर्विकल्पतासे कहा कि महाराज ! आइये बैठिये मेरे पास रोटी रक्खी हैं जो मैं प्रातःकाल जब घरसे आयाथा साथ ले आया था जिनमेंसे कुछ तो मुझ आपके दासने अपने व्यवहारमें लाई और कुछ अवशिष्ट हैं । यदि आज्ञा है तो मैं आपकी सेवामें उपस्थित करता हूं लीजिये । यह देख मैंने भी सादर तथा भक्ति सहित समर्पण करते हुए जानकर उनके लेनेके लिये आगे हस्त बढाया । और मुझे उसका स्वभाव तथा उसकी भक्ति देखनेकी आन्तरिक अभिलाषा भी थी इसीलिये जब उसने मुझे रोटी देदी तब मैंने उनमेंसे कुछ ग्रास खाकर उसके सम्मुख ही वे रोटी कुत्तेके आगे डाल दी । और उससे कहा कि अब क्षुधा निवृत्त होगई कुछ जल और पिलादो उसने शीघ्र ही कूपसे, जो समीपमें वर्तमान था, शीतल जल लाकर मुझे पिलाया । अर्थात् अधिक क्या जबतक मैं वहांपर स्थित रहा तबतक मेरी शुश्रूषाके लिये वह हस्त बान्धकर खड़ा रहा। यह देख मुझे बड़ी प्रसन्नता

हुई। अतएव मैंने वहांसे प्रस्थान करनेकी तैयारी करते हुए कहा कि मैं तुमसे बड़ा ही प्रसन्न हुआ हूं। तुम्हारे इस विनम्रसीधे सादेस्वभाव तथा भक्तिने हमारा चित्त आकर्षित करालिया है। इसी लिये जो अभीष्ट हो धन जनादि, जिससे ऐहलौकिक जीवनके आनन्दका अनुभव कर सको, मांग लो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करनेको समर्थ हूं। प्रत्युत्तरमें उसने कहा कि महाराज! द्वारपर आये आप जैसे महानुभावोंकी सेवा शुश्रुषा करनेके लिये रुक्खा सूका टुकड़ा परमात्माने अच्छा प्रदान कियाहुआ है। जिसकेद्वारा गार्हस्थ्य धर्मका निर्वाहन चलेजाता है। अतः धनादिकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। परं यदि आप सचमुच प्रसन्न हुए हों तो ऐहलौकिक सुखको जाने दीजिये मुझे उस सुखकी अभिलाषा है जिस सुखसे सुखी हुए आप औरोंको सुखी बनानेके वास्ते देशाटन करते हो। यह सुन मुझे जो जाननाथा उसका उसने स्वयं प्रादुर्भाव करदिया। इसी लिये मैंने उसके ऊपर कृपा की और कुछ विभूति उसके मस्तकपर लगादी जिसके प्रभावसे उसको अपने पूर्वकृत कार्यका स्मरण हो आया। ठीक उसी समयमें उसने सांसारिक मिथ्या प्रपञ्चको हार्दिक तिलाञ्जलि देकर स्वकीय आगममार्ग स्वच्छ करनेकी अभिलाषासे ईश्वराराधन करना ही सर्वथा उचित समझा। इसी लिये उसकी वर्तमान अवस्था हुई है। गोरक्षनाथजीकी यह बात सुनकर लोगोंकी माणिकके विषयमें और भी अधिक श्रद्धा उत्पन्न हुई! और उनके निश्चय होगया कि ठीक यह हमारा श्रद्धास्पद पूर्वजन्मसे ही नहीं इस जन्मसे भी अद्वितीय तपस्वी तथा प्रतापशाली पुरुष है। तदनु ग्रामीण लोगोंके साथ पारस्परिक वार्तालाप कर लोगोंके निर्दिष्ट मार्गानुसार दोनों महानुभाव उस स्थानपर पहुँचे जहां माणिक तप कर रहाथा। उधर जब माणिककी दृष्टि स्वाभिमुख आते हुए उनके ऊपर पड़ी तबतो उसने आभ्यन्तरिक भावसे आनन्दित होकर अपने मन हीं मनमें दोनोंके प्रति भक्ति प्रकट करते हुए मानासिक नमस्कार की। परन्तु वह अपने स्वरूपाकारमें शिथिल न हुआ। क्योंकि वह जानताथा कि योगक्रियाका बड़ा ही महत्त्व है इस क्रियामें सँलग्न हुआ योगी सम्मुख आये ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गुरु, तकको शारीरिक सत्कार नहीं दे सकता है। क्योंकि क्रिया भङ्ग होजानेपर अधःपातकी आशंका है। ठीक यह ही विचार कर मत्स्येन्द्रनाथजी तथा गोरक्षनाथजीको उसने मानसिक नमस्कार किया। इतनेमें उनकी भी दृष्टि माणिकके ऊपर पड़ी और उन्होंने देखा कि यह तो अतीव घोर तपमें सँलग्न है क्योंकि वह अन्य खाद्य वस्तुओंको तिलाञ्जलि देकर केवल पवनाहारी होगया था। अतएव उसकी अस्थि त्वचा ही शेष जान पड़ती थी। शरीर शुष्क होकर पिञ्जरकी उपमामें परिणत होगया था जिसका अवलोकन कर वज्र हृदय वाले पापीसे पापी पुरुषका भी हृदय करुणामें परिपूर्ण हो द्रवीभूत होजाताथा; अतएव दर्शक पुरुष अपने मिथ्याभिमान और अहंकारको छोड़ कर

हार्दिक भावसे यह कहनेके लिये बाध्य होताथा कि धन्य हो तपस्वीको गर्भमें धारण करने वाली मातः ! तुम धन्य हो। ऐसे विचित्र पवित्र अलभ्य अद्वितीय पुत्र रत्नको जन्म देकर अपने गर्भस्थानको पवित्र करने वाली मातः ! तुम धन्य हो। ऐसे पुत्र रत्नको उत्पन्न कर तुम केवल हमारे श्रद्धास्पद माणिकजीकी माता नहीं इस प्रान्त अथवा देश मात्रके जनसमुदायकी माता बनी हो। अतः आपको तथा आपके इस वीरपुत्र तपस्वीको हमारा बार २ हार्दिक नत नमस्कार है। (अस्तु) इस प्रकारकी अमोद दशा देखकर मुमुक्षु जनोंद्धारक करुणार्द्र हृदय श्री मत्स्येन्द्रनाथजीने गोरक्षनाथजीकी ओर इशारा करते हुए कहा कि अब इसको इस दशासे विमुक्त कर स्वाकारमें परिणित करो। गुरुजीकी यह आज्ञा प्राप्त होते ही गोरक्षनाथजीने उसको स्वारम्भन क्रियासे मुक्त कराकर उसमें अपना शिष्यत्व आरोपित किया। और उसको गुरुजीकी आज्ञानुसार कुण्डलादि स्वचिन्हान्वित कर द्वादश वर्ष पर्यन्त फिर तप करानेके लिये एक दिन गुरु मत्स्येन्द्रनाथजीसे परामर्श किया। प्रत्युत्तरमें उन्होंने कहा कि अभी कुछ दिन और भी शान्त रहना चाहिये ; क्योंकि अभी इसका शरीर इतना सबल नहीं हुआ है जिससे उस अवधितक पहुंच सके। वस्तुतः मेरी सम्मतिके अनुसार तो अब इतने समयतक तप करानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अतः कुछ दिनकी तपस्याके अनन्तर जबतक यह उपयोगी विद्यामें निपुण होसके तबतक इसको अपने समीप रखकर विद्या शिखलानेमें पूरी सहायता देना। हम यहांसे भ्रमण करते हुए बङ्गदेशकी ओर जायेंगे। तुम बदरिकाश्रममें जाओ और इस कार्यके पूरा करनेमें जितनी शीघ्रता होसके करना। तदनन्तर इसको एकाकी भ्रमण कर मुमुक्षुजनोद्धारमें तत्पर हो. यह उपदेश देकर स्वयं हमारे समीप आ जाना। क्योंकि पूर्व निश्चित किया गया समाधिस्थ होनेका विचार अवश्य पूरा करना है। यह सुन गुरुजीके चरणारविन्दमें आदेश २ कर श्रीगोरक्षनाथजी तथा शिष्य वहांसे प्रस्थानित हुए। और देशाटन करते तथा माणिकनाथको अपने अनेक अपरिमित वृत्तोंसे परिचित करते हुए कुछ दिनमें बदरिकाश्रममें जा पहुँचे। वहां जानेपर हठ विद्यादि अनेक विद्याओंका परिचय देकर उसको फिर कुछ दिन तप करने के लिये उत्साहित किया। अनन्तर श्रीगोरक्षनाथजी की आज्ञानुसार कुछ दिन एक पदाश्रित हो तप करने पर जब उसका शरीर दृढ साध्य हो गया तथा अन्य भोजनादि की आवश्यकता न रख कर वह केवल वायु द्वारा ही शरीरयात्रा निर्वाहित करने लगा तब उसको अपने वचनोंसे दृढ कर अपनी अनावश्यकता समझाते हुए गोरक्षनाथजी वहांसे अन्यत्र चले गये। माणिकनाथके तपकी अवधि उन्होंने केवल पांच वर्षकी रक्खी थी अतएव यह समय उन्होंने पर्वतीय बडे २ दिगम्बर तपस्वी ऋषिमुनि योगियों की पारस्परिक गोष्ठीमें व्यतीत किया। और निमिषारण्यादि अनेक स्थानोंमें विचरते तथा

योगोपदेश करते २ जब यह अवधि समीप आई तब गोरक्षनाथजीने भी उधर प्रस्थान किया। और कुछ दिनके अनन्तर आप माणिकनाथके पास आये। जब आपने यह देखा कि हमारा शिष्य ठीक उसी हमारी निर्दिष्ट विधिके अनुसार अटल खड़ा हुआ गुरु आज्ञाके घोर कठिन नियम को रक्षित कर गुरुभक्ति तथा ईश्वर भक्तिकी पराकाष्ठाका प्रदर्शन पूर्वक अपने महत्व तथा इच्छाभिलाषित्वका परिचय दे रहा है तबतो श्रीनाथजी हार्दिकभावसे आत्यन्तिक प्रसन्न हुए। और उसको उस अवस्थासे विमोचित कर स्वकीय आज्ञा पूर्ण कर दिखलाने के विषयमें अनेक मधुर वचनों द्वारा सन्तोषित करण पूर्वक धैर्यान्वित तथा सुखान्वित किया। यह देख माणिकनाथने अपने गुरु देवको बार २ आदेश करते हुए हर्ष प्रकट कर अपना अहो भाग्य समझा। और गोरक्षनाथजीका ऐसा नैरीक्ष स्वाभाविक जनोद्धारक तत्परतात्मक प्रेम, तथा हित, अवलोकित कर अपने श्रद्धान्वित पवित्र हृदयसे निस्सरित मधुर वाणीद्वारा उनकी स्तुति की। इसके पश्चात् गोरक्षनाथजीने उसको अनेक आणविद्या तथा साबर विद्याओंका तत्व समझाया। और जब यह निश्चय होगया कि अब इसमें कोई त्रुटि नहीं रहगई है तब एकाकी विचरण कर जनोंको योगोपदेशदानार्थ कटिबद्ध हो जाय, यह आज्ञा सुनाकर स्वगुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथजी को लक्ष्य ठहरा कर उस जगहसे गमन किया।

इति श्री माणिकनाथोत्पत्ति वर्णन नामक २२ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय २३ ॥

श्रीमद् योगेन्द्र गोरक्षनाथजीके विमल कमलोपम हृदयात्मक स्थानमें स्वकीय अद्भुत शक्तिके विश्वासका तथा गुरुभक्तिका अपरिमित अटल साम्राज्यथा। अतएव वे देशाटन करते एवं जनोंको अधःपाती कुत्सित कृत्योंसे निर्विण्ण कराते हुए कतिपय दिनोंमें गुरुजीके चरणारविन्दकी सेवाके लिये उपस्थित हुए। उधर निर्दिष्ट समयपर पार्श्ववर्ती हुआ देख मत्स्येन्द्रनाथजी अपने शिष्यकी प्रसंशा करते हुए कहने लगे कि गोरक्षनाथ! तुमने अपने अवश्यम्भावी योग्य गुणों तथा भक्तिद्वारा हमारे महत्वात्मक अहंकारको तिरस्कृत करडाला है। अतएव पात्रगुण प्रकर्षतासे आरोप करताके गुणान्वोपहित हो जाते हैं तुमने इस किम्वदन्ति प्रवादको वास्तविक कर दिखलाकर इसको मिथ्यात्मक प्रतिपादित करने वालोंको सचेत होनेका अवसर प्रदान किया है। यह सुन कुछ मुस्कराते हुए गोरक्षनाथजी बोले कि स्वामिन्! यह सब आपकी ही अतीव हितोपहित स्वात्म प्रयोजन शून्य स्वाभाविक महती उच्चाभिलाषाका फल है। क्योंकि आप गुरु हैं और सच्चे गुरु हैं आपको अपने लिये किसी भी बात की आवश्यकता नहीं अतः जो कुछ करते धरते हो सब हम लोगोंके अनागत, कण्टकाच्छादित दुर्गमन, मार्गको स्वच्छ करने के लिये ही किया करते हो। वस्तुतः होना भी ऐसा ही चाहिये कोई भी शिक्षक अपने शिष्यको निजकर्तव्यमें अधिक निपुण वा अपने से भी प्रबल देखना चाहता हो तो कुछ दिनके स्वार्थसे उस विचारे के मार्गको दूषित न करे। अर्थात् निःस्वार्थान्वित हुआ उसमें प्रथम उन्नता भिलाषित्व आरोपितकर उसके गौरवगरीमारूढ सीमा तक धावा करनेमें अपनेसे जो कुछ साहाय्य बनसके उसको उठा न रखना चाहिये। परं इसके विपरीत स्वार्थान्ध गुरु, उस पर भी नरकोत्पादक कुत्सित स्वार्थान्धगुरु, वा यदि यह मुझसे कुछ अधिक क्रिया कुशल हुआ तो फिर मैं अप्रतिष्ठित होजाऊगा. ऐसे असभ्य विचार वाला गुरु, कभी अपने शिष्यको स्वकर्म चातुर्यान्वित नहीं कर सकता है। बल्कि ऐसा विचार करनेवाले गुरु मेरी समझमें तो भूल रहे ही नहीं अत्यन्त भूल रहे हैं। क्योंकि शिष्यका प्रभावशाली न होना गुरुकी न्यून शक्ति तथा मन्द बुद्धिका सूचक है। अतएव उक्त विचार ग्रस्तगुरु गुरु शब्द प्रयोगके योग्य नहीं होसकते हैं। परन्तु आप वैसे नहीं हैं

जो. मुझे अपने सदृश बनानेमें, कुछ दुष्ट स्वार्थ हुए हों। फिर क्यों ऐसा हो जो आपकी आज्ञाकी उपेक्षा करनेके लिये मैं उत्सुक होसकूं। प्रत्युत मैंतो आपको अपना सर्वस्व समझता हूं यदि आप चाहें तो इस विषयमें मुझे कभी परीक्षित करसकते हैं। इत्यादि वचन सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजी और भी प्रसन्नचित्त हुए। और समाधिस्थ होनेके लिये स्वाभरोचक क्रियोपयोगी निरपायस्थानकी अन्वेषणाका उद्देश कर वहांसे प्रस्थानित हुए। बंगालसे भ्रमण करते २ शनैः २ बड़े दीर्घमार्गको पार कर जब उक्त दोनों महानुभाव कतिपय दिनोंमें गिरनार नामक पर्वतपर पहुँचे तब सर्व क्रियोपयोगी स्वेच्छानुकूल स्थान देखकर मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि बस यहीं समाधिस्थ होंगे। प्रत्युत्तरार्थ गोरक्षनाथजीने तदनुकूल सम्मति प्रकट की। और गुरुजीकी आज्ञानुसार एक गुहा अन्वेषित कर उसको गुरुजीके सम्मुख सूचित किया। जिसका अवलोकन करनेके अनन्तर उसको मत्स्येन्द्र-नाथजीने स्वीकृत करते हुए अपना आनन्दभवन बना लिया। और अपने सच्चे विश्वासित शिष्य गोरक्षनाथजीको सचेत किया कि इस स्थानकी उपेक्षा कर स्थानान्तरको न जाना। सम्भवतः ऐसा करनेपर फिर प्रयागवाली घटना उपस्थित होजाय। यह सुनकर गोरक्षनाथजीने गुरुजीको विश्वास दिलाया कि आप आनन्दके साथ अपना कार्य सञ्चालित करें मैं कभी इस शरीरको विकृत न होने दूंगा। परन्तु कृपया आप यह बतलावें कि कितने दिनकी अवधिनियत की है। जिससे अवधिकी पूर्तिके समय औषधोपचारद्वारा मैं शरीरको अनुकूल रक्खुंगा। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजीने आज्ञा दी कि बहुत दिन नहीं केवल सात वर्षकी अवधि है। अतः आजसे सातमे वर्ष हम समाधिका उद्घाटन करेंगे तुम प्राथमिक औषधोपचारानन्तर गुहाका द्वार अवरुद्ध करदेना। और उस समय द्वार-खोल पुनः औषधप्रयोगके बाद शरीरको रक्षित रखना। इतना कह वे तो आसनारूढ होगये। उधर गोरक्षनाथजीने जब उचित समझा तब गुरुजीकी अभिलाषानुसार शरीरको साध्य कर गुहाका द्वार बन्ध करडाला। परन्तु मत्स्येन्द्रनाथजीके प्राण तथा मन अभी जल मिश्रित लवणकी तरह आत्मामें समरस न होने पायेथे इतनेमें एक दुर्ज्ञेय आकस्मिक और अघटित घटना सम्मुख आखड़ी हुई। वह यह थी कि त्रियादेश अपरनाम (सिंहलद्वीप) आधुनिक (सीलोन) देशकी राणीने. जो कि किसी कारण वशात् पतिके चिरकाल रोगाक्रान्त रहनेसे युवावस्थास्थ कामाधिक्य प्रसंगगत हुई अपने जीवन तथा ऐहलौकिक क्रीडाप्रसङ्गोत्थित विविधानन्द विरहित मनुष्य शरीरको अजागलस्तनवत् निरर्थक समझती थी, हनुमान्जीका आराधन किया। तदनु जब निराधानी अनुष्ठान समा. हुआ तो उचित समय देख हनुमान्जी उपस्थित हुए। और उन्होंने अनुष्ठान प्रत्युपकारार्थ राणीको वर आदान करनेकी आज्ञा दी। यह देख राणीने साष्टाङ्गप्रणाम पूर्वक हस्तसम्पुटी कर

कहा कि भगवन् ! आप जानते हैं कि ऐहलौकिक धनजनकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यह सब कुछ तो आपकी कृपादृष्टिसे स्वतः ही उपलब्ध है। अतः मुझे जिस असोढ विरहतोपहित दुरुपलब्ध वस्तुकी अभिवाञ्छा है वह पूर्ण कीजिये। जो आपसे भी अनवगत नहीं है। राणीकी यह प्रार्थना श्रवण कर महावीरजीने कहा कि फिर भी तुम अपने मुखद्वारा याचना प्रकट करो तुमने किस उद्देशसे मेरा आराधन किया है। प्रत्युत्तरमें राणीने स्पष्ट ही कह सुनाया कि आप जानते हैं मेरा पति बहुत समयसे रुजाधिष्ठित है। जिसकी अब नीरोग होकर फिर तादवस्थ्य होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। और इधर मेरी अभी युवावस्था है जिसके प्रबलप्रवाहका निरोध करना मेरे लिये दुर्वार तो क्या सर्वथा असम्भावी है। अतएव इसी त्रुटिकी पूर्त्यर्थ आपका अनुष्ठान आरम्भित कियाथा जिसका फल स्वरूप आपने अपनी महती कृपासे मुझे दर्शन देकर मेरी आशाकी पूर्ति होनेके लक्षण सूचित किये। अब निर्विकल्प और निशङ्क हुए आप मेरे शिरके ताज होकर मेरी आशालताको, जो शुष्क होचुकी थी, एकवार फिर हरीभरी करडालें। यह सुन यति वरजी अपने मनमें बडे ही विस्मित हुए विचार करने लगे कि अहो ! विधाता कैसी विचित्र घटना उपस्थित करता है। मैं यति होनेके कारण इस वैग्रहिक शरीरसे राणीकी आशा कभी पूर्ण नहीं करसकता हूं। एवं स्वकीयोद्देश प्रयुक्तभक्ति फलसे राणीको भी वञ्चित नहीं रखसकता हूं। ऐसी दशामें कौन उपाय उपयुक्त है जिसके द्वारा मुझे इन दो समस्याओंसे छुटकारा मिले, इत्यादि प्रकार विविध विचारा विचारके अनन्तर उसने एक उपाय निश्चित किया। और वह यह था कि उसने सोचा इस कार्यको यदि किसी प्रकार वाग्बद्ध होजायें तो मत्स्येन्द्रनाथजी पूर्ण करसकते हैं। और ऐसा होनेपर दो वार्ताओंकी उपलब्धि होगी। प्रथम तो उनके द्वारा मैं राणीकी भक्तिसे अनृण होजाऊंगा, द्वितीय वे मेरे पुरातन तिरस्कर्ता हैं अतः इस कृत्यसे उनको लुप्तशक्ति कर अपना अनुभवित अभिभव निर्यातित करसकूंगा। अर्थात् पूर्वज युद्धसे जायमान वैरका बदला चुकालेनेमें समर्थ हूंगा। (अस्तु) पूर्वोक्त निश्चय कर उसने राणीसे कहा कि तुम विचार करो संसार मात्रमें मुझे आ बालवृद्ध सभी यति समझते हैं। वस्तुतः है भी ऐसा ही मैं कभी इस दशामें सँलग्न नहीं हुआ हूं। अतः मेरेलिये अपने इस भौतिक देहसे तुम्हारा यह कृत्य सफल कर तुम्हारी शुष्क आशा वल्लीको हरित करना दुष्कर है। इस वास्ते तुमने मेरेको ही यदि अपना पति बनानेके लिये लक्ष्य ठहरा लिया हो तो तुमको उसका त्याग करना उचित है। परं इतना ध्यान रखना होगा लक्ष्यस्थानीभूत मुझसे दृष्टि हटालेनेका यह अर्थ नहीं है कि तुम मुझे अपना श्रद्धास्थान बनाकर भी उसके फलसे विरहित हुई फिर भी स्मरानलदग्धमर्मज दुःखसे दुःखी ही रहोगी। किन्तु इस

असोढ व्याधिके सान्त्वनार्थ में अपनेसे भी सर्वांशोत्कृष्ट व्यक्तिको तुम्हारे समीप ला सकता हूं। जिसको अङ्गीकृत कर अपने अभीष्टकी सिद्धिका लाभ उठा ऐहलौकिक विविध विलासोत्थ सुखका अनुभव करना.इसके बाद हनुमान्जीकी अभिमतिका समर्थन कर राणीने तदुक्त व्यक्तिका परिचय मांगा। हनुमान्जीने मत्स्येन्द्रनाथजीका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया जिसके श्रवण मात्रसे राणी प्रसन्न हो प्रार्थनाभिमुख हुई कह उठी अच्छा भगवन्! जैसे आपकी अभिमति हो वैसाही करें। क्यों कि मैंने तो योग्य पतिकी प्राप्तिके लिये ही अनुष्ठानानुष्ठित किया है। इसके फलप्रदानार्थ आप जिस किसी विधिसे भी कृतकार्य हों सो करते रहें वही मुझे भी सम्मत है। राणी की यह सम्मति प्राप्त होनेपर हनुमान्जीने मत्स्येन्द्रनाथजी को स्मृतिस्थान बनाकर उनके आह्वानार्थ अभ्यर्थना की। जिस विघ्नरूपिणी डाकिनीने सम्मुख उपस्थित हो नाथजी के आत्मारामको स्वरूपमें विलीन न होने दिया। मत्स्येन्द्र-नाथजी पौनःपुनिकवृत्ति निरोधद्वारा चित्तको सम्बोधित करते थे तथापि वे उस कृत्यमें सफलीभूत न हुए। इस प्रकारकी आकस्मिक घटना ग्रस्त हो मत्स्येन्द्रनाथजीने शनैः२ प्राणवायुका सञ्चार करना आरम्भ किया। और क्रमशः जब वायु संचरण पूरा हुआ तब उक्तघटनाके विज्ञानार्थ फिर ध्यानावस्थित हुए आप देखने लगे तो अपने आपको सिंहलद्वीपस्थ हनुमान् द्वारा आहूत किया दिखलाई दिया। तत्काल ही उन्होंने स्वकीय चिन्तित कृत्यका त्याग कर हनुमान्जी की अभिलाषाओं को सफल करनेका सङ्कल्प किया। और शरीरान्तर धारणकर जब हनुमान्के पास जा उपस्थित हुए तब उससे अपने बुलानेका कारण पूछा। प्रत्युत्तर में हनुमान्जीने समस्त वृत्तान्त जो कुछ व्यतीत हो चुका था निवेदित किया। तथा आपको अवश्य यह कार्य करना होगा इस बातकी विशेष प्रार्थनाकी। मत्स्येन्द्रनाथजीने उसके प्रस्तावको अनुमोदित कर इस विषयमें परामर्शकरना आरम्भ किया कि तुम्हारी क्या इच्छा है किस रीतिसे यह कार्य करना चाहिये। हनुमान्जीने कहा कि इस कृत्यके अनुकूल उपायकी अन्वेषणा करनेमें आपसे निपुण अन्य कौन होगा। जिस समय मत्स्येन्द्रनाथजी तथा हनुमान्जीकी यह पारस्परिक वार्तायें हो रहीथी ठीक उसी समय दैवगत्या एक और ही सुभीता उपस्थित हुआ। उन्हें सूचना मिली कि राजा साहिब रेह लौकिकयात्रा समाप्तकर चले। यह खबर सुनते ही मत्स्येन्द्रनाथजीने हनुमान्जीको समझा दिया हम राजाके शरीर में प्रविष्ट होकर राणीकी अभीष्ट सिद्धिकी पूर्ति करेंगे। परन्तु तुम यह भेद राणीको न देना। और जाओ जाकर राणीको समझा दो कि मत्स्येन्द्रनाथने, जिसका मैंने तुम्हारे सम्मुख प्रस्ताव किया था, यह आज्ञा दी है कि हम राणीके पतिको नीरोग करदेंगे जिससे वह अपनी वाञ्छा पूरी कर सकेगी। यह आज्ञा प्राप्त कर हनुमान्जी नगरस्थ स्वभक्तिरता राणीके समीप गये। आप मत्स्येन्द्रनाथजी की सूचना उसको सुनाने

लगे। यह श्रवण करते ही प्रत्युत्तरमें उसने कहा कि भगवन्! क्या आपको मालूम नहीं है राजप्रासादमें ये पताकादि राजकीय चिन्ह उतारकर शोकान्वित दर्शनाप्रिय चिन्ह धारण किये जा रहें इसका क्या कारण है। यही है हमारे पति राजाजी, जो दीर्घकालसे रोगा क्रान्त थे, आज स्वर्गवास कर गये। अतएव मैंने भी अपने आभूषणवस्त्रादिका परिवर्तन कर ऐसा शोक सूचक चिन्ह धारण कर रक्खा है जो आपके सम्मुख ही है। एवं साथ २ मैंने इस राजाके साथ विवाह करने के पश्चात् अबतक सांसारिक सुख का अनुभव नहीं किया है इस महादुःखसे विशेष यह दुःख है कि हमारे कोई पुत्र भी नहीं जिसको सिंहासनासीन कर राजाके पदकी पूर्तिकी जाय। ऐसी अवस्थामें आज राजा साहिबने हमें भोगशून्य व्यर्थ सांसारिक झगडेमें धक्का देकर अनाथ बना डाला है। अतः उसको नीरोग करनेका आपका प्रस्ताव वाञ्छित तथा अप्रासङ्गिक है। राणीके वाक्यकी पूर्ति होनेपर राणीको सन्तोषित करते हुए एवं राजाकी आकस्मिक मृत्युके विषयमें अपने को अज्ञात वृत्त जैसे सूचित करते हुए हनुमान्जी राजा की मृत्युपर कुछ आश्चर्य प्रकट कर पुनः स्मृतिगत हो कहने लगे अच्छा भगवद् इच्छानुकूल जो कुछ हुआ सो हो इससे भी तुमको खिन्नाभिलाषा नहीं होना चाहिये . क्यों कि मत्स्येन्द्रनाथजी को सँजीवनी विद्या आती है। अत· वे राजा साहिबको फिर सजीव कर तुम्हारे अनुकूल कर सकते हैं। यह सुन राणी प्रसन्न हो विविध प्रार्थना करती हुई बोली भगवन्! ऐसा ही कीजिये इस उपकारसे उपकृत हुई मैं सदा आपकी कृतज्ञ रहूंगा। तदनन्तर हनुमान्जीने राणी की स्वीकृतिका समाचार मत्स्येन्द्र-नाथजीको सुनादिया। उस वृत्तके श्रवण करते ही उन्होंने शीघ्रताके साथ अपना मायावीय शरीर छोडकर प्रासादस्थ मृतक राजाके शरीरमें प्रवेश किया। जिससे राजासाहेब सजीव हो उठे। और राजकीय पुरुषोंने शोक त्याग पूर्वक महान् आनन्द प्रकट कर राजाके मरण वृत्तान्त के कुछ ही क्षणों बाद सजीव होनेकी घोषणा करदी। तत्काल ही मृत्युशोक सूचनार्थ प्रासादोंसे उतारे जाने वाले पताकादि चिन्होंको फिर तदीयस्थानों पर सज्जीकृत करादिया गया। एवं नगरमें विविध आनन्दोत्सव होने लगे। उधर कतिपय दिन व्यतीत होनेपर शनैः २ राजासाहिब को नीरोग होते तथा दिव्य दर्शनाकृति शरीर वाले होते देखकर राणीको अपनी आशालताके हरित और प्रफुल्लित होनेका स्वप्न दिखाई देने लगा। अधिक क्या थोडे दिनोंमें ही राजाका शरीर बिलकुल रुजारहित होकर ऐसा सौन्दर्यान्वित हुआ जिसका अवलोकन कर हनुमान् तथा मत्स्येन्द्रनाथजीको नम्रतायुक्त बार २ नमस्कार करती हुई राणी अपने आपको धन्य मानने लगी। एवं मनमें यह विचार कर, कि अबतक जैसे मैं सांसारिक क्रीड़ात्मकानन्दसे वियोगिनी थी वैसे ही ईश्वर कृपासे सहयोगिनी भी हो गई, चित्तको सन्तोषित करने लगी। ठीक इसी क्रमसे सानन्द समय व्यतीत होनेपर

प्रथम तृतीय वर्षमें एक एक पुत्रका मुख देखनेका भी उसे सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन पुत्र रत्नोंका नाम परशुराम तथा मीनराम था। जिन्होंने अपने लावण्य एवं रूप सौन्दर्यद्वारा अपनी माताके पूर्वानुभवित कष्टोंको आच्छादित कर बिलकुल भूला ही दिया था। तदनन्तर उसके कोई अन्य पुत्र नहीं हुआ। और उसका आनन्दान्वित काल यापित होता रहा। कुछ दिन बीतने के अनन्तर राणीने अपने गुणाधिक्यबलात् मत्स्येन्द्रनाथजीको इस प्रकार विमोहित किया कि उन्होंने दैवगतिके अनुसार विवश हो अपना गुप्त रहस्य प्रकट कर दिया। और अपने विलासकालको चिरस्थायी तथा अक्षुण्ण बनाने के लिये हनुमान्से परामर्शकर स्पष्ट शब्दोंमें यह कह सुनाया कि हम इतने मोहान्धकारमें बद्ध हो गये हैं जिसके कभी त्यागार्थ हमारी रुचि नहीं होती है। और उधरसे हमें अपने शिष्य गोरक्षनाथकी भी आशंका है। उसको इस कृत्यकी जानकारी हो गई तो वह हमको यहांसे अवश्य ले जायेगा। क्योंकि वह बड़ाही गुरुभक्त तथा शक्तिशाली पुरुष है। यह सुन हनुमान्जीने कहा कि आप इस बातका कोई सन्देह न करें मैं कोई उपाय सोचकर इस बातका सब ठीक प्रबन्ध करदूंगा जिससे कभी ऐसा न होगा कि गोरक्षनाथ आपके ऐहलौकिक विलासोत्थमहानन्दको खण्डित करनेके लिये समर्थ होसके। मत्स्येन्द्रनाथजीके विश्वासथा कि गोरक्षनाथकी गति विधिको अवरुद्ध करनेका उपाय दृष्टिगोचर नहीं है इसी लिये आप बोलउठे कि आपका कथन ठीक है परं मुझे स्पष्ट बतलाओ कौनसा वह उपाय है जिसद्वारा गोरक्षनाथका निवारण होसकता है। हनुमान्जीने कहा कि और क्या उपाय होगा मैं स्वयं इस कार्यके लिये कटिबद्ध हूंगा। अर्थात् राजकीय सीमापर पहरा रखकर नाथपन्थी मात्रको राज्यके भीतर नहीं घुसने दूंगा। महावीरकी इस ओजस्विनी प्रतिज्ञासे कुछ सन्तोषित हो- मत्स्येन्द्रनाथजीने विचार किया कि अच्छा जब अवसर आयेगा तब देखाजायगा अभी इस विषयमें शङ्कित हो विलासको विध्नित नहीं करना चाहिये। इसी लिये आप हनुमान्जीको यह आज्ञा देकर. कि आप अपने चिन्तित उपायमें सँलग्न होजायें. स्वयं निशङ्क होकर राजकार्य सञ्चालन करने लगे। इसी प्रकार आनन्द और उत्साहके साथ राज करते २ जब उनके सात वर्ष पूरे होनेको आये तब उधर गोरक्षनाथजीने गुरुजीके शरीरको पूर्वपरीक्षित औषधोंके द्वारा संस्कृत कर तैयार रक्खा। एवं आप इस बातके लिये उत्कण्ठित थे कि गुरुजी अब समाधिका उद्धाटन करेंगे। परन्तु ऐसा न हुआ। क्योंकि जिसकी सात वर्ष पर्यन्तकी अवधि रक्खी थी गुरुजी उस समाधिमें नहीं थे। इसी लिये शनैः२ वह समय, जो मत्स्येन्द्रनाथजीके समाधि खोलनेका था, सम्पूर्ण बीत गया। समाधिस्थ होनेवाले पुरातन योगियोंकी पारस्परिक एक ऐसी अभिसन्धिथी कि निर्दिष्ट समयपर यदि योगी समाधिका उद्धाटन न करे तो शरीर रक्षकको यह समझना चाहिये कि समाधिष्ठाताने

द्विगुणा समय और सङ्कल्पित करडाला है। अतएव तदनुकूल गोरक्षनाथजीने भी विना किसी विकल्पके उस बातको समझकर फिर गुरुजीके शरीरको तादृश करदिया। और गुरुजीके जागरित होनेपर आनन्दान्वित विविध वार्तालापद्वारा होनेवाले आधुनिक मनोऽभिनन्दनको यहांसे हटाकर सप्तमें वर्षमें नियुक्त किया। परन्तु जब क्रमशः सातमा वर्ष भी बीत गया और गुरुजीने समाधिको न खोला तबतो गोरक्षनाथजी को बडा ही विस्मित होना पड़ा। इसी लिये ध्यानावस्थित हो आप देखने लगे तो गुरुजीको उस दशामें देखा जिसके अवलोकन मात्रसे उनका आश्चर्य और भी बढगया। परन्तु संसारमें आपको कोई भी उपाय अगम्य नहीं था अतः अधिक खिन्न चित्त न होकर आप गुरुजीको समाधिस्थ शरीरमें लानेका दृढ संकल्प करते हुए स्वकीय चिरकाल सहवासी समीपस्थ महात्मा दत्तात्रेयजीकी गुहापर गये। और उनसे इस विषयमें परामर्श कर आपने यह प्रार्थना की जबतक मैं लौटकर आऊं तबतक आपको गुरुजीके शरीरकी रक्षार्थ अप्रमत्तासे रहना होगा। यह सुनकर दत्तात्रेयजीने आपको विश्वासित कर प्रस्थान करने की सम्मति दी। तत्काल ही सिंहलद्वीपस्थ गुरुजीको लक्ष्य ठहराकर गोरक्षनाथजी वहांसे प्रस्थानित हुए। परन्तु जब गुरु अधिष्ठित राज्यके समीप पहुँचे तो उनको मालूम हुआ कि राज्य सीमापर हनुमानजीका पहरा है जो नाथपन्थी मात्रको राज्यान्तर्गत होनेसे रोकता है। अतः उन्होंने हनुमान् के साथ व्यर्थ झगड़ा उपस्थित करना उचित न समझकर गार्हस्थ्य बालकका स्वरूप धारण करके राज्यके भीतर जानेका निश्चय करते हुए आगेको पद बढाया। और जब कुछ दूरीपर मार्ग चलते हुए आगेको दृष्टि डाली तो उनकी दृष्टि सहसा एक रथ पर पडी। जिसमें कलिङ्गानामक एक प्रसिद्ध वेश्या सवारथी। जिसकी अनेक सहचारिणी रथ के आगे पीछे विविध मनोरञ्जक रागालाप करती चल रही थी। और कुछ दूर आगे चलनेपर जब सूर्य अस्त हुआ तो रात्री यापनार्थ वह एक वृक्ष समूहावर्णित सरोवरके ऊपर विश्रामित हो चुकि थी। ठीक उसी अवसरपर बालरूप योगेन्द्रजी वहीं जा उपस्थित हुए। और उक्त गणिकासे कहने लगे कि तुम कहां जा रही हो। प्रत्युत्तरार्थ वेश्याने कहा कि हम मत्स्येन्द्रनाथकी राजधानी में जा रही है। वह बड़ा ही विलासी और दानी राजा है अतः अपने नृत्यचातुर्यसे उसको प्रसादित कर उससे कुछ द्रव्य प्राप्त करेंगी। क्यों कि हमारा यही व्यवहार है। यह सुन बालरूप गोरक्षनाथजीने कहा कि मुझे भी अपने साथ लेचलो अवसर पडनेपर मैं किसी कार्य विशेषमें तुम्हारी सहायताके लिये तैयार रहूंगा। तदनु प्रत्युत्तरमें कालिङ्गाने कहा कि तुम हमारे साथ नहीं चलसकते क्योंकि प्रथम तो हम वेश्या हैं गायन और नृत्य करनेमें चतुर हैं जिसके द्वारा धनाढ्य और राजामहाराजा लोगोंको प्रसन्न कर अपनी आजीविका चलाना ही हमारा मुख्य व्यापार है। अतः जो इस बातमें हमारी

तरह कुशल हो वही हमारी मण्डलीमें शोभा पा सकता है। दूसरे इतना होनेपर भी यानो इतने गुणवाली स्त्री हो और यदि पुरुष हो तो स्त्री रूप बनानेमें निपुण हो वही पुरुष हमारी सहायता करनेमें समर्थ हो सकता है। क्योंकि हम समस्त स्त्री हैं यही समझकर राजा लोग हमें अपने रणवासादि पुरुषागम्य स्थानमें नृत्यादि कर दिखलानेकी निर्विकल्प आज्ञा देते हैं। यदि उनको यह निश्चय होजाय कि इनमें पुरुषभी प्रविष्ट है तो वे लोग कभी हमें ऐसा न करने दें। इसका उत्तर देते हुए गोरक्षनाथजीने कहा कि तुम निशङ्क रहो मैं दोनों बातोंमें अर्थात् बाजा बजाने तथा स्त्री रूप धारण करनेमें बडाही निपुण हूं। तुम यदि चाहो तो अपने निश्चयार्थ मेरी परीक्षा ले सकती हो। जिसके लिये मैं उत्सुक और तैयार हूं। यह सुन कलिङ्गाने कहा कि अच्छा यदि यही बात है तो स्त्रीरूप बनाकर तबलेकी कुछ ताल सुनाओ जिससे तुम्हारे वचनकी सत्यासत्यताका अभी निर्णय हो जायगा। कलिङ्गाने यह आज्ञा दे विश्राम ही लियाथा ठीक उसी अवसरमें शीघ्रताके साथ उन्होंने स्त्रीवेष धारण कर तबलेके थापी लगाई। जिससे ऐसी ध्वनि निकलतीथी मानों समस्त बाजाओं सहित इसके भीतर ही गन्धर्व लोग नृत्यामोद कररहे हों। आजसे पहले ऐसा बजाना तो दूर रहा कलिंगाने कभी तबलेकी ऐसी ध्वनि भी नहीं सुनीथी। अतएव कलिङ्गा स्वकीय समस्त सहचारिणियोंके सहित तबलेकी अश्रुतपूर्व मनोरञ्जक ध्वनिसे कुछ प्रसन्न और अधिक विस्मय ग्रस्त हुई इस प्रकारके विचाराविचाररूप समुद्रमें निमग्न हुई कि यह कोई साधारण पुरुष नही है जिसके हस्तथाप सचाञ्चल्य चातुर्यसे जायमान अलौकिक ध्वनिने अपूर्व स्त्री रूपावलोकन मात्रसे बढे हुए हमारे आश्चर्यको और भी पारावार शून्य करडाला है। अतः जानपड़ता है मनुष्य वेषी यह कोई देवता है। परन्तु जब गोरक्षनाथजीके कहनेसे वे सन्तोषित हुई तो उन्होंने अपना सब विकल्पात्मक मनोभ्रम त्याग दिया। और गोरक्षनाथजीको साथ लेजानेमें उनको कोई आपत्तिकी बात नहीं जानपड़ी। प्रत्युत वे इस बातसे अधिक आनन्दित हुई कि इसके अश्रुतपूर्व बाजेद्वारा हमारी और भी अमित प्रतिष्ठा बढेगी। अनन्तर कुछ ही दिन बीतनेपर जब वे मत्स्येन्द्रनाथजीकी राजधानीमें जा उपस्थित हुई तो उन्होंने सदाकी तरह अपने आगमन की राजप्रासादमें सूचना भेजी। जिसके श्रवण करते ही राजाकी ओरसे नृत्यालय सज्जीकृत कियागया। और एक दिन शुभमुहूर्त जानपडनेपर कुछ दान पुण्यपूर्वक नृत्य आरम्भित कियागया। जिसके दर्शनार्थ उच्चश्रेणिके सभी राजकर्मचारी लोग आयेथे। उधर कञ्चनमय, मणिमरीचिखचित, एक उच्च सिंहासनपर मत्स्येन्द्रनाथजी विराजमान थे। जिनके वामपार्श्वमें सूक्ष्म वस्त्राच्छादित द्वार वाले एक कमरेमें उनकी राजमहिषी शोभा पा रही थी जो नृत्यानन्दकी विशेष अभिलाषिणी थी। इधर नृत्य भी

साधारण न था। क्योंकि नर्त्तकी वेश्या इतनी चतुर थी जिन्होंने समस्त दर्शकोंका चित्त आकर्षित करडालाथा। अतएव प्रशंसा एवं बार २ धन्यवादके अनन्तर दिन व्यतीत हुआ। और रात्रीके नृत्यार्थ वेश्याओंको निमन्त्रित किया गया। परं इस दिनके नृत्यालयमें छद्मवेषी बालरूप गोरक्षनाथजी नहीं गयेथे। उन्होंने अपने कार्यकी सिद्धिके लिये रात्रीका ही अवसर विशेष उपयोगी समझाथा। उधर कलिङ्गाने भी उनके दिनमें लेजानेका विशेष आग्रह न किया। क्योंकि उसके चित्तमें कुछ शंका थी कि सम्भवतः कोई चतुर मनुष्य इस भेदको समझले कि यह स्त्री सदृशं अङ्गाकारी नहीं है। अतः रात्रीके नृत्योत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये कलिङ्गाकी सम्मत्यनुसार गोरक्षनाथजी भी अपना स्त्रीवेष धारण कर तैयार होगये। और समयपर नर्त्तकियोंके साथ नृत्यालयमें पहुँचे। जहां प्रकाशका विशेष प्रबन्ध था। और दिनकी सदृश समग्र दर्शकजन, अपने २ स्थानपर बैठे हुए कलिङ्गाके नृत्य चातुर्यकी प्रतीक्षा कर रहेथे। ऐसी ही दशामें नृत्य आरम्भ हुआ। जिसमें प्राथमिक नर्त्तकी के कुछक्षण गाने और नृत्य करने के अनन्तर कलिङ्गा खड़ी हुई। जो रूपलावण्यसे अधिक चित्ताकर्षण एवं विमोहन करनेवाली होनेपर भी अपने चपलाङ्ग चञ्चलतोपहित नृत्य कौशल्यसे मनुष्यों को चेतनता शून्य पत्थर मूर्तिवत् बनाडालती थी। अतएव समस्त दर्शक जन, नेत्र निमीलनोन्मीलन शून्य हुए, लगातारटकटकी लगाकर कलिङ्गाकी नृत्य निपुणता देखने लगे। ठीक इसी अवसरपर गोरक्षनाथजीने जब यह समझ लिया कि नृत्योत्थरसात्मकानन्दमें, लोग, विह्वल हो गये हैं उधर मत्स्येन्द्रनाथजी भी पौनःपुनिक वाह २ शब्दद्वारा कलिङ्गाके उत्साहको प्रवृद्ध बना रहे हैं, तब अपने मन्त्रद्वारा तबली स्त्री के उदरमें पीडाका सञ्चार किया। जिससे तबली वेश्या खड़ी रहकर नृत्यमें तबलवाद्य ध्वनिकी सहायता देनेमें समर्थ न हो सकी। यह देख तत्काल ही कलिङ्गाने उसको बैठ जाने और बालवेषी गोरक्षनाथजीको तबलयुगल बजानेका इसारा दिया। बड़ी शीघ्रतासे यह आज्ञा पालित हुई। और गोरक्षनाथजी तबलध्वनि करने लगे। जिस ध्वनिके नृत्यमें मिश्रित होतेही उसकी इतनी शोभा बढगई मानों नृत्यकर्त्री साक्षात् स्वर्गीयगणिका आ गई हैं। इसी लिये नृत्य रसात्मकानन्दसे आनन्दित हुए दर्शक लोग, कलिङ्गाको विविध पुरस्कार समर्पण करने लगे। कतिपय लोगोंने अपने २ अनेक आभूषण उतार कर उसेप्रदान किये यहां तक कि मत्स्येन्द्रनाथजीने भी अपने शारीरिक कतिपय आभूषण उधर प्रक्षिप्त किये। और उनकी मुख्य राणीने अपना ग्रैवेयहार कलिङ्गाके गलेमें डाला। इस प्रकार कलिङ्गाकी वह आजीविका पूरी हुई समझ कर, जिसकी गोरक्षनाथजीके सम्बन्धसे प्राप्त होनेकी उसने कल्पना की थी, गोरक्षनाथजीने अपने कार्यार्थ यही अवसर अधिक उपयोगी समझा। अतएव अपना २ पुरस्कार समर्पितकर जब दर्शकलोग पूर्ववत् निज स्थानपर बैठ गये तब

उन्होंने तबलेके ऊपर विचित्र थाप लगानी शुरू की । जिससेंसे प्राथमिक वह ध्वनि निकली जिसके श्रवण मात्रसे श्रोताओंको इतना अधिक आनन्द हुआ कि सुषुप्तिकालवत् उनको अपने शरीरका भी स्मरण न रहा कि हम कौन और कहां हैं । ठीक इसी समय गोरक्षनाथजीने अपनी विमोहनी थापकी परिवृत्ति की । और तबलेसे गुरुजी! जागो गोरक्ष आ गया. की ध्वनि निस्सरित होने लगी . बस क्याथा ज्योंही यह अश्रुतपूर्व शब्द मत्स्येन्द्रनाथजीके श्रोत्रगत हुआ त्योंही उनकी नृत्य रसात्मकानन्दी निद्रा भग्न हो गई । तत्काल ही उन्होंने नृत्य बन्ध करने की आज्ञा दी । और कलिङ्गाको स्त्रीरूप तबली गोरक्षनाथजीका परिचय पूछने के लिये मत्स्येन्द्रनाथजी ज्योंही उद्यत हुए इतने ही में गोरक्षनाथजीने अपनी कृत्रिम मायाका परिवर्तन कर वास्तविक रूप धारण करते हुए गुरुजीको. आदेश २ शब्दान्वित नमस्कारसे सत्कृत किया । यह देखकर दर्शकलोग अदृष्ट पूर्व आकस्मिक घटनारूप महान् आश्चर्यात्मक समुद्रमें निमग्न हुए । परं करते क्या उन्होंके आभ्यन्तरिक भावतो ये अवश्य थे कि मत्स्येन्द्रनाथजी बद्रत् हमारे राजा बने रहें . क्योंकि मत्स्येन्द्रनाथजीने जिस प्रशंसनीय नीतिसे राज्य किया था उससे राज्यकी इतनी अधिक श्री वृद्धि एवं प्रजाकी प्रसन्नता बढगई थी कि जिससे उपकृत हुए लोग कभी मत्स्येन्द्रनाथजीको अपने हस्तसे जानेदेना नहीं चाहतेथे परं गोरक्षनाथजीके महातेजस्वी अद्भुत चमत्कारशाली दिव्यरूपका अवलोकन करनेसे उनका कुछ कहने सुनने और करनेका सब साहस जातारहा । तथापि उन्होंने मत्स्येन्द्र-नाथजीके निर्देशानुसार शीघ्रतासे यह समाचार सीमान्त प्रदेशस्थ रक्षक हनुमान्‌जी के समीप भेजा. जिसके श्रवण करतेही विविध बलप्रदर्शक चरित्रोंका उद्घाटन कर वह गोरक्ष-नाथजी के अभिमुख आ डटा और उसने युद्धकरने की घोषणा प्रकट की। यह देख गोरक्ष-नाथजीने उसको सुमरीतिसे सूचित किया कि यह युद्ध न्यायसंगत नहीं समझना चाहिये । क्योंकि मैं जब अपने गुरुजी को, जो किसी कारण वशीभूतहुए विस्मृत निजदशा होगये है, इस सांसारिक मिथ्याजाल गुम्फित अतिगहन गर्त्तसे उद्धृत कररहा हूं तब तुम्हारा बीच में कूदकर हमारे प्रयत्न को निष्फल कर डालने की चेष्टा करना सर्वथा अयोग्य है । इसका प्रत्युत्तर देते हुए हनुमान्‌ने कहा कि आप ठीक कह रहे हैं परं आप अपने ऊपर ही घटाइये जैसी अपने धर्मकी पालनार्थ आपको चिन्ता है वैसी मुझे भी तो होनी चाहिये । क्योंकि मैंभी. मत्स्येन्द्रनाथजीको आपकी रक्षार्थ नियत रहूंगा, ऐसा वचन दे चुका हूं । अतः यातो आप बिनाही कुछ सङ्कल्प विकल्प किये चुपचाप राज्य सीमासे बहिर हो जायें या युद्ध करना उचित समझें तो तैयार हो जायें । अन्यतम बातके विना कुछ साध्य नहीं है । साध्यान्तर उपाय दृष्टिपथागेही न देखकर गोरक्षनाथजीने कहा कि अच्छा यदि यही बात है तो तुम अपने अमोघ, एवं अन्यत्र निश्चित. शस्त्र. या

अस्त्रको हमारे ऊपर प्रहृत करो उसने हमको यदि कुछ भी क्लेशित किया तो तुम्हारा हमारे साथ युद्ध करना अवश्यम्भावी तथा उचित होगा। अन्यथा तुमको युद्धका हठ त्यागकर अभीष्ट स्थलमें जाना होगा। यह सुन हनुमान् कुछ शङ्कित हुआ। और उसने अपने मनमें विचार किया कि है तो ठीक बात, शस्त्रास्त्रका वार करके तो देखलूं, क्योंकि इनके कथनानुसार यदि प्रहार निष्फल ही रहा तो युद्ध ही कैसे हो सकता है। तदनु हनुमान्ने क्रमशः अपने अनेक शस्त्रास्त्र गोरक्षनाथजी को लक्ष्यस्थान बनाकर प्रक्षिप्त किये जिनका, वज्रस्तम्भवत् एक जगहपर निश्चितभावसे स्थित हुए गोरक्षनाथजीके ऊपर किञ्चित् भी प्रभाव न पड़ा। यहां तक कि गोरक्षनाजीके मन्त्र पढने पर हनुमान्का अन्तिमअस्त्र चल ही न सका। यह देख हनुमान् निश्चयात्मक समझ गया कि जिसने मुझे पराजित किया था आखिर यह भी उसीका शिष्य है। उसी इस मत्स्येन्द्रनाथजी की अलौकिक विद्यासे यह दीक्षित है। फिर इसके साथ मेरा युद्ध कैसे होसकता था। तथापि मैंने जहां तक सम्भव हो सका अपने संकल्पकी रक्षा की। अतः मेरे लिये कोई निन्दात्मक बात नहीं, इत्यादि विचारकर हनुमान् अपने पौरष पर्यन्त मत्स्येन्द्रनाथजीकी रक्षणात्मक आज्ञाका पालन करता हुआ एवं अपरिमित शक्तिके सम्मुख अकृतकार्य होनेपर अपनी असमर्थता दिखलाता हुआ स्वयं निर्दोष सिद्ध हो मत्स्येन्द्रनाथजी की आज्ञानुसार अभीष्ट स्थानपर चला गया। उधर मत्स्येन्द्रनाथजी गोरक्षनाथजी के सहित अपने निज निवास भवनमें गये। और आभ्यन्तरिक प्रेममयी विविध पारस्परिक वार्ताओं के अनन्तर जब गोरक्षनाथजीने उनको चलनें के लिये सूचित किया तब मत्स्येन्द्रनाथजीने इस विषयका कोई प्रत्युत्तर न देकर प्रस्तावको इधर उधरकी वार्ताओंमें मिश्रित करदिया और अपने पार्श्ववर्ती भृत्योंको इसारेसे समझाया कि रणवासमें सूचना दो राणी वह उपाय करें जिससे गोरक्षनाथ भी विमोहित हो जाय। और मुझे न ले जाकर स्वयं भी यहीं रहने के लिये बाध्य हो जाय। मत्स्येन्द्रनाथजीकी यह गुप्त आज्ञा शीघ्र अन्तःपुरमें भेजी गई। उधर राज राणी प्रथमतः ही इस वृत्तसे शङ्कित हुई उपाय अन्वेषणमें तत्परथी। परं वह यद्यपि यह अच्छी तरह समझ गईथी, कि गोरक्षनाथ कोई साधारण योगी नहीं है जो अनायाससे ही छल साध्य हो जाय। तथापि उसने अपनी बुद्धिकेअनुसार जैसा उचित समझा सो किया। और गोरक्षनाथजीके भोजनका प्रबन्ध एक ऐसे स्थानमें किया गया जहां स्त्री समुदाय निशंक होकर अभीष्ट शस्त्रोंका प्रयोग कर सके। तदनु रात्री देवीने अपना कार्य समाप्तकर स्वयं गमन करते हुए दिनके आगमनकी सूचनादी। प्रथम अरुणोदय हुआ, उसकी विचित्र किरणोंने प्रासादकी उच्च २ भित्तियोंपर अपना बिम्बडालकर उनकी प्रवृद्ध रङ्गविरङ्गी शोभाको और भी उन्नत बनादिया अनन्तर कुछ क्षणोंमें सूर्य देवकी कृपा हुई, जिसने अपना प्रकाश प्रज्वलित किया। यह देख अभिराम

आगमोंमें बैठे हुए विविध जातीय पक्षिगण आहारार्थ इतस्ततः उड्डीयमान होने लगे। उधर नागरिक लोग भी अपने नित्यकृत्यार्थ गृहसे बहिर भूत हुए स्व स्व कर्ममें लीन होने लगे। परं मत्स्येन्द्रनाथजीके अन्तःपुरमें, आज समस्त दासी वृन्द के सहित राजराणी पद्मनीका रात्रीसे सूर्य प्रकाश होने तक, यही परामर्श होता रहा कि किस विधिसे गोरक्षनाथको अपने हस्तगत किया जाय। अन्ततः विशेष उपयोगी उपाय दृष्टिगोचर न होनेसे विचारको अधुरा छोड कर वह स्नानादि क्रियासे निवृत्त हुई। तदनु भोजन भी तैयार हो गया जिसमें किसी प्रकारकी भी त्रुटि न रक्खी गई थी प्रत्युत यह सोचकर, कि गोरक्षनाथने कभी ऐसा भोजन न खाया होगा, जहांतक बनाना सम्भव हो सका बनाया था। एवं जिस प्रासादमें गोरक्ष-नाथजीको भोजन कराना निश्चय किया गया था उसको ऐसा सजाया गया था कि मानों उसकी अतीव मनमोहनी सजावटका यह प्रथम ही अवसर था। ठीक उसीमें भोजन करने के लिये निमन्त्रण भेज कर गोरक्षनाथजीको आह्वान किया गया वे आये। जिनके आगमनसे प्रथमतः ही स्वर्णमय सिंहासन सज्जीकृत किया हुआथा। उसपर उनको बैठाया और विविध रसान्वित भोजनसे सुशोभित काञ्चन थाल उनके आगे स्थापित हुआ। जिसमेंसे गोरक्ष-नाथजीने भोजन करना आरम्भ किया राजराणी पद्मनी स्वयं व्यजन वायु करनेके लिये उद्युत हुई जो विविध प्रकार के आभूषणोंसे भूषितथी। एवं उसकी अन्य सहचारिणी जो, कोई भोजन बनाती और कोई परोसनेका कार्य कररहीथी, वेभी पद्मनी की तरह अपना अद्वितीय शृंगारकर गोरक्षनाथजी के मोहित होनेका भार अपनेही ऊपर आरोपित कर ने की अभिवाञ्छा रखती थी और इधर उधर समीपसे निकलती हुई उन शब्दोंका उच्चारण करतीथी जिनके श्रवण मात्रसे मनुष्यका प्राकृतिक स्वभाव पलट कर शीघ्र उसदशा में परिवर्तित हो सकता है जिसके लिये वे यत्न कररही थी। परं हमारे श्रद्धास्पद पूज्यपादजी ऐसी साधारण व्यक्ति नहींथे जो उनके इस मायावीय जटिल जाल में अवरुद्ध हो और कलंकका टीका अपने मस्तकपर धारण करते। अतएव उनके मोहनालसे गोरक्षनाथजी किञ्चित् भी विचलित न होते हुए अपने प्राकृतिक स्वभावसे ही भोजन करते रहे। विचलित होते भी कैसे इनके आगे उनका तुच्छ शृङ्गार तथा रूप दिखलाना ऐसाथा जैसा सूर्यके सम्मुख दीपक दिखलाना क्योंकि इनके तपस्या काल में इनको मोहित करनेकी इच्छा वाली अमर अप्सराओंका जहा विफल मनोरथ होगया वहां इन वराकियों की क्या दाल गलेथी। अतएव अपने कृत्यको निष्फल देखकर वे विचारी निराश होगई। उधर गोरक्षनाथजी भी उनके आभ्यन्तरिक पश्चात्तापको समझ गयेथे। इसी लिये उन्होंने उनके उत्साहको अधिक मन्द करनेके लिये अपना इतना तेजस्वी तथा दिव्यदर्शनरूप बनाया जिसके आगे प्रासाद और उन स्त्रियोंकी शोभा तुच्छ सी दीखने लगी। यह देख अपनी

सहचारिणियोंके साहित पारस्परिक मुखावलोकन करनेसे लज्जित हुई राजराणी पद्मनी, जब भोजनानन्तर गोरक्षनाथजी दूसरे आसनपर विराजमान हुए तब उनके चरणोंमें, गिरी, और मत्स्येन्द्रनाथजीको न ले जानेके लिये उसने सनति अभ्यर्थना की। यह सुनते हुए गोरक्षनाथजीने उसको समझाया कि मातः! अधिक एवं असम्भावी लोभ करना उचित नहीं है। एक दिन वह था जिस दिन तुम राजाके रोगाक्रान्त रहनेसे सांसारिक व्यवहारसे अनभिज्ञ हुई अपने मनुष्य जन्मको निष्प्रयोजन समझती थी। और रोगी राजाके स्वर्गारोहणानन्तर उसके स्थानकी पूर्ति करनेके लिये कोई भी पुरुष, जो तुमको अभीष्ट जान पडताहो, नहीं था। परन्तु आज वह बात नहीं है। आज वह अवसर है जिसमें तुम्हारी उन दोनों त्रुटियोंकी पूर्ति हो चुकी है अतएव तुमको अब इस विषयमें प्रसन्नता प्रकट कर प्रत्युत ऐसी ही सम्मति देनी चाहिये जिससे गुरुजी चलनेके लिये शीघ्र तैयार हो जायें। इसके विपरीत यदि तुम यह चाहती हो कि सांसारिक विलाससे अभी रुचि शान्त नहीं हुई है इसीलिये और अधिक अभिलाषा है उसकी पूर्ति हो जायेगी तब देखा जायेगा। तो मैं कहूंगा कि यह निःसन्देह तुम्हारी भूल है। क्योंकि यदि प्रवृद्ध अग्निलटामें घृत डालनेसे अग्नि कभी मन्द हुआ हो तो विलासाभिलाषा भी मन्द हो सकती है। परं वास्तविकमें ऐसी बात नहीं हैं। न तो कभी अग्नि मन्द होता और न कभी विषयवासना हीं मन्द होती है। गोरक्षनाथजीके इस विधिसे समझानेसे अथवा उपायान्तराभावसे विवश हुई राणीने सन्तोषित हो धैर्यावलम्बन कर गोरक्षनाथजीके कथनका समर्थन किया। और विविध पूजा वन्दनाके अनन्तर आपके आगमन एवं अलभ्य दर्शनसे अपना अहोभाग्य प्रकट कर मत्स्येन्द्रनाथजीके निवासभवनमें जानेके लिये आज्ञा दीं। अतः गोरक्षनाथजी गुरुजीके समीप पहुँचे। और उन्हें प्रस्थान करनेको कहने लगे। मत्स्येन्द्रनाथजीके गोरक्षनाथजीका वह वचन स्मृतिगत था जो एकवार उन्होंने कहाथा कि मैं आपका सच्चा शिष्य हूं आप चाहें तो कभी परीक्षा करसकते हैं अतएव यह देखनेके लिये कि गोरक्षनाथ कितना दृढ गुरुभक्त और प्रतिज्ञापालक हैं, चलनेके नामसे नासिका संकुचित कर वे एकदम नाट गये। एवं कहने लगे कि इस प्रकारके स्वर्गोपम भोग त्याग कर और कहां जाना तथा क्या करना है। क्योंकि संसारके सभी लोग यह चाहते हैं कि हम राजा बन जायें जिससे नाना प्रकारके भोगभोग कर अपने जीवनको सार्थक करें। फिर वही राजपना और नाना प्रकारके भोग जब हमको अनायाससे ही प्राप्त हैं तो उनको छोड बैठना कहां की बुद्धिमत्ता है। गुरुजीके इस प्रकार शीघ्रताके साथ बिना ही कुछ सोच विचार किये नाटनेसे गोरक्षनाथजी समझ गये कि गुरुजी मेरी दृढताकी परीक्षा करते हैं अन्यथा कुछ युक्तियुक्त वाक्योंका प्रयोग अवश्य करते। अतः प्रत्युत्तरार्थ उन्होंने कहा कि आप सत्य कह रहे हैं

सभी सांसारिक लोग राजपाट तथा तज्जायमान भोगोंकी अभिलाषा करते हैं परं योगिजनोंको उनमें भी आप जैसोंको जो जन्म मरण शब्द वाच्य संसारमें नहीं गिने जाते, जिनको सांसारिक बनना हास्यास्पद एवं लज्जास्पद बनना है, उनको तो ऐसी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। दूसरी बात यह भी है कि ऐसी कोई वस्तु नहीं जो आप जैसे शक्तिशाली महात्माओंको अप्राप्त हो। फिर प्राप्त वस्तु की इच्छा करना सर्वथा अनुचित एवं निन्दनीय है। अतएव आपने जो कुछ मनन किया है उसको मैं अच्छी तरह समझता हूं आपको न तो कोई वस्तु अप्राप्त है और न किसी की अभिलाषा ही है। केवल एक वही बात है जिसकी आपने अनेकबार परीक्षा की है और अब भी कर रहे हैं। परन्तु क्या इतना समझता हुआ मैं पथच्युत होनेवाला हूं कभी नहीं। यदि किसी प्रासङ्गिक निमित्तसे आप और कुछ विलम्ब करेंगे तदपि आपको चलना तो अवश्य हो होगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। मत्स्येन्द्रनाथजी यह सुन (जो मेरे मनमें सोई दादाके पत्रेमें) वाली कहावतके अनुसार मुस्कराते हुए कहने लगे कि खैर किसी प्रकार मैं चलूं भी तो एक और कारण ऐसा है जिस वशात् मेरा चलना असम्भावी है। गोरक्षनाथजीने पूछा कि आप निशंक हो स्पष्ट बतलावें जहांतक सम्भव होगा उसकी सिद्धिके लिये प्रयत्न किया जायेगा। उत्तरार्थ मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि यह छोटा लड़का जो मीनराम है इसमें मेरा अत्यन्त मोह है। जिसको मैं अपने हृदयसे भी प्रिय समझता हूं और कभी अपने नेत्रोंसे दूर नहीं होने देता हूं। यदि इसको साथ ले चलें तो मेरा चलना हो सकता है अन्यथा नहीं। और यदि इसके बिना मुझे चलना ही पड़ा तो मेरा अन्यत्र रहना भी दुष्कर है अर्थात् फिर वापिस लौटना पड़ेगा। मत्स्येन्द्रनाथजीने सोचा था कि माताको पुत्र जितना प्रिय होता है इस बातको वहीं जान सकती है जो अकुलटा एवं पुत्रवती माता है। अतएव पुत्रको, फिर मीनराम जैसे पुत्र रत्नको, जिसको छातीसे दूर करना मेरेको भी कठिन नहीं असम्भव है अपने हस्तसे छोड़ने के लिये राणी कभी सहमत नहीं होगी। दूसरे एक ही बार पति पुत्रको तिलाञ्जलि देनेके लिये राणी समर्थ नहीं। अतः देखें इस विषयमें हमारा शिष्य क्या करता है। उधर गोरक्षनाथजी को भी अपने कर्तव्य एवं विद्या तथा शक्तिका पूरा विश्वास था कि हम कठिनसे कठिन कार्यको सिद्ध कर सकते हैं। अतएव गुरुजी के अटपटे वाक्यपर अधिक सोच विचार न कर उन्होंने भी मीनरामको अपने समीप बुला भेजा। यह आज्ञा पाते ही शीघ्रताके साथ वह उनकी सेवामें उपस्थित हुआ और गोरक्षनाथजीके प्रस्ताव उपस्थित करनेपर उनके प्रस्तावका समर्थन करता हुआ कहने लगा कि महाराज! मैं नहीं समझताथा कि मेरा इतना बड़ा भाग्य है जो मैं कभी उस अलौकिक आनन्दका अनुभव कर सकूंगा जिसका अनुभव कर आपलोग अजरामर हुए अनेक प्राणियोंके

कल्याणार्थ देशाटन करते हुए अपनी अक्षुण्ण कीर्तिका विस्तार कररहे हैं। परं मेरा अदृष्ट अनुकूल है इसी लिये यदि आंपकी भी मेरे ऊपर अपरिमित कृपा है तो मैं आपके हस्तका पात्र हूं आप चाहें जहां ले जायें और रक्खें। सुबोध बालक मीनरामकी उक्तिसे गोरक्षनाथजी बडे ही प्रसन्न हुए। और उसकी ओरसे निश्चित होकर राणीके समीप पहुँचे। परं जब गोरक्षनाथजीने मीनरामके विना गुरुजीका चलना असम्भव बतला कर उसके मांगनेकी प्रार्थना की तबतो राणी एकबार ही मूर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पड़ी। यद्यपि उपायाभावसे विविश हो या यों कहिये कि स्वगुरुजीका लेजाना युक्तियुक्त एवं न्यायसंगत समझ कर किसी प्रकार उनके जानेपर राणी ऊपरी भावसे सहमत होगई थी तथापि उसके हृदयमें वह एक आभ्यन्तरिक गहरी चोट थी। इतना होनेपर भी फिर भला वह पुत्रका वियोग कैसे सह सकती थी। खैर किसी प्रकार विविध शीतलोपधोपचारसे कुछ क्षणमें राणी ससंज्ञा हुई गोरक्षनाथजीको कहने लगी महाराज! यह क्या अनर्थ करने लगे। क्या आपकी मुझे अत्यन्त ही शोक समुद्रमें डालनेकी इच्छा है। यद्यपि यों तो आप अप्रातिहतेच्छा हैं इसी लिये जो चाहें सोई कर एवं करवा सकते हैं तथापि इतनी बड़ी आकस्मिक वेदना सहनेमें मेरा हृदय समर्थ नहीं है। अतएव आपको उचित तो यह था कि राजाको भी न ले जाते इसपर भी आपका लडके मीनरामको हमारे उरस्स्थानसे दूर करना मानों हमारे मर्मस्थानमें कुठाराघात करना है। गोरक्षनाथजीने मीनरामके नामसे अत्यन्त शोकातुर हो मोहसे विह्वल हुई राणीको देखकर उससे कहा कि मातः! कुछ ध्यान दो जिसके नामसे तुम इतनी मोहान्धकारात्मक कूपमें पडकर निश्चेष्ट जैसी होगई हो वह मीनराम कुछ दिन पहले कहांथा। क्या तुमको यह भी भान था कि वह उस जगह अथवा उस जाति वा उस कुटुम्बमें है और हमारे घर जन्मपाकर हमारा पुत्र बननें वाला है। और क्या तुम उसके तुम्हारे घर आनेसे पहले भी उसमें कुछ प्रीति एवं नेह रखती थी। यदि नहीं तो कहो अब ऐसा क्यों करती हो। वायुवेग वशसे अनेक वृक्षपत्र एवं तृण उडा करते हैं जब आगे किसी वृक्षादिका उनको आश्रय मिलजाता है तब उसी के आश्रितहो कोई दिन विश्रामित होते हैं। तथापि उनका पारस्परिक अज्ञानमय मोह नहीं होता हैं। ठीक इसी प्रकार अपने २ कर्म वेगवशसे इधर उधर घूमते हुए प्राणी जब किसीका आश्रय पाकर कुछ दिन विश्रामित होजायें तो उनमें अपने चित्तको तुम्हारी तरह बान्ध रखना उचित नहीं। ऐसा करना वैसाही है जैसा कोई दिन के लिये धरोर रक्खी हुई किसीकी वस्तु में चित्तको पाशबद्ध कर डालना। यदि गुरुजी के मोहाच्छादित होनेका प्रश्न चित्तमें लातीहो तो वह तुम्हारी अज्ञातताका विचार समझना चाहिये। क्योंकि इस बातको तुमनहीं जानसकती हो मैं जानता हूं गुरुजी

न तो कभी इस विषय में मोहित हुए और न कभी होनेवाले हैं। किन्तु उनका अभिप्राय है गुरुभक्ति विषय में मेरी परीक्षा करना। अतःतुमको इस विषय में सूक्ष्म दृष्टिदेनी चाहिये और अपना प्राकृतिक हठ त्यागकर हमारे कार्यकी सहायतार्थ प्रयत्नकरना चाहिये। दूसरी बात, जिसके ऊपर तुमको विशेष ध्यान रखना चाहिये, यह है कि तुम हमारा परिचय समझो हम कौन हैं और किस कार्यार्थ संसारमें भ्रमण करते हैं। क्या तुमने जैसा कहडाला कि आप क्या अनर्थ करते हो वस्तुतः हमने अनर्थ ही किया है क्या, यदि अनर्थ करते तो तुमसे इतनी प्रार्थना करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी अबतक अपना कार्य कर कभीके चम्पत हुएहोते। परन्तु हम चाहते हैं कि तुम हमारा यथार्थ स्वरूप जान जाओ और यह निश्चय कर लो कि जैसा तुम कहबैठी हो हम वैसे नहीं हैं। प्रत्युत तुम जैसे भक्ति शील प्राणियोंकी आर्तवाणीसे आकृष्ट हुए उनको सर्वांश सम्पन्न बनाकर यथेष्ट फल भाजन करडालते हैं। क्या तुम प्रयागराजकी घटनासे परिचित नहीं हो मैंने एक समय स्वयं गुरुजीसे निरोध कर उन दुःखियोंका दुःख हरण करवाया था जो तुमसे भी अधिक दुःखी थे। मैं वही गोरक्षनाथ और मेरे गुरु वे ये ही मत्स्येन्द्रनाथ हैं जिन्होंने तुम्हारी प्रार्थनापर मुग्ध होकर तुम्हें सर्वसम्पन्न किया है। अर्थात् तुम जो ऐहलौकिक भोगविलास शून्य निजजीवनको व्यर्थ समझ बैठी थी उस त्रुटिको दूर किया और राज्यकार्य सञ्चालनके लिये परशुराम पुत्र दिया है। तथा योगक्रियामें अपरिमित कुशलता प्राप्त कर सांसारिक मिथ्या जटिलजाल सम्पूरितकूपसे स्वयं उद्धृत हो अन्य अनेक प्राणियोंके कल्याणार्थ तथा तुम्हारे कुलकी अक्षुण्ण कीर्तिका विस्तार करने के लिये यह मीनराम पुत्र दिया है। यह सुनकर राणीको गुरुशिष्योंकी लोक-हितैषिता एवं अद्भुत अलौकिक समस्त घटनाओंका स्मरण हो आया। इसी लिये उसने अपने मनमें पश्चात्ताप किया कि मैंने निःसन्देह भूल की है मुझे जो कुछ प्राप्त है सब इन्हींका प्रदान किया हुआ है। और जैसे इसके प्रदानकी शक्ति इनमें वर्तमान है वैसे ही आदान की भी है अतएव उसपर मेरा कुछ अधिकार नहीं। यदि है भी तो वह उसीपर है जिसको ये स्वयं मेरे अधीनस्थ करें। इत्यादि विचारानन्तर उसने गोरक्षनाथजीसे क्षमा करनेको कहा, और मीनरामको ले जानेकी सम्मति देदी। यह कार्य समाप्त कर गोरक्षनाथजी गुरुजीके समीप आये। और राणीकी सम्मतिको निवेदित कर चलनेकी तैयारीके लिये प्रार्थना करने लगे। यह समाचार पा कर मत्स्येन्द्रनाथजी आभ्यन्तरिक भावसे प्रसन्न हुए कहने लगे कि चलें तो ठीक परं हमतो वह क्रिया भी भूल गये जिसद्वारा इस गृहस्थ शरीरमें प्रविष्ट होते। गोरक्षनाथजीने कहा कि खैर कोई परवाहकी बात नहीं आप चलें तो सही वह भी सब याद आ जायगी। मैं स्वयं इसका प्रबन्ध करलूंगा। इस

प्रकार सर्व ओरसे निरुत्तर हो मत्स्येन्द्रनाथजीने चलनेकी आज्ञा दी। शीघ्रही एक महोत्सव उपस्थित हुआ बडे पुत्र परशुरामको राज्यतिलक दे विविध मङ्गलान्वित् वाद्य ध्वनिके साथ, उन्होंने लोगोंको आशीर्वाद देते हुए वहांसे प्रस्थान किया। और कतिपय दिनोंमें स्वराज्य सीमा पारकर पृष्ठागामी उन लोगोंको, जो सत्कारार्थ स्वराज्य सीमातक उनकी विविध शुश्रुषा करते आये थे, वापिस लौटनेकी आज्ञा दी। परं वे लोग मत्स्येन्द्रनाथजीको बहुत चाहते थे। अतः सदाके लिये उनसे वियोगी हुए देख अपने प्रेमसंपूरित उमड़ते हुए हृदयको न रोक सके। इसी लिये उन लोगोंने उस दिनकी रात्रीमें और उसी स्थानमें ठहरनेका अनुरोध किया। मत्स्येन्द्रनाथजीने उनकी अन्तिम अभ्यर्थना स्वीकृत की। तत्काल ही तम्बु वगेरह तन गये। भोजन तैयार होनेलगा (दादाजीका आज यह अन्तिम बादशाही ठाठ था) उधरसे दिन अपनी डिवटी पूर्ण कर अस्ताचलका अतिथि हुआ। इधरसे रात्री देवीने अपनी डिवटी पर खड़ी हो लोगोंको सूचित किया कि खबरदार होजाओ अब इधर उधर घूमनेकी कोई जरूरत नहीं है समग्र दिनके इधर उधर भ्रमणसे श्रान्त हो गये होंगे। अतः अब पडकर सो रहो जिससे थकावट दूर हो जाय। रात्रीकी इस तर्जनासे भयभीत हुए लोगोंने अपना २ समस्त कार्यक्रम छोडकर गृहकी शरणली। कृषकलोग जंगलसे घर आये तो उधर नगर निवासी दुकानदार लोग अपनी २ दुकान बन्धकर घरमें घुसे। और कुछ खा पी कर सोनेके लिये निद्रादेवीका आह्वान करने लगे। ठीक यही वृत्तांन्त दादाजीके लस्करका भी था। इसको भी लगातार कतिपय दिन मार्ग तय करते २ थकावटने तंग कर रक्खा था। अतएव जब भोजन तैयार होनेपर सबको समर्पित किया गया और उसके अनन्तर सोनेकी आज्ञा मिली तब वे समस्त लोग, जिनके हृदयमें मत्स्येन्द्रनाथजीके जानेका कुछ भी हर्ष शोक न था, पडकर सो रहे। परं मत्स्येन्द्रनाथजी और उनके नीतिमर्मज्ञ वृद्ध सहचारी न सोये। उनकी समग्र रात्री विविध वार्तालाप करते व्यतीत हुई। उधर गोरक्षनाथजी भी एक पृथक् कमरेमें लेटे हुए उनकी समस्त रात्रीमें होनेवाली गुप्त गूहको सुनते रहे अतः उनको भी निद्रादेवीकी गोदसे वियोगी होनापडा। खैर जिस किसी प्रकार रात्रीने अपने गमनकी घोषणाकी, प्रातःकाल हुआ, सूर्य भगवान्ने अपने तीक्ष्ण रस्मियोंद्वारा लोगोंको सचेत कर अपने कार्यमें सँलग्न होनेकी सूचनादी, उधर पक्षि वृन्द भी निज आवास छोडकर आहारार्थ वनक्षेत्रोंमें जाने लगे। इधर मत्स्येन्द्रनाथजीका अनुयायी सैन्यदल वापिस लौटने के लिये उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहा था। बडा ही दुःखद समय उपस्थित था। मत्स्येन्द्रनाथजीके वृद्ध मन्त्री जो, उनकी अलौकिक विचित्र नीतिपर मुग्ध हुए उनको परम प्रेमास्पद मानते थे, वे अश्रुपूरित नेत्र हुए अपनी प्रेमज विह्वल अवस्थासे दादाजीके चिर वियोगी होनेवाले कोमल हृदयको और भी द्रवीभूत बना रहे थे। परं करते क्या

व्याध हस्तगत हुए पुत्रकी ओर स्तब्ध नेत्रोंसे जैसे मृगी देखा करती है वे केवल इसी प्रकार देखने लगे और इतने मोहावृत्त हुए कि उनके मुखसे एक बारतो शब्दोच्चारण करना भी दुष्कर हो गया था। क्योंकि वे समझते थे कि संसारमें प्राय ऐसा देखा जाता है अत्यन्त नीतिकुशल राजाका एवं अत्यन्त विद्वान् (पण्डित) का पुत्र तादृश नहीं हुआ करता है। अतः उन्हींको सन्देह था सिंहासनासीन परशुराम कभी कुमार्गी निकल जाय और हमारा अनुभूत नैतिकानन्द मिट्टीमें मिल जाय। खैर किसी प्रकार पारस्परिक प्रास्थानिक मिलाप प्रारम्भ हुआ; और मिलते समय उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथजीसे अनुरोध किया कि स्वामिन्! कुछ धनदौलत तो ले जाते जिससे साधु सन्तोंको भोज्य देकर उन्हें अपने आगमनसे खुशी करते। यह बात सुन मत्स्येन्द्रनाथजीने गोरक्षनाथजीसे कहा कि है तो ठीक बात. क्यों भई तेरी समझमें क्या आता है. प्रत्युत्तरार्थ गोरक्षनाथजीने कहा कि क्यों बोझा खैंचा आगे बहुतेरे मायाके पर्वत खडे हैं आपको चाहिये जितना धन ले लेना। यह सुन उन्होंने कहा कि वे पर्वत मायाके तुमने बनाये होंगे। उत्तर मिला कि हां. प्रश्न हुआ कि यह पर्वत जो सामने दीख रहा है इसको भी धनमय बनादे तो क्या हर्ज है। उत्तर देते हुए गोरक्षनाथजीने कहा कि हर्जकी कोई बात नहीं इस पर्वतकी शिला मंगवा कर देखो स्वर्ण सही है या नहीं! शीघ्र शिला मंगाई गई। लाने वालेने कहा समय पहाड़ स्वर्णमय जान पड़ता है। यह देख मत्स्येन्द्रनाथजी मुस्कराये और समस्त लोग गोरक्षनाथजीके चरणोंमें गिरे, तथा मत्स्येन्द्रनाथजीको कहने लगे कि कुबेरकोश आपके समीप है अतः आपको फिर इस विषयकी कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिये। तदनन्तर पारस्परिक नमस्कार और आशीर्वाद होनेपर प्रस्थान करते हुए गोरक्षनाथजीने उस शिला एवं पर्वतको फिर दहन कर डाला। इस प्रकार सांसारिक लोगोंको अपने चरित्रोंसे विस्मित करते तथा मुमुक्षुजनों के चित्तमें सांसारिक असत्य व्यापारकी ओरसे अधिक उपरामता स्थापित करते हुए आप कुछ दिनोंमें गिरनारमें पहुँचे जहां मत्स्येन्द्रनाथजीका गुहास्थ शरीर दत्तात्रेयजीकी रक्षामें स्थित तथा। उस दिन दत्तात्रेयजीसे विविध वार्तालाप होनेपर अग्रिम दिन मत्स्येन्द्रनाथजीने राजाका देह त्याग कर अपने पूर्व शरीरमें प्रवेश किया।

इति श्री मत्स्येन्द्रनाथ समाधि विघ्न वर्णन नामक २३ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथयोगी

॥ अध्याय २४ ॥

श्री मत्स्येन्द्रनाथजीने अपने प्राणप्रिय शिष्य गोरक्षनाथजीके उपरोक्त प्रयत्नको देखकर आभ्यन्तरिक भावसे अत्यन्त प्रसन्न होते हुए उनकी बार २ प्रशंसाकी। और अतीव प्रेमावृत्त हुए आप उनके उत्साह वृद्धिकेलिये उनको अपने वक्षःस्थलसे संयोगित कर दत्तात्रेयजी की ओर इशारा कर कहने लगे कि महाराज! क्या आप देखते हैं गुरुभक्ति विषयमें प्राथमिक स्थान हमारे शिष्य इस गोरक्षनाथने ही प्राप्त किया है। उनके वाक्यका समर्थन करते हुए दत्तात्रेयजीने कहा कि क्यों नहीं जब आपने इनकी शिक्षा तथा अलौकिक शक्ति प्राप्त करानेके लिये स्वार्थ निमित्त कुछ भी उठा न रक्खा तब तो इनका इतना शक्तिशाली और गुरुभक्त होना स्वाभाविक ही था। क्या आप नहीं समझते हैं कि आत्माका आत्मा साक्षी है और वह आत्मा समस्त देहोंमें समरस होनेसे सबके हिताहितको समझता है। अतएव आपने जो हित इनके लिये प्रयुक्त किया उसका अनुपम फल आपको उपलब्ध हुआ है। इस असार संसारमें आप जैसे गुरु और इन जैसे शिष्योंका अनुकरण करने वाले गुरु शिष्य ही अपने सानन्द निष्कलङ्क जीवनको पूर्ण कर भावी जनोंके आदर्शरूप हुए संसारमें अपनी अक्षुण्ण स्वच्छ कीर्तिका विस्तार करनेके लिये समर्थ होसकते हैं। परन्तु खेद और महा खेद है महाराज! ऐसा समय आनेवाला है जिसमें इस मर्मको नहीं समझा जायेगा। अर्थात् जिस जन्म मरणात्मक असह्य दुःखका छेदन करने वाली क्रियाओंके प्रभावसे आपलोगोंने संसारमें नाना प्रकारकी अद्भुत लीला दिखलाई हैं प्रथम तो इन क्रियाओंके ज्ञाता योगी कम मिलेंगे। और जो मिलेंभीगे तो वे ऐसे होंगे कि आनुपूर्विक विद्याको नहीं बतलायेंगे। क्योंकि उनके चित्तमें इस प्रकारके भाव अङ्कुरित हुआ करेंगे कि सम्भवतः शिष्यके मादृश होनेपर हमारी प्रतिष्ठा रसातलमें चली जायेगी। अतएव क्रमाविहीन विद्या निष्फल हुआ करेगी विद्या निष्फल होनेसे शिष्यकी गुरुके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होनी स्वाभाविक है। इस प्रकार इन अलभ्य वस्तुरूप क्रियाओंका कुछ ही दिनमें ह्रास होजायेगा। ऐसी दशामें होने वाले योगी योगक्रिया शून्य रहते हुए सांसारिक लोगोंको थोथी वार्ताओंसे तर्जना दिया करेंगे; और भूलाभटका कोई सांसारिक मनुष्य

योगक्रियाका मुमुक्षु हुआ तच्छिक्षार्थ उनके समीप आकर शिष्य बननेकी इच्छा प्रकट किया करेगा तो उसको शिष्य करनेकी तो वे अवश्य शीघ्रता करेंगे परन्तु योगक्रियाकी शिक्षा विचारोंने स्वयं ली हो तो उसको दें। अतः इधर उधरकी वार्ताओंसे उसकी उदर पूर्ति कर मुफ्त सेवा कराते हुए द्वादश वर्षमें फावड़ीका नाम गुलसफा बतला कर इसी क्रमसे उतने ही वर्षबाद फिर किसी वस्तुका दूसरा नाम बतलाया करेंगे। इतने अरसे तक निष्फल सेवा करके, अथवा करके गुरु वा शिष्य एक तो अवश्य ऐहलौकिक यात्रा समाप्त कर बैठेगा। इस प्रकार योगीके लिये जो मृत्यु प्राप्त होना ही एक लोकनिन्दा और लज्जाकी बात है वही मृत्यु योगियोंको अपना भोग्यस्थान बनावेगा जिससे उनका मरणा संसारमें ऐसा समझा जायेगा जैसा अधमजीव कुत्ते बिडालादिका। मत्स्येन्द्रनाथजीने आपकी वार्ताको अवश्यम्भावी बतलाते हुए कहा कि यह सत्य है ईश्वरीय नियमानुकूल परिवर्तित होनेवाले कालके विचित्र चक्रको कोई अवरुद्ध नहीं करसकता है। संसार और सांसारिक कृत्यकी आवरिक मेघों जैसी गति है। जिस प्रकार वायुवेग वशात आवरण सामर्थ अभ्र स्थिर नहीं रहते हैं; किसी भी वस्तु को और आप दृष्टि डालिये वह क्षण २ में कुछका कुछ बनजाता है ठीक यही प्रकार इधर घटा लीजिये कालचक्र वेगवशसे प्रचलित एवं अन्तर्धानी क्रियाओंका लुप्त तथा प्रकट होना अनेक बार देखा गया और देखा जायेगा। इत्यादि पारम्परिक वार्तालापके अनन्तर गोरक्षनाथजीने गुरुजीसे अनुरोध किया कि अब यहांसे प्रस्थान करना चाहिये। यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजीने दत्तात्रेयजीसे प्रस्थानके लिये आज्ञा मांगी। उन्होंने सहर्ष आज्ञा प्रदान की जिससे पारम्परिक आदेशात्मक नमस्कारके पश्चात् वे तीनों महानुभाव वहांसे प्रस्थानित हुए सुदामापुरीकी ओर चले। जो कुछ दिनमें देशाटन करते एवं जनोंको योगोपदेश देते हुए माधोपुर नामक नगरकी सीमापर पहुँचे यह नगर समुद्रके समीप वर्तमान होनेसे अधिक उपजाऊ भूमिवाला नहीं था। अतएव इसके आसपास असंख्य खोले खण्डरोंसे व्याप्त जंगल दीख पडता था ठीक इसी वनमें कुछ दिन निवास करनेका निश्चय कर वहीं विश्रामित हुए उन्होंने एक गुहा तैयार की; जिसमें मत्स्येन्द्रनाथजी द्वादश वर्षके लिये फिर समाधिस्थ हुए। और गोरक्षनाथजीको आज्ञा देगये कि जबतक हम समाधिका उद्घाटन करें तबतक मीनरामको समस्त क्रियाओंका दिग्दर्शन करा देना जिससे फिर हमको अधिक प्रयत्न न करना पडे। गोरक्षनाथजीने गुरुजीकी इस आज्ञाको शिर झुकाकर स्वीकृत किया। यही नहीं उस अवधितक मीनरामको अखिल योग साधनीभूत क्रियाओंका ज्ञाता बनाडाला। जिससे कि उस अवसर प्राप्तिक समय सम्प्रज्ञात योगद्वारा असम्प्रज्ञात योगमें अनायाससे ही प्रविष्ट हो सके। तदनु सानन्द और विघ्न शून्यताके साथ यह समय अतीत होनेपर गुरुजीको जागृत दशामें

होने वाले समझ कर गोरक्षनाथजीने उनके शरीरको संस्कृत किया। ठीक निर्दिष्ट समयपर मत्स्येन्द्रनाथजीने समाधिका उद्‌घाटन करते हुए तथा अपने निरपाय कार्यकी समाप्ति विषयक ईश्वरको धन्यवाद देते हुए उनका हर्ष बढाया। और मीनरामके विषयमें वार्तालाप कर उसकी क्रिया ग्रहणता विषयक तीव्रता पूछी। गोरक्षनाथजीने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि स्वामिन्! व्युत्थानित चित्त पुरुषको क्रियाग्रहणतामें अवश्य काठिनता और विलम्बता प्राप्त होती है परं समाहित चित्त अर्थात् उत्तम अधिकारी पुरुषको उक्त दोनों वार्ताओंका सामना नहीं करना पडता है। यही कारण है इसने कुछ ही दिनोंमें औत्तमाधिकारिण क्रियाओंका मर्म समझ लिया है। जिससे इसका अग्रिम मार्ग सुगम होगया। यह श्रवण करते ही मत्स्येन्द्रनाथजी आन्तरिक रीतिसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। और उन्होंने उसी जगहपर मीनरामको स्वकीय चिन्हान्वित कर मीननाथ नामसे प्रसिद्ध किया। जिससे वह मत्स्येन्द्रनाथजीके अधीनस्थ विविध सावरादि विद्याओंके आदानार्थ अधिकारी हो सका। अतएव मत्स्येन्द्रनाथजीने जैसा उचित समझा उसी प्रकार उसे स्वाधिकृत नाना विद्याओंसे समलङ्कृत किया। और समस्त देवताओंकी तुष्टिकेलिये उससे एक अनुष्ठान करानेकी इच्छासे तत्कृत्यके अनुकूल स्थानकी अन्वेषणार्थ वे वहांसे प्रस्थानित हुए। जो कुछ दिनोंमें स्वीय अघटित वत् घटनाओंसे जनोंको विरामी तथा विस्मयी बनाते हुए, स्निग्धश्यामवनवृक्षलतापंक्तियोंसे व्याप्त, तथा विविधविमलजलस्रोत सम्पूरित कन्दरा वाला होनेसे, अनेक कमलतालावलम्बीहंससारससमानसरोवरगृही विचित्ररचित चित्रानुषङ्गी श्रोत्रसुखप्रदमधुरध्वनि करते हुए नानापक्षिवृन्दोंसे सुशोभित, ब्रह्मगिरि नामक पर्वतमें पहुँचे। जिसका अवलोकन करते ही मत्स्येन्द्रनाथजीने गोरक्ष-नाथजीकी ओर इसारा करते हुए कहा कि बस मेरी समझमें हमारे कार्यकी सिद्धिके अनुकूल यही स्थान उपयोगी है। गोरक्षनाथजीने गुरुजीके वचनका शीघ्र समर्थन करते हुए उत्तर प्रदान किया कि हां स्वामिन्! यह स्थान सर्वोत्कृष्ट एवं समस्तक्रिया निर्वाहनोपयोगी है। आपकी अभिलाषा इसी जगहपर ठहरनेकी है तो ठहरसकते हैं कोई बाधाकी बात नहीं। इस प्रकार मिश्रिताभिमत होकर उन्होंने स्वनिवासार्थ एकसमतलस्थल अन्वेषित किया जिसको निजकार्योपकारक तथा अन्तराय शून्य देखकर अधिष्ठित बनाते हुए अपने कर्तव्य कृत्यका आरम्भ किया। अर्थात् यहां द्वादश वर्षके लिये गुरुजी की रेख देख में शरीरको छोडकर गोरक्षनाथजी स्वयं समाधि निष्ठ हुए। उधर मत्स्येन्द्रनाथजीने मीननाथको सर्वदेवताओंके प्रसन्नार्थ प्रथम एक साप्ताहिक अनुष्ठानमें नियुक्तकर तदनन्तर द्वादश वर्षीय महाकठिन तप करनेमें नियोजित किया। जिसकी तदवस्थोपयोगिनी सेवा शुश्रूषा मत्स्येन्द्रनाथजी स्वयं करते थे। अतएव

वह कुछ ही दिनोंमें तदर्थ कठिनसे कठिन अभ्याससे अभ्यसित हो गया और उसने ऐसा घोर तप किया जिससे उसका शरीर महा प्रभावशाली तथा दिव्यकान्तिवाला दीख पडने लगा बडे ही सुख और व्यवधान विहीनतोऽथ मानसिक अपरिमित हर्षताके सहित उसका यह समय अतिक्रमित हुआ । प्रथम गोरक्षनाथजीने समाधि दशास्थ अनिर्वचनीय आनन्दात्मक निद्रा देवीकी गोदसे अपने आपको विमुक्तकर जागृत दशास्थ प्राकृतिक विविध चित्र विचित्र रंगरञ्जित, वायु वेग वशात् इधर उधर एवं ऊपर नींचे लहराते हुए पर्वतीय वृक्षलता पुञ्जको देखा । जो अनेक प्रकारके प्रफुल्लित फूलोंसे सनाथ हो रहा था । तदनु गोरक्षनाथजीके अनुरोधानुसार मीननाथको उस महाकठिनतोपहित द्वादश वर्षीय कालावच्छिन्नतपश्चर्यावस्थासे विमुक्ति गत करने के लिये मत्स्येन्द्रनाथजीने एक अत्युत्तम मुहूर्तान्वित दिवस स्मृतिगोचर किया, और उस तपोपलब्ध पवित्र नक्षत्रतावच्छिन्न शुभ दिनके प्राप्त होनेपर मीननाथको तपसे विमुक्त भी करादिया, जिससे मीननाथ अतीवानन्दित एवं प्रसन्न चित्त हो अपने आपको धन्य समझता हुआ अपने पूर्वजन्म कृत कर्मके शुभ होनेका अनुमानकर स्वार्थविषयक मत्स्येन्द्रनाथजीकी आन्तरिक अत्यन्त हितैषितासे उपकृत होकर अतीव नम्रभावसे उनमें श्रद्धा उत्पन्न करता हुआ उनकी स्तुति करने लगा । इसीलिये मत्स्येन्द्र-नाथजीने और भी अधिक प्रसन्न हो उसके निमित्त किये जानेवाले अपने प्रयत्नको सार्थक समझा और उसको समस्त देवताओंसे वर प्रदान करानेके वास्ते गोरक्षनाथजीसे परामर्श किया । उन्होंने प्रस्तावको योग्य प्रतिपादित करते हुए मीननाथको इस कृत्यका अधिकारी बतलाया : यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजी प्रसन्न हुए । और अपनी कक्षान्तर्गत पोटिकासे विभूति निकालनेको बाध्य हुए । जिसके प्रक्षिप्त करने पर तल्लक्ष्यस्थानिभूत विविध विमानारूढ देवी देवता आने लगे । प्रथम गणों सहित सकुटुम्ब त्रैलोक्याधिपति महादेवजी स्वागताभिमुख हुए । तदनु ब्रह्मा तथा विष्णुजीने कृपा की । जिनके आगमनकी सूचनासे सूचित हो अत्यन्त शीघ्रताके साथ अनेक देवता पधारे । गायनविद्यामें कुशल गान्धर्वसंघ बुलाया गया । जो इन्द्रजीके साथ ही आयाथा : उधर ऋद्धिसिद्धियोंको साथ लानेके लिये कुबेरको आहूत कियागया इधर मङ्गलार्थ चौसठ योगिनियोंने आकर मत्स्येन्द्रनाथजीकी वन्दना की : इतने ही में बावन भैरव, अष्टवसु, वरुण, तारागण, नक्षत्र, वायु, सप्तऋषि, सभी आपहुँचे । जिससे ब्रह्मगिरि अत्यन्त शोभायमान हुआ वैकुण्ठकी ईर्ष्या करने लगा । जहां गन्धर्वगण अपने विचित्र गायन और वाद्यध्वनि द्वारा देवसमूहका आनन्दप्रमोद प्रवृद्ध करता हुआ पर्वतको गूञ्जारित कररहाथा वहां उधरसे योगिनियोंका चित्ताकर्षक श्रोत्रपान प्रिय स्निग्धस्वरगीयमान तथा रक्ताधरोपर्याप्टचाञ्चल्यमन्दतोपहित मंगलमयशब्दध्वनि, उसकी सहायतामें नियत थी । और ऋद्धिसिद्धियोंके प्रतापसे जो महानुभाव जैसे भोज्य

पदार्थकी अभिलाषा करता था वह उसीको प्राप्त होताथा। ऐसा आनन्दोत्सव बहुत समयसे नहीं हुआथा। यह केवल मत्स्येन्द्रनाथजीके प्राणाधिक प्रिय कुमार एवं शिष्य मीननाथके अत्युच्च भाग्यका अथवा मत्स्येन्द्रनाथजीकी आपरिमित प्रियताका नमूना था (धन्य ऐसी गुरुप्रियताको, जिससे शिष्य इस कोटिमे पहुँच सके। अस्तु) उक्त महोत्सवके समाप्ति समय मत्स्येन्द्रनाथजीने समस्त देवताओंसे निवेदन किया कि हमने अपने शिष्य इस मीननाथ द्वारा आपलोगोंकी तुष्टिकेलिये प्रथम एक साप्ताहिक अनुष्ठान और तदनन्तर द्वादश वर्षकालिक, महाकाठिनतोपहित, तप कराया है जिसमें सकुशलता उत्तीर्ण हो यह आपलोगोंके अमूल्य वर प्रदानका पात्र होगया है। इसीलिये हमने इस महोत्सवका आरम्भ कर आपलोगोंको आहूत किया है यह वृत्तान्त आप महानुभावोंसे अज्ञात नहीं है। अतएव आपलोग इसे वचन दें कि हम यथावसर प्राप्त होनेपर तथा कालिक सहायताके लिये प्रस्तुत रहेंगे। यह सुन मीननाथको अधिकारी निश्चित कर समस्त देवता (तथास्तु) कहते हुए स्वकीय २ स्थानोंको गये। उधर इस कार्यसिद्धि विषयक प्रसन्नता प्रकट कर इन तीनों महानुभावोंने भी, जन्म मरणात्मक संसाररूपाग्निसे दग्धदेह विविधोपायनपाणि हुए, तद्दाहशमनार्थ जलात्मक समझ कर स्वकीय सेवामें उपस्थित होनेवाले, मुमुक्षु जनोंके उद्धारार्थ पृथक् २ होकर वहांसे देशाटनके लिये प्रस्थान किया।

इति श्रीमीननाथ वर प्रदान वर्णन नामक २४ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

न तो कभी इस विषय में मोहित हुए और न कभी होनेवाले हैं। किन्तु उनका अभिप्राय है गुरुभक्ति विषय में मेरी परीक्षा करना। अतःतुमको इस विषय में सूक्ष्म दृष्टिदेनी चाहिये और अपना प्रान्ताविक हठ त्यागकर हमारे कार्यकी सहायतार्थ प्रयत्नकरना चाहिये। दूसरी बात, जिसके ऊपर तुमको विशेष ध्यान रखना चाहिये, यह है कि तुम हमारा परिचय समझो हम कौन हैं और किस कार्यार्थ संसारमें भ्रमण करते हैं। क्या तुमने जैसा कहडाला कि आप क्या अनर्थ करते हो वस्तुतः हमने अनर्थ ही किया है क्या, यदि अनर्थ करते तो तुमसे इतनी प्रार्थना करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी अबतक अपना कार्य कर कभीके चम्पत हुएहोते। परन्तु हम चाहते हैं कि तुम हमारा यथार्थ स्वरूप जान जाओ और यह निश्चय कर लो कि जैसा तुम कहबैठी हो हम वैसे नहीं हैं। प्रत्युत तुम जैसे भक्ति शील प्राणियोंकी आर्त्तवाणीसे आकृष्ट हुए उनको सर्वांश सम्पन्न बनाकर यथेष्ट फल भाजन करडालते हैं। क्या तुम प्रयागराजकी घटनासे परिचित नहीं हो मैंने एक समय स्वयं गुरुजीसे निरोध कर उन दुःखियोंका दुःख हरण करवाया था जो तुमसे भी अधिक दुःखी थे। मै वही गोरक्षनाथ और मेरे गुरु वे ये ही मत्स्येन्द्रनाथहैं जिन्होंने तुम्हारी प्रार्थनापर मुग्ध होकर तुम्हें सर्वसम्पन्न किया है। अर्थात् तुम जो ऐहलौकिक भोगविलास शून्य निजजीवनको व्यर्थ समझ बैठी थी उस त्रुटिको दूर किया और राज्यकार्य सञ्चालनके लिये परशुराम पुत्र दिया है। तथा योगक्रियामें अपरिमित कुशलता प्राप्त कर सांसारिक मिथ्या जटिलजाल सम्मूरितकूपसे स्वयं उद्धृत हो अन्य अनेक प्राणियोंके कल्याणार्थ तथा तुम्हारे कुलकी अक्षुण्ण कीर्तिका विस्तार करने के लिये यह मीनराम पुत्र दिया है। यह सुनकर राणीको गुरुशिष्योंकी लोक हितैषिता एवं अद्भुत अलौकिक समस्त घटनाओंका स्मरण हो आया। इसी लिये उसने अपने मनमें पश्चात्ताप किया कि मैंने निःसन्देह भूल की है मुझे जो कुछ प्राप्त है सब इन्हींका प्रदान किया हुआ है। और जैसे इसके प्रदानकी शक्ति इनमें वर्तमान है वैसे ही आदान की भी है अतएव उसपर मेरा कुछ अधिकार नहीं। यदि है भी तो वह उसीपर है जिसको ये स्वयं मेरे अधीनस्थ करें। इत्यादि विचारानन्तर उसने गोरक्षनाथजीसे क्षमा करनेको कहा. और मीनरामको ले जानेकी सम्मति देदी। यह कार्य समाप्त कर गोरक्षनाथजी गुरुजीके समीप आये। और राणीकी सम्मतिको निवेदित कर चलनेकी तैयारीके लिये प्रार्थना करने लगे। यह समाचार पा कर मत्स्येन्द्रनाथजी आभ्यन्तरिक भावसे प्रसन्न हुए कहने लगे कि चलें तो ठीक परं हमतो वह क्रिया भी भूल गये जिसद्वारा उस गृहस्थ शरीरमें प्रविष्ट होते। गोरक्षनाथजीने कहा कि खैर कोई परवा की बात नहीं आप चलें तो सही वह भी सब याद आ जायेगी। मैं स्वयं इसका प्रबन्ध करलूंगा। इस

प्रकार सर्व ओरसे निरुत्तर हो मत्स्येन्द्रनाथजीने चलनेकी आज्ञा दी। शीघ्रही एक महोत्सव उपस्थित हुआ बडे पुत्र परशुरामको राज्यतिलक दे विविध मङ्गलान्वित वाद्य ध्वनिके साथ उन्होंने लोगोंको आशीर्वाद देते हुए वहांसे प्रस्थान किया। और कतिपय दिनोंमें स्वराज्य सीमा पारकर पृष्ठगामी उन लोगोंको, जो सत्कारार्थ स्वराज्य सीमातक उनकी विविध शुश्रुषा करते आये थे, वापिस लौटनेकी आज्ञा दी। परं वे लोग मत्स्येन्द्रनाथजीको बहुत चाहते थे। अतः सदाके लिये उनसे वियोगी हुए देख अपने प्रेमसंपूरित उमड़ते हुए हृदयको न रोक सके। इसी लिये उन लोगोंने उस दिनकी रात्रीमें और उसी स्थानमें ठहरनेका अनुरोध किया। मत्स्येन्द्रनाथजीने उनकी अन्तिम अभ्यर्थना स्वीकृत की। तत्काल ही तम्बु वगेरह तन गये। भोजन तैयार होनेलगा (दादाजीका आज यह अन्तिम बादशाही ठाठ था) उधरसे दिन अपनी डिवटी पूर्ण कर अस्ताचलका अतिथि हुआ। इधरसे रात्री देवीने अपनी डिवटी पर खड़ी हो लोगोंको सूचित किया कि खबरदार होजाओ अब इधर उधर धूमनेकी कोई जरूरत नहीं है समग्र दिनके इधर उधर भ्रमणसे श्रान्त हो गये होगे। अतः अब पडकर सो रहो जिससे थकावट दूर हो जाय। रात्रीकी इस तर्जनासे भयभीत हुए लोगोंने अपना २ समस्त कार्यक्रम छोडकर गृहकी शरणली। कृषकलोग जंगलसे घर आये तो उधर नगर निवासी दुकानदार लोग अपनी २ दुकान बन्धकर घरमें घुसे। और कुछ खा पी कर सोनेके लिये निद्रादेवीका आह्वान करने लगे। ठीक यही वृत्तान्त दादाजी के लस्करका भी था। इसको भी लगातार कतिपय दिन मार्ग तय करते २ थकावटने तंग कर रक्खा था। अतएव जब भोजन तैयार होनेपर सबको समर्पित किया गया और उसके अनन्तर सोनेकी आज्ञा मिली तब वे समस्त लोग, जिनके हृदयमें मत्स्येन्द्रनाथजीके जानेका कुछ भी हर्ष शोक न था, पडकर सो रहे; परं मत्स्येन्द्रनाथजी और उनके नीतिमर्मज्ञ वृद्ध सहचारी न सोये। उनकी समग्र रात्री विविध वार्तालाप करते व्यतीत हुई। उधर गोरक्ष-नाथजी भी एक पृथक् कमरेमें लेटे हुए उनकी समस्त रात्रीमें होनेवाली गुप्त गूहको सुनते रहे अतः उनको भी निद्रादेवीकी गोदसे वियोगी होनापडा। खैर जिस किसी प्रकार रात्रीने अपने गमनकी घोषणाकी, प्रातःकाल हुआ, सूर्य भगवान्ने अपने तीक्ष्ण रश्मियोंद्वारा लोगोंको सचेत कर अपने कार्यमें सँलग्न होनेकी सूचनादी, उधर पक्षि वृन्द भी निज आवास छोडकर आहारार्थ वनक्षेत्रोंमें जाने लगे। इधर मत्स्येन्द्रनाथजीका अनुयायी सैन्यदल वापिस लौटने के लिये उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहा था। बडा ही दुःखद समय उपस्थित था। मत्स्येन्द्रनाथजीके वृद्ध मन्त्री जो, उनकी अलौकिक विचित्र नीतिपर मुग्ध हुए उनको परम प्रेमास्पद मानते थे, वे अश्रुपूरित नेत्र हुए अपनी प्रेमज विह्वल अवस्थासे दादाजी के चिर वियोगी होनेवाले कोमल हृदयको और भी द्रवीभूत बना रहे थे। परं करते क्या

स्वार्थ हस्तगत हुए पुत्रकी ओर स्तब्ध नेत्रोंसे जैसे मृगी देखा करती है वे केवल इसी प्रकार देखने लगे और इतने मोहावृत्त हुए कि उनके मुखसे एक बारतो शब्दोच्चारण करना भी दुष्कर हो गया था। क्योंकि वे समझते थे कि संसारमें प्राय ऐसा देखा जाता है अत्यन्त नीतिकुशल राजाका एवं अत्यन्त विद्वान् (पण्डित) का पुत्र तादृश नहीं हुआ करता है। अतः उन्होंको सन्देह था सिंहासनासीन परशुराम कभी कुमार्गी निकल जाय और हमारा अनुभूत नैतिकानन्द मिट्टीमें मिल जाय। खैर किसी प्रकार पारस्परिक प्रारम्भिक मिलाप प्रारम्भ हुआ। और मिलते समय उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथजीसे अनुरोध किया कि स्वामिन्! कुछ धनदौलत तो ले जाते जिससे साधु सन्तोंको भोज्य देकर उन्हें अपने आगमनसे खुशी करते। यह बात सुन मत्स्येन्द्रनाथजीने गोरक्षनाथजीसे कहा कि हैं तो ठीक बात, क्यों भई तेरी समझमें क्या आता है। प्रत्युत्तरार्थ गोरक्षनाथजीने कहा कि क्यों बोझा मिरपर, आगे बहुतसे मायाके पर्वत खड़े हैं आपको चाहिये जितना धन ले लेना। यह सुन उन्होंने कहा कि वे पर्वत मायाके तुमने बनाये होंगे। उत्तर मिला कि हां, प्रश्न हुआ कि यह पर्वत जो सामने दीख रहा है इसको भी धनमय बनादे तो क्या हर्ज है। उत्तर देते हुए गोरक्षनाथजीने कहा कि हर्जकी कोई बात नहीं इस पर्वतकी शिला मंगवा कर देखो स्वर्णमयी हैं या नहीं! शीघ्र शिला मंगाई गई। लाने वालेने कहा समग्र पहाड़ स्वर्णमय जान पड़ता है। यह देख मत्स्येन्द्रनाथजी मुस्कराये और समस्त लोग गोरक्षनाथजीके चरणोंमें गिरे। तथा मत्स्येन्द्रनाथजीको कहने लगे कि कुबेरकोश आपके समीप है अतः आपको फिर इस विषयकी कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिये। तदनन्तर पारस्परिक नमस्कार और आशीर्वाद होनेपर प्रस्थान करते हुए गोरक्षनाथजीने उस शिला एवं पर्वतको फिर दृषत् कर डाला। इस प्रकार सांसारिक लोगोंको अपने चरित्रोंसे विस्मित करते तथा मुमुक्षुजनोंके चित्तमें सांसारिक अतथ्य व्यापारकी ओरसे अधिक उपरामता स्थापित करते हुए आप कुछ दिनोंमें गिरनारमें पहुँचे जहां मत्स्येन्द्रनाथजीका गुहास्थ शरीर दत्तात्रेयजीकी रक्षामें स्थित था। उस दिन दत्तात्रेयजीसे विविध वार्तालाप होनेपर अग्रिम दिन मत्स्येन्द्रनाथजीने राजाका देह त्याग कर अपने पूर्व शरीरमें प्रवेश किया।

इति श्री मत्स्येन्द्रनाथ समाधि विघ्न वर्णन नामक २३ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय २४ ॥

श्री मत्स्येन्द्रनाथजीने अपने प्राणप्रिय शिष्य गोरक्षनाथजीके उपरोक्त प्रयत्नको देखकर आभ्यन्तरिक भावसे अत्यन्त प्रसन्न होते हुए उनकी बार २ प्रशंसाकी । और अतीव प्रेमावृत्त हुए आप उनके उत्साह वृद्धिकेलिये उनको अपने वक्षःस्थलसे संयोगित कर दत्तात्रेयजी की ओर इसारा कर कहने लगे कि महाराज! क्या आप देखते हैं गुरुभक्ति विषयमें प्राथमिक स्थान हमारे शिष्य इस गोरक्षनाथने ही प्राप्त किया है । उनके वाक्यका समर्थन करते हुए दत्तात्रेयजीने कहा कि क्यों नहीं जब आपने इनकी शिक्षा तथा अलौकिक शक्ति प्राप्त करानेके लिये स्वार्थ निमित्त कुछ भी उठा न रक्खा तब तो इनका इतना शक्तिशाली और गुरुभक्त होना स्वाभाविक ही था । क्या आप नहीं समझते हैं कि आत्माका आत्मा साक्षी है और वह आत्मा समस्त देहोंमें समरस होनेसे सबके हिताहितको समझता है। अतएव आपने जो हित इनके लिये प्रयुक्त किया उसका अनुपम फल आपको उपलब्ध हुआ है । इस असार संसारमें आप जैसे गुरु और इन जैसे शिष्योंका अनुकरण करने वाले गुरु शिष्य ही अपने सानन्द निष्कलङ्क जीवनको पूर्ण कर भावी जनोंके आदर्शरूप हुए संसारमें अपनी अक्षुण्ण स्वच्छ कीर्तिका विस्तार करनेके लिये समर्थ होसकते हैं। परन्तु खेद और महा खेद है महाराज ! ऐसा समय आनेवाला है जिसमें इस मर्मको नहीं समझा जायेगा । अर्थात् जिस जन्म मरणात्मक असह्य दुःखका छेदन करने वाली क्रियाओंके प्रभावसे आपलोगोंने संसारमें नाना प्रकारकी अद्भुत लीला दिखलाई हैं प्रथम तो इन क्रियाओंके ज्ञाता योगी कम मिलेंगे । और जो मिलेंभीगे तो वे ऐसे होंगे कि आनुपूर्विक विद्याको नहीं बतलायेंगे । क्योंकि उनके चित्तमें इस प्रकारके भाव अङ्कुरित हुआ करेंगे कि सम्भवतः शिष्यके मादृश होनेपर हमारी प्रतिष्ठा रसातलमें चली जायेगी । अतएव क्रमाविहीन विद्या निष्फल हुआ करेगी विद्या निष्फल होनेसे शिष्यकी गुरुके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होनी स्वाभाविक है । इस प्रकार इन अलभ्य वस्तुरूप क्रियाओंका कुछ ही दिनमें ह्रास होजायेगा। ऐसी दशामें होने वाले योगी योगक्रिया शून्य रहते हुए सांसारिक लोगोंको थोथी वार्ताओंसे तर्जना दिया करेंगे। और भूलाभटका कोई सांसारिक मनुष्य

योगक्रियाका मुमुक्षु हुआ तच्छिक्षार्थ उनके समीप आकर शिष्य बननेकी इच्छा प्रकट किया करेगा तो उसको शिष्य करनेकी तो वे अवश्य शीघ्रता करेंगे परन्तु योगक्रियाकी शिक्षा विचारोंने स्वयं ली हो तो उसको दें। अतः इधर उधरकी वार्ताओंसे उसकी उदर पूर्ति कर मुफ्त सेवा कराते हुए द्वादश वर्षमें फावड़ीका नाम गुलसफा बतला कर इसी क्रमसे उतने ही वर्षबाद फिर किसी वस्तुका दूसरा नाम बतलाया करेंगे। इतने अरसे तक निष्फल सेवा करके, अथवा करके गुरु वा शिष्य एक तो अवश्य ऐहलौकिक यात्रा समाप्त कर बैठेगा। इस प्रकार योगीके लिये जो मृत्यु प्राप्त होना ही एक लोकनिन्दा और लज्जाकी बात है वही मृत्यु योगियोंको अपना भोग्यस्थान बनावेगा जिससे उनका मरणा संसारमें ऐसा समझा जायगा जैसा अधमजीव कुत्ते बिडालादिका। मत्स्येन्द्रनाथजीने आपकी बार्ताको अवश्यम्भावी बतलाते हुए कहा कि यह सत्य है ईश्वरीय नियमानुकूल परिवर्तित होनेवाले कालके विचित्र चक्रको कोई अवरुद्ध नहीं करसकता है। संसार और सांसारिक कृत्यकी आवरणिक मेघों जैसी गति है। जिस प्रकार वायुवेग वशात् श्रावण मासस्थ अभ्र स्थिर नहीं रहते हैं। किसी भी बद्दल की ओर आप दृष्टि डालिये वह क्षण २ में कुछका कुछ बनजाता है ठीक यही प्रकार इधर घटा लीजिये कालचक्र वेगवशसे प्रचलित एवं अन्तर्धानी क्रियाओंका लुप्त तथा प्रकट होना अनेक बार देखा गया और देखा जायगा। इत्यादि पारस्परिक वार्तालापके अनन्तर गोरक्षनाथजीने गुरुजीसे अनुरोध किया कि अब यहांसे प्रस्थान करना चाहिये। यह सुनकर मत्स्येन्द्रनाथजीने दत्तात्रेयजीसे प्रस्थानके लिये आज्ञा मांगी। उन्होंने सहर्ष आज्ञा प्रदान की जिससे पारस्परिक आदेशात्मक नमस्कारके पश्चात् वे तीनों महानुभाव वहांसे प्रस्थानित हुए सुदामापुरीकी ओर चले। जो कुछ दिनमें देशाटन करते एवं जनोंको योगोपदेश देते हुए माधोपुर नामक नगरकी सीमापर पहुँचे यह नगर समुद्रके समीप वर्तमान होनेसे अधिक उपजाऊ भूमिवाला नहीं था। अतएव इसके आसपास असंख्य खोले खण्डरोंसे व्याप्त जंगल दीख पडता था ठीक इसी बनमें कुछ दिन निवास करनेका निश्चय कर वहीं विश्रामित हुए उन्होंने एक गुहा तैयार की। जिसमें मत्स्येन्द्रनाथजी द्वादश वर्षके लिये फिर समाधिस्थ हुए। और गोरक्षनाथजीको आज्ञा देगये कि जबतक हम समाधिका उद्घाटन करें तबतक मीनरामको समस्त क्रियाओंका दिग्दर्शन करा देना जिससे फिर हमको अधिक प्रयत्न न करना पड़े। गोरक्षनाथजीने गुरुजीकी इस आज्ञाको शिर झुकाकर स्वीकृत किया। यही नहीं उस अवधितक मीनरामको अखिल योग साधनीभूत क्रियाओंका ज्ञाता बनाडाला। जिससे कि वह अवसर प्राप्तिके समय सम्प्रज्ञात योगद्वारा असम्प्रज्ञात योगमें अनायाससे ही प्रविष्ट हो सकें। तदनु सानन्द और विघ्न शून्यताके साथ यह समय अतीत होनेपर गुरुजीको जागृत दशामें

होने वाले समझ कर गोरक्षनाथजीने उनके शरीरको संस्कृत किया। ठीक निर्दिष्ट समयपर मत्स्येन्द्रनाथजीने समाधिका उद्घाटन करते हुए तथा अपने निरपाय कार्यकी समाप्ति विषयक ईश्वरको धन्यबाद देते हुए उनका हर्ष बढाया। और मीनरामके विषयमें बार्तालाप कर उसकी क्रिया ग्रहणता विषयक तीव्रता पूछी। गोरक्षनाथजीने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि स्वामिन्! व्युत्थानित चित्त पुरुषको क्रियाग्रहणतामें अवश्य कठिनता और विलम्बता प्राप्त होती है परं समाहित चित्त अर्थात् उत्तम अधिकारी पुरुषको उक्त दोनों वार्ताओंका सामना नहीं करना पडता है। यही कारण है इसने कुछ ही दिनोंमें औत्तमाधिकारिण क्रियाओंका मर्म समझ लिया है। जिससे इसका अग्रिम मार्ग सुगम होगया। यह श्रवण करते ही मत्स्येन्द्रनाथजी आन्तरिक रीतिसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। और उन्होंने उसी जगहपर मीनरामको स्वकीय चिन्हान्वित कर मीननाथ नामसे प्रसिद्ध किया। जिससे वह मत्स्येन्द्रनाथजीके अधीनस्थ विविध साबरादि विद्याओंके आदानार्थ अधिकारी हो सका। अतएव मत्स्येन्द्रनाथजीने जैसा उचित समझा उसी प्रकार उसे स्वाधिकृत नाना विद्याओंसे समलङ्कृत किया। और समस्त देवताओंकी तुष्टिकेलिये उससे एक अनुष्ठान करानेकी इच्छासे तत्कृत्यके अनुकूल स्थानकी अन्वेषणार्थ वे वहांसे प्रस्थानित हुए। जो कुछ दिनोंमें स्वीय अघटित वत् घटनाओंसे जनोंको विरामी तथा विस्मयी बनाते हुए, स्निग्धश्यामवनवृक्षलतापंक्तियोंसे व्याप्त, तथा विविधविमलजलस्रोत सम्पूरित कन्दरा वाला होनेसे, अनेक कमलतालावलम्बीहंससारससमानसरोवरगृही विचित्ररचित चित्रानुषङ्गी श्रोत्रसुखप्रदमधुरध्वनि करते हुए नानापक्षिवृन्दोंसे सुशोभित, ब्रह्मगिरि नामक पर्वतमें पहुँचे। जिसका अवलोकन करते ही मत्स्येन्द्रनाथजीने गोरक्ष-नाथजीकी ओर इसारा करते हुए कहा कि बस मेरी समझमें हमारे कार्यकी सिद्धिके अनुकूल यही स्थान उपयोगी है। गोरक्षनाथजीने गुरुजीके वचनका शीघ्र समर्थन करते हुए उत्तर प्रदान किया कि हां स्वामिन्! यह स्थान सर्वोत्कृष्ट एवं समस्तक्रिया निर्वाहनोपयोगी है। आपकी अभिलाषा इसी जगहपर ठहरनेकी है तो ठहरसकते हैं कोई बाधाकी बात नहीं। इस प्रकार मिश्रिताभिमत होकर उन्होंने स्वनिवासार्थ एकसमतलस्थल अन्वेषित किया जिसको निजकार्योपकारक तथा अन्तराय शून्य देखकर अधिष्ठित बनाते हुए अपने कर्तव्य कृत्यका आरम्भ किया। अर्थात् यहां द्वादश वर्षके लिये गुरुजी की रेख देख में शरीरको छोडकर गोरक्षनाथजी स्वयं समाधि निष्ठ हुए। उधर मत्स्येन्द्रनाथजीने मीननाथको सर्वदेवताओंके प्रसन्नार्थ प्रथम एक साप्ताहिक अनुष्ठानमें नियुक्तकर तदनन्तर द्वादश वर्षीय महाकठिन तप करनेमें नियोजित किया। जिसकी तदवस्थोपयोगिनी सेवा शुश्रुषा मत्स्येन्द्रनाथजी स्वयं करते थे। अतएव

वह कुछ ही दिनोंमें तदर्थ कठिनसे कठिन अभ्याससे अभ्यसित हो गया और उसने ऐसा घोर तप किया जिससे उसका शरीर महा प्रभावशाली तथा दिव्यकान्तिवाला दीख पडने लगा। बडे ही सुख और व्यवधान विहीनतोऽथ मानसिक अपरिमित हर्षताके सहित उसका यह समय अतिक्रमित हुआ। प्रथम गोरक्षनाथजीने समाधि दशास्थ अनिर्वचनीय आनन्दात्मक निद्रा देवीकी गोदसे अपने आपको विमुक्तकर जागृत दशास्थ प्राकृतिक विविध चित्र विचित्र रंगरञ्जित, वायु वेग वशात् इधर उधर एवं ऊपर नींचे लहराते हुए पर्वतीय वृक्षलता पुञ्जको, देखा। जो अनेक प्रकारके प्रफुल्लित फूलोंसे सनाथ हो रहा था। तदनु गोरक्षनाथजीके अनुरोधानुसार मीननाथको उस महाकठिनतोपहित द्वादश वर्षीय कालावच्छिन्नतपश्चर्यावस्थासे विमुक्ति गत करने के लिये मत्स्येन्द्रनाथजीने एक अत्युत्तम मुहूर्तान्वित दिवस स्मृतिगोचर किया, और उस तपोपलब्ध पवित्र नक्षत्रतावच्छिन्न शुभ दिनके प्राप्त होनेपर मीननाथको तपसे विमुक्त भी करादिया जिससे मीननाथ अतीवानन्दित एवं प्रसन्न चित्त हो अपने आपको धन्य समझता हुआ अपने पूर्वजन्म कृत कर्मके शुभ होनेका अनुमानकर स्वार्थिवयक मत्स्येन्द्रनाथजीकी आन्तरिक अत्यन्त हितैषितासे उपकृत होकर अतीव नम्रभावसे उनमें श्रद्धा उत्पन्न करता हुआ उनकी स्तुति करने लगा। इसीलिये मत्स्येन्द्र-नाथजीने और भी अधिक प्रसन्न हो उसके निमित्त किये जानेवाले अपने प्रयत्नको सार्थक समझा और उसको समस्त देवताओंसे वर प्रदान करानेके वास्ते गोरक्षनाथजीसे परामर्श किया। उन्होंने प्रस्तावको योग्य प्रतिपादित करते हुए मीननाथको इस कृत्यका अधिकारी बतलाया। यह सुन मत्स्येन्द्रनाथजी प्रसन्न हुए। और अपनी कक्षान्तर्गत पोटिकासे विभूति निकालनेको बाध्य हुए। जिसके प्रक्षिप्त करने पर तत्तत्स्थानिभूत विविध विमानारूढ देवी देवता आने लगे, प्रथम गणों सहित सकुटुम्ब त्रैलोक्याधिपति महादेवजी स्थानाभिमुख हुए। तदनु ब्रह्मा तथा विष्णुजीने कृपा की। जिनके आगमनकी सूचनासे सूचित हो अत्यन्त शीघ्रताके साथ अनेक देवता पधारे। गायनविद्यामें कुशल गान्धर्वसंघ बुलाया गया। जो इन्द्रजीके साथ ही आयाथा। उधर ऋद्धिसिद्धियोंको साथ लानेके लिये कुबेरको आहूत कियागया इधर मङ्गलार्थ चौसठ योगिनियोंने आकर मत्स्येन्द्रनाथजीकी वन्दना की। इतने ही में बावन भैरव, अष्टवसु, वरुण, तारागण, नक्षत्र, वायु, सप्त ऋषि, सभी आपहुँचे। जिससे स्वर्णगिरि अत्यन्त शोभायमान हुआ वैकुण्ठकी ईर्ष्या करने लगा। जहां गन्धर्वगण अपने विचित्र गायन और वाद्यध्वनि द्वारा देवसमूहका आनन्दप्रमोद प्रवृद्ध करता हुआ पर्वतको गूञ्जारित कररहाथा वहां उनसे योगिनियोंका चित्ताकर्षक, श्रोत्रपान प्रिय स्निग्धस्वरगीयमान तथा रक्ताधरोपर्योष्ठमात्र व्यवच्छेदतोपहित मंगलमयशब्दध्वनि, उसकी सहायतामें नियत थी। और ऋद्धिसिद्धियोंके प्रतापसे जो महानुभाव जैसे भोज्य

पदार्थकी अभिलाषा करता था वह उसीको प्राप्त होताथा। ऐसा आनन्दोत्सव बहुत समयसे नहीं हुआथा। यह केवल मत्स्येन्द्रनाथजीके प्राणाधिक प्रिय कुमार एवं शिष्य मीननाथके अत्युच्च भाग्यका अथवा मत्स्येन्द्रनाथजीकी आपरिमित प्रियताका नमूना था (धन्य ऐसी गुरुप्रियताको, जिससे शिष्य इस कोटिमें पहुँच सकै। अस्तु) उक्त महोत्सवके समाप्ति समय मत्स्येन्द्रनाथजीने समस्त देवताओंसे निवेदन किया कि हमने अपने शिष्य इस मीननाथ द्वारा आपलोगोंकी तुष्टिकेलिये प्रथम एक साप्ताहिक अनुष्ठान और तदनन्तर द्वादश वर्षकालिक, महाकठिनतोपहित, तप कराया है जिसमें सकुशलता उत्तीर्ण हो यह आपलोगोंके अमूल्य बर प्रदानका पात्र होगया है। इसीलिये हमने इस महोत्सवका आरम्भ कर आपलोगोंको आहूत किया है यह वृत्तान्त आप महानुभावोंसे अज्ञात नहीं है। अतएव आपलोग इसे वचन दें कि हम यथावसर प्राप्त होनेपर तथा कालिक सहायताके लिये प्रस्तुत रहेंगे। यह सुन मीननाथको अधिकारी निश्चित कर समस्त देवता (तथास्तु) कहते हुए स्वकीय २ स्थानोंको गये। उधर इस कार्यसिद्धि विषयक प्रसन्नता प्रकट कर इन तीनों महानुभावोंने भी, जन्म मरणात्मक संसाररूपाग्निसे दग्धदेह विविधोपायनपाणि हुए, तद्दाहशमनार्थ जलात्मक समझ कर स्वकीय सेवामें उपस्थित होनेवाले, मुमुक्षु जनोंके उद्धारार्थ पृथक् २ होकर वहांसे देशाटनके लिये प्रस्थान किया।

इति श्रीमीननाथ बर प्रदान वर्णन नामक २४ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय २५ ॥

गोरक्षनाथजी ब्रह्मगिरिसे चलकर बहुत समय तक इधर उधर भ्रमण करते हुए और योगका महत्त्व जाननेकी इच्छावाले मनुष्योंको उस पदपर पहुँचाते हुए दक्षिणदेशस्थ समुद्रतटके समीप वर्तमान कदरी (आधुनिक प्रसिद्धकजली) स्थानमें पहुँचे । जहां सिंहलद्वीपसे आते समय भी विश्रामित हुएथे । यह बड़ा ही एकान्तिक और रमणीय स्थल था जिसका मनोहारी दृश्य, तथा जलवायु, उनके चित्तको हर्षित करने वाला होकर उनके वहां निवास करनेमें सहायक हुआ । यह देख प्रसन्न हो उन्होंने उस स्थलको अपना आश्रय बना लिया । जिसमें दीर्घकाल तक निवास कर आपने अनेक शिष्य बनाये। और उनको यथा अधिकारी निश्चित कर उसी क्रमसे योग शिक्षा प्रदान करते हुए योगेश्वरपदपर पहुँचा दिया । जिससे वे अपना ऐहलौकिक आगमन सफल जानकर उनकी विविध सेवा शुश्रुषामें तत्पर हुए । इस प्रकार पारस्परिक शिक्षाप्रदान तथा सेवा करते कराते सानन्द समय व्यतीत होनेपर गोरक्षनाथजीने अपने शिष्योंको असम्प्रज्ञाताख्य समाधिका आनन्द अनुभवित करनेके लिये उत्साहित किया । जिससे उन्होंने गुरुजीकी कृपा वशात् कुछ ही दिनोंमें वहां तक निपुणता प्राप्तकी कि जितने काल तक समाधि लगानेकी इच्छा हो उतने काल तक लगा सकें । यह देख गोरक्षनाथजीने भी जब यह निश्चय कर लिया कि ठीक ये लोग इस कृत्यमें उत्तीर्ण होगये हैं तबतो उनके लिये आज्ञा प्रदानकी कि द्वादश वर्षीय मर्यादा रखकर समाधिस्थ हो जाओ । गुरुजीकी यह आज्ञा श्रवण करते ही समस्त शिष्य समाधि निष्ठ हुए । जिनके शरीरोंकी रक्षा स्वयं श्री नाथजी करते थे । तदनु एकके अनन्तर दूसरा दूसरेके अनन्तर तीसरा इसी क्रमसे सानन्द और विघ्न विहीनताके साथ द्वादश वर्ष व्यतीत हो गये । इस बहु लम्बे समयकी समाधिमें भी उत्तीर्ण देखकर गोरक्षनाथजी अपने शिष्योंके ऊपर आभ्यन्तरिक भावसे प्रसन्न हुए सोचने लगे कि ठीक हमने जैसा इनको उत्तम अधिकारी समझकर तप करानेकी उपेक्षा करते हुए एकदम अभ्यास वैराग्य द्वारा इस दशामें प्राप्त होनेके लिये यत्न किया था ये वैसे ही निकले । और क्रम प्राप्त प्रत्येक दशामें इन्होंने निपुणता प्रदर्शितकी । ठीक ऐसी ही

मनोधारणाके पश्चात् गुरुजीने शिष्योंके शरीरको संस्कृत किया। जिससे निर्दिष्ट अवधिपर उन्होंने अपनी समाधिको उद्धाटित कर गुरुचरण रजको मस्तक पर धारण करते हुए नम्रतायुक्त अनेक वन्दनाकी। साथ ही यह भी अभ्यर्थनाकी कि स्वामिन्! हमें कुछ आज्ञा प्रदान करो जिससे हम कुछ लोक हितार्थ कार्य सञ्चालनकर अपने नाथनामके अन्वर्थी हो सकें। गोरक्षनाथजी स्वयं इस कृत्यको सञ्चालित करनेके लिये अवतरित हुए थे और अपने शिष्योंको अनेक कष्ट तथा प्रयत्नसे इतने अधिक शक्तिशाली बनानेका भी उनका उद्देश यही था कि ये कुछ लोकहितार्थ कार्य सञ्चालित कर अपने गम्यमार्गको समीप करें अतएव अत्यन्त प्रसन्नताके साथ निर्विकल्प हो उन्होंने आज्ञा दी कि अवश्य ऐसा विचार करना उचित और न्याय संगत है। क्योंकि मैंने इसी लिये तुमको मादृश बनाया है कि जिससे तुम हमारे उद्देशकी पूर्ति कर सको। और उसके साधनीभूत किसी भी क्रियाके निमित्त तुमको दूसरेका मुख न ताकना पड़े। अतः जाओ अभिलषित कार्यमें कुशलता दिखलाकर जनहितार्थ कृत्योत्पादन करते हुए उनके हृदयमें वह भाव अङ्कुरित करो कि जिससे वे लोग तुमको अपना हृदयनाथ समझें। और ऐसा करनेपर तुम अपने इस वेष धारणमें कृतकार्य हो अनृण हो सको। यह सुनकर उनके हृदयमें और भी अधिक उत्साहका प्रवाह प्रवाहित हो गया। अतएव हस्तसम्पुटीकर गुरुजी की पुनः २ आदेश आदेश शब्द पूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम करनेपर उन्होंने वहांसे गमन किया। तथा इतस्ततः अनेक देशोंमें भ्रमण करते हुए कितने ही पुरुषोंको योगका तत्त्व समझा कर गुरु आज्ञाको सार्थक किया। उधर गोरक्षनाथजी अपने शिष्योंको प्रेषित कर स्वयं दीर्घकालके लिये समाधि निष्ट होगये। उन्होंने विलशयनाथ नामक एक शिष्यको स्वकीय शरीर रक्षार्थ अपने समीप ही रख लिया था उसने बड़ी सावधानीके साथ गुरुजीके शरीरकी रक्षा करते हुए अपने सच्चे शिष्यत्वका परिचय दिया। इस लम्बे चौड़े समय के बीतने तक भारत वर्षमें योग विद्या प्रचारकी सीमा पराकाष्टाको पहुँच चुकी थी। ऐसा कोई देश अवशिष्ट न रह गया था कि जिसमें योग क्रियाके मुमुक्षु पुरुष न हों। यही कारण था प्रत्येक देशोंमें योगी लोग विश्रामित थे। और योग दीक्षा ग्रहण करने वालोंकी प्रत्येक दिन परम्परा लगी रहती थी। यह दशा केवल भारतीयोंकी ही नहीं थी वल्कि इस धूमको श्रवण कर अलौकिक और अद्भुत शक्ति प्राप्त करने की अभिलाषा वाले विदेशी लोगोंने भी अपनी ग्रीवा उन्नत करते हुए भारतकी ओर दृष्टि डाली। और इतस्ततः भ्रमण करते हुए यथोपलब्ध योगीकी विविध सेवा सत्कार कर उससे योगका मर्म जाना। इन महानुभावोंमें एक तुर्क भी प्रविष्ट था। जिसने अग्रिम समय एकवार गोरक्षनाथजीसे भी परामर्श किया था जिसका वर्णन आगे आवेगा। इसने भी योगमें इतनी निपुर्णता प्राप्तकी थी कि यह अपने शरीरको चिरकाल तक रख सका था।

ठीक ऐसी ही दशामें गोरक्षनाथजीने समाधिको खोला । और अबतक जो महानुभाव योग दीक्षाकाङ्क्षी हुए यहांपर जमा हो रहेथे उनको अपनी कृपाका पात्र बनाकर उनके मनोरथकी सिद्धिकी । इस कार्यकी समाप्तिके अनन्तर उन्होंने स्वकीय हृदयागार में एक विलक्षण महोत्सव रचनेका सङ्कल्प किया । जिसमें प्रथम स्वगुरु मत्स्येन्द्रनाथजी की सम्मति लेना भी आवश्यकीय समझा गया । अतएव आपने प्रथम उनके आव्हानार्थ नाद बजाया जिसकी मन्त्र संशोधित ध्वनिने मत्स्येन्द्रनाथजी के श्रोत्रालयमें पहुँच कर उनका ध्यान गोरक्षनाथजीकी ओर आकर्षित किया । यह देख उन्होंने शीघ्रताके साथ समझ लिया कि हमको हमारे परम प्रिय शिष्य गोरक्षनाथने स्मृत किया है । अतएव उन्होंने, हमको शीघ्र चलना चाहिये न जानें किस आवश्यकीय कार्यके लिये बुलाया है. इत्यादि विचार करते हुए सूक्ष्म शरीर बनाकर वायुवेग द्वारा वहांसे प्रस्थान किया । जो कतिपय क्षणमें ही आप स्वकीय शिष्यके समीप पहुँचे । उधरसे गुरुजीको अकस्मात् प्रकट होते देख कर गोरक्षनाथजीने उन्होंकी नाद पूजा करते हुए नमस्कारात्मक आदेश आदेश किया । और उनके शीघ्र उपस्थित होनेके विषयमें उनकी बार २ स्तुति की । तदनु प्रसन्न हुए मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि शीघ्रतार्थनाद ध्वनिके द्वारा हमें आहूत करनेका हेतु कौन विशेष कार्य है। इस प्रश्नका उत्तर देते हुए गोरक्षनाथजीने कहा कि स्वामिन् ! यहांपर एक महोत्सव रचनेकी हमारी इच्छा है जिसमें हमने आपकी सम्मति लेना आवश्यकीय समझा इसी लिये आपको आहूत किया गया है अतः आप अपना अभिमत प्रकट करें । मत्स्येन्द्रनाथजीने निर्विकल्पतासे कहा कि तुम जो कार्य आरम्भ करो उसमें हमारी अभिमतिकी कोई प्रतीक्षा न किया करो क्योंकि तुम मेरे विश्वासपात्र शिष्य हो । अतः जिस किसी भी कार्यको आरम्भित करोगे वह सर्वथोचित और कर्तव्यतान्वित ही होगा । यह सुन गोरक्षनाथजीने प्रार्थनाकी कि स्वामिन् ! आपका ऐसा कहना निःसन्देह यथार्थ है तथापि हमारा आन्तरिक भाव इस बातके लिये बाध्य कियाकरता है कि प्रत्येक कृत्यमें जहांतक सम्भव हो हम आपकी अभिमतिसे वञ्चित न रहें । शिष्यकी इस उक्तिके समाप्त होते ही मत्स्येन्द्रनाथजीने आज्ञा प्रदान कर दी कि यदि यही बात है तो हमारी भी अनुमति है किसी दृष्टमुहूर्त दिनको शीघ्र ही महोत्सव बनादिया जाय । गुरुजीकी अनुमति मिलनेपर गोरक्षनाथजीने एक शुभमुहूर्तान्वित दिन स्मृतिगत कर उसी दिन अपने शीघ्रतार्थनादध्वनि द्वारा योगिसमाजको बुलानेका सङ्कल्प किया । यह देख गोरक्षनाथजीके शिष्य विलेशयनाथके, जो उनकी सेवार्थ उनके समीप रहताथा, सहसा एक विचार उपस्थित हुआ । जिसके प्रकट करनेके लिये उसने स्वगुरु तथा प्रगुरुसे सनति अभ्यर्थना करते हुए आज्ञा मांगी । उन्होंने प्रसन्न मुखसे उसको उत्साहित और धैर्यान्वित करते हुए अङ्कुरित मनोरथको प्रत्यक्ष करनेको कहा । अतः उसने निशंक होकर

बतलाया कि अग्रिम वर्ष जो गोदावरी गंगा स्नानका पर्व आनेवाला है इस उपलक्ष्य पर बहुत जनसमूह समूहित होगा। अतः ठीक यदि इसी अवसरपर अपना भी प्रस्ताव उपस्थित कियाजाय तो अनायास ही अनेक जनसमुदाय हमारे उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये वाध्य होगा जिससे हमारा उत्सव महोत्सव उपाधिको धारण करनेमें समर्थ होसकेगा बस यही मेरा विनम्र अभिमत था आगे आपकी कृपा है स्वीकृति हो या न हो। यह सुनते ही गोरक्षनाथजीकी ओर दृष्टिपात करते हुए मत्स्येन्द्रनाथजी बोले कि वस्तुतः ऐसा ही होना चाहिये हमारी भी समझमें यही करना उचित है। क्योंकि ऐसा किये विना हम अपने उत्सवके लिये उन्हीं योगियोंको आहूत करसकते हैं जो हमारे शीघ्र आज्ञानार्थनाद ध्वनिके समझनेकी अभिसन्धि रखते हैं। परं इतनी ही व्यक्तियोंद्वारा उत्सव महोत्सव पद वाच्य नहीं होसकता है। अतः अवश्य प्रकृत प्रस्तावका ही आश्रयण करना चाहिये। गुरुजीकी अभिमति सूचक यह वाक्य श्रवण करते ही गोरक्षनाथजीने भी अपनी सम्मति मिश्रित करनेके लिये (तथास्तु) कहते हुए स्वशिष्यके प्रस्तावको अङ्गीकृत किया। और समयपर योग्य प्रस्ताव उपस्थितिके विषयमें उसकी प्रशंसा कर उसके प्रस्तावस्वीकृतिविषयक सन्देह ग्रस्त चित्तको सन्देह शून्य किया। तदनन्तर सानन्द एक के बाद दूसरा और दूसरेके बाद तीसरा कर द्वादश मास व्यतीत होचले, उधर गोदावरी कुम्भपर्व भी आरम्भ होगया। इस उपलक्ष्यमें मुमुक्षु जन उद्धारक बड़े २ योगी तथा ऋषिमुनि विरक्त महात्मा लोग और मुमुक्षु प्रजाजन, जिनमें राजा बाबू आदि प्रत्येक कोटिके मनुष्य थे, उपस्थित हुएथे। ठीक इसी अवसरपर योगेन्द्र गोरक्षनाथजीकी आज्ञा मेलेमें प्रचारित की गई, इस समय कौन ऐसा देश था जिसमें निवास करने वाले लोग, गोरक्षनाथजीके नाम तथा उनकी लोकहितैषिता एवं अद्भुत शक्तिशालितासे परिचित न हों। किन्तु सभी देशीय पुरुषोंने उनके लोकहितार्थ अनुपमकृत्यका परिचय पा लिया था। अतएव उनकी सूचनाके श्रवण मात्रसे ही उनकी दिव्यमूर्तिका दर्शन करने और उनकी कृपाका पात्र बननेके लिये मेलास्थ अधिक जनसमूहका चित्त उमड़ते २ शरीरसे बहिर भूत होनेके लिये यत्न करने लगा। यह दशा देख पर्वस्नानकी समाप्ति होते २ प्रस्थानित जनसमूहकी पंक्तिरूप परम्परा आरम्भ हुई। जिसमें प्राथमिक पंक्तिगत योगी थे। जो काषायरंगरञ्जित बड़े २ पताकादि मंगलोपलक्षण चिन्ह रचनासे सुशोभित थे, इस प्रकार योगि पृष्ठगामिनी पंक्तिमें अनेक विरक्त और तदनुगामिनीमें अनेक भक्तिविशिष्ट सेवकजन थे। ये लोग भी स्वकीय मांगल्य वस्तु जातसे वञ्चित न थे। अतएव इस पंक्तित्रयकी आधुनिक गमनकालिक विचित्र शोभा अद्वितीया थी। चित्ताकर्षकश्रोत्रपानीयविविधवाद्यध्वनि करता हुआ अनेक मार्गिक विश्रामानन्तर यह पंक्तित्रय कतिपय मासमें गन्तव्यकजली स्थानमें पहुँचा

जहां सगुरु श्रीनाथजी विश्राम कररहेथे। उधर गोरक्षनाथजीकी दृष्टि अपरिमित जनसमूहके ऊपर पतित हुई जिसको अवलोकित कर उन्होंने तदागमनोत्थप्रसन्नता प्रकट करते हुए तदर्थ विविध भोज्य प्रबन्धके लिये ऋधिसिध्दियों सहित कुबेरको आहूत करना आवश्यकीय जान अपनी भस्मपेटिकामें हस्त डाला : जिससे कुछ भस्म उद्धृतकी। और मन्त्रजापके अनन्तर कुबेरको लक्ष्यस्थान बनाकर उसे प्रक्षेप किया : तत्काल ही वह सेवार्थ उपस्थित हुआ। और गोरक्षनाथजीको अपने आगमनसे प्रसादित करता हुआ स्वाव्हान निमित्तसे परिचित हुआ। यह देख श्रीनाथजीने उसकी शीघ्रागमन विषयक प्रशंसा करते हुए उसको प्राप्त अवसरकी प्रतीक्षा करनेको कहा जिसके लिये उसने (तथास्तु) शब्दका प्रयोग करते हुए अपने आपको निर्दिष्ट समयसे अवलम्बित किया इधर स्वागतिक जन समूह पंक्तित्रयकी शीतल स्निग्धसघनच्छाया वाले वृक्षोंका आश्रय प्राप्त कर यथोचित रीतिसे स्थापित विविध पताकाओंकी अनुपम विचित्र शोभा उपस्थित हुई। जिनके नीचे वैश्रामिक योगी सिद्धासन, भद्रासन, गोमुखासन. पद्मासनादिसे आसीन हुए दर्शक जनसंघके आमोद प्रमोदमें शिथिलता उत्पादन करते हुए वैराग्यताका सञ्चार कर रहे थे। गोरक्षनाथजीकी कृपासे अनेक वर्षा होनेसे वह जंगल अधिक तरीमय हो गया था जिसका फल यह हुआ कि वह वन अनेक प्रकारके सुगन्ध प्रद विचित्र पुष्पोंसे पुष्पित हो गया। अतएव इस पुष्पावलीकी मनोहारी गन्धसे प्रसन्न दर्शक लोगोंका चित्त योगियोंके दर्शनद्वारा पवित्र एवं सात्विक हुआ एकाग्रताको प्राप्त हो ध्यानमग्न हो जाता था। जिससे ध्यानावस्थित लोगोंको यह भान नहीं होता था कि हम कौन और कहां हैं। फल यह हुआ कि इस अनुपमध्यानानन्दने कितने ही अनुकूलादृष्ट पुरुषोंको सांसारिक स्वाभप्रीतिसे वियुक्त किया। और अन्तमें वे स्वोपरामता हेतु दृश्य योगियोंकी तुल्यताको प्राप्त हुए। इसी प्रकार विश्राम करने के अनन्तर दर्शन करने कराने कुछ देरमें सायंकालिक भोजनका अवसर उपस्थित हुआ जिसमें श्रीनाथजीने भोजन प्रदाता को. जो प्रथमतः ही इस अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा था, प्रचोदित किया। तत्काल ही जिनकी जैसे भोजनमें रुचिथी उस पुरुषके आगे वैसाही भोजन परोसा गया। जिसको समस्त जनसमूहने सहर्ष ग्रहण कर स्वकीय क्षुधाको प्रशान्त किया। परं जिस श्रेणिके लोग अधीनक गोरक्षनाथजीके महत्त्व तथा अपरिमित शक्ति शालितासे विशेष अभिज्ञ नथे वे इस घटनासे अत्यन्त विस्मित हुए विविध प्रकारके स[illegible]प विकल्पात्मक प्रवाहित समुद्रमें निमग्न हुए। उन्होंने सोचा था कि भोजन के लिये जो समाहित किया जा रहा है सम्भवतः कहीं भोजनालयमें, जहां बनाकर अभी तैयार किया होगा. चलना पड़ेगा। परन्तु यह उनकी भूल निकली। और उपरोक्त विचार करते समय ही अभिलषित भोजन आगे परोसा दिखाई दिया। साथही यह घोषणा भी श्रोत्रगत हुई कि सानन्द भोजन

करो जैसी जिसकी अभिलाषा हो (अस्तु) इसी प्रकार अनेक विचारगत हुए लोगोंने भोजन की निवृत्ति प्राप्त की । और वे आभ्यन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकारसे गोरक्षनाथजीको हार्दिक नमनकर मार्ग गमन श्रान्ति विवशात् निद्रालय वन गये । यह दशा केवल उन अधिक लोगोंकी थीं जो महोत्सव कुतूहल लालायित हुए मार्गसे संघमें मिश्रित हो गये थे । न कि गोरक्षनाथजीके कृपापात्रोंकी जो इस महोत्सवसे अलभ्य वस्तुकी प्राप्ति के ही लिये आगन्तुक बने थे । और प्रत्येक क्षण उनकी विशेष कृपाके चिन्हमें बद्धदृष्टि रहतेथ । क्यों कि इन विश्वासी महानुभावों की धारणा थी कि प्रत्येक मनुष्यकी दशा श्रीनाथजीके विमलहृदय में प्रतिबिम्बित है । अर्थात् वे सबकी श्रद्धा और सचेतता के साक्षी हैं । अतःउदर सम्पूरित कर पशुवत् श्वास प्रश्वाससे शरीरको लुहारभस्त्रिका बनाडालना उचित नहीं है । इसी लिये वे लोग निद्रालय बननेसे वञ्चितरहेथे । (अस्तु) रात्रीदेवीने अपने प्रस्थानकी सूचनादी प्रातःकाल हुआ योगीलोग अपने प्रातःकालिक नित्यकृत्यसे निवृत्त हुए । एवं अन्यलोगभी स्वकीय कर्म समाप्ति के पश्चात् गोरक्षनाथजी की नूतन आज्ञाकी प्रतीक्षा में दत्त चित्त हुए । तदनु कुछ ही क्षणोंके अनन्तर आज्ञा घोषित हुई कि आज समीपस्थ समुद्र में कुछ योगशक्तिका चमत्कार दिखलाया जायेगा अतःदर्शकजन समुदाय इसके लिये सावधान रहे । साथही यहभी सूचित करदिया कि यह दिग्दर्शन मध्यान्ह समय होगा. इस आज्ञाका प्रचार करते कराते दैनिक भोजन समय उपस्थित हुआ जिसमें जनसमुदायको रात्रेयवृत्तवत् तृप्त कियागया । कुछ देरके पश्चात् घोषित आज्ञाका समय समीप आपहुँचा जिससे समस्त जनसमूह समुद्रके कूलपर स्थितहो चमत्कारकी प्रतिपालना करने लगा । ठीक इसी अवसरपर मत्स्येन्द्रनाथजी, गोरक्षनाथजी, तथा ज्वालेन्द्रनाथजी, आये और जनसमूह के मध्यसजीकृत एक उच्च स्थलपर विराजमान होगये । बैठने के कुछ क्षणबाद मत्स्येन्द्रनाथजीने अपने गुरुभाई ज्वालेन्द्रनाथजीकी ओर इसारा किया जो जल क्रियात्मकचमत्कार दिखलानेका था । उन्होंने शीघ्र इसारेका मर्म जाना और खडेहो गुरुभाई मत्स्येन्द्रनाथजीसे आज्ञा मांगी । तत्काल आज्ञा प्रदानित हुई ज्वालेन्द्रनाथजी समुद्रकी ओर अग्रसर हुए और पृथिवी स्थल की तरह सहस्र पदक्रम पर्यन्त जलके ऊपर चलकर वापिस लौटआये. इस चमत्कारके अनन्तर वे पुनः समुद्रमें प्रविष्ट हुए जिनके समीप जाते ही जल इधर उधर होगया जिससे वे नगर गली की तरह फिर सहस्र पदक्रम अग्रसर होसके और पुनःवापिस लौटे । जिनके पीछे २ जल समरस होता हुआ दीख पडताथा । इस चमत्कारके पश्चात् वे समुद्र तटपर खडे हुए उन्होंने अपने तेजसे समुद्रको सहस्र कदम दूर हटा दिया तथा फिर प्रवृद्धकर अपने तक पहुँचाया । तदनन्तर जलमें स्वकीय कुटीवत् प्रवेशकर ध्यानावस्थित होगये जो एकप्रहर पर्यन्त स्थित रहे जिनके

शरीरको जलने स्पर्शित नहीं कियाथा। इतना चमत्कार दिखलाकर ज्वालेन्द्रनाथजी अपने गुरुभाई मत्स्येन्द्रनाथजीकी बराबर आ बैठे। तदनन्तर बडे आनन्द और उत्साह के साथ कुछ क्षणमें गोरक्षनाथजीने अपनी आज्ञा घोषित की कि उपस्थित महानुभावो! अपने २ आसनोंपर जाकर आराम करो कल फिर आज वाले समयपर प्रदर्शनी के लिये उत्कण्ठित रहना होगा। इस आज्ञाके श्रवण होते ही समस्त लोग स्वकीय विश्राम स्थलमें जा विराजे। तदनु सायंकाल हुआ जिसमें समग्र लोग स्वकीय सायंकालिक कृत्यसे निवृत्त हुए। इसके पश्चात् भोजन प्रदाताकी कृपा हुई जिससे दैनिक क्षुधा शान्तकर लोग रात्री अतिक्रमित करनेका प्रयत्न करने लगे। रात्री भी प्रस्थानित हो गई प्रातःकालिक क्रियासे विमुक्त हो लोग कुछ क्षण आसनासीन हुए ही थे इतनेमें फिर भोजन की सावधानी रखनेवाली घोषणा प्रचारित हुई। भोजन भी परोसा गया जिसको ससत्कार ग्रहण कर लोग निर्दिष्ट समयकी प्रतिपालनामें समाहित चित्त हुए। वह समय भी समीप आ पहुँचा। ठीक इसी समय सम्मार्जित एक दूसरे स्थलपर प्रस्थानित होनेकी और आज्ञा सुनाई गई। जिसके श्रवण करते ही लोग सूचित जगहपर जाकर विराजमान हुए जहां कुछ क्षणके अनन्तर उक्ततीनों महानुभावोंने आकर सम्मानित आसनको सुशोभित किया। और कुछ क्षणके बीतनेपर मत्स्येन्द्रनाथजीने गोरक्षनाथजीकी ओर दृष्टिपातकी जिसका पूर्वोक्त तात्पर्यथा। गोरक्षनाथजी खडे हुए और उन्होंने प्रजाको सम्बोधित किया कि समस्त लोग हमारी तरफ दृष्टि रक्खें। यह सूचना देते ही समग्रजनसमूह उनकी ओर बद्धदृष्टि हुआ। जिसके देखते २ गोरक्षनाथजीने अपना शरीर क्रमशः मशक (मच्छर) की तरह सूक्ष्म बनाडाला। जिससे वे आकाशमें गमन कर गये और जन समूहकी दृष्टिके अगोचर हो गये। पश्चात् फिर नीचे आये। और पूर्वीय स्थूल शरीरमें परिणत हुए। तदनन्तर आपने अपने प्रवृद्ध तेजद्वारा स्वीय शरीरको अग्निकी तरह जलाया। और उसको फिर तद्वत् किया। इसके बाद आप मृतक मनुष्य, जो प्रथमतः ही मंगा रक्खा था, उसके देहमें प्रवेश कर स्वकीय शरीरको मृतकवत् चेतनता शून्य दर्शाकर फिर अपने शरीरमें प्रविष्ट हुए। तदनु आपने उस मृतक मनुष्यके शरीरका छेदन कर खण्डशः किया और फिर उसके खण्ड एकत्रित कर सँजीवनी विद्याद्वारा उसको सजीव बनाया। इन चमत्कारोंके पश्चात् जनप्राकार के अन्तर्गत रक्षित विस्तृत चौकमें छोटीसी नई सृष्टिकरी जिससे आंगणमें छोटे २ स्थान तैयार हुए। जिनमें तदनुकूल अनेक स्त्रीपुरुष निवास कररहेथे। दर्शकोंके अच्छी प्रकार देखनेपर इस कृत्रिम मायाको अपहृत कर गोरक्षनाथजीने उस मन्त्रका अवलम्बन किया जिसके प्रभावसे पृथिवीमाताने अपने मुखको प्रसारित किया। जिसमें श्रीनाथजीके प्रवेश करते ही फिर पृथिवी पूर्ववत् सन्तल होगई और श्रीनाथजी कुछ दूरीपर जाकर

पृथिवीदेवीके मार्ग प्रदान करनेसे बहिर निकले । और गुरुजीके समीप आकर बैठ गये । यह देख दोनों गुरुभाइयोंने सत्कारसूचक वाक्योंद्वारा गोरक्षनाथजीकी प्रशंसा की । और आजके प्रशंसनीय प्रदर्शनको विसार्जित करते हुए कल फिर इसी स्थानमें इसी समयपर स्वागतिक होनेका जनताको परामर्श दिया । तदनु अत्यन्त आनन्द और मङ्गलके साथ पूर्वोक्त रीतिसे फिर वह समय उपस्थित हुआ जिसमें समस्त लोग प्रथमतः ही उत्कण्ठावद्ध थे । अतः सभी उक्तजगहपर जाकर उक्ततीनों योगेन्द्रोंके आगमन की प्रतिपालनामें अवधानित हुए । ठीक इसी अवसरपर मूर्तित्रयकी कृपा हुई । और जनता सत्कारित आसनासीन होनेके अनन्तर कुछ क्षणमें मत्स्येन्द्रनाथजी खड़े हुए । जिन्होंने प्राथमिक वार्षिकास्त्र, आग्नेयास्त्र, वातास्त्रादिके महत्त्वका दिग्दर्शन कराते हुए उस मन्त्रात्मक अस्त्रका महत्त्व प्रदर्शित किया जिसके वशीभूत हुए इन्द्रादि देवता भी विक्रमवीरकी तरह उपस्थित हो योगीसे सेवार्थ आज्ञा की भिक्षा मांगने लगते हैं । तदनन्तर सूर्यके प्रकाशको मन्द करणादि अनेक विलक्षण चरित्र दिखला कर आपने अपना प्रदर्शन समाप्त किया । और स्वीय आसनपर आकर आप विराजमान हुए इसके पश्चात् गोरक्षनाथजी खड़े हुए और उन्होंने लोगोंको सम्बोधित कर उच्चारित होनेवाले वाक्योंमें ध्यान देनेको कहा । जिससे लोग तद्वत् हुए । और गोरक्षनाथजीने अपना वक्तव्य उपस्थित किया कि महानुभावो ! हमारी सूचनापर श्रद्धा रखते हुए आपलोगोंने जो यहां आकर हमारी आज्ञाकी पालना की है इसके लिये आपलोगोंको हमारा आन्तरिक हृदय असंख्य धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता है । परन्तु सम्भावना है आपलोगोंमें या इस वृत्तान्तको श्रवण करने वाले अन्यत्रस्थित कतिपय लोग ऐसे अवश्य निकलेंगे जो हमारे इस कृत्यको नाट्य अथवा, बाजीगर,का तमासा समझ कर हमको उसके दिखलानेवालोंकी उपाधिसे भूषित करेंगे । तथापि ऐसा समझ कर बैठजाने वालोंको स्मरण रखना चाहिये कि उक्त तमासा दिखलाने वालोंको प्रजासे कुछ द्रव्य ग्रहण करनेकी अभिलाषा रहती है । इसीलिये उनके तमासेका आरम्भ है, किन्तु हमारा तमासा न तो उन जैसा तमासा है और न हम उन जैसे तमासगीर हैं तथा न कोई हमको उनकी तरह आपलोगोंसे आदान करनेकी ही इच्छा है । केवल इसी हेतुसे हमने इस महोत्सवका आरम्भ कर दृष्टचरित्रोंको प्रदर्शित किया है कि संसारमें अधिक मनुष्य ऐसे हैं जो अपने आपको पुरुषार्थ शून्यतापूर्वक आलस्योपहत हुए अकर्मण्यता और पौरपहीनता सूचित करते हुए एक क्षुद्र प्राणीके तुल्य समझ बैठते हैं। जो विशेष शक्तिसूचक किसी भी विषयकी बात सुनकर चौंक ऊठा करते हैं । और उस वातमें अपनी अश्रद्धा सूचित कर नासिका संकुचित करते हुए विना ही कुछ विचार किये मुखसे कहडालते हैं कि अजी कहीं ऐसा हुआ करता है ये सब मनघडन्त वार्ता हैं । कोई

ऐसा कुछ करने वाला है तो आओ हमारे सम्मुख कर दिखलाओ, इत्यादि। महानुभावो ! हमारा अभिप्राय ऐसे ही विषयग्रस्तश्रद्धाहीन आलसी, अपने आपको क्षुद्र मानने वाले पुरुषोंको, सचेत करनेका है। अतः उनलोगोंको चेतना चाहिये वस्तुतः जैसा तुम अपनेको समझ रहेहो वैसी बात नहीं है। देखो यदि तुम्हारे दो नेत्र हैं तो, अपनी कल्पनाको मिथ्या मानों। और हमारे तमासेसे शिक्षा ग्रहण करो। तथा कुछ पुरुषार्थी बनों योगका महत्त्व समझनेमें किञ्चित्, भी आलस्य अपने अन्दर न घुसने दो। और अन्वेषण कर देखो इस शरीरमें कैसी २ शक्तियां छिपी हुई हैं जिन द्वारा तुम जैसे बनना चाहो बन सकते हो फिर देखोगे तुम्हारी वह कपोल कल्पना यथार्थ थी वा मिथ्या थी। गोरक्षनाथजी इत्यादि वाक्योंद्वारा जिस समय अपने महोत्सवका लोगोंको मुख्योद्देश समझा रहेथे उस समय मत्स्येन्द्रनाथजीके एक विचार स्मृतिगत हुआ। वह यह था कि उन्होंने सोचा हमारे शिष्य गोरक्षनाथने जो गुरुभक्तिका विशेष परिचय देकर हमको यह वर प्रदान करनेके लिये बाध्य किया है कि. तुम सम्प्रदायके प्रवर्त्तक अर्थात् मुख्याचार्य माने जाओगे. इस रहस्यके प्रकट करनेका आज अच्छा अवसर है। अतएव वक्तव्य समाप्त कर गोरक्षनाथजीके आसनासीन होनेपर मत्स्येन्द्रनाथजीने इस विषयकी आज्ञा समस्त जनसमुदायमें प्रचारित की। जो शीघ्रस्वीकृत हुई। और विविध मांगल्य उपकरण मंगायगये जिनसे अभिषिक्त कर गोरक्षनाथजीको उस उपाधिसे सुशोभित किया गया। और साथ ही उनको जगद्गुरु भी स्वीकृत किया गया। यही कारण है दीर्घकाल अतिक्रमित होनेसे किसी कारण द्वारा योगि सम्प्रदायकी ऐसी शिथिल अवस्था होनेपर भी इस स्थानके सिंहासनासीन महन्तको इस देश निवासी लोग आज भी जगद्गुरु शब्दसे सत्कृत करते हुए उस अतीत शुभ महोत्सव को स्मृतिगत किया करते हैं। (अस्तु) पूर्वोक्त कृत्यके अनन्तर महोत्सव समाप्तिकी सूचना प्रचारित कर लोगोंको अभीष्ट स्थानमें जानेका परामर्श दिया गया। जिससे महोत्सव भङ्गकर जन समुदाय वहांसे प्रस्थानित हुआ। ठीक इसी समयसे प्रत्यक्षता प्राप्तकर गोरक्षनाथजी इस सम्प्रदायके मुख्य विधाता एवं शिरोमणि समझे गये। जिनकी आजतक तद्वत् ख्याति है।

इति श्रीमद्योगेन्द्र गोरक्षनाथ-महोत्सव वर्णन नामक २५ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथयोगी

॥ अध्याय २६ ॥

पूर्वोक्त महोत्सवकी समाप्तिके पश्चात् गोरक्षनाथजीने कुछ समय तक वहां स्थिति रखकर तत्कृत्य स्मृति सूचक एक स्थानका निर्माण कराया। और उसके प्रबन्धार्थ अपने एक शिष्यको नियतकर स्वयं देशाटनके लिये वहांसे प्रस्थानित हुए। जो कुछ कालमें भ्रमण करते तथा अपने अलौकिक वस्तु प्राप्ति सूचक ओजस्वी योगोपदेशसे लोगोंको तज्जिज्ञासु बनाते हुए कुछकालमें सौराष्ट्र देशमें पहुँचे। यहांतक के भ्रमणमें कई एक मनुष्य उनको ऐसे मिले जो योगमर्मजिज्ञासान्वित हुए उनके शिष्य बननें के लिये अधीर चित्त हो रहे थे। अतएव उन लोगोंकी अभिलाषा पूर्ण करने के अभिप्रायसे गोरक्षनाथजीने तत्क्रियानुकूल एकान्तिक निरपाय स्थानकी अन्वेषणामें विशेष दृष्टि दी। तदनु कतिपय दिनमें इधर उधर भ्रमणसे एक स्थल उनकी इच्छानुकूल मिला जो समुद्रसे लगभग एक योजनकी दूरीपर पृथ्वी समतल पहाड मय है जहां ऊपरके प्रदेशसे एक स्वच्छ तथा मधुर जलवाहिनी छोटीसी नदी प्रवाहित होती है। ठीक इसी के तीरपर श्री नाथजीने विश्राम किया। जहां एक गुहा भी निर्मितकी जिसमें स्वाचिन्ह चिह्नित शिष्योंको यथाधिकारी क्रमसे तदनुक्रमारम्भ क्रियाओंसे दीक्षित करनेका आपको अनुकूल सुभीता मिला। अर्थात् मन्दाधिकारी शिष्योंको प्रथम अहिंसादियमोंका मर्म समझाकर उनमें दृढता पूर्वक निपुणता प्राप्त करने के लिये आपने उनको प्रबोधित किया। तदनु शौचादि नियमों के पूर्णतया पालनार्थ आज्ञा प्रदान की। इसके अनन्तर पद्मासन भद्रासनादि आसनोंसे उनको दीक्षित किया। तत्पश्चात् प्राणायाम एवं प्रत्याहारकी विधि शिखलाई जिनके उत्तर वे धारणा, ध्यान समाधिरूप मार्ग द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि के अधिकारी हुए। इनसे अतिरिक्त मन्द समाहित चित्त मध्यम अधिकारी शिष्योंको प्रथम अविद्यास्मितादि क्लेशोंके तिरस्कारार्थ एवं समाधि सिद्धिके वास्ते चित्तकी प्रसन्नताके अविरोधी शास्त्रोक्त उपवासादिरूप तप तथा मोक्षशास्त्राध्ययन अथवा प्रणव-जपात्मक स्वाध्याय और परमात्मामें समस्त कर्मोंका अर्पण करण रूप प्रणिधान नामक क्रियाओंमें कुशलता प्राप्त करवाई। तद्भिन्न समाहित चित्त अर्थात् उत्तमाधिकारी शिष्योंको

केवल अभ्यास वैराग्यसे वृत्तिनिरोधके द्वारा असम्प्रज्ञात समाधिका अधिकारी बनाया। जिसमें उन्होंने गुरुजीकी अपूर्व हितैषितासे जायमान गुरुदीक्षात्मक प्रयत्नसे और स्वकीय कुशाग्र बुद्धिके प्रभावसे शीघ्रही निपुणता प्राप्त की। अर्थात् अभीष्ट समय पर्यन्त समाधि लगानेकी सामर्थ्यको उपलब्ध किया। अतएव गोरक्षनाथजीने उनको समाधि विषयमें परीक्षितकर स्वाधीनस्थ यथोचित विविध विद्याओंसे भी दीक्षित किया। जिससे ये महानुभाव अपरिमित शक्ति शाली हुए श्रीनाथजीके उद्देशका विस्तार करने और देशमें अपनी निर्मल अक्षुण्ण कीर्तिको स्थापित कर अपने आपको अमर बनानेमें समर्थ होसके। इन महानुभवोंमें धुरन्धरनाथजी की, जिसका वृत्तान्त आगे आयेगा, विशेष प्रसिद्धि है (अस्तु) इस कार्यको समाप्त कर प्रत्युपकारार्थ पौनः पुनिक शिष्योंसे वन्दित हुए श्रीनाथजी सौराष्ट्र देशस्थ इस स्थलसे (आधुनिक प्रसिद्ध नाम गोरखमढी)से फिर देशाटन के लिये प्रस्थानित हुए। और कुछ दिनमें गिरनार पर्वतपर पहुँचे। यहां आपने कतिपय दिन दत्तात्रेयजीके साथ विविध परामर्श करने पर अपने कुछ शिष्योंको पृथक् विचरण कर स्वोद्देश प्रचारार्थ सूचित किया। तत्काल ही आज्ञाको नतशिरसे अङ्गीकृत कर वे लोग अपने रास्ते लगे। इधर गोरक्षनाथजीका भी व्यर्थवार्ताओं द्वारा समय बीतानेसे प्रयोजन नहीं था अतएव अपने अवशिष्ट शिष्योंको साथ ले कर वे भी गिरनारसे नीचे अवतरित हुए पूर्व दिशाके सम्मुख चले। जो कतिपय वर्षके अनन्तर गुजरात मध्य प्रदेशादि देशोंमें विचरते हुए वङ्गदेशस्थ कालीकोट (आधुनिक प्रसिद्ध नाम कलकत्ता) नामक नगरमें जा उपस्थित हुए। बहुत दिनोंके इस दीर्घ गमनसे उनके शिष्योंको निर्विण्णता प्राप्त हो गई थी अतएव उनके कुछ काल वहांपर निवास करण विषयके प्रस्तावको स्वीकृत कर श्री नाथजीने वहां विश्राम किया (यही स्थान आजकल गोरखवंसी नामसे प्रसिद्ध है) अस्तु) कुछ दिनके निवास करनेपर इस नगरमें एक मेला आरम्भ हुआ जिसका उद्देश, जिस देवीके नामसे इस नगरका नाम पड़ा है, उस देवीकी पूजा करना और उसको बलि प्रदान करना था। अतः इस कृत्यमें उत्कण्ठा रखनेवाले अपरिमित नरनारी उधर जा रहे थे। यह देख श्रीनाथजीके शिष्योंको भी इस कौतुकके दर्शनार्थ अत्युत्कट इच्छाने बाध्य किया जिसके विवश हो उन्होंने गुरुजीसे प्रार्थना करी कि स्वामिन्! हम लोग भी देवीका दर्शन करना चाहते हैं। यह सुन प्रथम तो श्री नाथजीने इस विषयमें अपनी असम्मति प्रकटकी और कहा कि सांसारिक लोगोंमें मिश्रित हो ऐसे उत्सवोंमें जाना हमारे लिये उचित नहीं। परन्तु जब इस मुँह तोड़ प्रत्युत्तरसे अपने शिष्योंको आभ्यन्तरिक भावसे कुछ असन्तुष्ट देखा तबतो उनको किसी कारणसे दैवगतिवश प्राप्त नासमझी के फलसी उपलब्धि होनेके लिये जानेकी आज्ञा देदी। तत्काल ही गुरुजीकी आज्ञा श्रवण कर गोरक्षनाथजीके

शिष्य कालिकादेवीके मन्दिरमें बद्धदृष्टि हुए वहांसे प्रस्थानित हुए । परन्तु कुछ देरके बाद जब मन्दिरके बाह्य द्वारपर पहुँचे तब तो द्वारपालोंने जो देवीकी आज्ञानुसार पूजासामग्री और बलिसे रिक्त हस्त पुरुषोंको भीतर जानेसे रोकतेथे, उनको मन्दिरमें प्रविष्ट होनेसे रोका । यह देख उनको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। तथा द्वारपालोंको समझानेके अभिप्रायसे उन्होंने कहा कि यह बलि प्रदानादि कृत्य तो सांसारिक लोगोंका है नकि हमलोगोंका । क्योंकि न तो सांसारिक लोगों जैसी हमको कोई पुत्र द्रव्यादिकी उत्कट अभिलाषा है और न उसके अभावमें हम देवीकी सांसारिक लोगों जैसी गौणभावसे पूजा करना. तथा उसके बलि अर्पित करना उचित समझते हैं। यही कारण है हमलोग अन्य पुरुष गृहीत उपकरणोंसे रिक्त हैं। वस्तुतः है भी ठीक हम विरक्त लोग हैं हमारे समीप वस्त्रादि भी नहीं जिनसे शीतोष्णताका निवारण कर सकें । फिर पूजा सामग्री और बलि क्रयके लिये टके कहांसे आते । जिन द्वारा सामग्री खरीद कर देवीकी पूजा करनेमें तत्पर होते । हां होसकता है कि हम मानसिक पूजाद्वारा, जो सर्वोत्तम समझीजाती है, देवीको सत्कृत करेंगे और कर भी चुके हैं । क्योंकि जो आपनेसे उत्कृष्ट जानकर जिसके दर्शनकी अभिलाषा करता है वह उसकी मानसिक पूजा प्रथमतः ही करबैठता है । ठीक यही वृत्त हमारा भी समझना चाहिये । अतः आपलोगोंको उचित है कि हमको मन्दिरमें प्रविष्ट होनेसे न रोकें । जिससे हम देवीका दर्शन कर अपने आसनपर जायें । यह सुन द्वारपालोंने कहा कि आपलोग जो कुछ कह रहे हैं सब ठीक है जिसके लिये हम कोई आपत्ति करनेकी अपनी इच्छा नहीं रखते हैं परं करें क्या देवीकी आज्ञा ही। ऐसी है कि विना पूजासामग्री, और बलि, किसी पुरुषको मन्दिरमें न घुसने दो । हां हो सकता है कि आपलोग कोई ऐसा चमत्कार दिखलावें जिससे देवी हमारे ऊपर कुपित न हो और आपलोग अप्रातिहत गति हुए मन्दिरमें प्रवेश कर सकें । पाठक ध्यान रखिये अबसे पहले यदि इनको अपनी विद्याप्रयोगके द्वारा द्वारपालोंको उचित दण्ड देकर मन्दिरमें प्रवेश करना अभीष्ट होता तो कभीके इस कृत्यमें उत्तीर्ण हुए होते परन्तु इन लोगोंने सोचाथा कि सहसा ऐसा कर बैठना योग्य नहीं हैं क्योंकि विद्याप्रयोगकी आवश्यकता वहीं हुआकरती है जहां अन्य उपायोंसे कार्यसिद्धि न हो सकती हो (अस्तु) उपायान्तरा-भावसे और द्वारपालोंके स्वयं उस कृत्यके करदिखलानेके लिये बाध्य करनेसे आखिर उन्होंमेंसे एकने अपनी भस्मपेटिकाका आश्रय लिया । और उससे कुछ भस्मी निकाल मन्त्र सहित द्वारपालोंकी ओर प्रक्षिप्त कीं । तत्काल ही वे पाषाणप्रतिमामें परिणत हुए । यह देख मेलेमें बहुत कोलाहल और कौतुक उपस्थित हुआ । कितने ही पुरुष योगियोंको अगम्य गतिके विषयमें अनेक प्रकरणोंका उद्धाटन कर रहेथे कितनेक लोग उनको

मन्दिरमें प्रविष्ट होनेसे निरोध करनेके विषयमें द्वारपालोंकी निन्दा कर रहेथे। और इस कुतूहलके देखनेके लिये उत्सुक थे कि ये योगी देवीके सम्मुख जायेंगे तब कैसा क्या समाचार उपस्थित होगा। ठीक इसी अवसरमें द्वारियोंको ठिकाने लगाकर ये महानुभाव भी मन्दिरमें पहुँच देवीके अभिमुख हुए। उधर कालिका अपनी प्रचारित आज्ञाके विरुद्ध उनको रिक्तहस्त निश्चयीकृत कर महा कोपान्वित हुई। और साक्षात् युद्ध कर उनको उचित दण्ड देनेकी अभिलाषासे प्रकट हो प्रतिमासे पृथक् होगई। अतः उसके भयावह विकट रूपावलोकनसे योगियोंने समझ लिया कि वार्ता सहजमें तय होनेवाली नहीं है अवश्य अपने आज्ञाप्रचार रक्षणके लिये यह कठिन उपायका अवलम्बन करेगी। उनके इस परामर्श करनेके समय ही उधरसे देवीने ललकारना आरम्भ किया और घोषित करदिया कि सचेत हो जाओ आज्ञा भङ्ग करनेका फल अभी दिया जायेगा। यह सुन एक सम्मति कर योगियोंने यह निश्चय किया कि यद्यपि हमलोग ऐसे महात्माके शिष्य हैं जिसको त्रिलोकीमें कोई तिरस्कृत नहीं कर सकता है ठीक उसीकी अपरिमित विविध विद्याओंका सञ्चार हम लोगोंमें सञ्चरित है जिस द्वारा देवीका प्रहार निष्फल कर सकते हैं। तथापि हमको उचित नहीं कि जिसकी एकबार अपने हृदयसे नमस्कार अर्थात् पूजा कर ली हो फिर उसीको द्वेषस्थान बनाकर उसके सम्मुख खड़े हो उसको अस्त्रप्रहारका लक्ष्य बनावें। अतएव जो कुछ उचित समझे इसे करने दो हमको वह सहर्ष सहन करना चाहिये। क्योंकि हमारा ऐहिकागमन इसके दर्शनार्थ ही था सो पूर्ण हुआ। योगियोंको इस प्रकारके विचारसे शिथिल हो तद्वत् निश्चेष्ट खड़े देखकर देवीने भी समझ लिया कि यद्यपि मालूम होता है इनलोगोंका गृहागमन अपनी विद्याके अभिमान तथा हठसे नहीं है प्रत्युत भक्तिसे ही है। तथापि अपने नियमकी पालना करनी आवश्यकीय है इसी लिये इनको कुछ दण्ड अवश्य देना होगा। यह स्थिर कर देवीने उनका परिचय पूछा। प्रत्युत्तरमें उन्होंने अपना समस्त समाचार वर्णित किया और यह भी बतलाया कि हम प्रसिद्ध योगेन्द्र गोरक्षनाथजीके शिष्य हैं जो यहीं विराजमान हैं। यह श्रवणकर देवीने प्रथमतो उनद्वारा द्वारपालोंको वर्तमान अवस्थासे विमुक्तकरवाया। तदनु उनको बन्धीकर कहा कि अच्छा तुम्हारे गुरुजी यहीं विराज रहे हैं तो वे स्वयं मुक्तकराकर लेजायेंगे। अतः जबतक वे नहीं आवें तबतक तुमलोगोंको यहीं रहना पड़ेगा। यह आज्ञा प्रचारितकर देवी फिर प्रतिमामें व्यलीन होगई। उधर इस आज्ञा के सुनतेही योगी निराश होगये उनके कोई ऐसा उपाय दृष्टिगोचर न आया जिसकेद्वारा इस लज्जास्पद कृत्यसे मुक्ति पासकें। क्योंकि इस विषयमें वे प्रथमही वचन बद्ध होचुकेथे जैसा देवीकरेगी सब सहनीय होगा। अतःबल पूर्वक निकल जानेकाभी ढंग हस्तसे जाता रहा। अहो दैवगति अगम्य

है हमने अपने ही हस्तसे अपने पैरोंमें कुठाराघात किया। इत्यादि विचार कर विवशहो वे वहीं बैठ गये। और पारस्परिक अनेक प्रकारकी वार्तायें करने लगे। उनमें एकने कहा कि गुरुजीकी असम्मति प्रकट होनेपर भी हम लोगोंने यहां आनेका उत्साह अपने शरीरसे निकालकर बहिर न किया जिसका यथार्थ मर्म समझकर गुरुजीने वाह्यभावसे यहां आनेकी आज्ञादी इसी लिये हमको इस दशाका अनुभकरना पडा है। इससे सबके गुरुजीके कथनका समरण होआया तथा सबने निश्चय करलिया कि निःसन्देह यही कारण है। (अस्तु) इतने शक्तिशाली होकरभी स्वयंबन्धी होजाना और अपने घोर प्रयत्नद्वारा इनको अपरिमित शक्तिवाले बनाकर भी गुरुजीकाही इनको मुक्त करानेके लिये फिर प्रयत्नकरने में बाध्य होना इनके वास्ते कम लज्जाकी वार्ता नहीं थी अतएव लज्जासे नतशिर किये इनको बैठाही रहना पडा। उधर गोरक्षनाथजीने भी इस वृत्तान्तकी घोषणाको श्रवण किया परन्तु उन्होंने सम्भवतःकालिका इस कृत्यसे उत्साहित होगई होगी इसी लिये हमारेसे भी कुछ संघर्ष करना चाहेगी जिससे झगडा अन्ततक बढजायेगा और एकत्रित जनसमूहको गहरे कष्टका सामना करना पडेगा ठीक इसी उद्देशसे तथा शिष्योंको अपने कृत्यका उचित फलभी तबतक ठीक मिलजायेगा इस उद्देशसे उसदिन मौनत्वका आश्रय लेकर मेलाभङ्गहोने वाले अग्रिमादिनकी प्रतीक्षाकी। सहज २ कर दिनकर देवता अपनी डिवटी पूर्णकर अस्ता चलका अतिथिबना उधर रात्रीदेवीने अपने शुभागमनकी घोषणाकी जो जैसतैसे कर यह भी प्रयानित हुई। मानों अपना बचना वेरिया बान्धकर अस्ताचलमें ही जा घुसी। इधर फिर सूर्यका आगमन आरम्भ हुआ सहज २ प्रवृद्ध प्रकाशसे प्रबोधित हुए लोग अपने २ कार्यमें लवलीन हुए। यह देख गोरक्षनाथजी भी अपने आसनसे ऊठकर कालिकामंन्दिरके अभिमुख चले। कुछ क्षणके अनन्तर जब मन्दिरमें पहुँचे। तबतो देवीने उनको आते देखकर निश्चय किया कि ठीक येही गोरक्षनाथ उन बन्धी योगियोंके गुरु हैं। अतः प्रकट हो वह कहनेलगी कि क्या आप लोगोंको ज्ञात नहीं है बलिभेट न प्रदान करनेवालेको मन्दिरमें प्रविष्ट होनेकी आज्ञा नही है और इसी नियमको उपेक्षित करनेवाले कुछ योगियोंको मैंने अपने यहां बन्धी कररक्खा है। तुम आज और आज्ञाभङ्ग करबैठे। बोलो तुमको क्या दण्ड दिया जाय। यह सुन गोरक्षनाथजीने कहाकि देवि ! क्षमा कीजिये दण्ड तो यही बहुत है जो तुमने हमारे शिष्योंको बन्धी कर उनको लज्जित किया है जिससे हमको भी लज्जा हो सकती है। बस क्याथा इतने श्रवण मात्रसे कालिका सचमुचकालिका बन गई। और अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहउठी कि शिष्योंके द्वारा ही क्या लज्जित हुए हो खुद तुम्हारे ऊपर आपत्ति आनेवाली है। तैयार होजाओ। यह कहनेके साथ २ ही देवीने उनके ऊपर खड्गको प्रहत किया। श्रीनाथजीने देवीको

सम्मुख आते देख प्रथम ही अपना शरीर वज्रवत् कठिन स्पर्श वाला बनालिया था अतएव उसका खड्गप्रहार निष्फल रहा। इसके अनन्तर एक २ कर उसने अपने हस्तगृहीत समस्त शस्त्रोंको प्रहृत किया। परन्तु समग्र किम्प्रयोजन ही रहे। जिससे देवी कुछ शङ्कित और विस्मयान्वित हुई। ठीक इसी अवसरपर देवीको और भी साश्चर्य करनेके लिये गोरक्षनाथजीने उसको सम्बोधित कर कहा कि कुछ उठा न रखना जहांतक प्रयत्न कर सकती है करना। सब मनुष्योंको एकदृष्टिसे देख उनके यथोचित सत्कारासत्कारका विचार न कर एक यष्टिकासे आगे धरनेका आज तुझे भी अवश्य फल मिलेगा। यह सुन गोरक्षनाथजीके कटु प्रत्युत्तरका फल देनेके वास्ते देवीने हस्तसंगृहीत शस्त्रोंका आश्रय छोड कर मन्त्रात्मक अस्त्रोंको आश्रित किया। उधर श्रीनाथजी भी ऐसे न थे जो देवीद्वारा प्रयोगित हुए अस्त्रोंके सञ्चालनात्मक तथा निरोधात्मक परिज्ञानसे शून्य हों अतएव उन्होंने देवीके प्रथमप्रहृत आग्नेयास्त्र, मोहनास्त्र, कामास्त्रादि प्रत्येक अस्त्रको प्रशान्त करदिया। जिससे उसको पराजित हो लज्जित होना पड़ा। तथा गोरक्षनाथजीसे क्षमा करनेकी प्रार्थना करना पडा। उन्होंने ठहरो क्षमा करते हैं, यह कह कर अपनी भस्म पेटिकामें हस्त डाला। और उससे एक चुकटी भस्मी निकालकर देवीको लक्ष्यस्थान बनाते हुए उधर फेंक दिया। जिसके प्रभावसे देवी प्रयत्न हो कर पुतलीकी तरह नृत्य करने लगी। और अन्तमें मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पडी। यह देखे गोरक्षनाथजीने उसको शीघ्र ही सूचित कर दिया और कहा कि हमको जो फल देनाथा सो दिया गया कि और अवशिष्ट रहा है। यह सुनकर देवीने लज्जासे नीचा शिर किये हुए श्री नाथजीसे कहा कि महाराज! बस अन्त हो गया अब क्षमा कीजिये इससे अधिक और आप क्या चाहते हैं। इसके बाद गोरक्षनाथजीने कहा कि या तो अपने सब प्रकारके प्रयत्न द्वारा हमसे बलि ग्रहण करो नहीं तो आजसे नियम करो कि मैं किसी योगीसे बलि के लिये निरोध नहीं करूंगी। यह सुन विवश हो देवीको गोरक्षनाथजीके कथनानुसार नियम करना पडा। परन्तु खेद है उस दीर्घकालके अतीत होनेपर जिह्वास्वादन के वशीभूत योगिवेषधारी ठगिया एवं प्रपञ्ची लोग योगि सम्प्रदायमें प्रविष्ट हो स्वयं उस कृत्यके सम्पादनमें तथा उसके प्रचारमें लवलीन हो गये। (अस्तु) नियमके स्वीकृत होनेपर गोरक्षनाथजी प्रसन्न हुए सहर्ष मुस्कराते हुए देवीसे अपने प्रस्थानार्थ आज्ञा मांगने लगे। देवीने सानन्द प्रणाम कर जानेकी आज्ञा दी। जिससे अपने शिष्योंको साथ लेकर श्री नाथजी अपने आसनपर जा विराजे।

इति श्री महायोगेन्द्र गोरक्षनाथ कालिका युद्ध वर्णन नामक २६ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी
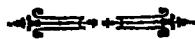
॥ अध्याय २७ ॥

श्री नाथजी कुछ काल निवास करने के अनन्तर यहां कालीकोटसे अभ्युत्थान कर बङ्गाल और बंगालसे आसामभुट्टानादि देशोंमें भ्रमण करते एवं जनोंको योगिपदेश संस्कारोंसे संस्कृत करते हुए कतिपय वर्षके उत्तर चीनसाम्राज्यान्तर्गत पिलांग, (पेनांग, नगरकी सीमामें पहुँचे ; यह स्थान बडा ही रमणीय और मनोहारी था। अतएव गोरक्षनाथजीने कुछ काल यहां निवास करना उचित समझकर इस विषयमें अपने शिष्योंसे परामर्श किया । शीघ्र ही हस्तसम्पुटी कर उनके शिष्योंने अनुकूल सम्मति प्रकट की जिससे श्री नाथजी यहीं विराजमान हो गये । यहां कुछ ही दिनके उत्तर आपने एक यथेष्ट पारिमाणिक गुहा निर्मापित कराई जिसमें अपने शिष्योंको समाधि के अलौकिक आनन्दानुभवको अनुभवित करने के लिये नियोजित किया जिनके शरीरकी रक्षात्मक कारवाईका भार आपने अपने ऊपर धारणकर उनको सर्व प्रकारसे निशंक कर दिया था। श्री नाथजीका हमेशाही यह व्यवहारथा कि वे अपने शिष्योंको यथोचित अनेक विद्या प्रदान के साथ २ असम्प्रज्ञात समाधिके अभ्यासमें निपुण करदेते थे और तदनन्तर उसका चिरकाल तक अनुभव करने के लिये या तो अपने शिष्योंको यह आज्ञा दिया करते थे कि जाओ पृथक् भ्रमण करो और पारस्परिक सहवाससे पारस्परिक शरीर रक्षासे रक्षित हो समाधिस्थ अवस्थाको अनुभवित करो । अन्यथा अपने समीप रहने वाले शिष्योंको उस अवस्थामें परिणत कर उनके शरीरकी स्वयं कुछ सेवा और रक्षा किया करते थे । (धन्य गुरुजी धन्य, समझमें नहीं आता है आपको कौनसी इतनी वडी अभिलाषा थी जिसके वशीभूत हुए आप सांसारिक लोगोंको इस अतीव दुष्प्राप्य पदवीपर चढाकर एक मामूली पुरुषकी तरह उनके शरीरकी रक्षामें अपने आपको वन्धित करदेते थे, जिससे आपको सर्व प्रकारके आस्वादन त्यागने पडते थे और स्व अण्डरक्षार्थ टिट्टिभीकी तरह हरएक समय सचेत रहना पडता था । ठीक है इस निरिच्छ और निःस्वार्थ अपूर्व हितैषिताका ही यह फलहै जो आपका प्रातःस्मरणीय

पवित्र नाम तथा स्वच्छ यश पृथिवी पर अमर हो गया है । परन्तु आपकी, शिष्योंके प्रति निरीह अद्वितीय कल्याणप्रद, प्रीतिके ऊपर दृष्टि डालने पर मुझे आधुनिक उन गुरुमहाशयोंकी अधःपातिनी शिष्यसम्बन्धिनी लोकानिन्द्य प्रीतिका, स्मरण हो आता है जो आपके चिरकाला वाधिक बृहत्प्रयत्न द्वारा प्रसारित धवल कीर्ति पूञ्जको मलीनित्वावच्छिन्न बनानेके लिये कटिबद्ध हो रही है । मैं, क्रोधावेशसे चञ्चलित और लपलपाती हुई अपनी जिव्हाको, ऐसे पुरुषोंके ऊपर अपशद्वोंका प्रयोग करनेसे तो अवश्य, दन्तोंके नीचे दबाकर निरोधित कर रहा हूं परं इनकी अनुचित प्रीतिके अवलोकन से अनल्प दुःखाक्रान्त हृदयको उस व्यवहारसे अवरुद्ध करनेको निःसन्देह असमर्थ हूं । अहो ! क्या ही दुःखका विषय है आजकालके दर्शनीयाकृति भूरी भूरी बबरानों वाले छोटे२ ही बालक ऐसे लोगोंके हस्तगत हो जाते हैं जिनको ये लोग निर्विकल्प हो आनन्दित हुए अपने चिन्हसे चिन्हित करने की बडी ही शीघ्रता किया करते हैं । बस क्याथा ज्योंही दिन व्यतीत होने लगे त्योंही गुरुजी की प्रीति बढने लगी और आधुनिक योगसाधनीभूत विचित्र क्रियाओंका आरम्भ होने-लगा । जैसे प्राचीन योगी उन यथार्थ क्रियाओंमें शीघ्र निपुणता प्राप्त करते थे उसी प्रकार आधुनिक योगी भी तो होने चाहियें । अतएव ये भी कुछ ही दिनमें आधुनिक, क्रियाकुशल गुरुओंकी कृपासे शीघ्र तमाखू, गाञ्जा, चरस भंग, अफीम, इनसे एकाधी और भी अधिक क्रियाओंमें कौशल्य प्राप्त करते हैं । जिसका फल यह होता है कि बालायु गोरक्षरूप, दर्शनीयाकृति, होनहार, वे बालक, थोंडे ही दिनमें निर्बल निस्तेज होकर अपने भविष्यको भ्रष्ट कर बैठते हैं । और चरसादिसे दग्धमर्मस्थान हुए बाल्यावस्थामें ही बूढोंकी तरह खांसीसे पीडित होकर मुट्ठीभर खंखार फैंकने लगते हैं। अफशोश ३ (अस्तु) गोरक्षनाथजीने अपने शिष्योंको समाधिस्थ आनन्दमें व्यलीन कर योगदीक्षाभिकांक्षी स्वसेवामें उपस्थित हुए अन्य पुरुषोंको अपना शिष्यत्वस्वीकृतिपूर्वक अधिकारित्वानुकूल रहस्य समझाना आरम्भ किया । और जबतक उनके ज्येष्ठ गुरुभाइयोंका समाधि उद्घाटन समय पूर्ण हुआ तबतक उन्होंने अपनी क्रियाओंके परिज्ञानमें अच्छी बुद्धिमत्ता प्रदर्शितकी, अर्थात् द्वादश वर्ष पर्यन्त वे असम्प्रज्ञात समाधिके यथेष्ट अधिकारी बन गये । अतएव समाधिस्थ शिष्योंके जागरित होनेपर गोरक्षनाथजीने उनको एकाकी भ्रमण कर अपने उद्देशप्रचारकी आज्ञा प्रदान की । उन्होंने शीघ्र ही आज्ञाको अङ्गीकृत कर गुरुजीकी प्रणति पूर्वक एकाकी देशाटनके लिये प्रस्थान किया । उधर गोरक्षनाथजीने भी अपने ज्येष्ठ शिष्योंको विदा कर तथा नूतन शिष्योंको साथमें ले वहांसे गमन किया । और चीनमें भ्रमण कर तिव्बतमें होते हुए कतिपय वर्षमें नवपाल (आधुनिक प्रसिद्धनैपाल) देशमें पहुँचे । जिनके यहांपर्यन्त भ्रमण करनेसे कितने ही पुरुष शिष्य होनेकी अभिलाषासे

उनके साथ होगयेथे। अतएव उनलोगोंकी आकांक्षा पूरी करनेके अभिप्रायसे श्रीनाथजीने इस देशस्थ एक पर्वतके ऊपर निवास किया। (जिसका कालान्तरमें गोरख पर्वत नाम प्रसिद्ध हुआ) (अस्तु) श्रीनाथजीने अनुयायी पुरुषोंको अपना शिष्य बनाकर क्रमानुकूल क्रियाओंमें प्रवृत्त करते हुए ज्येष्ठ शिष्योंको समाधिस्थ किया। जिन्होंने निर्दिष्ट समय पर्यन्त क्रियाकौशल्यमें स्वस्व बुद्धिकेअनुकूल सन्तोषप्रद दक्षता दिखलाई। अतएव श्रीनाथजी उनकी ओरसे निश्चित होगये। और आपने उनको सूचित किया कि अपने इन छोटे गुरुभाइयोंको जिनको हमने असम्प्रज्ञात योगके अधिकारी बनादिया है तुम यथेष्ट समय पर्यन्त समाधिका अनुभव कराना तथा तत्कुशलता विषयक निश्चयकर तदनन्तर सब मिश्रित सम्मति हुए समस्त पर्वतीय देशोंमें योगका प्रचारकरना। समग्र शिष्योंने उनकी यह आज्ञा शिर झुकाकर स्वीकारही नही की, बल्कि तत्पालनार्थ वे प्रयत्नाभिमुख भी हो गये। उधर श्रीनाथजी परम प्रीतिपूर्वक सन्तोष एवं धैर्यान्वित स्निग्ध वाक्योंद्वारा अपने प्रिय शिष्योंको सन्तोषित और तत्कृत्यके लिये उत्साहितकर वहांसे एकाकी विदाहुए। और अपनी क्रियाप्रभावोत्थशक्ति द्वारा लघुभाराम कहो बहुतही शीघ्रताके साथ कैलासस्थ श्रीमहादेवजीके समीप पहुँचे। जो उचित प्रणामात्मक आदेश २ के अनन्तर श्रीमहादेवजीके द्वारा निर्दिष्ट आसनपर विराजमान हुए। तदनन्तर आगन्तुक सत्कारार्थ अवश्यम्भावी यथोपलब्ध प्राकरणिक वाक्योंद्वारा प्रसन्नमुख सर्वान्तर्यामी श्रीमहादेवजीने प्रशिष्यसे कुशलवार्ता पूर्वक पूछना आरम्भ किया कि कहिये हमारे उद्देशका कैसा प्रचार हो रहा है। लोग इस प्रचारमें विश्वासित हुए इसके ग्रहणार्थ उत्कण्ठित होते हैं कि नहीं। उत्तर प्रदानमें गोरक्षनाथजीने कहा कि स्वामिन्! भला कौन ऐसा पुरुष है जो आपकी जनहितार्थ प्रदानित वस्तुमें उपेक्षाकर कल्पों पर्यन्त अल्पज्ञपशुप्राययोनिस्थ असह्य विविध कष्टोंको अनुभवित करने के लिये उद्यतहो। प्रत्युत आर्यवर्त्तमें तो चतुर्थांश पुरुष ऐसे हैं जो इस विषयमें पूर्णतया विश्वासी हो सांसारिक प्रपञ्चात्मक निस्सार व्यहारको तिलाञ्जलि दे अपने आपको इसकी प्राप्त्यर्थ प्रयत्नोंमें व्यलीन कर चुके हैं। जिनमें कितनेक पुरुषोंको अपने प्रयत्न में उत्तीर्णता प्राप्त हुई है। और उसके प्रभावसे विशेष शक्तिशालीहो उन्होंने अपने मनुष्य जन्मका यथार्थ उद्देश उपलब्ध किया है। साथही आपके उद्देश प्रचारमें सहायक बन आपकी विशेष कृपाके पात्र हुए हैं इनके अतिरिक्त कितने ही पुरुष ऐसे हैं जो किसी कारणसे सांसारिक जार्टलजाल द्वारा दृढबन्धित हुए त्यक्तगृहीतो नहीं होसके हैं परं तद्वत् होनेके लिये जीजानसे यत्न करते रहेत हैं। और आशाबद्ध हुए अपने उमडते हुए हृदयको धैर्यान्वित किया करते हैं कि निःसन्देह एकदिन ऐसा आयेगा जिसमें कैलासनाथ हमें भी परिणामी संसारके अस्थिर मिथ्या व्यापारसे विमुक्तकर चिरस्थितिजनकयोगात्मक सच्चेकृत्यमें नियुक्त करदेंगे क्योंकि

लोगोंको निश्चय होगया है कि मनुष्य शरीरकी प्राप्ति केवल अन्य योनियोंमें भी उपलब्ध विषयानन्दकी भोग्यताके लिये ही नहीं है किन्तु मनुष्य शरीरोपलब्धिका मुख्य प्रयोजन जो जन्ममरणात्मक पारम्पर्य दुःसह्य दुःखको निराकृत करना है तदर्थही है। और इस अभिलषित कार्यसिद्धिके लिये योगरूप उपायके अतिरिक्त अन्य दृष्ट उपाय प्रसिद्ध नहीं है। और यह बातभी नहीं है कि यह दशा केवल भारतीय लोगोंकी ही हो प्रत्युत भारतकी इस आकाशव्यापी धूमने पार्श्ववर्ती अन्यदेशीय लोगोंपर भी अपना प्रभाव खूब डाला है। यही कारण है अभी हम चीनदेशका भ्रमण समाप्त करके आरहे हैं। हम जिसदिनसे इस देशमें प्रविष्ट हुएथे उसदिनसे बहिर होनेतक ऐसा कोई नगर हमारे मार्गमें नहीं आया जिसमें अनेक पुरुष योगोपदेशके अभिलाषी न हों। और इसी उपकारसे उपकृत हुए लोगोंने नगरसे बहिर निकल हमारा यथोचित स्वागताभिनन्दन नहीं किया हो। यही कारण था इस देशमें यथार्थ प्रचार न होनेपर भी कतिपय लोगोंने साहस दिखलाया। तथा प्रपञ्चको किम्प्रयोजन समझकर हमारा शिष्यत्व ग्रहण करने के उद्देशसे हमको विवशित किया। यह देख हमनेभी उनकी प्रार्थनापर पूरा ध्यान देकर उनकी आशालताको हरित बनाते हुए उनको वाञ्छित पदपर अभिषिक्त कर दिया। जिनको पार्वत्यदेशमें योगोपदेशका विस्तार करनेके लिये आज्ञापित कर मैं अभी आपकी सेवामें उपस्थित हुआहूं। यह सुन महादेवजी वडेही प्रसन्न हुए। और स्वमत प्रचार विषयक प्राबल्यके सम्बन्धमें गोरक्षनाथजीकी प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर विनत्र भावसे अभ्यर्थना करते हुए श्रीनाथजीने प्रत्युत्तर दिया कि भगवन् सर्व आपकाही प्रताप है आप जब २ जिस प्रकारके कृत्यको विस्तृत करना चाहते हैं तब २ मनुष्योंकी तदनुकूल बुद्धि होजाती है जिससे लोग शीघ्र ही उस कृत्यको आश्रित करते हैं और उसको अन्ततक पहुँचानेका प्रयत्न किया करते हैं। यदि इस वार्ता के विषयमें कोई मनुष्य अभिमान करे कि मैंने अमुक कृत्य विस्तृत किया है तो समझना चाहिये कि निःसन्देह वह मनुष्य गलतीपर चल रहा है। श्रीमहादेवजीने गोरक्षनाथजीके इस कथनको चुप रहते हुए केवल हुंकारे द्वारा अनुमोदित किया और भ्रूभङ्गव्याजसे उनको दक्षिण भागमें दृष्टिपात करने की आज्ञा दी। गोरक्षनाथजीने श्रीमहादेवजीका अभिप्राय समझकर ज्योंही दाक्षिणात्य दृष्टि धारण की त्योंही उनकी दृष्टि अकस्मात् उधरसे स्वाभिमुख आते हुए स्वीयगुरु श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी के ऊपर पडी। यह देख तत्काल ही उन्होंने खडे होकर कतिपय पादक्रमद्वारा गुरुजीका स्वागत किया। तथा आभ्यन्तरिक बाह्य दोनों प्रकारकी आदेशात्मक नमस्कारसे उनको सत्कृत किया। इस कृत्यसे गोरक्षनाथजीको प्रत्युपकृत कर मत्स्येन्द्रनाथजी अग्रसर हुए और स्वगुरु श्री महादेवजीको नमस्कारकर तन्निर्दिष्ट आसनपर विराजित हुए। श्री महादेवजीने इनसे भी

योग प्रचारके विषयमें वार्तालाप किया जिसका उन्हें सन्तोष प्रद उत्तर मिला । और उत्तर प्रदानके अनन्तर मत्स्येन्द्रनाथजीने कहा कि स्वामिन् ! आपका मनोरथ चारितार्थ हुआ भारतके कौने २ में आपके उद्देशका प्रवाह प्रवाहित हो चुका है। अतः मेरी आन्तरिक इच्छा है कि आप मुझे अवकाश प्रदान करदें जिससे मैं अभीष्ट कृत्यमें सँलग्न हो सकूं । अपने उत्तर दायित्वानुकूल योगोपदेश विस्तारसे अनृण हुए समझकर श्रीमहादेवजीने निर्विकल्पता के साथ शीघ्र ही इनकी प्रार्थनाको अङ्गीकार कर लिया । और विज्ञापित किया कि जाइये आत्मानन्दके गहन समुद्रमें अपने मनोरामको व्यलीन कीजिये । मत्स्येन्द्रनाथजी गुरुजी की अनुकूल आज्ञा प्राप्त होनेसे अतीवानन्दित हुए । और स्वीय आरम्भित कार्यसे लब्धावकाश होकर गुरुजीके समीप ही रहने लगे । जो कुछ समय के निवासोत्तर युधिष्ठिर सम्वत्* १६३६ में चिरकालके लिये समाधिस्थ अवस्थामें अवस्थित हो गये । उधर गोरक्ष-नाथजीने, हरिनारायण, तथा, द्रुमिलनारायण, सम्बन्धी अवतरणके विषयमें श्री महादेव-जीसे परामर्श किया । जिसका उत्तर प्रदान करते हुए उन्होंने कहा कि उनके अवतरित होने में अभी विलम्ब है जो तुमसे भी अज्ञात नहीं है । हां यदि हमोर निश्चित उस समयसे प्रथम उनकी कोई आवश्यकता जान पड़ती होय तो स्फुट करना उचित है । जिससे हम भी अवगतित होजायें । और उनका नियत समय न्यूनकरनेका यत्न करें । गोरक्षनाथजीने कहा कि नहीं स्वामिन् ! शीघ्रता करनेकी आवश्यकता तो कोई दृष्टिगोचर नहीं है केवल उस समय उनको किसी न किसी उपाय द्वारा अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये मैंने सचेत रहना होगा इसी अभिप्रायसे प्रश्नद्वारा आपसे निर्णय कर अपने आपको सावधान रखने की अभिलाषा की है । तदनु श्री महादेवजीने कहा कि ठीक हैं परं वह समय तुमसे छिपा न रहेगा जैसा उचित समझो उसी उपायको अवलम्बित करना । गोरक्षनाथजीने श्री महादेवजीकी इस उक्तिको शिर नमन द्वारा समर्थनित किया । और अपने प्रास्थानिक वृत्तसे उन्हें प्रबोधितकर अन्तिम आदेश २ आत्मक विनम्र प्रणाम की । यह देख श्रीमहादेवजीने प्रश्न किया कि यहांसे किस ओर जानेका विचार है । श्रीनाथजीने प्रश्न हल करते हुए कहा कि यहांसे एकबार तो वदरिकाश्रममें जाना होगा । तदनन्तर जैसा अवसर उपस्थित होगा तदनुकूल विचार किया जायेगा । यह सुन श्रीमहादेवजीने

---

* युधिष्ठिरो, विक्रम, शालिवाहनौ, ततो नृपः स्याद्, विजयाभिनन्दनः, ततस्तु, नागार्जुन-भूपतिः, कलौ, कल्की, षडेते शककारकाः स्मृताः। कलियुगमें ये छै महानुभाव सम्वत्कर्ता गिने जाते हैं जिनमें तीनका सम्वत् प्रचलित हो चुका और अवशिष्ट होनेवाला है. अतः इस समय यौधिष्ठिरी यह सम्वत् था ।

कहा कि ठहरो हम भी चलेंगे। वहां ज्वालेन्द्रनाथ और उसका शिष्य कारिणपानाथ निवासकर अपने शिष्य प्रशिष्योंको षट्कर्मादि सर्व प्रकारकी क्रियाओंसे दीक्षित कर रहे हैं। जिनमें कतिपय कठोर तपमें भी संलग्न हैं। अब उनका समय पूर्ण हो चुका है इसी लिये तपस्यावस्थासे उनको विमुक्त करनेके उद्देशसे ज्वालेन्द्रनाथने हमारा आव्हान किया है। गोरक्षनाथजीने यह श्रवणकर श्रीमहादेवजीकी प्रास्थानिक तैयारी की प्रतीक्षामें स्वीय गमनको स्थगित किया। इधर महादेवजीने अपने सज्जीकृत नन्दीश्वरको स्मृतिगत किया जो शीघ्र उपस्थित हो अवनतपृष्ठ हुआ श्री महादेवजीके सुगमारोहणमें विशेष दक्ष हुआ। तदनन्तर दोनों महानुभाव कुछ ही कालमें बदरिकाश्रममें पहुँचे। जहां अनेक शिष्य प्रशिष्यों के सहित ज्वालेन्द्रनाथजी विराजमान थे। ठीक इसी समय इनकी दृष्टि स्वाभिमुख आते हुए गोरक्षनाथ और स्वीय गुरु श्रीमहादेवजीके ऊपर पडी। तत्काल ही इन्होंने अपने आसनसे उत्थित हो कुछ पदक्रम अग्रसर होते हुए उनका स्वागातिक सत्कार किया तथा यथोचित आसनपर बैठाकर उनके आकस्मिक आगमन द्वारा दर्शनोत्सवके विषयमें कृतज्ञता प्रकट की। इसके अनन्तर अपने युक्ति युक्त यथार्थ वाक्यों द्वारा ज्वालेन्द्रनाथजीको प्रत्युपकृत करते हुए श्रीमहादेवजीने उन घोर कठिन तप निष्ठ स्वीय कृपापात्र योगियोंका परिचय मांगा। वे ज्वालेन्द्रनाथजीकी गुहासे कुछ ही दूरीपर अनुकूल स्थलवर्ती कन्दरामें विराजमान थे। अतएव ज्वालेन्द्रनाथजी खडे हुए और हस्तसम्पुटी कर उधर चलते हुओंने अपने जनपुण्योपलब्ध अवलोकनद्वारा उनको पवित्र तथा उत्साहित करनेके लिये उनकी अभ्यर्थना की। श्रीमहादेवजी तत्काल ही खडे होकर ज्वालेन्द्रनाथजीके साथ तपस्वियोंके समीप गये जो अपनी कठिनावस्थाका परिचय देरहे थे। इधर ज्योंही तपस्वियोंको यह अवगति हुई कि हमारे तपसे प्रसादित हो जगदीश श्रीमहादेवजी हमको अपने पवित्र दर्शनसे कृतार्थ एवं हमको तपस्यावस्थासे विमुक्त करनेके अभिप्रायसे उपस्थित हुए हैं तब तो उनके आभ्यन्तरिक स्थानमें वह आनन्द अङ्कुरित हुआ जिसका अनुभव यातो उन्हींको हुआ होगा या श्रीमहादेवजी ही अन्तर्यामित्व स्वभावसे समझते होंगे। ठीक है साधारण पुरुष एक क्षुद्र कार्यमें कुशलता प्राप्त करने पर जब अपने आपको धन्य समझ बैठता है। और उसको इतना अधिक आनन्द होता है कि कुछ समयके लिये तो संसार मात्रको आनन्दमय देखता है। तब पाठक महानुभव! विचारिये, इन पुण्यात्माओंका कौन कार्य था जिसमें इन्हें सफलता प्राप्त हुई। धन्य ऐसी माताओंको जिन्होंने अपने शुद्धाशय पवित्र औरस स्थानसे ऐसे पुत्ररत्नोंको उत्पन्न किया जिनके दर्शनार्थ स्वयं श्रीशम्भु आ उपस्थित हों। तथा जिनको तपश्चर्यासे विमुक्त कर उनको और भी उच्चपदाभिगामी बनानेके अभिप्रायसे धैर्यान्वित एवं उत्साहित करनेके लिये

स्वयं श्रीशम्भुमहाराज समीप आवें। (अस्तु) तपस्वियोंकी अवस्था देखकर श्रीमहादेवजीने प्रकरण आम्भ करते हुए कहा कि ज्वालेन्द्रनाथ ! अब इनके विषयमें क्या समाचार है। ज्वालेन्द्रनाथजीने विनम्र भावसे कह सुनाया कि भगवन् ! जो समाचार है सो ऐसा नहीं कि आपसे अज्ञात हो। और उसको हमारी अवश्य ही प्रकट करनेकी आवश्यकता हो। तदनु श्रीमहादेवजीने कहा कि यह ठीक है हमें मालूम हुआ तुमने तपस्वियोंकी विमुक्ति लक्ष्यतासे हमारा आह्वान किया है। परं हम तुमसे यह सम्मति मिश्रित करना चाहते हैं कि इनकी इस अवस्था विमुक्तिका कोई दिन तुमने निश्चित किया हुआ है वा हमारी ही इच्छापर यह कार्य निर्भर है। ज्वालेन्द्रनाथजीने प्रत्युत्तर दिया कि स्वामिन् ! हमने द्वादश वर्षकी अवधि अवश्य रक्खी है परं तिथि नियत नहीं करी कि अमुक तिथिमें ही यह कार्य करना होगा। अतएव आपकी इच्छा हो उसी दिन यह कार्य कर सकते हैं। ऐसे कृत्यके लिये तिथिको न्यूनाधिक करनेमें कोई बाधा नहीं। यह सुन श्रीमहादेवजीने गोरक्षनाथजीकी ओर इसारा करते हुए कहा कि तुम भी अपनी अभिमति दो। उन्होंने हस्त जोड़ प्रकट किया कि भगवन् ! मेरी समझमें तो यह आता है अग्रिमदिन अरुणोदयसे ही इस कृत्यकी समाप्ति करनी चाहिये। गोरक्षनाथजीकी यह उक्ति समर्थित हुई। श्रीमहादेवजीने भी इसी अवसरमें उनको विमुक्त करना समुचित समझा था। अतएव उस दिन तथास्तु प्रतिपादन कर श्रीमहादेवजी ज्वालेन्द्रनाथजीकी गुहापर वापिस लौटे। अनेक विषयक वार्तालाप करनेपर उधरसे सायंकाल उपस्थित हुआ। योगी लोग अपनी २ क्रियाओंसे लब्धावकाश हुए। और सबने सम्मिलित हो अतीयानन्दित होते हुए बड़ी श्रद्धाके साथ श्रीमहादेवजीकी वन्दना की। जिसका सांकेतिक वाक्योंद्वारा उनको श्रीमहादेवजीने प्रातिक्रियेयसत्कारात्मक फल समर्पित किया। तदनन्तर समस्त योगियोंने अपनी पारस्परिक यथोचित अभिवादनात्मिका क्रियासे अवकाश प्राप्त कर अपने २ आसनोंको ग्रहण किया। श्रीमहादेवजीके समीप केवल तीन व्यक्ति ज्वालेन्द्रनाथजी, गोरक्षनाथजी और कारिणपानाथजी ये विराजमान थी। योग्य प्राकरणिक विविध विषयक वार्तालाप करते २ यह रात्री समाप्त हो चली। यह देख सभी महानुभव प्रातःकालिक नित्यक्रियासे निवृत्त हो पुनः श्रीमहादेवजीकी सेवामें नियत हुए। और इस सेवासे प्रत्युपकृति प्राप्त कर उन्होंने स्वकीय आभिवादनिक सत्कारसे भी अवकाश ग्रहण किया। उधर उक्तकृत्यके करते कराते निर्दिष्ट समय भी आ पहुँचा। अतएव श्रीमहादेवजीने प्रकृत कार्यके लिये ज्वालेन्द्रनाथादिको सूचित किया। जिससे वे सब सचेत हुए। और महादेवजीके साथ ही तपस्वियोंके समीप गये। वहां श्रीमहादेवजीने स्वयं यह घोषित किया कि हेतपस्वियो ! अब इस दशाका त्याग करो। तुम पूर्ण अधिकारी हो। तुम्हारी इस प्रशंसनीय दृढता एवं सहनशीलतासे

प्रसन्न हो हम तुम्हें वधाई देते हैं। और वचन देते हैं कि तुम ज्वालेन्द्रनाथ और कारिगपानाथके द्वारा अपनी अभीष्टसिद्धिके प्राप्त करनेमें अवश्य समर्थ होगे। यह सुन तपस्वियोंने स्वकीय आरम्भित क्रियासे मुक्ति उपलब्धकी। और श्रीमहादेवजीके चरणारविन्दकी शरण लेकर अपने और भी चातुर्य एवं महत्त्वका परिचय दिया। जिससे श्रीमहादेवजीकी वृद्ध प्रसन्नता और भी प्रवृद्ध हुई। और उनके आन्तरिक हृदयस्थानमें वह उत्कट प्रीति उत्पन्न हुई जिसको स्वीय हृदयमें ही व्यलीन करनेके लिये वे असमर्थ हुए। अतएव उन्होंने समस्त तपस्वियोंको अपने औरसदेशसे सम्मिलित कर अपनी प्रवृद्ध प्रीतिको सार्थक किया। तथापि इतने ही कृत्यसे श्रीमहादेवजीकी प्रवाहित प्रीति शान्त न हुई। इसी लिये उन्होंने योगिसंघको सम्बोधित कर कहा कि पृथिवीपर वे मनुष्य, साधारण एवं न्यून भाग्यशाली नहीं समझने चाहियें जो सांसारिक दुस्त्याज्य माया प्रपञ्चको किम्प्रयोजन निश्चित कर अनेक कष्टोंका सामना करते हुए दृढता एवं सहनशीलता तथा धीरता द्वारा मेरे स्वरूपको लक्ष्य बनाते हुए मेरी अनन्य कृपाके भाजन होजाते हैं। और जिनको मैं स्वयं अपने हस्तस्पर्श द्वारा उच्चपदाभिगामी बनानेके लिये बाध्य होता हूं। ठीक आज यही दृश्य सम्मुख उपस्थित है। मनुष्योंको चाहिये इससे शिक्षा ग्रहण करें। और जो मनुष्य, यह लोक ही दुःखमय है जिसका नाम ही मृत्युलोक है इसमें जन्मना और मरना प्रधान दुःख हैं जो नित्य होते रहते हैं जिनसे छुटकारा पानेकी इच्छा करना आकाशको मुट्ठीमें बन्ध करनेकी इच्छा करना है, ऐसा प्रचार कर स्वयं आलस्योपहत हुए दूसरे लोगोंको भी आलसी बनाडालनेका यत्न करते हैं उनके शब्दोच्चारणकी ध्वनि कभी श्रोत्रगत न होने देना। क्योंकि वे लोग अज्ञ हैं मूर्ख हैं। मैं ऐसे लोगोंको सावधान करता हूं कि वे अच्छी तरह समझ लें ईश्वर द्वेषी तथा अन्यायी नहीं है जिसने संसारको दुःखमय ही रचकर खड़ा किया हो। और इसमें ऐसा उपाय नहीं रचा हो जिससे तुम तन्निष्ठ दुःखसे मुक्ति न पासको। और कल्पपर्यन्त अनेक कष्टोंका ही उपभोग किये जाओ। किन्तु वह बड़ा ही दयालु है उसने प्रथम तो तुमको ऐसा कोई उपदेश नहीं दिया जिसके अवलम्बनसे तुम्हें दुःख भोगना पड़े ! तुम अपने अतथ्याभिमानसे स्वयं दुःखी होते हो। द्वितीय वह दुःख भी तुम चाहो तो दूर होसकता है जिसके परिहारार्थ उपाय ईश्वरने सृष्टिसर्गके साथ ही रचा है जिसका हम प्रचार कररहे हैं। आज ही देखिये अनेक पुरुष दृष्टिगोचर हैं जो इस योगोपायसे सांसारिक प्रधान दुःखका तिरस्कार करचुके हैं। श्रीमहादेवजीने तपस्वियोंके ऊपर इस प्रकार अपनी विशेष कृपा प्रकट कर पारस्परिक अभिवादन प्रत्यभिवादनके अनन्तर निज स्थानको प्रस्थान किया।

इधर गोरक्षनाथजीने भी तत्कृत्यसे निवृत्त हो श्रीजान्हवीजीके तटस्थ हरद्वार क्षेत्रमें गमन किया और वहां गुहाका निर्माण कर युधिष्ठिर सम्वत् १६८६ में आप चिरकालके लिये आत्मानन्दमें व्यलीन हुए।

इति श्रीमद्योगेन्द्रगोरक्षनाथ कैलास गमन वर्णन नामक २७।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय २८ ॥

उक्त कृत्यको समाप्तकर श्री महादेवजीके कैलास चले जानेपर ज्वालेन्द्रनाथजीके तथा कारिणपानाथजीके उन शिष्योंका, जो योगसाधनीभूत विविध क्रिया काठिन्यसे कुछ शिथिल प्रयत्न तथा मन्दोत्साहान्वित हो गये थे, अत्यन्त ही उत्साह बढ गया । और उन्होंने अपने२ आनन्दाच्छादित आभ्यन्तरिक शुद्धान्तः करणमें दृढ निश्चय कर लिया कि हम प्राणान्त पर्यन्त स्वकीय आरम्भित क्रियाओंकी समाप्ति देखनेका प्रयत्न करेंगे । और अब की सदृश फिर कभी हतोत्साह न होंगे । अतः अन्तर्यामी क्षमा कीजिये । वस्तुतः पाठक ! इनकी यह दशा ज्वालेन्द्रनाथजीसे भी छिपी नहीं थी उन्होंको इनकी इस शिथिलावस्थाका कुछ परिज्ञान प्रथमतः ही हो चुका था । अतएव उन्होंने श्री महादेवजीके दर्शन द्वारा इनको उत्साहित करनेका विचार स्थिर करना पडा । इसी लिये उन्होंने इनकी ओरसे निश्चित हो अपने उन शिष्योंके ऊपर दृष्टिपातकी जिनको महाकठिन तपश्चर्यावस्थासे श्री महादेवजीके द्वारा मुक्त करा कर विशेष सत्कृत किया था । और उन्होंके द्वारा इनके पूर्ण अधिकारित्वको सूचित करा कर अभीष्ट सिद्धिके सफल होनेका भी विश्वास दिखलाया था । अतः जो कहा गया उसको करना अवश्य ही था । इसीलिये उन्होंने अपने शिष्योंको साबर विद्यादि अनेक विद्याओंके दान पूर्वक कामास्त्रादि विविध अस्त्रोंकी भी दीक्षा प्रदानकी । और अवसर प्राप्त होनेपर परिपन्थी के अस्त्रको किम्प्रयोजन बनानेके लिये अमुक के ऊपर अमुक अस्त्रका प्रयोग करना होगा, इस प्रकार समग्र अस्त्रोंके परिचालनात्मक उपयोगका परिज्ञान करा दिया । तदनु जब ज्वालेन्द्रनाथजीको यह निश्चय हो गया कि हमारे शिष्य, जो योगाङ्गात्मक साधनोंमें पहले ही उत्तीर्ण हो चुके थे, इस कृत्यमें कुशलतोपहित हो गये हैं तबतो उन्होंने उनको केवल अवशिष्ट असम्प्रज्ञात समाधिका भेद बतला कर उसके द्वारा अपने आपको अमर बनाते हुए संसारमें अपनी विमल एवं अक्षुण्ण कीर्तिके स्थापित करनेका मार्ग प्रदर्शित किया । जिसमें ये महानुभाव कुछ ही दिनोंमें तदवस्थास्थ मर्मके अनुभव कर्ता बन गये । और अपने हृदयमें स्वयं

यह अनुभव करने लगे कि निःसन्देह हमलोगोंका पूर्वजन्मकृत कर्म शुभ चरित्रान्वितथा जिसके प्रभावसे हम इस महापवित्र कृत्यमें सँलग्न हुए। और सौभाग्यवशप्राप्त, अमोघप्रयत्न, समस्तविद्याभंडार, दयालु व्यक्तिको, हमें गुरु बनानेका अवसर मिला। जिस पूर्ण हितैषी एवं पुण्यात्माके श्लाघनीय प्रयत्नसे आज हमको इस जन्मनिष्ठ बाजीके जीतनेका शुभ अवसर प्राप्त हुआ। (अस्तु) ज्वालेन्द्रनाथजीने अपने शिष्योंको पूर्ण योगवित् बनाकर उनमेंसे कुछ शिष्योंको अपने समीप रखना स्वीकृत करते हुए अवशिष्टोंको अज्ञापित किया कि अब तुमलोग पृथक् भ्रमण करो। और अनुकूल स्थानमें निवास करते हुए पारस्परिक देहरक्षासे रक्षित हो सामयिक उपाय द्वारा अपने आपको चिरस्थायी बनाते हुए गृहीत योग प्रचार द्वारा जनोपकारात्मक उपकार सञ्चयकर जनहितैषिताके पात्र बनों। यह सुन समस्त शिष्य उनके चरणों में गिरे। और पुनः नमस्कार रूप आदेश २ शद्बोच्चारण कर तथास्तु) इस प्रकार आज्ञा अङ्गीकृति की सूचना देते हुए वहांसे प्रस्थानित होगये। उधर इनके चले जानेपर कारिणपानाथजीसे तथा उनके शिष्यांसे पौनःपुनिक अभिवादनद्वारा अभिवन्दित हुए अपने उन पांच शिष्योंके सहित ज्वोलन्द्रनाथजी भी देशाटन के लिये वहांसे गमन करगये। जो कभी योजन कभी न्यूनाधिकके क्रमसे हिमालयपर्वतकी शीतल अधित्यका के उपर विचरण करते हुए इस देशीय पुरुषोंमें स्वीय उद्देशके प्रचारको अनुभवित करने लगे। जहां यह अनुभव किया कि अमुक स्थानमें योग का महत्त्व जानने वाले लोगोंकी संख्या सन्तोष जनक नहीं है वहां कुछ दिनके लिये आप स्वयं निवास करतेथे। तथा अनेक प्रकारके चमत्कारों द्वारा निस्सार संसारके अस्थायी स्वाप्निक प्रपञ्चकी ओरसे लोगों के हृदयस्थान में उपरामता स्थापितकर उनके मनोरामको अपने उद्देशके संग्रहणार्थ विवश करतेथे। और उनकी अभीष्ट सिद्धिकी पूर्त्यर्थ किसी सुयोग्य योगीको नियतकर स्वयंपुनः अग्रिम मार्गका अनुसरण करतेथे। इसी प्रकार इतस्ततःभ्रमण करते एव योगोपयोगको स्फुट करते हुए वे कतिपय मासके अनन्तर चन्द्रभागा नाम्नी नदीके तटपर पहुँचे। यहां जलाश्रम अनुकूल समझकर उन्होंने विश्रामार्थ आसन स्थिर किया। इस स्थलमें कुछ दूरतक इधर उधर कोई ग्राम नहीं था; अतएव इस पार्वत्य जंगलमें सिंह हस्ती आदि आरण्यजीवोंका बड़ा ही साम्राज्य था। जो इन लोगोंके आसनाधिष्ठित स्थलमें भी अनेक जीव आते और समीप होकर चले जातेथे। परं ऐसा कोई साहस नहीं करता था जिससे सुखपूर्वक आसनासीन हुए इन महानुभवोंके ध्यानमें कुछ बाधा उपस्थित हो। यह देख ज्वालेन्द्रनाथजीके एक शिष्यको स्वाचारित अहिंसात्मक यमका स्मरण हो आया। अतएव वह आन्तरिक भावानुकूल प्रसन्न मुखसे कुछ मुस्कराता हुआ सोचने लगा कि अहो, क्याही विचित्र वृत्त है अहिंसाव्रत आचर्ता

पुरुषके हृदयसे प्राणिद्वेषात्मकभाव वहिरभूत होजाना असम्भाविक तथा विशेष आश्चर्योत्पादक बात नहीं। परं तदाचरित मनुष्यके समीपस्थ अन्य ग्राम्यारण्यादि तामस जीवोंके आभ्यन्तरिक स्थानमें भी पारस्परिक जिघांसाभाव नहीं दीख पडता है यह और भी अद्भुत वृत्तान्त है। देखिये किस प्रकार हस्ती व्याघ्रादि जाङ्गलिक पशु हमारे पृष्ठाग्र देशसे विहरण कर इस बातकी पुष्टि कर रहे हैं। तथा किस प्रकार हस्ती गवय सिंहादी जीव मिश्रित हो कौटुम्बिक बुद्धिसे विचरते हैं। एवं किस प्रकार ये इतस्ततः भ्रमण करनेवाले व्याघ्र, निशंकता पूर्वक आसीन इस मृगपंक्ति के ऊपर नहीं गिरते हैं। इति। इस प्रकारके मानसिक विचारास्पद हुए शिष्यकी ओर ज्वालेन्द्रनाथजीने ज्योंही दृष्टिपात किया तबतो उन्होंने अपने शिष्यके मुखको प्रसन्न और मन्द मुस्कराते हुए देखा। ठीक इसी अवसरपर उन्होंने प्राश्निकहो कहा कि पुत्र! क्या समाचार है स्पष्टीकर बतलाना। शिष्यने कहा स्वामिन्! अन्तर्यामित्व कारणसे ऐसा सम्भव नहीं कि प्राकृतिक वृत्त आपसे अननुभवित हो। जिसके लिये मुझे अवश्य ही उसको स्फुट करनेका यत्न करना पडे। इसके अनन्तर शिष्यके वचन रचना चातुर्यसे अन्तर्यामित्व कथनद्वारा स्वकीय प्रश्न प्रत्युत्तरके मार्गको अवरुद्ध हुआ समझकर ज्वालेन्द्रनाथजीने अपने आन्तरिक वृत्तिविषयक उपायसे तन्निष्ट तथा भावको अवगत किया। तथा कहा कि अये! सुलक्षण! तुझे चाहिये कि तू उस परम पिता दयालु ईश्वरका अनेक गुणानुवाद करे। और उसकी महती दयासे अनुगृहीत हुआ उसको अनेक धन्यवादात्मक शब्दोंसे पौनः पुनिक सत्कार दे। जिसकी अपरिमेय श्लाघनीय हितैषिता एवं कृपासे आज तुझे इस स्वप्नवत् वृत्तान्तके श्रवण करनेका नहीं खुद अनुभव करनेका सु अवसर उपलब्ध हुआ है। सम्भव है कि कुछ काल पहले तुमने इस कृत्यमें अश्रद्धा प्रकाशित की हो और इस व्यवहारको मनवडन्त एवं वाक्य कथा प्रतिपादित किया हो। परं अब प्रत्यक्ष देख तुम्हारी वह अश्रधेय कपोलकल्पना कहां तक सच्च निकली। प्रत्युत वह अतथ्य और आलस्यकारणिका कल्पना थी जिसके विषयमें तुम्हें स्वयं आन्तरिक प्रायश्चितकरना पडा होगा। तदनु शिष्यने कहा कि भगवन्! यह सच्च है आपका शुभाश्रय प्राप्त करनेसे पहले मेरी यही दशा थी। मेरी क्या अहिंसाचरण विमुख प्रत्येक मनुष्यकी ऐसी ही दशा हुआ करती है। वह सिंहके, यदि कहीं एकान्तिक जगहपर मिलजाय तो अवलोकन मात्रसे इतना भयभीत होता है कि वहांसे अपसरित होनेके लिये उसके पैर भी अपना कार्य करनेमें असमर्थ होजाते हैं। जिससे वह हतोत्साह हुआ पारावतकी सदृश निमीलित नेत्र होकर वहीं गिरजाता है। ठीक उस कालिकदशास्थ मुझे भी ऐसी ही अवस्थामें परिणत हुआ समझा जा सकता है। परन्तु अब कृपा है आपकी जो आपके कथनानुसार मैं अपनी उस दशाका स्वयं पश्चात्ताप कररहा हूं। और अपने आपको धिक्कृत करता हुआ अन्य

पुरुषोंको भी धिक्कार देता हूं जो उस कालिक मेरी तरह इस प्रत्यक्ष दृष्ट अहिंसात्मक यमके महत्त्वमें विश्वसित नहीं होते हैं। यह सुन ज्वालेन्द्रनाथजीने कहा कि मनुष्यको चाहिये हरएक समय अपना यह विश्वास रक्खे कि आत्मा और आत्मसहवासी गुणोंका आत्मा ही साक्षी हुआ करता है। अतएव द्वेषगुणनिःशरण शुद्धान्तःकरण प्राणीकी ओरसे तद्दृष्टिपात विषयक सम्मुखीभूत प्राणीको कभी भय प्राप्त नहीं होता है। इसी लिये वह स्वयं भी उसको क्लेशित करनेकी कोई चेष्टा नहीं करता है। और तो क्या प्रसिद्ध बात विड़ाल ही ले लीजिये उसके चित्तमें सिंहके द्वेषका भाव नहीं है और न कभी वह सिंहकी हिंसा ही करनी चाहता है। यही कारण है नतो सिंह उससे भीत होता है और न स्वयं उसकी हिंसा ही करता है। इसीसे अहिंसाका तत्त्वविचारना योग्य है। और यहां इतना ध्यान रखनेकी और भी आवश्यकता है कि जैसे मनुष्य अन्य नागरिक अपरिचित मनुष्यके प्रति अहिंसाका भाव रखता हुआ भी उसके साथ परिचितकी सदृश प्रैतिक आलिङ्गनादि कृत्य नहीं कर सकता है इसी प्रकार अहिंसासे शुद्धान्तःकरण मनुष्य, अति समीप विहरणित होनेवाले व्याघ्रादिसे अतिरक्त हुआ भी अकस्मात् उनसे आलिङ्गनादि प्रीत्यात्मक व्यवहार नहीं कर सकता है। ऐसा करबैठनेपर बहुत सम्भव नहीं कि परस्परमें अविकृतिभाव ही स्थित रहै। जब इस आकस्मिक कृत्यसे प्रमत्त एवं ठगादिकी आशङ्कासे सजातीय मनुष्य भी एक बार तो अवश्य चौंक पड़ता है तब विजातीय सिंहादि आरण्य पशुओंके विषयमें कौन क्या कहे। हां इतना अवश्य सम्भव है कि कुछ कालिक सहवाससे, प्रिय भाषण और क्षुधा पिपासा निवृत्यर्थ सामग्री प्रदान द्वारा जैसे मनुष्यके साथ वह आलिङ्गनादि व्यवहार देखाजाता है तैसे सिंहादि के साथ भी होजाता है। (अस्तु) इस प्रकारके अनेक प्राकरणिक वार्तालाप के द्वारा उन्होंने सुखपूर्वक उस रात्रीको व्यतीत किया। और प्रातःकालिक नित्यकृत्यसे अवकाशितहो वे प्रातिदैनिक गमनक्रियामें तत्पर हुए। जो स्वकीयोद्देश प्रचारका निरीक्षण करते हुए कुछ दिनमें काश्मीरदेशमें पहुँचे। इस देशमें एक सुदीर्घ जलाशय उनको दृष्टिगोचर हुआ। जिसके समीपस्थ देशमें कुछ ही दूरीपर गहनिनाथ तथा नागनाथजी अपने २ शिष्योंको दीक्षा प्रदान कररहे थे। अत एव उनकी यह सूचना उद्घाटित होनपर ज्वालेन्द्रनाथजी भी अपने अनुयायी शिष्यों के सहित वहीं जा उपस्थित हुए। यह देख निवासित गहनिनाथ और नागनाथजी तथा उनके शिष्योंने बडे उत्साह और हर्षके साथ कुछ पादक्रम अग्रसर हो प्रदादागुरु एवं दादा गुरु ज्वालेन्द्रनाथजीको आदेश २ शब्द पूर्वक पौनःपुनिक प्रणामसे सत्कृत किया। और अतीव सम्मान सूचितकर उनको आसनासीन करते हुए उनके आकस्मिक पवित्र दर्शन प्रदानित करने के विषयमें श्लाघा प्रकटकर अपना सौभाग्य स्फुट किया। तदनु संशोधितार्थ रुचिकर पद्यक्तिरचनात्मक

प्रतिवाक्योंद्वारा ज्वालेन्द्रनाथजीने उनको प्रत्युपकृतकर प्रशंसित बनाते हुए कर्तव्यपालनामें हर्ष प्रकट किया। और अपने शिष्योंको उसदिन यहीं विश्राम करनेकी आज्ञा प्रदानकी। जिससे उन्होंने गहनिनाथजी के निर्देशानुसार गुरुजीके आसनकी प्रतिष्ठापूर्वक स्वीय आसनोंकी स्थिति निश्चित कर तत्काल गुरुजीकी आज्ञाको चरितार्थ किया। तदनन्तर कुछ क्षणके उत्तर भोजनादिसे निवृत्त होनेपर ज्वालेन्द्रनाथजीके गहनिनाथ तथा नागनाथजी के द्वारा दीक्षित योगियोंकी क्रियाके निरीक्षण करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। और उन्होंने यह बात उक्तदोनों महानुभावोंके सम्मुख प्रकटभी करदी। यह सुन उनको बडाही हर्ष हुआ। और तत्काल ही स्वकीय दृश्यमाणक्रियोत्तीर्ण शिष्योंको समीप बुलाकर ज्वालेन्द्रनाथजीकी अभिलाषासे उनको सूचित किया। वे शीघ्र तैयार होगये। और उन्होंने हस्त सम्पुटी कर दिदृक्षित क्रिया के प्रकट करने की प्रार्थना की। ज्वालेन्द्रनाथजीको प्रथम जलीय क्रियाओंकी दिदृक्षाथी इसलिये वे समीपस्थ माहाह्रदके तीरपर गये। और अभिलषित क्रियोद्घाटन की आज्ञा दी। जिनमें वे तत्काल व्यग्र हुए। और अनुकूल रीतिसे परीक्षोत्तीर्ण हो ज्वालेन्द्रनाथजीके अमोघ आशीर्वादके पात्र बनें। इस प्रकार क्रिया प्रदर्शनी तथा तदीय प्रसन्नता विषयक आशीर्वाद वाक्य प्रयोजित होते हुआते यह दिन बडे ही आनन्द और उत्साह के साथ प्रचलित हुआ। उधर रात्री आई। सान्ध्यकर्म के अनन्तर भोजनादिसे लब्धावकाश होकर समस्त योगी अपने २ आसनोंपर विराजमान हुए। केवल ज्वालेन्द्रनाथजी तथा गहनिनाथ और नागनाथजी ये तीनों महानुभाव एकत्रित बैठे हुए थे। जो अपने उद्देश विस्तार विषयक अनेक गुप्त वार्तायें कर रहे थे। इत्यादि प्रकृत प्रास्ताविक वार्तालाप द्वारा उनकी वह रात्री समाप्त होनेको आई। यह देख गहनिनाथजीने कहा कि महाराज! आप यहांसे कहां जानेका विचार कर रहे हैं। ज्वालेन्द्रनाथजीने कहा तुम्हारा क्या अभिप्राय है जिसके लिये पूछने की आवश्यकता पडी। प्रत्युत्तरार्थ गहनिनाथजी बोले कि हमारा अभिप्राय। यहांसे कैलासस्थ श्री महादेवजी की शरणमें जाकर उनसे अवकाश मांगनेका है। अतः इन योगसाधनीभूतक्रियानियोजित शिष्योंको, जो कुछ शिथिल हैं सम्यक् रीतिसे क्रिया कुशल बनाने के अनन्तर जायेंगे। आप इस विषयमें क्या अभिमति रखते हैं। ज्वालेन्द्रनाथजीने कहा कि ठीक है यदि आपलोगों की ऐसी ही इच्छा है तो चले जायें। क्योंकि आप लोगोंके ऊपर जो उत्तरदायित्व था उसे आप लोगोंने उचित रीतिसे पूरा कर दिखलाया है। जिसको श्री महादेवजी भी अच्छी तरह जानते हैं। इसी लिये वे निर्विकल्पताके साथ तुम्हारे मनोरथको स्वीकार करेंगे। इसके अतिरिक्त हमारे सम्बन्धमें तो यह बात है हम अभी नहीं चल सकते हैं श्री महादेवजी की आज्ञानुसार भविष्यमाण गोपीचन्द्रको, जो द्रुमिलनारायणका अवतार होगा, हमने दीक्षित करना पडेगा। अतएव हम यहीं किसी

जगहपर समाधिस्थ हो अपनी अभीष्ट सिद्धिको सफल करेंगे। इसके अनन्तर ज्वालेन्द्रनाथजी अपने और शिष्योंको पृथक् भ्रमणका परामर्श देनेपर स्वयं सहर्ष बड़े आदर उत्साहके साथ वहांसे विदा हुए। जो शलेमान पर्वतकी उपत्यकामें इधर उधर विचरते हुए कतिपय मासमें भगवती हिंगलाजाधिष्ठित पार्वत्य अधित्यकापर पहुँचे। वहां जानेपर उन्होंके श्रीहिंगलाज देवीके दर्शन करनेकी इच्छा अङ्कुरित हुई। अतः वे लक्ष्याभिमुख हो उधर अग्रसर होकर उस प्राथमिक घाटीपर जा प्राप्त हुए जहां भैरव प्रहरी रहते थे। ठीक इसी समय उधर भैरवोंने भी इन दोनां महानुभावोंको अपने सम्मुख आते देखकर दूरसे ही आगे आनेसे निरोध किया। तथा यह भी स्पष्ट कह सुनाया कि नियत समयसे अतिरिक्त ऊपर जानेके लिये देवीकी आज्ञा नहीं है। इधर ज्वालेन्द्रनाथजीको अपने कर्तव्यका विश्वास था। इसी लिये वे उनके वचनकी उपेक्षा कर आगे बढते ही चलेगये। यह देख भैरवोंको सहसा यह ख्याल हुआ कि मालूम होता है ये कोई असाधारण पुरुष हैं। अन्यथा निरोध करनेपर भी निशङ्क हो इनका आगे बढना असम्भव था। तदनु कुछ क्षणमें ये भी उनके समीप जा खड़े हुए। एवं भैरवोंसे कहने लगे कि हमारे देवीजीके दर्शनकी अत्युत्कण्ठा जागरित हुई है इस वास्ते तुमको चाहिये कि हमारे मार्गमें कोई बाधा उपस्थित न करो। यह सुन भैरवोंने उत्तर दिया कि जब हमको आज्ञा ही नहीं है तो जानेको कैसे कहें। बल्कि संसारमें जब यह प्रसिद्ध है कि समयातिरिक्त कोई भी मनुष्य हो नहीं जाने पाता है तब तुमको स्वयं यह सोचना था कि इस इच्छासे इस समय यहां न आते। ज्वालेन्द्रनाथजीने कहा कि देवीकी उक्त आज्ञा मनुष्य मात्रके लिये नहीं है। अतएव नियत कालसे आगे पीछे भी कोई एक पुरुष ऊपर जाकर देवीके दर्शन करनेमें सफल हुए हैं। और हम भी होंगे। नाथजीके इस वचनको श्रवण कर वे कुछ शंकान्वित हुए पूछने लगे कि आपका क्या नाम है। ज्वालेन्द्रनाथजीने उत्तर प्रदान किया कि मेरा नाम ज्वालेन्द्रनाथ है और मत्स्येन्द्रनाथका जो, यहां आकर तुम्हारे द्वारा अवरुद्ध हो देवीके दर्शन करनेमें असमर्थ हुआथा, गुरुभाई हूं। इन्होंने मत्स्येन्द्रनाथजीका नाम, भैरवोंको पूर्वीय घटनाका स्मरण कराने, और उनका गुरुभाई होनेसे अपने आपको भी उतना ही शक्तिशाली सूचित करनेके, अभिप्रायसे, लियाथा। और उनको असमर्थ कथन कर तार्किक वाक्य द्वारा भैरवोंको चिड़ाना था। क्योंकि ये मत्स्येन्द्रनाथजीके हस्तसे चपेट खा चुके थे। ठीक हुआ भी वैसा ही मत्स्येन्द्रनाथजीका नाम सुनते ही उनके अतीत वृत्त स्मृतिगत हुआ। जिससे तत्क्षण ही उनकी लालाटिक कान्ति मन्द होगई। तथा उन्होंने निश्चय करलिया कि यह अवश्य अप्रतिहत गति है। अतएव इसको रोक रखना उचित नहीं। परं यह दूसरा कौन और इसका क्या नाम है यह भी निश्चय

करलेना चाहिये । इसी अभिप्रायसे उन्होंने ज्वालेन्द्रनाथजीसे प्रश्न कर समीपस्थ उनके शिष्यका परिचय मांगा । उन्होंने उत्तर दिया कि तुम्हें विशेष निर्णयसे क्या प्रयोजन यह भी एक रमताराम है । यह सुनकर भैरवोंने विचार किया कि ज्वालेन्द्रनाथका आश्रय ले ऊपर जानेकी इच्छासे यह भी कोई मार्गमें पीछे लगलिया है । इसी लिये उन्होंने ज्वालेन्द्रनाथजीसे कहा कि अच्छा आप तो जाइये परं इसको नहीं जाने देंगे । यह श्रवण कर नाथजी कुछ मुस्कराते हुए, इसकी यह और तुम जानों हमें तो अपने कार्यसे प्रयोजन हैं, यह कह वहांसे प्रस्थानित हो कुछ दूर आगे एक शिलापर बैठ उनके कुतूहलकी परीक्षा करने लगे । गुरुजीके आभ्यन्तरिक मनोरथका अवगमन कर तवतक उनका शिष्य वहीं खड़ा रहा । जिसे आगे बढनेसे द्वारपालभैरव बार २ निरोधित कररहे थे और वह उनसे जाने देनेकी बार २ प्रार्थना कररहा था।परन्तु इन नीचेकी मीठी वार्ताओंसे कोई प्रयोजन सिद्धि न देखी गई । अतएव उसने एकाएक अन्तमें गुरुप्रदत्त विद्याओंसे काम लेनेका दृढ सङ्कल्प कर, प्रथम, सम्भतः मैं अपनेको ज्वालेन्द्रनाथजीका शिष्य प्रकट कर दूं तो सहजमें ही झगड़ा तय होजायेगा, यह सोचकर उनसे कहा कि मैं भी इन्हींका शिष्य हूं । ऐसी दशामें केवल मुझे ही रोक रखकर उनसे वियोगित करना आपलोगोंको उचित नहीं है । इसके उत्तरमें भैरवोंने कहा कि ज्वालेन्द्रनाथका शिष्य है तो कुछ पराक्रम और चमत्कार दिखला । जिससे तेरा मार्ग निष्कण्टक हो . और निरोधमें असमर्थ होनेके कारण हमको भी बुराईका मुख न देखना पडे । यह सुन उसने सोच लिया कि अनायाससे कार्य सिद्धि नहीं है । इसी लिये उसने महिमा सिद्धिके प्रभावसे अपने शरीरको तेजस्वी एवं दीर्घस्थूलाकार बनाया । और गदा हस्तमें लेकर वह भैरवोंकी ओर झपटा । उधर वे प्रथमतः ही तैयार थे । कुछ इसके शीघ्र पारिवर्त्तनिक शरीराकारको देखकर और भी सचेत होगये । युद्धाग्नि प्रज्वलित होउठा । पारस्परिक प्रहार शब्द एवं हुङ्कारसे सुखासीन वन्यजीव त्रस्त हुए इधर उधर भागने लगे । ठीक समयपर आ प्राप्त होनेवाले अष्टभैरवोंको अपनी अधिक संख्याका अभिमान था परं उनका वह अभिमान झूठा निकला । और बहुत देर तक युद्ध होते रहने पर भी वे उसको साध्य न बनासके । एवं उसको भी अपने बल और कष्ट सहन दृढताका विश्वास होनेसे यह अहंकार हो गया था कि मैं इन्हें अब ठीक बनादेता हूं । परं वैसा न हुआ किन्तु यह निश्चय हो गया कि इस कृत्यसे पालापार न होगा । अतएव उसने गादेय युद्धका परित्याग कर मान्त्रिक आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया । जिसकी शेषसहस्रजिह्वाओंकी तरह लपलपाती हुई आग्नेयलटाओंसे पर्वत दग्ध होने लगा । यह देख तत्काल ही भैरवोंने वार्षिक अस्त्रद्वारा उसका उत्तर देकर दंदह्यमान पर्वतको शान्त किया । इसी प्रकार

उसके अनेक अस्त्रोंका उत्तर होनेपर जब उसने यह समझ लिया कि ऐसे भी साध्य सिद्धि नहीं है। तबतो उसने अपनी भस्मपटिका का आश्रय ग्रहण किया। और उससे कुछ भस्म निकालकर अष्टभैरवोंको लक्ष्य बनाते हुए उधर प्रक्षिप्त किया। बस क्याथा इस अन्तिमास्त्रका सहन करना उनके लिये असह्य हुआ। अतएव वे मूर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पडे। और उनके मुखसे रुधिर प्रवाहित हो निकला। उधर इस वृत्तकी सूचना देवीके भवनमें भी हो चुकी थी। इसी लिये अनेक वीर तथा सहायक देवियां घटनास्थलमें आ पहुँची। जो हस्तमें नाना शस्त्र धारण किये हुए और मारलो २ पकडलो जाने न पावे इत्यादि शब्द करती हुई आगे बढी। यह देख उसने कुछ विभूति फिर निकाली और समन्त्र उधर फेंक दी। जिसके अमोघ प्रहारसे देवियोंकी यह दशा हुई कि वे प्रमत्त हो पारस्परिक युद्ध करने लगी। और कुछ ही क्षणोंमें पारस्परिक प्रहारसे क्षत हो भूमिपर गिर पडी। यहां तक कि उनमेंसे एक भी ऐसी न बची कि वापिस लौटकर इस बातकी सूचना श्री हिंगलाज देवीको जादेती। उधर अधिक समय व्यतीत होनेपर जब किसी प्रकारकी खबर लौटकर न गई तबतो हिंगलाजको स्वयं यह विचार हुआ कि सम्भवतः कुछ अनिष्ट उपस्थित हुआ है अन्यथा इतना समय लगनेका कोई काम नहीं था। अतएव कुछ सहचारिणियोंके सहित श्री हिंगलाजमाई स्वयं सिंहासन परित्याग कर घटनास्थलकी ओर प्रस्थानित हुई। जो कुछ क्षणोंमें ही वहा पहुँची और उसने आगे शिलापर बैठे हुए ज्वालेन्द्रनाथजी को देखा। इनके अवलोकनसे देवीने सोचा था, कि विघ्नोपस्थिति कर्ता यही है। परं उसका यह विश्वास असत्य निकला, क्योंकि उसी अवसरमें ज्वालेन्द्रनाथजीको देवीके देखते ही निश्चय हो गया था कि हिंगलाज माता यही है। अतएव उन्होंने ऊठकर कुछ पदक्रम आगे बढते हुए श्री जी की प्रणाम की। यह देख देवीने उनका परिचय पूछा।* आपने जानती हुई भी हिंगलाज देवीको अपने नामसे परिचित करने के अनन्तर कहा कि मैं श्री महादेवजीका शिष्य तथा मत्स्येन्द्रनाथका गुरुभाई हूं। यह सुन देवीने उनको यह कहते हुए, कि मत्स्येन्द्रनाथको मैंने अपना पुत्र स्वीकार किया था अतः तू भी मेरा पुत्र ही है, अपनी छातीसे सम्मिलित किया। तथा साथ ही यह भी कह सुनाया कि पुत्र प्रकृत घटनाका निमित्त कारण तू ही है क्या। यदि यही बात होतो इसका अपहरण कर भवनमें चल। जितने दिनकी इच्छा हो आनन्दके साथ निवास कर। भैरवोंको चाहिये था मनुष्यका उचित रीतिसे परिचय कर विवादारम्भ करते। यह सुन उन्होंने कहा कि नहीं मातः! इस

---

* यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि इतने दीर्घकाल पर्यन्त भारतमें विद्यमान रहने पर भी ज्वालेन्द्रनाथजीके नामसे भैरव और हिंगलाज अबतक अपरिचित ही थे। तथापि इतना होनेपर भी इनका जो अपरिचित जैसा व्यवहार हुआ वह दुर्विज्ञेय है।

झगडेका कारण मैं नहीं हूं। इसी लिये मेरी तरफसे भैरवोंका कोई दोष नहीं है। क्योंकि उन्होंने मेरा परिचय लेते ही भवनमें जानेकी आज्ञा प्रदान करदी थी। परं मेरा शिष्य है जो उधर बैठा हुआ है। उसको भैरवोंने नहीं आने दिया इसी कारणसे वह कुपित हुआ और उसने भैरव तथा इन देवियोंकी दुर्दशा की है। यह सुनते ही हिंगलाजदेवीने कहा कि वह कहां बैठा है उसको बुलाकर समझाओ। और इन मूर्च्छित भैरव तथा देवियोंको सचेत कराओ। ज्वालेन्द्रनाथजीने शीघ्र अपने शिष्यको बुलाया। उसने शीघ्र आकर प्रथम गुरु और फिर श्रीहिंगलाजजीके चरणोंमें गिरकर प्रणाम की। जिसको देवीने शीघ्र उठाकर अपनी गोदमें लिया। और मूर्च्छितोंको ठीक करनेका परामर्श दिया। उसने भी प्रसन्न हो शीघ्र देवीकी आज्ञा पालित की। और उनके कष्टपर कृतज्ञता प्रकट कर अपने विषयमें क्षमा करने की प्रार्थना की। इसके अनन्तर सब एकत्रित हो प्रसन्नताके साथ भवनमें गये। वहां कुछ दिनके दर्शन प्रसन्न होनेपर ज्वालेन्द्रनाथजीने श्री हिंगलाज देवीकी आज्ञानुसार उसी पर्वतमें एक सुमनोहर गुहा तैयार कराकर उसमें स्वशरीररक्षाका भार शिष्यके ऊपर छोड युधिष्ठिर सम्वत् २०५० में चिरकालके लिये समाधिस्थ दशाका अनुभव करना आरम्भ किया।

इति श्री ज्वालेन्द्रनाथ हिंगलाज समागम वर्णन नामक २८ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय २९ ॥

इधर श्रीज्वालेन्द्रनाथजीके गमन कर जानेपर बदरिकाश्रमस्थ कारिणपानाथजीने भी वहांसे प्रस्थान करनेका विचार स्थिर कियां। इसी लिये वे अपने शिष्योंको दीक्षित करनेमें विशेषदत्त चित हुए। और कुछ ही दिनमें गुरुजी की तरह उन्होंने भी शिष्योंको शीघ्र क्रिया कुशलतोपहित बना दिया। तदनन्तर शिष्योंको परीक्षितकर उनकी क्रिया त्रुटि विषयक अभावका उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया तबतो उन्होंने वहांसे निर्विकल्प हो प्रस्थान किया। और कुछ दिनमें भ्रमण करते हुए आप हरद्वार क्षेत्र सप्तस्रोतपर आ पहुँचे। यहां कुछ समय निवासकर कारिणपानाथजीने अपनी उत्पत्ति विषयक वृत्तान्तसे अपने शिष्योंको प्रबोधित किया। यह सुन उनके शिष्य आपका पुतला हस्तीके कर्णमें कैसे अङ्कुरित हुआ। किस प्रकार इसकी पालना हुई। तथा आप उससे बहिर कैसे निकले। और निकलनेके अनन्तर भी उस समय स्वयं रक्षित नहीं हो सकते थे। अतः किस प्रकार आपकी रक्षा पूर्वक पोषण हुई इत्यादि सन्दिग्ध और आश्चर्योत्पादक वार्ताके स्पष्ट कह सुनाने के लिये विशेष आग्रह करने लगे। इसी वास्ते कारिणपानाथजीने शिष्योंकी विनम्र विशेष प्रार्थनासे विवश हो अन्ततः वृत्तान्तको विशेष स्फुट करना उचित समझकर उनको उस समाचारसे अवगतित करने के अभिप्रायसे कहना आरम्भ किया कि अये शिष्यो! तुम अपने आन्तरिक स्थानमें यह दृढ निश्चय धारण करलो ईश्वरीय नियम ऐसा ही नहीं है कि मानुषजातीय स्त्री के गर्भद्वारा ही मनुष्यकी उत्पत्ति सम्भव है। एवं तत्तत् जातिके जीवकी उसी २ जातीय स्त्री के सकाशसे शरीरोत्पत्ति हुआ करती है किन्तु इस क्रमके व्यतीरेकसे भी प्रकृत बात सम्भव है। इसी बातकी पुष्टिके लिये तथा जो मनुष्य ऐसा स्वीकार नहीं करते हैं उनके मुखपर चपेट लगाकर उनको उनकी प्रमत्तासे विमुक्त करनेके लिये ही अतीत कालमें समुद्र तटस्थ दाक्षिणात्य कदरी स्थानमें गोरक्षनाथजीने अगणित जनसमूहके सम्मुख स्वीय योग प्रभावद्वारा अनेक स्त्री पुरुषों सहित कतिपय छोटे २ गृह तैयार कियेथे। जिनमें वे मनुष्य सुखपूर्वक निवास करते हुए दीखपड़ते थे। यही कारण मेरे विषयमें समझना चाहिये। इसी योगरूप अमोघोपाय द्वारा मेरा शारीरिक पुतला भी स्त्रीगर्भस्थानके विराहित स्थलमें सम्पन्न हुआ।

जिसके रक्षण एवं पोषणात्मक भारको जिन्होंने आन्तर्धानिक रीतिसे अपने ऊपर धारण कर रक्खा था वे, इसी योगात्मक वस्तु विज्ञानसे जायमान अपरिमित शक्तिके भण्डार श्रीमहादेवजी हैं। उन्हींकी यह अगम्य और विचित्र गतिथी कि अत्यन्त आपत्ति जनक स्थानमें भी मेरा शरीर सर्वथा निर्विघ्न ही रहा। और योग्य दशामें प्राप्त होनेपर गुरुजीकी इश्वर कृपादृष्टि हुई जिन्होंने मुझे बहिर निकाल कर सर्व प्रकारसे सम्पालित किया। जिससे आज उस दीर्घकालके अति क्रमित होनेपर मैं तुम्हारे सम्मुख इसी स्थलीय अतीत घटनाके स्मृतिगत करानेका सौभाग्य प्राप्त करसका हूं। यह सुन उनके शिष्योंने ईश्वरकी अलक्ष्य गतिके विषयमें अनेक प्राकरणिक वार्ताओंका उद्‌घाटन करते हुए गुरुजीके स्फुट कथनार्थ कृतज्ञता प्रकट कर कहा कि स्वामिन्! सत्य है जो कृत्य उसे चिकीर्षित है उसके सम्पन्न करनेमें उसको कोई कठिनता नहीं। यही कारण है लोक प्रसिद्ध असम्भव वृत्त सम्भवित हो इस विषयमें सन्दिग्ध हृदयोंको निःसन्देह बनाता हुआ स्वनिमित्त विवादका विच्छेद कर रहा है। तिसपर भी विशेष हर्षका विषय यह है कि इस वृत्तका उदाहरण आप हुए। जिनके अविच्छिन्न अमोध प्रयत्न द्वारा हम जैसे क्षुद्र प्राणियोंको अपने ऐह लोकागमनके वास्तविक प्रयोजनको सफलीभूत बनानेका अवसर मिला। इत्यादि पारस्परिक गौष्ठिक वार्तालापके पश्चात् कारिणपानाथजीने प्रातिवचनिक वाक्य प्रयोगसे अपने शिष्योंके रुचिकर वागव्यवहारको समर्थित कर वहांसे प्रस्थान किया। और आप समीपस्थ एक ऊंचे पर्वतपर, जिसपर कि सूर्यकुण्ड विद्यमान है, चढे। यहां एक दिनके निवास करनेपर कारिणपानाथजी के सहसा एक विचार उत्पन्न हुआ कि इस पर्वतके ऊपर चढनेमें जितना विलम्ब और बलखर्च हुआ है उतना ही उतरनेमें भी होगा। इस लिये यहांसे विचित्र रीतिद्वारा चलना चाहिय अतएव उन्होंने शिष्योंको नीचें उतर निर्दिष्ट स्थानपर खडें हो जानेका परामर्श देकर वे जबतक वहां पहुँचे अपनी स्थिति उसी जगहपर रक्खी। तदनु ठीक यह निश्चय हो गया कि वे वहां जा पहुँचे हैं तबतो स्वयं भी शरीराकाशसंयमज प्रभावद्वारा आकाश मार्गसे क्षणोंमें उनके समीप आ गये। (यह चमत्कार कारिणपानाथजीने विना किसी प्रयोजनके नहीं दिखाया था। तथापि उपस्थित द्र्‌जनसंघको इससे विशेष विस्मित नहीं होनापडा। कारण कि आकस्मिक अदृष्ट चमत्कार ही विस्मयत्वका उत्पादक होता है। परं आज वह अवसर नहीं था। भारतके कौने २ में प्रत्याहिक ऐसे चमत्कार प्रकटित होते रहते थे।) अस्तु) वहांसे कारिणपानाथजीने अपने एक शिष्यको समीप रखना अङ्गीकार कर अन्य सबको कहा कि तुमलोग यह अच्छी तरहसे जानते हो योग साधनीभूत ऐसी कोई क्रिया अवशिष्ट नहीं जिसका मैंने तुम्हारेको यथार्थ तत्त्व न समझा दिया हो। प्रत्युत तुम्हारा आन्तरिक हृदय ही इस बातकी सत्यतामें साक्षीभूत हुआ विश्वसित होगा कि हां यदि हम अपने

प्रयत्नमें शिथिल न हुए तो जहांतक वढना चाहें ऊंचे वढनेकी कुञ्जी पा चुके हैं। साथ ही उस विद्यात्मक अमोघ शस्त्रको भी प्राप्त हो चुके हैं जिसके प्रवल प्रवाहसे मन्दोत्साहान्वित हुआ कोई भी प्राणी हमारा तिरस्कार करनेका उद्योग नहीं करेगा। अतएव मैं अव तुम लोगोंको आज्ञापित करता हूं कि पृथक् होकर भ्रमण करते रहो। अपने गुणोंको, जो मैंने तुम्हारेको प्रदान किये है, जन हितार्थ विस्तृत कर अपने उत्तरदायित्वसे मुक्ति पाओ। साथ ही अनुकूल स्थानिक निवासद्वारा पारस्परिक रक्षासे रक्षित हो आयुवृद्धिके लिये समाविज उपायको अवलम्बित करते रहो। इस आज्ञा के श्रवण करते २ उन्होंने अपने आन्तरिक भावसे, धन्यभाग्य आज हम भी इस पुण्योपलब्ध कृत्यमें नियुक्त किये जा रहे हैं, यह धारणा स्मृतिगत कर हर्ष प्रकट किया। तथा तत्काल ही वे गुरुजीके चरणोंमें नमस्कार पूर्वक आज्ञा स्वीकृति सूचक शब्दोंका प्रयोग करते हुए वहांसे प्रस्थानित हुए। इधर कारिणपानाथजी भी एक शिष्यानुयायी हुए श्रीगङ्गाजीके पार्श्ववर्ती प्रदेशोंमें भ्रमण करने लगे। जो कतिपय वर्षोंमें अपने अमृतायमान सार्थक प्रिय शब्दोंद्वारा लागोंको योगका तत्व अवगतित करनेमें प्रोत्साहित करते हुए युधिष्ठिर सम्वत् ८१२४ में श्री प्रयागराजमें पहुँचे। यहां बौद्ध और अबौद्ध लोगोंका स्व स्व धर्मोत्कर्षताके विषयमें वादविवाद हो रहा था। जिसमें अबौद्ध अर्थात् वैदिकधर्मानुयायी सनातनी लोगोंकी ओरसे एक वाल ब्रह्मचारी विवादनायक थे। जिसकी अपूर्व विद्वत्तासे विमोहित प्रजाने उसको निमन्त्रित कर आहूत कर रक्खा था। और उसके स्वागतोपलक्ष्यमें एक महान् भोज्यभण्डार भी तैयार किया गया था। ठीक इसी भोज्यादान कालिक अवसरमें सशिष्य कारिणपानाथजी को भी प्रजानुरोधसे जनसंघमें सम्मिलित होना पडा। परन्तु इन्होंने भोजन करने के लिये भोजनस्थानमें जानेसे पहले लोगोंसे यह नियम दृढ करालिया था कि हम भोजन करने को जायेंगे तो हमारे भी तुम लोगोंको आना होगा। प्रस्ताव समस्त जनसम्मत हुआ था। अतएव अग्रिम दिन उपस्थित होनेपर कारिणपानाथजीने भण्डारकी तैयारीमें दत्तचित हो अपने शिष्यको आज्ञा दी कि जाओ नगरमें जितनी खाद्य वस्तु तैयार हों उनमेंसे कुछ २ अंश खरीद कर लिवालाओ। गुरुजीकी यह आज्ञा सुनते ही उनका शिष्य कुछ मनुष्योंको साथ ले नागरिक बाजारमें गया और सब तरह के पक्व पदार्थोंका थोडा २ भागलेकर वापिस गुरुजीकी सेवामें आ उपस्थित हुआ। यह देख कारिणपानाथजीने समस्त पदार्थोंको एक अलक्ष्य जगहपर रखवा दिया। तदनु कुछ क्षणोंमें भोजन वेला हो जानेपर निमन्त्रित जनसमूह भी निर्दिष्ट जगहपर पंक्तिवद्ध हो जब तदादानके लिये प्रतिपालना करने लगा तब कारिणपानाथजीने पूर्व निश्चित भोजन वितरण कर्ता पुरुषोंको आज्ञापित किया कि भोजनालयसे जनाभीष्ट भोजन निःसारित कर वितरण करो। उनकी यह आज्ञा शीघ्र पालितकी गई। अतएव कुछ

क्षणोंमें अभिलषित भोजनसे जन समुदायने क्षुधाको सुशान्त बनाते हुए स्व स्व विश्रामको लक्ष्यकर वहांसे प्रस्थान किया। तथा स्वकीय अभिलाषानुकूल भोजनोपलब्धिके विषयमें विविध प्रकारसे उन्होंने कारिणपानाथजीकी प्रशंसा की। (अस्तु) भोजनानन्तर कुछदेर आराम करनेपर सभा समय उपस्थित हुआ। अपने २ आराम स्थानसे बहिर निकल लोगसभा स्थानमें आने लगे। उधर इस कुतूहलमें मिश्रित होनेके लिये कारिणपानाथ-जीकोभी विवश किया गया था। अतएव अपने शिष्यके सहित वे भी वहां आ विराजे। इस समय तक उभय पाक्षिक लोगोंसे सभास्थान परि पूर्ण हो चुका था। इसी लिये क्रमशः उभय पाक्षिक महानुभाव खडे हो २ स्वीय-धर्मोत्कर्षता विषयक प्रमाण पंक्तिको विस्तृत करने लगे। जिसके विस्तार एवं अन्तिम निर्णय स्वीकरण में एक प्रहरके अनुमान समय अतिक्रमित हुआ। आजके निश्चयानुसार उक्तब्रह्मचारीजीको प्रजाने हार्दिक धन्यवाद दिया। क्यों कि आपकी अपरिमित विद्वत्ता की सूचक मुखारविन्दसे बहिरभूत होनेवाली संशोधितार्थ पङ्क्तियोंने बुद्धानुयायियोंको हतोत्साहकर प्रजाजन रञ्जनको प्रवृद्ध बनादिया था। यही नहीं उस बालब्रह्मचारी महानुभाव की अस्खलित गिर्वाग्वाणी पटुतासे जायमान विशेषाल्हादसे आल्हादितहो कारिणपानाथजीको भी उन्हें, आपका कथन साङ्गतिक है इसी लिये भगवान् आदिनाथ आपके मन्तव्यकी वृद्धिमें सहायक हों हम यही चाहते हैं, यह शब्दोच्चारण करनापडा। (अस्तु) इसके अनन्तर सभा विसार्जित हुई। सभ्यलोग अपने २ स्थानोंपर गये। इधर कारिणपानाथजी भी सादर सभ्यजनो पचारादिस सत्कृत हो देशान्तरको लक्ष्य ठहराकर वहांसे चलही दियेथे। जो इतस्ततः अनेक देशोंको तय करते हुए कतिपय वर्षके अनन्तर ब्रह्मगिरि पर्वतपर पहुँचे। यहां चर्पटनाथ और रेवननाथजी अपने २ शिष्योंको योगशिक्षामें प्रोत्साहित कररहे थे। अतएव पारस्परिक दृष्टिसम्पातानन्तर हर्ष प्रकटता पूर्वक आदेश २ माङ्गल्य शब्दकी ध्वनि करते हुए एकने दूसरेका आनन्द कुशल पूछा। और एक दूसरेसे सत्कृत हो आसनासीन हुए स्वोद्देश प्रचार विषयमें विविध वार्त्तान्तिक कथाओंका उद्घाटन करने लगे। जिनके प्रश्नोत्तर करते कराते दिन व्यतीत होगया। उक्त महानुभावोंने भी दिनको आशिष दे आगन्तुक रात्रीदेवीका स्वागत किया। और वे अपने नित्य सायंकालिक कृत्यसे लब्धावकाश हो फिर आसनाधिष्ठित होकर औपस्कार्त्त वाक्य रचनामें तत्पर हुए। वहां निवसित दोनों योगवीरोंने कारिणपानाथजीसे पूछा कि आप कबतक और इस कार्यमें भाग लेते रहेंगे। उन्होंने उत्तर दिया कि अभी मैं इस विषयमें कुछ नहीं कह सकताहूं। हां इतना तो मुझे अवश्य मालूम है कि इस कृत्यसे अवकाशित होनेमें मुझे विलम्ब लगेगा। क्यों कि गुरुजीने कुछ समय हुआ मेरेको सूचित किया था

कि हमारी सम्मति प्रकट हुए विना इस विषयमें अभिलाषा न करना। यह सुन चर्पट-नाथजीने कहा कि हम दोनों तो इस आरम्भित कार्यको अर्थात् इन क्रिया नियोजित शिष्योंको दीक्षित करते ही श्री महादेवजीकी शरणमें जाकर अवकाश मांगनेका विचार कर रहे हैं। कारिणपानाथजीने तथास्तु कहते हुए सम्मति प्रकटकी, कि अच्छा है ऐसा ही करो। जब भारतके कौने २ में योगी विचरते हुए इस कार्यको सीमान्त पर्यन्त पहुँचानेका यत्न कर रहे हैं तो क्या आवश्यकता है आप निष्प्रयोजन भ्रमणसे अपना अमूल्य समय नष्ट करें। मैं जिन २ देशोंमें अब भ्रमण करता हुआ आ रहा हूं उन देशस्थ कोई प्रान्त ऐसा नहीं देखा गया जिसमें योगी अपना कार्यक्रम सञ्चालित न कर रहे हों। इसीलिये मैं तो यहीं सामाधिक दशामें तत्पर होनेका विचार कर रहा हूं। इत्यादि पारस्परिक मनोभाव सूचनात्मक वाग्व्यवहारके पश्चात् कुछ आराम करनेपर रात्री व्यतीत हुई। दिनका आगमन हुआ। कारिणपानाथजी वहीं अपने शिष्यको, तू प्रतिदिन वा रात्रीमें जो अनुकूल अवसर जान पडे, प्रहर चार प्रहर पर्यन्त सामाधिक अभ्याससे अभ्यसित हो अपने कल्याण के मार्गको स्वच्छ करता हुआ हमारे शरीरको रक्षित रखना, यह आज्ञा देकर युधिष्ठिर सं. २११९ में चिरकालके लिये समाधिस्थ हो गये।

इति श्री कारिणपानाथ समाधि वर्णन नामक २९ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथयोगी

॥ अध्याय ३० ॥

अस गिरिनामक पर्वतपर निवसित चर्पटनाथ तथा रेवननाथजीने कुछ दिनके व्यतीत होनेपर अपने २ शिष्योंको पूर्णतया योगवित् बनादिया। और उनको सम्मुख बैठाकर समझाया कि जिसकार्यके लिये हमलोग अवतरित हुए थे उस कार्य भारको यथास्थानपर पहुँचा देनेसे हम लोग अपने उत्तरदायित्वसे अनृण हो चुके हैं। अतएव हम इस कार्यसे लब्धावकाश होनेके वास्ते कैलासस्थ श्रीमहादेवजीकी सेवामें उपस्थित होंगे। जिससे सम्भव है कि फिर हमारा तुम्हारा समागम बहुत काल तक नहीं होगा। इस वास्ते तुमलोगोंको हम यह अन्तिम सूचना देते हैं। तुमको उचित है कि संसारमें निशंक होकर विचरण करते हुए श्री शिवमहाराजके इस योग मार्गको विस्तृत करनेमें यथेष्ट शक्ति लगाओ। और प्रासावसर कालिक सामाधिक अभ्यासद्वारा अपने जीवनोद्देशकी सफलताके लिये भी यत्न करते रहो। बस इन, स्वकीय कल्याणार्थ समाधिस्थानन्दका अनुभव करना, तथा परोपकारार्थ जनोंको योगका मर्म समझाना, रूप दो कार्योंसे अतिरिक्त सांसारिक किसी झगडेसे सम्बन्ध न रखना। यदि हमारे वचनपर ध्यान न देकर उक्त बातसे सम्बन्धित होगें तो समझलो संसार सागरसे पारंगत होनेकी कुञ्जी जो, हमने तुम्हारे हस्तमें प्रदान करदी है यह तुम्हारे हस्तमें जाती रहेगी। जिसका फिर प्राप्त होना उतने ही कष्टोंका अनुभव करनेके अनन्तर हो सकता है जितने कि तुम स्वयं अनुभवित कर चुके हो। इतना होनेपर भी अग्रिम जन्ममें आधुनिक अवसर जैसा अनुकूल अवसर प्राप्त हो कि नहीं यह बडा भारी सन्देहात्मक विषय है। अतः हमारे वचन और हमको तुम सदा सन्निहित समझना कभी अपने आन्तरिक स्थानसे दूर न कर बैठना। मनुष्यका यह विचार न करना ही, कि मेरे ऊपर भी कोई है या नहीं, अनर्थका उत्पादक है। संसारमें ऐसे अधिकलोग देखनेमें आते हैं कि स्वामिसान्निध्यसे पारतन्त्रिक हुए कुछ आचरण दिखलाते हैं और स्वातान्त्रिक होनेपर कुछका कुछ ही कर दिखलाया करते हैं। परन्तु यह सोचना चाहिये कि ऐसे कौन पुरुष हैं। और उनकी गणना किन्होंमें की जा सकती है। वे हैं अधम पुरुषार्थी लोग जो स्वार्थ

वशीभूत हुए स्वार्थ सिद्धिके अवसरकी प्रतिपालनामें किसी कारणिक घातको लक्ष्य ठहराकर सेव्यकी सेवामें उपस्थित होते हैं और उसकी अनुपस्थितिमें उसका कुछ ध्यान न रखते हुए स्वार्थघातकी ही अन्वेषणा किया करते हैं। ऐसे लोगोंकी गणना नींच लोगोंमें की जासकती है। वे अपने आन्तर्धानिक प्रत्येक कार्य करते हुए यह सोचा करते हैं कि हमारे अमुक कृत्यको कौन देखता है। हम अत्यन्त ही चतुरता और रेखदेख के साथ यह कार्य किया करते हैं। परन्तु वे मूढ बुद्धि यह नहीं सोचते कि हमने जिसका विशेष डर मानना चाहिये। वही ईश्वर व्यापकत्वानुरोधसे हमारे समस्त कृत्योंको देख रहा है। एक दिन ऐसा अवश्य आनेवाला है जिसमें उसके सिंहासनके सम्मुख खडे हो हमको अपने कृत्योंका हिसाव समझाना होगा अस्तु) परं हमको तो पूरा विश्वास है कि हमारे वचनको स्मृतिगत रखते हुए आप लोग ऐसे पुरुषोंकी उपाधि धारण न करके अपने आपको उक्त वृत्तका उदाहरणस्थल न वना देंगे। इत्यादि औपदेशिक वचन प्रदानानन्तर जव ये दोनों महानुभाव शान्त होगये तव बडी कृतज्ञताके साथ इनके चरणोंमें मस्तक लगाकर शिष्यवर्गने प्रणामात्मक आदेश २ किया। इसी अवसरमें प्रत्यभिवाद वाक्योंको प्रयोगित करते हुए इन्होंने ज्योंही अपने शिष्योंके मुखारविन्दकी ओर दृष्टि डाली त्योंही एकाएक उनके नेत्रोंको असोढप्रवाह प्रेमाश्रुओंसे परिपूर्ण देखा। कारण यह था कि समझदार होनेतक अपने प्रिय पुत्रके साथ माता जो २ हार्दिक व्यवहार करती है वह किसीसे छिपा नहीं है। उसीसे उपकृत होकर तो पुत्र माताके प्रति अपरिमेय भक्ति रखता है तथा उसके वियोग होनेपर कट्टरसेकट्टर हृदय मनुष्य भी पूर्वोपकारका स्मरण करते ही अश्रुतो अवश्य डाल देता है। अतएव हम उक्तदोनों महानुभावोंको भी माताकी तुलनासे युक्त कर सकते हैं। इन्होंने प्रत्येक क्रिया प्रदान कालमें शिष्योंको जो अपूर्व प्रेम दिखलायाथा वह मातासे किसी प्रकार भी कम नहीं था। वल्कि माता अनेक कष्टोंको भोगनेके लिये ही केवल पुत्रकी जन्मदात्री है। और वे महानुभाव उनके उन कष्टोंका उच्छेद करनेके लिये दीक्षा प्रदान करते हैं। जिस समय गुरु अपने शिष्यको वस्तिकर्मका आरम्भ करनेमें नियुक्त करता है तब उस शिष्यकी क्या बालक जैसी दशा नहीं होती है। और उस समय गुरु उसकी वडी चतुरताके साथ आसनपर स्थापित कर दूध भातादि तात्कालिक अनुकूल भोजन तैयार रखता हुआ क्या उसके समर्पण नहीं करता है। किन्तु यह क्या यहां तक कि माताकी तरह गुरुको शिष्योंका जो उक्तादि क्रियाओंमें तत्पर होते हैं मैला तक उठाना पडता है। ठीक इत्याठि कर्मको सम्पादित करते हुए इन महानुभावोंने अपने अपूर्व प्रेमका परिचय दिया था। अतएव अकस्मात् ऐसे सच्चे गुरुओंसे वियोग होनेका शब्द श्रवणकर सहसा इनके शिष्योंका अश्रुपात हुआ। परन्तु इन्होंने धैर्यान्वित वाक्योंद्वारा

उनको शीघ्र सन्तोषित कर दिया। और देशाटनके लिये आज्ञापित कर विदा भी कर दिया। तदनु जब शिष्यलोग प्रस्थानित हो गये तब इन महानुभावोंको भी अपना निश्चित मनोरथ अवश्य सफल करना था। इसीलिये आपलोग भी वहांसे अभ्युत्थानित हुए। और सौराष्ट्र देशके अन्तर्गत स्थानमें, जहां गोरक्षनाथजीने गुहा निर्मितकर कुछ काल ध्यानानन्द लिया था, आये। यहां मीननाथजी कुछ समयसे निवसित हो अपने शिष्योंको योग शिक्षा प्रदान कर रहेथे उनसे शुभ समागम हुआ। सामागमिक नमस्कारानन्तर चर्पटनाथजीने कहा कि बहुकालिक अवधि रखकर श्रीनाथजी आदि महानुभाव समाधि निष्ठ हो गये हैं यह वृत्त आपलोगोंसे छिपा नहीं है। उधर गहनिनाथ नागनाथजी सम्भव है अपना कार्य समाप्तकर श्री महादेवजीकी शरणमें जा ही पहुँचे होंगे। इधर हम दोनों वहीं जानेका उद्देश ठहराकर आपलोगोंको सचेत करने के लिये इधर आये हैं। अतएव हम लोगोंकी अनुपस्थितिमें भी हम श्री महादेवजीके इस उद्देश प्रचारकी आज जैसी वृद्धि देखनेकी आशा करते हैं। और विश्वास रखते हैं कि इस कार्यको सीमापर्यन्त पहुँचानेकेलिये आपलोग प्राणपणसे यत्न करेंगे। यह सुन मीननाथजीने कहा कि यह संसार परिवर्त्तन शील है। अतः ईश्वरेच्छानुकूल पारिवार्त्तनिक वायुवेगको प्रशान्त करनेके लिये तो हमलोग अपनेमें इतना समर्थ्य नहीं रखते हैं परं आपलोगोंके कथनानुसार योगोपदेश प्रचार वृद्धिके लिये जहांतक हमसे कुछ बन पड़ेगा उठा न रखेंगे। इस वास्ते हमारी ओरसे निशंक हुए विश्वसित हो आपलोग अपने जीवन चरित्रको पवित्र बनायें। मीननाथजीके इस कथनसे प्रसन्न हो ये दोनों महानुभाव वहांसे चल पड़े। और समुद्र तटस्थ रैवतक पर्वतपर, जहां धुरन्धरनाथजी विराजमान हुए शिष्योंको दीक्षित कर रहेथे, पहुँचे। प्रारम्भिक आदेश २ के अनन्तर पारस्परिक कुशल वार्त्ता विषयका प्रश्न उपस्थित हुआ। जिसमें उभय पक्षकी ओरसे सन्तोष प्रकट हुआ। इसके बाद चर्पटनाथजीने धुरन्धरनाथजीको भी मीननाथजीकी तरह समझाया कि आप लोगोंको अप्रमत्ताके साथ कार्य निर्वाहन करना होगा। और यह दिखलाना होगा कि हमने अपने आत्मीय व्यवहारमें एवं योग प्रचार विषयके कार्यमें अपनी उपस्थितिमें कोई शिथिलता न आने दी है। प्रत्युत्तरार्थ धुरन्धरनाथजीने कहा कि इस विषयमें आपलोग निःसन्देह रहें। जिन पवित्र आत्मा आदीशजी की महती कृपासे हमको अपना जीवनोद्देश सफल करनेका अवसर प्राप्त हुआ है भला उनके कार्य विस्तारमें हम शिथिल कैसे हो सकते हैं। प्रत्युत आपलोगोंकी अनुपस्थितिमें तो हमको और भी उत्साहित एवं सचेत रहना पड़ेगा। यह सुनकर दोनों आनन्दित हुए। और कतिपय सार्थक प्रिय वाक्यों द्वारा धुरन्धरनाथजीके शिष्योंको जो, विविध क्रियाओंमें यत्न शील थे, प्रोत्साहित एवं प्रफुल्लित चित्त कर वहांसे विदा हुए। जो कतिपय दिनमें

मार्गागत अनेक प्रदेशतय करते हुए निमिषारण्यमें पहुँचे । यहां इन महानुभावोंके भ्राता, जिनकानाम हरिनारायण और द्रुमिलनारायण था, कुछ समयसे निवासकर आत्मानन्दका अनुभव करते हुए कालयापनद्वारा उस समयकी प्रतिपालनामें तत्पर थे जिसमें श्रीमहादेवजी की आज्ञानुसार उन्हें भी योग प्रचारके लिये अपने स्वरूपका परिवर्त्तन करना होगा । अतएव चारों भ्राताओंके आज बहुत कालके अनन्तर एकत्रित होनेसे जब एककी दृष्टि दूसरे के ऊपर पडी तब एक दूसरेकी ओर झपटकर औरस मिलाप करने लगा । यह दशा बडी ही विचित्र और निर्वचनीय थी । योगीके समाधिस्थ आनन्दका स्वरूप वर्णन करने के लिये यदि कोई पुरुष अपने आपमें सामर्थ्य रखता होयतो हमारे श्रद्धास्पद इस भ्रातृ चतुष्टयके आधुनिक आनन्दका वर्णन कर सकता है अन्यथा नहीं । इसके अतिरिक्त आप लोगोंका आनन्द कोई सांसारिक अज्ञानी लोगों जैसा मोहजनित नहीं था । किन्तु इस बातसे जनित था कि, आगन्तुक नाथजियोंने सोचा हमारे भ्राताओंने भी अनेक कठिन तपश्चर्यावस्थाओंको पार करते हुए अपने आप में वह शक्ति प्राप्तकी जिस वशात् आज इस दीर्घकालके व्यतीत होनें तक भी अपने आपको अक्षुण्ण बनायें रखकर श्रीमहादेवजी को यह दिखला दिया कि हम आपकी कृपाके पूर्ण अधिकारी हैं । उधर नारायणोंने विचार किया कि हम लोग धन्य हैं जिनके भ्राता ऐसे हैं उन्होंने अनेक तपश्चर्यावस्थाओं को तय करते हुए वह शक्ति उपलब्ध की जिस वशात् श्री महादेवजी की आज्ञा के पालन करनेमें सफल होसके । अस्तु) कुछ दिन अपने भ्राताओंके साथ सानन्द सहवासकर उक्त दोनों महानुभाव श्री महादेवजी की सेवामें उपस्थित हुए । वहां विनम्र प्रणामात्मक आदेश २ के अनन्तर श्रीमहादेवजीने उनकी कुशल वार्ता पूछी । और स्वकीय आगमन प्रयोजनको स्फुट करनेके लिये उनको उत्साहित किया । यह सुनकर हस्तसम्पुटी करते हुए दोनों महानुभावोंने उत्तर दिया कि भगवन्! जो प्रयोजन है वह ऐसा नहीं कि आपसे अज्ञात हो । हां यदि उसके विषयमें आपकी कुछ और आज्ञा हो तो सूचित करनेकी कृपा करें । इसके बाद कुछ मुस्कराते हुए श्रीमहादेवजीने कहा कि नहीं और कुछ आज्ञा नहीं, खैर तुमलोग अपने अभीष्ट कार्यमें तत्पर होजाओ । श्रीमहादेवजीकी यह आज्ञा सुन चर्पटनाथजी तथा रेवननाथजी अतीवानन्दित हुए समीपस्थ गहनिनाथजी तथा नागनाथजीसे मिले । और कुछ दिनके अनन्तर समाधिस्थानन्दमें व्यलीन होगये ।

इति श्रीचर्पटनाथ रेवननाथ कैलास गमन वर्णन नामक ३० अध्याय ।

अनुवादक--चन्द्रनाथ योगी
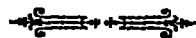
॥ अध्याय ३१ ॥

पाठक महानुभाव ! आइये पूर्वोक्त वृत्तान्तपर दृष्टिपात करते हुए कतिपय क्षण समालोचक बनेंगे । क्योंकि मुझे निश्चय है ग्रन्थके प्रारम्भसे लेकर यहां पर्यन्त पढ चुकनेपर स्वभावतः आपके हृदयागारमें यह प्रश्न उपस्थित हुआ होगा कि आज कितने कालको उल्लङ्घित कर हम उस दशामें आ पहुँचे हैं जिसमें हमारी आँखोंके सम्मुख वह चित्र खींचा हुआ है कि भारतवर्षात्मक समुद्रके कोने २ में योगप्रचारात्मक लहरायें लहराती हुई दीख पड़ती हैं । अर्थात् मत्स्येन्द्रनाथजीके उत्पत्ति कालसे प्रारम्भ कर उनके अनवरत घोर प्रयत्न द्वारा यह चित्र उपस्थित होनेतक उनको कितना समय व्यतीत हो चुका है । इस परामर्शके विषयमें मैं आपको सूचित करदेना चाहता हूं कि मैं अन्वेषणा करनेके लिये जहांतक आगे बढा हूं वहांतक मुझे पूर्व[1] दिखलाये शुकदेव सम्बन्धी अनुमानसे अतिरिक्त कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला जिससे यह ठीक मालूम होजाय कि श्रीमहादेवजी अमुक सम्वत्में समुद्रके तटपर गये और उन्होंने पार्वतीजीको अमरकथा सुनाई, जहां श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी प्रकट हुए थे । हां केवल पूर्वोक्त अनुमान और इस बातसे, कि जब नवनारायण विष्णुजीके समीप पहुँचे हैं तब उन्होंने नारायणोंसे कहा है कि हम भी स्वयं अवतरित होनेवाले है, मैं यह कहनेके लिये उत्सुक होसकता हूं कि द्वापरके उसी अन्तिम समयमें श्रीमहादेवजीकी इच्छानुसार कवि नारायण भृगुवंशीय किसी ब्राह्मणके गृहमें जन्मित हुए । जो अशुभ नक्षत्रमें उत्पन्न होनेके कारण समुद्रमें प्रक्षिप्त किये गये । और कुछ* कालके अनन्तर श्रीमहादेवजीने उद्धृत किये ।

१ देखो—अध्याय २ के १६ पृष्ठकी टिप्पणी ।

* यद्यपि–स्कान्द, और नारदीय, पुराण यह जितलाते हैं कि । तत्रस्थितोऽनेक युगानिसोऽभूत्कालस्य गत्याव्यजरामरांगः, अर्थात् कालकी गतिसे अजर अमर हुआ वह बालक अनेक युग पर्यन्त मत्स्यके उदरमें स्थित रहा । तथापि अनेक यह बहुवचन है जो शास्त्र निश्चित चारों युगों अथवा तीनोंपर लागू होगा । जिनमें द्वापरमें तो वह श्रीमहादेवजी द्वारा उद्धृत ही होगयाथा फिर अनेक युग वहां स्थित रहा यह कहना संगत कैसे हो सकता है। अतः लोकमें द्वादश वर्षको भी एक युग कहा जाता है ये ही अनेक युग बीत गये होंगे ऐसा समझना चाहिये । और ये सब बातें द्वापरके अन्तमें हुई ऐसा समझना चाहिये ।

इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथजीके जन्म लेते और उनके श्रीमहादेवजीके द्वारा उद्धृत होते तथा प्रथम पुत्र और पीछे शिष्य बनाते बनते जो समय व्यतीत हो गयाथा तबतक, जिनको आज लगभग पांच ५००० सहस्र वर्ष होचुके हैं भगवान् विष्णुजी भी अवतरित होगयेथे। अतः मत्स्येन्द्रनाथजीके उत्पत्तिकालको भी आज कुछ वर्ष ऊपर ५००० सहस्र वर्ष हुए समझना चाहिये। इस लम्बे चौडे कालमेंसे कुछ वर्ष ऊपर ३००० तीन सहस्र अन्तिम वर्ष निकाल दीजिये फिर अवशिष्ट समय जो रहा वह यह है जिसमें कितने ही कालतक अनेक कठिन तपश्चर्यावस्थाओंका परिचय देते हुए मत्स्येन्द्रनाथजीने प्रसन्न हुए भी श्रीमहादेवजीको अपने ऊपर अधिक प्रसादित किया। जिसका फल यह हुआ कि श्रीमहादेवजीको विवश हो अपने अधीनस्थजोजो विद्यायेंथी समस्त उनको प्रदान करनी पड़ी। यहांतक कि श्रीमहादेवजीने अपने योग प्रचारके बीजको अङ्कुरित करनेके लिये प्रथम आपहीको योग्य पुरुष अङ्कित किया। अतएव द्वापर समाप्ति पर्यन्त मत्स्येन्द्रनाथजीने गुरुजीको अनेक रीतिसे प्रसादित करना। और उनके सकाशसे अखिल विद्याओंका ग्रहण करना। तथा गृहीत समस्त विद्याओंका प्रयोग कर उनके विषयमें निश्चय प्राप्त करना,. आदि कार्य समाप्त किया। तदनन्तर श्रीमहादेवजीके योगप्रचार बीजको अङ्कुरित करनेके लिये गोरक्षनाथजीके प्रकटित होनेका यत्न किया। बस क्या था श्रीमहादेवजीकी आज्ञानुसार मत्स्येन्द्रनाथजीके द्वारा वपन हुआ बीज गोरक्षनाथजीके अलक्ष्य प्रभाव तथा अपरिमित प्रयत्नसे अङ्कुरित हो यहांतक रक्षित हुआ कि उसके प्रवृद्ध शाखान्वित होकर फल प्रसूति सहित होनेमें कुछ भी सन्देह न रहा। अतएव गहनिनाथ तथा ज्वालेन्द्रनाथादिसे शाखी एवं प्रफुल्लित हुआ योग प्रचारात्मक वृक्ष, अन्ततक बढकर फल सहित हुआ लोगोंको आओ, जिसको सांसारिक कार्योंमें निःसारताका निश्चय होगया हो, मेरे फलको, जोकि सचमुच अमृत तुल्य है, ग्रहण कर सार वस्तुकी प्राप्ति करो, यह चेतावनी देने लगा। ऐसा होनेपर कौन ऐसा हतभाग्य पुरुष था जो संसारके विविध कष्टोंको अनुभवित करता हुआ उनसे विमुक्त होनेके लिये इधर दृष्टिपात न करता। प्रत्युत इस सूचनाके श्रवण करते ही सहस्र २ पुरुष इस वृक्षकी ओर दौडे। और इसके फलास्वादनसे अजरामर हो जविन मरणात्मक परम्पराके दुष्त्याज्य दुःखके तिरस्कृत करनेमें समर्थ हो सके। श्री महादेवजीके उद्देशको इस दशामें प्रवृत्त करने तक मत्स्येन्द्रनाथजीके लगभग दो २००० सहस्र वर्ष लगे। ठीक इसी समय योग प्रचारको समिान्त पर्यन्त पहुँचा, तथा उसका समस्त श्रेय अपने शिष्य गोरक्षनाथजीको प्रदानकर तात्कालिक प्रसिद्ध युधिष्टिर सम्वत् १९३९ में मत्स्येन्द्रनाथजी स्वयं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर अगणित शक्तिशाली योगियोंके द्वारा प्रचारको प्रतिदिन प्रवृद्ध होता देख अपने आपकी अनावश्यकता समझकर, तथा हरिनारायण द्रुमिलनारायणके

अवतार कालमें विलम्ब निश्चयकर, गोरक्षनाथजी ज्वालेन्द्रनाथजी कारिणपानाथजी उस कालतकको अवधिरख समाधि निष्ठ हो गये। उधर मत्स्येन्द्रनाथजीकी तरह अपने उत्तर दायित्वको पूरा हुआ समझकर गहनिनाथ नागनाथजी और रेवननाथ चर्पटनाथजी उक्त मीननाथ आदिको सचेत करते हुए इस कार्यसे अवकाशित होनेके अभिप्रायसे कैलासस्थ श्री महादेवजीकी शरणमें पहुँचे। अतएव योग प्रचारकी समस्त रेखदेखका भार मीननाथ और धुरन्धरनाथजी पर ही पडा। यही कारण था अपने कुछ शिक्षा शिथिल शिष्योंको पूर्ण दीक्षित करनेका भार अपने ऊपरसे उतार समीपागत स्वकीय गुरु भाई विलशयनाथ पर आरोपित कर धुरन्धनाथजी युधिष्ठिर सम्वत् २१५० में मीननाथजीके स्थानपर आये। और उनको इस विषयक विशेष सूचनासे सूचित करने लगे कि आप जानते हैं यह वह समय नहीं है हम एक ही स्थानमें विश्राम करते हुए केवल शिष्योंको दीक्षित कर अपने आपको कृतार्थ समझलें। और इस कार्यसे अतिरिक्त किसी की भी चिन्ता न रक्खें। प्रत्युत आज वह दिन है जिसमें समस्त प्रचार समालोचनाका भार भी हमारे ही शिरपर आरूढ है। ऐसी दशामें उचित नहीं कि हम मुख्याचार्योंकी उपस्थितिकी तरह एक जगहपर स्थित रहते हुए अपने उत्तरदायित्वमें शिथिलता प्रदर्शित करें! किन्तु हमको संसारभरमें विचरण कर इस वातकी समीक्षा करनी होगी कि कौन ऐसा देश है जिसमें योगक्रियाके मुमुक्षुलोग तो हैं परं वहां वे योगी नहीं पहुँच सके हैं जिनसे वे विचारे अपने अभीष्टकी प्राप्ति कर सकें। यह सुनकर मीननाथजीने कहा कि मैंने इस विषयमें प्रथम ही परामर्श कियाथा कि मैं धुरन्धरनाथजीके समीप जाकर इस वातका निश्चय करूंगा कि इस समय हमलोगोंको किस उपायका अवलम्बन करना चाहिये जिस द्वारा हम अपने उत्तरदायित्वको अच्छी तरहसे पूरा करसकें। परं आपका महान् अनुग्रह है जो आप स्वयं मेरे पहले ही यहां आ विराजमान हुए। अच्छा कहिये आपकी क्या सम्मति है किस रीतिसे कार्य निर्वाहित करें। धुरन्धरनाथजीने कहा कि सबसे प्रथम आवश्यकता इस वातकी है हमारे हृदयागारमें यह दृढ निश्चय होना चाहिये कि योग प्रचारात्मक कार्यके सञ्चालित करनेमें श्रीनाथजी तथा श्रीमहादेवजी तक हमारे सहायक हैं। फिर देखेंगे आप किसी भी ढङ्गसे कार्यमें दत्तचित्त हुइये उसीसे कार्य सिद्धि होगी। मीननाथजी बोले कि अवश्य ऐसी धारणा करनी प्राथमिक कार्य है। और मैं स्वयं भी ऐसा विश्वास रखता हूं। तथापि मैं यह चाहता हूं कि आप अपनी अनुमति प्रकट करदें जिससे निर्विकल्प हो उपायका आश्रयण किया जाय। धुरन्धरनाथजीने उत्तर दिया कि यदि यही वात है तो समस्त उत्तरीय भारतका यह कार्य मैं अपने ऊपर लेता हूं आप दक्षिणभारतके कार्यका भार अपने ऊपर आरोपित करें। यह सुन मीननाथजीने तथास्तु

प्रयोग करते हुए धुरन्धरनाथजीके कथनको अङ्गीकृत किया। तथा समीपस्थ गिरनार पर्वतमें कुछ दिनसे निवास करने वाले स्वकीय गुरुभाई चण्डीश्वरनाथको बुलाकर अपने शिक्षाशिथिल शिष्योंको उसके अर्पण करते हुए यह समझा दिया कि अवशिष्ट शिक्षा इससे ग्रहण करना। और अपने चित्तमें किसी तरहका सन्देह न करना। क्योंकि शिक्षाप्रदान करनेमें यह मेरे जितनी ही कुशलता रखता है। गुरुजीकी यह आज्ञा समस्त शिष्योंने शिर झुकाकर स्वीकृतकी। तथा साथही, आप हमारी ओरसे शंसयित न होते हुए अपने उत्तरदायित्वको पूराकरने के लिये दत्तचित हो जायें, यह कहकर सभीने गुरुजीको उत्साहित किया। अतएव मीननाथजीने इधरसे सन्देह रहित हो युधिष्ठिर सम्वत् २१६० में दाक्षिणात्य भारतमें योग शिक्षा प्रचारके निरीक्षणात्मक कार्य भारको अपने शिरपर आरोपित कर वहांसे प्रस्थान किया। और समुद्र तटस्थ प्रान्तोंमें भ्रमण करते हुए श्री नर्मदा गङ्गाके पार हो कर कुछ दिनमें इसी नदीके कूलोपरि विराजमान श्री ओंकारनाथमें पदार्पण किया। यहां सहस्रों नरनारी आपके दर्शन करनेको आते तथा अनेक प्रकारकी भेंठ पूजा चढाते और आपके विषयमें प्रगाढ भक्ति प्रदर्शित करते थे। इसी लिये आपको यहां कुछ दिन निवासकर प्रत्युपकारार्थ भक्त लोगोंको उनकी भक्तिका यथोचित फल प्रदान करना पडा। तदनु इसी नदीके पार्श्ववर्ती देशोंमें विचरते २ कुछ दिनमें आप उस स्थानपर पहुँचे जो नर्मदाकी उत्पत्तिका कारण है। यहां गोमुखी और एक प्रसिद्ध एवं रमणीय शिवालयें है इसीको आपने कुछ दिनके वास्ते अपना विश्रामाश्रम निश्चित किया। यह नर्मदा जनक वडा ही तरीका पर्वत है अतः इसमें अनेक योगी निवास कर पारस्परिक योग दीक्षाका लाभ उठा रहे थे। आपकी सूचना शीघ्र इन योगियोंमें पहुँची तत्काल ही कतिपय योगी आपकी सेवामें उपस्थित हो आपको स्वकीय निवासाश्रममें लिवा ले गये। यहां भी आप कुछ दिन ठहरकर दीक्षक योगियोंके साथ विविध प्रकरणों द्वारा योग विषयक परामर्श करते रहे। तथा पीछले दिन योगसाधनीभूत क्रियाओंमें परिश्रम करने वाले योगियोंको उत्साहित करनेके अभिप्रायसे आपने सबको एकत्रित कर कहा कि महानुभावो! याद रक्खो! सर्वज्ञत्व सर्वनियन्तृत्वादि विशिष्ट एक ही चेतन पुरुष स्वामित्वाभिमानसे प्रकृतिद्वारा चेष्टित हुआ चौरासी लक्षयोनियोंमें सञ्चरित है। जो अपने आपको बद्ध एवं स्थूलप्रकृतिनिष्ट अपरिमित दुःखोंसे दुःखी समझता है। परं इस अवास्तविक दुःखत्रयसे, मनुष्यभिन्नयोनिनिष्ठ कोई चेतनपुरुष कभी मुक्ति पा गया हो ऐसा श्रवण नहीं होता है। इस लिये केवल यह मनुष्य योनि ही ऐसी है जिसमें पुरुषको उक्त दुःखोंसे मोक्षप्राप्त हो सकता है। बल्कि सच पूछिये तो इस योनिका मिलना ही पुरुषको अन्य बातके लिये नहीं केवल उक्त दुःखोंसे मुक्त होनेके लिये है।

परन्तु ध्यान दीजिये कि कोई जङ्गली मनुष्य हो जिसने जन्मसे ही वस्त्र आभूषणादिका उपभोग न किया हो वह अकस्मात् कभी दीप्तिपुञ्ज सुवर्णको प्राप्त होजाय तो उस समय क्या उस स्वर्णलोष्टमें अनेक प्रयोजनीय कङ्कण मुकटादि वस्तुजनकता नहीं है। अर्थात् उससे क्या कङ्कणमुकटादि अनेक वस्तु नहीं बन सकती हैं। किन्तु बन सकती हैं। परं कभी कङ्कणादिके न देखनेसे जब उसके यह दृढ निश्चय ही नहीं कि यह वस्तु केवल कङ्कणादि आभूषणोंके ही लिये है तब वह कङ्कणादिके बनाने वा बनवानेके अभिप्रायसे तदनुकूल प्रयत्न कैसे करै। अर्थात् नहीं कर सकता है। इसी प्रकार जिस मनुष्यने अपने आन्तरिक मनसे कभी भी एकान्तमें बैठ यह निश्चय नहीं किया कि मुझे यह मनुष्य योनि, अन्य योनियोंमें भी प्राप्त होनेवाले विषयानन्दके उपभोगार्थ नहीं, केवल दुःखत्रयसे मुक्त होनेके अर्थ ही मिली है, वह मनुष्य मोक्षप्राप्तिके लिये यत्न ही कैसे कर सकता है अर्थात् नहीं कर सकता है। अतएव पुण्योपलब्ध मनुष्य योनिमें, प्रथम, यह योनि मुझे केवल मोक्षप्राप्तिके वास्ते मिली है, यह निश्चय होजाना पुरुषको अपना भाग्य उदय हुआ समझना चाहिये। इसपर भी यदि वह पुरुष अपने निश्चयको सार्थक बनानेके अभिप्रायसे मोक्ष-साधनीभूत उपायोंमें सँलग्न होजाय तो समझो उस पुरुषके वे दिन समीप हैं जिनमें वह शिवभगवान्‌की गोदमें बैठा हुआ उस दशाको अनुभवित करेगा जो प्रसादित हुए भगवान् द्वारा उसके शिरपर हस्तस्पर्श करनेसे उत्पन्न होगी। और समीपस्थ भगवान्‌के गलमें विराजमान सर्प अपनी प्रगाढ प्रीति सूचित करता हुआ अपनी लपलपाती हुई जिव्हाओं द्वारा उससे क्रीड़ा करनेका साहस करेगा। परं मुझे आत्यन्तिक हर्ष और महान् गौरव है जो आपलोग स्वयं इस बातके योग्य हैं। अतएव मैं हार्दिक आशिस देता हुआ असंख्य धन्यवाद देता हूं कि आपलोग धन्य हैं जिन्होंने अपना आगमिक मार्ग स्वच्छ बनाते हुए अपने आपको उस पदपर पहुँचनेके योग्य बनाया है। साथ ही सचमुच यह भी प्रसिद्ध कर दिखलाया कि हम इस लोकमें, पामर पुरुषोंके ग्रहणयोग्य अस्थायी निःसार विषयानन्दमें, लिप्त होनेके लिये नहीं आये हैं। प्रत्युत इस लिये आये हैं कि मनुष्य योनि मिलनेके वास्तविक उद्देशकी उपलब्धि कर सांसारिक लोगोंको यह दिखला दें कि तुमलोग भूलके मार्गमें चल रहे हो। इत्यादि वचनोंके प्रयोगद्वारा क्रियासिद्धिकेलिये प्रयत्न शील योगियोंको आश्वासन प्रदानकर मीननाथजी वहांसे विदा हुए। जो इधर उधरके अनेक प्रान्तोंमें पर्यटन करते हुए कुछ दिनके अनन्तर महाराष्ट्र देशीय प्रसिद्धस्थान भीमाशङ्करमें आये। यह स्थान भारतवर्षीय द्वादशज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक है। अतएव इसके अत्यन्त पवित्र और रमणीय होनेसे आपने कुछ वर्ष यहां निवास करने की अभिलाषाकी जो उनके पार्श्ववर्त्ती शिष्यके भी अभिमतानुकूल हुई। इसीसे आपने गमनस्थगित कर जब आजतकके भ्रमणपर

दृष्टिपात किया और स्वकीय उद्देश प्रवाहको सन्तोष जनक पाया तब स्वीय शरीर रक्षाके लिये शिष्यको सचेत रहने की आज्ञा दे स्वयं सप्तवार्षिक समाधिके आनंन्दात्मकागारमें प्रवेश किया। आपका यह समाधि समय निर्विघ्नताके साथ व्यतीत हुआ। इसी लिये आपने निरपाय सामाधिक उपलक्ष्यमें कृतज्ञता प्रकट करते हुए स्थानीय योगियोंको धन्यवाद दिया। अनन्तर यहांसे भी विदा हो भ्रमणान्तर्गत ग्रामीण तथा नागरिक मुमुक्षुजनोंको अपने अनुपम योगोपदेश द्वारा वाञ्छित फल सिद्धिका मार्ग प्रदर्शित करते हुए तथा योग प्रवृत्त्यर्थ तत्साधनोंमें परिश्रम रतयोगियोंको प्रोत्साहित करते हुए कतिपय वर्षके अनन्तर पूर्व प्रसिद्ध कदरीस्थानमें पदार्पण किया। इस स्थानके आधुनिक अधिष्ठाता स्वकीय गुरुभाई गोरक्ष-नाथजीके शिष्य, जिनको स्वयं गोरक्षनाथजी नियत कर गये थे, इनके साथ आपका कतिपय दिनतक स्वोद्देश विषयक परामर्श होता रहा। अन्तमें अपने शिष्यको इनकी रक्षामें समाविस्थ हो जानेकी आज्ञा देकर इस स्थानमें निवसित कुछ योगियोंको अपने साथ ले आप यहांसे भी प्रस्थानित हुए। और इतस्ततः देशाटन करते हुए कुछ दिनमें श्री रामेश्वर पहुँचे। यहां आनेपर आपको सूचना मिली कि सिलौन द्वीपमें ऐसे मनुष्योंकी संख्या पर्याप्त नहीं है जो मोक्षप्रदयोगोपायमें पूर्ण श्रद्धा रखते हों। कारण कि श्री मत्स्येन्द्र-नाथजीके इस देशमें आकर राज्यकार्यमें तत्पर होनेके समय हनुमान् उनकी रक्षार्थ नियत हुआ था यह वृत्त पाठक पीछे पढ चुके है। अतः उस अवसरमें जो योगी इस टापुतक पहुँचने में समर्थ हुए थे वे युक्ति युक्त वचनोंद्वारा समझाबुझा कर हनुमान्ने देश बहिष्कृत करदिये थे। और नवीनोंका इस टापुमें आनेका निषेध किया गया था। जो भावीवश योगियोंने भी उसे स्वीकृत कर पूरा किया। पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथजीके इस टापुको त्यागकर भारत आ जानेपर हनुमान्जीने भी प्रतिषेधको स्थगित किया जिससे कोई २ योगी इसमें प्रविष्ट होनेके लिये अग्रसर हुए। तथापि उतने ही योगियोंसे वह सफलता प्रकटित नहीं हुई जो भारतमें देखी जाती है। इसी कारणसे आपने यहांसे कूंचकर सिंहलद्वीपका मार्ग ग्रहण किया। और वहां जाकर निरीक्षणात्मक कार्य आरम्भित होनेपर जब आपने मालूम किया तो उपलब्ध सूचनाको वहुत कुछ यथार्थ रूपमें पाया। और निश्चय किया कि किसी विशेष उपायका अवलम्बन किये विना कार्य सिद्धि दुष्कर होगी। इस वास्ते समीपस्थ योगियोंके साथ सहमत हो आप इस देशीय राजधानीमें गये। और एक महोत्सवकी स्थापना कर उसमें सम्मिलित होनेके लिये देशमात्रमें निमन्त्रण पहुँचा दिया। तथा साथ ही यह भी घोषितकर दिया कि जो कोई इस महोत्सवमें आनेका साहस करेगा वह वाञ्छित भोजन तो प्राप्तकर ही सकेगा परं साथ ही उस दृश्यको भी देखेगा जो आजपर्यन्त देखनेमें नहीं आया होगा। बस क्याथा जहां यह सूचना देशमें प्रसृत हुई तत्काल ही सहस्र २ पुरुष इस

अद्भुत एवं अदृष्ट पूर्व विस्मयान्वित महोत्सवके उपलक्ष्यमें आ आकर सञ्चित होने लगे। इस प्रकार दो चार दिनके व्यतीत होने तक ही नगर मनुष्योंसे परिपूर्ण हो गया। यह देख आपने प्रजाजनोंको अवधानित किया कि आप लोग, जिनको भोजन ग्रहण करनेकी अभिलाषा हो, नगरसे बहिर संस्कारित दीर्घ विस्तृत स्थलपर अमुक समय तक उपस्थित होजायें। अब विलम्ब ही यथाथा सूचना प्रचारित होनेपर नागरिक एवं आगन्तुक असंख्य मनुष्य निर्दिष्ट स्थलकी ओर रवाने हुए। जिनसे कुछ ही समय के अन्तर्गत सम्मार्जित स्थल सम्पूरित हो गया। इन सङ्घीभूत मनुष्योंमे यद्यपि ऐसे भी मनुष्य बहुत थे जो इसी नगर निवासी थे और वे भोजनादानार्थ नहीं केवल कुतूहल देखने के लिये आये थे तथापि मीननाथजीके निरोधातिशयसे विवश हो उन्हें भी भोजन ग्रहण करनेमें सहमत होना पड़ा। अतएव आज्ञानुसार समस्त लोगोंके यथाक्रम पंक्तिबद्ध होनेपर मीननाथजीने अपने अनुयायी योगियोंको आज्ञापित किया कि प्रतिमनुष्यके आगे ऊपर नीचे करके दोदो पत्तल स्थापित की जायें। उन्होंने तत्काल ही आज्ञा अङ्गीकृत कर पूर्वाहृत कमलपत्रोंको उसी रीतिसे वितीर्ण कर दिया। यह कार्य समाप्त होनेपर आपने यह आज्ञा घोषितकी कि आपलोगोंके आगे जो दोदो पत्र रक्खे गये हैं इनको इधर उधर न करके तादवस्थ्य स्थित रखना। और जैसे २ भोजनमें रुचि हो उसकी कल्पना करलेना। तथा जब हमारे शृङ्गनादकी ध्वनि हो तब आकाशमें दृष्टिपात कर पत्रोंको उद्घाटित करना फिर देखोगे आपकी पत्तलमें अभिलषित एवं पर्याप्त भोजन तैयार मिलेगा। इस प्रकार कुतूहलावलोक्ता जनसमूहने जब आपके कथन की अभिसन्धि अच्छी तरह अवगत करली तबतो आपने स्वकीय गुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथजी की प्रदानित विद्याका आश्रय ग्रहण किया। और पेटिकासे कुछ भस्म उद्धृतकर, ऋद्धिनाथ कुबेरको लक्ष्यस्थान बनाते हुए समन्त्र, उधर प्रक्षिप्त की। अतएव साबर विद्या वशीभूत कुबेर आन्तर्धानिक भावसे जब आकर उपस्थित हो गया तब आपने अपने समीपस्थ योगियोंको नादघोषणा करनेकी आज्ञा दी। यह सुन उन्होंने शीघ्र आज्ञाका पालन किया। उधर भोजनाभिलाषी लोगोंने आज्ञानुसार ऊपरको देख ज्योंही पत्रको उठाया त्योंही नीचे पत्रपर अभिलाषानुकूल पर्याप्त अशन परोसा हुआ मिला। यह देख विस्मय ग्रस्तलोग आज्ञानुसार भोजनादानमें प्रवृत्त हुए। और उससे सानन्द तृप्त हो अपने २ विश्राम भवनपर गये। मार्गमें जाते हुए लोग विविध प्राकरणिक गाथाओं द्वारा मीननाथजीकी प्रशंसा करते हुए योगका महत्व वर्णन करते थे। नगरमें जहां देखिये घर २ में इसी विषयकी वार्तायें होती थी। यह आनन्दोत्सव तीन रोजतक होता रहा। चतुर्थ दिनके लिये आपने आज्ञापित किया कल समस्त जनसमूहको प्रातःकालिक नित्यकृत्यसे निवृत्त होते ही निर्दिष्ट स्थानमें उपस्थित होजाना चाहिये। ठीक यही हुआ। प्रातःकाल

होते ही बड़े उत्साहके साथ लोग अपने कृत्यकी समाप्तिमें दत्तचित्त हुए। क्योंकि उन्हें इस बातका स्मरण था कि वाञ्छित भोजन प्रदानके अनन्तर सम्भवतः आज अदृष्ट पूर्वदृश्य दिखलाया जायेगा। अतएव वे लोग कुछ दिन चढने तक शीघ्रताके साथ वहां जा पहुँचे जहां अन्य अनुयायी योगियोंके साथ मीननाथजी विराजमान थे। आपने भी जब यह समझ लिया कि मनुष्योंकी पर्याप्त संख्या उपस्थित होगई है तब समस्त लोगोंको सम्बोधित कर कहा कि यह बात आपलोगोंसे अज्ञात नहीं है सत्सङ्गतिशून्य मनुष्य अपने दुर्गुणोंके वश होकर जब कोई अनर्थ कर बैठता है तब उसके कृत्यानुकूल उसे निकृष्ट फल अवश्य प्राप्त होता है। यह देख उसके क्रोध एवं शोकका कोई पारावार नहीं रहता है। और संसारमें मेरे जैसा दुःखी कोई नहीं परमात्माने मैं बहुत दुःखी किया ईश्वर अन्यायी है जो मुझे इतना कष्ट दे रहा है। इत्यादि वाक्य उच्चारण कर करुणामय स्वरसे क्रन्दन करता हुआ अपभ्रंश शब्दोंद्वारा विष्णु शिवादिकों भी उपलम्भित करने लगता है। परं क्या कोई यह कहनेका साहस करेगा कि उसका ऐसा व्यवहार वस्तुतः ठीक है! किन्तु यथार्थवेत्ता कोई भी पुरुष अथवा मैं यह कभी कहनेके लिये उत्सुक नहीं कि ईश्वर अन्यायी है और इसी लिये वह उसको निरपराध ही क्लेशित करता है। प्रत्युत मैं तो यह कहनेके लिये उत्कंण्ठा रखता हूं कि ईश्वर न कभी निरपराध किसे कष्ट देता है और न कभी कष्टके उत्पादक निकृष्ट कार्योंमें प्रवृत्त होनेके लिये उसको प्रेरित हीं करता है। किन्तु वह बड़ा ही दयालु है उसने उसके उन कष्टोंको नष्ट करनेके वास्ते, जिनको वह अपने अतथ्य अभिमानसे जायमान कार्योंसे संचित करता है, उपाय भी रचकर सम्मुख रख छोडा है। बल्कि यही नहीं कि दयार्द्रचित्त भगवान्ने पुरुषके कष्ट विनाशार्थ उपाय तो रचा हो परं उसके विज्ञान कराने वाले महापुरुषका अभाव होनेसे मनुष्य उक्त उपाय द्वारा लाभ न उठा सकता हो। किन्तु यहांतक कि करुणासिन्धु भगवान् श्रीमहादेवजीने कष्ट विनाशक उस योगात्मक उपायका पूर्ण रीतिसे तत्त्व समझानेके लिये कईएक महापुरुषोंको संसारमें प्रेषित किया है। जिनकी महती कृपासे ही मुझे भी उस योगरूप उपायका कुछ परिज्ञान हुआ है। यदि वह ईश्वरको अन्यायी बतलाने वाला महानुभाव इस योगरूप उपायकी ओर कुछ ध्यान दे तो उसे स्वयं दुःख भोगना तो दूर रहा जिसपर उसकी विशेष दृष्टि होगी उस पुरुषका भी दुःख नष्ट होजायेगा। यद्यपि वैषयिकरसास्वादनके वैराग्य द्वारा उस उपायमें प्रवृत्त हुआ मनुष्य चाहे तो मोक्षप्राप्ति कर सकता है तथापि यह मानलिया जाय जिसको मैं भी स्वीकृत करता हूं कि मोक्षतक पहुँचना साधारण बात नहीं है तो भी इसके प्रभावसे जो सिद्धियां प्राप्त होंगी वे ऐसी हैं जिनके द्वारा स्वयं महान् आनन्दको प्राप्त हुआ पुरुष दूसरे अनेक प्राणियोंका उपकार

कर सकता है । यही कारण है हमलोग स्वयं ऐसे हुए तुह्मारे भलेके लिये इस देशमें आकर योगमार्गका द्वार खोलनेमें बाध्य हुए हैं । अतएव जो सांसारिक विविध दुःखोंसे पीड़ित हो और उनसे अपने आपको विमुक्त करनेकी अभिलाषा रखता हो तो आइये योगमार्गके खुले द्वारसे प्रवेश कर अपने अभीष्ट सुख स्थानमें पहुँच जाइये । बस यही हमारा कहना है । इसी बातको सुनानेके लिये आपलोगोंको निमन्त्रित कर यहां बुलानेका कष्ट दिया गया है । परं निमन्त्रणमें दो वार्ताओंकी घोषणा थी । जिनमें एक तो अभिलषित भोजन प्राप्ति विषयक थी जिसको आपलोग अनुभवित करचुके हैं । दूसरी अदृष्ट पूर्व दृश्य विषयक थी जो अभी अवशिष्ट है । जिसके विषयमें आपलोग अपने चित्तमें अनेक ऐसे सङ्कल्प उठा रहे होंगे कि न जानें महात्माजी कैसा विलक्षण दृश्य दिखलायेंगे । इसके लिये मैं आपलोगोंको प्रथम ही सङ्केत करदेता हूं कि जिसके दिखलानेमें मुझे किसी विशेष प्रयत्नका अवलम्बन करना पडे वह दृश्य ऐसा नहीं है । किन्तु विना ही प्रयत्न किये दीखने वाला है । और वह यह मेरा शरीर ही है । यदि आपलोग योगक्रियाओंमें कुछ भी विश्वास रखते हों तो निश्चय कर लें मैं वही पुरुष हूं जिसको, कई सौ वर्ष व्यतीत हुए जब कि मत्स्येन्द्रनाथ नामके योगी यहां के राजा नियत हुए थे, उनके पुत्र होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। हम दो भ्राता थे जिनमें बडेको, जिसका नाम परशुराम था, राज्यतिलक दे कर महात्माजी मुझे अपने साथ ले गये थे । उन्होंकी महती कृपासे मुझे योग दीक्षा प्राप्त हुई जिसके प्रभावसे इतने दीर्घ समयके अतिक्रमित होनेपर भी मैं जैसा का तैसा ही हूं । यही नहीं अभी बहुत कालतक ऐसाही रहूंगा । यह सब उसी वस्तुका प्रभाव है जिसकी ओर मैं आपलोगोंका ध्यान आकर्षित करानेकी चेष्टा कर रहा हूं । योगक्रियाविज्ञानके विना मनुष्य मनुष्य कहलानेके योग्य नहीं है । उसका तुच्छ जीवन ऐसा ही है जैसा क्षुद्र जीव कुकर विडालादिका । आपलोग मुझे देखते हुए राज्याभिषिक्त तात्कालिक मेरे भ्राता परशुरामकी ओर दृष्टिपात करें वह तथा उसके अन्य कुटुम्बी और राजकर्मचारी महाशय कहां गये । आपलोगोंमें इतिहास तत्त्वनभिज्ञ कितने ही लोग तो ऐसे होंगे जो उनका नाम तक नहीं जानते होंगे । अतएव मनुष्यको इस परिणामी संसारमें अपने जीवनोद्देशके जाननेके लिये तथा इसमें अपनी अक्षुण्ण कीर्तिस्थापित करने के लिये यदि कोई उपयोगी उपाय है तो वह यही है कि वह योगमें प्रवृत्त होजाय । मीननाथजीके इस वैराग्य सूचक कथनका लोगोंपर बडा ही प्रभाव पडा । जिनमें कतिपय पुरुष ऐसे निकले उनको संसारके मिथ्या व्यवहारमें प्रवृत होना ऐसा सूझने लगा जैसा विषके पानमें प्रवृत्त होना । अतएव उनलोगोंने मीननाथजीकी शरण ले अपना अभिप्राय प्रकटित किया जिससे वे अपनी अभीष्ट सिद्धि करनेमें समर्थ हो सके ।

इन महानुभावोंमें एक राज घरानेका पुरुष भी था जिसके प्रबल वैराग्यने अन्य राजकीय लोगोंपर भी अपना प्रभाव डाला । इसका फल यह हुआ कि योगतत्त्व जिज्ञासु पुरुषोंकी थोडे ही दिनमें इतनी संख्या हो गई जिसको देखकर मीननाथजीने अपना आगमन प्रयत्न सफल हुआ समझा । और योग जिज्ञासु पुरुषोंको दीक्षित करनेके वास्ते अपने अनुयायी योगियोंको आज्ञापित कर आप स्वयं वापिस लौट आये । जो मद्रआदि देशोंमें भ्रमण करते हुए कुछ कालमें फिर समाधिस्थ होनेके अभिप्रायसे उसी सौराष्ट्र देशस्थ गोरक्षनाथजी की गुहापर पहुँचे । यहां उनका शिष्य निवास कररहा था उसको स्वकीय शरीर रक्षाके लिये प्रवोधितकर स्वयं द्वादश वर्षीय समाधिमें स्थित हो गये । और समय के समाप्त होनेपर भ्रमणार्थ फिर प्रस्थानित हुए । इसी प्रकार प्राप्तावसरिक समाधिद्वारा आयु बढाते तथा आवश्यकता पडनेपर शरीरका परिवर्तन करते हुए आपने अपना कार्यक्रम पूरा किया। अर्थात् युधिष्ठिर सम्बत् २१६० से २६३१ तक आप अपने कार्यको सञ्चालित करते रहे ।

इति श्री मीननाथ भ्रमण वर्णन नामक ३१ अध्याय ।

अनुवादक—चन्द्रनाथयोगी

॥ अध्याय ३२ ॥

जिस समय मीननाथजी पारम्परिक सम्मतिके अनुसार विभाजित दाक्षिणात्य देशीय भ्रमणार्थ गिरनार और समुद्रके मध्यस्थ गोरक्षगुहासे, जिसका आधुनिक गोरखमढी नाम प्रसिद्ध है, रवाने हुए थे उस समय धुरन्धरनाथजी भी निश्चित कार्यमें अपने आपको परिणत करनेके अभिप्रायसे वहांसे प्रस्थानित हो गये थे। जो सौराष्ट्रसे चलकर कच्छ सिन्धु आदि देशोंमें भ्रमण करते हुए कतिपय मासके अनन्तर गान्धार देशमें पहुंचे। यहां अजपानाथ नामके एक योगीसे आपका साक्षात्कार हुआ। जो जातिसे यवनथा जिसका कुछ परिचय पीछे भी आ चुका है। यह भी बड़ा शक्तिशाली और योगमें आप जितनी ही निपुणता रखता था। आप इस महानुभावके निर्देशानुसार शलेमान पर्वतपर आये। यहां अनेक कन्दरा स्थानोंमें निवसित योगिवृन्द, शिष्योंकी योगदीक्षामें तत्पर था जिसने आपका हार्दिक स्वागत कर आपके शुभागमनपर हर्ष प्रकटित किया। इसके प्रत्युपकारार्थ आपने सारगर्भित ओजस्वी वचनों द्वारा उसके प्रवृद्ध हर्षको चिरस्थायी बनानेके अभिप्रायसे कहा कि आपलोग धन्यतर हैं जो श्री महादेवजी की आज्ञाके पालनमें अपने आपको दृढ भावसे तत्पर कियेहुए हैं। वस्तुतः चाहिये भी ऐसा ही जब जिस दयालु कैलासनाथजीकी महती कृपाकारणतासे हमें सर्व कुछ प्राप्त हुआ है उसके आदेश रक्षणमें शिथिलता कैसी। अर्थात् कभी नहीं होनी चाहिये। यह सुन अग्रसर योगियोंने कहा कि आपका कहना वास्तविक है परं हमारी भी यही धारणा है कि ऐसा समय कभी ईश्वर न दिखलाये जिसमें श्री महादेवजीकी आज्ञामें हमारी उपेक्षा हो। यही कारण है हम यथा शक्ति अपने उत्तर दायित्वकी पूर्त्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं। निवसित योगियोंके इस कथनसे धुरन्धरनाथजी बडे ही प्रसन्न हुए। और उस दिन आपने वहीं विश्राम किया। अगले दिन योगक्रिया भिलिप्सु नवीन योगियोंके क्रियाकाठिन्याभिभूत मन्दोत्साहको प्रवाहित करने के लिये सशिष्य योगिवृन्दको एक स्थानिक बनाते हुए आपने कहा कि क्रियाभिज्ञानप्रयत्नशील मेरे सुहृद्गण, मैं आपको सूचित करदेना चाहता हूं आप विचार करें जिस समय किसी

राजाका, विवादास्पद हो अन्य राजाके साथ घोर वैमनस्य उत्पन्न हो जाता है और उसीके फल स्वरूप पारस्परिक युद्धारम्भ हो जानेपर जब वह रणस्थलमें अवतरित होता है। तब उसकी क्या दशा हुआ करती है। यदि वह स्वकीय पुत्रादिके, जिनको एक क्षण तक भी अपने नेत्रोंसे दूर न करता हो, मोहान्धकारसे आच्छादित हो तो भी उस समय अपने हृदयसे दूरकर उनके विषयमें उसको उपेक्षा ही करनी पडती है। बल्कि यही नहीं उस समय तो समस्त आनन्दोपभोगोंको ही तिलाञ्जलि देनी पडती है। और उसके केवल, जय पराजय. इन दो बातोंकी ही विशेष रटना उपस्थित रहती है। इनमें भी राजाको उस समय अपनी जयका उतना विचार नहीं रहता जितना कि पराजयके कारण उपस्थित होनेवाले अनिष्टके भयका हुआ करता है। अतएव वह हम पराजित न होजायें, इस ध्वनिमें तत्पर हुआ साम्राज्य मात्रकी शक्तिको तथा अपने प्राणों तकको न्योछावर करने के लिये तैयार रहता है। इतना होनेपर भी हतभाग्य यदि वह पराजित ही होगया तो वह लज्जा वशीभूत हुआ सचमुच ही अपने प्रियप्राणोंको खो बैठता है। ठीक यही वृत्त आपलोगोंका भी है आपने भी अपने उन पाच शत्रुओंको पराजय करनेके लिये युद्धारम्भ किया है जो दूर नहीं हमेशां आपके समीप ही इस कायात्मक किलेमें निवास करते हैं। और प्रबल होनेके कारण बडे ही दुर्जय हैं। जिन्होंने अबतक आपको ही पराजित कर असंख्य जन्मोंके घोरकष्टमें डाल रक्खा है। परन्तु मुझे निश्चय है यदि आपलोग उक्त राजाकी तरह प्राणों तककी बाजी लगायेंगे तथा इस बातको पूरी करने के लिये दृढ उत्साह एवं प्रतिज्ञा करेंगे तो वह समय अबकी बार समीप आपहुँचा है जिसमें अपने चिरकालिक शत्रुओंको पराजित कर सकोगे। क्योंकि दुर्जय शब्दका यह अर्थ नहीं कि वह सर्वथा अजय है किन्तु उसपर कठिनतासे विजय हुआ करता है यही अर्थ यथार्थ है। अतएव आपलोगोंको इस युद्धमें इन्द्रियात्मक इन पांच शत्रुओंके ऊपर विजय पानेमें आत्यन्तिक कठिनताओंका सामना करना पडेगा। पर आप समग्र आपदाओंको सहन करते हुए अपने स्थानसे एक पद भी पीछे न हटें। और क्रियाकुशलतासे प्राप्त होनेवाली सिद्धि विशयक आनन्दमें हर्ष प्रकटित न कर प्रथम केवल इसी बातका हमेशां स्मरण रक्खें कि कभी हमारी हार न होजाय। क्योंकि अबकी बार भी इन पांच शत्रुओंने यदि आपलोगोंको ही पराजित किया तो समझलो फिर ऐसा अवसर मिलना दुष्कर होनेसे उसी चौरासी चक्रकी सम्भावना है। अतः आपलोगोंको चाहिये अपने कल्याणार्थ हमारी इस सूचनाको स्मृतिगत रखते हुए प्राणान्त पर्यन्त प्रयत्न करते रहें। धुरन्धरनाथजीके इस उत्साहसूचक एवं भयानक कथनके श्रवणसे क्रियासँलग्न योगियोंके चित्तमें बड़ा ही उत्साह तथा दृढता स्थापित हुई। और उन्होंने सचमुच अपने चित्तमें यह दृढ सङ्कल्प करलिया

कि जबतक हमारे शरीरमें प्राणोंका सञ्चार विद्यमान रहेगा तबतक हमलोग अपने मार्गसे क्षणभर भी इधर उधर पद न हटाते हुए अन्तिम स्थानपर पहुँचनेकी चेष्टा करते रहेंगे। इसीके उपकारार्थ इन योगियों तथा इनके दीक्षक योगियोंने आपके वचनोंपर कृतज्ञता सूचित कर बड़ी हर्षध्वनि की। तदनु समस्त योगियोंसे सानन्द विदा प्राप्तकर धुरन्धरनाथजी यहांसे चलपडे। और शलेमान पर्वतको पारकर अनेक प्रान्तोंके भ्रमण द्वारा मार्गोपलब्ध मुमुक्षुजनोंको अभीष्ट सिद्धिके उपायोंमें प्रोत्साहित करते हुए कुछ दिनमें कटासराज तीर्थपर आ विराजे। यहां भी निवास करने वाले अनेक स्वागतिक महात्माओंके प्रगाढ प्रेमका प्रत्युपकार चुकानेके हेतुसे आपने अपना गमन स्थगित कर विश्राम किया। तथा पूर्वोक्तादि प्रकारसे अपने चुने हुए सारमय प्रिय शब्दों द्वारा महात्माओंके शुद्ध हृदयागारमें उनकी क्रिया कुशलता विषयक विश्वास एवं दृढताका सञ्चारकर आगले दिन वहांसे प्रस्थान किया। और मार्गागत लौहुर आदि प्रान्तोंको तय करते हुए तथा अपने उद्देशकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करते हुए आप हिमालय पर्वतारम्भक पर्वतस्थ ज्वालादेवीके स्थानमें पहुँचे। यह[1] आजकल इसी देवीके पूजन हेतुक मेलेके उपलक्ष्यमें असंख्य प्रजाजन एकत्रित हो रहे थे। इसीलिये आप भी, देखें इस जनसमूहमें कितने लोग ऐसे हैं जो अपने चित्तमें योग विषयक पूरा विश्वास रखते हैं, यह सोचकर यहां आयेथे। अतः मेलेसे अनति दूरीपर आसनासीन होकर आप लोकमत निरीक्षणात्मक कार्यमें दत्तचित्त हुए। और कुछ क्षणके अनन्तर जब आपने स्वाधिष्ठित पहाडीके समीप होकर गुजरनेवाले मार्गकी ओर देखा तब आपकी दृष्टि सहसा अजासंधके ऊपर पडी। जिसको व्यापारी लोग मेलेमें विक्रय करनेके अभिप्रायसे ले जा रहे थे। यह देख आपके सङ्कल्प हुआ कि यह मेला तो पशुओंके क्रय विक्रयका नहीं है फिर भेढबकरोंका मेलेमें जानेका कौनसा प्रयोजन है। अन्तमें जब आपके इस वृत्तविषयक कारणको अवगत करनेकी विशेष उत्कण्ठा उत्पन्न हुई तबतो आपने एक पुरुषसे इसका परिचय मांगा। उत्तरार्थ उसने कहा कि भगवन्! तामस लोगोंके मनो विनोदके लिये ये लोग इन बकरोंको मेलेमें ले जा रहे हे। कल देवीकी पूजाका मुख्य दिवस है तामस लोग व्यापारियोंसे इनको खरीदकर देवीपर बलिरूपमें चढायेंगे। यह सुनकर उस समय तो आप चुपके हो गये। पर प्रातःकाल ही आप वहां जाकर देवी मन्दिरके द्वारपर खडे हो गये। और मेलेमें आपने सूचना प्रेरितकी कि देवीके निमित्तसे कोई पशु हिंसा न करे। तत्काल ही जिव्हास्वाद लोलुप अज्ञानान्धकारावृत लोगोंके मस्तक ठणक पडे। और उन्होंने इसबातकी जाँच करना आरम्भ किया कि यह आज्ञा खास माईजी की है या किसी अन्य की। पश्चात् अन्वेषणा करनेपर जब उन्होंने निश्चय कर लिया कि देवीकी नहीं किसी योगीने यह आज्ञा प्रचारित की है। तब

तो उन्होंमेंसे कतिपय लोगोंने तो, जो तामस होनेपर भी योगियोंकी आज्ञाको किसी प्रकार भी देवीकी आज्ञासे कम न मानते थे, अपने हिंसा विषयक मनोरथका परित्याग करदिया। परं मूढमति वाले अन्य उन लोगोंने, जिनके हृदयमें यह उल्टा दृढ संस्कार पड़ा हुआथा कि सचमुच ऐसा व्यवहार करनेके लिये देवीकी आज्ञा है इससे देवी प्रसन्न भी होती है, आपकी आज्ञामें उपेक्षा प्रकट कर अपना आज्ञानिक कार्य करडालनेकी चेष्टा की। यह देख आपने विचार किया कि अज्ञानियोंको स्वानुकूल करनेकी अभिलाषा वाले पुरुषकी, जैसोंके साथ तैसा हुए विना, कार्य सिद्धि होनी कठिन है। अतएव आपने मन्त्रात्मक आग्नेयास्त्रको प्रहृत कर स्वाज्ञाभङ्ग करनेके अपराधसें उन लोगोंपर अपना कोप प्रकटित किया। बस क्या था इस भयङ्करास्त्रके प्रभावसे उत्पन्न होनेवाले तेजोऽतिशयने समस्त लोगोंको व्याकुल करडाला। यह देख उन्होंने भी समझ लिया कि इस भयङ्कर उत्पातका हेतु योगीकी आज्ञाका भङ्ग करना है। इसीलिये अन्य लोगोंने आज्ञा अस्वी कर्ताओंपर विविध अपशब्दों द्वारा दबाव डाला कि तुम लोगोंको चाहिये अपने कर्तव्य विषयमें पश्चात्ताप कर योगीसे क्षमा करनेकी अभ्यर्थना करो। अन्यथा तुम और तुम्हारे पीछे ये समस्त लोग महाकष्टमें परिणत होंगे। इस कथनसे जब तामस लोगोंको अनुसन्धान हो आया तबतो उन्होंने शीघ्र ही विना कुछ सङ्कल्प विकल्प किये जाकर नाथजीकी शरण ली। तथा प्रतिज्ञा करी कि भगवन् इस दाहात्मक मायाको उपसंहृत कीजिये हमलोगोंने अपने अवास्तविक प्रचलित मनोरथका परित्याग करदिया है। उनकी इस प्रार्थनाको श्रवण कर आपने प्रयुक्तास्त्रका उपसंहार कर वायवीय अस्त्रका प्रयोग किया जिससे अतीव प्रबलवेग वाला वायु चलने लगा। यद्यपि इससे उष्णता कुछ शान्त होगई थी तथापि लोगोंके हृदयागारमें जो भयकी कुछ मात्रा उपस्थित होचुकी थी उसमें किञ्चित् भी न्यूनता न आई। क्योंकि प्रबल वायुवेग द्वारा उद्धूतोड्डीयमानतृण काष्ठादिके आघातसे उत्पन्न होनेवाला सङ्कटात्मक भय दग्धावस्थासे किसी प्रकार भी कम न था। परन्तु इस कष्टावस्थाका अधिक देर तक अनुभव नहीं करना पड़ा। आपने कुछ ही क्षणोंमें वातास्त्रका भी सङ्कोचकर वार्षिकास्त्रका प्रयोग किया। इसके वशात् वर्षा होनेसे जब धूलि आच्छादित होगई और शीतलतान्वित मन्द गति वायु प्रवहन करनेसे पुनर्लब्ध प्राणाभिमत हुए अत्यन्त प्रसन्नताके साथ लोग जब आपके दर्शन करनेकी अभिलाषासे शरणमें आ उपस्थित हुए तब आपने समस्त जनसमुदायको अवधानित करते हुए कहा कि अये आर्य सन्तानो ! आपलोगोंका किया हुआ पाप पुण्य मुझे कोई किसी तरहका कष्ट वा आराम नहीं दे सकता है परं वास्तविकताकी ओर स्वयं चलकर दूसरोंको चलानेका मुझे अधिकार होनेसे मैं यह यथार्थ घोषणा करता हूं कि वे

पापात्मा पुरुष असत्य और भूलके रास्तेपर चलते हैं जो किसी देवताके निमित्त पशुहिंसा करनेका दूसरोंको परामर्श देते वा स्वयं ही साहस करते हैं। क्या वह देवता, जो इस कृत्यसे प्रसन्न हो तुमको सर्व कुछ प्रदान करनेमें समर्थ है तो, इतना पौरष नहीं कर सकता कि इस पशुको स्वयं भोज्यस्थान बनाले। यदि कहो कि वह स्वयं ऐसा भी कर सकता है परं उसे हमारे जैसी क्षुधा नहीं लगती जिससे वह इस कृत्यमें प्रवृत्त हो। अतः वहतो केवल हमारी श्रद्धा देखता है। तो इसपर मैं आपसे प्रश्न करता हूं कि यह श्रद्धाभक्ति कैसी। शिर जाय पशुका, प्राणवियोगका घोर कठिन दुःख पशुको भोगना पडे और श्रद्धाभक्ति देखी जाय तुम्हारी। यदि आपसे प्रवल कोई पुरुष आपका वा आपके पुत्रका शिर छेदन कर देवीके अर्पण करे तो आप इसे उस पुरुषकी श्रद्धा स्वीकार करेंगे वा नहीं. यदि करें तो मुझे सूचित कीजिये आज यह धर्म मैं भी साक्षित करलेता हूं। नहीं तो असहाय गरीव पशुपर खड्ग चलाकर तुम देवतामें अपनी श्रद्धाको कैसे रख सकते हो। तथा जिसने कष्ट उटाया उसीने कुछ पाया, इस सत्य एवं प्रसिद्ध वृत्तके अनुसार जव तुमने अपने में कुछ भी क्लेशसूचक कृत्यका आरम्भ नहीं किया तब अन्य प्राणीके कष्टका फल तुम कैसे भोगसकते हो। अतः समस्त लोग इस रहस्यको अच्छी तरह समझलें जिसके वास्ते तुम ऐसा व्यवहार करते हो वह देवता प्रमत्त नहीं है वह खूब समझता है कि ये लोग अपने शरीरपर तो चैंटीदंश जितना भी दुःख नहीं सहन करते और निर्दयी होकर दूसरे प्राणीके कष्टद्वारा पोलपालका फल चाहते हैं। यही कारण है इस कृत्यसे तुम्हारे ऊपर देवी प्रसन्न नहीं होती है और न भाविष्यमें कभी होगी। वल्कि दूर जानेकी आवश्यकता नहीं आप ही वतलाइये अवसे पहले आपने और भी कईएक पशुदेवीके अर्पण अवश्य किये होंगे उनसे कभी देवी प्रसन्न हो तुमको अभीष्ट फल देनेके लिये तैयार हुई। यदि नहीं तो फिर तुम्हारा इस कृत्यमें प्रवृत्त होना मूर्खता नहीं तो और क्या है। कहो कि प्रसन्न हुई और फल प्रदान किया है तो मैं चाहता हूं आपलोग उसे मुझे वतलायें जिससे मैं भी समझलूं कि मेरा ऐसा निरोधकरना असङ्गत है। आपके इस कथनपर जनताकी ओरसे कहा गया कि जो लोग यहां आते हैं उनके हृदयगत अनेक फल मनोरथ वडेही विकट तरह के होते हैं जिनको वे दूसरे के आगे प्रकट नहीं किया करते हैं। इस वास्ते किसके किस मनोरथकी सिद्धि हुई यह कोई नहीं कह सकता है। हां यह अवश्य है कि सर्वके मनोरथ सफल नहीं होते घुणाक्षर न्यायसे कभी किसीका मनोरथं सिद्ध होता है। क्यों कि यह वात लोगोंकी अपनी भक्ति और विश्वासके ऊपर है। यह सुन आपने कहा कि सर्वका न होकर घुणाक्षर न्यायसे ही फल सिद्धि होती है तो फिर वही वात हुई आपलोगोंका ऐसा करना व्यर्थ है।

क्यों कि यह आकस्मिक भाग्योपलब्ध मनोरथ सिद्धितो जो मानसिक पूजाद्वारा अन्य देवताकी अर्चना करते हैं । वा किसीकी भी नहीं करते उन पुरुषोंकी भी हो जाया करती है । अतः यह सिद्ध हुआ कि तुम्हारे इस आज्ञानिक कृत्यसे देवी प्रसन्न नहीं है । रह गई भक्ति और विश्वासकी बात, यदि इन दोनोंके विना फल सिद्धि नहीं है तो इससे यह साफ जाहिर हो गया देवी केवल तुम्हारी भक्ति और विश्वासकी भूखी है इसी बातमें यदि तुम्हारी दृढता हो जायेगी तो देवी प्रसन्न हो फल अवश्य देगी । परं पशुहिंसाका कारण तुम्हारी जिव्हालोलुपतासे अतिरिक्त कोई नहीं। याद रक्खो! इस कर्मका अनुष्टान कर तुमलोग अपनेको जटिलजालमें बन्धित करनेका प्रयत्न कर रहे हो । जब कि अहिंसात्मक व्रतका, जिसके प्रत्यक्ष फलका मैंने स्वयं अनुभव किया है, इतना बडा प्रभाव है कि जो पुरुष इसको सम्यक् रीतिसे धारण करलेता है उसको कोई प्राणी कष्ट पहुँचानेका यत्न नहीं करता है । तो फिर जो पुरुष हिंसा व्रतमें ही तत्पर रहता है उसको वे प्राणी, जिनकी वह हिंसा करचुका है, वर्तमान जन्म वा जन्मान्तरमें उतना ही कष्ट कैसे नहीं पहुँचायेंगे, किन्तु अवश्य पहुँचायेंगे । इसके अतिरिक्त यह भी सोचना चाहिये जबकि वडे पुण्य कर्ता पुरुष स्वर्गीय सुखोंको भोगते हैं तो क्या पाप कर्ता नारकीय दुःखोंको न भोगेंगे किन्तु अवश्य भोगेंगे । परन्तु आपलोगोंमें सत्सङ्गति शून्य वहुतसे ऐसे भी अज्ञानी लोग हैं जो यह अभिमत रखते हैं कि स्वर्ग नरक और अग्रिम जन्म किसने देखा है । जो कुछ सुखदुःख भोगे जाते हैं वे इसी जन्ममें और जन्म भी यही है । इन पुरुषोंको यवन समझना चाहिये । क्योंकि यवनोंका यह निश्चय होता है कि यह पांच तत्वका शरीर अपने २ तत्वमें मिलजाता है अवशिष्ट कुछ नहीं रहता जो फिर जन्म लेकर सुखदुःख भोगता हो। ठीक यही कारण है ये लोग स्वानुकूल स्वादिष्ट प्राणीको जमीकन्दकी तुल्य समझते हुए उसकी हिंसा करनेमें कुछ भी आगा पीछा नहीं देखते हैं। परं हमारे सनातन आर्यधर्मानुकूल यह अभिमत नहीं है। ईश्वरीय आज्ञा अनादि वेदोंसे लेकर आधुनिक निर्मापित हमारे किसी आर्यधर्म सूचक ग्रन्थमें ऐसा स्वीकार किया नही मिलेगा कि फिर जन्म नहीं है । किन्तु समस्त आर्य शास्त्र उच्च स्वरसे बार २ घोषित कर रहे हैं कि मनुष्यो ! स्वधर्मको न त्यागो, ऐसा करनेसे तुम्हारा अधःपतन होगा और जन्मान्तरमें नरकके निवासी होना पडेगा । अतएव मैं आपलोगोंसे एकवार फिर निरोध करता हूं कि स्वकीय कल्याण वा अभीष्ट सिद्धि समझकर कभी इस कृत्यमें आपलोग प्रवृत्त न हों । आपकी इस आज्ञाको समग्रलोगोंने सादर स्वीकृत किया तथा प्रतिज्ञा करली कि हमलोग यावज्जीवन इस पशुहिंसात्मक कृत्यका अवलम्बन न करके केवल शास्त्रीयगान्धिक द्रव्य पूजाद्वारा एवं मानसिक पूजाद्वारा ही देवीको प्रसादित करनेकी चेष्टा किया करेंगे । इस प्रतिज्ञाको श्रवणकर

धुरन्धरनाथजी अत्यन्त आनन्दित हुए। और आशीर्वाद वचनोंद्वारा लोगोंको आश्वासन दे अपने आसनपर आ विराजे। कुछक्षणों के अनन्तर पांच मनुष्य, जो आपके मर्मभेदी बचनोंसे अत्यन्त वैराग्याश्रित हो स्वकीय मन्तव्य के अनुसार संसार प्रचलित मिथ्या मर्यादाको तिलाञ्जलि दे चुके थे, आपकी सेवामें उपस्थित हुए। उन्होंने शिष्य बनानेके विषयमें बड़े ही विनम्र वचनोंद्वारा आपसे अभ्यर्थना की कि भगवन्! अपनी शरणमें रखकर हमको अपने भाग्यकी परीक्षा करनेका अवसर प्रदान करो। इसपर आपने कहा कि तुम्हारे भाग्यकी परीक्षा तो जभी हो चुकी तब तुमने इस विचारको स्थिर किया था। तथापि मैं यह और चाहता हूं कि तुमलोग अपने घरजाओ और कुटुम्बियोंको अपनी तरफसे निःसन्देह कर आओ। जब तुमलोग इस कामको कर हमारे पास आजाओगे तब तुमको हम अपना शिष्य बनायेंगे। आपकी इस आज्ञाको अङ्गीकार कर साष्टाङ्गप्रणामके अनन्तर वे अपने २ घर गये। जिनमेंसे एक तो अपनी माताकी, यदि तू चला गया तो मैं अपने जीवनको नष्ट करदूंगी, इस प्रतिज्ञाके वशीभूत हो कुछ दिनकी प्रतीक्षामें वहीं रह गया। और चार वापिस लौट कर आपके चरणारविन्दकी छायामें आ निवसित हुए। तदनु इन महानुभावोंको साथ लेकर आप यहांसे चले। और कुछ दिनके भ्रमणानन्तर पर्वतोपत्यकामें स्थित श्रीयमुना नदीके तटपर पहुँचे। यहां आपका गुरुभाई शम्भुनाथ अपने शिष्योंको अभ्यसित कर रहाथा। उससे आपका साक्षात्कार हुआ। और अपना कार्य निवेदित कर आपने उसको सूचित किया कि हमको इतना अवकाश नहीं जो इतने दिन इनके अभ्यासमें लगा सकें। अतः तुमने इन चार शिष्योंको और दीक्षित करना होगा। उसने आपकी आज्ञा स्वीकृत की और विश्वास दिलाया कि आप इस बातकी ओरसे निःन्देह रहैं ये मेरे ही शिष्य हैं। यह सुन आपने हर्ष प्रकट कर अपने शिष्योंसे कहा कि मैं जिस कार्यमें परिणत हूं उसकी तुमको मालूम हो जायेगी वह ऐसा है जिसको स्थगित कर तुमको योगाभ्यासमें नहीं चढ़ा सकता हूं। अतः यह मेरा ही गुरुभाई है जो तुमको दीक्षा देगा तुम मुझ और इसमें कुछ अन्तर न समझना, तथा योगाभ्यासमें दृढता एवं विश्वासताके साथ प्रयत्न किये जाना। और यह तो तुमको मालूम ही है कि जब किसी वृक्षके कोई फल आरम्भ होता है उसके रसकी आरम्भिक दशासे लेकर पक्व अवस्था पर्यन्त समता नहीं रहती है। किन्तु वह ज्यों २ फल पक्वावस्था समीप आती है त्यों २ अनेक दशाओंमें परिणत हो अन्तमें उसी मधुरास्थामें प्राप्त होता है। ठीक यही वृत्तान्त योगक्रियाओंका भी समझना चाहिये। इनमें प्रवृत्त हुए तुमलोगोंको बड़ी २ कठिनतायें झेलनी पड़ेंगी। परं जिन २ कठिनाइयोंको दृढता पूर्वक तुमलोग ज्यों २ पार करते जाओगे त्यों २ उस समय होनेवाले आनन्दका तुम लोगोंको स्वयं

अपने आपमें अनुभव होने लगेगा । और जब परिपक्वावस्था आयेगी अर्थात् तुमलोग समस्त क्रियाओंमें कुशलता प्राप्त करलोगे तब जो अपरिमित आनन्दात्मक मधुर रस उत्पन्न होगा वह ऐसा होगा जिसका आस्वादन कर तुमलोग स्वयं यह कहनेको विवशित होगे कि यह बात यथार्थ है अबतक हमलोग इस अलौकिक आस्वादनसे वञ्चित ही थे । आपका यह आदेश शिष्योंने सहर्ष अङ्गीकार किया । और स्वकीय विन्तित कार्यमें दत्तचित्त रहनेके विषयमें उन्होंने आपको प्रोत्साहित भी किया । अतएव आप वहांसे प्रस्थानित हो अग्रसर हुए । तथा हिमालयके आरम्भक पर्वतोंके मध्यस्थ प्रदेशोंमें एवं हिमालयागत अनेक सरिताओंसे सिञ्चित होनेवाले प्रदेशोंमें भ्रमण करते २ आप पाटली आदि नगरोंको उल्लसित बनाते हुए नवपालाल्य प्रदेश्स्थ उस स्थानमें पहुँचे जहां स्वीय गुरु श्रीनाथजीने कुछ काल निवास कर शिष्योंको निज गृहकी कुञ्जी प्रदान कीथी । ठीक उसी स्थान पर आपका गुरुभाई अजयनाथ अपने कतिपय शिष्योंको योगसाधनीभूत क्रियाओंका तत्त्व समझा रहाथा । जो आपकी कार्यावली एवं योगदक्षतासे जायमान परम महत्तासे प्रथम ही भली प्रकार परिचित था । अतएव इस महानुभावसे आपका हार्दिक मिलाप हुआ । और अन्योन्य कौशल्य प्रश्नके अनन्तर अजयनाथने कहा कि कहिये आपके भ्रमणोद्देशात्मक कार्यका प्रवाह तो सन्तोषजनक है। इसके उत्तरार्थ आपने प्रकटित किया कि हां आज दिन पर्यन्त योग विस्तारकी अवस्था सन्तोषप्रद एवं तरुणी कहिये इसमें कोई सन्देहकी बात नहीं परं ईश्वरीय नियत नियमानुसार तरुणावस्थाके उत्तर कालमें जरावस्था भी अवश्यम्भावी है जिसका निवारण करना सुसाध्य नहीं । तथापि ऐसा समय जब आयेगा तब देखा जायेगा अभी तो हम उस बातको स्मृतिगत कर हतोत्साह नहीं होना चाहते और न हुए ही हैं । यही कारण है जहां देखते हैं वहीं योगोपदेशका साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है । इत्यादि वार्तालाप करते कराते सायंकाल आ उपस्थित हुआ । अजयनाथजीके नियतक्रियावकाशोपलब्ध शिष्योंकी सादर विनम्र प्रणतिने आपको अत्यन्त सत्कृत किया । जिससे आप अतीव प्रसन्न हुए । और उनके प्रति आपका महाकारुण्य भाव उत्पन्न हुआ । अतएव दयार्द्रचित्त धुरन्धरनाथजीने अपना प्रसाद प्रकटित करनेके अभिप्रायसे विवश हो उनसे कहा कि योगसोपान आरोहणाभिलिप्सु प्रिय महानुभावो ! जब आपलोगोंकी असंख्य जन्मान्तर्गत दीर्घकालिक भक्तिके प्रभावसे अत्यन्त करुणार्द्र हृदय विश्वनाथ श्रीमहादेवजीने दुःखत्रयके विघातक योगरूप इस अद्वितीय औषधका प्रादुर्भाव करना पडा है, जिसके साधनोंमें इस समय आपलोग दत्तचित हो रहे हैं । तब आपको यह योग्य नहीं कि इस महापुण्योपलब्ध औषधके पानमें जो कटुताओंका आधिक्य है उससे नासिका सङ्कुचित कर पान विषयक घृणा उत्पन्न करें । क्योंकि जैसेके विनाशार्थ

तैस उपायका उपस्थित करना समुचित और न्यायसङ्गत है। अतएव अगम्य तथा अनादि कालिक दुःखत्रय जितना दुर्जेय एवं सबल है उतना ही योगात्मक औषध भी महा कटु एवं महाबली अवश्य है। इस बातका हमको स्वयं अनुभव करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। तथापि ऐसा नहीं कि यह कार्य सम्पादित करना मनुष्यकी शक्तिसे बहिर हो। किन्तु हृदयमें कुछ दृढताको स्थान मिलना चाहिये बस कार्यसमाप्तिका समय समीप आता जायेगा। आपके इस कथनसे प्रफुल्लित हृदय एवं प्रोत्साहित अजयनाथजीके शिष्योंने अपने ऊपर होनेवाले अनुग्रहके विषयमें कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि भगवन्! हमें विश्वास है जब आप जैसे अनुग्राहियों एवं स्वयं दयालु श्रीमहादेवजीकी भी हमारे ऊपर निरंतर कृपादृष्टि है तब योगात्मक औषधपानमें सम्मुख होने वाली कटुतायें हमको किञ्चित् भी विचलित नहीं कर सकती हैं। प्रत्युत आपके परामर्शानुसार जब हम विश्वसित और दृढतान्वित हैं तो महा कटुतायें हमारेलिये महा मधुरताके रूपमें परिणत होंगी। उनकी ऐसी वास्तविक उक्तिसे धुरन्धरनाथजी आभ्यन्तरिक भावसे और भी प्रसादित हुए। और उन्होंने निश्चय किया कि ये मन्दोत्साह होनेवाले नहीं प्रत्युत पूर्ण अधिकारित्व हेतुसे ये अपने अभिलषित स्थानपर पहुँचने वाले हैं। अतएव आपने आदरके सहित उनको अपने २ आसनपर विराजमान हो आराम करनेकी अभिमति दी। तदनु रात्री बीत जानेपर प्रातःकाल अरुणोदय होते ही अजयनाथजीसे तथा तिसके शिष्योंसे आदृत हो धुरन्धर-नाथजी वहांसे रवाने हुए। और भुह्रानादि देशोंको पारकर चीनदेशीय पिलाङ्ग वा—(पेनांग) प्रान्तमें जा प्राप्त हुए। यहां भी कुछ काल गोरक्षनाथजी विश्रामित हुएथे, ठीक उसी समयसे एक गुहा भी यहां पर निर्मापित की हुई विद्यमान थी जिसमें कुछ दिनसे विन्दुनाथ नामके आपके ही गुरुभाई निवास कररहे थे। जिसने आपकी सहायतार्थ इस देशमें योगोपदेश प्रचारका तथा तन्निर्दिष्टनिरीक्षणात्मक कार्यका भार अपने ऊपर धारण कररक्खा था। इसीलिये उससे आपका औरस सम्मेलन हुआ। और पारस्परिक आनन्द-वृत्तान्तोपहित प्रश्नोत्तरके पश्चात् आपने प्रस्ताव उपस्थित किया कि सम्भवतः इस देशमें स्वोद्देशका उतना प्राधान्य नहीं है जितना कि भारतमें है। इसके उत्तरमें विन्दुनाथजीने कहा कि हां यह आपका अनुभव सत्य है। क्योंकि इस देशमें गुरुजी बहुत विलम्बसे आयेथे तभीसे अधिक लोगोंकी यह धारणा परिपक्व हुई है कि इस अलौकिक विद्या प्राप्तिके विना भवबन्धनसे विमुक्त होना कठिन ही नहीं सर्वथा असम्भव है। अतः यही कारण है इधर आकर्षित हुए लोग दिनोंदिन योगियोंकी संख्या प्रवृद्ध कररहे हैं। इस वास्ते सम्भव है कोई दिनमें यह त्रुटि जो आपको इस समय दीख पड़ती है नहीं रहेगी। यह सुन धुरन्धरनाथजीके चित्तका समाधान हुआ। इसीलिये कुछ दिनके सहवासानन्तर विन्दुनाथजीके सङ्गृहीत कार्यक्रमपर

अनुकूल सहानुभूति प्रकटकर आपने वहांसे भी गमन किया। और ब्रह्म, प्रभृति स्वाधिकृत समस्त देशोंमें भ्रमणकर कतिपय वर्षोंके अनन्तर धुरन्धरनाथजी अपने पूर्वीय स्थानमें आये जहां अपने शिष्योंकी दीक्षाका भार स्वकीय गुरुभाई विलेशयनाथजीपर आरोपित कर गये थे। यहां इस अवधितक विलेशयनाथजीकी सोत्सुकता प्रैतिक शिक्षाप्रणालीसे आपके तारकनाथादि कई एक शिष्य निपुण हो चुकेथे। यह देख कुछ दिनके सहवासोत्तर उनको आपने आज्ञापित किया कि जाओ अब पृथक् भ्रमणकर अपने उत्तर दायित्व विषयका कुछ प्रयत्न करो। क्योंकि तुम्हारे कल्याण मार्गकी रस्सी तुम्हारे हस्तमें आ चुकी है जिसके अवलम्बनारोहणसे तुम मुक्तिभाजन स्थानमें पहुँच सकोगे यदि प्रमतान्धादित हृदयागार न हुएतो। तदनु शिष्योंके प्रस्थानित होनेपर आप द्वादश वर्षीय अविरत समाधि निष्ठ हो गये। और यह समय सानन्द समाप्त हो जानेसे आप फिर अपने कार्यमें दत्तचित्त हुए। इसी प्रकार अनुकूल सामयिक समाधि लगाते तथा प्राप्तावसरिक शरीरका परिवर्त्तन करते आपने भी अपना कार्यक्रम युधिष्ठिर सम्वत् २१६० से २६३८ तक प्रचलित रक्खा।

इति श्री धुरन्धरनाथ भ्रमण वर्णन नामक ३२ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय ३३ ॥

प्रिय पाठक महानुभाव ! आप उक्त अध्यायोंमें पढ चुके हैं कि मीननाथजी तथा धुरन्धरनाथजीने रेवननाथजीके एवं चर्पटनाथजीके द्वारा स्वोपरि आरोपित होनेवाले कार्यक्रमको आत्यन्तिक सावधानी तथा कुशलताके साथ निर्वाहित किया । परन्तु जब आपलोगोंको हिंगलाजाधिष्ठित स्थानस्थ समाधि निष्ठ श्री ज्वालेन्द्रनाथजीके जागरित होजानेकी असन्दिग्ध सूचना प्राप्त हो गई तब तो आपने अपने उत्तरदायित्वसे अपनेको विमुक्त समझकर अपने शिष्य *करणारिनाथको तथा निरञ्जननाथको, तुम सावधानीसे विचरण करते हुए ज्वालेन्द्रनाथजीकी आज्ञामें तत्पर रहना, यह सूचना दे मोक्ष साधनी भूत विशेष उपायोंमें यत्नलीन होनेके अभिप्रायसे श्री आदिनाथ रक्षित महापवित्र स्थान कैलासमें जाकर निवास आरम्भ किया । इधर आपकी आज्ञानुसार स्वकीय शिष्य करणारिनाथ और निरञ्जननाथने ज्वालेन्द्रनाथजी की सेवामें, जो अभीतक उसी जगहपर शारीरिक स्वास्थ्यकी प्रतीक्षा कर रहेथे, उपस्थित हो उन्हें स्व विषयक गुरु आज्ञासे विज्ञापित किया । यह सुन अतीवानन्दित हो आपने परामर्श दिया कि कुछ दिनके अनन्तर हम भी आते हैं तुम जाओ अभीष्ट प्रदेशोंमें योगोपदेशकर अपने कर्तव्यका पालन करो । तथा जहां कोई अवसर ऐसा आजाय जिसमें हमारी आवश्यकता अवश्यम्भावी हो वहां हमें सूचना अवश्य देते रहना । ज्वालेन्द्रनाथजी की यह आज्ञा अङ्गीकार कर दोनों महानुभाव अपने २ गुरुओंके द्वारा स्वाधिकृत किये जानेवाले देशोंको लक्ष्यस्थान बनाते हुए वहांसे वापिस लौटे । जो समुद्र तटस्थ प्रदेशोंमें भ्रमण करते हुए कच्छ नामक प्रदेशतक साथ ही आये थे । यहांसे पारस्परिक अभिवादनानन्तर करणारिनाथजी दाक्षिणात्य देशकी ओर प्रस्थानित हुए गिरनारादि स्थानोंको वैश्रामिकबनाकर सौराष्ट्र देशीय सीमा प्रान्तस्थ श्री नर्मदा नदीके ऊपर जा विराजे । यहां, वररुचि, आधुनिक प्रसिद्ध भरुच नामक एक नगरके समीपस्थ किसी ऐकान्तिक स्थानमें आपने रात्रीका परिहार करनेके अभिप्रायसे अपना आसन स्थापित किया । इस गर्तखण्डर

---

* जिसका दक्षिणमें आधुनिक, सिद्धकनेरी, नाम प्रसिद्ध है ।

व्याप्त निर्जन स्थानके नगरसे कुछ दूरीपर एवं एकान्त होनेसे विना विशेष प्रयोजन हुए यहां कोई मनुष्य आता न था। परं एक क्षत्रियाणी वृद्धा स्त्री जो गृहमें केवल एक पङ्गुपति द्वितीया थी और वनक्षेत्र सञ्चितकाष्ठ भार तथा शुष्क गोमयभार विक्रयसे उपलब्ध अन्नादिके द्वारा ही अपना जीवन निर्वाहित किया करती थी। यह ही श्रीमती दैवगत्या उसदिन अपने उक्त कृत्यके सम्पादनाभिप्रायसे आरण्ये सञ्चित करती हुई उधर जा निकली। और इसने आपको अपूज्य मन्दिरके अग्रिम विस्तृत चतुष्कोण उच्च स्थलपर विराजमान हुए देखा। तथापि उस समय सश्रद्धा आभ्यन्तरिक प्रणतिके अतिरिक्त बाह्य प्रात्यन्तिक कोई चेष्टा प्रदर्शित न करके वह स्वकीय कृत्यपूर्तिमें व्यग्र रही। तथा कार्य सम्पादित हो जानेपर सूर्य अस्त होते २ अपने गृहको गई। परन्तु उस भारविक्रीके सकाशसे यथोपलब्ध अन्नकी रोटी बनाकर महान् अन्धकाराच्छादित मार्गका अतिक्रमण करती हुई नाथजीकी सेवामे उपस्थित हुई। उधर ज्योंही करणारिनाथजीने सन्निहित स्थित वृद्धाकी ओर विशेष दत्तदृष्टिद्वारा अवलोकन किया त्योंही आकारानुमितिसे निश्चय हुआ कि यह वही दिनदृष्टा वृद्धा स्त्री है। अतएव आभ्यन्तरिक भावसे प्रसादित करणारिनाथजी यह सोच रहेथे कि गोमयादि सञ्चयन कृत्यसे अनुमान होता है यह कोई अत्यन्त दरिद्रा अर्थात् कङ्गालिनी है इसी लिये यह स्वजीवन निर्वाहानुकूल जो द्रव्यादिकी याचना करेगी उसकी पूर्ति कर हम इसकी इस विनम्र सेवाका निर्यातन करेंगे। परं वह अत्यन्त बुद्धिमती थी उसकी यह धारणा थी कि निःस्वार्थ भावसे की हुई महात्माओंकी सेवा कभी निष्फल नहीं होती है। बल्कि याचनाके विना जितना सेवाका शीघ्रफल होता है उतना याचना होनेपर नहीं होता है। अतएव वह श्रद्धेयभोजन प्रदान करनेके अनन्तर शीर्षण्य नमस्कार कर चुपचाप वापिस लौट आई। इस करुणाधिक्य घटनाको देख दयाद्रवीभूत करणारिनाथजी कुछ विस्मयान्वित हुए विचार करने लगे कि सम्भव है चुपचाप लौटनेके प्रथम श्रद्धेय वृद्धाने यह अवश्य निश्चय किया होगा कि नाथजी जब दिनमें मेरी दशासे परिचित होचुके हैं तो क्या याचनाके विना ही इस विषयमें कुछ विचार न करेंगे। किन्तु अवश्य करेंगे। अतः मुझे योग्य है मै इसके निश्चयको व्यर्थतोपहित न होने दूं। और इसको कोई ऐसा साधन बतला दूं जिससे यह अपने अभीष्टकी प्राप्ति कर सकै। परन्तु आपकी इस विचार स्थिरताके समयतक वह नगरके समीप जा पहुँचीथी इसलिये सम्मुख हो उसके अभीष्टसिद्धि विषयक साधन प्रदानके असम्भव होनेसे आपका निश्चितभाव किम्प्रयोजन ही रहा। और आप इस बातका पश्चात्ताप करने लगे कि उसकी उपस्थितिके समय मौन रहकर निःसन्देह हमने भूल की है। परं अब करते क्या वह अवसर हस्तसे निकल गया इस समय भी उसके अनुगामी होते तो भी उससे सम्मेलन होना दुष्कर था। खैर यह निश्चय कर कि

दिनमें इस विषयकी यथासाध्य रीतिसे गवेषणा अवश्य करेंगे, ऐकान्तिक भावसे आरामोपलब्ध हुए। और रात्रीगमनोत्तर प्रातःकालही उक्त मनोरथाश्रित हो नगरको लक्ष्यस्थान बनाकर वहांसे प्रस्थानित हुए। तदनु कुछ देरके पश्चात् जब आप नगरके तोरणद्वारापर पहुँचे तब तो अकस्मात् एक स्त्रीका करुणा क्रन्दन आपके श्रोत्रगत हुआ। उसके श्रवणमात्रसे सहसा आपके यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि इसका निर्णय करनाचाहिये यह कौन स्त्री और किस कारणसे रो रही है। ठीक इसी अवसरपर एक शौचार्थ बाह्य स्थलमें जानेवाला मनुष्य आपके नेत्राभिमुख आया। उससे आपने पूछा कि क्यों भई यह कौन स्त्री है और प्रातःकाल किस कारणसे विलापकरती है। उत्तरार्थ उसने कहा कि महाराज! मैं अभी शय्यासे उठकर आयाहूं मुझे मालूम नहीं किसकारणसे रोती है। हां यहतो मैं जानताही हूं कि यह गृह एक पङ्गुक्षत्रियका है और यह रोनेवाली उसकी स्त्री है जो निर्धन होनेके कारण वन्यलकडी विक्रयद्वारा अपना अपने पादविहीन पतिका जीवन निर्वाहित करती हुई पातिव्रत्य धर्मकी रक्षा कर रही है. सम्भवतः इसी असह्य दुःखा हंकारसे रोती हो। इससे अतिरिक्त विशेष खोजनाकी आवश्यकता हो तो आप स्वयं भी करसकते हैं, यहकह कर वह मनुष्यतो अपने मार्गमें अग्रसर हुआ, परन्तु उस स्त्री के विषयमें इस मनुष्यका, जो निर्धनत्व प्रतिपादन पूर्वक जाङ्गली लकडी विक्रय हेतुक निर्वाहनात्मक परिचय देनाथा, उससे आपके चित्तमें कुछ विशेष वञ्चना सी हो गई; तथा सङ्कल्प हुआ कि उक्त स्त्रीका भी यही समाचार है सम्भवतः वह ही हो। इसी मनोरथाश्रित होकर आप उसके रुदनानुगामी हुए जब गृहके द्वारको पार करके भीतर प्रविष्ट हुए तब तो पदक्रम शब्दके श्रवणसे उसने रोना स्थगित कर आपकी ओर देखा। बस क्याथा झटिति उत्थानित हो आपके चरणारविन्दकी ओर अग्रसर हुई। यह देख आपने उसका परिचय पाया और शीघ्रताके साथ, आप तो मेरी माताके तुल्य हो अतः चरणस्पर्शकरना उचित नहीं, यह कहते हुए उसके हस्तको, जो चरणोंकी तरफ बढातीथी, अवरुद्ध किया। और प्रातःकालिक नित्यकर्म सम्पादनके समय अशुभसूचक करुणामय क्रन्दन करनेका हेतु पूछा। उसने कहा कि भगवन्! यह शय्यानिष्ठ मेरा पति जो पङ्गु होनेके कारण और कुछ गृहादिका कार्य तो कर ही नहीं सकता था केवल इतना कि मैं स्वजीवन निर्वाहार्थ लकडी चुगनेके लिये जब जङ्गलमें जातीथी गृहके द्वारपर स्थित रहता हुआ द्वार खुला रखता था। और कभी २ अपनी दरिद्रताके विषयका ध्यान होनेसे जो अपरिमित दुःख उपस्थित होता था तब एक दूसरे को धैर्यान्वित किया करता था। परं हतभाग्य ईश्वरको इतना दुःख देनेपर भी सन्तोष न हुआ इसको भीआज अपनेसमीप बुलाकर मुझे वियोगिनी बनाडाला। बस यही कारण है इसीसे मैं इस अनुचित समयमें रो रही हूं। और चाहती हूं कि मेरे

भी प्राण अभी पक्षी हो जायें। परं न जाने भगवान्की इससे अधिक और क्या इच्छा है जिसने मेरे जीवात्माको इसी पापमय पुतलेमें अभीतक बन्ध कर रक्खा है। यह सुन करणारिनाथजीने कहा कि खैर जो कुछ हो चुका सो तो ईश्वरीयेच्छानुकूल ही हुआ है उसका अनुचित बतलाना योग्य नहीं परं आपको अपने जीवन विषयमें विचार होना चाहिये। जब आपकी जीवन शृंखला अभी अक्षुण्ण है तब यह उचित नहीं कि उसके अप्राप्तावरमें ही आप स्वयं उसे नष्ट करनेका प्रयत्न करें। अतएव इस विषयके शोकको परित्यक्त कर यथा विधि अन्त्य क्रियासे अपने प्रिय पतिको सत्कृत करो। और अपने शेष जीवनानुकूल सुखके लिये जिस बातकी उपयोगिता हो मुझे बतलाओ मैं उसकी उपलब्धि कर आपकी सेवाको नैर्यातनिक बनाऊंगा। इसके उत्तरमें वृद्धाने कहा कि महाराज! मैं आपके सम्मुख अधिकवाद विवाद न कर केवल एक ही बात कह देती हूं यदि मेरे विषयमें प्रसन्न हो आप मुझे सौख्यप्रद वस्तु प्रदान करना चाहते हैं तो वह उत्तमसे उत्तम यही है कि आप मुझे ऐसा वर दें जिस वशात् मेरा अभी मरण हो जाय। और मैं भी अपने प्राणनाथके साथ भगवान्की सात्यलौकिक सभामें उपस्थित हो अपने जीवनचरित्रके याथार्थ्यका निश्चय करसकूं। करणारिनाथजीने वृद्धा होनेपर भी पातिव्रत्य धर्मके प्रभावसे नेत्रोत्थ अपूर्व तैजसराशीवाली उस श्री मतीके निश्चित एवं तथा वचन सुनकर अनुमान कर लिया कि इधर उधरकी अन्यवार्त्तोसे कुछ साध्य नहीं यह अवश्य स्वकथनानुसार ही करनेवाली है। अतएव आपने कहा कि अपनें गृहीत कठीन धर्मानुकूल जो आपको सर्वोत्तम फल मिलने वाला है वह तो अवश्यम्भावी है ही। परं इससे अतिरिक्त मैं अपनी प्रसन्नताके प्रसादको प्रकटित कर देता हूं। वह यह है कि मेरे विषयमें विश्वासकर निःस्वार्थ सेवा करनेका आपको यह फल मिलेगा कि कभी प्राप्तावसरिक समयमें आप मारुस्थलीय[1] देशमें प्रकट होगी। और मुझ करणारिनाथके वर प्रदानसे आपकी करणी देवीनामद्वारा पार्वती के तुल्य प्रतिष्ठा होगी। अहो पाठक महानुभाव! देखिये ईश्वरकी क्या ही विचित्र लीला है। करणारिनाथजीके उक्त वाक्य प्रदानित करते ही उसके प्राण, पक्षी नामके भाजन बनगये। इस घटनाको अवलोकित कर भगवच्चरितमें विश्रम्भित हुए करणारिनाथजी वहांसे प्रस्थानित हो नर्मदातीरपर आये। और तरीवाहकको अपने पारङ्गत करनेके लिये विज्ञापित किया। दैवगत्या इस नगरका सामन्त[2] जो किसी कार्यवशसे अपने सहचारिसंघके सहित पार जानेवाला था उसकी प्रतिपालनामें नौकायें तैयार थी। अतएव

---

१ यह बीकानेर राज्यान्तर्गत प्रसिद्ध है।

२ किसी बड़ेराजाके अधीनस्थ छोटे राजाको सामान्त कहते हैं।

धीवरोंने कहा कि महाराज ! शरकारके जाने बाद आपको उताराजायेगा इस लिये तबतक आप यहीं विराजिये। यह सुन आपने कहा कि क्या कोई समय निश्चित है वह कब आयेगा। उन्होंने उत्तर दिया कि कुछ मालूम नहीं हमको तो केवल इतनी ही सूचना मिली है कि नौकायें तैयार रखना। और समय निश्चित तो इन लोगोंका ऐसा ही हुआ करता है अपनी इच्छा के मालिक तथा राजा ही जो ठहरे जब अभिलाषा होगी तभी चल पड़ेंगे। यदि आज्ञा देनेके अनन्तर मनोरथ शिथिल होजाय तो न भी आयें ! क्योंकि कई एकबार ऐसा ही हम देख चुके हैं। तदनु कारणारिनाथजीने कहा कि हमलोग प्रातःकाल ही से गमन किया करते हैं यदि दिन बहुत चढनेके बाद वह आयेगा तो हमारा पार जानेका मनोरथ जो हम निश्चित कर चुके हैं व्यर्थ ही रहेगा। अतःतुमलोग प्रासादमें हमारी सूचना दो और शरकारके आनेमें विलम्ब हो तो हमारे पार छोड आनेकी आज्ञा लेआओ। यहसुन उन्होंमेंसे एकने कहा कि महाराज ! आप साधु हैं आपको क्या ऐसी शीघ्रता है जो अधीर होकर अपनी बातको राजा तक पहुँचाते हैं। यदि कहो कि हमको किसी कारण वशसे अवश्य ही जाना है तो फिर आप योगी हैं एक क्षुद्र बातके लिये जो आपलोगोंको दुःसाध्य नहीं है इतना विनम्र होनेकी क्या आवश्यकता है। उसके उत्तरमें आपने कहा कि यह तो ठीक है परं थोड़ीसी बातके ऊपर अहङ्कारके आश्रित हो अपनी प्रभुता दिखला कर हम क्या तुम्हारे भरोसे हैं; यह जतादेनेकी अपेक्षा हम कुछ समय विनम्र भाव रखना विशेष समुचित समझते हैं। इसके अतिरिक्त अन्तमें योधाके विश्वासी शस्त्रसे कार्य लेनेके अनुसार हमको भी तुम्हारे कथनकी रक्षाके लिये उस उपायका अवलम्बन करना ही पड़ेगा जिससे हम पार हो सकते हैं। आपके इस कथनको श्रवणकर प्रथम वक्ताको भर्त्सना देता हुआ दूसरा मल्लाह बोला नहीं महाराज ! आप कुछ क्षण सान्त्वनाके साथ बीतावें मैं किसी राजकीय कर्मचारीसे प्रार्थना कर उसके द्वारा अभी सूचना प्रेषित करवा देता हूं यदि अङ्गीकृत हुई तो हम शीघ्र आपको पार करदेंगे। अन्यथा हम निर्दोषतो अवश्य ही हो जायेंगे। यह सुन कारणारिनाथजी शान्त चित्त होकर वहीं विश्रामित हो गये। उधर राजप्रासादमें सूचना गई परं प्रतीक्षा करते २ मध्यान्ह होनेको आया न कोई प्रत्युत्तर मिला और न शरकार साहिब ही तसरीफ लाये। इस व्यवहारसे आप कुछ अभिमर्शाकारमें परिणत हुए। परं बहुत सोच विचारके बाद, सांसारिक लोग हैं इस पर भी राजा होनेके कारण अनेक कार्योंमें व्यग्र रहते हैं इसलिये सम्भव है किसी आवश्यकीय कार्यमें संलग्न होनेसे इधर ध्यान नहीं दिया होगा, यह निश्चयकर आपने अपने उदानवायुका जयन किया जिस वशात् अनायाससे ही नर्मदा पार हो गये। यह देख मल्लाह तथा गङ्गास्नान करने वाले अन्य अनेक लोगोंने विस्मयान्वित हो आपके विषयमें श्रद्धा एवं भक्ति प्रकट

करते हुए योगक्रियाओंकी प्रशंसा विषयक अनेक कथाओंका उद्घाटन किया। तदनन्तर कर्णपम्परासे कुछ देरमें इसघटनाका शुभ समाचार राजाके श्रोत्रों तक पहुँचा। वह तत्काल ही अपनी प्रमत्ताका स्मरण कर इस ध्यानसे कि सम्भवतः क्रुद्ध होकर महात्माजी कुछ ऐसा चिन्तन कर गये हों जिससे मेरा कोई अनिष्ट उत्पन्न हो जाय, अपने कुछ सहचारियोंके साथ घटना स्थलपर आकर नौवाहक विज्ञापनानुसार आपके पदक्रमानुगामी हुआ। और यौजनिक मार्गातिक्रमणानन्तर वह आपकी उपलब्धि करसका। आपने पृष्ठमें देखा तब अनुमान किया कि वही राजा जिसका इधर आना श्रवण किया था अपने कार्य सम्पादनके लिये जा रहा है। परन्तु ऐसा न हुआ वहतो आपके सम्मुख होता ही सहचारि वर्गकेसाथ साष्टाङ्गप्रणति तत्पर हुआ तथा आत्यन्तिक विनम्र भावान्वित हो नतानन किये हुए अभ्यर्थना करने लगा कि भगवन्! क्षमा कीजिये हम सांसारिक विविध विषय लोलुप तामसी जीव हैं सम्भव नहीं कि हमसे कोई भूल न होती हो। यह सुन करणरिनाथजीने कहा कि बात क्या है हमें स्पष्ट कह सुनाओ हम अपने शुद्ध भावके सहित मार्गतय कर रहे हैं अतः न तो किसीका हमने अनिष्ट किया है और न किसीने हमारे लिये ही अनिष्टोत्पादक व्यवहारका अनुष्ठान किया है फिर क्षमा कैसी और किस बात पर करें। राजाने कहा कि भगवन्! नर्मदोत्तीर्ण करनेके विषयमें आपको जो नौका की अनुपलब्धि हुई है इसमें हमलोगोंकी प्रमत्ता कारण है जिसके उत्तर दायित्वानुकूल हम आपके अत्यन्त अपराधी है। और आशंका करते हैं कि सम्भवतः हमारे इस अनुचित व्यवहारसे आपकी कुछ तिर्यक् दृष्टि होगई हो जिससे हमारा संसारमें तादवस्थ्य रहना दुष्कर हो जायेगा। इसके प्रत्युत्तरमें आपने कहा कि नहीं इतना विस्मित होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है हम समस्त वार्ताओंका परामर्श करते हैं कोई समय ऐसा भी आता है जिसमें किसी आवश्यकीय कार्यसन्निहितचित्तवाले मनुष्यसे प्राय ऐसी भूल हो जाया करती है। परं तो भी इतनी तुलना अवश्य करनी चाहिये कि कौनसे कार्यमें उपेक्षा करनेसे अधिक अनिष्टोपत्तिकी सम्भावना है। क्योंकि हमने तो अनेक प्रकारके विचारद्वारा अपने चित्तको धैर्यान्वित किया इसी लिये तुम्हारे विषयमें कोई भी अशुभ चिन्तन न करके चुपचाप चले आये। तथापि विचार कीजिये किसी विषयमें आपकी ऐसी प्रमत्ताका भाजन कोई अन्य योगी होगया और उसने इतना अज्ञानाधिक्यसे उपेक्षाकारी निश्चित करते हुए आपको दण्ड ही देना उचित समझा तो याद रखना उससे इतना अनिष्ट उत्पन्न होगा जिसका जिस कार्यमें दत्तचित्त हुए आप उसके वचनकी उपेक्षा करते हे वैसे अनेक कार्य शिथिल होनेपर भी परिहार नहीं कर सकते हैं। अतएव मैं आपलोगोंको आजसे सचेत करता हूं कि समयान्तरमें भी सम्पादित होजाने वाले अनेक कार्योंका परित्याग कर महात्माओंकी शुश्रुषाको प्राथमिक समझा करें।

यह सुनकर अनुजीवियोंके साथ राजा फिर आपके चरणोंमें प्रसृत हुआ तथा हस्तसम्पुटी कर आत्यन्तिक कृतज्ञता प्रकटित करता हुआ कहने लगा कि भगवन् ! अवश्य ऐसा ही होगा हमलोग आजसे नियमित हो वह यत्न करेंगे जिससे भविष्यमें ऐसा न हो कि आप महानुभावोंके वचन एवं सेवा शुश्रूषामें उपेक्षा प्रदर्शित हो सके । उसकी इस कोमल श्रद्धान्वित विनम्र अभ्यर्थना पूर्वक नियम धारणाके श्रवण मात्रसे करणारिनाथजी अतीवानन्दित हुए कहने लगे कि अच्छा मैं आपलोगोंके व्यवहारसे अत्यन्त सन्तुष्ट हूं और आज्ञा देता हूं कि अब आपलोग अपने स्थानको लौट जायें आपकी इस आज्ञाके प्राप्त होनेपर तृतीय नमस्कारके बाद राजा प्रसन्नमुख हो वापिस लौट गया ; उधर उसके परावर्तानिक होनेपर आप भी अपने मार्गानुगामी हुए । और इत्यादि चरित्रोंके द्वारा योगका महत्त्व प्रदर्शित कर लोगोंके चित्तमें उपशमता स्थापित करते हुए तथा अपने विषयमें श्रद्धा उत्पन्न करने वाले भक्तोंको अभिवाञ्छित फल देते हुए कुछ कालमें त्रिमुख पहुँचे । यहां गोदावरी स्नानके पर्वोपलक्ष्यपर बहुत प्रजाजन एकत्रित होरहे थे । इधर विविध विचित्र चरित्रोंके द्वारा इनमेंसे मुमुक्षु जनोंको उद्धृत करनेके अभिकाङ्क्षी हुए अनेक योगी भी यहांपर उपस्थित थे । अतएव आप भी आदेश २ शब्दोद्घोषित कर योगियोंसे सङ्गत हुए उनमें मिश्रित होगये । आज कालिक योगियोंका जो दृश्य था वह बडा ही अनुपम एवं हृदयमें वैराग्यकी धारा प्रवाहित करने वाला था । समस्त योगेन्द्र अपने २ श्लाघ्यचरित्रमें मस्त थे । कोई सिद्धासनसे बैठा हुआ सरोधाविषयकपरामर्शमें लवलीन है तो कोई गोमुखासनसे बैठा हुआ नेत्रज्योतिमें असह्य तेजकी प्राप्त्यर्थ लक्ष्यमें अविच्छेद दृष्टिसम्पातसे अवलोकन कर रहा है । एवं कोई मत्स्येन्द्रासनसे बैठा हुआ मेलानिष्ठ सांसारिक वाद्यध्वनि आदि विषयोंकी ओरसे अपने श्रोत्रादि इन्द्रियोंको स्वाधीन कररहा है तो कोई गोरक्षासनसे बैठा हुआ प्रणवजाप द्वारा तात्कालिक अवसरको अभ्यर्थ बना रहा है । इसी प्रकार कोई वृक्षासनसे स्थित हो अपने दिव्याकृति दर्शनद्वारा दर्शकोंके चित्तमें स्थिरता एव शुद्धभावका सञ्चार कर रहा है तो कोई स्वास्तिकासनसे बैठा हुआ दर्शकोंके वाञ्छित फल प्रदात्री भस्मिनीको वितीर्ण कर रहा है । तात्पर्य यह है कि समस्त योगेन्द्र ऐसी अवस्थामें थे जिनके दर्शन एवं भावका अवलोकन कर पाषाण हृदय मनुष्य भी अपने कृत्योंका स्मरण कर उनके परिणामसे भीतिग्रस्त हुआ, अहो ये लोग धन्य हैं जिन्होंने त्रिविधदुःखात्यन्त निवृत्तिके द्वारा अत्यन्त पुरुषार्थप्राप्तिस्थानको सान्निहित बनाडाला है, यह कहनेको बाध्य होता था । अवशिष्ट क्रियाकुशललब्धसङ्केत योगी भोजनागारमें प्रविष्ट हो अपनी समता एवं शील स्वभावका परिचय देते हुए मुख्याचार्यके वचनानुलोमी होकर स्वनिष्ठ अधिकारित्वकी सूचना पूर्वक मुमुक्षुत्वको प्रस्फुट कररहे थे । अधिक क्या तात्कालिक उपस्थित योगि संघका दृश्य और दर्शन चित्तको

आकर्षित करने वाला तथा चित्तमें अनेक भावोंको उत्पन्न कर सांसारिक विषयोपभोगमें तुच्छता दिखलाने वाला था। क्यों नहीं जब आपलोग मेला देखने नहीं जिसको ध्यानद्वारा जहांतहां स्थित रहते हुए भी देख सकते हैं। किन्तु मेलागत मुमुक्षु जनोद्धारके हेतु ही यहां आयेथे। तब ऐसा सात्विक एवं मनोहारी दृश्य उपस्थित करना स्वाभाविक ही था। परन्तु पाठक महानुभाव ! शोक है इस परिणामी संसारमें भाग्योपलब्ध कुछ आनन्द हेतुक अश्रुपातके अनन्तर दुःखहेतुक अश्रुपात भी अवश्यम्भावी है। अतएव आइये तात्कालिक योगिसंघके सत्वप्रधान दृश्यसे उत्पन्न होनेवाले आनन्दानुभवके अनन्तर आधुनिक योगि समुदायके नैर्वैर्ग्गेय एवं तामस चरित्रकी अनुस्मृति कर कुछ दुःखहेतुक अश्रु वहायेंगे। आजकल योगिसंघ उन योगियोंका है जो सांसारिक व्यवहारसे वैराग्य नहीं रखते हैं। और हमने जिस वेषका आश्रय ले अपना यह स्वरूप बनाया है उसका मुख्योद्देश क्या है यह विचार तो कभी उनके स्वप्नमें भी जागरित नहीं होता है। प्रत्युत विविधमादक द्रव्योपासनासे ये अपने आपको उन्मत्त एवं पशु तुल्य बना डालते हैं। इसका फल यह होता है कि रहीखही समस्त स्मृति रसातलमें चलीजाती है इसीलिये अधिक ऐसे योगी दीखपडते है जिनके साथ वार्तालाप करनेमें कोई शलीखा हाशिल नहीं होता है। कोई ही अत्यन्त श्रद्धालु सांसारिक पुरुष इनकी तत्वशून्य वातपर हुङ्कारा करण पूर्वक कुछ श्रद्धा प्रकटित करे यह दूसरी बात है। अधिक लोग तो नासिका सङ्कुचित कर अपने आभ्यन्तरिक हृदयागारमें यही भाव स्थिर करते हैं कि निःसंन्देह ये लोग पृथवीके ऊपर भार रूप हैं। फिर ऐसे लोगोंके समुदायमें अन्वेषकको अन्वेष्य तत्व कहांसे प्राप्त हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता। यही कारण है पर्वादिप्रासङ्गिक अवसरपर जब ये लोग एकत्रित होते हैं तब इनके द्वारा जनस्तुत्य कोई भी श्लाध्य कार्यका उद्धार होना असम्भव होनेसे निन्द्य चरित्रकी ही प्रधानता रहती है। और योगीका आलस्यको पराजित करना जो प्राथमिक कर्तव्य बतलाया गया है इस बातमें तो ये लोग वहुत ही पीछे हट गये हैं। इसी लिये तीर्थस्थानपर एकत्रित ये योगी नामधारी लोग भूखे पडे रहकर भी क्षुधाके परिहारार्थ कोई योग्य उपाय नहीं करते हैं। खैर इतना होनेपर भी भाग्योपलब्ध कोई भक्त उपस्थित होकर भोजन सामग्री प्रदान भी कर दे तो अब भोजन कौन बनावे। जिन्होंके गार्हस्थ्याश्रममें वस्त्राभूषण धारण विषयक अनेक प्रकारकी क्षुधा व्याप्तथी वे लोग तो जिस किसी रीतिसे विचारे भोलेभाले गृहस्थोंको विप्रलोभितकर उसके द्वारा द्रव्योपार्जनासे विविध वस्त्रालङ्कृत हुए महन्तीके अथवा महन्त जैसे अभिमानसे उस क्षुधाकी निवृत्तिमें लगे दूर बैठे २ झूरते रहते हैं। क्योंकि ये भोजनालयमें जायेंतो दो वार्ताओंकी हानि है, प्रथमतो प्रतिष्ठामें न्यूनता आ जाय द्वितीय अमूल्य वस्त्रके दाग लगनेसे वह खराब हो जाय। इसी

प्रकार इन्हीं शृङ्गारी लोगोंमें जो अपनी कम इज्जत रखते हैं वे ऐसे अवसर पर, एकतो मेला देखेंगें दूसरे इस आफतसे बचेंगे, ये दो लाभ सोचकर मेलेमें खिशक भी जाया करते हैं। यही नहीं मामला और भी आगे तक है। और वह यह है कि उन्होंमें भी जो कुछ भी इज्जत नही रखते हैं वे अन्य वेषधारियोंकी पंक्तिमें सम्मिलित होकर उदर पूर्ति किया करते हैं। अवशिष्ट रहे वे जो अपने आपको तपस्वी मानते हैं। ये लोग आभ्यन्तरिक अभिलाषा तो यहांतक रखते हैं कि संसार हमको ही गोरक्षनाथ समझले तो वडी तार बैठे। परं मादक वस्तूपासनाके कारणसे अपने शरीरमें आलस्य इतना अधिक रखते हैं कि भोजनालयमें जाकर कुछ प्रयत्न करनेकी वात तो दूर रही भोजन तैयार होनेपर दो चार कदम आगे वढ कर पंक्तिमें सम्मिलित नहीं हो सकते हैं जिससे पाक कर्ताओंने झखमारकर इनको उसी जगह स्थितहुयोंको भोजन देना पडा करता है। सो भी कव और कैसा जव कि इतनी गौओंको भूखी मरती देख दयार्द्री भूत कोई एक महानुभाव भोजनपाकके लिये खडे हो गये हों तो, और उन्होंने भोजन ठीक वनादिया होतो। नहीं तो इन लोगोंका वैसे भी अनूंठा सौदा है! यदि हलुवा, ताहरी आदि भोजन वना रहे हों और आटा तथा चावलादिके सिकजानेपर या भोजन सामग्री खुले मैदानमें पडी हो इतनेहीमें चतुर्मासा होनेके कारण वर्षाके आजानेपर जव एकाध योगीके जो भण्डारमें कार्य कर रहा हो यह कहनेपर कि जल्दी आजाओ अमुक काम करवा होता है तो ये ऐसा भी कह दिया करते हैं कि आवांसां तरः साहाव नेकी दे इतनी देरमें के होसः एक चलम और पील्यांसां, वस फिर क्या था ऐसा होनेपर जो हुआ करता है वह होता ही है। उस विचारे सेवकका जो किसी कारणसे आ फसाथा कुछतो नशेग्रस्तोंकी वेहूदी गालियां सुनकर चित्त खट्टा हो गया और रहाखहा अव इतना होगया कि वह फिर जीवनभर इनके पास न आनेका नियम करता है। अपशोश अपशोश अपशोश। जिन महानुभावोंने इस संसारको परिवर्तन शील कहकर पुकारा है उन्होंने भूल नहीं की है। क्योंकि यह ठीक है इसमें कोई भी वस्तु सदाके लिये समरस नहीं रहती है। यही कारण है एक समयतो वह था जिसमें योगियोंके समीप आनेवाले भक्त पुरुषोंके विविध दुःख दूर होते थे और आज वह समय आ पहुँचा जिसमें वे लोग योगियोंसे घृणा करते हैं। सारांश यह है कि समस्त लोग परस्परमें एक दूसरेकी पोलको अच्छी तरहसे समझते हैं। फिर कौन किसको दवावे और दण्डदेनेके लिये तैयार हो। इसी लिये तो सम्प्रदायसे दण्ड उठ गया। जिसके अभावमें कुकर्मियोंकी वात वन पडी। इनके अतिरिक्त जो महानुभाव ऐसे हैं कि सांसारिक किसी भी पोलके भाजन न वने हैं और इसी कारणसे वे अपने में कुछ दूसरों पर प्रभाव डालने वाला तेज तथा ऐसे अवसरोंपर उचित प्रवन्ध करने लिये अपने पास पर्याप्त द्रव्य रखते हैं समझ में नहीं

आता वे क्यों चुपके बैठे रहकर इन घटनाओंको श्रवण किये जाया करते है । जान पड़ता है याता वे हरतीकी तरह अपने तेजकी थाह नहीं पा चुके हैं या यह द्रव्य हमारी साथ चलेगा इसी अतथ्य आनन्दमें निमग्न हैं । अन्यथा उनका ऐसे अवसरोंपर उपस्थित हो योगि संघका द्रव्य सुधारना प्राथमिक कार्य है । (अस्तु) मे प्रकरणान्तरमें चला गया पाठक क्षमा कीजिये और प्राकृत वृत्तान्तमें ध्यान दीजिये । इधर तैजस रश्मियोंके द्वारा संसारको प्रकाशित बनानेके अनन्तर दिवाकर अस्ताचलका अतिथि बना । उधर प्रकाशित संसारको अशुचिमेघान्धकारसे आच्छादित करनेकी अभिलाषिणी रात्री देवीने अपने शुभागमन की घोषणा करनेके लिये प्रथम मन्दान्धकारको प्रेषित किया ! यह देख सब लोग स्वकीय नित्यकृत्यको उद्देशित कर अपने २ निवासाभिमुख हुए । इसी प्रकार हमारा चरित्र नायक योगिसंघ भी अपने सायंकालिक नित्यकृत्यसे निवृत्त होनेके लिये स्वानुकूल क्रियाओंमें दत्त चित्त होरहा था । ठीक इसी अवसरपर जब कि योगेन्द्र समुदाय स्वीय सायंकालिक पारस्परिक वन्दनादि कर्म सम्पादित कर लब्धावकाश हुआ तब इधरसे भोजनादानका समय उपस्थित हुआ और उधरसे कठोर शब्दायमान मेघराज अपनी धारावृष्टि द्वारा उसके भोजनाचरणमें वाधा डालनेका उद्योग करने लगा । अतएव इस हेतुसे और कतिपय योगियोंने अपने शिष्योंको ऐसी क्रियोंमें प्रेरित कररक्खा था जिनके प्रावर्षिक जल संसर्गसे कुछ अनिष्टोत्पन्न होनेकी आशङ्का थी, इस विशेष हेतुसे श्रद्धास्पद करणारिनाथजीने प्रस्ताव किया कि महानुभावो! यह बात आपलोगोंसे अविदित नहीं कि इस आवसरिक वर्षा हानिकारिका है अतः इसका परिहार करदेना समुचित कार्य है । सोभी जितने परिमाणमें हमलोगोंका निवास है उतने ही में होना चाहिये । आपके इस कथनका उत्तर उधरसे माननीय मुख्य महानुभावने यह प्रदान किया कि जब इस कार्यके लिये आप ही पर्याप्त थे तब प्रस्ताव करनेका यही अभिप्राय स्फुट होता है कि आप ऐसा करनेके लिये आज्ञा मांग रहे हैं अतः हम आज्ञापित करते हैं कि जैसी आपकी रुचि हो वैसा करें । स्वकीय गुरु गुरुभाई चण्डीश्वरनाथजीकी यह अनुकूल आज्ञा सुनकर कुछ मुस्कराते हुए करणारिनाथजीने अच्छा यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा है तो मैं यह कार्य कर देता हूं परं विना अभिमति प्राप्त हुए आपके उपस्थित होनेपर हमें स्वयं ऐसा कर दिखलाना योग्य नहीं, यह कहकर परम्परा प्राप्त श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीकी सावर विद्याका आश्रय लिया। और स्वकीय निवासाश्रम औद्देशिक मन्त्रसे संस्कृत भस्मीको मेघराजकी सेवामें प्रेरित किया । जिसका फल स्वरूप योगियोंसे अधिष्ठित स्थलमें वर्षा न होनेसे समस्त योगिवृन्द आनन्दके साथ भोजन ग्रहणके अनन्तर अपने २ भावमें दत्तचित्त हुआ । इसके अन्यत्र स्थलमें घनघोर वृष्टि होनेके कारण जलार्द्रवस्त्र जनसमूहको रात्री बीतानी अत्यन्त ही दुःसाध्य होगई थी

शीतल वायुवेगसे कम्पायमान सन्त्रस्त मनुष्योंके आन्तरिकस्थानमें विद्युतके क्षाणक्षणिक स्फुरणपूर्वक असंख्य ताड़तडिक शद्बोंने और भी भय स्थापितकर रक्खाथा। इस दुर्घटनाको देख अनुभव होताथा मानों मेघराजने आज ही समस्त संसारको जलमय बना डालनेका निश्चय किया है। परं एकत्रित जनसमूहने जिस किसी प्रकारसे रात्रीका अतिक्रमण किया इधर भाग्यवशात् रात्रीके साथ २ ही वर्षाका भी अवसान हुआ। यह देख रात्रेय दुःख दूर करनेकी अभिलाषासे मेलास्थ समस्त लोग अपने आभ्यन्तरिक तथा बाह्यभावसे तेजस्वी सूर्य भगवान्की अभ्यर्थना करने लगे। खैर दैवगत्या जनप्रार्थनाकी रक्षाके लिये अनुकूल रश्मिमाली उदय हुआ। जिसके पर्याप्त घर्मद्वारा जलार्द्रवस्त्रोंको शुष्ककर सभी लोग मेलानिष्ठ विविध विचित्र दृश्यके अवलोकनसे रात्रेय कष्टको विस्मृत बनाने लगे। ठीक इसी हेतुसे इधर उधर भ्रमण करते हुए लोग जब योगियोंके समीपसे गुजरतेथे तब एकाएक इनके आश्रमको वर्षासे विरहित देखते थे। जिससे चकित हुए लोग वहीं खडे होकर योगियों विषयक पूर्वश्रुत एवं दृष्ट अनेक विस्मापक घटनाओंका उल्लेख करने लगते थे; और अन्तमें इस कुतूहलके परिचयार्थ योगियोंसे विनम्र प्रार्थनाद्वारा अवृष्टिका कारण पूछनेका साहस करते थे। तथा योगियोंकी ओरसे, हमारी इच्छा नहीं थी कि इस समय हमारे ऊपर वर्षा हो, इसी हेतुसे इतने स्थलमें वर्षा नहीं हुई, यह उत्तर सुनकर वे और भी विस्मित होतेथे। एवं परस्परमें विस्मता सूचक ऐसे शद्ब कहने लगते थे कि हमारे जन्म और हमलोगोंको धिक्कार है जो सांसारिक विविध निस्सार झगडोंमें वेष्टित हुए असंख्य दुःखोंके भण्डार बन रहे हैं। यद्यपि महात्मा और शास्त्र वेताओंके श्रुतकथनानुसार यह निश्चय है कि मनुष्य जन्मकी प्राप्तिका निजोद्देश त्रिविध दुःख मोक्षार्थ ही है। तथापि न्यूनसे न्यून अनिश्चित कालिक दुःसाध्य मोक्षसे अतिरिक्त इतनी शक्तितो मनुष्यको अवश्य ही प्राप्त करनी चाहिये जिसके द्वारा सांसारिक अनेक साधारण आपत्तियोंसे रक्षा पा सकें। तात्पर्य यह है कि इस घटनाने अनुकूलादृष्ट कितने ही लोगोंका चित्त सांसारिक व्यवहारमें घृणान्वित करडाला। जिससे योगियोंका ऐहागमन तथा इस घटनाका दिखलाना सार्थक हुआ। इस प्रकार प्राप्तावसरिक अनेक अद्भुत चरित्रोंद्वारा योगका महत्त्व प्रकट करते हुए योगियोंने अनेक मुमुक्षुजनोंको उद्धृत किया; तथा अग्रिम चमत्कार प्रदर्शनीसे उनको दृढ स्थिति वाले बनाकर स्वकीय शिष्य बनानेका निश्चयकर कहा कि अभी कुछ दिनके लिये प्रतिदिन गमन करना होगा, इस वास्ते कजली यात्राके अनन्तर तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण की जायेगी। तुम्हें धीरता और उत्साहके साथ उस अवसर की प्रतीक्षा कर अपने अधिकारित्वका परिचय देना चाहिये। यह सुन समस्त शरणागत मुमुक्षु महानुभावोंने तथास्तु शद्बका प्रयोग करते हुए शिर झुकाकर प्रस्तावको स्वीकृत किया।

तदनन्तर पर्वावसानमें सम्मेलन विसर्जन होनेपर उपस्थित योगि समुदाय कजली यात्राके लिये प्रस्थानित हुआ। और प्रासङ्गिक विस्मापक चरित्र दिग्दर्शनसे प्रजाजनोंको अपने चरणोंकी ओर झुकाता तथा उनकी भावनाके अनुकूल वाञ्छित फल प्रदान करता हुआ यौजनिकादि विश्रामानुक्रमसे सदातन नियमानुसार, जहां श्रीगोरक्षनाथजीको प्रत्यक्षतया सर्व प्रधानत्व पदकी उपलब्धि हुई थी, कुछ दिनमें उसी कजलीस्थानमें पहुँचा। उधर योगप्रभावोत्थ अद्भुत सिद्धि परिचायक इस द्वादश वर्षीय योगिसंघके पुण्योपलब्ध दर्शनार्थ अनेक प्रजाजन प्रथमतःही एकत्रित होनेपर भी प्रतिदिन आते रहते थे। और स्वसाध्य पूजा सामग्रीसे योगियोंको सत्कृत करते थे। जिससे उनकी अनेक कामनायें सफल होतीथी। यही कारणथा इस अवसरमें यहां इतनी संख्यामें मनुष्य एकत्रित होते थे जिससे यह मेला गोदावरी कुम्भकी समताको प्राप्त करता था। अस्तु) सायंकाल हुआ भोजनके लिये मेलेमें आज्ञा घोषित कर दी गई कि जिसकी रुचि हो वह श्रीनाथजीके भरपूर भण्डारसे भोजन ग्रहण कर सकता है। यह सुन योगियोंके भोजनादान समयमें ही योग क्रिया कुतूहल दर्शनार्थ मेलेमें आये हुए गरीब लोगोंने द्रव्याभावसे तथा अमीर लोगोंने प्रसाद समझ कर भोजन ग्रहणके द्वारा तात्कालिक सौख्य प्रवाहकी सीमा प्रवृद्ध की। इस कृत्यसे निवृत्त होते २ रात्रीका पूर्ण स्वराज्य हो गया। जिसने सुषुप्ति अवसरको उपस्थित कर यात्रियोंको मार्गिक श्रान्ति दूर करनेका परामर्श दिया। परं वे लोग इससे विरुद्ध थे इसीलिये उन्होंने विविध वाद्यध्वनि द्वारा भक्ति वैराग्य और योगका महत्त्व सूचक गीतगायनसे अपनी थकावटको प्रशान्त करना आरम्भ किया। आजकी रात्री अत्यन्त सुख प्रदात्री थी। यात्रियोंके सात्विक मधुर गीतालापने एक विलक्षण भाव उत्पन्न कर रक्खाथा। जिससे अनुमान होता था मानों प्रगाढ आनन्दात्मक अथाह समुद्रमें निमग्न हुए लोग अपने गृहवार तथा अपने आप तकको भूल रहे हैं। अस्तु) इसी प्रकार आनन्द प्रमोदके द्वारा रात्रीका तारुण्य शिथिलकर यात्रियोंके कुछ विश्राम करनेपर योगियोंका योग क्रिया परीक्षाकालिक सूर्य उदय होनेका अवसर आया। उधर सूर्यका उद्गमन होनेके साथ २ ही माननीय मुख्याचार्यकी आज्ञानुसार समस्त योगी अपने प्रातरिक नित्य कमसे लब्धावकाश हो क्रिया कौशल्य प्रदर्शित करनेके लिये निर्दिष्ट अवसरकी प्रतिपालनामें दत्तचित हुए। तदनु कुछक्षण बीतनेपर वह अवसर भी आ उपस्थित हुआ। जिसमें यद्यपि यह स्थल केवल योगियोंसे अधिष्ठित था तथापि किसी प्रकारकी सेवार्थ अन्तर प्रविष्ट अनधिकारी पुरुष स्वकीय कृत्यसम्पादनावधि तक बहिर निकाल दिये गये। और मुख्याचार्य श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीके शिष्य चण्डीश्वरनाथजीने जिन २ योगियोंमें जिन २ क्रियाओंके व्यतीकरकी आशङ्काथी उन २ योगियोंकी मौखिक वाणीद्वारा उन २ क्रियाओंके याथार्थ्यका परिचय लिया। एवं इसके

फलाफलको निश्चितकर अग्रिम दिन इसी अवसरपर आशङ्कास्थल योगियोंसे तात्कालिक अवसरमें सम्पादित हो जानेवाली क्रियाओंका सम्पादन करवा कर देखा। साथ ही जिस योगीकी दोनों वार्तोंमें अथवा एकमें भी अनुत्तीर्णता हुई उस-योगीके उपदेष्टासे उस क्रियाका परिचय लिया जाता था। और भाग्यवश उससे भी वह त्रुटि दूर न हुई तो आचार्यकी आज्ञानुसार शिष्यसे अधिक शिक्षकको तिरस्कृत किया जाता था। क्योंकि श्रीनाथजीकी अर्थात् गोरक्षनाथजीकी यह आज्ञा थी कि कोई भी योगी स्वयं अधुरा रहकर अर्थात् किसी क्रियामें निश्चयता प्राप्त न करके दूसरेको उपदेश करनेका सहास न करे। यदि किसीमें ऐसा सम्भव भी हो तो लब्धावसरमें उसका निरीक्षण किया जाय। और उसको अपनी प्रमत्तासे आज्ञा भङ्ग करनेका यथोचित दण्ड दिया जाय। जिससे मार्गमें व्यतीकर उत्पन्न न होकर सदा अनिष्टोत्पत्तिका अभाव रहेगा। अतएव चण्डीश्वरनाथजीने श्रीनाथजीकी इस आज्ञाको रक्षित करनेके लिये ही उक्त वृत्तान्तका अनुष्ठान किया। और जो शिष्य ही ऐसे निकले कि अनवरत क्रिया प्रयत्नसे निर्विण्ण हो अधुरे रह गयेथे और अपने आपको उन क्रियाओंका ज्ञाता सूचित करतेथे उनको भी कुछ दण्डित कर फिर प्रयत्न करनेकी आज्ञा दी। इस प्रकार गृहकार्य सम्मार्जनामें दो दिन व्यतीत हुए। तृतीय स्वागतिक सूर्यका शुभागमन हुआ। जिससे प्रातःकालिक विधिके सम्पादनानन्तर समस्त योगीलोग तथा प्रजाजन सज्जीकृत सदातन विस्तृत स्थलमें बड़े समारोहके साथ एकत्रित हुए। और प्रथम आधुनिक मुख्याचार्य चण्डीश्वरनाथजीने प्रवलवेग वायुका चलाना तथा उसे प्रशान्त करना मूसलधार वर्षाना तथा शान्त करना। अग्निका वर्षाना तथा शान्त करना। वा उसकी शान्तिके लिये जलवर्षा करना। चन्द्रमा सूर्यका तेज बढाना तथा मन्द करना। आवश्यकता पडनेपर अभीष्ट देवताको अपनी सहायताके लिये बुलाना तथा लौटा देना। रमणीय बागवगीचे और महल रचकर खडे करदेना तथा लुप्त करना। अनेक मनुष्य तथा पशु पक्षियोंकी सृष्टि रचना तथा लय करना। जिन २ स्वरूपोंसे देवलोकादि लोकोंमें जाना होता है उन २ स्वरूपोंको बनाना तथा संहृत करना। अभीष्ट खाद्यपेय धारणीय पदार्थोंको उपस्थित करना तथा छिपा देना। आदि चमत्कारोंको प्रदर्शित किया। तदनु आपके आसनासीन होनेपर गोरक्षनाथजीके शिष्य विलेशयनाथजीने अपने शरीरको सहस्र मनुष्योंसे भी नहीं खींचे वा उठाये जानेवाले भारान्वित बनाना। तथा पाषाणशिलामें प्रविष्ट होनेके अनुकूल बनाना, तथा जलकी तरह भूमिमें गोते लगा २ कर स्नान करना, तथा सूर्यकी किरणोंका आश्रय लेकर सूर्यतक पहुँचने वाले शरीरको धारण करना, तथा तृणादिका आश्रय लेकर वायुवेग द्वारा अन्य देशमें अथवा आकाशमें गमन करने वाले शरीरका धारण करना तथा भूमिमें प्रविष्ट हो अन्यत्र जा निकलना, तथा शरीरको वज्रकी तुल्य बनाकर

उसे अक्षय्य करना, और अपने आपको बाल्यायु बना लेना वा अपना शरीर छोडकर अन्य बालक शरीरमें प्रविष्ट होजाना, तथा मृतक मनुष्य पशुपक्षी आदिके शरीरको सजीव करदेना। आदि अनेक चमत्कारोंका उद्‌घाटन किया । आपके भी आसनासीन होनेपर इस अध्यायके नायक करणारिनाथजीने अपनी दृष्टिके सम्पात मात्रसे कठिनसे कठिन दृश्य पदार्थको दग्ध करना तथा तादवस्थ्य बना देना । तथा अपनी दृष्टिसे चिरकालिक कुष्टादि रोग ग्रस्त मनुष्योंको सम्मुख खडे कर दिव्याकृति बनाकर दिखलाना । वा उसके सूक्ष्म शरीरका आकर्षण कर उसके शरीरमें स्वयं प्रविष्ट हो उसके उस सूक्ष्म शरीरको अपने देहमें स्थापित करना । सहस्र लपलपाती हुई जिव्हाओंके युक्त नागास्त्रका प्रयोग कर उसका परिहार करना । वा उसके परिहारार्थ गरुडास्त्रका प्रयोग कर दिखलाना, अपनी दृष्टिसे मन्दिर वृक्ष शिला आदिको उठाकर अन्यत्र स्थापित करदेना । जलमें प्रविष्ट होकर निसङ्ग रहना हस्ती आदि प्राणियोंको सम्मुख खड़े कर निश्चेष्ट बना देना । तथा भूमिकी तरह जलके ऊपर गमन करना, और समान वायुके जयन द्वारा अपने शरीरको भस्मसात् कर फिर तादवस्थ्य बनादेना । आदि अनेक चमत्कारोंको उद्‌घाटित कर अपना कर्तव्य पालन किया । और आचार्यजीकी प्रेरणानुसार यात्रियोंको चेतावनी देते हुए कहा कि, अये उपस्थित यात्रिवृन्द ! क्या आपको स्मरण है कि यह वही द्वादश वार्षिक उत्सव है जिसको जनोपकारार्थ दयार्द्रीभूत हृदय श्रीनाथजीने स्थापित किया है । तथा जिसमें श्रीनाथजीकी आज्ञाको अक्षुण्ण रखनेके लिये हमलोगोंने अपना कर्तव्य पालन करते हुए आपको विविध चमत्कार दिखलाये हैं । यदि स्मरण है तो यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि आपलोग इसकी स्थापनाके मुख्योद्देश एवं तत्वसे अनभिज्ञ होंगे। परन्तु स्मरण नहीं है तो श्रीनाथजीकी जनोपकारिणी पवित्र अभिलाषा द्वारा इसकी स्थापना हुई है मैं आपलोगोंके समक्ष यह बतला ही चुका हूं । अब रही यह बात कि श्रीनाथजीने किस उद्देशसे इस उत्सवको स्थापित किया है । इसका उत्तर उन्होंने उसी समय यह प्रदान किया था कि संसारमें ऐसे मनुष्य कम नहीं हैं जो अपने आपको अल्पज्ञ तथा अतीव क्षुद्रप्राणी समझ कर आलस्योपहत हुए यह कह डाला करते हैं कि हम क्या करसकते हैं तथा हमारे करनेसे क्या होता है । नहीं उन लोगोंको ध्यान रखना चाहिये हम उनके उस मिथ्या अभिमतको खण्डितकर यह दिखलानेके लिये ही इस अनुष्ठानका अवलम्बन कर रहे हैं कि तुमलोग कुछ चेतो और प्रयत्न करो । जिस बातके करनेमें तुम अपनेको असमर्थ समझ रहे हो उसको अनायाससे ही कर सकोगे । और हमारी जिन करतूतों को सुनकर तुम असम्भावी बतलाते वा चकित रहजाते थे उनको सम्पादित कर अपने आलस्यमय क्षुद्रत्व अभिमानको स्वयं झूठा प्रमाणित करने लगो गे । अतएव श्रीनाथजीकी इस पवित्र चेतावनीको अपने

हृदयमें स्थान देकर आपलोगोंको इससे कुछ लाभ उठाना चाहिये। मुझे आपलोगोंके विषयमें अत्यन्त ही अनुकम्पा आती है कि आपके गृहमें छत्तीस प्रकारके भोजनकी सामग्री विद्यमान होनेपर भी आप सदा क्षुधासे पीडित रहते हैं। भला इसका क्या कारण है यही है कि जिस कोठेमें सामग्री रक्खी है उसका ताला लगा है जिसकी कुञ्जी आपके हस्तसे भ्रष्ट हो चुकी है। और आपने, अब उसका प्राप्त होना असम्भव है, यह झूठा निश्चयकर उसकी अन्वेषणामें प्रयत्न करना भी छोड दिया है। परं मैं आपको सचेत करता हूं कि आपका एकदम ऐसा मानकर हतोत्साह होजाना विलकुल अयोग्य कार्य है। जिसका फल स्वरूप आपको असंख्य जन्मोंमें सम्पीडित रहनेपर भी भविष्यमें न जानें ऐसा कबतक रहना पडेगा। इस वास्ते आपको उचित है कि आप प्रथम, कुञ्जीको अवश्य प्राप्त करलूंगा. इस निश्चयको अपने हृदयमें स्थान दें। और फिर उसकी प्राप्तिके लिये अपनेसे उत्कृष्ट मनुष्योंका सङ्ग करते तथा उनका अनुभव अपनेमें स्थापित करते हुए जिस स्थानमें कुञ्जीकी अवश्य उपलब्धि हो सकती है वहांतक पहुँचनेका प्रयत्न करें। देखिये यह वात आपसे अविदित नहीं कि जब वालक उत्पन्न होता है उस समयसे लेकर मोहल्ले बाजारमें जाने आनेकी शक्ति प्राप्त करनेके पूर्व वह किसकी सङ्गतिमें रहता है और उसकी क्या दशाहुआ करती है। अर्थात् उत्पत्तिकर्तृत्व सम्बन्धसे जिसको प्रकृति कह सकते हैं ऐसी महा मोहान्धकाराच्छादित माताकी सङ्गतिमें वालक रहता है। और महा मोहके कारण ही माताकी आभ्यन्तरिक यह इच्छा होती है कि मेरा पुत्र मेरी दृष्टिसे एकक्षण भी इधर उधर न हो। इसी वास्ते वह उससे कहती रहती है कि पुत्रक! इधर नहीं जाना वा अमुक वस्तुको नहीं छूना क्योंकि उधर वा उसमें हाऊ है वह खा लेगा। अतएव उस समय माता प्रकृतिके सङ्गमें रहते हुए वालककी यह दशा है कि एक असत्य, जो आजतक किसीने नहीं देखी ऐसी कल्पित वस्तु हाऊसे भीति ग्रस्त रहता है। परन्तु जब वह इस अवस्थासे निकलता है और प्रकृतिका सङ्ग छोड मोहल्ले आदिमें जाने आने वाले स्वसमानवयस्क पुरुषोंका सङ्ग करता है तब तो वह अपने चित्तमें विचार करता है कि ये लड़के प्रतिदिन इधर उधर घूमते फिरते रहते हैं जब उन्हींको आजतक हाऊने नहीं खाया तो मुझे भी उसकी ओरसे कोई आशङ्का नहीं होनी चाहिये। अर्थात् वह मुझे भी कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता है। इस प्रकारके विचारात्मक परिज्ञानसे उसका कल्पित हाऊ सम्बन्धी भयात्मक दुःख दूर हुआ। परन्तु जिन लडकोंके संगसे उसको इतना ज्ञान हुआ वे लडके भी नगर द्वारके आसपास स्थित शून्य मन्दिर वा वड़े वृक्षमें कल्पित डङ्कनी शङ्कनी आदिके भयसे ग्रसित रहते हैं। इसीलिये वह लड़का भी उनकी शिक्षाके अनुसार भीति ग्रस्त हुआ किसी समय भी एकला वा अन्धकारादिमें उधर नहीं

जाता है। प्रत्युत समानवयस्क अन्य लड़कोंको स्वयं उधर नहीं जाना डङ्कनी रहती है यह उपदेश देने लगता है। खैर इस दशामें कुछ दिन व्यतीत कर अब स्वकीय ग्रामसे अन्य ग्राम वा जङ्गलादिमें जाने आने वाले लड़कोंकी संगतिमें पहुँचा। और उनको प्रतिदिन सायं प्रातः वा अन्धकारमें उस जगहके समीपसे अथवा उस जगहमें जाते आते देख विचार करता है कि इन लडकोंको उस डंकनी आदिका कुछ भय नहीं लगता और न वह कभी इनको कुछ कष्ट ही पहुँचाती है। इस वास्ते मुझे भी उससे कुछ भय नहीं करना चाहिये क्योंकि इनकी तरह वह मुझे भी कोई बाधा नहीं पहुँचा सकती है। अतएव वह लडका इस ज्ञानद्वारा द्वितीय भयात्मक सोपानका उल्लङ्घन करता है। परन्तु ये लड़के भी नगरसे बाह्यस्थल निष्ट श्मशानोंमे वा वनी जङ्गलमें कल्पित भूत पिशाचादिसे भय किया करते हैं ठीक वह लड़का भी इनकी दशामें परिणत होजाता है तथा तादृश उपदेष्टा भी बनजाता है। किन्तु कुछ दिनके अनन्तर वह इस संगतिसे निकल उन मनुष्योंकी संगतिमें पहुँचा जो अपने कार्यवश अन्धकारमयी रात्रीमे उन स्थलोंमें जाते आते वा प्रवङ्ग वशात् कुछ दिन निवास करते हैं। यह देख वह फिर अनुभव करने लगता है कि रात्रीमें नृत्य आदि क्रीडायें करने वाले पिशाचादि उन स्थलोंमें हों तो होतेरहो परं वे हमारे भयके स्थान नहीं होसकते हैं। क्योंकि ऐसा होता तो वहां जाने और रहने वाले इन मनुष्योंकी क्या गति होती। अतः जब ये लोग उनकी बाधाओंसे सर्वथा निःसङ्ग हैं तो मेरा ऐसी आशङ्का रखना केवल लड़क पन ही है। बस आजसे पीछे ऐसी बातके लिये मैं अपने हृदयमें कभी स्थान नहीं दूंगा। उन लोगोंके संसर्गसे इस प्रकारका आनुभविक ज्ञान प्राप्त कर यह पुरुष तृतीय सोपानको पार करता है। ठीक यही दशा जो तुम सब लोगोंमें बीती है अपने ऊपर घटा लो और निश्चय कर लो कि हमारे कथनानुसार तुमलोग इस तृतीय सोपानकी उत्तर अवधिमें ही लटकते रहगये वा नहीं परं क्यों क्या तुमलोग तृतीय सोपानपंक्तिकी तरह चतुर्थी और इसके उत्तर पञ्चमी आदिका अतिक्रमण कर जिस स्थानमें तुम्हारे आभ्यन्तरिक कोठेकी कुञ्जीका सम्भव है उस स्थानतकके मार्गका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते थे। यदि कर सकतेथे तो फिर क्यों ऐसा हुआ जो इसी अवधिमें लटकते रहगये। ध्यान रक्खो इसका यही कारण है कि तुमलोगोंको न तो अपनेसे उत्कृष्ट मनुष्योंका संग प्राप्त हुआ और न इससे अधिक उतना अनुभव ही प्राप्त करसके जिससे इस अवधिका भङ्ग कर अग्रसर हो सकते। अतएव तुमलोग निश्चय रक्खो हम परमकृपालु भगवान् आदिनाथजीकी प्रेरणानुसार इसीलिये अपनी गुप्त रखने योग्य तथा किसी विशेष अवसरके उपस्थित होनेपर उपयोगमें लाने योग्य इन सिद्धियोंको नाट्य लीलामें परिणत किया करते हैं कि तुम्हें इस अवधिका भङ्गकर अग्रिम ज्ञान प्राप्त करनेका सुभीता मिले। क्योंकि जो तुम्हें दिखला चुके हैं हमारे

इन चमत्कारोंका यही अभिप्राय है हम इनके द्वारा तुम्हें सचेत कर रहे है कि तुमलोग इन शक्तियोंको देखकर हमको अपनेसे उत्कृष्ट समझो और हमारा संग करो। फिर तुम्हें मालूम हो जायेगा जिस इस पाञ्चभातिक पुतलेको तुच्छ और किम्प्रयोजन बतलाया करते हो ईश्वरने इसमें क्या २ और कैसी २ शक्तियां छिपा रक्खी हैं। हमारे संसर्गसे उनका यथार्थ अनुभव प्राप्तकर तुम इस योग्य हो जाओगे कि चतुर्थका अतिक्रमण करते हुए क्रमशः पञ्चमादि सोपानके अतिक्रमण द्वारा उस स्थानमें पहुँच सकोगे जहां तुम्हारे अज्ञानाच्छादित हृदयात्मक कोठेकी कुञ्जिका रक्खी है। बस फिर क्या है कुञ्जिका जहां हस्तगत हुई और ताला खुला। जिसके अन्तर छत्तीसों प्रकारके भोजनकी सामग्री तो रक्खी ही हुई है जिसकी अप्राप्तिमें तुम सांसारिक विविध व्याधिरूप क्षुधाओंसे पीडित थे। फिर क्या मजाल जो वह क्षुधापुञ्ज तुमको कुछ भी त्रस्त कर सके। करणारिनाथजीने इत्यादि वाणी बाणोंद्वारा यात्रियोंके हृदय स्थानको छिद्रान्वित कर अपनी चेतावनीको स्थापित किया। जिसका फल यह हुआ कि अनुकूलादृष्ट कतिपय लोगोंके आन्तिरिक स्थानके पट खुल गये। और उनके निश्चय हो गया कि निःसन्देह यही बात है उत्तरोत्तर उत्कृष्ट मनुष्यके संगके प्राप्त अनुभवके द्वारा पुरुष अपने ज्ञानकी पराकाष्ठा दिखा सकता है। अतएव उन्होंनें परम वैराग्यवान् होकर इस विषयमें लाभ उठानेका निश्चय किया। तथा उत्सवसमाप्तिकी घोषणाके अनन्तर जब योगिसंघ अपने निवासाश्रममें पहुँचा तब वे लोग भी वहां पर उपस्थित हो अपना मनोरथ प्रकटित करते हुए सेवामें व्यग्र हुए। अहो क्या ही विचित्र रहस्य है। पाठक! देखिये पूज्यपाद योगेन्द्रवृन्द किस प्रकार मुमुक्षुजनोंको अपनी ओर आकर्षित कर संसार सागरसे पार करताथा। परन्तु खेद है ईश्वरने वह समय भी आज हमारी दृष्टिगोचर करा जिसमें ऐसे कजली आदि पूज्यस्थानोंकी यात्रार्थ गमन करता हुआ आधुनिक योगिसंघ मार्गिक विश्राममें अनेक प्रकारके त्याज्य खाद्य तथा पेय पदार्थोंका ग्रहणकर अपने याथार्थ्यका परिचय दे चुकनेपर भी उन स्थानोंमें पहुँचकर उसी बातका साम्राज्य रखता है। जिसका फल यह होता है कि औन्मादिक उद्दण्डताओंके द्वारा योगियोंकी चिम्टे बाजी घूराघूरी वा गाली गुप्ताओंका माङ्गलिक दृश्य उपस्थित हो जाया करता है। जिससे समीपस्थ सांसारिक लोगोंको इनकी करणीका ठीक पता लग जाता है। शोक ! अस्तु) अग्रिमदिन कैलास जाते हुए चण्डीश्वरनाथजी तथा बिलेशयनाथजीके परामर्शानुसार शरणागत हुए उन मुमुक्षु पुरुषोंमें अपना शिष्यत्व आरोपण करनेके अनुकूलस्थलकी अन्वेषणार्थ करणारिनाथजीने-उनके सहित ही वहांसे रामेश्वरकी ओर प्रस्थान किया।

इति श्री करणारिनाथ भ्रमण वर्णन नामक ३३ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय ३४ ॥

पाठक महोदय! करणारिनाथजीके और निरञ्जननाथजीके पारस्परिक संसर्गका विच्छेद कच्छनामक देशमें हुआ था यह आप पीछले अध्यायमें पढ चुके हैं। उस समय दाक्षिण देशको उद्देशितकर करणारिनाथजीके उधर प्रस्थानित होनेपर निरञ्जननाथजीने भी उत्तरीय देशमें विचरणार्थ अपना मनोरथ निश्चितकिया था। परन्तु भगवान् कृष्णजीके पूजनार्थ द्वारकाके अभिमुख जाने वाले यात्रिदलको देख एकाएक आपका वह मनोरथ स्थगित हुआ। अतएव आपने द्वारकाको लक्ष्यस्थान बनाकर प्रथम उधर ही प्रस्थान किया। और कुछ दिनके मार्गिक विश्रामानन्तर आप ठीक अवसर पर वहां पहुँच गये। आपका यहां आना सांसारिक लोगोंकी तरह मेला देखने वा भगवान् कृष्णजीसे भौतिक पदार्थोंकी याचना करनेके लिये नहीं था। अतएव आपने अपना आगमन सफल करनेका उपयोगी उपाय अन्वेषित किया। और वह यह था कि भगवान्के दर्शनार्थ मन्दिरमें जानेके लिये आपने अवतिराजका* सज्जीकृत हस्ती मंगाया जो आपकी सूचना पहुँचतेही भेज दिया गयाथा। उसके आनेपर आप सवार हो नगरकी ओर बढे। परन्तु कुछ क्षणमें आप ज्योंही नगरके समीप पहुँचे त्योंही द्रष्टाओंके लिये आप एक अत्यन्त विस्मापक कुतूहलके स्थान बन गये। जो २ मनुष्य हस्तीकी ओर दृष्टिपात करते थे उन २ मनुष्योंको आप हस्तीके साजसे दो हस्त ऊपर बैठे दीखपडते थे। यह देख विस्मित दर्शक लोग हस्तीके अनुयायी राजकाय कर्मचारीसे आपका परिचय लेकर पररपरमें एक दूसरेको परिचय देते

---

* जिस ग्रन्थका मै अनुवाद कर रहा हूं यद्यपि इसमें अवतिराज लिखा है। तथापि यह भूलसे लिखा समझना चाहिये। और उसका यथार्थ नाम अवन्तीराज समझना चाहिये। जो अवन्ती (मालुवा) देशका अधिपति उज्जयिनीका राजा था। और जैसे काशी आदिप्रान्तके अधिपतिको काशी राजादि शब्दसे व्यवहृत किया जाता है तैसे उसको भी इस शब्दसे व्यवहृत किया जाताथा। मालूम होता है द्वारकातक इसीका राज्य था।

हुए स्वस्व कार्यस्थानमें जाते हुए भी मार्गोपलब्ध मनुष्यको इस घटनासे परिचित करते थे। जिसका फल यह हुआ कि कुछ ही देरमें समग्र नगर इस वृत्तान्तके कोलाहलसे गूञ्जारित होउठा। और सहस्रों स्त्रीपुरुष आपके दर्शनार्थ मन्दिरकी ओर प्रधावित हुए। इधर कुछ क्षणमें अपने मनोरथकी सार्थकतार्थ लोगोंको चकित करते हुए आप मन्दिरके द्वारपर जा उपस्थित हुए। और कर्तव्य पालनार्थ हस्तीसे उतर पुष्पमाला हस्तमें लिये हुए आप मन्दिरके आभ्यन्तरिक आङ्गणमें गये। इस समय यह मन्दिर भी स्त्री तथा अनेक पुरुषोंसे परिपूर्ण था। वे मन्दिर और श्रीकृष्णजीकी मूर्तिके दर्शनका ध्यान छोड़कर आपके दर्शनार्थ एक दूसरेके ऊपरसे गिरतेथे। ठीक ऐसे ही अवसरमें निरञ्जननाथजी भगवानकी प्रतिमाके सम्मुख हुए। इतने ही में एक चतुर्भुजी मूर्ति मन्दिरसे निकल आपके आगे आ खड़ी हुई। जिसको माला पहिनानेके अनन्तर प्रणतिसे सत्कृत कर आप वापिस लौट आये। इस द्वितीय अलौकिक घटनाने विस्मित लोगोंके हृदयको और भी विस्मयान्वित करडाला। और मन्दिरान्तर प्रविष्ट इन लोगोंने बहिर निकल कर ज्योंही इस भाग्योपलब्ध दृश्यकी सूचना अन्यलोगोंको दी योंही वे लोग, जो इस समय मन्दिरमें थे वे धन्य एवं भाग्यशाली पुरुष हैं जिन्होंने भगवान् कृष्णजीका साक्षात्कार किया यदि हम भी मन्दिरमें होते तो योगेन्द्रजीके पवित्र दर्शनके साथ २ भगवानका भी दर्शन करते परं ऐसा क्यों होथा हमारे मन्द भाग्य हैं जिनका यह पश्चात्तापात्मक फल उदय हुआ, इस प्रकारके आलाप द्वारा हस्त मलते हुए अपने मन्दभाग्यत्वको प्रकटित करने लगे। और हस्तीपर आरूढ हो अपने आसनस्थानकी ओर जाते हुए निरञ्जननाथजीके अनुयायी हुए। जिससे कुछ ही देरमें बड़ी भीड़ उपस्थित होगई। श्रद्धान्वित लोग अनेक प्रकारकी माङ्गलिक भेटपूजा समर्पित कर अपनी भावनाकी पराकाष्ठा दिखलाते थे। उधर पुष्पमालाओंका तो यह हाल था कि आपके मुखारविन्द सम्बन्धी दर्शनके पिपासुलोग यदि उनको उतार कर एक ओर न रखते तो वे नाथजीके किसी अङ्ग प्रत्यङ्गको भी न दीखने देती। (अस्तु) उक्त घटनाओंके श्रोत्र परम्परा द्वारा श्रवण होनेसे अवन्तीराज भी आपके दर्शनोंका पिपासु हुआ इसी अवसरपर आ उपस्थित हुआ। जिसने समीपस्थ पुष्पसञ्चयको और भी उन्नत बनादिया। और स्वोचित विविधोपायन समर्पणाके अनन्तर साष्टाङ्ग प्रणतियोंके द्वारा आत्यन्तिक भक्ति प्रकट कर प्राश्निक हुआ कहने लगा कि महाराज ! हमलोगोंको अत्यन्त हर्षके साथ २ यह गौरवपूर्वक अभिमान भी है कि हमलोग महा भाग्यशाली हैं। अतएव इसका फल स्वरूप आज यह दृश्य उपस्थित है कि आपके दुष्प्राप्य दर्शनात्मक अमृतसे अपने पापिष्ट दंदह्यमान नेत्रोंको पवित्र एवं शीतल बनानेका हमको अच्छा अवसर मिलगया है। इसके अतिरिक्त जो त्रुटि अभी अवशिष्ट है निश्चय है वह भी तादृश न रहेगी। यह

सुन निरञ्जननाथजीने कहा कि वह त्रुटि क्या है जो आपलोगोंके महा भाग्यशालित्वमें न्यूनता पहुँचा रही है। राजाने कहा कि यद्यपि वह हमारी अभिलाषात्मक त्रुटि आपसे अविदित नहीं है तथापि आपके प्रश्नानुरोधसे मैं स्फुट करदेता हूं। मैंने श्रवण किया है कि वहुत मनुष्योंको आपने श्रीकृष्णजीका दर्शन कराया है। क्या यह बात सत्य है। और यदि सत्य है तो मेरी अभिलाषा जो इस विषयमें अङ्कुरित होचुकी है क्या, आप उसको वृक्षरूपमें परिणत कर फल सहित करनेकी परमकृपा करेंगे। इसके उत्तर आपने कहा कि लोगोंको मैंने भगवान्का दर्शन कराया यह बात सत्य है और नहीं भी है। क्योंकि सत्यतो इसलिये है कि उस समय उपस्थित लोगोंने मेरे द्वारा दर्शन किया, और नहीं इसलिये है कि इस विषयमें उनलोगोंने मेरेसे कोई अनुरोध नहीं कियाथा जिसके विवश हो मैं ऐसा करनेके लिये बाध्य होता। किन्तु श्रीकृष्णजी योगेन्द्र हैं उधर मैं भी योगी हूं। हम योगीलोगोंकी यह रीति है कि परस्परमें आगन्तुकका यथोचित स्वागत किया करते हैं। सम्भव है इसी हेतुसे प्रतिमामें प्रविष्ट हो उन्होंने अप्रसरण किया था जिनके ऐसे व्यवहारसे उपकृत हो मैंने भी उनकी हार्दिक प्रणातिकी और वापिस लौट आया। प्रसंग वशात् अदृष्ट अनुकूल होनेसे इस अवसरपर उनलोगोंको भी दर्शन हो गया। यह कोई विस्मापक बात नहीं आगे तुम्हारी भावना ठहरी चाहे जैसा अर्थ लगाया करो। राजाने कहा कि महाराज! हमारा अदृष्ट ही कोई ऐसा विपरीत हो कि हमारी इच्छाकी सफलतामें विघ्नस्वरूप हो जाय तो बात दूसरी है नहीं तो हमारी भावना निःसन्देह यही है कि दर्शन आपने कराया है। और आप प्रसन्न हों तो हमको भी अवश्य करा सकते हैं। क्योंकि आपके लिये यह बात कोई असम्भावी नहीं है। निरञ्जननाथजीने पूछा कि आपलोगोंको ऐसा निश्चय किस बातसे हुआ कि हमारे लिये ऐसा कर दिखलाना असम्भावी नहीं किन्तु सम्भावी ही है। राजाने उत्तर दिया कि यह निश्चयतो मेरे पहलेसे ही था इसकी पुष्टि आपके अपने आपको योगी बतलानेसे हो गई। क्योंकि शास्त्र और वृद्धलोगोंके द्वारा देखा तथा सुना जाता है कि योगियोंके लिये ऐसी बात कुछ भी दुःसाध्य नहीं होती है। श्रीकृष्णजीको ही ले लीजिये जब वे योगी थे तो उन्होंने अर्जुनको क्या २ अलौकिक लीला दिखलाई यह आबाल वृद्ध सभी जानते हैं। अतएव यदि आप भी अपने विषयमें योगित्वका अभिमान रखते हैं तो हमारी आशा लताके हरीभरी होनेमें कोई सन्देह नहीं है। निरञ्जननाथजीने कहा कि श्रीकृष्णजी योगिराज थे मैं ऐसा मानता हूं। उधर अर्जुन उनका जैसा असाधारण भक्त था इस बातका परिचय उन्हीं शास्त्र वा वृद्धपुरुषोंसे लीजिये। ऐसी दशामें श्रीकृष्णजीने अर्जुनको अलौकिक चमत्कारोंका दिग्दर्शन कराया तो कोई बडी बात नहीं है। परन्तु मैं अपने विषयमें योगित्वका अभिमान रखता हुआ भी न

तो योगिराजत्वका अभिमान रखता हूं। और न तुम्हारा अर्जुनके तुल्य असाधारण भक्ति निष्ट होनेका कोई निश्चित प्रमाण ही मिलता है। तथापि तुमने आशासित होकर जो हमारे साथ प्रार्थना विषयक आलाप किया है हम इसको निष्प्रयोजन नहीं होने देंगे। अब तुम अपने आश्रम पर जाओ। और सायंकालिक कृत्यसे निवृत्त हो अपने इष्ट मित्रोंके सहित हमारे समीप आना। तुम्हें श्रीकृष्णजीके अतिरिक्त उनकी तात्कालिक द्वारकाका दर्शन करायेंगे। जिससे तुम्हें मालूम होगा कि उस समय यहां कितने उन्नत और कैसे २ प्रासाद तथा उनके ऊपर कैसी २ रोशनी और कैसी २ कितनी पताकायें उडा करती थी! तथा देवताओंसे अधिष्ठित महा प्रकाशित विमान किस प्रकार ऊपर चक्राकारसे भ्रमण करते हुए अपने प्रकाशको नगर प्रकाशसे मिश्रित करतेथे। जिसका फल यह होताथा कि सुदूरदेश वासी पूर्वीय अपरिचित लोगोंको ऐसी शङ्का[1] हुआ करती थी, कि अभी सूर्यनारायण अस्त नहीं हुआ है। आपकी इस रोमांच करने वाली पूर्णकामा वाणीको श्रवण करनेके साथ २ ही अपने भाग्यशाली होनेका पूरा निश्चय कर वार २ प्रणतिसे सत्कृत करता हुआ अवन्तीराज बोला कि भगवन्! आप्तपुरुषोंने, महात्माओंके साथ शुद्धभावसे सम्पादित होनेवाला संग कभी निष्फल नहीं होता है, यह ठीक ही कहा है। अतः मैं आपका महान् कृतज्ञ हूं और यावज्जीवन रहूंगा। परन्तु खेद है मेरे अधीनस्थ कोई ऐसी वस्तु नहीं जिससे आपके उपकारका बदला चुका सकूं। इत्यादि वचनोंसे महती नम्रता दिखला कर आपकी आज्ञानुसार अवन्तीराज अपने निवासभवनमें गया। उधर कुछ देरमें भोजन समय उपस्थित हुआ। जिसमें अपने इष्ट मित्रोंके सहित वह भोजन थालपर बैठा। परं किसको भोजन प्रिय लगता था उन्होंके तो आज यह भी ध्यान नहीं था कि संसार अथवा हम संसारमें हैं वा नहीं। किन्तु वे इसी ध्वनिमें थे कि कब सायंकाल हो और हम उस दृश्यको देखें। आजका दिन तो उनके लिये मानों वर्षके समान गुजर रहा था। खैर किसी प्रकार कुछ थोड़ा बहुत खा पी कर भोजनसे निवृत्त हुए। और उसी विषयकी अनेक वार्ताओंके द्वारा दिवसको यापित करने लगे। आखिरको बड़ी कठिनताके साथ जैसे तैसे करके उन्होंने दिन व्यतीत किया। तथा सायंकालिक नित्य कृत्यसे लब्धावकाश हो वे निरञ्जननाथजीकी सेवामें उपस्थित हुए। इधर आप अपने वचनकी सफलता देखनेके लिये प्रथमतःही तैयार बैठे थे। अतएव आपने अलक्ष्यपुरुषसे अनुगृहीत होकर राजा तथा उसके सहचारियोंको मन्त्रसंशोधित भस्मी प्रदान की। और आज्ञा दी कि मस्तक तथा नेत्र आच्छादनपर लगाकर नगरकी और देखो। उन्होंने आपकी

---

१ नगरकी रोशनी विमानोंतक और विमानोंकी रोशनीके उतने ही ऊपर तक होनेसे आकाश प्रकाशसे, जबतक विमान रहते व्याप्त रहताथा। इसीसे वे लोग उक्त विषयमें शङ्कित रहतेथे।

आज्ञानुसार नेत्र पडदे और ललाटपर भस्म लगाकर ज्योंही उधर अवलोकन किया त्योंही उनको सचमुच वही दृश्य, जिसका नाथजीने प्रथम ही दर्शन किया था, दिखाई दिया। अतएव उन व्योमव्यापी प्रासादोंको, जो विविध प्रकाशसे प्रकाशित तारकित आकाशका तिरस्कृत कर रहेथे और आवश्यकता पडनेपर जिनके ऊपर विमान ठहरते और उड जाते थे, देखकर वे लोग आश्चर्य ग्रस्त हुए। और उन्मत्तोंकी तरह चेष्टा प्रकटित कर परस्परमें कहने लगे कि वे पुरुष धन्य थे जो उस समय ऐसे नगरमें निवास करते थे। इतने ही में इधरसे नाथजी भी बोल उठे क्या राजन्! कुछ दीख पडता है। राजाने कहा कि भगवन्! जो दीख रहा है वह आपके अन्तर्गत है यही कारण था जो आपने प्रथम ही इस दृश्यका स्वरूप वर्णित करदिया था। फिर नाथजी बोले तो कहो अब और कितनी देर तक देखोगे। राजाने कहा कि भगवन्! इस दृश्यको देखते २ हमारे नेत्रोंकी तृप्तिका समय यदि अवलम्बित किया जाय तो वह अभी समीप नहीं है। इस वास्ते हमारा कबतक देखना न देखना आपकी इच्छापर निर्भर है। यह सुन निरञ्जननाथजीने कहा कि अच्छा नेत्रोंके ऊपर वस्त्र फेर भस्भी उतार डालो। उन्होंने मन्दगतिसे आपकी यह आज्ञा पालन की जिसके पूर्ण होते ही नाथजीकी कृत्रिम मायाका अपसरण हुआ। और दृश्यकी तरफसे निवृत्त हो ये लोग नाथजीके चरणारविन्दमें मस्तक झुका २ वार २ नमस्कार करने लगे। तथा कहने लगे कि भगवन्! आपलोग धन्य है इस कलियुगमें आप ही सच्चे मार्गमें चल रहे हें। जिसका फल स्वरूप परमात्माकी परमकृपाके पात्र बन अनेक अलौकिक शक्तियोंके भण्डार हो रहे हो। जिनके द्वारा स्वयं सांसारिक त्रिविध दुःखसे मुक्त हो हम जैसे अज्ञानान्धकारा वृत अनेक प्राणियोंका उपकार कर सकते हो। फिर राजाने कहा कि भगवन्! कभी कुछ और कभी कुछ कहनेसे चाहे आप मुझे प्रमत्त समझें परं मैं यह स्पष्ट कह देता हूं कि इस दृश्यके पहले जो मैंने अपने आपको महा भाग्यशाली वतलाया था वह निःसन्देह अज्ञानसे वतलाया था। वस्तुतः वैसा नहीं किन्तु मैं दुर्भाग्य मनुष्य हूं। कारण कि वैसा होता तो मेरा यह संसर्ग आपके साथ आज नहीं कुछकाल पहले होता। जिससे मैं आपका शिष्यवन उस विषयमें कुछ न कुछ सफलता अवश्य प्राप्त करता। परन्तु मैं हतभाग्य अब करूंगा क्या आप मेरी अवस्था देख ही रहे हें जो उस दशामें परिणत है जिसमें मनुष्य योगक्रियाओंको किसी प्रकार साध्यस्थान नहीं वना सकता है। तथापि राज्यकार्योंसे लब्धावकाश हो मैं परमात्मासे यह प्रार्थना अवश्य किया करूंगा कि अग्रिम जन्ममें मुझे आपलोगोंका संसर्ग अनुकूल अवस्थामें प्राप्त हो। तदनु निरञ्जननाथजीने कहा कि हां यह तो प्रत्यक्ष है जरावस्थानिष्ठ होनेसे इस जन्ममें तो तुह्मारी अभिलाषा पूर्ण होनी असम्भावी है तथापि इस वातसे तुम्हें अधिक खिन्न चित्त नहीं होना चाहिये। क्योंकि यदि

इस विषयमें तुम्हारा अन्तरिकभाव निश्चित हो गया है और इसीलिये अपने कथनानुसार ईश्वरसे ऐसी अभ्यर्थना भी करते रहोगे तो अग्रिम जन्म भी अधिक दूर नहीं समीप ही आ पहुँचा है। अतएव अब तुम अपने स्थानपर जाओ और अपने निश्चयको प्रतिदिन दृढ करते हुए हमारे साथ होनेवाले वार्तालापको विशेष शुभदायक बनानेके लिये ईश्वरके प्रार्थी बनो। यह सुन असकृत् प्रणामसे दिनम्री भाव प्रकटित कर कभी महानन्दित और कभी हर्षक्षयी होते हुए अवन्ती राजादि सब लोग अपने निवास भवनमें गये, इनके नगरमें पहुँचनेसे कुछ देर पश्चात् प्राथमिक दो घटनाओंकी तरह श्रोत्रपरम्परासे इस बातका समाचार भी सारे नगरमें विस्तृत होगया। जिसका फल यह हुआ कि कतिपय अदृष्टानुकूल लोगोंके हृदयोंमें प्राथमिक घटना द्वारा वपन किया हुआ जो वैराग्यका बीज था वह द्वितीय घटनासे अङ्कुरित हो इस तृतीय घटनाके समाचारसे वृक्षरूपमें परिणत हुआ; अतएव वे लोग सासांरिक पदार्थोंकी मोह ममता छोड़ निरञ्जननाथजीकी सेवामें आने लगे ; जो एक दो आदिके क्रमसे प्रातःकाल तक पच्चीस २५ मनुष्य एकत्रित होगये ; उधर अवन्तीराजके दो कर्मचारी, जो उक्त घटनामें उपस्थित थे, मानों उसी समय अपने आपको नाथजीके अर्पण करचुके थे। इनके हृदय-स्थानमें इतनी चोट लगी थी कि इन्होंने निश्चय करलिया था ये सांसारिक पदार्थ दीखने मात्र प्रिय हैं। वस्तुतः अस्थायी हैं। इनके साथ प्रीति करना वायु वा श्रावणी मेघोंके साथ प्रीति करना है। इसीलिये इन महानुभावोंने एक क्षणभर भी नेत्र सम्मिलित न कर समग्र रात्री व्यतीत की ; और स्थिर किया कि दिन होनेपर प्रातरिक कर्मसे लब्धावकाश हो जब महाराजा साहिब सिंहासनारूढ होंगे तब इस विषयमें उनसे आज्ञा देनेकी प्रार्थना करेंगे। ठीक अब वही अवसर आ उपस्थित हुआ। इधर ये इसकी प्रतिपालनामें बैठे ही थे। इन्होंने सम्मुख स्थित हो प्रणाम पूर्वक अपना चिन्तित मनोरथ प्रकट किया। उधर राजा स्वयं इस बातके लिये तैयार होचुका था परं बूढापेने रोकादिया था। तथापि आभ्यन्तरिक भावसे प्रसन्न हो वह इनकी दृढता देखनेके लिये इनको पट्टक्तियों द्वारा समझाने लगा कि तुम मेरे अत्यन्त विश्वासी सेवक हो। अतएव मैं इधरसे उधर सूर्य होजाय तो भी तुम्हें अपने हस्तसे नहीं छोड सकता हूं। यदि कहो कि आप स्वयं ऐसा करनेको कहते थे जो अवस्था अनुकूल होती जैसी कि हमारी है तो आप किससे आज्ञा देनेकी प्रार्थना करते तथा करते तो न मिलनेपर आपको कैसा गुजरता। इसपर यह ध्यान रखना चाहिये कि मैंने यह बात अभ्यन्तरिक यथार्थ भावसे नहीं कही थी। क्योंकि यदि मुझे ऐसा करना रुचिकर होता तो क्या इनसे अन्य इतने पराक्रमशाली योगी पहले नहीं देखे तथा सुनेथे। मैं फोरन उसी समय किसी न किसी महात्माकी शरण ले लेता। परं ऐसा करबैठना मुझे तो न कभी अच्छा मालूम हुआ न होता है न होगा। किन्तु यह

व्यावहारिक रीति है किसी माननीय महात्माके समीप जानेपर ऐसे वचन कहे ही जाते हैं। जिन्होंसे उसकी प्रसन्नता हो और अपनी श्रद्धा स्फुट होती हो। जिस समय राजा ये वाक्य कह रहाथा उस समय उनके मर्मस्थानको भेदन कर वृश्चककी तुल्य पीडा देरहे थे । और राजाके इन खाने तथा दिखानेके हस्ती वाले भिन्न २ दांतोंसे निश्चय करलिया था कि राजालोग प्राय ऐसी ही नीतिसे काम लिया करते हैं। इसलिये अवश्य कुछ दालमें काला है । परं तो भी यह तो नहीं होसकता कि हमको आज्ञा न मिलेगी हां कुछ कठिनता अवश्य उपस्थित होगी ।. अतएव उन्होंने कहा कि स्वामिन् ! आपका कहना यथार्थ एवं राजनीति युक्त है। अवश्य राजाको अपने सेवकोंपर ऐसी ही प्रीति रखनी चाहिये । तथापि हम आपसे यह पूछना चाहते हैं कि हमको रोक रखनेके लिये आप किस उपायका अवलम्बन करेंगे। होसका है कि आप हमें राजत्व बलसे महात्माजीकी सेवामें न जाने देकर अपने नगरमें रख सकेंगे । परन्तु वैराग्यसे दग्धान्तःस्थान हुए हमलोग, अन्नोत्पत्तिमें उषरभूमिकी तरह आपकी राजकार्यसञ्चालनामें कारण नहीं होसकते हैं । ऐसी दशामें आपको उचित नहीं कि हमारे प्रादुर्भूत सौभाग्यको विघ्नित कर दुर्भाग्यमें परिणत करें। यह सुन राजाने, अपने सेवकको सहसा दूर न कर उसमें प्रगाढ प्रीति दिखलाना, तथा किसी कार्यमें उसकी ओरसे निश्चयता जबतक प्राप्त न हो तबतक उसमें उसे प्रवृत्त न होने देनात्मक, इन दो नीतियोंको प्रयोगको सफल देखकर कहा कि अहो ! तुमलोग धन्य हो जो इस विषयमें उत्साहित हुए हो । मैंने तुम्हारेमें विश्वास प्राप्त करनेके वास्ते ही ऐसा निषेधात्मक वचन कहा था । अन्यथा ऐसा कौन दुरात्मा मनुष्य है जो ऐसे शुभ कार्यसे जिससे, मनुष्य मनुष्यताको प्राप्त कर सकता है, वञ्चित रखकर अपने स्वार्थमें पाशवद्ध बनावे । बल्कि मै इस वातसे विशेष प्रसन्न हूं कि खैर अवस्था प्रतिकूल होनेसे मैं तो स्वयं योगेन्द्रजीके उपकारका बदला न दे सका परन्तु मेरे सेवकोंने अवश्य दिया। अतः मैं हार्दिक प्रसन्नतासे कहता हूं तुमलोग जाओ और योगेन्द्रजीको अपना सर्वस्व समझो । खैर इस वातका तो मुझे शोक है कि जिस समय तुमलोग योगेन्द्रजीकी विशेष कृपाके पात्र वन अपने अभीष्टको प्राप्त होगे जवतक मैं तुम्हारे इस सम्बन्धमें न रह सकूंगा । तथापि मेरा जीवात्मा इसीसे सन्तोषित हो जायेगा कि तुमलोग मार्ग ही में श्रान्त न होकर अपने अभीष्टसिद्धिप्रद स्थानपर सीधे पहुँच ही जाना । उन्होंने प्रसन्न मुखसे गर्व रहित होकर कहा कि यद्यपि इस वातके लिये हम प्रथमतः ही आपको निःसन्देह नहीं बना सकते कि अवश्य हम लक्ष्यस्थानमें पहुँच जायेंगे । तथापि हमने अपने आपको अवश्य निश्चित कर रक्खा है । इसीसे आप भी यत्न करें तो केवल यह अनुमान कर सकते हैं कि जिस कार्यमें जिस मनुष्यका चित्त एवं विश्वास दोनों एकत्रित होते हैं उस मनुष्यका वह कार्य

अवश्य सफल हुआ करता है। तदनु अच्छा भगवान् करे तुम्हारी कहनी के अनुकूल ही करणी भी हो, यह कहकर राजाने उनको बडे आदर एवं समारोहसे विदा किया। और कुछ देरमें वे फिर योगेन्द्रजीकी सेवामें जा विराजे। आगे मार्थ शोकि यों जैसे पच्चीसोंकी मण्डली बैठी ही थी। जिसमें अधिक लोग ऐसे थे कुछ तो वयो वृद्धताके मार्गमें प्रवेश कर चुके थे और कुछेकों के पीछे निःसहाय स्त्री बच्चे हरिणियोंकी तरह अनुयायी हुए अपने करुणोद्बोधक क्रन्दनसे नाथजीके आसनको कम्पायमान कर रहे थे। अतएव निरञ्जननाथजीने उनमेंसे पांचोंको अङ्गीकारकर, जो सर्वथा अनुकूल थे, अवशिष्टोंको, जिससे उनके जीवनकी आवश्यकतायें अनुकूल रहें. कुछ ऐसी विधि प्रदान द्वारा सन्तोषितकर यह शिक्षा दे, कि अग्रिम जन्ममें अनुकूल अवसर प्रदान करनेके विषयमें ईश्वरसे प्रार्थना करते रहना, वापिस लौटा दिया। और इन पांच तथा दो राजकीय कर्मचारी जो जातिके क्षत्रिय तथा वैश्य थे और जिनका दुर्जन तथा तारक नामथा, इन सातभावी शिष्योंके सहित निरञ्जननाथजीने यहांसे गमन किया। जो शनैः २ देशाटन करते तथा अनेक वृत्तान्ताश्रित हो अपने शिष्योंके वैराग्य और विश्वासकी धाराओंको प्रवृद्ध बनाते हुए कुछ दिनके अनन्तर मध्यवाड (मेवाड) देशमें आये। इस देशके पार्वत्य भागमें मारवाड़ सीमान्तके लगभग परशुराम नामक तीर्थपर जो पर्वतोंसे घिरा हुआ है, अपना आसन स्थिर किया। क्योंकि यह अत्यन्त ऐकान्तिक और चित्त प्रसन्न करने वाला रमणीय स्थल था। अतएव इस स्थानको सर्वथा अनुकूल समझ कर निरञ्जननाथजीने अपने अनुयायियोंको यहीं दीक्षित करनेका निश्चय किया। और दो दिनके विश्रामानन्तर कार्य आरम्भ भी कर दिया। उनको प्रथम अपने वेषसे संस्कृत कर नाथपदान्त नाम रक्खा। जिनमें छहोंके नाम तादवस्थ्य रहनेपर भी दुर्जनका नाम परिवर्त्तित हुआ। अर्थात् निरञ्जननाथजीने उसके दुर्जन नामकी जगह दूरंगत नाम स्थापित किया। अतएव उसका दूरंगतनाथ (आधुनिक घोरङ्गनाथ) नाम प्रसिद्ध हुआ। यह महानुभाव पूरा सिद्ध एवं तैजस प्रकृतिका पुरुष था। जिसका वर्णन यथास्थानपर आगे आयेगा। निरञ्जननाथजीने स्वकीय सम्प्रदायमें प्रविष्ट कर शिष्योंको उनके गम्य स्थानका मार्ग दर्शाना आरम्भ किया। जो लगातार चौबीस २४ वर्षकी अस्खलित प्रयत्न धाराओंसे यह कार्य वशङ्कृत हुआ। अर्थात् उन्होंने बारह वर्ष तक अष्टाङ्गोंमें पूर्ण कुशलता दिखला कर निर्विकल्प योगमें प्रवेश किया। अतएव स्वकीय प्रयत्नकी सफलताका अवलोकन् कर निरञ्जननाथजी विशेष हर्षित हुए। और अभ्यर्थ प्रयोग प्रयोजनीय विद्याओंके निश्चित अधिकारी बनानेके लिये उनको बारह वर्षकी अवधि रखकर विशेष तप करनेमें प्रोत्साहित किया। इन धीर पुरुषोंने भी अस्खालित उत्साहके साथ अनेक कष्टोंको उल्लङ्घित बनाकर निर्विघ्नतासे यह अवधि समाप्त की। तथा इस चौबीस २४ वर्षीय

गुरुपरिश्रमको अमोघ बनाकर गुरुजीको यह दिखला दिया कि निःसन्देह हमलोग आपकी सम्पूर्ण विद्याओंके अधिकारित्वावच्छिन्न हैं । इसीलिये निरंजननाथजीने महा प्रसन्न हो उनको असकृत् बधाई प्रदानित की । और स्वाधीनस्थ समस्त विद्याओंसे परिचित बनाकर अपने विषयमें भी सूचित कर दिखलाया कि सच्चे गुरु शिष्योंको परिपक्व बनानेके लिये कोई भी वस्तु उठाई न रखकर किन २ रूपोंमे परिणत होते है । इस प्रकार अपने शिष्योंको मनुष्यतोपहित बनाकर आपने कहा कि अये मेरे शिष्य वर्ग! यद्यपि मैंने तुझको उस मार्गपर ला छोडा है जो नेत्र खोले हुए सीधा चलता रहेगा तो वे असंख्य सांसारिक दुःख जो मेरी शरणमें आनेके पहले तू अनुभवित करता था फिर कभी तेरी दिनचर्य्यामें उपस्थित न होंगे । तथापि मैं तुझे सचेत करता हूं यह सांसारिक वैमोहानिक जाल बडा ही दुर्गम्य एवं दुष्याज्य है जो अच्छोंको भी आकर्षित कर वेष्टित करता है । जिसका फल यह होता है कि फिर उनके नेत्र खुले नहीं रहते हैं । अतएव वे अपने मुख्यमार्गसे इधर उधर अपसरित हो रजकश्वान्की दशामें परिणत हो जाते हैं । इस वास्ते तुझे उचित है कि तू इतने हीसे अपने आपको कृतकृत्यतान्वित न समझकर सदा सचेत रहे । जिससे तेरे विषयमें मैंने जो स्वार्थिक सुख छोडकर प्रबल कष्ट उठाया है यह तुझे थोडे ही दिन सुख देनेवाला नहीं किन्तु सदाके लिये त्रिविध दुःखसे विमुक्त करने वाला हो । (धन्य गुरुजी आप इतने कष्टद्वारा शिष्योंको इस दर्जेपर पहुँचा कर भी उनके स्थानकी नीम कितनी मजबूत बना रहे हैं ।) अस्तु गुरुजीकी यह परम प्रीतिक वाणी सुनकर समस्त शिष्य आपके चरणोंमें गिरे । तथा आत्यन्तिक विनम्र भावसे बडे ही युक्ति युक्त प्रासङ्गिक कोमल शब्दोंद्वारा कृतज्ञता प्रकट कहते हुए कहने लगे कि स्वामिन् ? आप निश्चित हों कभी ऐसा न होगा कि आपका यह वचन हमारे स्मृतिपथसे विचलित हो । इस उत्तरसे प्रसन्न मुख होकर निरंजननाथजीने अपने निर्विघ्न कार्य समाप्तिके विषयमें आभ्यन्तरिक भावसे अलक्ष्य पुरुषका गुणानुबाद किया । और स्वकीय शिष्य मण्डलीके सहित देशाटनके लिये प्रस्थान कर वङ्ग देशको लक्ष्य बनाया ।

इति श्री निरंजननाथ भ्रमण वर्णन नामक ३४ अध्याय ।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय ३५ ॥
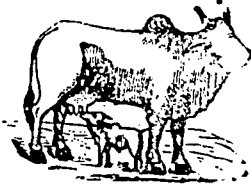
पाठक महोदय ! आपको विज्ञापित किया जा चुका है कि ज्वालेन्द्रनाथजी युधिष्टिर सम्वत् २११८ से लेकर २६३६ तक* की सामाधिक ब्रह्मरूपावस्थाका अनुभव कर स्वकीय उद्देशित कार्य भारको शिरपर आरोपित करनेके लिये लब्ध संज्ञा हो चुके हैं। जिन्होंने निरञ्जननाथ और करणारिनाथको प्रेषित कर हिंगलाज पर्वतसे प्रस्थान किया। और कुछ सामयिक अनवरत गमन करनेके अनन्तर कईसौ कोश पारिमाणिक मारुस्थलीय देशको पार कर आप श्रीकपिल (आधुनिक काल प्रसिद्ध कलात) तीर्थपर पहुँचे। यहां आगमिष्यमाण असंख्य जनसमुदायके औद्देशिक पर्वावसरमें कुछ ही कालका विलम्ब देख आपने अपना आसन स्थिर किया ; इधरसे आपके ही अभिप्रायाभिमुख हुए क्रमशः अन्य कई एक योगी भी वहांपर उपस्थित हो आपके मण्डलीश्वर शब्दसे वाच्य होनेमें विशेष उपयोगी बनने लगे। इस प्रकार कुछ ही दिनोंमें योगियोंकी एक खासी मण्डली तैयार हो गई। जिसका विविध प्राकरणिक वर्तालाप द्वारा सानन्द समय व्यतीत होने लगा। एक दिन एक योगीने हस्त सम्मिलित कर सुकोमलवाक् प्रार्थना पूर्वक श्री ज्वालेन्द्रनाथजीको विज्ञापित किया कि भगवन् ! मुझे प्रतीत होता है सम्भवतः इस अवसरपर अबके बहुत न्यून संख्यक मनुष्य एकत्रित होंगे।

---

* लगभग सवा पांसौ वर्ष तक समाधिस्थ दशामें शरीरका तादवस्थ्य रहना कुछ असंगत ज्ञान पड़ता है उन्होंने बीचमें जागरित हो इतने समय तक समाधिकार्य पूरा किया है यही बात श्रीनाथजी आदि के विषयमें समझना उचित है। और इस अवधितक प्रचार कार्य न करनेसे ही लेखकने इतना समय उनकी समाधिका लिख दिया जान पड़ता है।

कारण कि यह तो आप स्वयं ही अनुभव कर चुके हैं कि मारुस्थलीयस्थलका मार्ग तय करना मनुष्योंके लिये सुसाध्य नहीं है। इतना होनेपर भी अबके अनुकूल वर्षाके अभावसे जब प्रत्येक मार्गमें जलीय प्राप्ति दुष्कर है तब अपने प्राणोंको सन्देहमें डालकर कौन मनुष्य ऐसा है जो दूरदेशसे प्रस्थान कर स्नानके लिये यहां आयेगा। यह सुन ज्वालेन्द्र-नाथजीने अनुस्मरणकर अपने आभ्यन्तरिक विचारसे निश्चय किया कि अवश्य बात ऐसी ही होनेवाली है। परन्तु उसके अभिमतको स्फुट करनेके अभिप्रायसे पूछ उठे कि तो इस विषयमें किस उपायका अवलम्बन करना चाहिये। जिससे उक्त समस्या हल हो और हमारे आगमन के मस्तकपर व्यर्थत्वका तिलक न चढ सके। उसने कहा कि भगवन्! जलाभावकी समस्या जल ही से हल हो सकती है यह आपसे अविदित नहीं। अतएव आप कृपालुत्वको आश्रित कर उसी उपायको अवलम्बित करें जिससे कोटिसंख्यक प्राणियोंकी प्राण रक्षा हो। और आपके शुभागमनोद्देशकी सुसफलताका साम्राज्य उपस्थित हो। तदनु ठीक इसी महानुभावके कथनानुकूल दयालु श्री ज्वालेन्द्रनाथजीने स्वीय गुरुश्रीआदिनाथ-जीके महान्प्रसादद्वारा प्राप्त किये हुए अमोघ वार्षिक अस्त्रको प्रयोगित किया। जिसके प्रभावसे सर्वत्र अनुकूल वर्षाका साम्राज्य विराजित हुआ। फिर क्या था जो त्रुटिथी वह यही थी जिसका ज्वालेन्द्रनाथजीके द्वारा निस्सरण हुआ। इसीलिये मार्गागत अनेक स्थानोंमें पर्याप्त जलका सम्भव होनेसे अनल्प मनुष्य प्रोत्साहित हुए इधर दौड पडे। जिससे स्नानिक दिवसके आनेतक क्षेत्रपर बडे समारोहके साथ अमित जनसमुदाय संगठित हो गया। और उसमें कर्णपरम्परासे ज्वालेन्द्रनाथजीके द्वारा होनेवाले वर्षा विषयक वृत्तान्तका सञ्चार शीघ्र ही सञ्चरित हुआ। यही कारण था पारस्परिक प्रश्नसे आपके आसनस्थलका अवगत कर सहस्रों मनुष्य आपके दर्शन करने आते, और विविध उपायन समर्पण द्वारा अपनी श्रद्धा भक्तिकी पराकाष्ठा दिखलाते थे। और ज्वालेन्द्रनाथजीके अमोघ आशीर्वाद पूर्वक सान्तोषिक आश्वासनसे लब्धानन्द हुए अपूर्व अवसरको सूचित करते थे। क्योंकि ज्वालेन्द्रनाथजीके हिंगलाज पर्वतीय गुप्त स्थानमें चिरकाल तक स्थिति रखनेसे आधुनिक लोगोंने उनका नाम, और पूर्वकालमें होना, तो अवश्य सुनाथा परं दर्शन नहीं किये थे। अतः प्रथम तो लोगोंके लिये यही बडा कुतूहल था कि भूतपूर्व महात्मा ज्वालेन्द्रनाथजी अब प्रकटित हुए। द्वितीय वर्षा द्वारा अपने ऊपर उनकी परम हितैषिताका अनुमान कर जब लोग सम्मुख हो अपनी नम्रप्रणतिसे उन्हें सत्कृत करते थे तब उनके निर्मल जलस्थलीयविमलकमलोपम नेत्रोंके अवलोकनसे गार्हस्थ्यविविधदुःखदवासनाओंसे विरहित हुए लोगोंके हृदयहृदमें उस अलौकिक प्रसन्नताका स्रोत प्रवाहित होता था जिसमें विलीन हो लोगोंने हम इस समय कहा हैं, इत्यादि स्मरण तकको विस्मृतकर

दियाथा। और जब वे कुछ प्रबोधित होतेथे तब ईश्वरसे यही प्रार्थना करते थे कि भगवन् ! हमको इस अलब्धपूर्वावसरिक आनन्दात्मकनन्दन आरामसे वियोगित न कीजिये। (अस्तु) इधर जब द्रष्टा यात्री लोगोंका यह हाल था उधर तब ज्वालेन्द्रनाथजीने भी अपने औद्देशिक कार्योचित इसी अवसरको निश्चित किया, अतएव आपने स्फुट रीतिसे घोषित कर यह कहना आरम्भ किया कि सेवकवृन्द ! सम्भव है आपके अन्तर्गत कई एक ऐसे भी मनुष्य होंगे जो मेरे विषयमें सन्दिग्ध होंगे, एवं इस अनुमानसे अनुमित हुए होंगे कि श्रुत भूतपूर्व ज्वालेन्द्रनाथ नहीं किन्तु उसका नामराशी अन्य आधुनिक योगी है। अथवा अन्य आधुनिक योगीने अपने आपको ज्वालेन्द्रनाथ नामसे घोषित करदिया है। अन्यथा वास्तविक ज्वालेन्द्रनाथ अब कहांसे आता। स्मरण रक्खो ! मैने भी उनके हृदयकी इस हलचलको अच्छी तरह समझकर ही प्रथम अनुपयोगी यह प्रस्ताव उद्घोषित किया है। इस विषयमें यद्यपि मुझे इस बातकी तो कोई आवश्यकता नहीं कि तुम्हें विशेष प्रमाण दिखला कर, मै वही ज्वालेन्द्रनाथ हूं, ऐसा निश्चय उपस्थित करूं। परं इतना, जो कि यथार्थ है, अवश्य कहूंगा कि मै अद्यावधि तक सर्व साधारणके परोक्ष इस हेतुसे था कि आधुनिक समयतक मैंने अपने आपकी अनपेक्षा समझ कर सामाधिक अवस्थामें प्रवेश किया था। इसी अक्षरूपता उपस्थितकर्त्री अवस्थामें गोरक्षनाथजी और मेरा शिष्य कारिणपानाथ भी अभीतक स्थित है। जो कुछ वर्षमें दोनों जागरित होनेवाले हैं। परन्तु उनकी प्रकटताको देखकर मेरी उक्तिको सत्य समझनेके लिये तुमलोगोंमेंसे उस समयतक सायद ही कोई बञ्चित रहेगा। नहीं तो तुम सभी लोक इस सांसारिक चक्रमें, जो कि अनादि कालसे प्रवाहित हुआ चला आरहा है, विलीन हो द्वितीय जन्मस्थ चरित्रोंके नायक बन जाओगे। क्योंकि इस युगमें साधारण रीतिसे मनुष्य सौ वर्षीय आयु वाला समझा जाता है। परं सौ वर्ष सजीव रहना तो केवल आश्चर्योत्पादक है। मनुष्य इससे भी बहुत न्यून अवस्थामें जलोद्भूत बुद्बुदेकी सदृश कुछ ही काल प्रत्यक्ष स्थिति रख फिर जलकी तरह शीघ्र ही प्रकृतिमें विलीन होजाता है। इसी संगमन और उद्गमनात्मक दो प्रस्तरोंकी चक्कीमें प्राणियोंको दलित होते देखकर ही तो हमलोगोंने सांसारिक दुःखद व्यवहारको तिलाञ्जलि दे डाली है। और दीर्घ कालसे इस चक्कीके दलनानुकूल न होते हुए भी सदाके लिये इससे छुटकारा पानेका यत्न कररहे हैं। अतएव अपने भाग्यको परिवर्तित करनेकी इच्छावाला कोई महानुभाव ऐसा हो जो अपने आपको इस चिरप्रचलित चक्कीमें नहीं पीसना चाहता हो। और इसी बातको लक्ष्य बनाकर उसे असार प्रधान संसारसे घृणा प्राप्त होगई हो। वह सुवृत्त हमारे आश्रित हो उस उपदेशात्मक अमृतका पात्र बने जिसके ग्रहण करनेसे उस स्थानमें पहुचेगा जिसमें इस चक्कीकी कुछ भी दाल

नहीं गल सकती है। यह सुन इसी अवसरमें यात्रिवृन्दस्थ किसी सभ्य पुरुषने कहा कि भगवन्! आपके वचन निन्देह अमृतायमान हैं परं बलिहारी उस परमात्माकी जिसने पुत्र कलत्रादिका स्नेह इतना रसिक बनाया है जिसका आस्वादन लेते हुए हमलोगोंको अमृतप्राय भी आपके उपदेशमें कटुता प्रतीत होती है। यद्यपि यह बात भी हम अच्छीतरह समझते हैं कि ऐसा प्रतीत होना हमारे मन्दभाग्यत्वका सूचक है। और जिस किसी उपायसे इस स्नेहजालको भङ्गित कर आपकी शरणमें आ डटें तो फिर हमारा यह कटुपन न जाने कहां चलाजाय। तथापि जटिल रूपसे ग्रथित यह जाल खण्डशः करना ही तो दुष्कर है। अतः कोई ऐसा उपाय हो जिसके अभ्याससे जायमान वैराग्यकी उत्तरोत्तर प्रवृद्ध मात्राओंके द्वारा हम स्नेहात्मक पाशसे विमुक्त होनेका सुभीता प्राप्त कर सकें। इसके उत्तरमें ज्वालेन्द्र-नाथजीने कहा कि तुम्हारा ऐसे उपाय पूछनेमें प्रायास करना व्यर्थ है। क्योंकि संसारमें जितनी दृष्टवस्तु दुःखप्रदान करनेवाली हैं सभी वैराग्यकी उत्पादक हैं। इस पर भी यदि यह कहो कि सांसारिक दृष्टवस्तु कितनीक तो दुःख और कितनीक सुख देनेवाली हैं। अतः दुःखद वस्तुसे जिस समय वैराग्य होगा सुखद वस्तुसे उस समय उतना ही आनन्द उत्पन्न हो वैराग्यको तिरस्कृत कर डालेगा। फिर किस प्रकार हम वैराग्यवान् हों और स्नेह पाशसे विमुक्ति पावें। तो मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि प्रथम यह बतलाओ निवृत्ति साधक कृत्यके अतिरिक्त सांसारिक किस वस्तुको तुम सौख्यप्रद समझते हो। क्या जिसमें अपने प्राणोंकी तुल्य प्रेम करते हो और जिसके अभावमें सांसारिक भोग विलासको निष्फल मानते हो ऐसा पुत्र सुख देनेवाली वस्तु है। अथवा क्या जिन्होंने तुम्हारा लालन पालन किया, जो कि तुम्हारे जन्मदानमें निमित्त कारण हैं। ऐसे माता पिता सुखप्रद वस्तु हैं। अये सुसमाचार यात्रिवृन्द! कुछक्षण अन्तर्मुख होकर तू यह विचार कर कि जिस प्रकार तेरे पुत्र उत्पन्न हुए हैं। जिनके वक्त्र चुम्बनादि विविध क्रीडाओंसे जायमान आनन्दात्मक माहाह्रदमें निमग्न हुआ तू अपने आपको धन्य समझता है। इसी प्रकार तू भी कुछ दिन पहले अपने पिताके उत्पन्न हुआ था। उसने और माताने तेरे साथ भी ऐसा ही प्रेम कियाथा जैसा कि तू अब कर रहा है। परं कहिये तेरे वे माता पिता कहां हैं और कितनेक दिन तुझे सुख देनेवाले बने। किन्तु प्रकृति देवीके अविश्रामी परिणाममें परिणमित होते हुए ऐसे छिप गये जिनका तेरे लिये फिर तादृश दर्शन होना असम्भव है। ठीक यही दशा तेरी भी होगी। कुछ दिन जाने दीजिये अपने प्रिय पुत्रोंकी अपेक्षा तू भी स्वकीय माता पिताकी पद्धतिमें पदार्पण करेगा। बस यही और इतने ही समय तकका कल्पित आनन्द है जिसको तू वास्तविक और चिरस्थायी समझ रहा है। क्या कोई विवेकी पुरुष तेरा यह मन्तव्य वास्तविक है ऐसा समाधान करनेके लिये अग्रसर होगा। कभी नहीं।

वह तो प्रत्युत यही कहनेको उत्सुक होगा कि सांसारिक आनन्दको, जो कि परिणामी है, सदातन अथवा चिरन्तन मान बैठना अपनी महा मूर्खताका परिचय देना है। अतएव मुमुक्षु महानुभावोंको उचित है कि इन भौतिक पदार्थोंमें अनास्थाका निश्चय कर हमारे कथनमें श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करें। क्योंकि वे यह तो अच्छी तरह समझते ही होंगे कि हम लोग जो इस प्रकारके उपलक्ष्योंपर उपस्थित होते हैं। और जनसमूहके समक्ष अपना उपरोक्तादि विषयका कोई न कोई वक्तव्य उद्घोषित करते हैं वह किसी अपने प्रयोजन की सिद्धिके लिये नहीं बल्कि मुमुक्षुओंको अपनी ओर आकर्षित कर निष्कण्टक मार्गपर चलानेके लिये। अतः मोक्षकी इच्छा वालोंके वास्ते यह अवसर अनुकूल है। इस अवसरसे भ्रंशित हुओंको कुछ अग्रिम कालमें आशावद्ध नहीं होना चाहिये। कारण कि कोई भी वस्तु सदा एकरस नहीं रहती है। इसलिये मोक्षदायक योगोपदेशका प्रवाह न जाने किस दिन शान्त हो जाय। जिसके फिर आविष्कारक समयका शीघ्र आगमन हो वा नहीं। क्या योगिराज कृष्णजीकी उक्ति, जो कि उन्होंने अर्जुनके प्रति कही थी, तुम्हें याद नहीं कि यह योग प्रचार कितनी वार अन्तर्भूत और कितनीवार प्रादुर्भूत हो चुका है। ठीक आज वही समय है जिसमें देश २ और प्रान्त २ में योगोपदेशका साम्राज्य स्थित है इसी हेतुसे सांसारिक विविध विपदात्मक अनलसे सन्तप्तसर्वगात्रमहानुभावोंको उचित है वे शान्तिप्रद योगोपदेशात्मक शीतल जलसे सम्पूरित किसी योगीरूप सरोवरका आश्रय लें। और अपने दंदह्यमान शरीरकी प्रचण्ड ज्वालाका उपशमन कर वास्तविक सुखागारमें प्रविष्ट हो जायें। ज्वालेन्द्रनाथजीकी इस जनोपकारिणी चेतावनीने कतिपय लोगोंको उपरामी बनादिया। जो मेला समाप्त होनेतक आगे पीछे के क्रमानुसार उनकी कृपा छायामें आकर विश्रामित हुए। यह देख ज्वालेन्द्रनाथजीने उनको और उनके माता पिताको धन्यवाद दे उनका हर्ष बढाया। और उनमेंसे स्वानुकूल दश मनुष्योंको साथ लेकर वहांसे प्रस्थान किया ; जो देशाटन करते हुए आप कतिपय दिनके अनन्तर बदरिकाश्रममें पहुँचे। एवं मुमुक्षु महानुभावोंको अपने चिन्हसे चिन्हित बनाकर प्राथमिक क्रियाओंमें प्रोत्साहित किया ; इसी क्रमसे जबतक प्रिय शिष्य गम्यस्थानके तथामार्गपर पहुँचे तबतक वहां उपस्थित रहकर अन्तमें उनके सहित बदरिकाश्रमसे भी गमन किया। और अनेक वर्षोंतक भारतीय प्रत्येक प्रान्तोंमें भ्रमण कर मध्य देशस्थ अमरकण्टक पर्वतपर पदार्पण किया। ठीक इसी स्थानमें कुछ दिन निवसित हो आपने अपने शिष्योंकी सम्भवित क्रियात्रुटिकी गवेषणाकी। एवं उसको यदि सम्भवित हुई तो निस्सारित कर शिष्योंसे कहा कि अये ह्यो! तुम्हें मालूम है मैंने आज तुमको किस मार्गपर ला छोडा है। यह वही मार्ग है जो सीधा उसी स्थानमें पहुँचायेगा जिसमें चक्रीका अभाव बतलाते हुए मैंने

तीर्थंर उसकी प्रशंसा की थी। अतएव मैं तुमको सूचित करता हूं तुमलोग, अबतो वह स्थान समीप रहा है शनैः २ पहुँच ही जायेंगे ऐसी उपेक्षा प्रकटितकर शिथिल प्रयत्न नहीं हो जाना; प्रत्युत सदा सांसारिक विलक्षण भोग्य पदार्थोंकी ओरसे वैराग्यवान् हुए नैरन्तर्य सामाधिक अभ्याससे अपने आपको चिरंजीवी बना डालना। और अन्तिम परीक्षामें, जो कि मोक्ष स्थान तक पहुँचनेमें एकाकिनी प्रतिबन्धिका है, उत्तीर्ण होजाना। तभी मैं समझूंगा कि मेरे शिष्योंने मेरेद्वारा घोषित होनेवाली सूचनाका अनुक्षण स्मरण कर मेरे उपदेशको सार्थक किया है। यह सुन नम्र प्रणति पूर्वक आपके एक शिष्यने प्राश्निक बन कर प्रार्थना करी कि स्वामिन्! क्षमा कीजिये मैं अपने बुद्धि मन्दत्वके कारणसे आपके परीक्षात्मक कथनका भाव नहीं समझा हूं। अतः कृपया स्फुट कर बतलाइये जिसमें हमारी अब भी उत्तीर्ण होनेकी आवश्यकता है ऐसी कौनसी परीक्षा, और वह अन्तिम कैसे है। इसके उत्तरमें ज्वालेन्द्रनाथजीने कहा कि ध्यान रक्खो! तुमलोग अब उस पदपर पहुँचे हो जो इच्छा मात्रसे सांसारिक उत्तमसे उत्तम अर्थात् स्वर्गोपम वस्तुको प्राप्त कर सकते हो। यदि इन उपलब्ध दुष्प्राप्य वस्तुओंके आस्वादनसे तुमलोग वञ्चित रहे तो अपने विषयमें समझ लेना कि हम अन्तिम परीक्षामें पास हो गये। क्योंकि अप्राप्त वस्तुमें वैराग्य रखने वाले संसारमें बहुत मनुष्य देखे जाते हैं। परं वस्तूपस्थितिमें वैरागी हो उसके आस्वादनसे निसङ्ग रहनेवाला ही मनुष्य उत्तीर्ण और वीर कहलाता है। रही अन्तिमकी बात, यह परीक्षा अन्तिम इसलिये है कि प्रथम गृह त्यागनेके समय दृढ वैराग्य की परीक्षा होती है। उसके अनन्तर योग क्रिया काठिन्यमें सहिष्णुताकी परीक्षा होती है। तदनु उन क्रियाओंमें सम्यक् निपुणता प्राप्त करनेकी परीक्षा होती है; इन तीन परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेवाला योगेन्द्र उपाधिधारी महानुभाव जब सिद्धियोंका भण्डार होजाता है तब वह मोक्षका अधिकारी हुआ उस मार्गपर पदार्पण करता है जो कि उसको मोक्ष स्थानमें प्रविष्ट करता है यदि सिद्ध मनोरथ हेतुसे उपस्थित हुए नाना प्रकारके भोग्य पदार्थोंमें लम्पट न हो तो। अतएव मोक्षपथारोही सज्जनोंके लिये इन चित्ताकर्षक भोग्यपदार्थोंसे निसङ्ग रहनात्मक अन्तिम परीक्षा है; मैंने इसी परीक्षामें सफल होनेके लिये तुम्हें प्रबोधित किया है। परन्तु ध्यान रखना समस्या बहुत कठिन है। मोक्ष स्थानके समीप होनेपर भी जो मार्ग अवशिष्ट है वह अत्यन्त दुरुल्लङ्घनीय है। जिसको स्वर्ग शब्दसे व्यवहृत किया जाता है वह लोक ऐसे ही लोगोंका निवास स्थान है जो इस अन्तिम परीक्षामें फैल होते हैं। और अपनी सिद्धियोंके प्रभावसे स्वर्गीय विविध भोगोंको परिमित समय तक भोगकर फिर इसी लोकके यात्री बनते हैं। अतएव गम्यस्थानमें पहुँचने पर्यन्त उत्साह और वैराग्य दोनोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। बस हमारी, कर्तव्य पालन कर चुकने परभी, तुमसे अन्तिम यही

कहना था अब हम किसी अन्य प्रयोजनकी सिद्धिके लिये तुमसे वियोगी होते हैं, तुमलोग इसी अमरकण्टक पर्वतमें, जो कि नर्मदाका प्रभवस्थान होनेसे पवित्र माना गया है पारस्परिक शरीर रक्षा से रक्षित होकर सामयिक अवस्था में परिणत हुए अपने गम्यस्थानको समीप बनानेका परिश्रम करते रहना। भगवान् आदिनाथ तुम्हें उत्साह और वैराग्य दोनोंसे युक्त करे। जिससे तुम इस कार्य्यमें कृतार्थ होजाओ। परम हितैषी गुरुजीकी इस प्रैतिक आशीर्वादात्मक वार्त्ताको सुनकर शिष्यसमुदाय आपके चरणारविन्दमें पौनःपुनिक प्रणाम करता हुआ कृतज्ञता प्रकटकरने लगा। तथा कहने लगा कि स्वामिन्! आप धन्य हैं हमारे जैसे अनेक युगोंसे असंख्यदुःखमय कष्टोंद्वारा तिरस्कृत प्राणियोंका उद्धार करनेके लिये हीसंसारमें भ्रमण करते हैं। अतएव हमलोग आपके इस उपकारको और विशेष करके इस अन्तिम सूचनाको कभी अपने हृदयसे बहिर नहीं होनेदेंगे। इस कारणसे आपको चाहिये कि आप अपने कार्य में सन्निहित चित्त हुए कभी हमारी तरफका सन्देह न करें। ठीक इसी समय शिष्योंके योग्य कथनसे समाधानित चित्त हुए ज्वालेन्द्रनाथजीने अमरकण्टकसे प्रस्थान किया। और नर्मदासमीपवर्ती प्रदेशोंमें भ्रमण करते हुए आप कुछ समयमें राजधानी हेलापाटनमें पहुँचे। युधिष्ठिर सम्वत् २६५० में हिंगलाजसे गमन करनेके अनन्तर युधिष्ठिर सम्वत् २६१५ पर्यन्तके आपके इस दीर्घपर्यटनने आपको श्रमित करडालाथा। अतःआपने इस हेतुसे विशेष करके ऋमिलनारायणके प्रादुर्भवन समयकी प्रतीक्षात्मक हेतुसे कुछ कालतक यहां निवास करना निश्चितकर अपना आसन स्थिर किया। और कुछ वर्ष साधारण रीतिसे व्यतीत करने पर ज्योंही आपके कार्यसाधक समयका आगमन समीप आने लगा त्योंही आपने किसी विशेष घटनाका उद्गार करनेका विचार निश्चित किया। क्योंकि आप नागरिक भिक्षान्नसे उदर पूर्तिकर केवल काल यापनके लिये ही यहां नहीं बैठेथे। अतएव आपने एक अनूठी वृत्तिका आश्रय लिया। वह यहथी कि आपका आसन नगरसे एक कोशकी दूरीपर था। जब वहासे चलकर आप भिक्षाके लिये नगरमें आते तब एकभार, जो कि हरित तृणका होताथा और बाजारस्थ नागरिक गौ जिसे बडे चावसे खातीथी. अपने शिरपर आरोपित कर नगरमें लातेथे। तथा गौ और गवेन्द्रोंको खिलादेतेथे। प्रति दिनके इस नियमित कृत्यमें तत्पर हुए आपका सब नागरिक लोग दर्शन करते रहते हुए भी इस भेदको नहीं जान सकेथे कि यह महात्मा ज्वालेन्द्रनाथजी

१ कितनेक लोगोंका अभिमत है कि गोपीचन्दकी राजधानी धारानगरी है जोकि मध्यप्रदेशीय मालुवा प्रान्तस्थ मांडूगढके समीप आधुनिक समय भी उसी उपाधिसे सुशोभित है। और मैं भी अन्य रीतिसे तो नहीं किन्तु इस अनुमानसे इनके मतका अनुगामी हो सकता हूं कि लेखकके ज्वालेन्द्रनाथजी नर्मदाके समीपस्थ प्रदेशोंमें भ्रमणा करते हुए राजधानीमें पहुँचे, इस लेखसे ज्वालेन्द्र-नाथजीका आगमन इसीमें सम्भव है न कि बङ्गदेशस्थ हेलापाटनमें।

ही हैं। किन्तु आपकी वृत्तिका निरीक्षण करते हुए यह कहकर, कि कोई गोप्रेमी मस्त योगी है अपने सन्देहका समाधान आपही करलेतेथे। परन्तु उन लोगोंका यह साधारण मन्तव्य बहुत दिन नहीं रहा। कुछ ही दिनके अनन्तर वह मस्त योगी उनके विस्मयका उत्पादक हुआ। कारण कि जब तृणभार लेकर आप नगरमें प्रवेश करतेथे तब वह भार आपके शिरसे कितनाही ऊंचे दिखलाई देताथा। यह देख प्रत्येक द्रष्टा नागरिक लोगोंका हृदयात्मक सरोवर महान् कुतूहल और आश्चार्यात्मक जल तरङ्गोंसे तरङ्गित हुआ। इसी कारणसे कर्ण प्रणालिका द्वारा परिणत हुआ यह वृत्त नगरमें ही नहीं प्रत्युत नगरासन्न वर्ती ग्रामों में भी प्रसृत हो गया। यही कारण था जब कि आपका भिक्षार्थ नगरमें आगमन अवसर उपस्थित होता था तब उक्त कौतुक दर्शनार्थ सहस्रों नरनारी मार्गिक स्थानमें संघित हो आपकी प्रतीक्षा करते थे। और जब आप नगरमें आगमन कर गौओंको घास खिलानेसे निवृत्त होजाते थे तब आपमें अपनी श्रद्धा भक्तिकी पराकाष्ठा दिखलाते हुए नागरिक लोग दैनिक क्रमानुसार आपको समारोहके साथ अपने स्थानपर ले जाकर स्वकीय सामर्थ्यानुकूल भोजनसे सत्कृत करते थे। ठीक इसी प्रकारसे कुछ दिनोंका अतिक्रमण होनेपर आपके जन विस्मापक वृत्तान्तने नगर नृपतिके हृदयागारमें भी संक्रमण कियां। जिसकी प्रबल प्रेरणासे प्रेर्य हुए राजाको भी आपके दर्शनार्थ अग्रगर होनापडा। राजाने प्रस्थान किया। उधर राजकीय कर्मचारियोंने अनुकूल स्थानपर उसके तद्दृश्य दर्शनार्थ बैठनेका प्रबन्ध किया। राजासाहिब बैठ गये। इधर कुछ क्षण बीतनेपर नियत समयपर पूज्यपादजीका भी अभ्यागमन हुआ परन्तु आपने इतने ही चमत्कारसे अभी अपने खेलकी समाप्ति नहीं की थी। किन्तु और भी विचित्र चरित्र दिखलाकर अभी लोगोंके विस्मयी हृदयको प्रविस्मयी बनानेका विचार निश्चित कर रक्खा था। अतएव आपने आज प्रत्याहिक घटना उपस्थित नहीं की। यह देख जो लोग आजतक उक्त कुतूहलको स्वयं न देखकर प्रतिवेशियोंके वाक्प्रपञ्चद्वारा श्रवण करते थे उन लोगोंके नेत्र निराश हो ईर्षाके सहित श्रावकोंकी ओर इस प्रकार निहारने लगे मानों उनको असत्य भाषी प्रमाणित कर धिक्कार दे रहे हैं। यही नहीं नेत्रोंने व्यर्थ परिश्रम हो यहांतक क्रोध किया कि स्व प्रयोगित अशाद्विक धिक्कारको शद्व रूपमें परिणत करनेकी अभिलाषासे अधस्तात् मुखके ऊपर दबाव डाला। जिससे विवश हो मुख उस शद्वके उद्घोषित करनेको बाध्य हुआ। यह सुन कुतूहल द्रष्टा प्रवादक लोगोंने भी अपने कथनका समाधान करना आरम्भ किया। और उसकी पुष्टीके लिये अनेक शद्वोंका पयोग करनेके अनन्तर अन्य सम्भवित प्रमाण उपस्थित किये। इतना होनेपर भी वे उनके हृदयमें इस बातकी सत्यताका बीज वपन नहीं करसके। और इसी विषयका खण्डनमण्डन करते हुए सबलोग अपने २ स्थानमें गये। ठीक यही

समाचार राजाका भी था। वह केवल ज्वालेन्द्रनाथजीके दर्शन करनेके अनन्तर जब अपने प्रासादमें गया तब प्रसङ्गवशसे उन पार्श्ववर्ती राजकर्मचारियोंकी, जो स्वयं देखकर ही उस घटना विषयमें ज्वालेद्रनाथजीकी राजाके सम्मुख प्रशंसा किया करतेथे, हंसी उडाने लगा। इतना ही नहीं यहां तक कि उस कुतूहलके सदृश उसने यही कुतूहल बनाडाला कि जब कोई प्रसङ्ग उपस्थित होताथा तब वह कहताथा कि अमुक कार्य इनके अधिकार में छोड दियाजाय, क्योंकि ये कभी झूठ नहीं बोलते हैं बडी कुशलता के साथ उसे निर्वाहित करेंगे। यह सुन अन्य कर्मचारी खूब ताडी बजाकर हास्य करतेथे। जिससे उन महानुभावोंको कुछ लज्जितसे होकर नीचे ग्रीवा करनी पडतीथी अन्ततःजब इस हास्यात्मक तिरस्कारने अन्तिम दशा में प्रवेश किया जिससे कि उनका नासिकामें दम आ गया तब उन्होंने किसी गुप्तस्थानमें एकत्रित होकर इस तिरस्कारसे मुक्त होनेका परामर्श किया। और स्थिर किया कि किसी प्रकार एकवार योगीको प्रसन्न कर फिर वैसा करनेके लिये उनसे प्रार्थनाकी जाय। जिससे राजाको निश्चय हो और हमलोग इस प्रतिदिनकी तिरस्कृतिसे विमुक्त होजायें। सम्भव है ऐसा करनेसे हम अवश्य कृतकार्य हो जायेंगे। क्योंकि योगी लोगोंका हृदयस्थान दयासे सम्पूरित होता है इसीलिये वे थोडी ही अभ्यर्थनासे प्रसन्न हो प्रार्थकका मनोरथ सफल कर डालते हैं। इत्यादि मनोविनोदके अनन्तर उनमेंसे एक मनुष्य, जो कि ज्वालेन्द्रनाथजीके शरणागत हो निर्णीत विषयकी प्रार्थना करे, निश्चित किया गया। तदनु सूर्य अस्त हुआ। रात्री आई, अन्धकारका साम्राज्य उपस्थित हुआ। जिसके प्रबल प्रतापसे तिरस्कृत हो दूरगामिनी दृष्टिको सङ्कुचित होना पडा। ठीक इसी अनुकूलताको प्राप्त हो प्रार्थक महानुभाव भी ज्वालेन्द्रनाथजीके चरणारविन्दमें दत्तश्रुति हुआ उधर चला। जो कुछ देरमें अभ्यागत हो आपके पादयुगलकी सेवामें तत्पर हुआ। यह देख ज्वालेन्द्रनाथजीने उसका परिचय और उसके आगमनका कारण पूछा। उसने अपने समस्त वृत्तान्तसे आपको परिचित करते हुए कारण बतलाया। जो कि चमत्कारकी असत्यताका अधिकार ले राजाके द्वारा अपने ऊपर होनेवाले हास्य विषयका था। साथ ही ,यह भी कह सुनाया कि मैं आपके चरणयुगलको आश्रित कर अपना प्राण विसर्जित करदूंगा परं जब तक इस विषयमें आप मुझे कुछ सहायता न देंगे तबतक वापिस लौटकर मैं उस तिरस्कारका भाजन नहीं बनूंगा। उसकी इस प्रतिज्ञासे प्रसन्न हुए ज्वालेन्द्रनाथजीने मन्दहास्य कर कहा कि नहीं नहीं इतना अधीर होनेकी तुझे कोई आवश्यकता नहीं। राजा जो हंसी उडाता है वह मेरी है न कि तुम्हारी, कारण कि तुमने

जो उसके सामने कहा है वह तो निःसन्देह यथार्थ ही है। जिसके लिये तुम वास्तविकतासे कुछ भी दोषके भागी नहीं हो सकते हो। परन्तु राजाके हृदयमें जो वात स्थिर हुई है वह यह है। उसने सोचा है कि यह योगी ऐसे चरित्रोंका भण्डार नहीं है अतः उसके इस मन्तव्यसे मेरी ही अप्रतिष्ठा सूचित होती है। कहिये इसमें तुम्हारी लज्जित होनेकी क्या संगति है। प्रार्थकने चतुरताके साथ आपका महत्त्व सूचित करनेवाले सुकोमल शद्बोंको प्रयोगित करते हुए कहा कि भगवन्! मैं जो कुछ समाचार आपको समझाना चाहता हूं वह मेरी अज्ञानता एवं छिद्रावृत्ति समझना चाहिये। क्योंकि जो कुछ हास्य हुआ वा न हुआ। अथवा हमारा हुआ वा आपका हुआ वह ऐसा नहीं जो आपसे छिपा हो। कारण कि आप योगिराज हैं यह तो क्या आप संसार मात्रके वृत्तान्तको एक जगह बैठे जान सकते हैं। यह सुन ज्वालेन्द्रनाथजी अधिकतर प्रसन्न हुए। तथा कहने लगे कि कहिये फिर तेरी क्या सम्मति है। राजाको पूर्व प्रकारसे विश्वासी किया जाय अथवा अन्य रीतिसे, यह तो हम भी समझते हैं कि ये राजा लोग प्राय ऐसे ही हुआ करते हैं जो स्वयं दर्शी हुए विना किसी भी वातमें विश्वास नहीं किया करते हैं। इसपर प्रार्थकने उत्तर दिया कि भगवन्! मेरा अभिप्राय तो यही है जो राजाके हृदयमें असत्यताने अपना अड्डा जमा लिया है किसी प्रकार उसका वहांसे निस्सरण होजाय। परं यह आपकी ही इच्छापर निर्भर है चाहें जिस रीतिसे करें। ज्वालेन्द्रनाथजीने आज्ञा प्रदान करी कि अच्छा यदि यही वात है तो तुम जाओ और राजासे कहो कि कल एक सभा करे। जिसमें नगरके सब प्रतिष्ठित मनुष्य उपस्थित हों। और सभागन्तुक सबके एकत्रित होनेपर हमारे समीप सूचना प्रेषित की जाय। अपनी वातकी सत्यता विषयक साक्षी देनेके लिये हम स्वयं सभामें आयेंगे। परन्तु एक वात तुम ध्यानमें रखना उस समय हमारे वास्ते कोई सवारी न भेजना। यदि राजा इस वातके लिये आग्रह करे तो तुम कहदेना कि उन्होंने मेरेसे सुनादिया है यदि सवारी भेजोगे तो हम नहीं आयेंगे। आपकी यह आज्ञा श्रवण कर अत्यन्त प्रसादित हुआ प्रार्थक आपके चरणोंमें गिरा। और आशीर्वाद उपब्धिके अनन्तर आपके द्वारा विज्ञापित कृत्यका अनुष्ठान करनेके लिये वहांसे प्रस्थानित हुआ। जो कुछ देरमें नगर प्रवेशी हुआ उन सहमतोंके स्थानपर, जिन्होंने वह प्रेषित कियाथा, पहुंचा। अब वह अवसर था जिसमें रात्रिका अर्धगमन हो चुकाथा। और अधिक देरतक इसके परावर्त्तनकी प्रतीक्षा कर वे निद्रादेवीकी गोदमें रमण करते हुए अपने आपकी स्मृति विस्मृत करचुके थे। अतएव इसने परिश्रमसे उनको प्रबोधित किया। तदनु सब एक स्थानमें संघीभूत हुए। एवं प्राश्निक हो उन्होंने इसको सूचित किया

महानुभाव शुभ समाचार देना जिससे प्रफुल्लित होकर हम अपक निद्राकी व्यथाको अपसारित कर सकें। उनके इस कथनानुकूल उत्तर देते हुए प्रार्थकने प्रकटित किया कि समाचार वैसा ही है जैसा कि हमने योगिराजकी शीघ्र प्रसन्नतामें विश्वास कर सम्भवित होना निश्चित कियाथा ; ठीक हमारे उसी मन्तव्यके अनुकूल वे प्रसन्न होगये। प्रसन्न ही नहीं यहांतक कि हमारे विषयकी पुष्टि करनेको कल स्वयं आयेंगे। प्रार्थकके इस कथनके साथ २ ही उनकी निद्राकारणिकव्यथा न जानें कहां चली गई। इसीलिये वे आनन्दाधिक्य प्रफुल्लित मुख पङ्कजसे बोल उठे कि धन्य हो २ परं यह तो बतलाइये कल योगिराजके आनेका समय प्रतिदिन वाला ही निश्चित है वा अन्य है। अथवा वे आये भी तो राजासाहिबको उनका साक्षात् कैसे निश्चित होगा। क्या वे राजकीय भवनमें आनेकी कृपा करेंगे वा राजासाहिबको ही योगेन्द्रजीके आगमन मार्गिक उस दिन वाले स्थानमें उपस्थित होनेके लिये अनुरोधित किया जायगा। प्रार्थकने ज्वालेन्द्रनाथजीकी आज्ञासे उनको विज्ञापित कर उनके सन्देहका अपहरण किया। तथा साथ ही प्रातःकालसे ही राजाकी आज्ञा ले सभा करनेके उद्योगमें दत्तचित्त होजानेका परामर्श दिया। जो सर्व सम्मतिके अनुसार अङ्गीकृत हो उसपर महानन्द प्रकट किया गया। अनन्तर सब अपने २ निवासभवनको गये। और फिर महानन्दप्रदात्री निद्राका आह्वान करने लगे। परं निद्रा आती कैसे, जब २ वह उत्सुक हुई उनकी ओर अग्रसर होतीथी तब उनका दैनिक कुतूहलका स्मारणिक आह्लाद उसे अपसारित करडालता था। खैर उनके निद्रा और आह्लादका युद्ध होते हुआ ते किसी प्रकार प्रातःकाल आ उपस्थित हुआ। और वे लोग राजासाहिबकी सेवामें पहुँचे। राजासाहिबने भी उनके अनुकूल सम्मति प्रदान की। जिससे वे सभाके उद्योगमें संलग्न हुए। कुछ ही देरमें सब सामग्री सज्जित होगई। प्रातःकालिक नित्यकृत्यसे लब्धावकाश हो सब गण्यमान्य सभ्य लोग सभास्थलमें आ संघीभूत होने लगे। कुछ समय व्यतीत हुआ। निमन्त्रित महानुभाव जो आनेवाले थे सब आ चुके। और यथायोग्य निर्दिष्ट आसनोंको अधिष्ठित करचुके। इसी अवसरमें राजासाहिबको आहूत किया गया। वह आया और सभ्योंके अभ्युत्थानादि स्वागातिक सत्कारसे सत्कृत हो उस सिंहासनपर, जो कि ज्वालेन्द्रनाथजीके सिंहासनसे द्वितीय दर्जेमें सज्जीकृत किया हुआथा, बैठ गया। और उक्त महानुभावोंसे प्रश्न कर कहने लगा कि महात्माजीको बुलानेका क्या प्रबन्ध कियागया है। उन्होंने उत्तर दिया कि प्रबन्ध कुछ नहीं केवल सूचना मात्र ही भेजदेते हैं। यह सुन नासिका सङ्कुचित करता हुआ राजा बोल उठा वाह २ यह क्या किया कोई योग्य प्रबन्ध करना उचित था। उन्होंने ज्वालेन्द्रनाथजीकी आज्ञासे राजाको विज्ञापित किया।

जिससे वह शान्त हुआ । और योगेन्द्रजीकी सेवामें सन्देश भेजा गया । कुछ ही क्षणमें एक अश्वारोहीने ज्वालेन्द्रनाथजीके चरणारविन्दमें उपस्थित हो सादरप्रणाम करनेके अनन्तर आपके आव्हान विषयक मन्त्र उद्घोषित किया । तत्काल ही आशीर्वाद प्रयुक्त कर आपने उसको विदा किया । और स्वयं उदान वायुका जयन कर आकाश गतिके द्वारा सभास्थलस्थ स्वोद्देश निमित्त निर्मितकाञ्चनिक सिंहासनपर पहुँचकर सभ्योंको अपने आगमनसे सूचित किया । इससे कुछ क्षण पहले समस्त सभ्यलोग अपने २ मनमें यह अनुमान लगा रहेथे कि योगेन्द्रजी अब वहां आलिये होंगे २ परं आपका आकस्मिक आकाशिक अवतरण देखकर स्वागतके लिये बद्धाञ्जलि हो उसे व्यर्थ समझने लगे । और आपके सिंहासनारूढ होनेपर क्रमशः सब लोगोंने आपके चरणस्पर्शसे अपने आपको पवित्र बनाकर आपकी उचित अभ्यर्थना की । तदनु राजासाहिबकी ओर निर्देश कर ज्वालेन्द्रनाथजीने कहा कि राजन्! मैं उन महानुभावोंके कथनको सत्य करनेके लिये आया हूं जिन्होंको आप मिथ्याभाषी प्रमाणित कर उनका हास्य किया करते हो । राजाजीने पहले ही लज्जितकी तरह सङ्कुचित शरीरसे आपकी पूजा की थी अब वह विचारा क्या कहता । खैर उसने सुकोमल श्रद्धान्वित अनेक विध प्रार्थना द्वारा क्षमाकी याचना की । और आपका राजनीतिकी ओर ध्यान आकर्षित किया । प्रसन्न मुखसे मन्दहास्य पूर्वक ज्वालेन्द्रनाथजीने कहा कि हां यह अवश्य है किसी भी विषयमें दृढ प्रमाण निश्चित किये विना शीघ्र विश्वासी नहीं बनजाना चाहिये इसीलिये हम तुम्हारे इस व्यवहारसे असन्तुष्ट नहीं हैं । परन्तु यह बात ध्यानमें रखनी चाहिय कोई भी योगी हो उसके विषय में यह सोचना, कि यह कुछ नहीं साधारण ही है, सर्वथा अनुचित और निस्सन्देह भूलकी बात है । क्योंकि संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं जो योगी के लिये असाध्य हो । अतएव वे क्षणभरमें चाहसो कर दिखला सकते है । रही तुम्हारी दृढ प्रमाण मिलेनेपर ही किसी बातमें विश्वास करनात्मक राजनीति की वार्ता, इसका प्रयोग करनेकी संसारमें अन्य जगह बहुत हैं । योगीके विषय इसका प्रयोग करना शोभा नहीं देता है । साथही इसमें अनिष्ट उत्पन्त होनेकी भी सम्भावना है । क्यों कि तुमतो अपनी राजनीतिके भरोसेपर वैठ रहोगे. उधर कोई योगी तुम्हें कट्टर अनुमानित कर कोई ऐसा अनुष्ठान करवैठेगा जिससे तुम्हें विपद् ग्रस्त होना पडेगा । यह सुन राजा साहिब फिर आपके चरणोंमें गिरे । और अपनी प्रमत्तापर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए कहने लगे भगवन् ! क्षमा कीजिये भविष्यमें ऐसा न होगा । इस प्रतिज्ञात्मक वचनसे प्रसन्न होकर आशीर्वाद देनेपर आपने प्रस्थान करनेके लिये अभ्युत्थान किया ।

यह देख राजा समन्त्री फिर आपके पादयुगलमें प्रसृत हुआ। और राजकीय बगीचेमें ही निवास करनेके लिये आपसे अनुरोध करने लगा। अधिक क्या उसने यहांतक आग्रह किया जिसके विवश हो ज्वालेन्द्रनाथजीको अपने भावी कार्यकी सिद्धि पर्यन्त अवधिको उद्देशितकर राजकीय आराममें निवसित होनापडा।

इति श्री ज्वालेन्द्रनाथ भ्रमण वर्णन नामक ३५ अध्याय

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय ३६ ॥

श्रीमद्योगेन्द्र गोरक्षनाथजीने इतने दीर्घ समयके अनन्तर आज युधिष्टिर सम्वत् २६५० के प्रारम्भमें गृहीत परमानन्दप्रद सामाधिक स्थिर अवस्थाका परित्याग कर अपने आपको चेष्टित दशामें परिणत किया ; और कुछ दैनिक निवासके वाद जब आपको सम्यक्तया शारीरिक स्वास्थ्योपलब्धि होगई तब आपने ज्वालेन्द्रनाथजीकी तरह अपने सन्निहित शरीर रक्षक शिष्यको, तू अभिलषित समय पर्यन्त असम्प्रज्ञाताख्य समाधिके द्वारा अपने मोक्षमार्गका स्वच्छ बनाने के उद्योगमें दत्तचित्त हो, यह आज्ञा प्रदान कर स्वकीय उद्देश प्रसार निरीक्षणार्थ देशपर्यटनके लिये हरद्वारसे प्रस्थान किया ; और गंगा यमुना नदियोंके मध्यवर्ती प्रदेशोंमें भ्रमण करनेके अनन्तर आप कुछ मासमें चित्रकूटपर पहुंचे . यह स्थान श्रीरामचन्द्रजीके धूलिधूसर चरणारविन्दकी रजसे पवित्र होनेके कारण प्रजाकी ओरसे जितना ही श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता था उतना ही रमणीय एवं चित्तको स्वास्थ्य देनेवाला भी था । यही कारण था इसकी मनोरञ्जकतासे विवश हो अनेक उपरामी महानुभाव इसमें निवास करने को बाध्य होते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र चरित्रोंका अनुसन्धान किया करते थे , इसी पर्वतकी उपत्यकामें विश्रामित निरञ्जननाथादि योगियोंके विशेष आग्रहानुरोधसे आपने यहां स्थगितहो एक मास पर्यन्त निवास कर उनकी प्रार्थना पूर्णकी । अन्तिमदिन आनुक्रमिक क्रियाओंमें प्रेरित उनके शिष्योंको अपने औत्साहिक वाक्योंद्वारा प्रोत्साहित कर चुकनेपर यहांसे भी गमन किया . और फिर हिमालयके प्रत्यभिमुख हो आप पाटलीपुत्र (पटना) होते हुए पर्वतीय प्रदेश नवपाल (नैपाल) में पहुँचे । इस प्रदेश के मनुष्योंने अभक्ष्य पदार्थोंक ग्रहणार्थ जितना ही हस्त प्रसृत कर रक्खा था वे उतनेही निर्दयी एवं कट्टर हृदय भी थे ; यद्यपि इस देशमें गोरक्षनाथजीके बहुत दिन निवास करनेसे उनके उपदेशात्मक अमृतकी बून्द बहुत लोगोंके हृदय स्थानपर पड़चुकी थी ; जिसके प्रभावसे वे योगके सिद्धान्तपर पूरा विश्वास और श्रद्धा

रखतेथे। यही नहीं यहां तक कि श्रीनाथजीकी विशेष कृपाके भाजनहो अपने शारीरिक वाचिक प्रयत्नद्वारा स्वयं योगोपदेश करने लगे थे। तथापि जो अधिक लोग ऐसेथे कि इस सौभाग्यकी उपलब्धि न कर चुकेथे वे योगियोंका, जो उन्हें अभक्ष्यास्वादनसे निरोधित करतेथे और कुछ न कर सकनेसे उनको घृणा की दृष्टिसे अवश्य देखते थे। ठीक यही दशा तात्कालिक राजकीय पुरुषोंकी भीथी. अतएव उन लोगोंको प्रबोधित करनेके लिये गोरक्षनाथजीने यहां अपना आसन स्थिर [1]किया। और कितनेही आरण्यक हरिणोंको, जो अहिंसात्मक व्रतरूप जलसे प्लावित हृदय अनुमानित कर प्रतिदिन विगत शङ्का हुए सन्निहित ही क्रीडा रत रहतेथे, पाला। गोरक्षनाथजीकी अतिशय प्रैतिक चेष्टाओंको अवलोकित कर वे मृग थोडे ही दिनों में इस दशा में परिणत हुए कि अपने शृङ्गों द्वारा आपके दयार्द्र शरीरको खर्जित करते हुए मानों आपका बदला चुका रहे हैं। इसी प्रकारकी पारस्परिक प्रेममयी प्रदर्शनीके देखते दिखाते कुछ समय सानन्द व्यतीत हुआ। पर आपने भ्रमण-स्थगित कर यहां इसीलिये आसन स्थापित नहीं किया था कि कुछ काल सुखके साथ ही यापित होता रहे। और हमारे निमित्तसे लोगोंकी अनुचितबुद्धिका परिवर्त्तन हो या न हो। प्रत्युत आपने तो किसी न किसी ढंगसे विचित्र चेतावनी दे लोगोंको वास्तविक मार्गपर ला छोडनेका सङ्कल्प कियाथा। अतएव आपकी इच्छानुसार अवश्यम्भावीका चक्र भ्रमित हो विकट रूप धारण करने लगा। जिसके प्रवल वेगसे आकृष्ट हृदय किसी प्रधान राजकर्मचारीकी बुद्धिने कर्तव्याकर्तव्यविमूढताका आश्रय लिया। ठीक इसी हेतुसे उचितानुचितकृत्य विचारशून्य वह राजकीय पुरुष अपने सहचारियोंके सहित गोरक्षनाथजीके आश्रमस्थ पालित मृगोंका आखेट करनेके लिये वहां आया। और यह अनुमान कर, कि इस समय गोरक्षनाथजी अपने नित्य कृत्यमें प्रणाहित चित होंगे, इधर उधर निशङ्कभावसे तृणका अभ्यवहरण करते हुए मृगोंको निवृति भावद्वारा व्यथित करने लगा। यह देख उसके त्राससे त्रस्त हृदय बिचारे मृग शीघ्र गतिसे प्रधावित हुए अपनी स्थलीमें आये। इधर श्रीनाथजी उसके प्रामत्तिक मन्तव्यके अनुकूल किसी ऐसे कृत्यमें संलग्न नहीं थे कि मृगोंका वैग्रगतिक श्वास प्रश्वास प्रचलन पूर्वक सहसागमन देख उसके कारणकी गवेषणामें उपेक्षा कर बैठते। प्रत्युत वे तो प्रथमतः ही इस अवसरकी प्रतीक्षा कर रहेथे। अतएव आपने मृगागमन पद्धतिसे कुछ अग्रसर हो ज्यों ही इधर उधर दृष्टि प्रक्षिप्त की त्यों ही आपकी दृष्टि सहकारियोंके सहित एक शाखा प्रशाखाओंसे

---

१ हरिण तथा कईएक जन्तु ऐसे थे जिनको गोरक्षनाथजी अपने अङ्कके तुल्य प्रिय समझते थे। इसी कारणसे उनका गोरखाङ्क–वा गोरखाण्ड नाम प्रसिद्ध हुआ। जो नैपालमें आजतक विद्यमान है।

पृथिवी प्रसूत वृक्षमें छिपे हुए उस राज पुरुषपर पडी। जिसको देख उचित दण्डसे दाण्डित करना आपने अपना कर्तव्य समझा। और मन्त्रोच्चारण पूर्वक कुछ भस्मी उसकी ओर प्रक्षिप्तकी। तत्काल ही मान्त्रिक भस्म प्रभावसे उसके एवं उसके सहचारियोंके नेत्रोंकी पदार्थ प्रदर्शिका समस्त ज्योतिःप्रस्थानित हो गई। ज्योतिः के अपसरणसे अब वे इस योग्य नहीं रह गये थे कि अपने आगतिक स्थानमें चले जाते। अतः उनके अब आन्तरिक चक्षु खुले। और अपने अपराधपर पश्चात्ताप प्रकट कर अपनी प्रमत्ताका उन्होंको स्मरण हो आया। अतएव क्षमाप्रार्थी हो उच्च घोषणाद्वारा गोरक्षनाथजीकी स्तुति सूचित करनेवाले वाक्योंका प्रयोगकर उन्होंने अपने प्रायश्चित्तको उद्घोषित किया। परन्तु अपने मन्त्रात्मक शस्त्रका प्रयोग करनेके अनन्तर श्रीनाथजी तो तत्काल ही आसनपर आ विराजे थे। फिर और कौन वहां बैठाथा जो उनकी प्रार्थनानुकूल उन्हें फल प्रदान करता। इसी हेतुसे कुछ देरतक प्रलाप करते रहनेपर जब उनकी वाणीका प्रत्युत्तर उन्हें सुनाई न पडा तब तो उन्होंने अनुमान कर लिया कि नाथजी हमको दण्डित कर आसनपर अथवा देशान्तरमें पर्यटनके लिये चले गये। अन्य था हमारी प्रार्थनापर अवश्य कुछ न कुछ ध्यान देते। खैर इत्यादि कल्पनाके उत्तर स्वकीय प्रार्थना की असफलतापर खेद प्रकट कर वे अब किसी रीतिसे प्रस्थान करनेके उद्योगमें प्रवृत्त हुए। परं इसमें भी वे व्यर्थ परिश्रम ही हुए। क्योंकि उन्होंने यद्यपि आनुमानिक ढंगसे स्वकीय स्थानाभिमुख दिशाके उद्देशसे कुछ पादक्रम पर्यन्त अग्रसरण किया। तथापि सहसान्धकारावृतनेत्र दशामें गामनिक अभ्यासा भावसे वे अपने उद्योगमें कृत कृत्य न हुए। और आखिर दुःखा कुल हो उन्हें एक जगह पर बैठजाना पडा। सायंकाल हो आया। इन लोगोंके अबतक वापिस न लौटनेसे उधर स्थानीय लोगोंको इनके विषयकी कुछ शङ्का उत्पन्न हुई। और जब प्रतीक्ष्य समय तक भी ये घरपर न पहुँचे तब तो अत्यन्त सशङ्क हो उन्होंने इनकी अन्वेषणा करनेका विचार स्थिर किया। तथा कुछ क्षणके अनन्तर प्रस्थान भी कर दिया। जो इधर उधर गवेषणा करते हुए वे इनके अधिष्ठित स्थलमें पहुँचे। और उनका विस्मापक समाचार देखकर आत्यन्तिक शोकात्मक समुद्रमें निमग्न हो हस्तोंसे हस्त विमर्दित करते हुए अश्रुपात पर्यन्त के कृत्यमें अवतरित हुए। यह देख इनका भी आभ्यन्तरिक हृदयात्मक सरोवर अपनी अवधिमें स्थिति रखनेके लिये असमर्थ हुआ। और अपनी अश्रुरूप तरङ्गोंको बहिर प्रेषितकर अन्वेषकोंके कृत्यका अनुकरण किये विना न रहा। खैर इनके विषयमें विनाशकाले विपरीत बुद्धि, आदि किं वदन्ति प्रवाद वाक्योंका प्रयोग करते हुए वे गृही लोग किसी प्रकार इन्हें घर ले गये। और अग्रिम दिन बडे समारोहके साथ विविध पूजा सामग्री ले अनेक राजकीय और प्रजाके लोग गोरक्षनाथजीकी चरणसेवामें उपस्थित हो विनम्री भावसे.

अभ्यर्थना करने लगे। श्रीनाथजीने उनकी प्रार्थनापर ध्यान देकर उन्हें आश्वासित किया। तथा साथ ही यह भी कहा कि तुमलोग एवं अन्य जो समीपस्थ ग्रामोंमें निवास करनेवाले हैं सब इस बातको अच्छीतरह समझते हो कि ये मृग मेरे पाले हुए हैं। अतएव जान बूझकर अपराध करनेवाले गर्वी मनुष्यके ऊपर क्षमा करना मानों नीतिज्ञान विषयमें अपने आपको अनभिज्ञ सूचित करना है। इस कारणसे मेरी इच्छा तो यहांतक है कि मैं इनको और भी दण्डसे युक्त करदूं। जिससे इनको तो मालूम हो ही जाय किन्तु दूसरोंको भी, ज्ञातता होनेपर भी आकाश पातालको एक समझनेवाला मनुष्य गर्वके आश्रय हो जो कापुरुषोपम अनुचित कार्य कर बैठता है उसकी कैसी गति हुआ करती है, यह जाननेका अच्छा सौभाग्य मिल जाय। परन्तु तुम्हारे प्रार्थनानुरोधसे मैं इतनी ही क्षमा करता हूं कि चिन्तित द्वितीय दण्डका प्रयोग करना स्थगित रक्खुंगा। यह सुन अन्धसञ्जात मृगघी मनुष्योंके कुटुम्बी और मित्रलोग आपके चरणारविन्दमें गिर पड़े। एवं उन्होंने यहांतक विनम्रता प्रदर्शित की जिसके विवश हो श्रीनाथजीको उनकी प्रार्थनाके अनुकूल होनापड़ा। क्योंकि आपका उन्हें अन्ध कर उनको और उनके कुटुम्बियोंको महाकष्टमें डालनेका ही कोई मुख्य प्रयोजन नहीं था। किन्तु उनलोगोंको सीधे मार्गपर लाना था। इसी कारणसे आप शीघ्र तुष्ट होगये। और उनको सुसाध्य समझ कर प्रबोधित करने लगे कि अये, सद्गृहस्थो! दैवी और आसुरी इन दो सन्तानोंके ही प्रसिद्ध होनेसे तुम्हें मालूम है कि तुम्हारी कौन पक्षमें गणना हो सकती है। क्योंकि दैवी सन्तानका कोई भी विशेष गुण मुझे तुम्हारेमं नहीं दीखपड़ता है। प्रत्युत उससे भिन्न समस्त वे गुण, जो आसुरी सन्तानमें सम्भावित हो सकते हैं, तुममें विराजमान हैं। यही कारण है तुमलोग दैवी प्रकृति वाले पुरुषोंसे घृणा करनेमें एवं पशुओंमें माननीय पशुओं तकको भक्ष्यस्थान बनानेमें किञ्चित् भी आगा पीछा नहीं देखते हो। कहो क्या तुम्हारा यह आचरण सर्वथा उचित है। यदि है तो तुम जिस प्रकार अपने प्रयत्न साध्य प्राणीपर स्वेच्छाचारी बन उसे महाकष्टमें परिणत करडालते हो उसी प्रकार अपने प्रयत्नसे साध्य समझ कर मैं तुम्हें कष्टमें नियुक्त कर दूं तो क्या बुरी बात है। इसके विषयमें तुमको पश्चात्ताप और कष्टकी निवृत्तिके लिये हमसे प्रार्थना भी नहीं करनी चाहिये। यदि कहो कि हमारा आचरण प्रशंसनीय नहीं तो तुम्हें चाहिये आजसे इस आसुरी प्रथाका परित्याग करदो। कारण कि प्राणिहिंसात्मक प्रथासे मनुष्योंका अधःपतन होता है। हम नहीं चाहते हमारे विद्यमान होनेपर भी मनुष्योंकी ऐसी दशा हो। अतएव तुमलोग अपने और अपनी प्रजाके कल्याणार्थ यह नियम करो कि हम पशु हिंसा और अन्य देशीय मनुष्य हिंसा तथा योगीलोगोंकी ओरसे घृणा करणात्मक निन्दनीय व्यवहारको स्वयं परित्यक्त कर अन्य प्रजाजनोंसे भी उसका

परित्याग करायेंगे । क्योंकि मैंने इसी अभिप्रायको लेकर प्रथम तुम्हारेसे परामर्श किया है कि राजकीय पुरुष जिस प्रथाकी घोषणा करेंगे प्रजाजनोंको दण्ड भयात् वह अवश्य स्वीकृत करनी पडेगी । हां हो सकता है कोई ऐसी बात हो कि उसके प्रचलित होनेसे मनुष्य समाजकी अनल्प हानि होती हो. तो प्रजाजन उसके परिचालक राजाकी वह बात माननेको कभी उत्सुक नहीं होंगे । प्रत्युत राजाके बल प्रयोग करनेपर उनका दिमाक ठिकाने आजाता है जिससे राजाके लिये महान् अनिष्टके उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो सकती है । परं यह बात वैसी नहीं है यह तो वह है जिसके ग्रहण करनेसे मनुष्य समाजकी मनुष्यकोटिमें गणना हो सकती है । अतएव मुझे विश्वास है इसके प्रचारमें तुम्हें कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी । यदि हुई भी तो उसका परिहार करनेके लिये मैं स्वयं प्रकट हो तुम्हारा सहायक बनूंगा । बोलो और उत्तर दो जो कुछ मैंने कहा है यह तुम्हारे ध्यानमें कैसा आता है । यह सुन राजपुरुषोंने आपके परामर्शानुकूल सम्मति प्रकट की । यद्यपि आसुरी सन्तानानुयायी प्राणिघातक मांसाशी मनुष्य इस प्रथाके परित्यागार्थ सहमत होने तो दूर रहे सम्भवतः कुछ उपद्रव कर बैठेंगे, इस बातका स्मरण कर राजपुरुष कुछ क्षुब्धचित्त होगये थे परन्तु श्रीनाथजीका स्वयं उस समय सहायक होनेका वचन सुनकर अब उनकी वह उपद्रवोत्पत्तिकी सम्भावना जाती रही । इसीलिये उन्होंने बड़े उत्साहके साथ आपकी आज्ञा अङ्गीकृत कर उसके प्रचार करनेकी प्रतिज्ञा की । बस श्रीनाथजी तो यही चाहते थे । उनकी आनुलोमिक प्रतिज्ञासे आप अत्यन्त सन्तुष्ट हुए । और मृगयी मनुष्योंके ज्योतिर्विहीन नेत्रोंको सज्योतिः करनेके अनन्तर उपस्थित सब लोगोंको आशीर्वाद प्रयुक्त कर वहांसे प्रस्थानित हुए । उधर बद्ध प्रतिज्ञ राजकीय लोग भी अपने २ स्थानोंमें गये । एवं गोरक्षनाथजीकी आज्ञाको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये जीजानसे प्रयत्न करने लगे । ठीक आजसे ही इस देशीय मनुष्योंका, अन्य देशीय मनुष्यको बातकी बातमें मारकर अपना खेल समझना, एवं कतिपय प्राणियोंमें मूलिका आदि जैसी बुद्धि रखकर उनके भक्ष्यस्थान बनानेमें किञ्चित् भी दोष न समझना, तथा दैवी प्रकृतिवाले मनुष्यसे नासिका सङ्कुचित रखना, आदि अनुचित व्यवहार हल होने लगे । (अस्तु) अपने अभिलषित कार्यका प्रारम्भ कराकर श्रीनाथजीने अपर देशाटनके लिये इस नैपाल देशसे प्रस्थान किया । और अनेक पर्वतीय कन्दराओंमें निवसित योगिसमाजकी प्रणामाञ्जलिसे सत्कृत होते हुए आप भुट्टानादि देशोंको पार कर चीन देशमें पहुँचे । यहां आपके प्रशिष्य, जिन्होंको मिन्दुनाथजीके द्वारा योगवित् होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआथा, योगोपदेशका विस्तार कररहे थे, उन्होंने आपका हार्दिक स्वागत किया । और अपनी उचित कार्य प्रणालीके हेतुसे श्रीनाथजीको उन्होंने अपने विषयमें प्रसन्न करलिया । अतएव आपने उनको अनेक धन्यवाद प्रदान कर उचित युक्तियुक्त प्रैतिक वाक्यों द्वारा प्रोत्साहित किया ।

एवं अपने मार्गपर अटल रहनेकी आज्ञा प्रयुक्त करनेके अनन्तर यहांसे भी गमन किया। जो ब्रह्मदेशमें प्रविष्ट हो उसके प्रत्येक प्रान्तमें भ्रमण कर आप उग्रा (हुगली) नदीसे पार हुए, और पुनः आसाम, बङ्ग, बिहार, उडीसा आदि देशोंके भ्रमणको ध्यानमें रखकर कुछ दिनके लिये आप इसी नदीके तटपर विश्रामित होगये। यहां आपके विश्रामार्थ विशेष आग्रहकारी जो कतिपय योगी विद्यमान थे, जिन्होंने स्वकीय शिष्योंको योग साधनीभूत क्रियाओंमें प्रेरित कर रक्खा था, उनके साथ स्वकीय उद्देश विस्तार विषयकी विविध कथाओंका उद्घाटन करते कराते आपने निर्दिष्ट दिनोंका अतिक्रमण किया। अन्तिम दिन उनके शिष्योंको, तुमलोग दृढ विश्वासी और प्रयत्न शील बने रहना, भगवान् आदिनाथ तुम्हारे सहायक होंगे, जिससे तुम इस जन्ममें अवश्य बाजी जीतोगे, इत्यादि उत्साह वर्द्धक वाक्य सुनाकर आप यहांसे चल पडे, और उक्त देशोंके प्रत्येक प्रान्तमें पर्यटन कर योग प्रचारात्मक स्वीयोद्देशकी समालोचनामें सफल प्रयत्न हुए। तदनु मध्य प्रदेशीय मुख्य २ स्थानोंमें होते हुए आप अमरकण्टक पर्वतपर आये, यहां भी ज्वालेन्द्रनाथजीके शिष्य तथा अन्य अनेक योगी निवासकर रहे थे उन्हींको आपके साक्षात्कार का सौभाग्य मिला। अतः इनको भी गुरूपदेश सार्थक करनेके विषयमें समाहित कर आप अग्रसर हुए। और मद्र आदि देशोंका उल्लंघन कर स्वीय प्रयत्न स्थापित कदली मठमें पहुँचे। यहां कुछ दिन विश्राम कर आपने अपने समग्र भ्रमणके फलाफलका अवगमन किया। और योग प्रचारके विषयमें सम्यक् दृष्टि डाल कर जब आपने उसकी तुलना की तबतो उस दशामें पाया जिससे आपके चित्तकी तुष्टी होगई। अतएव आपने कुछ मासपर्यन्त आनन्दके सहित यहां निवास कर फिर उत्तर दिशाके अभिमुख प्रस्थान किया। जो कुछ दिनमें इधर उधर पर्यटन करनेके अनन्तर श्री त्रिमुखके दक्षिण पश्चिमस्थलमें विराजमान गौतमी गङ्गाकेजनक ब्रह्मगिरिनामक पर्वतपर पदार्पण किया। इसी जगहपर आपका कारिणपानाथजीसे, जो आपके कुछ ही दिन पीछे समाधि अवस्थासे निःसङ्ग हो चुके थे, मिलाप हुआ। पारस्परिक अभिवादन प्रत्यभिवादनके पश्चात् कारिणपानाथजीने आपसे पूछा महाराज! कहिये आप कौन २ प्रदेशोंको पवित्र करते आ रहे हैं, और उनमें अपने उद्देश प्रचारकी कैसी दशा है। उत्तरार्थ श्रीनाथजीने कहा कि यद्यपि मैं अन्य देशीय कुछ प्रान्तों और भारतीय पाञ्चाल सिन्धु देशादि कुछ देशको छोड सब देशोंमें भ्रमण करता हुआ चला आ रहा हूं। तथापि ऐसा नहीं कि भ्रमणावशिष्ट देशोंके प्रचारका मुझे समाचार न मिला हो। अतएव मैं दृष्ट और श्रुत सबके विषयमें यह कह सकता हूं कि आज दिन हमारे औद्देशिक प्रचारने ऐसा प्रान्त कोई नहीं छोडा है जिसमें उसके साम्राज्यका डंका न बज रहा हो। यह सुन पारोक्षिक उपदेशकोंके प्रयत्नपर कृतज्ञता प्रकट करते

हुए कारिणपानाथजीने आपके आल्हादक समाचारका समर्थन किया। तथा कहा कि यद्यपि मैं बहुत दिनसे जागरित हो चुका हूं तथापि किसी कारण वशात् यहीं पर निवास करते रहनेसे मुझे भ्रमण करनेका सौभाग्य नहीं मिला। इसी कारणसे मैं उक्त विषयमें सन्दिग्ध था। धन्य भाग आपके दर्शन हुए। और मेरे सन्देहका अपसरण हुआ। यद्यपि यह तो निश्चय ही है कि किसी भी कार्यका प्रवाह सदा एक रस नहीं रहता है। तथापि हम नहीं सहसकते कि हमारे प्रचारक लोगोंके उपस्थित रहते हुए ही उसकी दशा शिथिल हो जाय। श्रीनाथजीने कहा कि तुम्हारा यह मन्तव्य प्रशंसनीय है। मैंने भी इसी अभिप्रायाभिमुख हो देशाटनके द्वारा प्रथम प्रचारका निरीक्षण करना उचित समझा। और उसे पूरा भी कर डाला। सौभाग्यका विषय है उसकी दशा सन्तोष जनक प्राप्त हुई। जिसके विषयमें पारोक्षिक प्रचारकोंकी बुद्धिमत्ताके वास्तविक होनेका अच्छा प्रमाण मिल सकता है। और उन्होंने अपने आपको अवधानित रखकर अपने उत्तरदायित्वके पूरा करनेमें जो अपरिमित साहस दिखलाया है इसके लिये वे असंख्य धन्यवादके पात्र कहे जा सकते हैं। क्योंकि संसारमें और फिर कलियुगमें ऐसे मनुष्य अधिक नहीं हैं जो अपने उत्तरदायित्वको समझते हों। बल्कि मैं तो यहां तक प्रतिज्ञा करता हूं कि मनुष्यमें मनुष्यत्व है तो वह तभी है जब वह अपने उत्तरदायित्वको समझता है। नहीं तो वही मनुष्य संज्ञामात्रका भाजन होनेसे पशु तुलनासे युक्त किया जा सकता है। भविष्यमें ऐसा ही समय आयेगा जिसमें सहस्रोंके प्रति एक भी ऐसा मनुष्य मिलना दुष्कर होगा जो अपने उत्तरदायित्वको समझनेवाला होनेके साथ २ उसकी पूर्ति करनेवाला भी होगा। अन्यथा उन्हीं अधिक लोगोंका साम्राज्य होगा जो स्वकीय उत्तरदायित्वके अनुकूल चल कर उसे पूरा करना तो दूर रहा उत्तरदायित्व शब्दके अर्थमात्रको भी न समझेंगे। यह दशा केवल स्वभावतः मोहरूप अन्धकारावृत गृही लोगोंकी ही नहीं उनकी भी होगी जो गृह त्यागी हुए अपनेआपमें योगी होनेका अभिमान रक्खेंगे। अतएव वे लोग आचारजो प्रथम धर्म है उसका परित्याग कर अनाचारानुकूल त्याज्य पेय भक्ष्य पदार्थोंमें लोलुप हुए अपने अनधिकारित्वको सूचित करेंगे। यही नहीं यहांतक कि अहिंसाव्रत जो योगीका भूषण रूप है जिसके विना योगी कहलाने योग्य नहीं हो सकता है उसका रहस्य न समझ कर शस्त्र* प्रयोग द्वारा वे स्वयं

* सम्भव है किसी महात्माने, चद्रोपम योगी गुप्त रहेंगे और प्रकट योगी गुरुकी आज्ञा नहीं मानेंगे शब्दको नहीं झेलेंगे दमडी चमडीका बहुलोभ करेंगे दोजकको भरेंगे कहता हूं सुनता हूं देता हूं हेला गुरुकी करणी गुरु जागा, चेलेकी करणी चेला, इस भेख प्रचलित. खरास, के द्वारा श्रीनाथजीके इसी भविष्य वचनका चित्र खींचा है। अतएव श्रीनाथजीके न केवल भविष्य ज्ञाता बल्कि त्रिकाल ज्ञाता होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं।

प्राणि हिंसामें दत्तचित्त होंगे । अधिक क्या योग साधनानुकूल प्रत्येक क्रियाके विपरीत ही आचरण किया करेंगे । और महा कुत्सित संस्कारी ऊपरोक्तादि व्यसनोंमें लम्पट रहने वाले लोग तो, जिन्होंसे हमारे उद्देशके कलङ्कित होनेका भय है, अमुक व्यवहार तो प्राचीन कालसे ऐसें ही चला आरहा है, इस प्रकारके हमारे तक दूषण लगाने वाले वाक्योंका उच्चारण करनेके लिये अपने मलीमस मुखको झटिति खोल बैठेंगे । यह सुनकर कारिणपानाथजी बोले महाराज ! आपका अनुभव निस्सन्देह अवश्यम्भावी है परं मेरी समझमें यह नहीं आता कि जब परमदयालु श्रीआदिनाथजीने मनुष्योंके ऊपर अपनी महती कृपा करके ही इस योगमार्गको प्रचारित किया है तब योगियोंकी ऐसी दशा क्यों होगी कि वे योगका मर्म न जानकर उससे विरुद्ध कार्य करने लगेंगे । क्या श्रीमहादेवजीकी मनुष्योपकारिणी कृपा क्षीण हो जायेगी । वा योगक्रियाओंका ही अन्त हो जायगा । प्रत्युत्तरार्थ श्रीनाथजीने कहा कि उक्त दोनों वार्ताओंमें किसीका भी सम्भव न होनेसे एक तृतीय ही ऐसा कारण है जो ऊपरोक्त दशाको उपस्थित करता है। और वह यह है कि जब सांसारिक त्रिविध दुःखसे दुःखित हुए अधिक मनुष्य उस दुःखसे मुक्ति पानेके अनुकूल मार्ग प्रदान करनेके विषयमें शुद्धान्तः करणसे श्रीमहादेवजीकी उपासनामें दत्तचित्त होते हैं तब उनके उद्धारार्थ श्रीमहादेवजी अपने मार्गका उद्घाटन करवाते हैं । उस मार्गका प्रवाहित रहना न रहना मुमुक्षुओंके ऊपर ही निर्भर है। जबतक वे रहेंगें तबतक श्रीमहादेवजीके उपासक हो उस मार्गमें अनवरत गमनके द्वारा मुक्तिस्थानको समीप करते जायेंगे । परं जब मुमुक्षुही न होंगे और इसीलिये वे श्रीमहादेवजीकी शुद्धान्तःकरणसे भक्ति भी न करेंगे तब, क्षुधार्त्त हो रोदन किये बिना माता भी पुत्रको स्तनपान नहीं कराती है, तो श्रीमहादेवजी उन पापियोंको अपना मार्ग दिखलानेके लिये क्या निष्कार्य बैठे है । कुछ मुस्कराते हुए कारिणपानाथजीने कहा कि महाराज ! यह तो ठीक है परन्तु उन भविष्यमाण योगियोंके उक्तादि अनुचित कृत्योंसे अपनी और श्रीमहादेवजी तककी भी हानि हो सकती है। क्योंकि आखिर तो वे हमारे ही अनुयायी होंगे । श्रीनाथजीने कहा कि उस कालिक योगियोंका उचित व्यवहार तो यह है कि अनधिकारीको शिष्य होनेके विषयमें कभी आश्रय न दें । यदि किसीने दिया भी और उससे उसीके अनुकूल कुत्सित कर्मियोंकी प्रणाली चल भी पड़ी तो उनको हमारे अनुयायी नहीं समझना चाहिये । हमारे अनुयायी वे ही हो सकते हैं जो निरन्तर हमारे द्वारा प्रदर्शित मार्गपर डटे रहते हैं . बल्कि भविष्यमाणोंके लिये हमारी यह सूचना समझनी चाहिये कि वे हमारे मार्गमें पूरा विश्वास रखने हों और उसमें डटे रहनेकी पूर्ण दृढता भी रख सकते हों तो हमारे अनुयायी बननेका साहस करें । अन्यथा उन्हें अधिक हानि उठानी पडेगी । कारिणपानाथजीने कहा भगवन् ! जब उस समय

अधिकारी न रहेंगे और अनधिकारियोंको आपकी आज्ञानुसार शिष्य नहीं किया जायगा तब तो कुछ ही दिनमें योगियोंका नामो निसान तक न रहनेसे यह समाज ही लुप्त होजायेगा। अतः इसके स्मारक कुछ अनधिकारी भी ग्राह्य समझे जायें तो क्या हानिकी बात है। श्रीनाथजीने बतलाया कि जो भावी है वह समीपसे नहीं जाती है। अतएव तुम्हारे इस कथनके ही अनुगामी हुए योगी लोग अनधिकारियोंको शिष्य बनायेंगे। परन्तु हम इस बातके लिये कभी सहमत नहीं हो सकते हैं। क्योंकि कुछ भी छिद्र रहजानेसे महान् अनर्थोत्पत्तिकी सम्भावना है, कारण कि मर्यादा भङ्ग होनेपर लोगोंको शिष्य बनानेका सन्तोष न रहेगा। ऐसा होनेसे अनधिकारियोंके प्राधान्यका साम्राज्य उपस्थित होगा। बस फिर क्या है जिसका जोरा उसीका गोरा वाली कहावत चरितार्थ होजायेगी। सीधे मार्गमें चलने वाले और योग्य प्रस्ताव करने वाले किसी एकाध महानुभावकी बात उन उन्मादियोंके बीचमें कुछ पेस नहीं जायेगी। अतएव तात्कालिक योगियोंको इस विषयमें जहांतक हो सके सावधान रहनेकी आवश्यकता है, रहगई सम्प्रदाय लुप्त होनेकी बात यह कहना, केवल कथनमात्र ही है। कारण कि पत्र न रहनेसे वृक्षका अभाव नहीं प्रत्युत वृक्ष न होनेसे पत्रोंका अभाव हो सकता है। ठीक इसीके अनुकूल जब वृक्षरूप आपलोग चिरस्थायी हैं तो सम्प्रदायका लुप्त होना सम्भव कैसे हो सकता है हां इतना अवश्य है कि आपलोगोंके सर्व साधारणकी दृष्टिगोचर न होनेसे कुछ अज्ञानी लोग योगियोंका अभाव मान बैठेंगे। परं आखिर वे अज्ञानी ही ठहरे। अतः ऐसे मनुष्योंका कुछ मानना न मानना आपलोगोंके किसी कामका नहीं। यह सुन कारिणपानाथजीने आपके अभिमतका समर्थन करते हुए हर्ष प्रकट किया। और, अपने उन शिष्योंकी ओर, जिनको योगशिक्षा देनेके लिये अपना भ्रमण स्थगित कररक्खा था, आपका ध्यान आकर्षित किया। श्रीनाथजीने अपना कर्तव्य पालनार्थ उनको सम्बोधित करते हुए कहा कि महानुभावो! ईश्वरीय सर्गान्तर्गत मनुष्य नामधारी असंख्य ऐसे जीव हैं जो प्रलय पर्यन्त जन्म मरणात्मक परम्परासे विमुक्त नहीं होते हैं। ऐसी दशामें यदि वे, हम भी जन्मे हैं, इस प्रकारका अभिमान रक्खें तो उनका वह अभिमान झूठा तथा आज्ञानिक है। क्योंकि जन्मका अर्थ जागरित हो अपने आपको उस स्थान तक पहुँचाना है जहां यमराजका राज्य नहीं है। अतः जिसने उस स्थानको प्राप्त किया है वही जन्मा अन्य सब मृतक अवस्थामें समझने चाहियें। परं सौभाग्यकी बात है तुमलोगोंने इस रहस्यको अच्छी प्रकार समझ लिया है। और यमराजके राज्यकी सीमासे वहिर होनेके लिये हमारे मार्गका अवलम्बन किया है। स्मरण और विश्वास रक्खो! योगेन्द्रोंका आश्रय ग्रहण करना कभी निष्फल नहीं हो सकता है। उत्तरोत्तर वैराग्य और उत्साहका परिचय दिया तो तुमलोग अवश्य उक्त स्थानकी

उपलब्धि कर अपने आपको जन्मित पुरुषोंकी गणनामें सम्मिलित कर सकोगे। आपके इन हर्षवर्द्धक वाक्योंने उनको रोमाञ्चिक दशामें पहुँचा दिया। अतएव वे आपकी अपने ऊपर होनेवाली कृपाके विषयमें कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए आपके चरणारविन्दमें प्रसृत हुए। तथा कहने लगे कि भगवन्! कौन ऐसा मन्दभाग्य पुरुष है जो आपकी महान् अनुग्रहात्मक नौकाके प्राप्त होनेपर भी अनेक कष्टोंका अनुभव करनेके लिये संसारार्णवके इसी तटपर बैठा रहे; हमको तो निश्चय और दृढ निश्चय है कि आपकी कृपा नौकाके द्वारा हम संसार सागरसे अवश्य पार हो जायेंगे। उनके इस कथनसे आप अत्यन्त प्रसन्न हुए। और उनको स्वकीय गृहीत क्रियाओंमें प्रविष्ट हो जानेकी आज्ञा दी। वे शीघ्र ही आदेश २ आत्मक प्रणामसे आपको सत्कृत कर अपने २ आसनोंपर स्थित हो प्रारम्भिक कृत्यमें दत्त चित्त हुए। उधर श्रीनाथजीने प्रस्थान करनेके लिये कारिणपानाथजीसे आज्ञा मांगी। उन्होंने अकस्मात् दर्शन देने और शिष्योंको उत्साहित करनेके विषयमें अनेक प्रशस्य वाक्योंद्वारा कृतज्ञता प्रकट करनेके अनन्तर बडे ही विनम्र भावसे आपको विदा किया। आप ब्रह्मगिरिसे प्रस्थानित हो बहुत काल पर्यन्त इधर उधर भ्रमण करनेके पश्चात् युधिष्ठिर सम्वत् २८६० में तोरनमाल नामक पर्वतपर पहुँचे। यह पर्वत अमरकण्टकके समीप नर्मदासे करीबन पन्द्रह कोशकी दूरीपर विराजमान है। अतएव इसके रमणीय और सर्व प्रकारसे अनुकूल होनेसे अपने कार्यकी सिद्धिके अवसर तक आपने यहीं निवास करना निश्चित किया।

इति श्री मद्योगेन्द्र गोरक्षनाथ भ्रमण वर्णन नामक ३६ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय ३७ ॥

एकबार स्वकीय मार्ग विस्तार चिकीर्षु श्रीमहादेवजीकी प्रेरणानुकूल मित्रावरुणी नामक स्वर्गीय देवता भारतीय यात्राभिकाङ्क्षी हुआ अवध प्रान्तान्तर्गत सरयू नदीके तटस्थ आरण्य स्थलमें अवतीर्ण हुआ। प्रावृषेण्य ऋतुके होनेसे यह स्थल जितना दर्शनीय था उतना ही मनको आल्हादित करनेवाला भी था। अतएव उक्त स्वर्गीय महापुरुष स्वीय विमानको स्थगित कर विविध विहङ्गमोंकी रसीकशब्दोद्घोषणासे गुञ्जारित श्यामायमान रम्य अरण्यकी शोभाका अवलोकन करनेमें ज्योंही इतस्ततः परिक्रमित हुआ, त्योंही दैवगत्यनुकूल स्वर्गागत विलक्षण आभूषणोंसे विभूषित मनोहर रूपवती एक स्त्री अकस्मात् उसकी दृष्टि गोचर हुई। जिसको देखकर ऐकान्तिक रमणीय आरण्य स्थलकी सहायतासे सबल हुए स्मरने जो दशा उपस्थितकी वह उसको सहन करनेमें असमर्थ हुआ। अधिक क्या यहां तक कि अपना मनोरथ पूरा करनेके लिये उसने प्रथम उसका परिचय लेना चाहा। परं उसमें कृत कार्य होनेके पहले ही महापुरुषका मनोवाञ्छित सहसा शरीरसे वहिरभूत हो उसके नतानन होनेमें कारण हुआ। इस आकस्मिक लज्जास्पद घटनाका अनुस्मरण कर ईश्वरीय विचित्र गतिके विषयमें परामर्श करते हुए नाकी महानुभावने वीर्य पातानन्तर कामीय कष्ट दशासे विमुक्ति पानेपर शान्त चित्त हो इधर उधर दृष्टि प्रक्षिप्त की। और किसी विशेष कारणसे उपस्थित होने-वाले मेरे इस हास्यमय वृत्तान्तको अन्य कोई पुरुष तो नहीं देखता है क्या, इस अभिप्रायसे कुछ देरतक स्थलका संशोधन करते रहनेपर जब कोई मनुष्य दृष्टिपथारोही न हुआ और वह स्त्री भी अपने आगत मार्गमें तत्पर हुई तबतो उसने अपने अमोघ वीर्यकी, जो कि रक्षित था, स्थापना करनेका सुभीता अन्वेषित किया। वह यह था कि समीपस्थ क्षेत्रमें किसी कृषकका एक पात्र रक्खा हुआ था, जिसको भारतीय लोग, भर्थुआ, भर्थी, भर्थु, भर्थिया, आदिशब्दोंसे व्यवहृत किया करते हैं, उसीमें कुछ जल तथा मृत्तिकाके सहित उसको स्थापितकर, एक प्रवृद्ध शाखी वृक्षके सच्छिद्र मूलमें रखछोडा। और अनन्तर अपने

अभीष्ट स्थानको प्रस्थान किया। उधर ईश्वरीय अगम्य रक्षासे रक्षित हो वह पात्रस्थ शरीर कारण प्रतिदिन अधिक परिमाणी होने लगा। और ठीक अनुकूल अवसर पर्यन्त शरीराकारी हो प्रसवकालिक बालकके परिमाणमें परिणत हुआ। इसी समय हरिनारायणने उसमें प्रविष्ट होकर जो असह्य तेजकी धारा प्रवाहित कर रक्खी थी उनके प्रबल प्रतापसे वह पौराणिकदशास्थ लघिष्टघट फूट गया। अतएव लब्धावकाश हो बालक इधर उधर हस्तपैरोंका प्रक्षेपण और संहार करता हुआ तथा उनके अङ्गुष्ठोंका चुम्बन करता हुआ सानन्द समय व्यतीत करने लगा। यद्यपि कोई खास मनुष्य ऐसा नहीं था जो उसकी क्षुधा पिपासाके परिहारार्थ उसके खाद्य एवं पेय सामग्री उपस्थित करता हो तथापि उसके महापुरुष होनेके हेतुसे इच्छा मात्रसे आवश्यकीय वस्तु उपस्थित होजाती थी। या यों कहिये कि प्रकृतिके नियमानुसार आवश्यकीय वस्तुप्राप्तिमें उस दशास्थ बालककी इच्छा कारण नहीं बन सकती तो उसकी दैनिकजीवनचर्याकी रक्षार्थ श्री परमदयालु भगवान् आदिनाथजीकी विशेष कृपा ही उन उपायोंको प्रेरित करती थी कि जिन्होंसे अचेत भी उस बालकका पालन पोषण होता था। अतएव यही कारण था उसी वृक्षके विवरान्तर्गत मधुमक्षिकाओंके पटलसे मधुके बिन्दु उसके अङ्गोंपर गिरने आरम्भ होगये। जिनके चूवण कालमें वह उस मधुका भी आस्वादन ले सका। और उसीके पोषसे पुष्ट हो उसने कुछ दिन निर्वाहित किये। ये दिन सानुकूल बीतनेपर भी उसके लिये एक सुभीता और उपस्थित हुआ। वह यह था कि एक प्रसव वेदनासे आक्रान्त हरिणी उसी वृक्ष विवरके समीप आकर बैठ गई। कुछ क्षणानन्तर अधिक कष्टका अनुभव कर किसी प्रकार उसने एक बच्चा प्रसूत किया। जिसके बहिरभूत होनेपर भी उसकी वह दशा नहीं आई जिसके आश्रय हो अपनी सन्ततिका शीघ्र चाटन चुम्बन करती। आखिर बहुत देरमें वह सचेत हुई। पर फिर भी उसने अपने पुत्र और समीपस्थ बालकमें दृष्टि डाली तो समझ लिया कि दोनों ही मेरे उदरसे उत्पन्न हुए हैं। अतएव उसने दोनोंका चाटन चुम्बन कर अघटित घटना उपस्थित कर दी और दोनोंको ही स्तनपान द्वारा पुष्टांग बनानेका प्रयत्न करने लगी। उसका वह प्रयत्न भी सफल हुआ। कुछ काल बीतनेपर दोनों बालक इधर उधर हरिणीके पीछे २ फिरने लगे। मार्गिक बच्चेके शीघ्रगामी होनेपरभी मृगी धावनादि क्रियासे वञ्चित रहती थी। कारण कि हमारे चरित्रनायक मानुषीय बालकके घुटनोंकी सहायतासे मन्द गतिका परिचय देनेके हेतुसे वह उसे छोडकर जा नहीं सकती थी। परन्तु यह व्यतीकर बहुत दिन प्रचलित न रहा। भगवान् आदिनाथजीकी कृपा हुई। उसके अनुकूल किसी कार्य वशसे उसी वनस्थ मार्गमें गमन करने वाला जयसिंह नामक भद्र जातीय कोई मनुष्य अपनी

पत्नीके सहित अकस्मात् वहां आ निकला। जो मार्गकी कुछ ही दूरीपर मृगीके पीछे २ चलते हुए मनुष्य बालकको देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ। और स्वकीय पत्नीके अतीव आग्रहानुसार बालकके पकडनेमें प्रयत्न शील हुआ। बालक शीघ्र ही उसके हस्तगत हो गया। जिसके अतीव सुन्दर रूप और होनहार विलक्षण दृश्यको देखनेके साथ २ उसकी विस्मापक पशु सांसर्गिक घटनाका अवलोकन कर महान् आश्चर्यके समुद्रमें निमग्न हुए भी दोनों स्त्री पुरुष अनेक प्रैतिक वाक्य और चुम्बनादि कृत्यके द्वारा अत्यन्त प्यार करते हुए उसकी चमक निकालनेका उद्योग करनेलगे। इधर बालकको उठाकर उक्त व्यवहारका प्रयोग करते हुए वे मार्गानुसारी बने ज्यों ज्यों पद उठाते थे त्यों त्यों वह हरिणी करुणोत्पादक शब्दोंका उच्चारण करती हुई उनके पीछे २ चलती थी। और पुत्रवती होनेपर भी बालकमें अपना अपरिमित मोह प्रदर्शित करती हुई उन अपुत्र पति पत्नियोंके लब्ध पुत्र विषयक मोहको तिरस्कृत कर रही थी। यहांतक कि बालक की विमुक्ति विषयमें अपने प्राणों तकको न्योछावर करनेका साहस रखती हुई अपने प्रेमाधिक्यकी पराकाष्ठा दिखला रही थी। परं हतभाग्य उसका वह प्रयत्न सफल न हुआ और नगरके समीप पहुँचनेसे अपना और अपने एकाकी बच्चेका कौशल्य न देखकर वह वापिस ही लौट आई। उधर परम हर्षहर्षित जयसिंह नगरमें प्रविष्ट हो सम्मुखागत प्रथा लोगोंके द्वारा पुत्रोपलब्धि विषयक वृत्तान्तको विस्तृत करने लगा। बस क्या देर थी श्रोत्रप्रणालिकासे प्रवृत्त समाचार समग्र नगरमें व्यप्त हो गया। अतएव अनेक नरनारी जयसिंहके गृहपर आकर श्रुतघटनाकी सत्यताका परिचय लेते थे। और बालकका तेजोमय दिव्यरूप देखकर अपने गृहमें भी वैसे ही पुत्रकी सत्ता स्थापित करनेके लिये आभ्यन्तरिक भावसे ईश्वरकी विशेष अभ्यर्थना करते थे। तथा जयसिंहसे उसके पशु सांसर्गिक अरण्य निवासात्मक असाङ्गतिक वृत्तान्तको सुनकर वे अत्यन्त विस्मित हो हस्तसे हस्तविमर्दन करते हुए ईश्वरीय अलक्ष्य गतिके विषयमें अनेक गाथाओंका उद्धाटन करने लगते थे। और बालकको अपने २ उत्सङ्गारो ही बनाकर अपने उन्नत प्रेमकी मात्राओंको सफल बनाते थे। इसी प्रकारके आनन्दोत्सवसे जयसिंहके कितने ही दिन एक दिनके समान व्यतीत हुए। और शुभलक्षण पुत्रोपलब्धि विषयमें लोगोंद्वारा विशेष सत्कारको प्राप्त हो अब वह वर्षोंका मासोंके समान निर्वाहन करने लगा। अनन्तर अपने प्रशस्यगुणोंसे उपमाता पिताओंको रञ्जित करता हुआ बालक अनुकूल अवस्थामें प्रविष्ट हो गया तब उसने बालकको विद्वान् बनानेके, एवं उसके शुभ लक्षणाकर्षित धनाढ्य लोगोंसे द्रव्योपार्जित करनेके, अभिप्रायसे काशी नगरीमें निवास करनेकी अभिलाषा की। और अपनी पत्नीके सहमतकी सहायता प्राप्त कर उसने कुछ ही दिनके बाद पत्नी पुत्रके सहित वहांसे प्रस्थान किया। तथा काशीमें पहुँचकर वहां रहनेवाले

अपने किसी सम्बन्धी की सहायता द्वारा एक स्थान प्राप्त कर निवास करना भी आरम्भ कर दिया। कुछ दिन सानन्द व्यतीत हुए। प्रातिवेश्य लोगोंका उससे और उसका प्रतिवेशियोंसे परिचय हो गया. उधर उनके सम्बन्धीद्वारा बालककी विस्मापक उपलब्धिका समाचार भी धीरे २ नगरमें व्याप्त होने लगा। यह वृत्तान्त जिन २ लोगोंके श्रोत्रगत होता था वे ही बालकको देखने आते और वृत्तकी सत्यताका निर्णय करनेके लिये जयसिंहके सम्बन्धी और ग्राम तककी साक्षी प्राप्त करते थे। और स्वान्तःकरणनिष्ठ बालकोपलब्धि विषयक सन्दिग्ध वृत्तान्तमें विश्वसित हो उसे श्रद्धाकी दृष्टिसे सत्कृत करते थे; तथा बालकका भावी महापौरुषेय लक्षण देख उसके अवतारी होनेकी सम्भावना करते थे। जिस समय लोगोंकी भावना यहांतक बढ चुकी थी उस समय अध्यापकके समर्पित हुआ बालक लोगोंके मन्तव्यमें और भी दृढता स्थापित करनेके हेतुसे अनेक प्रासङ्गिक अवसरोंमें अपने किसी न किसी प्रकारके विलक्षण चरित्रोंका उद्घाटन कर रहा था। उसका यह समाचार देख अध्यापक महानुभाव भी चुपके न रहसके। और जयसिंहके सम्मुख स्वकीय मुख द्वारा बालकके प्रतिदिन प्रदर्शित होनेवाले शुभ वृत्तान्तके विषयकी प्रशंसा करनेको बाध्य हुए। इस प्रकार पुत्रोपलब्धिके अनन्तर उसके आज पर्यन्त जो दश वर्ष व्यतीत हुए वे पुत्रकी और पुत्रके द्वारा अपनी प्रशंसा सुनते सुनाते ही व्यतीत हुए। अतएव जयसिंहने अपने आपको भी धन्य समझा। और स्वकीय नगरमे प्रस्थान करनेके पहले द्रव्योपार्जना विषयक जो अभिलाषा की थी उसने उसमें भी बहुत कुछ कुशलता प्राप्त की. परं खेद की बात है कि वह द्रव्य सञ्चय उसका ही नहीं दोनों पति पत्नियोंके विनाशका हेतु हुआ। कारण कि उसके सांसारिक उत्कर्ष प्राप्तिकी अभिलाषा जागरित हुई। जिसके वशीभूत हो उसने विचार स्थिर किया कि कुछ दिनमें मेरा पुत्र विवाह योग्य होनेवाला है। अतः उस अवसरसे पहले मेरे पास जो पर्याप्त धन एकत्रित होगया है इसे व्ययकर अपनी प्रतिष्ठाके अनुकूल अपने नगर में जाकर एक मनोहर स्थान बनवालूं। ठीक इसी निश्चयको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये उसने काशीसे प्रस्थान करनेकी तैयारी की। और पुत्रको अध्यापक महाशयकी सेवामें उपस्थित रहते हुए निरन्तर विद्याध्ययन करनेकी आज्ञा दी। परं हमारे चरित्रनायक इस बालकको श्री महादेवजीने ग्रन्थोंका कीड़ा बनकर अधिक समय नष्ट करनेके वास्ते नहीं भेजा था। अतएव बालककी बुद्धिने ईश्वरीय प्रेरणानुकूल पलटा खाया। जिससे अपने पिता जयसिंहजीको उसने स्फुट कह सुनाया कि मैं एकाकी यहां नहीं रह सकता हूं। अतः मुझे भी अपने साथ ही ले चलना होगा। जयसिंहकी उक्त इच्छा प्रवृद्ध होचुकी थी। इसवास्ते उसने उसमें बाधा उपस्थित न कर लड़केको साथ ले चलना ही समुचित समझा। और उसके तथा पत्नीके सहित

काशीसे प्रस्थान भी कर दिया । एक वञ्चक मनुष्य, जो इनके समीपस्थ द्रव्य विषयक समाचारसे विदित हो चुका था और अपने सहमतोंके परामर्शानुसार किसी न किसी उपायका अवलम्बन कर इनके प्राण विनाश द्वारा मुद्रकाओंको स्वहस्तगत करना चाहता था, यहींसे इनके साथ हो लिया । अधिक क्या उसने ऐसे युक्तियुक्त वाक्योंका प्रयोग किया कि जिससे उसके विषयमें वे कुछ भी सन्दिग्ध न हुए । और चारों ही विविध व्यावहारिक वार्तालाप करते कराते सानन्द मार्ग तय करने लगे । जब चलते २ मध्यान्ह समय उपस्थित हुआ देखा तब एक जलाशयके समीपस्थ सघनवट वृक्षके अधः उन्होंने विश्राम किया । तथा कुछ भोजन जो साथमें लिये हुए थे परस्परमें खा पी कर धूप निवारणके अभिप्रायसे लेट गये । निशङ्क होनेके कारण उन्होंने मार्गिक साधारण श्रान्तिको दूर करनेके लिये कुछ देर पर्यन्तकी निद्राका आव्हान किया । यह देख निद्रादेवीने भी शीघ्र उपस्थित हो ऐसा आक्रमण किया जिससे वञ्चकके अतिरिक्त वे तीनों अचेत अवस्थामें प्रविष्ट हुए । बस यही दुर्भाग्यका अवसर था जो अवश्यम्भावी दैवगत्यनुकूल आ प्राप्त हुआ । अतएव निद्राक्रमणके द्वारा अचेत दशा निष्ठ जयसिंह और उसकी स्त्रीको और भी अचेत बनाकर उनके द्रव्यका अपहरण करनेमें उस निर्दयी दुष्ट वञ्चक सार्थी मनुष्यको अच्छा सुभीता मिल गया । वह अपने गुप्त तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा दोनोंकी ग्रीवाका भङ्ग कर मात्राओंको स्वहस्तगत करनेके समकालमें ही वहांसे प्रधावित हुआ । उधर जब वह लड़का निद्रासे विमुक्त हो देखने लगा तो वह चतुर्थ मनुष्य उसे दिखाई न दिया । और सहसा माता पिताके रुधिर प्लावित उत्तमाङ्गको देखकर शोकात्मक अगाध समुद्रमें निमग्न हुआ । पर करता क्या । उसके ऊपर होनेवाले आकस्मिक वज्रपातका परिहार करनेके लिये कोई सहायक मनुष्य नहीं था । जो कि धैर्यात्मक नौकाका अवलम्बन प्रदान कर उसके द्वारा शोक समुद्रके तीरपर पहुँचाता हुआ उसके ऊपरसे वज्रप्रहारका वार वञ्चित कर देता । अतएव वह उपमाता पिता के स्वविषयक अनन्य प्रेमके ऊपर कुछ देर अश्रुपात कर आर्तस्वरके सहित ही वहांसे चल पड़ा । कुछ ही दूरतक मार्ग तय करनेपर जब उसने सम्मुखीन मार्गमें दृष्टिपात किया तब उस मार्गको आकाश व्यापी धूलिसे आच्छादित देखा । और अनुमान किया कि अनेक रथ लिये हुए धनाढ्य लोगोंकी बरात वा राजकीय सेना दल आता है । परं वह एक तृतीय ही दल निकला । जो अनेक प्रकारकी वाणिज्य वस्तुओंको वाहित करने वाले सहस्रों बैलोंसे सङ्गठित हुआ था । इस दलके स्वामी भारतीय प्रसिद्ध व्यापारी भट्ट—ना बणजारे लोग थे । पारस्परिक दृष्टि मिलनेपर लड़केका विकालित दृश्य देखकर उससे उन्होंने यथार्थ समाचार सुनानेका अनुरोध किया । उसने भी आद्यन्तीय समस्त वृत्तान्त, जो कि बीत चुका था स्फुट करदिया । जिसके श्रवण मात्रसे उनलोगोंका

भी आन्तरिक स्थान उमड़ आया। और दयार्द्रीभूत चित्तकी प्रेरणासे अनेक प्रकारके प्रैतिक वाक्यों द्वारा धैर्य स्थापित कराते हुए वे लोग उसे वापिस ही लौटा लेगये। एवं कुछ ही देरमें घटनास्थलमें पहुँच कर जब दोनों व्यक्तियोंको उस अवस्थामें, जो कि लडकेने सूचित की थी, देखा तब तो उन्होंकी करुणाका भण्डार और भी विस्तृत हो गया। यहांतक कि उन्होंने बड़े आदरके सहित दोनों व्यक्तियोंका अग्निसंस्कार कर लडकेको अपने ही आश्रयमें रख लिया। और खानपान सवारी आदिका ऐसा प्रबन्ध कर दिया जिससे उसको किञ्चित् भी दुःखका अनुभव न करना पडा। ठीक यही कारण था कि वह कुछ ही दिनमें उपमाता पिताके सांसर्गिक व्यवहारको विस्मरण कर उनके साथ ऐसी चेष्टायें करने लगा मानों उन्हींमे उत्पन्न हुआ है। अधिक क्या यहांतक कि उस दलके प्रधानस्वामीमें जिसने उसको आश्रय देकर अपना महान् अनुग्रह प्रदर्शित कियाथा, जयसिंहकी तरह उपपिताका सम्बन्ध रखने लगा। और उसके उपकारका बदला चुकानेके लिये एक ऐसा सुभीता प्रकट किया जिसके द्वारा उसीको नहीं समस्त व्यापारियोंको लाभ हुआ। वह सुभीता यह था कि वह लड़का पशुवाणीका अर्थ समझता था। अतएव व्यापारिदलके ऊपर चोरोंके आक्रमण की अथवा और किसी प्रकारके उत्पातकी सम्भावना विषयक लक्षण सूचित करने वाले गीदड़ादिकी वाणीका भावार्थ समझकर वह उनलोगोंको प्रबोधित करदेता था। जिससे वे सचेत होकर सम्भवित उपाय द्वारा चोरादिकोंके आक्रमणको व्यर्थ कर स्वकीय जानमालकी रक्षा करलेते थे। ठीक यही व्यापारि दल मार्गागत अनेक नगरों सम्बन्धी वस्तुओंका क्रय विक्रय करता हुआ कुछ मासके अनन्तर अवन्ती देशस्थ प्रसिद्ध नगरी उज्जयिनीमें पहुँचा। यहां सायंकालके अवसरमें, जब कि दलके प्रधान पुरुष वाणिज्य विषयक परामर्श कर रहे थे, शृगालोंकी चीत्कारका मर्म समझकर लडकेने बतलाया कि आज अर्ध रात्री उपस्थित होनेपर इस नगरीमें एक राक्षस प्रविष्ट होगा, जो कि पश्चिम दिशासे आ रहा है। यदि उसका आक्रमण निवारण न किया गया तो नागरिक लोगोंको अत्यन्त साङ्कटिक अवस्थाका अनुभव करना पड़ेगा। यह सुन उन विश्वासित लोगोंने शीघ्रताके साथ प्राकृतिक परामर्श करना छोड़ उसी विषयकी अनेक गाथाओंका उद्घाटन करना आरम्भ किया। तथा बहुत देरके विचारा विचारके अनन्तर इस वृत्तान्तकी सूचना राजकीय पुरुषोंको दे देनेका निश्चय किया। ठीक इसी अवसरपर, जब कि उक्त निश्चयके अनुसार सूचना भेजनेके लिये वे लोग किसी चतुर मनुष्यको तैयार कर रहेथे, अकस्मात् विक्रम नामका एक राजपुरुष, जो कि उस समय नगरका रक्षक नियत था, उनके समीप ही आ निकला। और उसने उन व्यापारियोंका उचित परिचिय लेकर उनको सचेत रहनेका परामर्श दिया। उन्होंने उसके कथनपर कृतज्ञता प्रकट करनेके अनन्तर कहा कि हमलोग

सदा सचेत रहते हुए भी आज आपके कथनानुसार विशेष सचेत रहेंगे। जिसके द्वारा वाणिज्य वस्तु ग्रहणमें लालायित चोरादिकोंसे हमारी रक्षा हो सकेगी। परन्तु हमारेसे भी अधिक आज आपलोगोंके सावधान रहनेकी आवश्यकता है। कारण कि एक राक्षस, जिसका नगरीमें ही प्रवेश कर कुछ उत्पात उपस्थित करनेका उद्देश है, अर्ध रात्रीके अवसरपर आयेगा। अतएव उस अनिष्टकारीके आक्रमणको व्यर्थ करनेके लिये आपलोगोंको चाहिये कि उपयुक्त सामग्रीका सञ्चय तैयार रक्खें। व्यापारियोंके अदृष्ट पूर्वघटना विषयक ऐसे वाक्य सुनकर हूंङ्कारेके साथ विक्रम पूछ उठा कि तुमलोगोंको इस वृत्तान्तका परिचय कैसे हुआ। तथा इसके सत्य होनेमें तुमने किस प्रमाणका अवलम्बन किया है . जिसका अवगमन कर मैं भी इस विषयमें असन्दिग्ध होजाऊं . उन्होंने उत्तर दिया कि यह एक लड़का, जो कि कतिपय माससे हमारे साथ रहता है, किसी भी प्रकारके उत्पातको सूचित करने वाली पशुवाणीका मर्म समझकर हमको प्रबोधित किया करता है ऐसा अवसर एक-वार नहीं कई बार उपस्थित होचुका है। इसीलिये हम इसके कथनमें निःसन्देह होगये हैं। आज फिर शृगालोंकी चीत्कार श्रवण कर इसने प्रकृत घटनाका उल्लेख किया है। जिसमें निश्चित हो उसकी सूचना आपलोगोंको देनेके लिये हम उद्यत होरहे थे ; हर्षका विषय है अनुकूल अवसरपर आप स्वयं उपस्थित होगये। तदनु विक्रमने समीपस्थ उस लड़केकी ओर निर्देश करते हुए पूछा कि क्या अवश्य यह घटना होगी। उसने उत्तर दिया कि यह घटना आवश्यकीया है। इसमें विश्वसित हो कोई ऐसा उपाय, जिससे कि राक्षस पराजित होजाय, अन्वेषित करो। इसके साथ २ एक बात और भी है जिसका मैं अभी उद्घाटन करदेना समुचित समझता हूं। और वह यह है कि उस राक्षसके रुधिरमें एक ऐसी शक्ति विद्यमान है यदि कोई पराक्रमी महानुभाव उसको मारकर उसके रुधिरका अपने मस्तकपर टीका कर ले तो वही इस नगरीके सिंहासन पर अभिषिक्त हो। और अत्यन्त कुशलताके साथ राज कार्यका निर्वाहन करे। यह सुन कृतज्ञता प्रकट करनेके अनन्तर प्रस्थानित हो अनेक भावोंमें परिणत हुआ विक्रम अपने नागरिक रक्षा स्थानपर पहुँचा, एवं अनुकूल शस्त्रको सज्जीकृत कर रात्रिश्वरकी प्रतिपालनामें दत्तचित्त हुआ . उधरसे निर्दिष्ट समयपर राक्षस भी आ पहुँचा ; और ज्यांही नगरके तोरण द्वारमें प्रविष्ट हुआ त्योंही उपस्थित विक्रमने उसको सावधान होनेके लिये ललकारा। वह चेतनताके साथ हुङ्कार कर विक्रमकी ओर झपटा ; इधर यह भी तादवस्थ्य निष्क्रिय ही न खडा रहकर राक्षसका अनुकारी बना ; आवेक क्या बहुत देर पर्यन्त भयङ्कर युद्ध होनेपर अन्तमें विक्रमकी विजय हुई ; वह दुष्ट मारा गया . जिसके रुधिरका विन्दु विक्रमने स्वकीय उत्तमाङ्गपर धारण किया। और उसके फलको गुप्त रखकर केवल राक्षसके वधका

समाचार प्रधान राजपुरुषोंको मालूम कराया। इस माहापाराक्रमिक कृत्यको श्रवण एवं निश्चितकर उन्होंने विक्रमकी अत्यन्त श्लाघा की। यहां तक कि विक्रमकी अनन्य कार्य-कुशलता तथा आत्यन्तिक पराक्रमता देखकर उनलोगोंने विक्रमके प्रति हार्दिक श्रद्धा प्रकटकी और वर्तमान राजाके पुत्र न होनेसे उन्होंने आभ्यन्तरिक रीतिद्वारा अपने हृदयस्थानमें इस प्रकारकी भावनाका बीज अङ्कुरित किया कि इस राजा साहिबके अनन्तर यह विक्रम ही हमारा अधिनायक होतो सौभाग्यकी बात है। इधर उनकी यह भावना विक्रमसे भी अविदित न रही। अतएव उक्त लडकेकी भविष्य वाणीके साफल्यमें असन्दिग्ध करनेवाले शुभ लक्षणोंका अवलोकन कर विक्रमने लडकेके प्रति अपनी श्रद्धाका उद्गार किया। और प्रधान राजपुरुषोंसे सान्तोषिक प्रशंसा तथा परितोषक प्राप्त कर वह व्यापारियोंके समीप गया। वहां जाकर उसने उन्होंसे उक्त लडकेको प्रदान करनेकी प्रार्थनाकी। अधिक क्या उनके अनेकवार नाटनेपरभी किसी प्रकार विक्रमने उसको अपने हस्तगत कर लिया। एवं अपना धर्मका भ्राता स्वीकार कर अपनी माताको उसके प्रयोजनीय गुणोंसे परिचित करनेके साथ २ इस बातसे सूचित किया कि अद्यावधिसे मेरेमें और इसमें पार्थक्य भावनाका कभी स्वप्न तक न देखना। पूज्यमाताने भी तथास्तु शब्दोच्चारण कर पुत्रकी शुभाज्ञाको अमोघ करते हुए हमारे चरित्र नायक उक्त लडकेको स्वकीय उत्सङ्गारोही बना लिया और विविध प्रैतिक उन वाक्योंका, जिन्होंसे बालकोंको हर्ष उत्पन्न हो सकता है: प्रयोग किया। ठीक इसी अवसरसे विक्रम और वह लड़का प्रतिदिन साथमें रहते हुए सानन्द समय व्यतीत करने लगे। प्राथमिक मिलापके समय प्रगाढ प्रीतिसे विक्रमने उसके यद्यपि विशेष समाचार पूछनेकी उपेक्षा की थी। तथापि कुछ दिनके संसर्गसे जब कि उनका सच्चा सम्बन्ध हो गया तब विक्रमने एक दिन उसकी जन्मचर्याके विषयमें प्रश्न किया उत्तरार्थ लड़केने कहा कि मैंने भी अभीतक इस बातका कोई निर्णय नहीं किया है। अतएव कुछ दिनका अवकाश दो तो आन्तरिक सुख से इस विषयका स्वयं ज्ञाता बन तुम्हें विज्ञापित करनेकी चेष्टा करूंगा। यह सुन विक्रमने बडा हर्ष प्रकट किया। और उसके कथनसे उसके योगी होनेका अनुमानकर कृतज्ञताके साथ कहा कि भ्रातः! यद्यपि मैं तेरे सद्गुणोंपर इतना मुग्ध हो गया हूं कि मेरी आन्तरिक अभिलाषा ऐसी नहीं जो मुझे उक्त बात पूछने के लिये प्रेरित करती हो तथापि व्यावहारिक दृष्टिसे यह सोच कर, कि सम्भवतः कभी ऐसा ही कोई प्रसङ्ग आ उपस्थित हो जिसमें इस बातकी आवश्यकता पडती हो, मैंने यह अनपेक्षित प्रस्ताव उपस्थित किया है। अतः तुम शान्तिके सहित जब तक बन पडे इसका निश्चय प्राप्त करना। इसके अनन्तर उसी दिनसे लडका आसनासीन हो कर धार्मिक अभ्याससे स्वकीय जन्मवृत्तान्तका अनुभव करने लगा। थोडे ही दिनमें उसका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् स्वकीय देव

मित्रावरुणीके अंशसे भर्थी नामक पात्र द्वारा प्रादुर्भूत होनेवाले अपने शरीर सिषयक समस्त वृत्त उसने विक्रमसे निवेदित किया। यह सुन विक्रम अत्यन्त प्रसन्न हुआ। और आजसे उसने उसका, भर्थी नाम उद्घोषित किया। जो कुछ ही दिनमें यह नाम भर्थरी और भर्तृशब्दमें परिणत हुआ। यही कारण है आज तक भी उस महापुरुषको प्रसङ्गवशसे अविद्वान् लोग भर्थरीनाथ और विद्वान् भर्तृनाथ शब्दसे सत्कृत करते है। अस्तु) कुछ दिनके अनन्तर उसकी भविष्य वाणी सफल हुई। राजाने विक्रमके ऊपर प्रसन्नता प्रकट कर राज्यभार स्थापित किया। इधर प्रजाकी दृष्टिसे विक्रमके सर्वथा योग्य पुरुष निश्चित होनेपर भी विक्रम अपनेसे अधिक सर्व कार्य कौशल्यको भर्तृ भ्राताके अन्दिर देख चुका और देख रहाथा। इसीलिये उसने उसको अपनेसे न्यून कोटिमें रखना उचित न समझा यही कारण था विक्रमने भर्तृको भी स्वसदृश राजा शब्दसे उद्घोषित कर राज्यकार्य निर्वाहनताके कितने ही अधिकार प्रदानित कर दिये थे जिन्होंमें युवावस्था प्राप्त करनेके साथ २ ही भर्तृजीने ऐसी चतुरता प्रदर्शित की जिसके ऊपर मुग्ध होकर विक्रमने एक २ कर सर्व अधिकार उसके समर्पण करने पडे। और वह स्वयं ऐकान्तिक स्थलमें निवास कर ईश्वराराधनमें अधिक समय व्यतीत करने लगा। इस प्रकार राज्यका समस्तभार भर्तृजीके शिरपर आरोपित हुआ। जिसके निर्वाहनमें अद्वितीय नैतिक कुशलता देखनेके साथ २ भर्तृजीका दुःसहरूप देखकर कितने ही प्रधान राज पुरुष तथा अन्य कई एक राजा लोग उसपर मोहित हो गये। और अपनी २ कन्या प्रदानकर उन्होंने उससे सच्चा सम्बन्ध स्थापित किया अतएव भर्तृजीने पिङ्गला आदि अनेक सुलक्षणा अङ्गनाओंके साथ सहवास करते हुए अपने आपको ऐहलौकिक विविधानन्दका अनुभव करते हुए की तरह प्रदर्शित करना आरम्भ किया।

इति श्री भर्तृ जन्म चर्य्या वर्णन नामक ३७ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय ३८ ॥
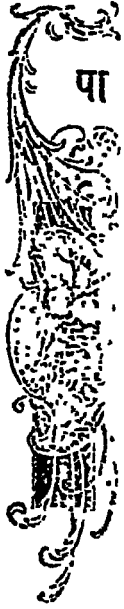
पाठक महाशय ! आप उक्त अध्यायमें पढ़चुके हैं कि भर्तृजीकी राज्यसञ्चालकता सर्वथा श्लाघनीया थी । इसीसे राजकीय पुरुष उससे सहमत रहते हुए अपनी अनेकं श्रद्धेय कार्यावलीका परिचय देते थे। और मनोविनोदके लिये प्रत्येक अवसरपर एकसे एक विचित्र क्रीड़ात्मक अभिनयमें प्रेरित कर उसे राज्योपभोगोंका पात्र बनानेका यत्न करते थे । इधर उसने विक्रमके सहवाससे अपने आपको राजनैतिक पटुताका भण्डार बनालियां था । अतएव वह स्वयं विचार शील होनेसे उनलोगोंके परामर्शानुसार राज्यकार्योंकी विचारणार्थ ध्यानावस्थित न होकर वाहियात क्रीड़ाभिनयमें अधिक समय नष्ट करता हुआ अपने आपकी इन्द्रिय परायणताका परिचय नहीं देताथा । तथापि उसके कोई एक अवसर ऐसा सम्मुखीन होजाता था कि अनुयायियोंके विशेष आग्रहानुरोधसे उसको वह करना ही पड़ता था । दैव वशात् एक दिन ऐसा ही अवसर आ उपस्थित हुआ । अनुजीवियोंकी प्रेरणानुगत हुए भर्तृजी आखेट करनेको वनमें गये । वहां जाकर अनेक हरिणियोंकी स्मराग्नि शान्त करने वाले एकाकी यूथाधिप मृगका वध कर भर्तृजी ज्योंही अपने सहकारियोंसे प्रशस्य हुए वापिस लौटे त्योंही प्रिय पतिके मृतक शरीरपर प्राणोंतक न्योंछावर करनेका दृढ निश्चय रखने वाली उन हरिणियोंने स्वकीय जीवन ममताका परित्याग कर उनका पारितिक मार्ग अवरुद्ध किया। वे निर्भीक हुई उनके चौंतरफ चक्राकारसे चक्र लगाती थी । तथा अपने विस्तृत नयनोंके करुणोत्पादक निरन्तरावलोकनसे वे ऐसा भाव प्रकट कररही थी मानों यह कहरहीं हैं कि या तो प्राणनाथको सजीव कर छोडो । अन्यथा हमारे भी प्राणोंका हरण कर प्रिय पतिके साथ ही हमारी यात्रा समाप्त करो । उनका प्राणनाथके विषयका यह अकुतोभय व्यवहार देखकर भर्तृजी तथा उसके सार्थी समस्त चकित होगये । और अपनी धृष्टताके साथ २ स्वकीय आरम्भित कृत्यपर कुछ लज्जित हुए भी मृगियोंके अभ्यर्थना पूर्ण व्यवहारकी उपेक्षा कर उनकी पंक्तिके

अभिमुख घोड़े भगाते हुए आगे बढनेका प्रयत्न करने लगे। इतना होनेपर भी पतिके अभावमें सजीव रहना निष्प्रयोजन समझने वाली उन मृगियोंने अपना साहस नहीं छोड़ा। और उनका मार्ग अवरुद्ध करनेमें वे अनवरत प्रयत्न करती रही। साथ ही अपनी आन्तरिक अभ्यर्थना द्वारा ईश्वरीय अनेक गुणगायन पूर्वक अपने मरण वा पतिके विमोक्षणकी याचना करती रही। सौभाग्य उनकी अभिलाषा पूर्ण हुई। कुछ कालसे तोरनमाल पर्वतपर निवास करने वाले महात्मा श्रीमद्योगन्द्र गोरक्षनाथजी, जो कि भर्तृको उसके उद्देशित पथमें प्रेरित करनेकी ताकमें बैठे हुए अवसरकी प्रतीक्षा कररहे थे, अकस्मात् इधर आ निकले और सम्मुखीन मार्ग तय करते हुए उन्होंने जब भर्तृ और हरिणियोंके इस दयामय वृत्तान्तको देखा तब तो उन्होंके अपूर्व प्रसन्नता उत्पन्न हुई। तथा उन्होंने निश्चय करलिया कि इस घटना विषयमें कोई युक्ति दिखला कर भर्तृके वैराग्य उत्पन्न कर अपना आगमन सफल करेंगे। अतएव उन्होंने कुछ पादक्रम पर्यन्त अग्रसर हो भर्तृको सम्बोधित किया कि अये महानुभाव! क्या इस मृगके हननसे पहले तुझे यह विचार भी हुआथा कि इसके वियोगमें इन अनल्प मृगिकाओंकी क्या गति होगी। यदि हुआ था तो किस प्रकार तू पाषाणसे भी कठिन हृदय कर इस निष्ठुर कृत्यमें प्रवृत्त हुआ। यदि नहीं हुआथा तो तुझे चाहिये कि इस मृगके विषयमें अपने आपकी तुलना करे। यदि आज तुझे ही कोई तेरे प्राणोंसे विरहित कर दे तो कहिये तेरी उन अनेक राणियोंका, जोकि तुझे प्राप्त हो अपने ऐहलौकिक स्वर्गोपम भोगको सार्थक कररही हैं, क्या समाचार उपस्थित हो। क्या ऐसा होनेसे उनके लिये समस्त संसार अन्धकारमय नहीं प्रतीत होगा। क्या उनका अपरिमित आमोद, जोकि आज विस्तृत होरहा है, समस्त मिट्टीमें नहीं मिल जायेगा। ठीक यही दशा अब इन मृगिकाओंकी हो रही है। जो स्वामीके विरहमें अपने प्राणोंतकको परवाह न करती हुई इस आत्यन्तिक करुणोत्पादक अभिनयको उपस्थित कररही हैं। आश्चर्य है इतना होनेपर भी तुम्हारा निष्ठुर हृदय किञ्चित् भी द्रवीभूत नहीं होता है। यह सुन भर्तृराजाने कहा कि महाराज! आप जानते हुए भी क्यों भूल करते हैं। यह आखेट करना तो राजेलोगोंका स्वाभाविक कृत्य है। इसमें साधारण लोगोंने ही नहीं श्रीरामचन्द्रादि माननीय महानुभावोंने प्रवृत्ति कर इसके स्वाभाविक होनेकी आत्यन्तिक पुष्टि की है। फिर कोई कारण नहीं कि हमलोग ऐसे कृत्यमें घृणा उत्पन्न कर विरामी हो जायें। इसके प्रत्युत्तरार्थ फिर श्रीनाथ-जीने कहा कि खैर यह वार्त्ता रहो। राजेलोगोंका यह कृत्य स्वाभाविक है अथवा नहीं इस विषयमें हम अधिक वादाविवाद नहीं करना चाहते हैं। किन्तु हमारा तो केवल यही कहना है कि अनेक हरिणियोंकी कामना पूर्ण करने वाला यह एक ही मृग था जिसका तुम वध कर चुके हो। अब इसके अभावमें हरिणियोंका कोई आधार नहीं कि जिसके

आश्रित हो ऐहलौकिक आनन्दका अनुभव करती हुई ये अपने जीवनको सफल समझें। अतएव जहां ऐसी दशा उपस्थित होती हो वहां ऐसा स्वाभाविक कृत्य भी अनुचित समझा जाता है। अनुचित ही नहीं ऐसे कर्मका आरम्भ करनेवाला पुरुष महान् अनर्थी शब्दसे व्यवहृत किया जाय तो कोई असङ्गत वात नहीं है। यही सूचित करनेके लिये हमको प्रकृत प्रस्ताव कहनेका साहस करना पडा है। तदनु कुछ मुस्करा कर फिर राजाने कहा कि भगवन्! खैर हम आपके कथनकी उपेक्षा नहीं करते है। और भविष्यमें जो आखेट करेंगे उस समय इस विषयका वहुत ध्यान रक्खेंगे। जिससे आज जैसा अनर्थ उपस्थित न हो सकेगा। परन्तु करें क्या यह जो अनर्थ हो गया इसका परिहार करनेके अनुकूल हमारे समीप कोई सामग्री नहीं; हां हो सकता है आप महात्मा हैं। परोपकारके लिये ही देशाटन करते हैं। न कि स्वार्थके लिये। अतएव इस मृतक मृगको सजीव करदें तो हमलोग इस परिवादसे मुक्त हो आपका गुण गायन करेंगे। और ये मृगी भी, जिनके ऊपर आकस्मिक वज्रपात हो गया है, आपका हृदयसे गुणानुवाद करेंगी। भर्तृजीकी यह तर्क गर्भित वाणी सुनकर श्री नाथजीने समझ लिया कि इसका अनुकूल अदृष्ट ही इसे प्रेरितकर यह तर्कना करवा रहा है कि कोई चमत्कार दिखलाओ जिससे इसके वैराग्य उत्पन्न हो। और यह अपने औद्देशिक पथपर पदार्पण करे। अतः श्रीनाथजीने उच्चस्वरसे कहा कि अच्छा इसे घोडेसे नीचे डालो हम इसको ताश्वस्थ्य दशामें नियुक्त करते हैं। यह सुन वे चकितसे होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे। और उन्होंने कुछ हंसी सी समझ कर जो वचन कह डालाथा उसकी सचमुच पूर्ति होनेके लक्षण दिखाई देने लगे। आखिर ऐसी ही दशामें कुछ सोच विचारके अनन्तर विवश हो उन्होंने अश्वारोपित मृगको मुक्त कर नीचे डाल दिया। उधर श्रीनाथजी तैयार खडे हुए अपनी भस्मपेटिकामें हस्त डालही रहेथे जिन्होंने सजीव मन्त्रका जाप कर कुछ भस्मी उसके ऊपर छोडी। तत्काल ही वह प्रधावित हो शीघ्रताके साथ मृगिकाओंमें जा सम्मिलित हुआ। यह देख हरिणियोंके आनन्दकी सीमा न रही। वे समस्त एक वार ही श्रीनाथजीकी ओर निहार कर, मानों उन्होंने प्रत्युपकारार्थ हार्दिक धन्यवाद प्रयुक्त किया है, अपने प्राणनाथको प्राप्त हो वहांसे स्थलान्तरके लिये अपसरित हुई। इधर इस घटनाने भर्तृजीका मर्मस्थान बींधकर उसे ऐसा कर दिया मानों किसीने उसका जीवात्मा पकड़ कर वहिर निकाल लिया हो। यही कारण था वह कुछ देर तक निश्चेष्टसा होकर पाषाणप्रतिमामें परिणत हुआ। ठीक इसी अवसरपर श्रीनाथजीकी दृष्टि एकाएक उसके चेहरेपर पड़ी। तत्काल ही कुछ मुस्कराते हुए उन्होंने कहा कि क्यों क्या बात है। तुम्हारा कथित वचन सार्थक हुआ। जिससे तुम अनर्थ कारित्वसे विमुक्त हुए। ऐसी दशामें तुम्हें उचित नहीं कि शिथिल मुख कर शोकीय

अवस्थाका परिचय दो। श्रीनाथजीके इस कथनकी समाप्तिके साथ ही कुछ अवधानित हो घोड़ेकी खलिन दूर फेंककर वैरागी भर्तृजीने महात्माजीके चरणयुगलका आश्रय लिया एवं कहा कि भगवन्! मैं शोकवान् नहीं हुआ हूं। कारण कि वस्तुके नष्ट होनेपर शोकका सम्भव हो सकता हैं न कि प्राप्ति होनेपर। आपने तो उस वस्तु की, जो हमारे द्वारा नष्ट हो चुकी थी, पुनः प्राप्ति की है फिर शोक किस बातका जिसको मैं अपने आपमें आश्रय दूं। प्रत्युत इस बातसे, कि हम जो अनर्थ कर बैठे थे उसका आपने निवारण किया, मुझे महान् आनन्द प्राप्त हुआ है। और विश्वास होगया है कि यह आनन्द केवल आपके वेषमें ही है न कि राज्योपभोगमें। अतएव मैं अब आपकी शरण छोडकर राजकार्योंमें प्रवृत्त होनेके लिये तैयार नहीं हूं। मुझे आशा है आप मेरी प्रार्थनाको वापिस लौटानेका प्रयत्न न करेंगे। और मुझे अनुगृहीत कर मेरे गन्तव्य मार्गको निष्कण्ट बनानेकी कृपा करेंगे। श्रीनाथजी यद्यपि इसी कार्यके लिये यहां आयेथे। और चाहते थे कि ऐसा अवसर उपस्थित हो जिसमें भर्तृका अन्तःकरण वैराग्यकी धाराओंसे परिपूर्ण हो जाय। तथापि उसके मर्मस्थानमें इससे भी अधिक जो चोट लगचुकी थी वह श्रीनाथजीसे छिपी नहीं थी। और वह यह थी कि भर्तृका मन सदैव अपनी प्राणप्यारी पतिव्रता पिङ्गला राणीमें उलझा रहता था। इसका कारण पिङ्गलाके यथार्थ पातिव्रत्य धर्मादि अनेक गुण थे। अतएव सम्भव था कि इस अवसरके वीतनेपर भर्तृको उसका अवश्यम्भावी स्मरण हो आनेसे वैराग्यमें शिथिलता उपस्थित हो जाती। इसी हेतुसे उसको धैर्यका अवलम्बन कराते हुए श्रीनाथजीने कहा कि हां अवश्य जैसा तुम कहोगे वैसा ही किया जायेगा। परं ऐसा करनेमें राणियोंकी सम्मति आवश्यकीया है यदि वे मुझे आज्ञा प्रदान कर शाप हेतुक आशङ्कासे रहित कर देंगी तो मैं तुझे अपना शिष्य बनानेमें कुछ भी विलम्ब न करूंगा। यह सुन राजा स्तब्ध नेत्र हो निराशा प्रकट करने लगा। कारण कि इस बातके लिये राणियोंका स्वीकार करना उतना ही असम्भव था जितना कि चेंटीके लिये समुद्रका पान करना। अतएव हतभाग्य भर्तृको इस अवसरमें अपनी आशालताके हरित होनेका लक्षण नहीं दिखाई दिया। और उपायान्तराभावसे विवश हो श्रीनाथजीके सहित ही नगरमें जानेके लिये वाध्य हुआ। वहां जानेपर श्रोत्रपरम्परा द्वारा ज्योंहीं प्रकृत घटनाका सञ्चार नगरमें सञ्चरित हुआ त्योंहीं अनेक नर–नारी उपस्थित हो श्रीनाथजीकी वन्दना करनेमें दत्तचित्त हुए। उधर प्रासादमें सूचना भेजनेपर जो सम्भव था वही हुआ। राणियोंने विशेष करके पिङ्गलाने तो यहांतक प्रण करलिया कि राजाके वियोगमें मैं अपने प्राणोंतकको नहीं रख सकती हूं। अतः मुझे सजीव रखना है तो उसका यही उपाय है कि राजासाहिव मुझसे विरहित न हों। यह सुन भर्तृजी वडी चिन्तामें पडे। इधर पतिव्रता

रानीके शापका भय तो उधर श्रीनाथजीके सम्मुख जो वचन कहडाला उससे विमुख होनेपर उपस्थित होने वाली लज्जाका भय उसे नतानन बना रहा था। अन्ततः विभ्रान्तःकरण हो कर भी उक्त हेतुसे, विशेष करके श्रीनाथजीके प्रबोधित करनेसे, किसी प्रकार उसने फिर राज्यभारको, जो कि एकवार आन्तरिक भावसे त्याग दिया था, ग्रहण करलिया। ऐसा होनेसे राजप्रासादमें फिर आनन्दकी लहर उडने लगी। राणियोंने श्रीनाथजीके इस निरीह व्यवहारपर कृतज्ञता प्रकट कर असंख्य धन्यवाद दिये। और प्रत्युपकारार्थ सेवा शुश्रूषा करनेकी अभिलाषासे उन्होंने श्रीनाथजीके कुछ दिन वहीं निवास करनेके लिये विशेष आग्रह किया। यही आग्रह राजासाहिव और इस अवसरपर उपस्थित होने वाली गोपीचन्दकी जन्मदात्री प्राथमिक राजाकी पुत्री भर्तृजीकी धर्मभगिनी मैनावतीका भी था। यह अत्यन्त चतुर तथा अपूर्व श्रद्धावाली थी। इसकी भक्तिकी पराकाष्ठा देखकर श्रीनाथजीने विवश हो कुछ मासतक उज्जयिनीमें विश्राम करना हीं पड़ा। अनन्तर मैनावतीको, आवश्यकता पड़नेपर हमारा स्मरण करना हम उपस्थित हो शीघ्र सहायक होंगे, यह वचन देकर आपने तोरनमालके लिये फिर प्रस्थान किया। इधर राजासाहिव द्विविधा विचारसे ग्रसित हुए राज्य कार्योंका निर्वाहन करने लगे। कभी राज्य विषयक समस्यामें दत्तचित्त होते थे तो कभी उस घटनाका स्मरण कर खिन्न मनोरथ हो जाते थे। और अपनी अभिलाषा निष्फल होनेका हेतु स्वकीय पत्नी पिङ्गलाको प्रमाणित करते थे। एक दिन इसी विषयका अधिकार लेकर भर्तृजीने पिङ्गलासे कहा कि तूने अपने पातिव्रत्यकी घोषणा कर मेरे प्रवृद्ध वैराग्यमें उस दिन आघात पहुँचा दिया। जिससे मेरी वह प्रतिज्ञा, जो कि मैंने गोरक्ष-नाथजीके सम्मुख करी थी, व्यर्थ हुई। उसका स्मरण होते ही मुझे आत्यन्तिक लज्जाका सामना करना पड़ता है इतना होनेपर भी यदि तुझे त्वदीय पातिव्रत्यकी वास्तविकताका कोई प्रमाण मिलजाय तो मैं उस लज्जास्पद वृत्तान्तकी उपेक्षा कर तुझे धन्यवाद दे सकता हूं। कारण कि स्त्रीचरित्र बड़ा ही दुर्भेद्य होता है। शास्त्रकारोंने जहांतक उनकी बुद्धिका प्रसार हुआ है इस विषयपर खूब जोर डालकर मनुष्योंको सचेत किया है। अतएव ऐसा न हो कभी मैं तेरी झूठी धमकी के विवश हो उस कल्याण मार्गसे वञ्चित रहता हुआ संसारमें अपने आपको कलङ्कित कर बैठूं। यह सुन पिङ्गलाने ओजस्विनी भाषासे उत्तर दिया कि स्वामिन्! जो अवसर हस्तसे निकल गया उसके विषयमें पश्चात्ताप करना बुद्धिमानोंका काम नहीं है। रहगई मेरे विषयमें सन्दिग्ध होनेकी बात, इसके लिये मैं साभिमान कह सकती हूं कि मैं पतिव्रता ही नहीं पतिव्रताओंमें अग्र गणनीया हूं। जो स्त्री हठसे पतिके मृतक शरीरके साथ चितामें भस्मसात् हो जाती हैं वे संसारमें पतिव्रता कहलाने योग्य हैं सही पर उनकी द्वितीय स्थानमें गणना होती है। प्रथम स्थानिक स्त्री

वे ही हो सकती हैं जो पतिके प्राणपखी होनेपर तत्काल ही विना किसी विशेष उपायके अपने प्राणोंको भी उसी दशामें परिणत करदें। ठीक मैं भी एक इन्हीं स्त्रीरत्नोंमें गिनी जा सकती हूं। आप चाहें तो कभी इस विषयमें मुझे परीक्षित कर सकते हैं। यह सुन कुछ मुस्कराकर भर्तृजीने कहा कि नहीं २ बस परीक्षा होगई मुझे तेरे इस सत्यता पूर्ण वाक्यसे ही निश्चय होगया कि तू यथार्थ पतिव्रता है। परन्तु उसको इतना विश्वास दिलाकर भी भर्तृजीने अपने गूढ रहस्यको अपने अन्तर छिपायें रक्खा। और कभी अवसर प्राप्त होनेपर पिङ्गलाके ओजस्वी वाचनिक वृत्तान्तके निरीक्षण करनेका विचार स्थिर किया। इसी विषयकी ताकमें दत्तचित्त हुए भर्तृजीके कुछ मास व्यतीत हुए। एक दिन जब कि मृगयाके लिये अपने सहकारियोंके सहित भर्तृजी वनमें गये तब उसके सहसा इस बातका स्मरण हो आया। अतएव उसने एक मृग मारकर उसके रुधिरमें अपने वस्त्र प्लावित किये। और उनको इस सन्देशके साथ, कि राजासाहिब सिंहके द्वारा मारे गये उनकी यह सूचना है, प्रासादमें भेज दिया। राजपुरुष स्वामीके मरण सूचक चिन्ह स्वरूप वस्त्र लेकर ज्योंही महलमें पहुँचा त्योंही राणियोंके करुणास्वर क्रन्दनसे एकवार ही प्रासाद गूञ्जारित हो उठा। इस आकस्मिक विस्मापक अशुभ शब्दको श्रवण कर समीप देशस्थ श्रोतालोग आत्यन्तिक शोकान्वित हुए। और उन्हेंमेंसे जो प्रासाद प्रवेश विषयमें अप्रतिहत गति थे उनलोगोंने सम्भव उपायों द्वारा राणियोंको धैर्यावलम्बन करानेका प्रयत्न किया। परं इतनी देरतक स्थित रहकर पिङ्गला राणी उनकी वाक्यरचनाके श्रवण करनेका साहस न कर सकी। उसने पतिका मरण सुनते ही दो वार दीर्घश्वास लेकर अपनी ऐहलौकिक यात्रा समाप्त कर दी। यह वृत्तान्त भी राजाके मरण समाचारके साथ २ ही नगरमें विस्तृत होगया। इन आकस्मिक दो असाधारण मृत्युओंने नगरमें ऐसी हलचल उपस्थित की जैसी कि कभी पूर्व न हुई थी। नगरके प्रासादोंपर उड़ने वाली वे रङ्ग विरङ्गी पताकायें, जो कि राजाके आखेट प्रस्थान समय चढाई गई थी, समस्त उतार दी गई। इनसे अतिरिक्त अन्य कितने ही ऐसे चिन्ह जो कि नगरके शृंगार रूप थे समस्त हटा लिये गये। जिससे कुछ ही देरमें राजधानी उज्जयिनी आभूषण हरे जाने वाली धनाढ्य घरकी स्त्रीके रूपमें परिणत हुई। और राजाके मृगया प्रस्थानीय उपलक्ष्यमें जिन २ स्थानोंमें प्रातःकाल अनेक माङ्गलिक वाजे वाज रहे थे। तथा अनेक प्रकारसे दान पुण्य किये जा रहे थे उन स्थानोंमें अव ऐसी उदासीनता छा गई थी कि जो देखता था उसीका मन रोपसे उमड़ आता था। ऐसी ही दशामें अपने गुप्त रहस्यके द्वारा राजासाहिब भी वहां आ पहुँचे। और नगरकी प्रातःकालिक शोभासे विपरीत दशाको देखकर स्वयं विस्मित हुए अपने सजीवत्वसे लोगोंको अत्यन्त हर्षित बनाने लगे। यह देख थोडी ही देरमें नगरकी फिर वहीं शोभा

उपस्थित हुई। परन्तु चकित हुए राजासाहिबको यह द्विवारी शोभा किञ्चित् भी रञ्जित न कर सकी। क्योंकि उसने ज्योंही प्राणप्रिया सत्यवादिनी अपनी पिङ्गला राणीका मरण श्रवण किया त्योंहीं वह इतना दुःखी हुआ जिसके दुःखका परिमाण लिखना लेखनीकी शक्तिसे बहिर है। यही कारण था वह अपने राजत्व अभिमानका विस्मरण कर. हा पिङ्गला २ आदि नैरन्तर्य शब्द धाराको प्रवाहित करने लगा। यहांतक कि पिङ्गलाको अपनी उत्सङ्गारोहिणी बनाकर उसके पूर्वाचरित आनन्द प्रद चरित्रोंका उद्घाटन करने लगा। इसी कृत्यमें तत्पर हुए उसके दो दिन बीत गये। परं वह शान्त होनेके बदलेमें उत्तरोतर अधिक क्लेश प्रकट कर प्रमत्त जैसा व्यवहार करने लगा। और जब राणीके शरीरमें दुर्गन्धका सम्भव होने लगा और किसी प्रकार राजपुरुषोंने उसका उचित रीतिसे अग्निसंस्कार कर दिया तब तो राजाने श्मशानोंमें ही डेरा डाल दिया। कुछ ही दिनोंमें खानपानसे रहित हो हा पिङ्गला २ रटते हुए राजासाहिबकी अस्थि शेष रह गई। यह देख समस्त राजकीय पुरुष अत्यन्त क्लेशमें पडे, और उन्होंने इस जटिल समस्याके हल करनेके लिये नर्मदा तटपर निवास करने वाले विक्रमको बुला भेजा। उसने अविलम्बसे उपस्थित हो भर्तृजीके समझानेमें कुछ उठा न रक्खा। परन्तु वह अपने अवलम्बित पथसे एक कदम भी विचालित न हुआ। अनन्तर उसकी समग्र राणियोंने भी उसके समझानेमें अकथनीय साहस प्रदर्शित कर अपने भाग्यकी परीक्षा की। इतना होनेपर भी जब वह टससे मस न हुआ तब तो उसकी समस्त राणी उसके ऊपर इस बातका अधिकार लेकर. कि राजासाहिब हम सबकी उपेक्षा कर एक पिङ्गलाके ही पीछे प्राण त्यागते है, असन्तुष्ट हो गई। और क्लेशाधिक्यसे विवश हो उनकी भावना यहां तक जागरित हो गई कि राजा साहिब इससे अधिक दुःख न देकर अब अपनी ऐकलौकिक यात्रा समाप्त कर दें तो कहीं अच्छा है। ठीक ऐसे ही अवसरपर दीनबन्धु भगवान् श्रीमद्योगेन्द्र गोरक्षनाथजी रूपान्तर धारण किये हुए अकस्मात् इधर आ निकले। एवं जब कि वे श्मशानोंके समीपसे प्रस्थान कर रहे थे तब उन्होंने अपना एकपात्र, जोकि उनके समीप था, पृथिवीपर छोड दिया। वह तत्काल ही भूमिपर गिरते ही अनेक खण्डोंमें परिणत हुआ। यह देख श्रीनाथजीने भी हा पात्र २ शब्दकी उच्चस्वरीली घोषणा कर भर्तृजीकी तरह अपने आपको क्लेशमें डाल दिया। वे भङ्गीभूत पात्रके टुकडोंको उठाते और उन्हें सम्मिलितकर तादवस्थ्य पात्र बनानेका प्रयत्न करते थे। एवं पात्रके तादृश न बननेसे उक्त शब्दकी घोषणाको अधिकाधिक घोषित करते थे। उनके एक तुच्छ वस्तुके लिये इस प्रकार अपने आपको क्लेशित करते हुए देख भर्तृजीका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। और उसके इस घटनाका निर्णय करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई।

अतएव वह अपना आरम्भित कृत्य परित्यक्त कर कुछ पादक्रम अग्रसर होता हुआ श्री नाथजीके निकट आया । और पूछने लगा कि अये, भिक्षुक ! कहिये यह क्या बात है एक क्षुद्र चीजके लिये, जो कि विना ही दांमोंके हरएक जगहपर मिल सकता है, इस प्रकार अपने आत्माको दुःखित कर रहे हो । यदि अभी नगरमें जाकर आप कुम्भकारोंको इस वृत्तसे विज्ञापित करें तो वे कितने ही ऐसे पात्र आपके समर्पण कर देंगे । ऐसी दशामें मैं नहीं समझता कि एक ऐसी मामूली वस्तुके विषयमें आपका इतना क्लेशित होना कहां तक उचित है । यह सुन श्रीनाथजीने कहा कि यद्यपि यह ठीक है ऐसे पात्र अनेक मिल सकते हैं । तथापि वे इसकी तुलनासे तुलित नहीं हो सकते हैं । कारण कि यह बहुत कालसे हमारे समीप था । इसके अनुकूल आरामाधिक्यसे हमारा इसमें इतना स्नेह हो गया था जिसका कोई पारावार नहीं । अतएव हमको जितना यह रञ्जित करता था उतना कोई दूसरा नहीं कर सकता है । यही कारण है हम आत्यन्तिक प्रीति दिखला कर इसके उपकारका बदला चुका रहे हैं । तदनु फिर भर्तृजीने कहा कि तथापि यह एक तुच्छ और जड़ वस्तु है इसका आपके विषयमें कोई उपकार नहीं बन सकता है । कारण कि किसी भी प्रकारका कोई उपकार कर सकता है तो वह चेतनाश्रित प्राणी ही कर सकता है । और उसके प्रत्युपकारार्थ उपायका अवलम्बन करना मनुष्यके लिये समुचित कार्य है । ऐसा करनेवाला मनुष्य लोक दृष्टिसे भी भूल नहीं कर रहा है । क्यों कि उपकारी और प्रत्युपकारी दोनो ही चेतन हैं । एकके उपकारको दूसरा समझनेकी शक्ति रखता हुआ प्रत्युपकार करनेकी अभिलाषा करता दीख पडता है । ऐसी दशामें प्रत्युपकारके भ्रमसे आपने अपरिमित कष्ट ही उठाया तो कहिये उसका इसको क्या अनुभव होगा । अतएव आपको योग्य है कि आप इस हास्यास्पद कृत्यसे विरामी हो जायें । यदि मार्तिक पात्र आपको इस जितना रञ्जित नहीं कर सकता है तो मैं राजतिक वा काञ्चनिक अथवा इससे भी अधिक रत्न जडित पात्र बनुवा कर आपके समर्पण करदूंगा । जो इसकी विस्मृति उपस्थित कर आपके अपूर्व प्रसन्नता उत्पन्न करेगा । यह सुन कर श्रीनाथजी बोले कि राजन् ! तुम भूल कर ऐसा कह रहे हो । तुम्होरेमें इतना सामर्थ्य नहीं कि तादृश वस्तु तैयार कर हमको प्रसन्न कर सको । अतः हमको अपने कृत्यमें लगे रहने देकर तुम अपने कार्यमें दत्तचित्त हो जाओ । हां हो सकता है यदि तुम कहोतो हम तुम्हारी उस वस्तुको, जिसके वियोगमें तुम अपने प्राणों तकको न्योछावर करनेका सङ्कल्प कर चुके हो, तैयार कर सकते हैं । आपका यह अमृतायमान वचन सुनकर राजा समझ गया कि मैंने जो इन महात्मा को एक साधारण भिक्षुक समझा था यथार्थमें ये वैसे नहीं हैं । प्रत्युत मालूम होता है कोई गुप्त चरित्र योग्य महात्मा हैं । और कोई ऐसी क्रिया जानते

होंगे जिससे अपने कथनकी सफलता दिखला सकें। अतएव उसने प्रसन्न मुखसे कहा कि भगवन्! मैं तो उस वस्तुके निमित्त, जो कि आज इस लोकमें नहीं दीख पडती है, अपना शरीर नष्ट किये जा रहा हूं। और ठीक ऐसा करता हूं। क्यों कि पिङ्गला सौन्दर्यादि अनेक गुणोंसे चित्ताकर्षण करनेवाली होनेपर भी एक अद्वितीय पतिव्रताथी। इसलिये कृपया आप मुझे फिर उसकी उपलब्धि कर दें तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है। मैं तो समझता हूं कि आप सचमुच ऐसा कर एक जीवदान देते हुए अन्नय्य यश प्राप्त कर सकेंगे। यह सुनकर श्री नाथजीने निर्दिष्ट समय पर्यन्त उसे नेत्र बन्ध रखनेके लिये आज्ञा दी। उसने वैसा ही किया। आपने सृष्टिरचनानुकूल विधिका अनुष्ठान कर पिङ्गलानुकारिणी अनेक स्त्रियोंका आविष्कार करनेके साथ २ भर्तृके पूर्वावलोकित अपने यथार्थ रूपको भी प्रकट किया। और भर्तृको नेत्र खोल अपनी पिङ्गलाके अपनानेका वचन देनेके साथ २ यह भी कह सुनाया कि अमुक ही पिङ्गला है, ऐसा यथार्थ निश्चय किये बिना तुम किसीको भी हस्तगत नहीं करने पाओगे। अतः प्रथम दृढ निश्चय करलेना आवश्यकीय है। आपकी इस आज्ञाका प्राप्त हो आनन्दित हुआ भर्तृ ज्यों ही उधर देखने लगा त्यों ही उसकी दृष्टि अनेक पिङ्गलाओंके ऊपर पडी। जिनका दृश्य सर्वथा अविशेष था। इसीलिये जब कि वह अधिक देर तक सन्निहित दृष्टि हुआ भी तादृश निश्चय न कर सका तबतो कुछ विस्मित और निराश हुआ महात्माजी की ओर देखने लगा। परं वे भी अब उस साधारण भिक्षुकीय दशामें न थे, अतएव उसने जिस क्षणमें आपके मुखारविन्दपर दृष्टि डाली उसी क्षणमें चरणारविन्दका भी स्पर्श किया। बस यही अवधि थी जबतक कि पिङ्गलाका स्नेह उसके मर्मस्थानमें असाधारण चोट पहुँचा रहा था। अब श्री नथाजीका आकस्मिक दर्शन कर पूर्वीय घटनाके स्मरणसे वैराग्यान्वित हुआ भी वह परम वैरागी हो गया। और कह उठा कि भगवन्! क्षमा कीजिये इस अवधिसे पूर्व जो कुछ हुआ वह सर्वथा अकथनीय है। आजसे आगे आपके चरणारविन्दके अतिरिक्त मेरा कोई आश्रय नहीं हो सकता है। मैंने भूलकी जो एक स्त्रीके पीछे, जिसका कि कभी न कभी वियोग होना अवश्यम्भावी था, अपने आत्माको इतना क्लेशित किया। जब आप ऐसे गुरु विद्यमान हैं जिनकी मुट्ठीमें अनेक पिङ्गला निवास करती हैं तब आपको छोड अन्यत्र भटकना मुझे मूर्खताका परिचय देना है। तदनु श्रीनाथजीने अपनी कृत्रिम मायाका संहार कर कुछ ऐसे वाक्य प्रयुक्त किये जिनसे भर्तृजीके वैराग्यकी मात्राओंका अनुमान हो जाय। परं अब वह बात नहीं थी, वैराग्यात्मक अग्निसे भर्तृजीके चित्तात्मक

पाठक गण, भर्तृजीके वैराग्यान्वित होनेका और उसके अनेक होनेका जो लोगोंमें विवाद है इसका निर्णय आपको आगे मिलेगा। देखिये विविध विषयमें, भर्तृनाथजी, यह प्रतीक।

बीजकी अङ्कुरित होनेवाली शक्ति दग्ध हो चुकी थी। इसीलिये श्रीनाथजीके एक दो वार नहीं २ करनेपर भी उसने शिष्य होनेके विषयमें विशेष आग्रह किया। यह देख विक्रम तथा अन्य समस्त प्रधान राजकीय पुरुषोंको निश्चय हो गया कि यह अब हमारे हस्तगत रहनेवाला नहीं है। अतएव उन्होंने भी भर्तृको आश्रय देनेके लिये श्रीनाथजीसे अभ्यर्थना की। और कहा कि भगवन्! आपके जनोद्धारक पवित्र उपदेशसे सम्भव है इसकी दशा सुधर जायेगी। जिससे इस स्नेहात्मक पाशसे विमुक्त हो यह अपने आगमिक मार्गको स्वच्छ कर सकेगा। अन्यथा हमें सूझ पडता है यह इसी प्रकार अपने प्राणोंकी अन्तिम दशा देखेगा। इस वास्ते आपको उचित है कि इसे स्वीकार करलें। श्रीनाथजी यह चाहते ही थे। और इसीलिये यहां आये भी थे। अतएव आपने अनुकूल अवसर देखकर उसके अङ्गीकार करनेके साथ २ उपस्थित लोगोंको आशीर्वाद दे वहांसे प्रस्थान किया। जो कुछ दिनके अनवरत गमनके अनन्तर आप वदरिकाश्रममें पहुँचे। वहां जाकर आपने प्रियपात्र परम वैरागी भर्तृको भर्तृनाथ, वनाया। और योग साधनीभूत वास्तविक दीक्षासे दिक्षित कर उसे योगेन्द्र बनानेका प्रयत्न किया। वह तो प्रथमतः ही योगी ही नहीं योगेन्द्र था। अतएव गुरुजीके इसारे मात्रसे ही समस्त ग्राह्यानुकूल क्रियाओंमें शीघ्र निपुणता प्राप्त कर वह उनसे उत्तीर्ण हुआ। यह देख परम हर्षित हो श्रीनाथजीने उसे अमर होनेका आशीर्वाद दिया। और उसको योगका यथार्थ तत्त्व समझानेपर भी आत्मिक विद्याका मर्म वतलाना आरम्भ किया।

इति श्री भर्तृनाथ वैराग्य वर्णन नामक ३८ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय ३९ ॥

पाठक महानुभाव ! आप उक्त अध्यायमें भर्तृनाथजीकी धर्म वहिन मैनावतीके नामसे परिचित हो चुके हैं । यही श्रीमती स्वकीयश्वशुरालनिष्ठ महात्मा ज्वालेन्द्रनाथजीके अमोघसत्सङ्गसे सांसारिकव्यवहार विषयक उपराम तोपहित होती हुई भी भर्तृसम्बन्धी इस अतीत वृत्तान्तसे उस दर्जेतक पहुँची जिसमें समस्त संसार स्वाप्निक पदार्थ प्रतीत होने लगा । इसी कारणसे स्वर्गीय पतिके अनन्तर कुछ वर्षसे एक विस्तृत साम्राज्यकी स्वामिनी होने-पर भी राज्योपभोग उसे किञ्चित् भी रञ्जित न कर सकते थे । और वह स्वकीय कल्याणप्रद मार्गको स्वच्छ बनानेके लिये अधिक समय ईश्वराराधनमें दत्तचित्त रहती थी । यहांतक कि इस परिणामी संसारके अस्थायी पदार्थोंमें निःसारताका अवगमकर जिस प्रकार वह अपने आपको चिरस्थायी बनानेका प्रयत्न कर रही थी उसी प्रकार अपने कुटुम्बके भी स्थायी होनेकी अभिलाषा करती थी। भर्तृ सम्बन्धिनी घटनाके उपलक्ष्यमें पिताके यहां आई हुई मैनावती जब अपनी राजधानीमें पहुँची तब उसने अपने इच पुत्र गोपीचन्दको, जो कि अठारह वर्षकी अवस्थामें प्रविष्ट हो चुका था और कुछ ही दिनसे राज्यासनपर अभिषिक्त हुआ था, इस संसारसागरसे उत्तीर्ण बनानेका सङ्कल्प किया । ठीक उसी रोज, जब कि माताके शुभागमनपर उचित उत्सव प्रकट कर मातुलका समाचार पूछनेके लिये गोपीचन्द माताके चरणारविन्दकी सेवामें उपस्थित हुआ, तब उसके द्रुमिल नारायणका अवतार होनेके कारण दिव्याकृतिमान् होनेपर भी राज्य ऐश्वर्यसे प्रवृद्ध शरीर सौन्दर्यको देख मैनावती प्रथम तो कुछ स्नेहयुक्त हुई । एवं विचार करने लगी कि मेरा पुत्र जैसा कि राजा होना चाहिये ठीक उससे एक कदम भी पीछे न हटकर सर्वथा अनुकूल है । फिर क्या इन भाग्योपलब्ध राज्योपभोगोंकी ओरसे इसको वैरागी बनाकर भिक्षु दशामें नियुक्त करदेना मेरेलिये उचित कार्य है । कभी नहीं । परन्तु कुछ देरके मननोत्तर वह स्नेह ही उसके प्राथमिक मन्तव्यकी पुष्टि करने वाला हुआ । उसने निश्चय किया कि मेरे पुत्रका यह शारीरिक सौन्दर्य, जिसकी समताको हमारे राज्यभरमें ही नहीं संसार मात्रमें भी कोई प्राप्त नहीं कर सकता है, कुछ कालमें

पृथिवीमें मिल जायेगा । जिसका होना न होना समान समझा जाकर इसकी जन्मदात्री होनेके कारण अद्वितीय पुत्र उत्पन्न करनेका जो, मुझे आज महान् गौरव प्राप्त है, यह सर्वथा लुप्त हो जायेगा । इसलिये अच्छा हो यदि भगवान् मेरी मनोऽभिवाञ्छाके अनुकूल ऐसा अवसर उपस्थित कर दें कि मेरा पुत्र योगी हो उस अवस्थामें प्रविष्ट हो सके जिसमें उक्त शोचनीय दशाकी उपलब्धि न हो । ऐसा होनेसे मेरा वह स्वच्छ यश, जो आज प्रत्येक मनुष्यके मुखसे उद्घोषित हो रहा है, चिरतादवस्थ्य बना रहेगा । ठीक इसी विषयक विचारणानुसार उसने उस दिनको उल्लङ्घित कर फिर किसी दिन गोपीचन्द्रका चित्त निर्णीत विषय की ओर आकर्षित करनेके लिये उसको अपने प्रासादमें बुला भेजा । वह सूचना मिलते ही शीघ्रताके साथ पूज्य माताकी चरणच्छायामें उपस्थित हो विनम्र वाक्य प्रार्थना पूर्वक स्वकीय आह्वान निमित्तको पूछने लगा। मैनावतीके जहां इतनी चिन्ता थी कि उसके लिये एकएक दिन भारी हो रहा था और वह सोचती थी कि गोपीचन्द मेरे आदेशको आज स्वीकार करता अब ही स्वीकार कर ले । वहां उसे यह भी सन्देह था कि सम्भव है पुत्र अपनी चढती अवस्थाके कारण, विशेष करके पार्श्ववर्ती इन्द्रियास्वादन लोलुप लोगोंके, मेरे अभिमतसे विपरीत पट्टी पढानेके कारण ऐसे प्रस्तावको स्वीकृत नहीं करेगा । अतएव उसने आत्यन्तिक खेदसूचक अश्रुपात पूर्वक बडी कठिनताके साथ प्राकृतिक प्रस्ताव आरम्भ करने वाला वाक्य अपने मुखसे निकाला । जिसके श्रवण करनेके साथ २ ही गोपीचन्दकी भृकुटी टेढी हो गई । परं वह अपूर्व बुद्धिमती थी । कुछ ही देरमें अपने वाक्यरचनात्मक कौशल्य द्वारा उसका चेहरा साफ कर देनेपर भी उसने उसको विशेष प्रबोधित बनानेका यत्न किया । एवं कहा कि पुत्र ! तुझे दोष नहीं इस समय तेरी अवस्था ही ऐसी है । परं याद रखना मैं जो कुछ कह रही हूं वह इस समय तो अवश्य तुझे प्रतिकूल प्रतीत होगा । तथापि तेरे भविष्यको अनुकूल बनाकर वह अवस्था प्राप्त कर देगा जिसमें प्रविष्ट होनेपर तुझे स्वयं यह मालूम हो जायेगा कि मैं निःसन्देह उस समय इस कृत्यसे नासिका सङ्कुचित कर असाधारण भूल कररहा था । मैं प्रमत्ता नहीं हो गई हूं जो तुझे ऐसी विषम दशामें परिणत कर निष्प्रयोजन महा कष्टमें डालती हूं । किन्तु मैंने सौ वार इस विषयमें परामर्श कर तुझे सावधान कर देना अपना असाधारण कर्तव्य समझा है । मैंनें जिस समय इस नगरीमें पदार्पण किया था उस समय तेरे पितामह राज्यासनपर विराजमान थे जो सर्व कार्यकुशल होनेके साथ २ अतीव रूपवान् थे। जिसकी प्रजाहितैषितासे उपकृत हुए प्रजाजन अनल्प प्रशंसा करते थे। परं खेद है कुछ ही दिनमें मेरे देखते २ उसका शरीर सौन्दर्य, तथा उसकी वह असाधारण कीर्ति, जो प्रत्येक मनुष्यके मुखारविन्दसे उच्चरित होतीथी, सब मिट्टीमें मिलगई । जिसका आज कोई नामतक लेताहुआ नहीं सुना जाता

है। तदनन्तर तेरे पिता सिहांसनासीन हुए। उनका गौरव चरित्र भी अपने पितासे किसी प्रकार न्यून कोटिका नहीं था। परं कुछ दिनके बाद मेरे देखते २ कालचक्रने उनको भी अपने गालमें डाल लिया। जिनका वह समस्त गौरव, जिसके विषयमें वे फूले न समातेथे, आज न होनेकी समान होगया। ठीक यही दशा कुछ दिनमें तेरी भी हो जायेगी। फिर कहिये ऐसे राज्योपभोगोंसे, जिनका गौरव जलीय बुलबुलेकी तरह कुछ ही काल प्रत्यक्ष दिखलाई देकर सर्वदा लीन हो जाता है, क्या वास्तविक लाभ हो सकता है। अतएव तुझे उचित है कि इन अस्थायी राज्योपभोगोंमें विषवत् निरीह होकर अपनी गौरव गरीमा को चिरस्थायिनी बनानेके लिये योगेन्द्र ज्वालेन्द्रनाथजीका शिष्यत्व ग्रहण करले। ऐसा होनेसे मैं जो आज तेरे विद्यमान होनेपर भी अपने आपको वन्ध्याकी तुल्य मान रही हूं पुत्रवती हो जाऊंगी। यह सुनकर गोपीचन्द्रका हृदय उमड़ आया। और इसीलिये वह कह उठा कि मातः! थोडे ही दिनसे राज्यकार्योंका परिचय होनेपरभी मैंने कोई ऐसा नियम प्रचलित नहीं किया जो प्रजाके लिये प्रतिकूल हो। और प्रजाजन उससे दुःखित हो मेरे विषयमें घृणा करते हों। प्रत्युत मेरे कार्यक्रमको देखकर हमारी प्रजा इतनी सन्तुष्ट हुई है कि अपने मुक्त कण्ठसे मेरी प्रशंसा करनेके साथ २ आपको असंख्य धन्यवाद देती है। और कहती है कि गोपीचन्द्रमें जो अपूर्व राजनीति प्रविष्ट हुई है उसका कारण उसके गुण नहीं बल्कि उसकी माताके गुण हैं। कारणकि उस श्रीमतीने अपने पतिके स्वर्गवास होनेके अनन्तर राजनैतिक विषयमें जो असीम चतुरता दिखलाईथी उसीका संस्कार गोपी-चन्द्रमें सञ्चरित है। जिसका प्रमाण स्वरूप गोपीचन्द्रके तादृश प्रजावत्सलतादि अनेक गुण आज हमारी दृष्टि गोचर हैं। अतएव इससे यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि असंख्य धन्यवादास्पद उस श्रीमतीने पुत्रको स्वयं दीक्षित किया है। इसी हेतुसे उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोडी है। देखिये मातः! जिसके राज्य कार्यकौशल्यसे प्रसन्न हुई प्रजा मेरी ही नहीं आपकी भी अपूर्व राजनैतिक पटुताका यहांतक गायन कर रही है, और जिसमें कोई आभ्यन्तरिक ऐसा दुर्गुण प्रविष्ट होगया हो जिससे समय पाकर राज्यकी अथवा कुटुम्बकी अप्रतिष्ठा होनेकी सम्भवना होती हो उसे आजही परित्यक्त कर वह आपकी कृपाका पात्र बननेको तैयार है, ऐसा पुत्र जब मैं आपकी चरणच्छायामें विद्यमान हूं तब मेरी समझमें यह नहीं आता कि आपका वन्ध्या बननेका क्या अभिप्राय है। रह गई कुछ काल में पिता आदिकी तरह मेरे मरणेकी बात, यहतो चक्र अनादिकालसे चलाही आता है। यदि आजही मैं यह सोचकर, कि मुझे कुछ दिनमें मरना है, इन उपभोगोंको, जो बडे भाग्यसे प्राप्त हुए हैं, त्यागकर फिकरमें बैठजाऊं तो मेरा कुछ समय पर्यन्त सजीव रहकर जो महान् आनन्द भोगना है यह भी हस्तसे जाता रहे। और जब मरणेकी अपेक्षा

आजही मेरे सदृश हो जाऊं । इस वास्ते मुझे उचित है जितने आनन्दका जबतक अनुभव कर सकूं उतनेहीसे सन्तुष्ट हो ईश्वरकी महती कृपापर कृतज्ञता प्रकट करूं ! जो कि प्राचीन कालसे हमारे पूर्व पुरुष ही क्या सृष्टिमात्रके पुरुष करते चले आ रहे हैं और आगे भी करेंगे । इसके अनन्तर मैनावतीने कहा कि पुत्र सांसारिक लोगोंके अभिगमनसे जो तेरा मन सम्बन्ध रखता है इसी कारणसे मैं तुझे अबतक अपने सच्चे पुत्रके स्थानमें नहीं मान रही हूं । कारण कि योंतो संसारमें सहस्रों नहीं लक्षों अथवा करोडों स्त्रियें प्रति दिन पुत्र उत्पन्न करती है । जो कुछ सुख और अधिक दुःखके भण्डार बन थोडे ही दिनमें कुत्ते आदि पशुकी मौत मरजाते हैं । जिनके मरणकी देशमें तो क्या ग्रामकी ग्रामतक जान नहीं पडती है ऐसे उन पुत्रोंको जन्म देने वाली स्त्री भी यदि अपने आपको पुत्रवती कहलाने का अभिमान रखती हों तो रक्खें । परं मैं उनको पुत्रवती कहनेके लिये तैयार नहीं हूं । मेरे मन्तव्यके अनुसार तो वही स्त्री पुत्रवती है जिसके पुत्रने किसी असाधारण उचित कृत्यका अनुष्ठान कर संसारके इतिहासका परिवर्तन करनेके कारण अपने आपको अमर बनाते हुए जननीको भी अमर बनाडाला हो । और वह इसी हेतुसे संसारके चिर प्रचलित इतिहासमें अन्य स्त्रियोंके लिये प्रमाण भूत हो गई हो । ठीक इसी मेरे मन्तव्यको सार्थकता प्राप्त करनेके उद्योगमें लगनेका दृढ निश्चय कर प्रकृत प्रस्तावको स्वीकृत कर ले तो मैं आजहीसे तुझे अपना सच्चा पुत्र समझकर अपने आपको पुत्रवती माननेका दावा रखने लगूंगी । अन्यथा नहीं । क्योंकि तूने सावधानताके साथ राज्य ऐश्वर्य भोगते हुए अपनी समुन्नति सूचक कुछ ऐसा भी कोई कार्य करडाला कि जिससे तू प्रजाकी तरफसे और भी इससे अधिक सत्कारका पात्र बन जायेगा । और प्रजाजन मुक्त कण्ठसे तुझे सुना २ कर तेरी प्रशंसा करने लगेंगे परन्तु कबतक जबतक कि तू सजीव रहेगा और उनको इसी प्रकार रञ्जित किये जायेगा । मरणोंके बाद तो आज जिस प्रकार तेरे पिता आदिका यश जैसा नगरकी नाट्यशालाओंमें वर्णित होना होगा वैसा तेरा भी हो जायेगा । सच पूछिये तो जैसे आज उनका होना न होनेकी समान दीखपडता है यही दशा तेरी भी होगी । फिर इस किञ्चित्कालिक अल्प यशको, जो तेरे शब्द मात्रमें ही प्रतीत होता है, देखकर पुत्रवतीके अभिमान पूर्वक मैं अपने आपको धन्य कैसे समझ सकती हूं कभी नहीं. अतएव तुझे योग्य है कि तू उक्त योगिराजका शिष्य बन मेरे अभीष्टकी पूर्ति करे । यह सुन गोपिचन्द्रने कहा कि मातः ! मुझे जिस कृत्यमें प्रविष्ट करनेका आप अनुरोध कर रही हैं उसके विषयमें यद्यपि मैंने स्वयं तो ऐसा निश्चय प्राप्त नहीं किया है कि उसका अवलम्बन करनेसे मुझे अवश्य कोई असाधारण लाभ होगा तथापि आप मेरी पूज्य माता है । आपके लिये संसारमें अधिकसे अधिक कोई प्रिय वस्तु है तो वह मैं ही हो सकता

हूं। अतएव केवल इसी आनुमानिक विचारपर विश्वास कर कि आप जिस कार्यमें मुझे प्रेरित करती हैं वह अवश्य ऐसा होगा जो मेरे कल्याणका हेतु बन जायेगा। और उसकी वास्तविकताका अनेकबारके मनन द्वारा आपने निश्चय भी प्राप्त किया होगा। ऐसी दशामें मुझे यह उचित नहीं कि मैं आपके परामर्शमें किञ्चत् भी ध्यान न दूं। और आपकी इस प्रैतिक प्रेरणा की सर्वथा उपेक्षा कर अपनी महती मूर्खताका परिचय दूं। अतः मैं उक्त विचारके आधारसे आपके अभिमतका अनुगामी होता हुआ भी केवल नीतिकी रक्षाके लिये इष्ट-जनोंकी सम्मति प्राप्त करूंगा। एवं परिपद् निर्णयके अनन्तर आपको इस विषयकी निश्चयात्मक सूचनासे सूचित करूंगा। इस कथनके उत्तर माताका हार्दिक आशीर्वाद लेकर गोपीचन्द अपने निवास भवनमें गया। और आमात्यजनोंके परामर्शानुसार एक सभाका निर्माण कर उसमें माताके मन्तव्यको प्रकटित किया। जिसको श्रवणकर उपस्थित लोग चकित हो गये। उनके ललाटमें यह बात नहीं समाई कि माताजीका यथार्थ अभिप्राय क्या है। आखिर बहुत देरके पश्चात् यह प्रस्ताव पास कर, कि सब महानुभाव अपने २ भवनपर जाकर इस रहस्यका तत्त्व निश्चित कर कलकी सभामें प्रकट करदें, उस दिनकी सभा विसर्जित की गई। और प्रधान पुरुष स्वकीय स्थानोंपर पहुँच आन्तरिक दृष्टिसे उक्त वृत्तान्तका मर्म देखने लगे। परं हाय कौन जानता था कि उन सबके दिमाकमें एक ऐसी बात अपना अड्डा जमा लेगी कि जिसके अनुसार वे लोग मैनावती के मन्तव्यसे विपरीत अर्थ लगा बैठेंगे जिससे कि महान् अनर्थ उपस्थित हो जायेगा। खेदके साथ लिखना पडता है कि अग्रिम दिनवाली सभामें अधिकांश लोगोंने आन्तर्धानिक भावसे राजाको विज्ञापित किया कि हमको तो ऐसा अनुभव होता है माताजी साहिब इस ज्वालेन्द्र-नाथ योगी के साथ जो कि बहुत कालसे राजकीय आराममें निवास करता है, प्रेमपाशसे बन्धित हो गई हैं। तदनुकूल उसकी आभ्यन्तरिक यह इच्छा जान पडती है, कि पुत्रको योगी बनाकर राज्यसे बहिर निकाल दूं और ज्वालेन्द्रनाथके साथ निर्भयतासे राज्य करती हुई मनमानी क्रीडाओंका अनुभव करूं। क्योंकि हम बहुत दिनसे इनके पारस्परिक प्रगाढ प्रेमको लक्षित कर चुके हैं, प्रतिदिन सन्ध्याके समय जब कि लोगोंका अधिक गमनागमन बन्ध हो जाता है वह अपनी उन सहचारिणियोंके साथ जो उसके ही जैसे आचरण करने वाली हैं ज्वालेन्द्रनाथके समीप जाया करती हैं। यह देखते हुए भी हमने, इस बातको सोच कर कि कभी यह रहस्य स्वयं प्रकट होगा, आजतक प्रत्यक्ष रूपसे उद्घोषित नहीं किया था। सुतरां वह अवसर भी आ उपस्थित हुआ। जिसमें इतने दिनके बाद उस गुप्त रहस्यका पड़दा फटगया। किसीने ठीक कहा है अनर्थका घट सदा परिपूर्ण नहीं रहता है। पाठक! आप समझ सकते हैं भावी कभी समीपसे नहीं जाती है। अतएव

उनकी इस विपरीत उक्तिसे गोपीचन्दके चित्तमें परिवर्त्तन हो गया। जिससे अतीव खिन्न दशामें परिणत हुआ वह पूछने लगा कि सम्भव है माताजीने इसी अनुचित कृत्यका अनुष्ठान कर हमें कलङ्कित करनेका उद्योग किया है परं क्या इस बातकी सत्यता विषयक आपलोगोंके पास कोई प्रमाण है। जिससे मुझे भी ऐसा दृढ विश्वास हो जाय। उत्तरमें उन्होंने कहा कि प्रमाणोंमें प्रत्यक्ष प्रमाणके सामने किसी अन्यकी दाल नहीं गलती है। आप हमारे निर्देशानुसार बागमें चलिये। और इसी प्रत्यक्ष प्रमाणके अनुकूल उसे स्वयं योगीके समीप जाती हुई देखिये। इस कथनके आधारपर गोपीचन्दने उस दिनकी भी सभाका विसर्जन किया। और सायंकालिक निर्णीत चरित्रके अवलोकनार्थ उस अवसरकी प्रतीक्षामें चित्त लगाया। शोकाग्नि विदग्ध हृदय गोपीचन्दका वह दिन बड़े कष्टसे व्यतीत हुआ। इतने ही में इधरसे निर्दिष्ट समयके अनुसार विज्ञापक महानुभाव भी धीरे २ एकत्रित हो गये। उधर मैनावतीका प्रत्याहिक नियम था ही जो प्रथम उचित रीति द्वारा ज्वालेन्द्रनाथजीको परीक्षित बनाकर उसके पूर्ण योगेन्द्र होनेका दृढ निश्चय प्राप्त करती हुई केवल अपना ही नहीं बल्कि कुलगुरु समझकर सेवा करने जाती थी। अतएव जब कि नियमित सामग्री ले वह गुरुजीके समीप पहुँची तब वायु सेवनके बहानेसे राजासाहिबके साहित ये लोग भी उधर जा निकले। और इन्होंने माताजीको योगीके समीप बैठी हुई देख गोपीचन्दको सूचित किया कि महाराज! लो अपनी आँखों देख लो। भला वह बात नहीं है तो रात्री होनेपर स्त्रीको इसके पास जानेका क्या काम है। यह देख गोपीचन्दके हृदयमें सहसा अग्नि प्रज्वलित हो उठा। परं वह उस समय महा दुःखी हो मौनता धारण किये हुए वापिस लौट आया। और इस कलङ्कके आच्छादित करनेके लिये किस उपायका अवलम्बन करना होगा इस विषयमें उन पार्श्ववर्ती लोगोंकी सम्मति लेने लगा। अनेक विचारा विचारके अनन्तर कुत्सित हृदय लोगोंने निश्चय कर उसको राय दी कि अन्य अनुकूल उपायान्तराभावसे यही एक सुकर उपाय हमारी बुद्धिगत होता है कि जिस किसी रीतिसे इस योगीको गुप्त कर दिया जाय। कारण कि इस अनर्थ रूपी रोगकी जड़ यही है। ऐसा होनेपर न तो माताजीको इसका संसर्ग प्राप्त हो सकेगा और न यह अनर्थ होगा। इसपर गोपीचन्दने कहा कि यह ठीक है परं योगीके लुप्त करनेका भी तो कोई सुभीता अन्वेषित करना चाहिये। क्योंकि यह कार्य बडा ही जटिल है। यदि उसे अपने राज्यसे निकलजानेकी सूचना दी जाय तो वह इसका हेतु पूछेगा। जिसके बतलानेपर सम्भव है कि वह कुपित हो जाय। और शाप या किसी मन्त्रका प्रयोग कर बैठे। जिससे हमको लेनेके देने पड जायेंगे। इसके अतिरिक्त यदि माताजीको उसके पास जानेसे अवरुद्ध किया जाय तो वह रोकनेका हेतु पूछेगी। जिसके स्फुट करनेसे वह स्वयं क्रुद्ध

हुई इस वृत्तको योगीके सम्मुख कह डालेगी। इससे फिर उसके कोपद्वारा उक्त अनिष्ट उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। इसपर भी स्वार्थ सिद्धिके लिये हम अधिक कठोर बनना चाहें और नाथजीके प्राण अपहरण करनेकी अभिलाषा करें तो यह कभी सम्भव नहीं हो सकता है। अज्ञानान्ध हुए हम प्रहार भी कर बैठें तो उसका बाल तक बांका न होगा। प्रत्युत वह हम ही को मिट्टीमें मिला देगा। ऐसी दशामें समझ नहीं पडती कि उसको कैसे गुप्त किया जायेगा। मन्त्रियोंने कहा कि निःसन्देह आपका कथन सत्य है यदि उसकी सावधानतामें हम कुछ उपद्रव कर बैठेंगे तो अवश्य हमें आपकी कथित आपदाओंका सामना करना पडेगा। परं हम चाहते हैं कि उसके साथ जो भी बर्ताव किया जाय वह तब किया जाय जब कि उसने समाधिमें प्रवेश किया हो। और कुछ कालके लिये वह अपने आपको विस्मृत कर बैठा हो। ठीक इसी निश्चयको प्रधानता मिली। जिसके अनुसार उन्होंने अपना एक गुप्तचर नियत कर उसे यह समझा दिया कि जब कभी ज्वालेन्द्रनाथ योगी समाधि निष्ट हो तब हमको शीघ्र सूचना देना। वह आज्ञा प्राप्त कर इसी बातकी ताकमें रहने लगा। दैवगत्यनुकूल एक दिन ऐसा भी आ पहुँचा जिसमें वे ब्रह्मरूपता प्रापक सामाधिक अवस्थामें परिणत हुए। यह देख निरीक्षकने शीघ्र उपस्थित हो राजा साहिब को विज्ञापित किया। उसने उसी समय प्रधान पुरुषको आज्ञा दी कि अवसर आ पहुँचा है तुम जाओ और अपनी इच्छाके अनुकूल उसी कृत्यका अनुष्ठान करो जिससे हमारी कार्य सिद्धि हो जाय। मन्त्री इस प्रेरणासे प्रेरित हो कुछ अनुयायियोंके सहित घटना स्थानमें पहुँचा। और जो कुछ लोग नाथजी की सम्भवित सेवाके लिये वहांपर नियत थे उन्हें अपने २ गृहपर जानेका परामर्श देने लगा। वे विचारे क्या करते। आखिर तो नोकर और उसीके नियुक्त किये हुए थे। अतः वे लोग अधिक विचार न करके इस बातका यथार्थ रहस्य अनुभव किये बिना ही कुछ शङ्कित हुए अपने घर चले गये। उधर उसने युक्ति पूर्वक नाथजीको उठवा कर एक कूपमें, जो कि कुछ कालसे अवाहित होनेके कारण जल रहित था, डलवा दिया। उसमें कितने ही ईंट पत्थर पडे हुए थे अतएव उसका अभिप्राय था कि इसमें गिरते ही नाथजी के समस्त अङ्गप्रत्यङ्ग खण्डशः हो जायेंगे। जिससे उसका जीवात्मा इस शरीरका परित्यागकर पक्षीका रूप धारण करेगा। परं ईश्वरको कुछ और ही मंजूर था उस दुष्टकी अभिलाषा पूर्ण न हुई। इनकी यह पापबुद्धि नाथजीसे भी अविदित न थी। आपको इस आज्ञानिक कृत्यके रहस्यका मर्म प्रथमतः ही मालूम हो गया था अतः जिस समय उन्होंने आपको कुटीसे बहिर निकाला उसी समय शरीरके साथ वायुका स्पर्श होनेके कारण आप जागरित हो चुके भी यह विचार कर, कि देखें ये दुष्ट मेरे साथ किस अनुष्ठानका व्यवहार करते हैं, अचेत जैसी अवस्थामें स्थित रहे।

और जब उन्होंने आपको कूपमें प्रक्षिप्त किया तब आपने उदान वायुका निरोधकर शरीरको पृथिवीपर न गिरने दे कर कुछ हस्त ऊपर ही ठहरा लिया। यह देख वे लोग आश्चर्यात्मक समुद्रमें निमग्न हुए। परं अभी उनकी विनाश कारिणी दुष्ट बुद्धिके कृत्यका अवसान नहीं हुआथा। इसी कारणसे उन्होंने यह सोचकर, कि कोई ऐसी वस्तु हो इसके नीचे गिराने और इसे आघात पहुँचानेमें सहायक हो, एक गुरुतर भार वाली पाषाण शिला अन्वेषित तथा आहृत कर आपके ऊपर छोडी। हत भाग्य इसपर भी उनकी आशालता हरित न हुई। आपके ऊपरको हस्त उठानेसे जब वह शिला आपतक न पहुँच कर शिरके कुछ ऊपरही स्तब्ध होगई, तबतो उनके अङ्कुरित आश्चर्यका कोई पारावार न रहा। उनका हृदय घबडा उठा, मारेभयके समस्त अङ्गप्रत्यङ्ग कम्पायमान हुए। आखिर किसी प्रकार वडी कठिनता का सामना कर वे गोपीचन्दके समीप गये। और उसको इस अनिष्ट सम्भवके विस्मापक समाचारसे सूचित किया। जिसका श्रवणकर वहभी घबडा उठा। परं विनाश काले विपरीत बुद्धिःवाली कहावतके अनुसार उसने इस अनिष्टोत्पत्तिकी कुछभी परवाह न करके यह आज्ञा प्रदान करदी कि जाओ ऊपरसे काष्ठ घासादि डलवा कर कूपको सम्पूरित करवा दो। इससे वायुबन्ध होनेके कारण तथा घासकी उष्णताके कारणसे वह अपने प्राणोंसे हस्त धो बैठेगा। यह सुन राजाकी आज्ञा भङ्ग न करसकने के कारण आभ्यन्तरिक भावसे डरते कम्पते वे फिर वापिस लौटे! और उन्होंने कुछ मनुष्योंको और बुला कर वृक्ष शाखाओं तथा तृण भारोंसे नाथजीको आच्छादित कर समीप स्थल में वर्तमान अश्वशालीय कूडेके ढेरसे कुछ लीद उठवा कर ऊपर कुटुवा दी। तदनु फिर राजाके समीप आकर अपनी कार्य पूर्णताके विषयमें वे प्रसन्नता प्रकट करने लगे। मूर्खोंने यह विचारतो कहां करनाथा कि जो ऐसी ही गुहामें, जहां वायु प्रविष्ट नहीं होता है, बैठकर पान्सौ २ वर्ष पर्यन्त तककी समाधि लगाते है उनका इस दशामें नियुक्त कर देनेसे क्या अनिष्ट हो सकता है। (अस्तु) उन लोगोंने मोद प्रमोद के साथ इसी विषयकी अनेक वार्ता करते कराते आनन्दसे वह दिन व्यतीत किया। उधर सन्ध्या होते ही नित्य नियमानुसार मैनावती बागमें पहुँची। परं आज वहां क्या था। न तो कोई नोकर हा, जो उसके आगमन पर उचित कार्यमें भाग लेकर अपनी उपस्थिति सूचित करते थे, दीखपडते हैं। न कुटीके अभ्यन्तर जाकर देखा तो गुरुजी ही दीख पड़े। इससे उसी समय उसका हृदय पकड़ा गया। और निश्चय किया कि अवश्य कुछ न कुछ दालमें काला है। इतना होनेपर भी उसके यह विश्वास तो स्वप्नमें भी नहीं था कि ऐसा अनर्थ हो जायेगा। परं वापिस लौटकर उसने वहां रहने वाले नोकरोंके घर सूचना भेज उनको बुलाकर जब वहांसे घर आ जानेका कारण एवं गुरुजीके कहां चले जानेका समाचार पूछा और उसके उत्तरमें उन्होंने जब

ज्वालेन्द्रनाथजीकी उपस्थितिमें कुछ सहचरोंके साथ मन्त्रीने वहां पहुँचकर इच्छा न होनेपर भी अपनेको हठात् घर भेज देनेका समाचार प्रकट किया, तब तो उसकी शङ्का और भी बढ़ गई। और वह अनुमान करने लगी कि मैंने गोपीचन्दको जो योगेन्द्रजीका शिष्य बननेके लिये कुछ कहा सुना था मालूम होता है उसीके विषयमें अरुचि प्रकट कर उसने उनको यहांसे चले जानेका आदेश दिया है। और वे, हमारा कहीं कुछ दावा नहीं है, इस विरक्ति ठाठका विचार कर चुपचाप यहांसे चले गये हैं। शुकर है वे चुपचाप प्रस्थान करते हुए इनके अनुचित व्यवहारपर कुछ भी हर्ष क्षय न हुए। यदि किञ्चित् भी क्रुद्ध हो कर इनकी ओर टेढी दृष्टि करते तो इन्हें संसारमें अपने आपकी रक्षाके लिये कहीं भी जगह न प्राप्त होती। एवं जिस शुद्ध अभिलाषासे मैंने गोपीचन्दको अपने कल्याणप्रद मार्गको स्वच्छ बनानेका परामर्श दिया था मुझे अपनी आँखों ही उसका विपरीत फल देखना पड़ता। मैनावतीने इस प्रकार कुछ खेद प्रकट कर केवल इतना ही निश्चित किया कि गोपचिन्दका अश्रद्धेय व्यवहार देखकर गुरुजी राजधानीसे कहीं अन्यत्र चले गये हैं। परन्तु वह उसके महान् अनर्थकारी कृत्यको अभीतक भी न जान सकी थी। और न कोई ऐसा हो जानेकी उसे सम्भावना ही थी। अतएव उसने गुरुजी कहां गये हैं इस बातका पूरा परिचय लेनेके लिये अपने किसी गुप्त चरको अवधानित किया। मन्त्रीलोगोंने यद्यपि यह कार्य आत्यन्तिक गुप्त रीतिसे किया था। और जो लोग कूपके भरनेमें सहायक थे उनको, उन्होंने कूपके बन्ध करनेका कारण कहीं ज्वालेन्द्रनाथका छिपाना सूचित कर दिया तो प्राणदण्ड दिया जायेगा, यहां तकका भय सुनाकर परिपक्व करडाला था। तथापि इसने अपने बुद्धिचातुर्यके प्रभावसे शीघ्र ही यथार्थ तत्त्वका अवगमन कर मैनावतीके सम्मुख वर्णित किया। बस क्या था उसने ज्योंही पूज्यपादजीका पुत्रके द्वारा कूपमें पतन होना श्रवण किया त्योंही ऊपरका श्वांस ऊपर और नीचेका नीचे रह गया। वह मूर्च्छित हो शरीरकी असावधानताके कारण सिंहासनसे नीचे गिरना ही चाहती थी तत्काल ही समीपस्थ दासीने उसको रक्षित कर शीतादि अनुकूल उपचारके लिये अन्य दासीको आहूत किया। वह शीघ्र स्वास्थ्यप्रद औषधि ले आई। जिसका प्रयोग करनेसे कुछ क्षणोंके अनन्तर माताजीसाहिब लब्धसञ्ज्ञा हुई। उसको इतना दुःख हुआथा मानों किसीने उसका मर्मस्थान पकड़कर खण्डशः करडाला हो। यही कारण था वह सचेत होनेपर भी कितनी ही देरतक कुछ न कह सकी। अन्ततः एक दीर्घ श्वांस लेकर उसने ईश्वरकी अगम्य गतिके सूचक दो चार शब्दोंका उद्घाटन करते हुए कहा कि मनुष्य इसीलिये अल्पज्ञ समझे जाते हैं। ये ईश्वरकी वास्तविक अभिलाषा क्या है इस बातको नहीं जान सकते हैं। ये अपनी बुद्धिके अनुसार निश्चयकर करते हैं कुछ

और ईश्वरेच्छानुसार हो बैठता है कुछ ! ठीक यही दशा मेरी भी हो गई। हाय मैं क्या यह जानती थी कि कल्याणके विपरीत पुत्र नरकके मार्गमें प्रविष्ट हो जायेगा। हाय मैं अब क्या करूं और कहां चली जाऊं। नहीं जानती इस अनर्थका कब क्या फल होगा। सम्भव है अभीतक योगेन्द्रजीकी समाधि ही न खुली हो। जब वे उस दशासे जागरित होंगे और अपने साथ इस महान् अनुचित व्यवहारका बर्ताव देखेंगे तब नहीं जानती पुत्रके विषयमें कैसा अवसर उपस्थित करेंगे। इस तरह शोकाग्नि विदग्ध हृदयसे बहुत विलाप करनेके अनन्तर उसने एक सभा करनेकी आज्ञा दी। जिसका शीघ्र ही प्रबन्ध होनेके कारण उसमें उपस्थित होनेवाले गोपीचन्द तथा उसके तत्कृत्य परामर्शक सहचारियोंको उसने अपने क्रोधावेश वशात् कुछ क्षणके लिये आन्तःपुरिक लोकमर्यादाकी परवाह न करके खूब ही तर्जना दी। आप सदाचारिणी एवं ईश्वरमें दृढ निष्ठा वाली होनेपर भी एक महा योगेन्द्रजीकी अमोघ सेवा शुश्रूषाके प्रभावसे विलक्षण प्रतिभावाली बन चुकी थी। अतएव आपके तेजस्वी मुखारविन्दसे उद्घोषित होने वाले युक्तियुक्त वाक्योंकी निरन्तर प्रणालिकाने उनकी ग्रीवा नीचेको कर दी। यह देख उसको उनके पापमय कृत्यका खूब ही परिचय मिल गया। और गोपीचन्दकी ओर निर्देश कर उसने फिर कहना आरम्भ किया कि संसारमें स्वार्थी लोगोंकी बुद्धिसे प्राय ऐसे ही कार्य अधिक सम्पादित हुए दीख पडते हैं जैसा कि आज हमारे यहां हो गया। परं अधिकारी पुरुषको उचित है वह अपने श्रोतोंको ही प्रधानता न देकर अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे भी कुछ कार्य ले। और जहांतक शक्यता हो प्रकृत वृत्तान्तकी सत्यासत्यताका पूरा परिचय ले। खेदके साथ कहना पडता है और उसके विषयमें मुझे अत्यन्त दुःख है जो तुझे स्वयं स्वकीय बुद्धिका कुछ भी व्यय न करके इन स्वार्थी लोगोंके परामर्शानुसार मेरे मन्तव्यसे विपरीत अर्थमें विश्वसित हो इस अनर्थके करनेमें अवतरित होनेका अवसर मिला। शोक, शोक, शोक, क्या तुझे इतना विचार नहीं हुआ कि ऐसे महान् योगेन्द्र इस सांसारिक पाशसे बद्ध नहीं होते हैं जैसा कि मैंने निश्चय कर छोडा है। यदि वे सचमुच ही तेरे निश्चयके अनुसार अपने पथसे विचलित हो बैठे होते तो उनकी वह अलौकिक शक्ति, जिसने तेरे पितामह आदिको और तुझे तथा तेरे अनुयायियोंको भी चकित करडाला है, अभीतक कभी की नष्ट हो गई होती। और वे सांसारिक साधारण लोगोंकी तरह कुछ ही काल पर्यन्त इस लोककी यात्रा समाप्त कर परेत राजके द्वारपर पहुँचे होते। परं ऐसा नहीं दीख पड़ता है। ये असंख्य वर्षसे इस लोकमें विद्यमान रहते हुए भी भविष्यमें इसी प्रकार अक्षुण्ण रहेंगे। क्योंकि योगेन्द्रका मरण बड़ा ही दुष्कर है। अधिक दूर जानेकी आवश्यकता नहीं यहीं देख लीजिये तेरे प्रदादा–दादा और पिता कहां गये। वे तो कुछ कालतक अपने आहङ्कारिक कृत्यका

अनुष्ठान कर धूलिमें मिल गये । और ये महाराज अभीतक जैसे के तैसे ही बैठ हैं । बल्कि सच पूछे तो सांसारिक भोगोंकी ओरसे मेरे उपरामता उत्पन्न होनेमें इसी विचारने सहायता दी है । मैंने सोचा था कि जबसे इन योगेन्द्रजीका हमारे नगरमें आना सुनाजाता है उस समयके अनन्तर आजतक मरणोत्पत्तिकी परम्परासे पीढी की पीढी गुजर गई पर ये महात्माजी आनन्दके साथ समय व्यतीत करते हुए अभीतक वैसे ही विराजमान हैं । जब योगमें इतनी शक्ति है कि मनुष्यको असंख्य बार पशुपक्षीकी मौतसे नहीं मरणा पडता है तो इसीका अवलम्बन क्यों न किया जाय । यही कारण था मैंने, मेरे पुत्रकी यह अद्वितीय छबिली शान उसके पिता आदिकी तरह धूलिमें न मिल सके तो सौभाग्य है, यह दृढ विचार कर तुझे उधर ध्यान देनेके लिये उत्साहित किया था । परं हाय तूने मेरे समस्त शुभ मनोरथोंपर खाक डाल दी । और उलटा एक ऐसा काम कर बैठा जिससे हमारा कहीं भी ठिकाना न रहेगा । क्या तूने और तेरे इन सहचारियोंने यह समझ लिया कि महात्माजीका अन्त हो गया अब उससे हमको कुछ भय नहीं । याद रखना प्रथम तो ये ही नहीं मर सकते और चाहें तो सूक्ष्म शरीर बनाकर अभी बाहिर निकल सकते हैं । परं तुम्हारी दुष्टताको देख रहे हैं कि वह कबतक इनके हृदयमें अपना केन्द्र रखती है । द्वितीय मान लिया जाय कि ये अपनी दयालुताके कारण वा किसी अन्य कारणसे तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न करेंगे । तो भी तुम उससे वञ्चित नहीं रह सकते हो । कारण कि इनका शिष्य कारिणपानाथ शक्तिशालितामें इनके तुल्य होता हुआ भी एक बडे उत्तेजित स्वभावका योगी है । वह तुम्हारे इस कृत्यको अवश्य सुन पायेगा । और तुमको ही क्या सम्भव है नगर मात्रको खतरेमें डालकर तुम्हारे इस दुष्ट चरित्रकी निर्यातना करेगा । ऐसी दशामें कहो तुम लोगोंने अविचारसे इतने बड़े अनर्थमें हस्त डालकर उससे उत्पन्न होनेवाले महान् अनिष्टसे अपने आपको बचानेके लिये कोई उपाय भी सोचा है क्या । बोलो २ और सोचा हो तो ऊपरको हस्त उठाओ । यह सुनकर भी जब किसीने हस्त न उठाया तबतो उसको और भी दुःख हुआ । और उसने कहा कि अच्छा यदि यही बात है तो तुमलोग अपने कर्तव्य का फल भोगना । मैं अपनी आँखोंसे तुमलोगोंका अनिष्ट देखकर अपने शुभ मनोरथका विपरीत फल नही देखना चाहती हूं। अतएव मैं आज ही नगरान्तरके लिये यहांसे प्रस्थान करती हूं । मैनावतीके ये दुःखभरे वाक्य सुनकर गोपीचन्दका तथा अन्य कई एक लोगोंका अश्रुपात हो गया । और महा कष्टाक्रान्त हृदयसे कुछ भी उत्तर न दे कर वे कितनी देर पर्यन्त पाषाण प्रतिमाकी सदृश स्तब्ध दृष्टिसे उसके मुखकी ओर निहारते रहे । तथा कुछ क्षणके अनन्तर सभा विसर्जन करनेकी सूचना दे कर जब मैनावती सभास्थलसे चलने लगी तब गोपीचन्दने अपने सहचारियोंके सहित माताके चरणोंका आश्रय लिया । और

अपने अनुचित कृत्यपर अनल्प पश्चात्ताप करनेके अनन्तर उससे अन्यत्र न जानेका अनुरोध करनेके साथ २ आगामिष्यमाण अनिष्टके परिहारानुकूल सम्भवित उपायके बतलानेका आग्रह किया। यह सुन क्रोधावेशसे नासिका सङ्कुचित किये हुए उसकी प्रार्थनामें उपेक्षा प्रकट कर वह अपने प्रासादमें चली गई। उधर सभा विसर्जित कर समस्त सभ्य लोग अपने २ स्थानपर गये। और इस विषयमें न जानें क्या होगा इस प्रकारकी महा चिन्तासे आक्रान्त हुए प्रत्याहिक ऐसो आरामसे वञ्चित रहे।

इति श्रीज्वालेन्द्रनाथ कूपपतन वर्णन नामक ३९ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय ४० ॥

पाठक ! मैनावतीका यह अनुमान ठीक था कि वे लोग ज्वालेन्द्रनाथजीको कूपमें डालनेके अनन्तर अपने मनमें अपूर्व मोद बढा रहे थे ! परन्तु मैनावतीके द्वारा ज्वालेन्द्रनाथजीके शिष्य कारिणपानाथका स्मरण होनेसे, विशेष करके उसके उत्तेजित स्वभावका परिचय मिलनेसे, उनके छक्के छूट गये । और अपने हार्दिक मोदप्रमोदका परित्याग कर वे इस बातका निश्चय करने लगे कि अवश्य इस विषयमें उपस्थित होनेवाली आपदाओंसे हमलोग नहीं बच सकते हैं । यही कारण था वे अपने कुत्सित कार्यसे लज्जित एवं शोकाकुल हुए सभामें नीचेको ग्रीवा नमन किये बैठे रहे । और मैनावतीके सम्मुख न देख कर कुछ भी उत्तर न दे सके । प्रत्युत क्षमाप्रार्थी हुए मैनावतीसे ही अनुकूल उपाय पूछने को बाध्य हुए । तथा कहने लगे कि शीघ्र ही किसी उपायको अवलम्बित नहीं किया जायेगा तो यह हमको भी निश्चय है कारिणपानाथ गुरुजीके विषयमें होनेवाले इस कृत्यको कभी न सह सकेगा । एवं सूचना मिलते ही हमको अपनी महान् अनिष्ट कारिणी तिर्यग् दृष्टिका लक्ष्य बनायेगा । ठीक हुआ भी यही । मैनावतीके अगुप्तभावसे सभामें प्रकृत वृत्तान्तके उद्घोषित करनेसे एक दो ही दिनमें यह समाचार सुदूरदेश तक विस्तृत हो गया । जो कतिपय शिष्योंके सहित देशाटन करते हुए कारिणपानाथजीने भी सुन पाया । उन्होंने तत्काल ही इस वृत्तान्तका निश्चयात्मक परिचय लेनेके लिये अपना एक शिष्य उधर प्रेषित किया । वह शीघ्रताके साथ राजधानीमें प्राप्त हुआ । और सम्मुखागत लोगोंसे उक्त घटना की सत्यासत्यताका प्रमाण मांगनेके साथ २ उस कूपके प्रदर्शित करनेका भी आग्रह करने लगा । लोगोंने उसका तेजस्वी एवं उग्ररूप देखकर आभ्यन्तरिक भावसे भयाकुल हो यथार्थ मर्मका उद्घाटन किया । तथा कूपको दिखलानेके लिये एक मनुष्य उसके साथ भेज दिया । योगीने उस नवीन अवरुद्ध

किये हुए कूपके देखनेसे, विशेष करके राजाके कठोर दण्डकी सम्भावना होनेपर भी लोगोंके उसकी उपेक्षाकर साफसाफ कह डालनेसे, निश्चय कर लिया कि यह वात असत्य नहीं। राजाने अवश्य इस अनुचित ही क्या महान् अनुचित कृत्यका अनुष्टान किया है। जिसके अपराधमें वह अल्पदण्डका भागी नहीं हो सकता है। ठीक इसी समय जब कि आप कूपके ऊपर खडे हुए अपने हृदयात्मक समुद्रमें विविध भावात्मक तरङ्गोंको तरङ्गित कर रहे थे तब यह सूचना राज प्राकादमें भी पहुँच गई कि प्रकृत वृत्तान्तके निरीक्षणार्थ एक योगी यहां आया है जो कि कारिणपानाथजीका भेजा हुआ है। यह सुन गोपीचन्दके विशेष करके उन प्रधान राजपुरुषोंके, जिन्होंने उक्त कृत्य कर डालनेका परामर्श दियाथा, पैरोंके नीचेकी भूमि निकलने लगी। और उनके लिये समस्त संसार जलमय दीखने लगा। अन्ततःअपने चित्तको कुछ अवधानित कर सामर्पणिक सामग्रीके सहित वे लोग योगीकी सेवामें उपस्थित हुए। तथा अपने कारुणिक विनम्र वाक्यों द्वारा अपराध क्षमा करनेकी अभ्यर्थना करने लगे। यह देख अपने रात्किक नेत्रोंकी तिर्यगवलोकनाके द्वारा उनके हृदया गारमें और भी भय स्थापित कर पूजा सामग्रीको अस्वीकार करता हुआ गुरुजीकी आज्ञा नुसार केवल वृत्तान्तकी सत्यासत्यताका निर्णय करनेके अनन्तर वह वहांसे प्रस्थानित हुआ। इससे उन लोगोंका भयाग्नि विदग्ध हृदय और भी भस्मी भूत हो गया। और विना ही व्याधिके शरीरकी चैष्टिक शक्ति क्षीण होगई। मानों उनके प्राणही शेष रह गये। एक दूसरे की ओर निहारता हुआ अपने उभलते हुए हृदयको अत्यन्त कठिनताके साथ रोक रहाथा। उनके अश्रुओंके विन्दु अपने प्रवल वेगद्वारा नेत्रोंसे बाहिर होनेका साहस करने परभी पारस्परिक लज्जाके कारण भीतर ही रह जातेथे। खैर ज्यों त्यों कर वे लोग वापिस लौटे। और एकवार अपने कथनकी उपेक्षा देखकर भी वे फिर मैनावतीकी शरणमें पहुँचे। एवं शीघ्रही आपदाओंका पहाड़ शिरपर गिरने वाला है यह कहकर उससे वचनेका उपाय पूछने लगे। उसने प्रथमतो उनको खूब डाट दिखलाई। परं पुत्र गोपीचन्दको अत्यन्त खिन्न देखकर उसके हृदयमें कारुणिक सञ्चार सञ्चरित हुआ ऐसी प्रेरणा करने लगा मानों वह यह कह रहा है कि बस अन्त होगया अब इन्हें धैर्य देनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। अतएव उसने यह कहकर कि, अच्छा तुम लोग अपने चित्तको स्वास्थ्यान्वित करो मैं कोई उपाय सोचूंगी, उनको वहांसे विदा किया। और स्वयं विज्ञापित विधिके अनुसार उसने श्रीमद्योगेन्द्र गोरक्षनाथजीका आव्हान किया। तत्काल ही उन्होंने आकाशिक आगमनसे उपस्थितहो अपने प्रदत्त वचनकी रक्षाकी। और स्वकीय आव्हान निमित्तका परिचय मांगा। मैनावतीने उचित रीतिसे आपका स्वागतिक सत्कार कर उत्तरमें कहा कि भगवन्! यद्यपि आव्हान कारण ऐसा नहीं कि आपसे अविदित हो तथापि आपके प्रश्नकी

सार्थकतार्थ समासतया मैं इतना ही कहदेना पर्याप्त समझती हूं कि बहुत समयसे इसी कुटिका में निवास करने वाले महात्मा ज्वालेन्द्रनाथजी गोपीचन्दने कूए में डलवा दिये हैं। और इस वृत्तकी सूचना उनके शिष्य कारिणपानानको भी मिल चुकी है। वह शीघ्रही यहां आने वाला है। जो इस अपराधमें न जानें कैसी अनिष्ट कारिका दशा उपस्थित करेगा अतएव उसकी तिर्यग् दृष्टिसे और अनर्थसे विमुक्ति पानेका उपाय बतलानेके हेतुसे आपको आहूत किया गया है। इसके उत्तरमें पूज्यपादजीने कहा कि यद्यपि समस्या बडी जटिल है जो कारिणपानाथके लिये सर्वथा असह्य है तथापि जहांतक भी होसकेगा हम इसको हल करनेका प्रगाढ प्रयत्न करेंगे तू स्वयं स्वस्थ हुई गोपीचन्द आदिको स्वाथ्य प्राप्त करनेका साहस देना। यह सुन मैनावती अतीव प्रसन्न हुई। और आपके लिये सर्व प्रयोजनीय वस्तुओंका ठीक प्रबन्ध कर अपने प्रासादमें आ गई। वहां आनेपर उसने गोपीचन्दको अपने समीप बुलाया। और श्रीनाथजीके आगमनका तथा उनके अमृतायमान वचनका समस्त समाचार उसे सुनाया। अबतो वह प्रसादित मुखसे बोल उठा मातःधन्य है २ आशाहै आपके कृपा कटाक्षसे पवित्र हुए हम लोगोंको अब उस सम्भावनेय अनिष्टका मुख न देखना पडेगा। इस पर मैनावतीने कहा कि अनिष्टका मुख नहीं देखना पडेगा इत नाहीं नहीं यदि तू अब भी कुछ समझेगा और मेरी शुभ अभिमतिकी ओर कुछ दृष्टिडा लेगा तो सब कुछ बन सकता है। अन्यथा एक इसी आपदासे छुट कारा मिलगया तो क्या है। तेर अल्प जीवनमें इतनी आपत्तियां आयेंगी तुझे किसी न किसी दिन अवश्य धूलिमें मिश्रित कर डालेंगी। इस वास्ते तू जा गुरु गोरक्षनाथजीको क्षमा करनेकी अभ्यर्थना कर आन्तरिक स्पष्ट भावसे विज्ञापित करदे कि भगवन्! संसारमें इस अनर्थसे उत्पन्न होने वाले कलङ्कसे मुझे मुक्त करदो तो मैं आपका वा जिसकी आप आज्ञादें उसीका शिष्य बन् जाऊंगा। अर्थात् उसने सोचा कि कुछ क्षण पहलेतो वह अवसर प्राप्तथा जिसमें मुझे अपना सर्व नाश होनेकी आशङ्काथी। बल्कि आशङ्काथी यही नहीं श्रीनाथजी न आतेतो होताभी वैसाही। और अब फिर वह अवसर आप्राप्त हुआ जिसमें मुझे नष्ट होनेसे बचनेका ही नहीं प्रत्युत चिरकालके लिये अपनी अक्षुण्ण कीर्ति स्थापित करनेका सौभाग्य मिल रहा है। फिर इन किञ्चित्कालके भोगोंका जिघृक्षु हुआ अमूल्य अवसरको हस्तसे निकाल दूं तो मेरा ऐसा करना अनुचित ही नहीं बल्कि मेरी मूर्खताका उत्पादक होगा। इसी मन्तव्यको स्थिर करनेके साथ २ उसने माताके परामर्शपर कृतज्ञता प्रकट की और चरणोंमें मस्तक लगानेके अनन्तर जननीका शुभाशीर्वाद ले अपने सहचारियोंके सहित आराममें पहुँच कर स्वोचित रीत्यनुसार श्रीनाथजीकी वन्दनाकी। प्रत्य भिवादनार्थ सान्तोषिक वचनोंका प्रयोग करनेके पश्चात् आपने कहा कि भावी प्रबल है। जिसका वेग अवरुद्ध

करना कठिन ही नहीं सर्वथा असम्भव है। अतः जो कुछ हो चुका वह कृत्य यद्यपि संसारमें महा कलङ्कका चिन्ह है तथापि इस विषयमें तुम्हें विशेष खिन्न होनेकी आवश्यकता नहीं। कारण कि हमारे में और हमारे द्वारा निर्दिष्ट होनेवाली विधिमें पूरा २ विश्वास रक्खेगा तो इस कलङ्कसे मुक्त ही नहीं होगा बल्कि संसारमें अपने शुभ्र यशको चिरकालके लिये विस्तृत कर सकेगा। पूज्यपादजीके इस कथनपर शिर नमन कर गोपीचन्दने स्फुट रीतिसे सूचित किया कि आपका जो निर्देश जिस अनुष्ठानके लिये मुझे प्राप्त होगा मैं उसके करनेमें केवल उत्सुक ही नहीं हूंगा प्रत्युत प्राण रहते तक उसके पूरा करनेका प्रयत्न करूंगा। यदि मैं अपने इस वचनसे वापिस लौटूं तो अलक्ष्य पुरुषके न्यायालयमें महा दोषीके दण्डका भागी हूं। यह सुन कुछ मुस्कराते और आन्तरिक भावसे प्रसन्न हुए श्री नाथजीने पूरा विश्वास देनेकी अभिलाषासे उसको यह आज्ञा दी कि यदि यही बात है तो तेरा कार्य सिद्ध हुआ यही समझना चाहिये। तुम जाओ एक काम करो, व्यापारीका वेष बनाकर, इधर आते हुए कारिणपानाथको मार्गमें निमन्त्रित कर सर्वोत्तम भोजन प्रदानके द्वारा उसे सत्कृत करो। भोजनान्तमें वह तुम्हें आशीर्वाद देगा। और अवश्य देगा। इसके विषयमें कोई सन्देह न रखना चाहिये। ऐसा होनेपर फिर उसका कोप तुम्हारी कुछ भी हानि न कर सकेगा। जाओ २ अब इस कार्यको विलम्बित करना ठीक नहीं है, विलम्ब हुआ तो सम्भव है वह तुम्हारे पहुँचनेसे पहले ही इधर आ निकले। जिससे हमारा चिन्तित निर्देश निष्फल हो जाय। गोपीचन्द आपकी इस आज्ञाको शिरोधार्य समझ कर वहांसे प्रस्थानित हुआ। और बणजारेका चिन्ह बनानेकी अभिलाषासे राजकीय पुरुषोंको सूचित करते हुए उसने कहा कि कतिपय बैल एकत्रित कर उनमें विविध प्रकारके भोजनकी सामग्री भरलो। उन्होंने बडी शीघ्रताके साथ सब प्रबन्ध ठीक कर राजाकी आज्ञाको सफल किया। यह देख गोपीचन्दने राजकीय चिन्ह उतारकर अपने सार्थियोंके सहित बणजारेके रूपमें प्रवेश करनेके अनन्तर वहांसे जिस मार्ग होकर कारिणपानाथजीका शिष्य गया था उसी मार्गसे प्रस्थान किया। कुछ विश्रामोंके अनन्तर किसी नगरकी सीमान्तर्गत सौभाग्यवश उसको कारिणपानाथजीके विश्रामित होनेकी सूचना मिल गई। बस उसने अपना पड़ाव उसी जगहपर डाल दिया। और अपने चतुर अनुजीवियोंको उचित भेंटपूजा देकर यह समझा दिया कि तुमलोग जाओ और इस बातका निश्चय करो नाथजी सचमुच ही वहां ठहरे हुए है क्या, यदि यह बात सत्य होय तो यह सामग्री उपायन रूपसे उनके समर्पण कर कह देना कि भगवन्! हमारे नायकने हमको आपकी चरणसेवामें इस अभिप्रायसे प्रेषित किया है उसकी आन्तरिक अभिलाषा है कि मैं कुछ वाणिज्य अंशको महात्माओंकी सेवामें प्रयोगित कर दूं। जिससे मेरा गार्हस्थ्य कर्तव्य हल हो जानेपर भी मेरे वाणिज्यमें पवित्रता आ

जानेकी सम्भावना है । राजाकी इस आज्ञाको शिरोधार्य मानकर वे लोग जब वहां पहुँचे तब सचमुच ही कारिणपानाथजीको विश्राम किये हुए देखा । इससे वे प्रसन्न हुए नाथजीके अतिसमीप पहुँचे । एवं समर्पणा समर्पित कर उन्होंने स्वामिकी प्रार्थनाको स्वकीय मुख द्वारा घोषित किया । भाग्यवश नाथजीने अविलम्बके साथ उन्हें आशीर्वाद प्रदान कर निमन्त्रण स्वीकार कर लिया । अबतो ये और भी हर्षित हुए। और आपके चरणारविन्दका मस्तकसे स्पर्श करनेके अनन्तर शीघ्र वापिस लौटे हुए गोपीचन्दके पास आये । तथा नाथजीके अङ्गीकारात्मक अमृतायमान वचनको उद्घोषित करनेके साथ २ उन्होंने परमहर्ष प्रकट करते हुए उससे कहा कि महाराज ! बडा ही हर्षका विषय है हमको जाते ही वे लक्षण दिखाई दिये जिन्होंसे आपकी कार्यसिद्धिमें किञ्चित् भी सन्देह न रहा। महात्माजीने अपनी उपलब्धिसे हमको आनन्दित करदेनेपर भी इस बातसे परमानन्दित किया कि हमारी प्रार्थनापर पूरा ध्यान देते हुए आपका निमन्त्रण स्वीकृत किया । अतएव अब विलम्ब करना उचित नहीं भोजन सामग्री शीघ्र भेज दी जाय । इस शुभ सन्देशसे राजाके हर्षकी सीमा न रही । इसीलिये उसने अविलम्बके साथ पर्याप्त सामग्री उधर भेज दी। अधिक क्या भोजन तैयार हो गया । और कारिणपानाथजीकी आज्ञानुसार पंक्तिके समय गोपीचन्द स्वयं वहांपर उपस्थित हुआ । एवं पंक्तिमें सम्मिलित हो योगियोंके हस्तका प्रसाद ग्रहण करनेपर भी भोजनान्तमें जब कारिणपानाथजीने आशीर्वाद प्रदान कर उसके शिरपर हस्त रख दिया तब तो वह कृतज्ञता प्रकट कर वहांसे विदा हुआ अपने विश्रामस्थानमें आया। तथा भृत्योंको यह आज्ञा प्रदान कर, कि अवशिष्ट सामग्री मार्गमें आनेवाले ग्रामोंके उनलोगोंको, जो बुभुक्षित हों, वितीर्ण कर देना, स्वयं कुछ सहायकोंके सहित वहांसे गमन कर शीघ्र राजधानीमें पहुँचा । और तादृश शुभ समाचार गोरक्षनाथजीके सम्मुख वर्णित करते हुए उसने कहा कि भगवन् ! ठीक कार्य वैसा ही हुआ जैसा कि आपने प्रथमतः ही सूचित किया था । यह सुन श्रीनाथजीने कार्य पूरा करनेके विषयमें उसे धन्यवाद दे प्रशंसित किया । इसपर कृतज्ञता प्रकट करनेके साथ २ यह कहता हुआ, कि भगवन् ! सब आपकी ही परम कृपाका यह फल है, आपके चरणोंमें मस्तक लगाकर गोपीचन्द अपने प्रासादमें गया । और कार्य पूर्णताके उपलक्ष्यमें भी कुछ दान पुण्य करनेकी आज्ञा प्रचारित करता हुआ कारिणपानाथजीके आगमनकी प्रतिपालना करने लगा। उधरसे अग्रिम दिन शिष्य मण्डलीके सहित कारिणपानाथजी भी राजधानीकी सीमामें आ पहुँचे । और वहींसे अपने आगमनकी सफलतार्थ नगरके ऊपर कुछ आपत्ति डालनेके लिये मान्त्रिकास्त्रका प्रयोग करने लगे । इस कृत्यके करते २ वे नगरके अति निकट आ पहुँचे । परं नगरका अभीतक बाल भी वांका न हुआ । यह देख कारिणपानाथजीके आश्चर्यका ठिकाना न

रहा। उन्होंने सोचा कि आजपर्यन्त ऐसा अवसर कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ था जिसमें हमारा प्रयत्न नि॰फल गया हो। आज और यहां क्या कारण है जो ऐसा हुआ, सम्भव है गोपीचन्दकी माता मैनावती ही गुरुजीकी दीक्षासे इस दर्जेतक पहुँची हो जिसने मेरा अस्त्र किम्प्रयोजन बनादिया है। अथवा गोरक्षनाथजी नगरके रक्षक वन यहां निवास कररहे होंगे। अन्ततः आपने जब ध्यानावस्थित होकर देखा तब तो श्रीनाथजीके विषयमें आपका अनुमान ठीक होनेपर आपने उस गुप्त रहस्यको जाना जो श्रीनाथजीके परामर्शानुसार गोपीचन्दने आपका आशीर्वाद ग्रहण किया था। यह देख आपने इस समस्त समाचारको अपने शिष्योंके सम्मुख प्रकट किया। और यह निश्चय कर, कि जब श्रीनाथजीकी ही ऐसी इच्छा है तब उसके विपरीत कृत्यका अनुष्ठान करना हमारे लिये उचित नहीं है, अपने प्रयोगको स्थगित किया। तथा अपने शिष्योंसे कहा कि चलो कूपपर चलकर उसे साफ करेंगे। और देखेंगे कि अबतक गुरुजीका शरीर कौन दशातक पहुँचा है। कारिणपानाथजीके कतिपय नवीन शिष्य, जो अबतक आपलोग योगेन्द्रोंकी आन्तरिक लीलाओंके रहस्यको नहीं समझने लगे थे, श्रीनाथजीके उक्त व्यवहारमें अरुचि उत्पन्न कर गोपीनन्दके ऊपर अधिक क्रोधित हुए उसे दण्डित ही करना चाहते थे। अतएव गुरुजीकी आज्ञा सुन उन्होंने स्पष्ट भावसे कहा कि स्वामिन्! जब यहां आ ही गये हैं तो हमारे लिये वह कूप दूर नहीं है। और न उसका मार्जन करना ही कोई बड़ी बात है। जब आपकी आज्ञा होगी तब यह तो क्या ऐसे २ अनेक कूपोंका शोधन करडालेंगे। परंतु प्रथम हमको इस बातके लिये आज्ञापित करो कि हम गोपीचन्दके प्रासादपर जाकर उसे कुछ उचित दण्ड दें। और उसे बतला दें कि राजत्व अभिमानसे ऐसे अनुचित कृत्य कर बैठनेका कैसा नतीजा हुआ करता है। उनके ये गर्व पूर्ण एवं विचारशून्य वचन कारिणपानाथजीके रुचिकर न हुए। क्योंकि जो कार्य गुरुसे न हुआ हो शिष्यके लिये उसके करनेका ठेका उठाना सचमुच गुरुजीका अपमान करना है। दूसरे जिसके प्रतिपालक स्वयं श्रीनाथजी हैं उसका ये क्या अनिष्ट कर सकते थे। इसी हेतुसे उनकी बुद्धि ठिकाने लानेके अभिप्रायसे आपने कुछ नासिका सङ्कुचित कर उनसे कहा कि अच्छा प्रथम बागमें चलते हैं। वहां श्रीनाथजीका इस विषयमें कुछ परामर्श लेंगे। और फिर जैसा अवसर देखेंगे वैसा करेंगे। यह कह जब आप उधर प्रस्थानित हुए तब उनको भी पीछे चलना ही पड़ा। कुछ देरमें वहां पहुँचे। तथा पारस्परिक आदेश २ शब्दोच्चारणके सहित अभिवादन प्रत्यभिवादनात्मक सत्कारसे सत्कृत हो यथा स्थानपर बैठ गये। आगमन हेतुक प्रस्तावकी उपस्थिति हुई। ठीक इसी समय जब कि दोनों महानुभाव इसी विषयका मिथःआलाप कर रहेथे तब उनलोगोंने फिर ऐसे कईएक वाक्य कहडाले जिन्होंसे

श्रीनाथजीको उनके प्रथमोक्त गर्विक वाक्योंका भी पता मिल गया। परं उस समय आप चुप रहे और आन्तरिक रीतिसे, इनके भीतर क्या भरा हुआ है जिससे उसका ठीक२ परिचय मिल सके कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, इस बातका निश्चय करने लगे। इतने ही में विविध उपायन तथा भोजन सामग्री लेकर राजा साहिब भी आ पहुँचे। उसकी यह सामग्री यद्यपि प्रथम तो कारिणपानाथजीने अस्वीकृत की परं अन्तमें श्री नाथजीके अनुरोधानुसार ग्रहण करली। और कूपके समीप ही विश्राम करनेका निश्चय कर सब सहायताके सहित वे वहां पहुँचे। भण्डार चेतन कर दिया गया। इधरसे भोजन तैयार हुआ तो उधरसे सायंकाल उपस्थित हुआ। कारिणपानाथजीने सशिष्य सान्ध्य विधि समाप्त कर कूपस्थ स्वकीय गुरुजीके तथा श्रीनाथजीके उद्देशसे आदेश २ शब्दोद्घोषित किया। और श्रीनाथजीकी आज्ञानुसार उनका भोजन उनकी कुटीपर ही प्रेषित कर योगियोंको पंक्तिबद्ध हो जानेकी आज्ञाके साथ २ यह आज्ञा भी प्रदानकी कि इधरसे निवृत्त हो भोजन लेकर नगरके चौं तरफ चक्र लगा देना। जिससे कि आजके दिन नगरमें कोई क्षुधार्त्त न रहे। उन्होंने वैसा ही किया। और पक्वपदार्थोंके पात्र सम्पूरितकर नगरके सर्वतः परिक्रमा लगाते हुए भोजन वितरण करना आरम्भ कर दिया। ठीक इसी समय जब कि वे, है ३ कोई बुभुक्षित मनुष्य ३ जो हमारा भोजन ग्रहण करे, यह घोषणा करते हुए फिर रहे थे तब श्रीनाथजी रूपान्तरमें परिणत हो एक वृक्षके नीचे जा बैठे। और उच्चस्वरसे कहने लगे कि अये! पुण्यात्माओ मुझ गरीबकी ओर भी कुछ कृपादृष्टि करना। कई दिनसे अनाशनिक हूं। जिससे सम्भव था आज मेरे प्राण पक्षी हो जाते। परं आपकी आशापाशने ही उन्हें वन्धित कर रक्खा है। यह सुन वे शीघ्र उधर लौटे। और कहने लगे कि ले भोजन काहेमें लेगा। उन्होंने अपना एक छोटासा पात्र उनकी ओर बढाया तथा कहा कि इसमें जो कुछ डालना हो डाल दो। परं मैं अत्यन्त भूखा हूं यह कह ही चुका हूं। इसलिये इस पात्रको पूर्ण कर देना। यहसुन कर उन्होंने क्रमशः सब चीज जो कि उनके समीप थी कुछ २ कर पात्रमें छोडी। परं उनका कहीं पता न लगा कि वे कहां गई। अधिक क्या उन्होंने जितना भोजन उनके पास था सब पात्रमें डाल दिया। इतने पर भी जब वह पूर्ण न हुआ तब उन्होंने एक योगी भोजन लाने और इस बातको गुरुजीके सम्मुख वर्णित करनेके लिये वापिस भेजा। वह विश्राममें आया और उक्त घटनाका सब समाचार कारिणपानाथजीको कह सुनाया। आपने कहा कि सम्भव है श्रीनाथजी ही उधर चले गये होंगे। अतः अमुक योगी जाय और देख आये कि वे अपनी कुटीपर हैं या नहीं। यह सुन निर्दिष्ट योगी गया जिसको श्रीनाथजी अपनी कुटीमें बैठे मिले। उसने शीघ्र लौट उनकी उपस्थितिका समाचार दिया। इसपर कुछ शङ्कित हो कारिणपानाथजी ध्यान निष्ठ

हुए उस व्यक्तिके याथार्थ्यको देखने लगे। जिससे आपको मालूम हो गया कि यह सब श्रीनाथजीकी ही लीला है। एवं उनकी आन्तरिक अभिलाषा है कि जनोंको कुछ चमत्कार दिखला कर अपना ऐहागमन सार्थक करें। इसी कारण कुछ भोजनके साथ आप स्वयं उधर चले। यह देख दर्शनार्थ आगत जनता भी, देखें इस विषयमें क्या होगा, इस विचारके आश्रित हो आपके पीछे चल पडी। कुछ क्षणके अनन्तर आप घटनास्थानपर पहुँचे। और दरिद्र रूपमें परिणत श्रीनाथजीको आभ्यन्तरिक रीतिसे नमस्कार कर उनके पात्रमें भोजन डालने लगे। जनसमाजके देखते २ अर्ध प्रहर व्यतीत हो चला। न तो लेनेवालेका पात्र पूर्ण हुआ और न देनेवालेका पात्र ही रिक्त हुआ। यह देख उपस्थित लोग बडे ही विचार चक्रमें पडे। एवं विस्मित मुखसे परस्परमें कह उठे कि देखो यह अत्यन्त ही आश्चर्य की बात है। समझमें नही आता कि इस ग्राहकके पात्रमें डाला हुआ इतना भोजन कहां गया। तथा दाताके पात्रमें इतना भोजन कहांसे आ गया। इस प्रकार जब लोगोंकी स्थिति विस्मयान्वित हो गई। तब श्रीनाथजीने अपने वास्तविक रूपका आश्रय लिया। इससे लोगोंकी दशा और भी साश्चर्या हुई। और कारिणपानाथजीके अनुकरणार्थ सब वे भी श्रीनाथजीके चरणारविन्दकी प्रणतिमें तत्पर हुए इस प्रकार बडा आनन्दोत्सवसा उपस्थित हुआ। दोनों महानुभावोंकी कीर्तिका गायन करते एवं योग विषयकी अनेक गाथाओंका उद्घाटन करते २ अपने २ घरको गये। उधर लोगोंकी प्रणामात्मक सत्कृतिसे सत्कृत हुए आचार्यजी भी अपनी कुटीमें पहुँचे। इधर अपना कार्य सम्पूर्ण कर शिष्योंके सहित कारिणपानाथजी नगरकी परिक्रमा करते हुए अपने आसनपर आये। परन्तु इस खेलने आपके पूर्वोक्त नवीन शिष्योंके आन्तरिक स्थानमें कुछ गड़बडी फैलादी। अतएव वे आपसे यह पूछनेके लिये बाध्य हुए कि स्वामिन्! हम सुनते हैं इन आचार्य जियोंके गुरु श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी गृहस्थीथे। यदि यह बात सत्य है तो हम यह पूछना चाहते हैं उन गृहस्थी के सकाशसे ये इतने शक्तिशाली कैसे हो गये। यह सुन कारिणपानाथजी समझ गये कि ये लोग अभीतक मत्स्येन्द्रनाथजीकी और श्रीनाथजीकी शक्ति शालितासे अनभिज्ञ हैं। इसी लिये आपने कहा कि यह पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वे गृहस्थी होगयेथे तो विषयानन्दकी लालसासे नहीं प्रत्युत परोपकारके लिये ही हुएथे। यही कारणथा उस कृत्यसे उनकी शक्तिशालितामें कुछ भी न्यूनता न आई। बल्कि सच पूछो तो इसीका नाम उपकारता है जिससे कर्ताकी शक्ति नष्ट न हो। इसके विपरीत संसार में ऐसे भी अनेक पुरुष हैं जो यह मानते हैं कि किसी भी छोटे मोटे परोपकारके लिये मनुष्यके प्राण तकके जानेकी सम्भवना हो तो उसको इस बातकी कुछ भी परवाह न करनी चाहिये। परं मेरी समझमें ऐसा मानने और करने वाले भूलते ही नहीं अत्यन्त भूल करते हैं। और वे

उपकार के वदलेमें अनुपकार कर वैठते हैं। कारण कि कोई ऐसा एक बडा उपकार आ उपस्थित हुआ जिसेंम प्रवृत्ति कर्ताकी सर्वशक्ति क्षीण हो गई, तो इससे क्या हुआ। उस उपकृतिके औद्देशिक एकाध मनुष्यको ही वह रञ्जित करसका। इससे अन्य जो उसके द्वारा अनेक छोटे २ उपकार होने वालेथे जिन्होंसे अनेक पुरुषोंकी आत्मायें रञ्जित होने वालीथी उनकी ओरतो मानों उसने ताला लगा दिया। कहो ऐसा उपकार वास्तविक उपकारकी उपाधि कैसे पा सकता है। अतएव मनुष्यको चाहिये कि शक्ति नाशक वडे उपकारको नमस्कार करे। और शक्तिसाध्य उससे छोटे २ अनेक उपकार कर उस जितना और अनुकूलता होतो उससे भी अधिक गौरवस्थानको प्राप्त करे। श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीका अपने पराक्रमको तादवस्थ्य रखते हुए उस उपकारके करनेका यही अभिप्राय था। अतः तुम यह न सोचो कि वे गृहस्थी थे और इसी लिये उनकी शक्ति भी नष्ट हो गई होगी। इसके अतिरिक्त यदि अब भी तुम्हारा चित उलझनमें ही पड़ा रह गया हो तो तुम्हें यह सोचना चाहिये उनके राजत्व ग्रहणकरनेसे वहुत काल पूर्व श्रीनाथजी उनके शिष्य हुए थे जिन्होंने गुरुजीकी समस्त अलौकिक विद्याओंको ग्रहण किया। फिर उनके महाशक्तिशाली होनेमें क्या सन्देह हो सकता है। बल्कि कितनी ही वार्तोंमें, जिन्होंमें हमारा अभी पहुँचना बाकी है, ये पहुँच चुके हें। यही कारण इनके महत्त्वका भी समझना चाहिगे। जिससे गुरुजीके एवं स्वगुरुजीके विद्यमान रहते हुए भी इन्होंने जगद्गुरु और आचार्यकी उपाधि प्राप्त की है। यह सुन उनका मन सन्तोपित हुआ। और श्री नाथजीके प्रति उनके हृदयेंम कुछ श्रद्धाका बीज अङ्कुरित हुआ। उक्त प्रकारकी वार्तायें करते कराते अर्धरात्री हो गई। यह देख इधर अपने २ आसनपर स्थित हो ये लोग निद्रात्मक महान् आनन्दाराममें पहुँचे। उधर श्रीनाथजी कूपके ऊपर पहुँचे। और इस अभिप्रायसे, कि हमोरसे अतिरिक्त इस कूपको कोई भी रिक्त न कर सके, एक मन्त्रका प्रयोग कर वापिस लौट आये। तदनु प्रातःकाल हुआ। निर्दिष्ट समयपर राजाकी ओरसे मजूरदलके आ पहुँचनेके साथ २ कारिणपानाथजी भी सशिष्य नित्यकृत्यसे निवृत्त हो तैयार हुए कूपपर गये। और शिष्योंको यह आज्ञा देकर, कि आज कमसे कम सायंकाल तक कूपको अवश्य साफ करालेना, अपने आसनपर ही आ गये। यही वात उनके शिष्योंने मजूरोंको सुनाते हुए कहा कि तुम लोगोंको वडी चतुरताके साथ कार्य करना चाहिये। क्योंकि आज ही इसको पूरा करना है। यदि कसर रहीतो गुरुजी असन्तुष्ट होंगे। इस कथनपर श्रद्धा रखते हुए विचारे मजूरोंने प्रयत्न करनेमें कुछ उठा न रक्खा। तथापि सायंकाल समीप आने तक कूपके साफ होनेका ढंग न दिखाई दिया। यह देख योगी भी शारीरिक परिश्रम करने लगे। परं सूर्य अस्त पर्यन्त उनकी अभिलाषा पूरी न

हुई । इससे वे लोग कुछ हर्षक्षयी हुए । और गुरुजीके समीप आकर कहने लगे कि स्वामिन् ! विचारे मजूरोंने तथा हमने भी अत्यन्त प्रयत्न किया तो भी कूआ सन्तोषप्रद साफ नहीं हुआ है सम्भव है कल अर्ध दिनमें ही ठीक हो जायेगा । कारिणपानाथजीने कहा कि तुमलोग कहतेथे हम आपकी आज्ञा होगी उसी समय यह क्या अनेक कूप रिक्त करदेंगे। तुमसे तो और तुमसे ही क्या इतने मजूरोंसे भी समस्त दिन परिश्रम करते रहनेपर यह एक ही कूआ साफ न हुआ । इससे अपनी गर्व भरी वाणीका स्मरण कर वे लोग नतानन किये हुए बोले कि खैर भगवन् ! जो कुछ हुआ सो तो होगया कल यह कार्य अवश्य ठीक हो सकेगा । यह सुन कारिणपानाथजी चुप हो गये । रात्री बीत गई । फिर प्रातःकाल आया । वे लोग मजूरोंके साहित बड़े जोरसे कार्यमें परिणत हुए । और सायंकाल तक लगे रहे । परं फिर भी इच्छा पूर्तिसे वञ्चित ही रहे । अब तो उनकी विस्मयता एवं लज्जाका ठिकाना न रहा । वे आभ्यन्तरिक भावसे सोचने लगे कि गुरुजीके सम्मुख कैसे जायें और अपना मुख दिखलायें । अन्ततः निराश्रय हो वे आसनपर आये । और अपनी स्थितिका सब समाचार गुरुजीको सुनाने लगे । उसी समय कारिणपानाथजी समझ गये कि अवश्य कोई विशेष कारण है । अतएव उन्होंने आज शिष्योंको, और कुछ न कहते हुए केवल इतना ही कहकर, कि अच्छा थोड़ा बहुत बाकी रह गया वह कल ठीक हो जायेगा, सन्तोषित किया । और स्वयं उस विशेष कारणके परिचियार्थ ध्यानमग्न हुए । ऐसा करनेपर फिर आपके श्रीनाथजीका खेल दृष्टिगोचर हुआ । परं जानकर भी आपने उसे प्रकट नहीं किया । एवं प्रातःकाल होते ही शिष्योंको फिर उसी कार्यके लिये उत्साहित किया । वे गये और दिनभर घोर प्रयत्न करते रहे । परं वह कूप कुछ ही अधस्तात् हुआ । अब तो उनकी बुद्धि और भी ठिकाने आ गई । तथा उनको भी यह पक्का विश्वास हो गया कि बात ऐसी ही गोलमोल नहीं है अवश्य कुछ न कुछ कारण है । जिससे कूपका रिक्त होना दुष्कर ही नहीं असम्भव हो गया है । आखिर वे लाज्जित हुए फिर गुरुजीके पास आये । और कहने लगे कि महाराज ! हमको तो यह जान पडता है कि कूएमें किसीने कुछ प्रयोग कर दिया है । यही कारण है एक दिनका कार्य तीन दिन करनेपर भी पूरा न हुआ । और न होनेका कोई लक्षण ही दिखाई देता है । अतः आप देखें और बतलावें क्या है किसने किया है । यह सुन कारिणपानाथजीने कहा कि यह और कुछ नहीं तुम्हारे आहङ्कारिक वचनोंका फल है । जो आचार्यजीने ही उपस्थित किया है । अतएव तुमलोग उनकी कुटीपर जाओ । और उनके क्षमाप्रार्थी बनो । ऐसा करनेपर ही गुरुजीके निकालनेका सुभीता होगा । अन्यथा नहीं । गुरुजीकी आज्ञानुसार वे शीघ्र बागमें गये । और गोरक्षनाथजीके चरणोंमें गिरे ।

आपने प्रत्यभिवादानन्तर पूछा कि क्या ज्वालेन्द्रनाथजी निकल आये। उत्तरार्थ उन्होंने सङ्कुचित मुखसे कहा कि भगवन् ! अभी कहां जब आपकी कृपादृष्टि कार्य करेगी तब निकलेंगे। हम कौन बिचारे हैं जो उनको निकाल सकें। इसपर कुछ हंसते हुए आपने कहा कि हमने तो अपने गुरुजीको संसारसागरमें गिरे हुओंको निकाल लिया था। क्या तुमलोग उनको कूपसे नहीं निकाल सकते हो। इसपर वे कुछ भी उत्तर न देकर स्तब्धनेत्र हुए बैठे रहे। आपने फिर कहा कि अच्छा यदि यही बात है और यह कार्य हमारे ऊपर ही निर्भर है तो कल हम ही करेंगे। परं तुम जाओ और गुरुजीको सुना दो कि कल मध्यान्हमें हमारी रसोई होगी। और भोजन निवृत्तिके अनन्तर ज्वालेन्द्रनाथजीको निकाला जायेगा। यह सुन आपके चरणोंका स्पर्श कर वे लोग अपने आसनपर आये। एवं श्रीनाथजीकी हास्यमयी आदि सब बातोंकी सूचना गुरुजीको देते हुए कुछ उत्साह प्रकट करने लगे। इधर श्रीनाथजीने यही सूचना नगरमें भी भेज दी। तथा प्रत्यक्षतासे कह सुनाया कि कल मनोवाञ्छित भोजन होगा। जिसकी ग्रहण करनेकी अभिलाषा हो वह मध्यान्हसे कुछ पहले कारिणपानाथजीके विश्राम स्थलमें उपस्थित होजाय। बस क्या था प्रातःकाल होते तक यह सूचना नगरभरमें विस्तृत हो गई। और बाजार, गली, घरोंमें बैठे हुए उत्साहित लोग इसी विषयकी वार्ता करने लगे। होते २ मध्यान्ह आगमनके लक्षण भी दीख पड़ने लगे। नागरिक अनेक भोक्ता तथा कितने ही कुतूहल द्रष्टा लोग उधर दौड पडे। अधिक क्या इतने मनुष्य एकत्रित हो गये जिसे साधारण मेला कह सकते हैं। कुछ ही क्षणमें निर्दिष्ट अवसर उपस्थित हो गया। यह देख आचार्यजीने योगियों समेत सब लोगोंको पंक्तिबद्ध हो जानेकी आज्ञा प्रचारित की। उनलोगोंने पंक्ति लगाई। और उनके आगे दोदो पत्र भी रख दिये गये। श्रीनाथजी तथा कारिणपानाथजी आप दोनों महानुभाव पंक्ति मध्यमें विचरते हुए उसका निरीक्षण करने लगे। यह कार्य कुछ क्षणमें समाप्त हो गया। श्रीनाथ जीने उच्च स्वरसे घोषणा करदी कि जिस मनुष्यकी जिस पदार्थके खानेकी रुचि हो वह उसीकी कल्पना करे। वही पदार्थ उसके पत्रमें उतना ही आ जायेगा जितनेसे उसकी तृप्ति हो सकेगी। यह सुन समस्त पंक्तिबद्ध लोगोंने स्वकीय इच्छाके अनुसार भोजनकी स्मृति की। और वे उसीको प्राप्त हो गये। परं कारिणपानाथजीके एक शिष्यने, जो उक्त नवीनोंमेंसे था, सोचा कि यदि आचार्यजी अपने कथनानुसार मनोऽभिलाषित वस्तु प्राप्त करदेंगे तो यह कम आश्चर्यकी बात नहीं। अतएव मैं सर्पकी कल्पना करूंगा देखें वह आता है वा नहीं। ठीक उसने वैसा ही किया। और कल्पनाके अनन्तर ऊपरी पत्रको उठाया। बस पत्रका उठाना ही था एक भयंङ्कर चेष्टा करता हुआ कृष्ण सर्प उसकी दृष्टिगोचर हुआ। जिसको देखकर वह सहसा पीछे हटा। उधर वह सर्प भी चकितसा

होकर इधर उधर दौडता हुआ समीपस्थ गृहस्थ लोगोंकी पंक्तिमें जा घुसा। वे लोग भयके मारे पक्तिभङ्ग करने लगे। जिससे खासा कोलाहल मच गया। यह देख कारिणपानाथजी शीघ्र उपस्थित हुए। तथा मन्त्र प्रयोगसे सर्पको जकडीभूत बनाकर लोगोंके चित्तको स्वस्थ करते हुए कहने लगे बस घबराओ नहीं हमने उसको निश्चेष्ट कर दिया है। अब उसका कोई भय न करो। और आनन्दसे भोजन पाओ। ऐसा होनेसे पंक्ति पूर्ववत् सुशोभित हुई। उधर उस शिष्यको लेकर आप पंक्ति बहिर आये। और कहने लगे कि अरे दुष्टाशय! तूने क्यों मेरा नाम कलङ्कित किया। क्या यह समय इस कृत्यके योग्य था। एक तो तूने भोजनके अवसरमें अनुचित वस्तुकी कल्पना कर श्रीनाथजीकी शक्तिका निरीक्षण करते हुए उनमें अपनी अविश्वासता प्रकट की। दूसरे जो अवसर आनन्दके सहित भोजनके भोग लगानेका था उसी समय लोगोंमें विघ्न उपस्थित किया। तेरे इस अनधिकारित्व सूचक कृत्यपर हम क्षमा नहीं कर सकते हैं। अतएव तू आजसे योगभ्रष्ट हुआ और तेरे ऊपर जो हमारा शिष्यत्वका अभिमान था वह हमने आजसे उठा लिया। तू जा और। कहीं जा। हमारे साथ तेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। यह सुन वह गुरुजीकी ओरसे निराश हुआ गोरक्षनाथजी की ओर अग्रसर हुआ। एवं उनके चरणोंका स्पर्श कर बोला कि भगवन्! क्षमा कीजिये भावी वशसे ऐसा हो गया है। इसके उत्तरार्थ उन्होंने कहा कि यह सत्य है भावी वशसे ऐसा हुआ है। परन्तु भावी समीपसे नहीं जा सकती है। अतएव तूने यह भी भावी वशसे ही हुआ समझ लेना चाहिये कि तू आजसे योगिताका पात्र न रहेगा। और इसी सर्पके सकाशसे अपनी जीवनचर्या पूरी करेगा। उस विचारे के गुरुजीका कथन सुनते ही होश ठिकाने आ गये थे। एक मात्र आप ही उसका आश्रय स्थान थे। और उसने आशा भी की थी कि सम्भव है आचार्यजी मुझे क्षन्तव्य समझेंगे। जिससे गुरुजी को भी उनके अनुकूल होना पडेगा। ऐसा होनेसे मैं फिर अपने उसी पदपर पहुँच सकूंगा। परं हतभाग्य उसकी सम्भावनाके प्रतिकूल ही फल दृष्टिगोचर हुआ। वह आचार्यजीका शापमय वचन सुनते ही मूर्च्छित सा हो गया। उसके लिये, समस्त संसार जलमय प्रतीत होने लगा। जो गुरु अपनी प्रेममयी दृष्टिसे पवित्र कर उसे सम्मुख बैठाते थे एवं शिरके ऊपर हस्त स्पर्श कर उसका मोद बढाते थे। आज वे गुरु उसे सौ कोश दूरीपर दीखने लगे। इससे मारे शोकके उसका हृदय उफन पडा। अतएव उसने करुणा-क्रन्दन करते हुए अपनी महा दीन दशा उपस्थित की। जिसका प्रभाव कारिणपानाथजी हृदयपर पडे विना न रहा। इसी कारणसे वे विवश हो गये। और उन्होंने उसका ह... ग्रहण कर उसे अपने औरसिक स्पर्शसे सन्तोषित किया। तथा कहा कि पुत्रक! अब ... विषयमें तुझे अधिक क्लेशित नहीं होना चाहिये। मनुष्यको कुछ अपने शरीरपर गु...

है वह अपना ही किया समझना चाहिये न कि उसको निष्कारण किसी अन्यका आरोपित किया समझ कर अपनी आत्माको अधिक कष्ट देना। अब तेरे लिये जो आचार्यजीने आज्ञा प्रदान की है इससे अतिरिक्त कल्याणप्रद मार्ग नहीं है। अतएव इनका इस भावी सानुकूल आज्ञाका पालन करता हुआ अपने आपको फिर पात्र बनानेका प्रयत्न कर, जिससे हम तुझे ग्राह्य समझ कर फिर इसी अवस्थामें नियुक्त करलेंगे। गुरुजीके इस व्यवहारसे उसके तरङ्गित हृदयकी झाल कुछ मन्द हुई। और उसने कहा कि अच्छा महाराज! यदि यही बात है और यह मेरे किसी पूर्व जन्माचरित निकृष्ट कृत्यका फल है तो इसे भी भोगके द्वारा हल करना ही है। परन्तु श्रीनाथजीकी आज्ञानुसार यह कैसे हो सकेगा कि मैं सर्पके द्वारा अपना जीवन निर्वाहन करूं। कारण कि यह तो हस्त स्पर्श करते समय आज ही मेरा काम तुमाम समाप्त कर देगा मेरा जीवना और उसका निर्वाह करना तो दूर रहा। यह सुन कारिणपानाथजीने कहा कि ले, ये, मन्त्र हम तुझे देते हैं जिन्होंसे तू अपनी इच्छानुसार सर्पको चेष्टित अचेष्टित आदि चाहे जिस दशामें प्राप्त कर सकेगा। और उसकी दुश्चेष्टासे तेरा बाल तक बांका न होगा। गुरुजीकी आज्ञानुसार वह मन्त्र और सर्पका ग्रहण कर वहांसे चलता बना*। उसका यह आकस्मिक निर्वासन देख बहुतेरे लोगोंके हृदय भर आये। अधिक क्या उसके गुरुभाई, जो स्वयं गुरुजीकी चरण च्छायामें बैठे हुए पंक्ति भ्रष्ट मृगकी तरह उसकी ओर निहार रहेथे, अत्यन्त दुःखी हुए। परं उपायान्तराभावसे उन्होंने अपने उभलते हुए हृदयको किसी प्रकार धैर्यान्वित किया। तदनु पंक्ति विषयक सब कार्य समाप्त हो गया। ज्वालेन्द्रनाथजीके निष्काशनार्थ श्रीनाथजी धूमधामके साथ कूपपर पहुँचे। और उन्होंने सृष्टि रचनात्मक विधिका अनुष्ठान कर एक प्रयोग उपस्थित किया। जिसके अमोघ फल प्रभावसे कूपमें प्रक्षिप्त किये हुए तृण आदिकी शलभ (टिड्डी) बन कर आकाशमें व्याप्त हुई। और बातकी बातमें कूपका मार्जन हो गया। ज्वालेन्द्रनाथजीकी तादृश आसनस्थ प्रतिमाका प्रत्यक्ष दर्शन होने लगा। यह देख आपने गोपीचन्को सम्बोधित करते हुए कहा कि दो पुतले, जो कि तुलना और ऊंच नींचमें तुम्हारे शरीरके सम हों, तैयार करा कर शीघ्र ले आओ। उसने तत्काल अपने भृत्योंको सूचित किया। वे बडी स्फुर्तिके साथ राजाके कृत्रिम शारीरिक पुतलोंको तैयार कराकर ले आये। जो गोपीचन्द्रने अपने आप ग्रहण कर श्री नाथजीके समर्पण किये। उनको ग्रहण करते हुए आपने गोपीचन्दको सचेत किया कि तुम अपने चित्तको उद्वेगित न करना। और हमारे कृत्यमें पूरा विश्वास रखना। यदि

---

* इस महानुभावकी भी शिष्य प्रणाली प्रचलित हुई। जो आजतक उसी कृत्यमें सन्तुष्ट हुई सर्पेलिया-कारिणपालिया-कानबेलिया-आदि शब्दोंसे पुकारी जाती है।

चित्तमें कुछ भी खिन्नता हुई तो समझ लो कराकराया समस्त प्रयत्न मिट्टीमें मिल जायेगा तथा उसका इतना घोर अनिष्ट फल उत्पन्न होगा तुम्हारे साथ ये दर्शक लोग भी आपत्तिके समुद्रमें पड जायेंगे। जिससे वहिर निकलना दुष्कर ही नहीं सर्वथा असम्भव हो जायेगा। गोपीचन्दने आपकी इस चेतावनीको शिर नमन द्वारा स्वीकृत करते हुए कहा कि भगवन् मै कह चुका हूं और कह ही नहीं चुका सर्वदा कथनका स्मरण रखता हूं कि प्राण रहते आपकी आज्ञासे एक कदम भी पीछे न हटूंगा। श्रीनाथजीने उसके इस कथन पर हर्ष प्रकट कर एक प्रतिमा कूए के किनारेपर रक्खी। तथा स्वयं उसको पीछेसे पकड़ कर ठहरा रखते हुए अपने शरीरकी रक्षार्थ मन्त्र जाप करने लगे। इधर मन्त्र पूरा हुआ। उधर अपने पीठ पीछे खडे हुए गोपीचन्दसे आपने कहा कि तुम यहीं खडे ज्वालेन्द्रनाथजीको वहिर निकलने के लिये पुकारो हम इस पुतलेकीछाया कूपमें डालेंगे यह देख वे इस वातको पूछेंगे कि यह शद्व और छाया किसकी है तव तुम न वोलना हम स्वयं उत्तर दे देंगे। यह आज्ञा मिलते ही उसने घोषणा की कि स्वामिन्, वहिर आनेकी कृपा करो। उधर गोपीचन्दके शद्वोच्चारणके साथ २ श्रीनाथजीने प्रतिमाको कुछ कूए की ओर अवनत किया। तत्काल ही प्रतिध्वनि हुई कि यह शद्व और छाया किसकी है। गोपीचन्द चुप रहा। गोरक्षनाथजीने उत्तर दिया आपके शिष्य गोपीचन्दकी है। इस वाणीके ऊपर कूपसे आवाज आई कि अरे अपराधिन्! भस्म हो जाय। तत्काल उक्त प्रतिमाकी भस्म ढेरी हो गई। ठीक इसी क्रमसे दूसरी प्रतिमाका समाचार हुआ समझना चाहिये। अव तृतीयवारी आई। जिसमें श्रीनाथजीने गोपीचन्दको स्वयं कूपपर खडा होनेकी आज्ञादी। और साथ ही यह भी कह सुनाया कि अवके उत्तर भी तुमही को देना होगा। यह सुन वह शीघ्र अग्रसर हुआ। और कूपके ऊपर खडा होकर पूर्वोक्त प्रार्थना करने लगा। ज्वालेन्द्र-नाथजीने फिर पूछा कि अरे जिसने मेरे दो वचन निष्फल कर डाले ऐसा तू आवाज देने वाला कौन है, क्या सचमुच गोपीचन्द है। उसने विनम्र वाक्यसे प्रत्युत्तर दिया कि हां गुरुजी मैं आपका चरणसेवक गोपीचन्दहीं हूं। यह सुन वे, अये पुत्र ले हमतो निकल आते हैं परं तू भस्म न हुआ तो अमर ही हो जाय, इस वाक्यकी अमृतायमान ध्वनि करते हुए कूपसे वहिर आये। अवतो उपस्थित जनताके आनन्दकी सीमा न रही। उसके प्रसन्न मुखसे उच्चरित होनेवाले जयशद्वने वह स्थल गूञ्जारित कर दिया। तदनन्तर गोपीचन्दने अपने राज्यको अधिकारियोंके अधीनस्थ कर गोरक्षनाथजीके परामर्शसे ज्वालेन्द्रनाथजीकी शरण ले अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। और श्री महादेवजीकी आज्ञा पालन करने के लिये प्रथम सोपानपर पदार्पण किया। उधर ज्वालेन्द्रनाथजी अपनी विविध

विचित्र क्रीडाओंसे जनसमाजको विस्मित करते हुए बहुत समयसे इस बातकी ताकमें बैठे ही थे। अब वह अवसर उपस्थित हुआ जिसमें उनका वार सफल हो गया। अतएव आप गोपीचन्द्रको लेकर कुछ दिनके अनन्तर पवित्र और निरत्यय स्थान बदरिकाश्रममें पहुँचे।

इति श्री ज्वालेन्द्रनाथ कूप निस्सरण वर्णन नामक ४० अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय ४१ ॥

पाठक महाशय ! आपको विदित किया जाता है कि उज्जयिनीके महाराज श्री भर्तृजीके योगी हो जानेपर यथार्थ राजा विक्रमने फिर अपने राज्यभारको स्वकीय बाहुबलपर धारण किया । वह महानुभाव बडा ही चतुर एवं तेजस्वी पुरुष था । उसने अपने दिनोदिनके अत्यन्त नैतिक एवं पाराक्रमिक कार्यों द्वारा प्रजाको बहुत रञ्जित कर डाला था । उसकी आन्तरिक अभिमति थी कि संसारमें या तो विरक्त हो केवल भगवदाराधनसे ही समय व्यतीत करना चाहिये । अन्यथा, इसके भोगोंकी ओर ही यदि मनुष्य झुकना चाहें तो वह ऐसा प्रयत्न करें जिससे ऐसे भोग अवशिष्ट न रहजावें जो उसकी उपलब्धिसे बहिर हों । और उनमें लालायित उस मनुष्यकी, द्विविधामें दोनों गये माया मिली न राम, वाली कहावत चारितार्थ हो । ठीक इसी अभिमतके अनुकूल उसने भारतसम्राट् बनने की अभिलाषासे हस्तमें खड्ग धारण कर अनेकराजा महाराजाओंको अपने चरणोंकी ओर झुला लिया । जिन्होंने समयका परिवर्तन देख अगत्या यह बात स्वीकार एवं उद्‌घोषित करनी पडी कि अवश्य महाराजा विक्रम हमार शिरके मुकुट एवं भारतके सम्राट् हैं । अब तो विक्रम अपने आपको कृतकृत्य समझता हुआ फूला न समाया । तथा विजय लक्ष्मीके साथ क्रीडा करता हुआ अपने अदृष्टके सानुकूल होनेका निश्चय करने लगा । और उज्जयिनीसे सुदूरवर्ती पराजित प्रदेशोंका बडी शीघ्रता एवं योग्यताके साथ अनुकूल प्रबन्ध करनेके कारण अपनी अपूर्व राजनैतिक पटुताका परिचय दे वापिस लौट आया। परं इतना होनेपर भी उसकी आशा लता पूर्णतया हरित न हुई। वह और भी यशरूपी जलीय दानके द्वारा अपना अधिक उत्कर्ष देखना चाहता था । अतएव विवश हो विक्रमने अपनी आशा की पूर्त्यर्थ एक सभाकी स्थापना कर उसमें महा यज्ञ रचनेकी घोषणा की । जिसमें उपस्थित समस्त सभ्य पुरुषोंकी स्वीकृति प्रकट

हुई। और तदनुकूल समग्र सामग्री भी सञ्चित होने लगी। कुछ ही दिनमें सब प्रवन्ध ठीक हो गया। यह प्रवन्ध जैसा और जिस रीतिसे हुआ था वह सर्वथा वर्णन करने योग्य है। परं मैं उसका विस्तार कर पाठकोंका अधिक समय खर्च कराना समुचित नहीं समझता हूं। कारण कि इस वातको आप स्वयं विचार सकते हैं जब कि महाराजा विक्रम मण्डलेश्वरके स्थानको प्राप्त हो चुके थे तब ऐसी कौन वस्तु थी जो यज्ञकी साधक होती हुई इसको उपलब्ध न होती। अतएव वह जितने महःपदपर पहुँच चुका था उतना ही बड़ा और प्रशंसनीय उसका प्रवन्ध था। जिसके ऊपर सम्यक् दृष्टि डालते हुए हम साभिमान यह कह सकते हैं कि आर्यवर्तमें वह अपनी अन्तिम अवधि स्थापित कर गया है। तदनन्तर यज्ञार्थ होनेवाले वैसे प्रवन्धका आज पर्यन्त भी भारतको मुख देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। और न यही कह सकते हैं कि भविष्यमें कभी होगा। (अस्तु) यज्ञप्रवन्धके साथ २ विक्रमने अपनी उचित सहायताके लिये भर्तृनाथजीका बुलाना निश्चित कर उनके निवासार्थ एक पाषाण गुहाका निर्माण कराया। इत्यादि आवश्यकीय समस्त कार्य सम्पूर्ण होनेपर उसने इधर स्वाधीनस्थ समग्र राजाओंको निमन्त्रित किया तो उधर भर्तृनाथजीके समीप इस वृत्तान्त सन्देशके सहित अपना एक वाहक भेजा। यह सूचना पहुँचते ही जब अनेक राजालोग अपने २ विचित्र साजसे सज्जित हो उज्जयिनीमें आ आकर उसकी शोभा बढा रहे थे तब ऐसे ही अवसरपर इधरसे भर्तृनाथजी भी आ पहुँचे। परं आपका आगमन अप्रसिद्ध था। और वह आपकी इच्छासे ही हुआ था। सन्देश वाहक मनुष्यके समीप पहुंचनेपर उसके साथ आना आपने अस्वीकृत किया। एवं उसके पीछे आना भी उचित न समझा। प्रत्युत उसको, तुम चलो हम अवश्य वहां उपस्थित होंगे, यह आज्ञा प्रदान कर किसी उपायसे उससे बहुत पहले आ गये। इधर किसी सभाके परामर्शसे विक्रमने आपको नहीं बुलाया था। इसी हेतुसे विक्रम और सन्देश वाहकके अतिरिक्त लोगोंको आपके आगमनका परिचय नहीं था। यही कारण हुआ नगरमें प्रविष्ट होनेपर आपके वेषकी अनुकूलताके अतिरिक्त किसीने अनूठे ढंगसे आपके साथ स्वागतिक व्यवहार नहीं किया। यह देख आप बड़े प्रसन्न हुए। और विरक्ति ठाठके अनुकूल हस्तमें पात्र लिये अप्रतिहत गतिसे राजप्रासादमें पहुँचे। तथा प्रथम विक्रमकी माता और अपनी उपमाताके द्वारपर प्राप्त हो आपने अलक्ष्य पुरुषके नामकी ध्वनि की। यह सुन वह अपने गार्हस्थ्यधर्मानुसार अतिथि सत्कारके लिये स्वोचित भिक्षा ले स्वयं सम्मुख हुई। और भर्तृनाथजीके समस्त दृश्य देखकर शङ्कित हुई अपने हृदयमें अनेक सङ्कल्प-विकल्प उठाने लगी। और वह चाहती थी कि मैं इस वातका निर्णय कर, यदि सचमुच यह भर्तृ निकला तो आज फिर वहुत दिनके

बाद इसे अपने औरसिक स्पर्शसे स्पर्शित कर कुछ प्रेमकी मात्राओंको, जो मेरे हृदयागारमें उदय हो चुकी हैं, चरितार्थ करूंगी। परन्तु यह उसकी अभिलाषा मनकी मनमें ही रह गई। क्योंकि आपने बड़ी शीघ्रताके साथ भिक्षामेंसे कुछ प्रयोजनीय वस्तु उठाकर वहांसे प्रस्थान किया। एवं यज्ञोपलक्ष्यमें आई हुई भगिनी मैनावतीके द्वारपर प्राप्त हो फिर उसी शब्दकी घोषणा की। वह भी उसी प्रकार भिक्षाके सहित स्वयं उपस्थित हुई। और जब कि वह कुछ कदमकी दूरीपर थी उसने वहींसे भर्तृनाथजीका मुखावलोकन कर अनुमान किया कि मालूम होता है यह मेरा भाई भर्तृ है। इसी उपलक्ष्यमें भाई विक्रमके निमन्त्रणसे अथवा अपनी इच्छासे इधर आ निकला है। अतएव उसने इस अनुमानके निश्चयार्थ भिक्षा समर्पण करते २ पूछा कि महाराज! आपका नाम क्या है। क्योंकि इस अवसरपर मेरे हृदयमें एक बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हुआ है। वह आपके शुभाक्षरान्वित नामके श्रवण मात्रसे हल हो सकेगा। इसलिये कृपा करें और अवश्य बतलावें। यह सुन उसे चक्रमें डालनेके लिये आपने कहा कि तुम जिस अभिप्रायसे मेरा नाम पूछती हो उसको मैं समझ गया हूं। भर्तृ नामक यहांका राजा जो योगी हो गया है वह हमारा ही गुरुभाई बना है। जो शारीरिक दृश्यमें कुछ २ मेरी समता रखता है। मालूम होता है हमको देखकर आपके उसकी स्मृति होनेके कारण कुछ मोह जागरित हुआ है। और इस अनुमानसे, कि सम्भव है यह वही हो, आपने मेरा नाम पूछकर उसका निर्णय करना चाहा है परं सन्तोष कीजिये न तो कोई हमारा कभी नाम पूछता है। और न गृहस्थके लिये साधुका नाम पूछना उचित है। यही कारण है हमको अपने नाम बतलानेका अभ्यास नहीं है। हम अपने आपको जिस प्रकार योगी समझते आरहे हैं उसी प्रकार सांसारिक लोग भी हमको योगी शब्दसे व्यवहृत करते चले आते हैं हां इतना अवश्य है उसके उद्देशसे जो आपके हृदयमें मोहकी धारा प्रवाहित हो गई हैं ये व्यर्थ न होंगी आज ही सायंकाल तक अथवा कल अवश्य वह भी यहां आनेवाला है इस बातका मुझे निश्चयात्मक परिचय है, यह कहते ही आप यहांसे अग्रसर हुए। और अपनी परित्यक्त राणियोंके द्वारपर स्थित हो आपने अपने अलक्ष्य शब्दको उनके श्रोत्रों तक पहुँचाया। वे श्रीमती अपने प्रासादके समीपसे आते जाते योगियोंके विषयमें सदा यह अभिलाषा रखती थीं कि यह महानुभाव भिक्षार्थ हमारे महलमें आयें तो हम इसको उचित भोजनसे सत्कृत कर पतिके विषयकी कुछ बातें पूछेंगी कि आपको मालूम हो आजकल वे कहां किस दशामें और क्या किया करते हैं। परं क्षुधा पूर्त्यर्थ दो रोटीके लिये कौन योगी ऐसा था जो राजमहलमें जाता। यही कारण था आजपर्यन्त उनकी उक्त अभिलाषा कभी पूरी न हुईथी। आज अकस्मात् महलमें आये

योगीकी आवाज श्रोत्रगत हुई । अतएव अत्यन्त उत्सुकताके साथ समस्त राणी योग्य पदार्थोंसे अपना २ पात्र सम्पूरित कर आपकी ओर दौड़ पड़ी । दौड ही नहीं पड़ी बल्कि जिसका समाचार पूछनेके लिये उत्कण्ठित थी उसीका लक्षण देख रौमाञ्चिक दशामें प्रविष्ट हुई । तथा अनवरत दृष्टिसे आपकी तरफ अवलोकन करती हुई मुखसे शब्दोच्चारण न कर सकी । और इस अभिप्रायसे, कि यह शीघ्र न चला जाय, आपके चौंतरफ खड़ी हो गई । यह देखनेके साथ २ आपके हृदयात्मक सरोवरमें इस प्रकारकी कल्पनात्मक तरङ्गायें उठने लगी कि अति सामीप्य व्यवहार कारणसे मनुष्यका परिचय जितना उसकी स्त्रीको होजाता है उतना उसके अन्य सम्बन्धियोंको होना दुष्कर है । अतएव जिस कारणसे ये ऐसा व्यवहार कर रही हैं इससे मालूम होता है इन्होंने मेरा परिचय पालिया है । इतने ही में राणी यह स्थिर कर, कि निश्चय करलेना उचित है, ऐसा न हो कभी अन्तमें धोखा निकलनेके कारण हमें लज्जित होना पड़े, आपसे प्रार्थना करने लगी कि महात्माजी ! जो यहां के महाराजा योगी हो गये हैं आप उनके परिचित हैं । यदि हैं तो क्या आप उनके विषयकी कोई खुश खबरी सुनाने की कृपा करेंगे । यह श्रवण करने के साथ २ ही नाथजीका चित्त ठिकाने आया । और उन्होंने निश्चय कर लिया कि खैर जो समझ लियाथा वैसी बात तो नहीं है । परं सम्भव है अधिक वार्तालापसे यह रहस्य खुल जाय । इसी लिये आपने उनको शीघ्रताके साथ, हां मैं उनको अच्छी तरह जानता हूं और मुझे आज यहीं खबर मिली है कि महाराजा विक्रमने उनको बुला भेजा है, इस कारणसे वे आज कलमें यहीं आने वाले हैं, यह उत्तर प्रदान कर वहांसे प्रस्थान किया । इधर आपके दर्शन पिपासु राणियोंके नेत्र तथा चित्त पूर्ण रीतिसे सन्तुष्टतान्वित न हुए । राणियोंकी अन्तरिच्छा तो यहांतक थी कि महात्माजी यहीं बैठ कर भोजन करें तो सौभाग्यकी बात है । ऐसा करनेसे हमको कुछ देर इनके दर्शन और पतिके सुख समाचार पूछनेका अवसर मिल सकेगा । परन्तु भिक्षामेंसे कुछ अंश ग्रहण कर आपके शीघ्र गमन करनेसे उनकी यह अभिलाषात्मक तरङ्ग उनके हृदयात्मक सरोवरमें ही विलीन होगई । और कुछ क्षणोंके लिये उनके अत्यन्त निराशा उत्पन्न हुई । एवं वे एकत्रित हुई परस्पर में अनेक भावोंका उद्गार कर एक दूसरी को कहने लगी भगिनि ! मुझेतो ऐसा विश्वास होता है हमारे स्वामी आपहीथे । यदि ईश्वरीय सानुकूल इच्छासे मेरा यह विश्वास सत्य निकला तो यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि हम हतभागिनी हैं । क्यों कि इनके मुखकमलकी असह्य कान्तिसे यह सहज में ही जाना जा सकता है कि योगके विषयमें इन्होंने असाधारण कुशलता प्राप्त की है । जिससे ये चाहेंगे और सांसारिक चक्रोंमें न पडकर अपने मार्गमें अग्रसर होनेका कुछ भी प्रयत्न करेंगे तो संसारमें

अपनी अक्षुण्ण कीर्ति स्थापित कर सकेंगे। अतएव जिनका पति इस पदपर पहुँच चुका हो उन स्त्रियोंके लिये यह कम सौभाग्यकी बात नहीं है। यह सुन दूसरी उत्तर देतीथी कि हां बहिन यदि ऐसा होतो हम ईश्वरके महान् अनुग्रह पर कृतज्ञता प्रकट कर अपने आपको धन्य समझ सकती हैं। परं सन्देह यह है कि जिनके मर्मस्थानमें पिङ्गलाने इतना बडा आधात पहुँचा दियाथा कि उसे सहन न कर उन्होंने अपने प्राणोंतक के त्यागनेका सङ्कल्प कर छोडाथा, वे उस आघातका विस्मरण कर योग क्रियाओंमें दत्त चित्त हो जायें ऐसा सम्भव कहां, बल्कि सम्भव है वे अवतक कहीं न कहीं उसी वियोगसें इसलोककी यात्रा समाप्त कर बैठे होंगे। इसके प्रत्युत्तर में फिर प्राथमिक कहती थी कि हां यह अवश्य है पिङ्गलाका वियोग उनके लिये साधारण नहीं था, और सम्भवथा कि कुछ दिन में हमारे देखते २ वे अपने नश्वर शरीरकी अन्तिम दशा उपस्थित कर बैठते, परं उनको महात्मा गोरक्षनाथ जैसी योग मूर्तिका संसर्ग प्राप्त हुआ यह अत्यन्त सौभाग्यकी बात है। साथ ही हमको यह विश्वास भी है कि उन्होंने उस दशाका परित्याग कर अवश्य कुछ न कुछ औत्कर्षिक वृत्तान्तका आश्रय लिया होगा। कारण कि गोरक्षनाथजी कोई साधारण योगी नहीं है। सुनाजाता है कि विश्व संहर्ता भगवान् महादेवजीकी कलाओंका ही पूञ्जस्वरूप हैं। अतएव उनका प्रयोगित किया हुआ उपदेश कभी निष्फल नहीं हो सकता है। मानलो कि उस वियोगसे उन्होंने अपने प्राण विसर्जित कर भी दिये हो तो भी उनका मरना निश्चित नहीं करना चाहिये। जबकि पतिमहाराजको जीवित रहते हुओं को उन्होंने अपना आश्रय दिया है तब यह सम्भव नहीं कि वे उन्हें इस कलङ्ककारी मृत्युसे मरने देकर अपने संसर्ग एवं उपदेशकी निष्प्रयोजनता देखते रहें। तथा संसारमें विस्तृत होने वाली स्वकीय अपकीर्तिका किञ्चित् भी विचार न करें। अतः उन्होंने अपनी सँजीवनी विद्याके प्रतापसे उनको फिर तादृश अवस्थामें स्थापित किया होगा। ऐसा करना न तो उनके लिये कोई असाध्य बात है और न इसमें हमको कुछ सन्देह ही होता है। जिन्होंने एक की आवश्यकतामें अनेक पिङ्गलाओंको रचकर सम्मुख खडा कर दियाथा उनके लिये उस एक व्यक्तिका सजीव करना बडीबात नहीं है। इतना होनेपर भी जो यथार्थ बात है वह इस यज्ञोपलक्ष्यमें प्रकट हो जायेगी। यदि वे सचमुच सजीव हैं और इन महात्माजीके कथनानुसार महाराजा साहिबने उनके आह्वानार्थ सूचना भेजी है तो प्रथम तो वे अवश्य यहां आही जायेंगे। दूसरे न भी आये और सजीव होंगे अथवा स्वर्गवासी ही हो गये होंगे तो सुदूरवर्ती प्रत्येक प्रान्तोंसे आनेवाले इस वृत्तान्तके परिचित किसी न किसी मनुष्यके द्वारा यह पता अवश्य मिल जायेगा कि उन्होंने कहां और कब शरीर छोडा। ठीक इसी समय जब कि राणी परस्परमें

अपनी २ इत्यादि कल्पनायें कर रही थी तब शिप्रापर पहुँचनेके अनन्तर भर्तृनाथजीकी अपने आगमनकी भेजी हुई सूचना राजप्रासादमें व्याप्त होनेके कारण इनके श्रोत्रोंतक भी पहुँची ।। यह श्रवण करते ही इनके आनन्दने अपनी सीमाका भङ्ग किया । और ये उनकी पूजाके लिये उचित सामग्री मंगा २ कर सज्जित करने लगी। इधर महाराजा विक्रमने उनके स्वागत और नगरकीर्तन करानेके लिये पूरा प्रबन्धकर दिया। नगरमें बडी धूमधाम मच गई। समस्त नागरिक लोग यथाशक्ति अपने २ स्थानोंको सजाने लगे। लोगोंके चित्तमें आपके आगमनसे आज उतना ही उत्साह दिखाई देता था जितना कि आपका सिंहके द्वारा मारजाना सुननेके अनन्तर आपके प्रत्यक्ष देखनेसे हुआ था। अस्तु महाराजा विक्रम बडे समारोहसे अपने प्रधान पुरुषोंके सहित आपको लेनेके लिये स्वयं शिप्रापर पहुँचे। और स्वोचित रीत्यनुसार अभिवादनिक कृत्यके द्वारा आपको सत्कृत कर कुछ क्षणके लिये बैठ गये। आज बहुत वर्षोंके अनन्तर एक दूसरेको हृदयकी तुल्य समझनेवाले प्रिय भ्राता एक स्थानमें विराजमान हुए। और एक दूसरेको निरन्तर दृष्टिसे देखते हुए अपने २ उद्भूत प्रेमकी मात्राओंको सार्थक करने लगे। सब लोग सन्नाटा मोर बैठे तथा खडे हुए थे। राजकीय मर्यादासे कोई चूं तक न करता था। समस्त लोग हस्त-सम्पुटी कर छातीपर धारण किये हुए आज बहुत दिनके बाद योगीके चिन्हसे विभूषित अपने भूत पूर्व राजा साहिबकी वन्दना कर रहे थे। जिन्होंमें कई एक मनुष्य ऐसे भी थे आपका प्रेम उनके हृदयमें न समाकर बहिर निकल आया था। जिसके विवश हो उन्होंका अश्रुपात हो गया। परन्तु महाराजा विक्रमका शासन सर्वथा उचित होनेसे उनका इसमें भी प्रेम कम न था। अतएव वे यह सोच कर, कि कभी महाराज हमारी ओर अवलोकन कर अश्रुपातसे यह विपरीत अनुमान कर बैठें कि भर्तृजीका शासन हमारेसे अधिक अच्छा होगा जिसके सुखका स्मरण कर इनका हृदय उमड आया है, अश्रुओंको प्रथम तो नयनान्तर हो स्तम्भ कर लेतेथे। दूसरे भीतर न ठहर कर बहिर भी आ गई तो उनको अविलम्बसे ही पोंछ लेतेथे। उधर विक्रमसे आलाप करते हुए सम्मुखीन भर्तृनाथजी कभी २ उनकी ओर दृष्टि प्रक्षिप्त कर मानों उनके प्रेमको स्वीकृत करते हुए उन्हें धैर्यावलम्बन करनेका परामर्श दे रहे थे। ऐसी ही दशामें कुछ देर की गोष्ठीसे अपने प्राथमिक मिलापको सार्थक कर महाराजा विक्रमने 'आपको स्वागत पुरस्सर्थ नगरमें चलनेके लिये सूचित किया। आपने कहा कि मैं नगरमें प्रविष्ट हो उचित कृत्यका अनुष्ठान कर थोडी ही देर हुई अभी यहां आया हूं। अतः मेरे पुनर नागरिक भ्रमणकी कोई आव-श्यकता नहीं है। विक्रमने प्रत्युत्तर दिया कि महाराज आपने अपनी इच्छानुसार जो कुछ किया सो ठीक हुआ। और वह आपके आनेके पश्चात् किसी ढंगसे हमको भी विदित हो

गया था। परन्तु आपको ऐसा उचित नहीं कि आप अपनी ही इच्छापूर्तिपर अधिक ध्यान दें। आपके उस आन्तर्धानिक ढंगसे होनेवाले नागरिक भ्रमणसे आपकी ही इच्छा पूर्ति हुई न कि नागरिक लोगोंकी। जो आपको अपना हृदयनाथ समझकर आज बहुत दिनोंके बाद फिर उसी मार्गसे गमन करते हुए देख पुष्पवर्षाके द्वारा अपने प्रेमको सार्थक करना चाहते हैं। यह सुन आपने, अच्छा यदि मेरे गमन द्वारा लोगोंका समारोह चरितार्थ होता है तो चलिये, यह कहते हुए अपना प्रस्थान किया। और विविध वाद्यध्वनिके साथ महाराजा साहिब आपको नगरमें ले गये। वहां जो कुछ उचित एवं सम्भव था सोई व्यवहार आपके साथ किया गया। आपके अनुरोधानुसार राजप्रासादमें प्रवेश न कर आप उसके नीचेसे जानेवाले मार्गसे ही निकाले गये। इस समय महलोंके झरोखोंसे राणियोंके द्वारा होनेवाली पुष्प एवं माङ्गलिक विविध वस्तुओंकी वर्षासे यह अनुमान होता था मानों समस्त राणी पैङ्गलेय वियोग कालमें राजाके ऊपर होनेवाली अपनी घृणाके विषयमें अनल्प पश्चात्ताप प्रकट कर उसे फिर अपने हृदयसे स्वीकार कर रही हैं। अथवा यदि ऐसा करना कलङ्ककारी और कल्याण मार्गसे भ्रंशित करनेवाला समझें तो योग कलाओंमें असाधारण स्थान प्राप्त करनेके लिये प्रोत्साहित कर रही हैं। (अस्तु) इस नगरकीर्तनके अनन्तर आप स्वोद्देशनिर्मित गुहापर गये। यहां कुछ देरके बाद आपकी उपमाता और राणी आपके दर्शन करनेके लिये आई। यद्यपि आप इस माताके औरस पुत्र नहीं थे और विक्रमने अपने धार्मिक भ्राता स्वीकार किये थे तथापि श्रीमतीने विक्रमके कथनानुसार आपको विक्रमके तुल्य किम्वा उससे भी अधिक प्रिय समझ कर पुत्रकी आंज्ञा अनिष्फल की थी! यही कारण था इस श्री मतीने विक्रमके ईश्वराराधनमें अधिक समय व्यतीत करनेकी इच्छासे नर्मदा निवासी हो जानेपर आपको निरङ्कुश राज्य करते देख कर भी कोई आपत्ति न की। और पैङ्गलेय वियोगसे दुर्दशा ग्रसित हो जब आप नगरसे चले आये थे तब विक्रम जैसे सर्वथोचित प्रभावशाली पुत्रके समीप होनेपर भी आपके हस्तसे निकलजानेका जितना शोक इस श्रीमती को हुआ था उतना शायद ही अन्य किसीको हुआ होगा। इसी प्रकार आपके आगमनपर भी समझना चाहिये। अर्थात् आपका नगरागमन श्रवण कर जितनी यह रोमाञ्चिक दशामें प्राप्त हुई थी उतना शायद ही कोई हुआ हो। यही कारण था यह ज्योंही आपके समीप पहुँची और इसकी दृष्टि ज्योंही आपके मुख कमलपर पडी त्यों ही इसने आत्यन्तिक मोहान्धकारमें प्रवेश कर अन्य किसीको उपस्थित न देखनेके कारण लज्जासे रहित हो सहसा हस्त प्रसृत कर आपकी जिघृक्षा की। तथा उसको पूरा भी किया। और अधिक देर पर्यन्त मिलनीका भङ्ग न कर ऐसा हृदय विदारक दृश्य उपस्थित किया जिसका वर्णन करना सर्वथा असम्भव है।

इससे विमुक्त होनेके लिये आपके अनेक वार इच्छा प्रकट कर चुकने पर भी यह आपको छोडती नहीं थी। वल्कि प्रवाहित अश्रुधारासे आपके शरीरको प्लावित करती हुई आपको और भी दृढतासे ग्रहण कर इस भावको सूचित करती थी कि माताके अत्यन्त हार्दिक प्रेमका पात्र औरस जात ही पुत्र हो सकता है सर्वथा ऐसा नियम नहीं है। सुयोग्य चाहे कल्पित भी हो उसके विषयमें माताका अधिकार है वह उसके ऊपर अपने आप तकको न्योंछावर कर सकती है। तदनु बहुत देरमें आपने अपने स्पार्शिक मिलापसे माताजीके प्रवृद्ध प्रेमाग्निकी लटाओं में जल वर्षाया। जिससे उसको स्वास्थ्यकी उपलब्धि हुई। और वह आपकी ग्रहणताका भङ्ग कर आज पर्यन्त किन २ कठिनताओंसे समय व्यतीत किया इत्यादि समस्त समाचार पूछने लगी. आपने कहा कि मातः! मैंने जिन २ विषम मार्गोंको आजतक उल्लङ्घित किया है उनमें अधिक ऐसे हैं जिनकी कठिनतायें सर्वथा अकथनीय हे। तथापि योगेन्द्र गोरक्षनाथजी जैसे सुयोग्य गुरुके चरण प्रसादसे प्रसादित हुए मुझको वे कठिनतायें कुछ भी बाधित न कर सकी। इस लिये मैं अपने गौरवके साथ कह सकता हूं कि मेरा समस्त अद्यावधिक समय सानुकूलता के सहित व्यतीत हुआ है। अतःमेरी कठिनताओंको लक्ष्य ठहरा कर आपको अधिक शोकान्वित नहीं होना चाहिये। एवं न भविष्यके कष्टका उद्देश लेकर ही ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता है। कारणकि मेरे लिये जितनी आपत्तियोंका सम्भवथा वे सव किम्प्रयोजन होचुकी हैं। और मैं उस अवस्थामें पहुँच गया हूं जिसमें उन आपत्तियोंका मुख तक न देखकर आनन्दके साथ अपने गम्य स्थानको प्राप्त कर सकूंगा। यह सुन माताके मोह सन्तप्त हृदयमें पूर्ण शीतलता पहुँची। जिसने कुछ पीछेको हटकर राणियोंके लिये अवसर उपस्थित किया। वे अग्रसर हुई। और उचित प्रणति आदि व्यवहारसे आपको सत्कृतकर अपनी श्वश्रुकी ओर इसारा करती हुई आपसे कहने लगी कि आप भिक्षार्थ महलोंमें गये परं एक साधारण भिक्षुकी तरह वापिस लौट आये। इससे हमको अत्यन्त पश्चात्ताप हो रहा हैं। अच्छा होता आप हम सवकी आँखोंमें धूलि न डालते और हम आपका अपनी इच्छानुसार उचित सत्कार करती। इससे हम पश्चात्तापसे विमुक्त तो रहती ही परं अपनी कर्तव्यताका पालन भी कर सकती। मान लिया कि हमारी स्त्री जातिका हृदय बहुत कोमल होता है जो अत्यन्त प्रयत्न करनेपर भी सीमा भङ्ग किये विना नहीं रहता है। तथापि हम इस दर्जे तक तो नहीं पहुँचती कि आपके वेषकी दूषणताका कुछ भी ध्यान न रख आपको महलमें ही रखनेका कोई विशेष उपाय करती। जिससे आपको अपने मार्गकी भ्रष्टता देखनेके कारण अधिक खेदित होना पडता। हम तो महाराज! अपने अदृष्टके ऐसे ही होनेका अनुमान

कर हृदयको सन्तोष देती हुई अपने कर्तव्य पथपर चल रही हैं। और निश्चय रखती हैं कि अब तो यही पथ हमारे लिये कल्याणदाता होगा। इसपर भी भगवान्‌की सानुकूल कृपासे इधर हम अपने पातिव्रत्यकी रक्षा कर सकें तो उधर आप भी अपने औद्देशिक स्थानकी यदि उपलब्धि कर सकें तो आत्यन्तिक गौरवकी बात है। बल्कि सच पूछें तो हमको दिनरात इसी बातका स्मरण रहता है कि भगवन् ! जो हुआ सो हो गया परं इन स्वर्गोपम भोगोंको भोगते हुए हमारे स्वामीको आपने जो अपने हस्तसे ग्रहण किया है तो उनको अपने यथार्थ अक्षय स्थानमें ही पहुँचा देना। ऐसा न हो कभी अधुरे मार्गमें ही छोड दें जिससे वे इधरके रहैं न उधरके। यह सुन आपने कहा कि तुम्हारा यह मन्तव्य और इसकी पूर्तिके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करना निःसन्देह प्रशंसनीय कार्य है। इसपर तथा विशेष करके तुम्हारे पातिव्रत्य धर्मकी पालनापर अत्यन्त हर्ष प्रकट करता हुआ मैं तुम्हें हार्दिक धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता हूं। परन्तु ध्यान रखना मार्ग तुम्हारा भी अत्यन्त कठिन है। पिङ्गला इस मार्गसे उत्तीर्ण हो संसारमें अपनी अक्षय कीर्तिका विस्तार कर गई है। तुम्हारा इस मार्गसे पार होना अभी अवशिष्ट है। मैं अपने अदृष्टकी अनुकूलतासे और अद्वितीय गुरु गोरक्षनाथजीके अमोघ उपदेशसे शीघ्र ही योगवित् होजानेके कारण अपने विषयमें कुछ भी सन्देह न रखता हुआ तुम्हारे विषयमें इसी बातका ध्यान रक्खा करता हूं तथा ईश्वरसे अभ्यर्थना किया करता हूं कि भगवन् ! मेरे ऊपर कृपा करनेके साथ २ कभी २ उनकी ओर भी अपनी कृपादृष्टिका प्रक्षेपण किये जाना। जिससे वे अपने दुःसाध्य मार्गको सुसाध्य बनाती हुई निर्वाधताके साथ अपने गन्तव्य स्थानमें पहुँच सकें। अतएव तुमको उचित है कि अपने कर्तव्य पथसे एक पद भी पीछै न हटो। ऐसा हुआ तो समझ लो किसी अदृष्टके प्रतिकूल होनेसे तो तुम्हें यह दण्ड मिला कि राजगृहमें जन्म लेनेपर एवं राज्योचित अन्य समस्त भोग प्राप्त होनेपर भी तुम इस सांसारिक प्रधान सुखसे वञ्चित रही। और इस जन्ममें भी यदि कर्तव्य पथसे विचालित हो बैठी तो ये राजकीय उपभोग भी हस्तसे जाते रहेंगे। आपके इस कथनपर अत्यन्त श्रद्धा प्रकट करती हुई राणियोंने शिर झुकाया। तथा प्रतिज्ञा करी कि महाराज ! ईश्वरीय इच्छा क्या है यह तो हम नहीं जान सकती हैं। परं स्वकीय हृदयागारमें पूर्ण दृढताके साथ यह निश्चय अवश्य रखती हैं और रक्खेंगी कि प्राणान्त तक अपने धर्मकी रक्षा करेंगी। तदनन्तर मैनावतीका नम्बर आया। वह यद्यपि आपका मुखावलोकन करते ही समझ गई थी कि यह वही महलोंमें जानेवाला मेरा भाई भर्तृ है। जिसने अपने आपको गुप्त रखते हुए भर्तृसे अन्य सूचित किया था। तथापि उसने यह सोचकर, कि खैर कोई बात हो। योगियोंकी आभ्यन्तरिक लीलाओंका रहस्य समझना बड़ा ही दुष्कर है, इस विषयमें कु-

नहीं कहा सुना। केवल श्रद्धेय सामग्री आपके समर्पण करनेके अनन्तर उसने आपके योगवित् हो जानेके विषयमें महान् हर्ष सूचित किया। एवं कहा कि महाराज! यह बात आपसे और किसीसे छिपी नही है कि स्त्रीके लिये प्राय पैत्रिक और श्वशुर्य इन दोनों ही घरोंके मङ्गलकी कामना उपस्थित रहती है। इनमेंसे एक भी अमङ्गलग्रस्त हुआ तो दूसरेका महामङ्गल भी किम्प्रयोजन रहता है। परं मैं धन्य हूं संसारमें मेर जैसी सौभाग्यवती आज कोई ही स्त्री होगी मुझको परमपिता ईश्वरके कृपा कटाक्षसे ऐसी जगह जन्म मिला है आगे पीछे जिधर देखती हूं उधर मङ्गल ही मङ्गल दिखाई देता है। इतना होनेपर भी यह अपरिमित सौभाग्यकी बात है कि यह मङ्गल भी वैवाहिक मङ्गलकी तरह कुछ ही दिनमें शान्त होनेवाला नहीं प्रत्युत चिरस्थायी अर्थात् प्रलय पर्यन्त रहने वाला है। यद्यपि कुछ मनुष्य ऐसे हैं जो इस बातका वास्तविक रहस्य न समझकर मेरे ऊपर अाप तकका दूषण आरोपित करते हुए कह डालते हैं कि गोपीचन्दको ही क्या भर्तृको भी इसीने उधर उत्साहित कर साम्राज्य भोगोंसे वञ्चित किया है। अतः इसको दोनों गृहोंका नाशकारिणी समझना चाहिय। परन्तु मैं जब इस बातकी ओर दृष्टि डालती हूं कि खैर आपके उन भोगोंसे वञ्चित रहनेमें मेरी अनुमति कारण हो वा तुम्हारी इच्छा अथवा तुम्हारा अदृष्ट ही इस कार्य योग्य हो जो भी कुछ हो, आप योगेन्द्र पदपर तो पहुँचे ही गये, तबतो उनलोगोंका कथन मुझे किञ्चित् भी व्यथित नहीं कर सकता है। प्रत्युत जो लोग इस बातको बार २ कहते हुए अधिक अग्रसर होते हैं मुझे उनकी अदूर दर्शिता एवं मन्द बुद्धिका अच्छा परिचय मिल जाता है। यह सुन आपने कहा कि हां यह अवश्य है संसारमें ऐसे लोगोंकी संख्या कम नहीं है जो तुम्हारे मन्तव्यके और योगके महत्त्व विषयक परिज्ञानसे शून्य हैं। यही कारण है अपनी नितान्त इन्द्रिय परायणताका परिचय देते हुए लोग वर्षाभू जीवोंकी तरह थोडे ही वर्षोंमें अनेकबार पृथिवीमें लीन हो जाते और प्रकट होते हुए दीख पडते हैं। ऐसे मनुष्योंके द्वारा होनेवाली निन्दा वा स्तुति व्यर्थ और कुछ कालमें नष्ट हो जानेवाली है। उससे मनुष्यकी कोई वास्तविक हानि वा उन्नति नहीं हो सकती है। अतएव यह ठीक है तुमको ऐसे लोगोंके कुछ कहने सुननेसे कुछ भी खिन्न न होना चाहिये। तुमने जो कार्य किया वह यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि अपने स्वार्थानुष्ठानके लिये किया हो प्रत्युत परोपकारके लिये ही किया है। और मनुष्य समाजके लिये यह आदर्श सम्मुख रख छोडा है कि पुत्रमें वा किसी भी कौटुम्बी आदि मनुष्यमें माता आदिका अधिक मोह हो तो वह मेरे जैसा हो जिससे मोह पात्रको बार २ धूलिमें न मिलना पडे। तुम्हारे इस हृदयसे प्रशंसा करने योग्य कृत्यसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। इसका मुझे भी बडा भारी गौरव

है और रहेगा। मैं साभिमान यह कहने को तैयार हूं कि इस कार्यमें प्रवृत्त हो कर पुत्रको ईश्वराराधनमें नियुक्त करती हुई तुमने ही मन्दालसाके बाद उसके स्थानको ग्रहण किया है। इसपर मैनावतीने कृतज्ञता प्रकट कर अन्य लोगोंको मिलनेका अवसर दिया। यह मिलाप हुआ। दो दिन आनन्दके साथ व्यतीत हुए। आपने एक अनुष्ठान किया। जिसमें आन्नपौर्णेय मन्त्रसे संशोधित जल थोडा २ उन प्रत्येक प्रान्तोंमें होनेवाले भण्डारोंकी जगह वर्षानेके लिये आपने आज्ञा दी जिन्होंसे उज्जयिनीसे दूर होनेके कारण अधिकलोग यहां नहीं आ सकते थे। इधर यज्ञस्थानमें तो आप स्वयं ही विराजमान थे। फिर क्या त्रुटि रह सकती थी। अतएव अब महायज्ञ आरम्भ हुआ। इसकी समाप्ति भी हो चली। अन्तिमदिन तक सर्वत्र नाना भोजनके भण्डार प्रचलित रहे। आवश्यकतासे अधिक वितरण करनेपर भी भोजनमें कहीं न्यूनता न आई। साम्राज्यभरमें असाधारण एवं प्रशंसनीय दान पुण्य हुए। और प्रजा तथा अधीनस्थ राजाओंकी ओरसे महाराजा विक्रम आजसे आदित्य उपाधिसे विभूषित हुए। एवं इस महा गौरव सूचक पवित्र दिवसका स्मारक आपके नामसे सम्वत्सर भी प्रचलित किया गया। इस प्रकार युधिष्ठिर सम्वत् ३०४४ में यह कार्य पूर्ण कराकर विक्रमादित्यके असाधारण सत्कारसे सत्कृत हुए भर्तृनाथजी यहांसे देशान्तरके लिये प्रस्थान कर गये।

इति श्री भर्तृनाथ उज्जयिन्यागमन वर्णन नामक ४१ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय ४२ ॥

मेरे हृद्य पाठक ! आप इस वातसे परिचित हो चुके हैं कि श्रीज्वालेन्द्रनाथजी गोपीचन्द्को वदरिकाश्रममें ले गये थे । साथ ही वे इसको क्यों और किस उद्देशसे ले गये थे आप लोग इस वातसे भी अविदित नहीं हैं । तथा इस वातसे भी अविदित नहीं हैं कि गोपीचन्द प्रथमतःही अयोगी नहीं था जिसके लिये दीक्षाप्रदान करनेमें ज्वालेन्द्रनाथजीका अधिक समय नष्ट होता । प्रत्युत वहतो प्रथमतः ही योगेन्द्र पँदपर पहुँच चुकाथा । उसका गुरु धारण कर शिक्षा लेना निमित्त मात्र था । अतएव वह थोड़े ही दिनोंमें ज्वालेन्द्रनाथजीके उपदेशको सार्थक कर उनकी अनल्प कृपाका पात्र वन गया । और गुरुजीके परामर्शानुसार स्वतन्त्र रूपसे देशाटन करने लगा । उधर चम्पावती नामकी वहिन जो चीनावङ्गालमें विवाही हुई थी गोपीचन्द्का योगी हो जाना श्रवण कर इतनी अधिक क्लेशित हुई थी जिसने भोजन कम कर मरणा तक ठान लिया था । और हा भ्रातः ! हा गोपीचन्द !२ दिन रात यही रटती रहती थी । उसके इस दुःखसे दुःखी हुए उसके पति राजा साहिवका सव राज्य कार्य शिथिल होता जा रहा था । इसी हेतुसे उसने अपने परम दुःखसे सम्पूरित कई एक सूचनायें गोपीचन्द्के पास भेज रक्खी थी । तथा उनके द्वारा उसने प्रार्थना की थी कि आप कृपाकर एक वार इधर आयें ।

---

* यद्यपि ज्वालेन्द्रनाथजीका कूप पतन गोपीचन्द्के ऐसा होनेमें अविश्वास प्रकट करता है । तथापि इन ९ नाथ महानुभावोंने एकसे एक अद्भुत चरित्र दिखला कर संसारको अपनी ओर झुकानेके लिये ही अवतार लिया था । अतएव वे कौन चरित्र किस इच्छासे करते थे उनकी आभ्यन्तरिक इच्छाका जानना हमको दुष्कर है यही भावना रखनी उचित है ।

और मेरा कष्ट निवारण करें। यदि आप इस प्रार्थनाकी उपेक्षा करेंगे तो आपकी बहिन, जो आपकी इस वेष स्वीकृतिको सुन मारे क्लेशके अतीव कृश हो चुकी है. कुछ दिनमें प्राण त्याग कर देगी। जिसके अनन्तर मेरा भी प्राण पत्नीके रूपको धारण कर बैठे तो कोई असम्भव बात नहीं है। इसीलिये आपको चाहिये कि शीघ्र इधर आ अपने दर्शनसे हमको कृतार्थ करें, और अपने ऊपर पडने वाले इन दो मृत्युओंके भारसे अपने आपको मुक्त करें। इस प्रकारकी हृदय विदारक सूचनाओंके मिलते रहनेपर भी गोपीचन्द्रनाथजीने ज्वालेन्द्रनाथजीकी दीक्षामें अधुरा रहनेके कारण उधर ध्यान नहीं दिया था, अब जबकि गुरुजीकी शिक्षासे पारंगत हो स्वैर गतिसे भ्रमण करने लगे तब आपके उस बातका स्मरण हो आया। और अधिक देर तकके सोच विचारसे आपने एकबार उधर जानाही समुचित समझा। ठीक इसी मन्तव्यके अनुसार गोपीचन्द्रनाथजीने चीना बङ्गालाकी ओर प्रस्थान किया। जो कुछ दिनके अनवरत गमनसे आप उस देशकी राजधानीमें पहुंचे; नगरकी कुछ दूरीपर एक तालावके ऊपर आपने अपना आसन स्थिर किया. कुछ देरमें भोजनका समय भी आ उपस्थित हुआ। यह देख हस्तमें पात्र धारण कर अलक्ष्य पुरुष के नामकी घोषणा करते हुए आप नगरमें प्रविष्ट हुए। और अन्यत्र क्षुधा पूर्ति करनेके अनन्तर स्वकीया भगिनी चम्पावतीके राजप्रासादमें पहुँचे। यहां बहिर भीतर जाने आने वाले कितने ही ऐसे पुरुष थे जिन्होंने राजकीय ठाठसे आपको कई एकबार देखा हुआ था। और उनको यह बात भी मालूम थी कि गोपीचन्द्र योगी हो चुका है। तथापि वे इस दूसरे रूपसे आपका परिचय न पा सके। उन्होंका मन्तव्यथा कि गोपीचन्द्र राजा है यदि वह योगी भी हो गया तो किसी अनूठे ढंगसे ही रहता होगा; न कि भिक्षुओंकी तरह। अतएव इससे आपको अपनी इच्छाके अनुसार प्रासादका प्रथम द्वार उल्लंघित करनेका सुभीता तो मिला परन्तु अन्तःपुरकी खास डोढी तक नहीं जाने पाये। द्वारी पुरुषोंने आपको उसी जगह खडे रह कर याचनेय घोषणा करनेकी आज्ञा दी। जो अन्तःपुरमें प्रविष्ट हो रानियोंके श्रोत्रगत हुई। यह सुन कर रीत्यनुसार दासी भोजन ले कर महलसे नीचे आई। पर गोपीचन्द्रनाथजीने उसकी भिक्षाको अस्वीकृत करते हुए कहा कि मैं तेरे हस्तकी नहीं महारानीके हस्तकी भिक्षा ग्रहण कर सकता हूं। उसने उत्तर दिया कि जब हम इस कामके करनेवाली उपस्थित है जो इसी उद्देशसे रक्खी हुई है और उसका वेतन खाती हैं तब उसको कौन जरूरत पडी जो वह स्वयं हमारे इस कामको करनेके लिये तैयार होगी। इस वास्ते लो भिक्षा लो और अपने रास्ते लगो। आपने कहा कि उसको नीचे आने और भिक्षा देनेकी जरूरत नहीं है तो हमको तुम्हारे हस्तकी लेनेसे भी कोई जरूरत नहीं है। यह सुन वह देखती रह गई। आप भिक्षालिये विना ही अपने आसन स्थानमें आ विराजे। इसके अनन्तर

अन्तिम दिन आया। और वही अवसर उपस्थित हुआ। आप फिर भिक्षार्थ नगरमें गये। और अन्य जगहपर भोजन करनेके बाद प्रासादमें पहुँचे। तथा उसी जगहपर स्थित हो आपने अलक्ष्य शब्दोच्चारण किया। जिसको श्रवण कर वही दासी भिक्षा ले नींचे उतरी। एवं आपके समर्पण करनेको अग्रसर हुई। तत्काल ही फिर आपने कहा कि मैं महारानीके अतिरिक्त किसीके हस्तकी भिक्षा ग्रहण नहीं करूंगा। यदि वह आ कर भिक्षा प्रदान करे तो ठीक नहीं तो हम कलकी तरह वापिस लौट जायेंगे। बांदीने कहा कि महाराज! खैर कलतो मैं इस बातको नहीं कहना चाहती थी परन्तु आज अवश्य कहूंगी कि आप मुझे यथार्थ नहीं कृत्रिम और योगी नामको कहीं न कहीं कलङ्कित करनेवाले योगी मालूम होते हैं। आपका मुख्योद्देश यदि क्षुधा पूर्तिके लिये भोजन लेनेका है तो कोई भी दे उसमें आपको इतनी आपत्ति क्यों करनी चाहिये। प्रत्युत सादर ग्रहण कर अपने हार्दिक आशीर्वादसे दाताका उत्साह बढाना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि भिक्षाके बहानेसे राणीके विषयमें ही किसी अनुचित व्यवहारके अनुष्ठान करनेका उद्देश हो तो मेरे अनुमानमें रत्ती भी झूठ नहीं है। तुम अवश्य जैसे मैंने बतलाये हो वैसे ही हो। भला कोई तुमसे पूछे कि राणीसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है और वह यहां कैसे आ सकती है तो तुम क्या उत्तर दे सकते हो। यदि दे सकते हो और कोई खास कार्य है तो वह मुझसे ही कहो मैं उसके सम्मुख जा कहूंगी। जिससे तुमको यथार्थ उत्तर मिल जायेगा। यदि ऐसा कोई कार्य नहीं है और उसके न होनेसे कुछ उत्तर भी न दे सकोगे तो उसका फल यह होगा कि तुम्हें छद्मवेषी असभ्य मनुष्य समझ कर राज पुरुष कारागारमें ठूंस देंगे। यह सुन गोपीचन्द्-नाथजीने कहा कि खैर जो कुछ हो सो होता रहे हम भिक्षा तो उसीके हस्तकी लेंगे। यदि वह आये तो बतलाओ नहीं तो हम जाते हैं. बांदी अच्छा जाओ यह कहती हुई महलपर चढ गई। इधर आप अपने आसनपर आ गये। परन्तु आपके इस दो दिनके खेलने दासीके चित्तमें कुछ विचारणा उत्पन्न कर दी। इसी लिये उसने स्थिर किया कि इस विषयमें कोई गूढ रहस्य छिपा हुआ जान पडता है। क्योंकि उस योगीके इस व्यवहारसे तो मेरा अनुमान ठीक हो सकता है कि वह कोई वञ्चक होगा। परन्तु उसके शारीरिक समस्त दृश्योंसे कोई असाधारण मनुष्य लक्षित होनेसे मेरा अनुमान अपने आप खण्डित हो जाता है। खैर जो भी कुछ हो मैं महाराणीजीको इस वृत्तान्तसे परिचित करूंगी। इस निश्चयके अनुसार सायंकालके समय जब कि वह महाराणी चम्पावतीकी विशेष सेवामें उपस्थित हुई तब उसने दोनों दिनोंका समाचार उससे कहा। दासीके ये अमृतायमान अक्षर सुनते ही चम्पावतीने सहसा चकित सी होकर कहा अयि! कभी भाई ही आ गया हो। देखना यह बात खूब याद रखना कि कल जब वह योगी आवे तब उसे प्रथम मुझको

दिखलाना। जब वह मेरे ही हस्तसे भिक्षा लेना स्वीकार करता है तो अवश्य कुछ न कुछ विशेष बात है। इसपर दासीने कहा कि उसकी शारीरिक कान्तिसे तो मुझे ऐसा दीख पड़ता है कि शायद आपका ही अनुमान सच्चा निकलेगा। यदि वह अच्छे वस्त्र और आभूषणोंसे सज्जित हो जाय तो कहना ही क्या है, भस्मी रमायें ही इतना सुन्दर मालूम होता है जितने वस्त्रालंकारके सहित हमारे महाराजा भी नहीं हैं। यह सुन चम्पावतीके अनुमानकी और भी पुष्टि हो गई। वह अपने आभ्यन्तरिक भावसे ईश्वरको अनेक धन्य वाद देती हुई उससे, भगवन्! ऐसी कृपा करना कि वह मेरा भाई गोपीचन्द ही निकले, ऐसी प्रार्थना करने लगी। तथा इतनी गौ दान करूंगी, इतना अमुक द्रव्य अमुक जगहपर लगाऊंगी, इतना अमुक जगह पुण्य करूंगी, इत्यादि सङ्कल्प कर इच्छापूर्ति होनेपर इस बातका स्मारक कोई चिन्ह स्थापित करने लगी। इस प्रकार कल्पित मोदप्रमोदसे उसने रात्री व्यतीत की। उधर धीरे २ वह अवसर भी समीप आ गया, चम्पावती दासीके निर्देशानुसार गवाक्षमें बैठी हुई टकटकी लगाकर योगीजीके आनेकी प्रतीक्षा करने लगी। ठीक इसी समय अलक्ष्य शब्दका उच्चारण कर आप प्रासादके आगणमें आ कर खड़े हुए। उधरसे चम्पावतीकी मृगनेत्री दृष्टि आपके ऊपर पडी। बस दृष्टिका पडना ही था उसने शीघ्र आज्ञा दी कि दासी जाओ प्रहरेवालोंको इस वृत्तान्तसे अवधानित कर उसे यहां बुला लाओ, वह मेरा प्रिय भ्राता गोपीचन्द ही है। बहुत अन्याय किया उस दिनसे ही मुझे नहीं बतलाया। आज तीन रोज व्यतीत हो गये। वह क्षुधासे अत्यन्त बाधित हो गया होगा। अये भाई! सहस्रों मनुष्य तेरी सेवामें उपस्थित रहते थे आज तेरी यह दशा तीन २ दिन भूखा ही रहना है। वह इत्यादि अनेक शब्दोंका उद्घाटन करती हुई तड़फती रही। उधर दासी तत्काल नीचे उतर द्वारी पुरुषोंको विज्ञापित कर गोपीचन्दनाथजीको अपनी साथ ले ऊपर पहुँची। आपको सम्मुख आते देखकर चम्पावतीके लिये आज समस्त संसार, जो जलमय और शून्य दिखाई देता था, मङ्गलमय और सत्य प्रतीत होने लगा। जिसके दर्शनाभावमें वह अपने प्राणोंको विसर्जित करने वाली थी आज उसे सम्मुख पाकर उसके मोहाग्नि विदग्ध हृदयको कुछ शान्ति प्राप्त करनेका अवसर मिला। यह वह समय था जिसमें उसने अपने आपके विषयका, मैं क्या हूं और कहां क्या कर रही हूं, इत्यादि परिज्ञान विस्मृत कर दिया था। तथा वह आत्यन्तिक रोमाञ्च दशा निष्ट हुई दीनकी तरह चेष्टा कर आपके गलेसे अवलम्बित हुई। चम्पावतीका यह दृश्य बडा ही हृदय विदारक था। संसारके इतिहासमें वास्तविक पुत्रप्रेम दिखलाकर जिस प्रकार मैनावतीने यशस्वी उच्चासन प्राप्त किया उसी प्रकार भ्रातृप्रेममें चम्पावतीका भी प्रथमासन समझना चाहिये। इस समय गोपीचन्दनाथजीके साथ मिलाप करते हुए उसने जो हृदय भेदी दृश्य उपस्थित

किया है उसको सम्यक्तया प्रस्फुट कर मैं अपने प्रिय पाठकोंका मर्म दुःखी करना नहीं चाहता हूं। केवल इतना ही कहकर शान्त होता हूं कि इसका भ्रातृप्रेम अत्यन्त श्लाघनीय और अद्वितीय था। इसमें यदि प्रमाणकी आवश्यकता हो तो वह यही हो सकता है कि भ्रातृदर्शनाभावमें इसने अपने प्राण तक त्यागनेका सङ्कल्प कर लिया था। कर ही नहीं लिया था बल्कि उसको इस श्रीमतीने पूरा भी कर दिखलाया। जो कुछ ही देरमें आप-लोगोंकी दृष्टिगोचर होगा। ऐसा भ्रातृप्रेम आजपर्यन्त किसी अन्यने भी किया हो यह भारतीय किसी इतिहासमें नहीं पाया और सुना जाता है। रामायणादिसे सूचित होता है कि रामचन्द्रजीके वियोगमें भरतने अपने आपको अत्यन्त क्लेशमें डाल दिया था। और अपने शरीरको व्यर्थ तक बतलाया था। परं वह अपने प्राण खोने तक उद्यत हुआ हो वा खो बैठा हो ऐसा नहीं हुआ। (अस्तु) बहुत दिनोंके अन्तरवरुद्ध प्रेमाश्रुओंके बहिर निकलनेपर चम्पावतीको कुछ कहने सुननेका साहस प्राप्त हुआ। उसने मोहाभिभूत विचारसे कहा कि भ्रातः! ये प्रवृद्ध शिरकेश, जो तुमको सुशोभित नहीं करते हैं कुछ कम कराकर स्नान करो। और अच्छे वस्त्र धारण करो। जिससे तुम्हारी आकृति राजकीय वास्तविक स्वरूपमें परिणत हो। यह सुन आप कुछ मुस्कराये। एवं कहने लगे कि अब तो मेरा यही वास्तविक स्वरूप है। यदि मैं इसका परिवर्तन करडालूं तो संसारमें वर्णसङ्करताके दोषसे लिप्त हो सकता हूं। इस लिये यह स्वरूप तो मुझे सर्वथा रुचिकर होनेके साथ २ यावज्जीवन धारण करने योग्य है। इसके हेतुसे यदि बाह्यदृष्टि द्वारा मैं शोभित नहीं होता हूं तो आन्तरिक दृष्टि द्वारा अवश्य शोभा पाऊंगा। चम्पावतीने सादर मुखावलोकन करती हुई ने कहा कि भाई यह विचार तुमको किसने शिखला दिया। भला हस्तमें प्राप्त हुए मोदकको परे फेंककर अन्यके मिलनेकी आशा रखने वाले मनुष्यको संसारमें कौन पुरुष सुबुद्धि बतलानेको साहस करेगा। प्रत्युत समस्त पुरुष उसे मन्दबुद्धि वा बुद्धिशून्य कहनेको अग्रसर होंगे। ठीक यही दशा तुम्हारे मन्तव्यकी है। तुम ईश्वरीयमहतीअनुकूल कृपासे उपलब्ध स्वर्गोपम खाद्यभार्य पदार्थोंको अनङ्गीकार कर भस्मी आदि आभूषणोंके द्वारा भी उच्च स्थान प्राप्त करनेके भ्रममें पड़गये हो। खैर मानलिया कि कोई मनुष्य सांसारिक अन्यथासिद्ध झगडोंमें विशेष समय व्यतीत न कर ईश्वरीयाराधनसे अपने आपको अधिक पवित्र एवं गौरवशाली बनाना चाहता है तो क्या वह असभ्य खाने पहरनेके द्वारा शीघ्र तथा अवश्य अपनी इस इच्छाकी पूर्ति देख सकेगा। नहीं। प्रत्युत मेरी समझमें तो वह दयानिधान भगवान्के दिये हुए उत्तम पदार्थोंमें घृणाकर इस लोकमें उपालम्भ्य हुआ पारलौकिक ईश्वरीय दरबारमें अपने तिरस्कृत होनेका उपाय कररहा है। और ईश्वरको प्रसादित करनेके बदले असन्तुष्ट कर रहा है। जबकि कोई भी मनुष्य अकिञ्चन हो वनोवासी

हो गया तब उसके समीप ऐसी सामग्री ही क्या रह गई जिसके द्वारा वह प्रथम अपने चित्तको प्रसादित कर ईश्वरके प्रसन्न होनेका सौभाग्य देख सके। तुम ही सोचो और विचार करके देखो राज्य प्राप्ति कालमें तुम अपनी इच्छानुसार अनेक गौ तथा प्रभूत द्रव्य दान करते थे जिससे अनेक मनुष्योंकी आत्मायें सन्तुष्ट होती थी। और सम्भव था कि इसी कृत्यसे तुम जीवनभरमें एक असाधारण गौरव गरीमासे युक्त हो जाते; क्योंकि वही परमात्मा समस्त प्राणियोंमें विद्यमान है। इनके प्रसन्न करनेसे उसकी प्रसन्नता अवशिष्ट नहीं रह जाती है। अतएव तुम्हारा भगवान्के चरणारविन्दसे यदि अधिक प्रेम हो गया है। और अपनी राजधानीमें नहीं रहना चाहते हो तो यहां रहो। ईश्वरकी प्रसन्ननार्थ चाहो जितना दान पुण्य करो अच्छे वस्त्राभूषण धारण कर शरीरको सुख दो। आपने कहा कि बहिन चम्पावति ! तू भूल रही है। अच्छा होता यदि तू माताजीके सकाशसे कुछ वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेती तो, जिससे तुझे सांसारिक व्यवहार विषयका अच्छा परिचय हो जाता और साथ ही यह भी मालूम हो जाता कि ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिये किन २ सामग्रियोंकी आवश्यकता है। तुझे तो इतना ही मालूम और रुचिकर है कि दान, पुण्यसे ईश्वर सन्तुष्ट होता है। परन्तु यथार्थ में यह बात नहीं है। कारणकि इससे मनुष्यका ऐहलौकिक उत्कर्ष बढता है। यदि वह छोटा राजा हुआ तो विशेष दानपुण्यसे अग्रिम जन्ममें कुछ बड़ा हो जायेगा। बडा होनेपर भी अधिक दान किया तो मण्डलेश्वर बन जायेगा। इतना होनेपर भी बहुत लम्बा चौडा हस्त फेंका तो स्वर्गवासी हो जायेगा बस अन्त आ गया। इससे आगे तो कहीं जानेकी जगह ही नहीं है। बल्कि कुछ कालमें वह पुण्य जब भोगद्वारा सान्त हो जायेगा तब क्रमशः वापिस ही लौटना पडेगा। जिससे अपने स्वर्गीय भोगोंको हस्तसे जाते देख उसको अकथनीय दुःख उठाना पडेगा। बस दान पुण्यसे होने वाली ईश्वरीय प्रसन्नताका यही मूल्य है। मैं नहीं चाहता कि मैं ईश्वरको ऐसे ढंगसे प्रसन्न करूं जिसकी प्रसन्नता कुछ दिन आगे पीछे ऐसी ही दुःखदायिनी बनी रहै। किन्तु मैं इसी ढंगसे, जिसका कि अवलम्बन कर चुका और कररहा हूं, उसको प्रसन्न करना समुचित समझता हूं। इसके अतिरिक्त दान पुण्यसे होने वाली ईश्वरीय प्रसन्नताका लोगोंको जो अभिमान होता है वह भ्रमात्मक है। यथार्थ में वह प्रसन्नता कहलाने योग्य नही है। कारणकि यह भी एक ईश्वरीय नियम है जो मनुष्य जिस वस्तुका दान* करता है उसकी वह वस्तु अथवा उसके अनुकूल अन्य वस्तु द्विगुणी चतुर्गुणी हो उस मनुष्यको उसी वा अग्रिम जन्ममें वापिस आकर प्राप्त होती है। जिस

* परम्परासे धन चाहिये तो धर्म करो और मुक्ति चाहिये तो भजन करो। यहओं श्रुति भी इसी बातको सूचित करती है।

वह मनुष्य सांसारिक दृष्टिसे विशेष सत्कार पाता है। उसको प्रभूत धन, द्रव्यका स्वामी समझकर भाग्यशाली बतलाते हुए लोग यह भी कह डालते हैं कि इसके ऊपर ईश्वर प्रसन्न है। परं ध्यान रखना ऐसा कहने वाले भूल करते हैं। ईश्वरकी प्रसन्नता मनुष्योंकी तरह कुछ कालमें प्यारसे क्या हो जानेवाली अथवा किम्प्रयोजन नहीं है। जिसको लोग ईश्वरीय प्रसन्नताका पात्र बतलाते हैं वह सदा लक्ष्मीका भोग नहीं करता है। क्योंकि इसका तो नाम ही चञ्चला है। सर्वदा एकत्र स्थित नहीं रहती है। फिर क्यों ऐसा क्यों हुआ। ईश्वरके प्रसन्न होनेपर भी उस मनुष्यकी यह दशा हुई तो इस प्रसन्नताको मनुष्यों जैसी और निष्फल मानना पडेगा। जो सर्वथा अनुचित है। अतएव उसे इस निष्फलत्व दोषसे मुक्त करनेके लिये यही स्वीकार करना चाहिये कि उक्त कृत्योंसे ईश्वर मनुष्यके ऊपर प्रसन्न नहीं होता है। तो फिर किस ढंगसे मनुष्यके ऊपर वह प्रसन्न होता है और उसकी वह प्रसन्नता कैसी होती है यदि यह पूछना चाहो तो मैं यह उत्तर दे सकता हूं कि जिस ढंगको मैंने अवलम्बित किया है इसमें होता है। अर्थात जो मनुष्य मेरी तरह सर्व त्यागी होकर सांसारिक भोग्य विषयोंकी ओरसे इन्द्रियोंका निरोध करता हुआ गुरु द्वारा उपलब्धकी विधिके अनुसार समाधिनिष्ठ हो उसमें और अपनेमें अभेद उपस्थित करना चाहता है उस मनुष्यपर ईश्वर प्रसन्न होता है। और प्रसन्न होता हुआ उसको अन्य कुछ न दे अपना स्वरूप ही प्रदान करता है। जिसको प्राप्त हो मनुष्य सञ्ज्ञक जीवात्मा उसमें इस प्रकार लीन हो जाता है जिस प्रकार जलमें लवण हुआ करता है। बस यही ईश्वरकी यथार्थ प्रसन्नता है। जिसके प्राप्त होनेपर फिर कभी मनुष्य नामक जीवात्माको सांसारिक दुर्दशा नहीं देखनी पडती है। रहगई तुम्हारी मेरे अकिञ्चन होकर वनावासी होनेकी बात, यह तुम्हारा कहना झूठ नहीं मैं अवश्य वन पर्वत वासी हूं। और मुझे रहना भी वैसी ही जगह रुचिकर है। क्योंकि मेरा कार्य ही ऐसा है जो ऐसे ऐकान्तिक स्थानकी अपेक्षा रखता है। परं मुझे अकिञ्चन समझना सत्य नहीं है। हां इतना अवश्य है कि बाह्यदृष्टिसे लोगोंको मैं अकिञ्चन अर्थात् निर्धन मालूम होता हूंगा। तथापि मैं आभ्यन्तरिक दृष्टिसे देखें वा मुझे ही कोई पूछै तो मै कभी अपनेको निर्धन नहीं बतला सकता हूं। क्योंकि उन व्यथा लोगोंके पास तो सायद-लौकिक ही धन हो मेरे पास तो लौकिक अलौकिक दोनों विद्यमान है। किसीको यदि अलौकिक धनकी आवश्यकता हो और इस विषयमें मुझे परीक्षित करना चाहता हो तो हमारा अनुयायी बने। और देखे कि मेरे कथनमें सत्यताकी कितनी मात्रायें हैं। इसके अतिरिक्त यदि लौकिक धनकी आवश्यकता हो तो अभी मैं दे सकता हूं तुम्हें चाहिये तो मांगो और निश्चय करो कि मैं तुम्हारे मन्तव्यके अनुकूल दरिद्री बन गया अथवा सब कुछ भरपूर बन गया हूं। यह सुन चम्पावती आभ्यन्तरिक भावसे अत्यन्त प्रसन्न हुई।

और मनन करने लगी कि भाई सचमुच यदि इस पदपर पहुँच चुका है तो यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि इसने राज्यपाटका परित्याग करके योगमार्गका अवलम्बन करनेमें प्रमत्ता की है। प्रत्युत वह कार्य किया है जिससे यह दोनों लोकोंमें सत्कारकी दृष्टिसे देखा जायेगा। तथापि मुझे चाहिये कि मैं इसकी सिद्धिका परिचय लूं। जिससे दो वार्ताओंका लाभ होगा। प्रथम मेरे सन्दिग्ध चित्तको निश्चयता प्राप्त होगी। द्वितीय सिद्धि प्रत्यक्ष होनेपर लोगोंमें विस्तृत होनेवाली इसकी कीर्तिके साथ २ मैं भी गौरवगरीमासे वञ्चित न रहूंगी। इसी विचारपूर्वक उसने कहा कि अच्छा भाई यदि यही बात है तो खैर मैं तुम्हारा अलौकिक धन तो नहीं देख सकती हूं परन्तु लौकिक दिखलाओ तुम्हारे पास कहां और कितना धन है। क्योंकि मैं तो इसी बातसे अधिक दुःखी रहती हूं कि जिस मेरे भाईके सहस्रों मनुष्य सेवा करने वाले हरएक समय सम्मुख खडे रहते थे। जिसके अपरिमित धन, द्रव्य हस्तगत था, आज उसकी यह दशा, उतने सेवक तो दूर रहे पासमें पैसा तक खानेको नहीं। अतएव तुम्हारा धन देखनेसे मेरी यह दुःखदायक झूठी कल्पना दूर हो जायेगी। जिससे मेरा चित्त धैर्यावलम्बन कर फिर कभी मुझे इस भ्रममूलक दुःखमें नियुक्त न करेगा। आपने चम्पावतीके कथनकी समाप्ति होते ही गुरूपलब्ध मन्त्रके जापपूर्वक कुछ भस्म सशोधित की। और चम्पावतीसे कहा कि जितने धनकी जरूरत हो उतनी ही इष्टका वा पाषाणखण्ड मंगाओ। उसने शीघ्र अभिलषित परिमाणका पत्थर मंगाकर आपके समर्पण किया। इधर आप भस्मसन्धान किये तैयार खडे ही थे। उसको विलम्बसे उसके ऊपर प्रयोगित किया। बस क्या था पत्थरका असह्य दीप्तिमान सुवर्ण बन गया। यह दिखलानेके साथ ही आपने कहा कि बहिन चम्पावति, तुम समझ लो बस यही धन हमारे पास है। और थोडा नहीं बहुत है। जिसका हम चाहें तो प्रतिदिन अमित दान कर सकते हैं। पर हमको तो इसमें अपना कोई खास लाभ नहीं दीख पडता है। यदि यह धन प्रदान कर किसीको धनाढ्य बना दें तो वह अधिक इन्द्रियारामी हो अनर्थ करनेपर उतर पडेगा। जिससे उसकी और दाता मेरी दोनोंकी ही हानि सम्मुख खड़ी दिखलाई देती है। इस वास्ते इस धनके होनेपर भी हमारे पास इसके व्यय करनेकी कोई विधि नहीं है। रहगई अपने शरीरकी बात। इसके लिये हमको पैसे तककी आवश्यकता नहीं केवल दो रोटी चाहती हैं, वेही जहां जाता हूं तैयार मिलती हैं। अतः लौकिक धनके किम्प्रयोजन होनेसे मुझे अलौकिक धनसे ही अधिक प्रयोजन है, जिसमें कुछ निपुणता प्राप्त कर चुकनेपर भी अभी और परिश्रम करना है। यह सुन तथा सुवर्ण देख चम्पावतीकी आभ्यन्तरिक प्रसन्नता और भी उन्नत हो गई। और गदगद हो उसने कहा अच्छा भाई सब वार्तायें पीछे देखी जायेंगी भोजन तैयार हो गया प्रथम उसे ग्रहण करलो।

आपने भोजन किया । और उससे निवृत्त हो बैठे ही थे । इतने ही में राजा साहिबने आपके आगमनसे परिचित हो बुलानेके लिये जो अपने खास मनुष्यको भेजा था उसने उपस्थित हो आपकी अभ्यर्थना करते हुए कहा कि भगवन् ! महाराजा साहिबके प्रासादमें अपनी चरणरज मुक्त करनेकी कृपा कीजिये । यह सुन आप उसके साथ वहां गये । आगे आपके स्वागतार्थ उसने उचित कृत्यका अनुष्ठान किया हुआ था । अतः आपको हाथोंहाथ उठाकर सादर सिंहासनपर विराजित करते हुए राजाने कहा कि महाराज ! कई एक सूचनाओंके निष्फल होनेसे मेरा चित्त खिन्न हो गया था । परन्तु यह विश्वास नहीं हुआ था कि आप नहीं आयेंगे । क्योंकि मेरा यह निश्चय है कि महात्माओंका हृदय इतना कठोर नहीं होता है जो किसी उद्देशसे अपने विषयमें उत्पन्न होनेवाली किसीकी अत्युत्कण्ठतापर धूलि डाल दें । आपके इधर कृपादृष्टिपतनसे ठीक हुआ कि मेरा यह निश्चय यथार्थ निकला । आपने कहा कि यह सत्य है आराध्यको कुछ आगे पीछे आराधककी आवाजको अवश्य सुनना पड़ता है । तथापि आराधकको चाहिये कि वह योग्य कार्यके लिये आराध्यका आह्वान करै । आपके और चम्पावतीके द्वारा मेरा बुलाया जाना किसी पारमार्थिक उद्देशसे नहीं मोह निमित्तक है । ऐसे आज्ञानिक आह्वानसे उभय पक्षमें हानिकी सम्भवना है । स्त्री जातिका हृदय प्राय अधीर होनेके कारण मैं चम्पावतीको दोष देना नहीं चाहता हूं तथापि आपको उचित था स्वयं उसका अनुकरण न करते हुए उसको किसी न किसी विचारसे धैर्यान्वित कर देते । जिससे मेरा यह समय और किसी शुभकार्यमें व्यतीत होता । राजाने कहा कि महाराज ! मैं आपके कथनको सत्य समझता हुआ उसमें श्रद्धा प्रकट करता हूं । तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि मैंने उसके समझानेमें कोई बात उठा रक्खी हो । मैंने तो यहां तक कह सुनाया था कि माताके लिये पुत्रसे अन्य ससारमें कोई भी वस्तु प्रिय नहीं होती हैं । अतः जब उसकी माताजीने ही उसको उधर प्रेरित किया है तो उसके लिये कोई खतरेकी बात नहीं है । वह अवश्य किसी कीर्ति विस्तारक मार्गकी प्राप्ति करेगा । इस लिये तुमको विशेष चिन्ता नहीं करनी चाहिये । परं मेरे इस कथनका उसके ऊपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा । और वह अपनी रटनामें निरन्तर लगी ही रही । जिसका फल स्वरूप आपको अपना कार्य छोड़ आज यहां स्वयं उपस्थित होना पड़ा है । योंतो आपके कथनानुसार मोहपाशसे मैं भी खुला नहीं हूं । सांसारिक सम्बन्धानुकूल आपमें इतना मोह रखता हूं जितना कि मुझे रखना चाहिये तथापि वह ऐसा नहीं कि आपके अभीष्टप्रद मार्गमें कुछ विघ्न उपस्थित करे । क्योंकि मैं जहां इतना मोह रखता हूं वहां साथमें यह निश्चय भी रखता हूं कि कोई भी मनुष्य हो जिसका चित्त सांसारिक व्यवहारसे घृणित होकर योगकी ओर उत्कण्ठित हो गया हो वह मनुष्य उस पदपर पहुँ-

चनेवाला है जिसके आगे राज्यसाम्राज्य एक तुच्छ वस्तु प्रतीत होते हैं। फिर ऐसे स्थानमें जाते हुए मनुष्यके मार्गमें विघ्न डालकर कौन ऐसा पुरुष है जो अनर्थकारी हुआ भी अपनी मन्दबुद्धि एवं अदूरदर्शिताका परिचय देगा। किन्तु कभी नहीं। बस यही विचारकर मोहपाशबद्ध हुआ भी मैं स्वयं तो आपके आह्वानका कारण नहीं बना परं उसके असाधारण दुःखसे विवश हो मुझे सूचना भेजनी पड़ी। इत्यादि अनेक प्रकारकी पारस्परिक वार्तायें करनेके अनन्तर आप राजाके महलसे प्रस्थानित हो फिर चम्पावतीके पास गये। और उसको अपने आसनपर जानेके विषयमें सूचित किया। अधिक क्या आपको अपने प्रासादमें ही निवास करनेके लिये चम्पावतीने अत्यन्त बाध्य किया! तथापि उसकी आशा पूर्ण न हुई। और आप अपने आसनपर जोकि नगरसे कुछ दूरीपर था. चले गये। इसी प्रकार प्रतिदिन आते और भोजन करनेके पश्चात् कुछ देरके वार्तालापसे चम्पावतीके चित्तको धैर्यान्वित करके आसनपर चले जातेथे। कुछ दिनके अनन्तर आपने यहासे अन्यत्र चलना चाहा और इस वृत्तसे चम्पावतीको सूचित किया। अधिक क्या उसने आपके यहीं रखनेके लिये महा प्रयत्न किया। तथा कहा कि भाई जब तुम्हारेमें इतनी योगता प्राप्त हो गई तो अब देश प्रदेश वन पर्वतोंमें फिरनेसे क्या फायदा है। यहीं रहो और जिस प्रकारका कोई अनुष्ठान करना हो करो। ऐसा करनेसे तुम्हारे अभीष्ट कृत्यमें कुछ भी बाधा न पडेगी। और मुझे तुम्हारे दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त रहेगा, परं आप उसकी इस उक्तिकी उपेक्षाकर प्रस्थान करनेका निश्चय कर ही बैठ। अब तो चम्पावतीके पैरोंके नीचेकी भूमि निकलने लगी। अधिक क्या उससे गोपीचन्द्-नाथजीका वियोग सहा नहीं गया। और अनेक श्वास प्रश्वास लेनेके अनन्तर एक दीर्घ श्वास ले अश्रुपातके साथ२ उसने अपने प्राणवायुको शरीरसे बाहिर किया। यह सूचना बड़ी शीघ्रताके साथ राजप्रासादमें पहुँची। जिसे श्रवणकर राजाका वायु कण्ठका कण्ठमें ही रह गया। तथा अत्यन्त क्लेशित हुआ सोचने लगा कि बड़ा ही अनर्थ हुआ। सत्य कहा है भावी समीपसे नहीं जाती है। हमको जिस बातका महा भय था आखिर वही होकर रहा। इत्यादि अनेक दैन्य वाक्योंको स्मृतकर वह महात्माजीके पास आया। तथा चम्पावतीका समस्त समाचार उसने आपको सुनाया। यह सुनकर आपका भी चित्त खिन्न हो उठा। और कहा कि देखो ईश्वरकी कैसी विचित्र गति है। मुझे यहां बुलाया किस लिये गया था और हो बैठा क्या। खैर जो भी कुछ हो विशेष चिन्ताका विषय नहीं है। इस प्रकार राजाको कुछ धैर्य देत हुए आप महलमें गये। और सँजीवनी विद्याके प्रभावसे चम्पावतीको तादवस्थ्य बनाकर उसे अनेक विधिसे समझाया। परं उसने आपके समस्त प्रयत्नकी उपेक्षा कर स्त्रीहठका अच्छा परिचय दिया। और आपके चले जानेपर जीवित

रहनेसे मरना ही पसन्द किया। अन्ततः विवश हो आपने उसको एक विधि शिखलाई। तथा कहा कि जब कभी तुम हमारे दर्शनकी इच्छा करोगी और इस विधिका अनुष्ठान करोगी तभी हम उपस्थित हो जायेंगे। खैर वह भी इस रीतिसे किसी प्रकार सन्तुष्ट हो गई जिससे उपस्थित जनताके सत्कारपर आशीर्वाद प्रयुक्तकर आप वहांसे प्रस्थानित हुए।

इतिश्री गोपीचन्द्रनाथ चम्पावती मिलापवर्णन नामक ४२ अध्याय.

अनुवादक–चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय ४३ ॥

इतिहास प्रेमी वाचक महाशयजी ! आप कृपाया अधीत अध्यायोंपर दृष्टि-पात करते हुए निरञ्जननाथजीके शिष्य दूरङ्गतनाथ, आधुनिक काल प्रसिद्ध धोरङ्गनाथजीको स्मृतिगत करें । क्योंकि जिस अध्यायका आप प्रारम्भ कर रहे हैं इसके अधिनायक आप महानुभावही हैं । जिन्होंके शुभ नामसे आपको आगत अध्यायमें परिचित किया जा चुका है । साथ ही यह बात भी प्रकट की गई है कि वे योग सिद्धिमें गुरुजीके समत्वको प्राप्त हुए भी तैजस प्रकृतिके पुरुष थे । आप गुरूपलब्ध योग क्रिया कौशल्यके प्रभावसे बहु कालिक योग प्रचारके द्वारा श्रीमहादेवजीकी आज्ञाका सम्यक् रीतिसे पालन कर इधर उधरके अनेक देशोंमें भ्रमण करनेके अनन्तर सौराष्ट्र देशमें आये । और इस देशीय एक पट्टन नामक नगरकी सीमान्तर्गत गुहा निर्मित कर शिष्यको स्वकीय शरीर रक्षार्थ प्रबोधित करनेके पश्चात् उसमें द्वादश वर्षके लिये समाधि निष्ट हो गये । आपने अपने शिष्यके योग तत्ववेत्ता बनानेमें जिस प्रकार हितैषिताकी पराकाष्ठा दिखलाई थी वह उसी प्रकार आपके विषयमें सीमारहित श्रद्धा रखता था । इसी लिये वह गुरुजीकी आज्ञाको शिरोधार्य समझ कर उस कार्यमें दत्तचित्त हुआ । तदनु जब कि गुरुजी समाधिके द्वारा ब्रह्मरूपावस्थामें प्रविष्ट हो चुके तब इस महानुभावने कल्पित औषधियोंके सकाशसे उनके शरीरको संस्कृत कर गुहाका द्वार बन्ध कर दिया । तथा अपनी दिन चर्याका प्रारम्भ इस प्रकार किया कि आठ पहरमें समीपस्थ पट्टन नगरमें भोजन कर आना और समस्त दिन स्वयं भी सामाधिक आनन्दमें मग्न रहना । यह दिन-चर्या कई मास तक यथेष्ट रीत्या प्रचलित रही । अभी एक वर्ष भी पूर्ण नहीं होने पाया था । इस बीचमें एक विघ्न आ उपस्थित हुआ । और वह यह था कि यह महानुभाव जो

भोजनके लिये नगरमें जाता था इसे देखकर लोग नासिका सङ्कुचित करने लगे। तथा धीरे २ यह कहकर, कि साधुको एक दिन भोजन देना होता है न कि प्रतिदिन, इस दर्जे तक पहुँचे कि उन्होंने इसको भोजन देना बन्ध कर दिया। पाठक! देखिये आज वह समय है जिसमें भारतके कौने २ में योगियोंकी अद्भुत शक्तिशालिताकी धूम मची हुई है। और तो क्या इसी नगरकी छातीपर महात्मा निरञ्जननाथजीके परम प्रभावशाली शिष्य दूरङ्गतनाथजी स्वयं द्वादश वर्षीय समाधिमें विराजमान हैं। जिनके शरीर रक्षक ये शिष्य भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। इतना होनेपर भी नहीं जानते लोगोंने क्यों ऐसा किया। अथवा ठीक है इसीको कहते हैं भावी बलवान्। जिसके चक्रसे असङ्ग रहना सर्वथा असम्भव है। यही कारण था अनेक प्राणियोंके भोगकी अवधि समाप्त होनेसे उनके विलक्षण अदृष्टने उनके आभ्यन्तरिक बाह्य दोनो चक्षुओंको ज्ञान शून्य कर डाला। इसीलिये वे शक्तिशाली महात्माके सम्मुख स्थित होनेपर भी उससे किञ्चित् भयभीत न हो अपने निन्द्यकृत्यके फला फलका कुछ भी विचार न कर सके सम्भव है कि लोगोंको दूरङ्गत-नाथजीके समाधि निष्ट होनेका समाचार मालूम न हुआ हो। और यह सोच कर, कि साधुके लिये एक ही ग्रामके गोरे बैठकर समय यापन करना उचित नहीं, उन्होंने उसका भोजन बन्धकर दिया हो। खैर जो भी कुछ हो लोगोंका कृत्य विचार शून्य और सर्वथा अनुचित कहने योग्य था। इधर शिष्य महानुभावको गुरुजीकी आज्ञात्मक परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिये बारह वर्ष व्यतीत करने थे। वह यह देखकर कुछ खिन्न चित्त हुआ सही परं शीघ्रताके साथ धैर्यावलम्बित हो सोचने लगा कि खैर जो कुछ होगा देखा जायेगा। परं यह तो निश्चय करूं कि समस्त ही नगर ऐसा है वा कुछ लोग, आखिर गली २ भ्रमण कर जब उसने इस बातकी गवेषणा की तब समस्त नगरमें एक भी मनुष्य उसको ऐसा न मिला जो उसका सत्कार करनेके लिये अग्रसर हुआ हो। यह देख उसने लोगोंके द्वारोंपर जानेकी आशा छोड दी। और इस कृत्यका आश्रय लिया कि जिस वणीमें वह निवास करता था उससे एकभार काष्ट सञ्चितकर बाजारमें लाकर बेच देना और इससे उपलब्ध मात्राओंसे अन्नक्रय कर एक कुम्भकारी वृद्धा स्त्रीकी चक्कीसे पीस गुहापर ले आता। तथा इच्छानुसार स्वयं हस्तसे भोजन बनाकर स्वकीय क्षुधाका वेतन चुकाताथा अधिक क्या कहैं इसी प्रकार जैसे तैसे कर उसने बारह वर्ष पूरे किये। गुरुजीका समाधिसे जागरित होनेका अवसर समीप आ गया। उसने गुरु शरीरको फिर संस्कृत कर तैयार किया। दूरङ्गतनाथजी बारह वर्षकी समाधिसे ब्रह्मानन्दका अनुभव कर जागरित अवस्थामें परिणत हुए। और नेत्रोद्घाटित करते ही आपने जब अपने शिष्यकी ओर दृष्टिपात किया तबतो आपने एकाएक उसके शिरको जटा पूञ्जसे शून्य देखा। जिसका अवलोकन

करते ही आप आश्चर्य ग्रस्त हुए सहसा पूछ उठे कि यह क्या बात है । प्रथम तो योगियोंके लिये वृद्ध होना ही लज्जोत्पादक है । इतना होनेपर भी अधिक अवस्था हो गई हो तो यह समझा जा सकता है कि उसीका कुछ यह दोष हो जिससे शिरके बाल गिर गये हों, सो तो है ही नहीं फिर कारण क्या हुआ सच्च बतलाओ । वह महानुभाव यदि ग्रामका कुछ अनिष्ट करना चाहता तो स्वयं भी कर सकता था । परं उसको अपने उदरके लिये अनेक प्राणियोंको महाकष्टमें नियोजित करना रुचिकर नहीं था। तथा गुरुजीके जागरित कालका स्मरण करते हुए उसको इसबातका भी डर था जो अब उसके सम्मुख आ खड़ी हुई । तथापि वह विचारा अब और क्या करता । आखिर जो सत्य बातथी बतलानी ही पडी । बस क्या था उसने कहने ही दे दूरङ्गतनाथजीकी लालाटिक प्रकृति सहसा सङ्कुचित हो गई । वे इतने कुपित हुए उनके नेत्रोंसे क्रोधाग्निकी रश्मिया निकलने लगी । जिससे उनका स्वरूप उस दशामें परिणत हुआ मानों प्रलय कालके आगमनका सन्देश लाये हों । आखिर हुआ भी वही । उस नगरको प्रलयाग्निसे दग्ध करनेके अभिप्रायसे उन्होंने अपने शिष्यको विज्ञापित किया कि शीघ्र जाओ यदि नगरमें कोई तुम्हारा कृपापात्र हो तो उसको सूचित करदो कि वह नगरसे बहिर निकल जाय । यह सुन कर उसने समझ लिया कि नगरकी खैर नहीं है तथापि वह गुरुके निश्चयको पलटनेके लिये समर्थ नहीं हुआ । अतएव उसने कहा कि स्वामिन् ! यद्यपि एक वृद्धा स्त्री के विना मेरा कोई भी मनुष्य नगरमें कृपापात्र नहीं है तथापि जहां तक हो अच्छा है यदि आप अपने इस कालिक क्रोधावेशको अन्तर ही अवरुद्ध करलें तो । ऐसा करनेसे बहु संख्यक प्राणियोंका मङ्गल हो सकेगा । परं ईश्वरको ऐसा ही नहीं कुछ और ही मंजूर था । इसी लिये उन्होंने उच्च स्वरसे फिर कहा कि नहीं जाओ २ शीघ्र जाओ । हम जो सङ्कल्प कर चुके वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता है । आखिर यह आज्ञा प्राप्त कर शिष्य महाशय चला और शीघ्र नगरमें पहुँचा । पहुँच ते ही उसने बूढियाको सूचित किया कि माई क्षमा कीजिये मैं तुझे नगरसे वहिर निकालनेके लिये आया हूं । अतः शीघ्रता किजिये और जो कुछ ग्राह्य सामग्री हो उसको उठाकर वहिर लें जाइये. उसके ये आकस्मिक वचन सुनकर बूढिया चौंक उठी । तथा कहने लगी क्यों महाराज ! यह आज क्या कह रहे हो । जब कि नगर भरमें आपकी किसीने बात तक न पूछी तब मैंने एक चक्की मात्रसे आपका सत्कार किया तो उसका यह प्रतिफल मुझे नगर निर्वासिनी बनाते हो । उसने कहा कि मातः ! आप इस बातका अभिप्राय नहीं समझ पाई हैं । उसी वृत्तान्तके हेतुसे मेरे गुरुजी आज जो बारह वर्षकी समाधिसे उठे हैं नगरके ऊपर क्रोधित हो गये हैं, सम्भव है कि वे नगरको किसी खतरेमें डालेंगे । इसी कारणसे मैं आपको अक्षुण्ण रखनेके लिये बहिर जानेका परामर्श दे रहा हूं । यह श्रवण करते ही वह समझ गई कि

लोगोंके शोगकी समाप्ति हो गई निश्चित होती है । अतः उसने अपने एकमात्र गधेपर कुछ सामग्री आरोपित कर नगरसे बहिर प्रस्थान किया । मूर्खलोग इसे अकस्मात् सामान लादकर बहिर जाते देखकर भी अपने चित्तमें किसी मङ्गलप्रद शुभ विचारकी स्थिति न कर सके। बल्कि श्रीमती कुम्भकारिणीको इस ढंगसे ग्रामान्तर जाते देख हास्योद्घाटन करने लगे। वह भी निःसन्देह लोगोंका अदृष्ट अनुकूल नहीं है यह निश्चय करती हुई उनके ऊपर पड़ने वाले आपत्तियोंके पहाड़को प्रस्फुट न कर चुपकी हो बहिर निकल गई । इधर वह महानुभाव यह कार्य कर शीघ्र गुरुजीके समीप आया। और कहा कि स्वामिन्! उस वृद्धाने चक्की प्रदान की थी जिससे मैं काष्ठनैमित्तिक उपलब्ध अन्नका चूर्ण तैयार करता रहा। इसके अतिरिक्त यदि उसके पास पर्याप्त निर्वाह होता तो मुझे यहां तक सम्भव है कि वह केवल अपने गृहसे ही मेरा कोई प्रबन्ध करदेती , जिससे मुझे इतना कष्ट न उठाना पड़ता । परं यह बात नहीं थी । वह स्वयं अर्थाभावसे अपने जीवनको कष्टमय बना रही थी ; यही कारण था वह केवल चक्की प्रदानसे ही मेरा सत्कार कर सकी । दूरङ्गतनाथजीने, खैर जो भी कुछ हो अब तो उसके विषयमें कोई चिन्ता नहीं हम उसको अपना आशीर्वाद दे चुके हैं जिससे वह ग्रामान्तरमें निवास कर अपने जीवनको सुखमय व्यतीत कर सकेगी, यह कहते हुए गुरूपलब्ध प्रलयास्त्रको सन्धानित किया । तथा समस्त पट्टन नष्ट हों, यह शब्दोच्चारण कर उसका प्रयोग भी कर दिया । बस क्या था अनर्थ उपस्थित हो गया । आपके उक्त शब्दोच्चारणसे न केवल एक वही पट्टन नष्ट हुआ बल्कि इस नामके तात्कालिक विद्यमान कई ग्राम बातकी बातमें धूलिमें मिलनेको तैयार हुए । यह क्यों और कैसे हुआ । यद्यपि एक उसी नगरका अपराध था । और सम्भव हो तो उसके साथ ऐसा व्यवहार करना भी कदाचित् न्याय सङ्गत हो सकता था , तथापि अन्य ग्रामोंका कोई दोष नहीं था । जिसके कारणसे वे आपके इस प्रलयकालिक अस्त्र प्रयोगके लक्ष्य बनते । फिर क्यों ऐसा हुआ । इसका कारण यह है संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि कोई भी मनुष्य जिस प्राणीमें जितना अधिक प्रेम रखता है उसीका विधात करनेके लिये यदि कोई अन्य तृतीय मनुष्य तैयार हो जाय तो वह प्रीति रखने वाला विघातकके ऊपर उतना ही अधिक क्रोधित होता है , ठीक इसीके अनुकूल दूरङ्गतनाथजीका शिष्यके शिरोबाल नष्ट हुए देख उसके कष्टमय जीवन बीताकर भी स्वीय आज्ञा पूरी करनेके हेतुसे उसमें अधिक प्रेम उत्पन्न हो गया था : अतएव वे उसके अपराधी नगरपर महा क्रोधित हो प्रमादी बन गये थे । जिससे उनका शब्दकी ओर कुछ भी ध्यान न रहा । और उन्होंने प्रमादसे समस्त पट्टन नष्ट हो, शब्दकी जगह बहुवचन वाचक समस्त पट्टन नष्ट हों शब्दका उच्चारण कर दिया इसीसे यह महान् अनर्थ उपस्थित हुआ । आपका अभिप्राय यद्यपि ऐसा था कि

नगरका एक दो मोहल्ला बाजार नहीं किन्तु समग्र नगर नष्ट हो। तथापि हां शद्बके ऊपर उच्चरित होने वाली अनुस्वारने उस अभिप्रायका परिवर्तन करडाला। इसीको कहते हैं परमात्माकी विचित्र गति, तथा पर्वतसे राई और राईसे पर्वत बनाना। (अस्तु) नष्ट होनेवाले अन्य पट्टन नगरोंमें किसी नगरकी सीमान्तर्गत पूज्यपाद योगेन्द्र गोरक्षनाथजी अपना मार्ग तय कर रहे थे। वे कुछ क्षणमें ज्योंही नगरके समीप पहुँचे त्योंही उन्होंने नगरको उस दशामें परिणत होते देखा। ठीक इसी समय आपने उसके कारणके जाननेकी अभिलाषासे अपने बाह्यनेत्र बन्ध कर जब आभ्यन्तरिक नेत्रोंसे देखा तब तो दूरङ्गतनाथ-जीका अखिल वृत्तान्त उनके सम्मुख आ खड़ा हुआ। अतएव आपने उपयोगी मन्त्रप्रयोग द्वारा निर्दोषी नगरोंको तत्काल निर्विघ्न बनाकर तादृश सुखी किया। और वहांसे प्रस्थान कर आप दूरङ्गनाथजीके समीप गये। उन गुरुचेलोंने बडे ही विनम्र भावसे आपकी स्वागतिक अभ्यर्थना की। तथा आन्तरिक भावसे अनुमान किया कि मालूम होता है श्रीनाथजीको हमारा कार्य रुचिकर नहीं हुआ है। यथार्थ में बातथी भी ऐसी ही। श्रीनाथजी यद्यपि मर्यादा भङ्गभयसे अपराधीको कुछ दण्ड देना अच्छा समझते थे। तथापि वैसा नहीं जैसा दूरङ्गतनाथजीने दिया। वे तो चाहते थे कि दण्ड सर्वथा ऐसा ही होना चाहिये जिससे अपराधीकी बुद्धि तो ठिकाने आ जाय परं उसकी ऐसी असाधारण हानि न हो जिससे वह विचारा बातकी बातमें अपना सर्व कुछ खो बैठे। अतएव आपने दूरङ्गतनाथजीको सम्बोधित करते हुए कहा कि यद्यपि अन्य ग्रामोंको तो हमने नष्ट होनसे वञ्चित रख दिया है। और यह हुआ भी ठीक ही है। क्योंकि न तो उनका कोई अपराध था। एवं न तुम्हारा उनको नष्ट करनेका कोई अभिप्राय ही था। तथापि हम यह नहीं चाहते कि इस अपराधी नगरके विषयमें भी इतना अधिक दण्ड होना चाहिय था। इसके विनाशार्थ तुम्हारा इतना क्रोधित होना कि जिससे शद्बोच्चारणकी स्मृतिभी न रही यह तुम्हारेको ही नहीं योगिसमाजमात्रको कलङ्कित करने वाला है। ऐसे कृत्योंसे तो जहां हमलोग अपने आपको जनोद्धारक समझ रहे हैं वहां लोग, हमको जनविनाशक माननेके साथ २ अपनी सिद्धियोंका अभिमान रखने वाले भी निश्चित कर बैठेंगे। अतएव नगरका अनुचित कृत्य होनेपर भी उसकी योग्यतासे अधिक दण्ड देनेके कारण तुम भी दण्डित हुए विना नहीं रह सकोगे। क्योंकि जिस प्रकार तुम्हारी क्रूर दृष्टिसे अपराधी नगर नहीं बञ्चित रह सका उसी प्रकार समाजकी तिर्यग् दृष्टिसे तुम नहीं वञ्च सकते हो यह सुन दूरङ्गतनाथजीने अपनी प्रमत्ता स्वीकृत करनेके साथ २ तथास्तु शद्बोच्चारण पूर्व आत्यन्तिक विनम्र भाव प्रकट करते हुए आपकी आज्ञा अङ्गीकृत की। तथा कहा भगवन्! जिस कृत्यको मैं कर बैठा हूं उसको स्वयं भी अनर्थ नहीं समझता हूं यह

नहीं तथापि अवश्यम्भावी वृत्तके रोकनेका साहस करना मानों ईश्वरीय इच्छामें आघात पहुंचाना है। ठीक इसी रीतिसे मैं अपने आपको निर्दोषी बनाना चाहूं तो बनासकता हूं। परं ऐसा समझना और करना मानों आपकी आज्ञाका भङ्ग करना है। अतएव वैसा न कर आप जो कुछ मेरे विषयमें दण्डार्थ कल्पना कर चुके हैं उसको पूरी करना मेरा प्रथम कर्तव्य है। इसलिये कृपा कीजिये और आज्ञा दीजिये मैं किस प्रायश्चित्तका अवलम्बन करूं। श्रीनाथजीने अभी कुछ ठहरो यह आदेश प्रदान कर ज्वालेन्द्रनाथजी आदि अनेक योगियोंके पास समुद्रतटस्थ द्वारकाके समीप स्थलमें* आगमन करनेकी सूचना प्रेषित की। और आप स्वयं भी उन गुरु शिष्योंके सहिस उस निर्दिष्ट स्थानमें पहुँचे। वहां कुछ ही दिनमें बहुत योगी आ एकत्रित हो गये। गोरक्षनाथजीने सबके समक्ष दूरङ्गतनाथजीका अपराध प्रकट कर उसके विषयमें दण्डनिर्धारित करनेकी सम्मति ली। ज्वालेन्द्रनाथजीने समाजकी ओरसे घोषित किया कि जिस दण्डको आप समुचित समझेंगे वही वेषकी ओरसे भी स्वीकृत और प्रशंसनीय होगा। इसपर फिर श्रीनाथजीने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि अच्छा समाजकी यदि यही इच्छा है तो मैं प्रकट करता हूं इन्हें छत्तीस वर्षका प्रायश्चित्त करना होगा। और वह तीन भागोंमें विभक्त करना होगा। तथा प्रत्येक भागके साथ द्वादशवर्षीय अवधि रखनी होगी। जिनमें प्रथमावधि पर्यन्त एक पादाधारसे द्वितीय अवधि पर्यन्त पृष्ठाधारसे तृतीय अवधि पर्यन्त मस्तकाधारसे स्थित रहना होगा। आपकी इस आज्ञाका योगि समाजकी ओरसे समर्थन हो चुकनेपर दूरङ्गतनाथजीने सबके मध्यखडा हो क्षमा प्रार्थना करते हुए दण्डको स्वीकृत किया। तदनन्तर ज्वालेन्द्रनाथजी तथा कारिणपानाथजी आप दोनों गुरुशिष्य गोरक्षनाथजीकी अनुमति प्राप्त कर कैलासके लिये प्रस्थानित हुए। अन्य सब महानुभाव भी अपने २ अभीष्ट मार्गमें तत्पर हुए। केवल सशिष्य दूरङ्गतनाथजी ही अपने शरीरमें स्वास्थ्य तथा विशेष बल प्राप्त करनेके उद्देशसे कुछ दिन वहां विराजमान रहे। आपने इसी जगह गुरु परमात्माको प्राप्त किया था। तात्कालिक समस्त वृत्तान्त अपने प्रिय शिष्यको सुनाते रहे। इसी प्रकार सानन्द वार्तालापसे चारमास व्यतीत हो गये। समाधि हेतुसे आपके शरीरमें जो कुछ निर्बलता प्राप्त हो गई थी उसका पूर्ण रीतिसे निवारण हो बलाधिक्यकी स्थापना हुई। यह देख आप वहांसे प्रस्थानित हुए

---

*. यह स्थान बेटद्वारकासे लगभग तीन मीलकी दूरीपर पूर्व दिशामें है। जो नवनाथ चौरासी सिद्धोंकी धूनि नामसे पुकारा जाता है। मेरे गिनती करनेपर ४८ धूनि उपलब्ध हुई। जिनकी कभी २ कोई श्रद्धालु योगी ठहर कर मरम्मत कर जाता है। यह जंगल है और नगरकी तरफका कुछ अंश छोड कर इसके चारोंओर समुद्र है। अतः अधिकतर यह स्थल निर्जन ही रहता है।

कच्छ देशकी ओर अग्रसर हुए। अपनी तपश्चर्यानुकूल स्थानोंका निरीक्षण करते [१] आप मार्गागत एक पहाडके ऊपर चढे। दैवगत्या आपके ऊपर चढते ही अकस्मात् यह पाषाण सञ्चय कम्पायमान हो गया। मानों अपराधी दूरङ्गतनाथजीको अपने ऊपर चढे हुए देख घृणाके सहित उनके निवासको अस्वीकृत कर रहा है। यह देख उन्होंने भी उसका यही अर्थ लगाया। अतएव वे सहसा अये! कुष्ठी हमारे निवासके लिये तू इतना घृणित है. यह कहते हुए नीचे उतर आये। और एक दूसरे पहाडपर जाकर विश्रामित हुए। यह स्थान उनके रुचिकर होनेपर भी पूर्वोक्तको तरह इसने कोई अशुभ लक्षण प्रकट नहीं किया। ठीक इसी जगह श्री नाथजीकी आज्ञा पालन करनेके लिये आप उनके निर्देशानुसार क्रमिक प्रायश्चित्तात्मक तपश्चर्यामें तत्पर हुए। अर्थात् आपने बारह वर्षतक एक पदाधारसे खडे हो वृक्षासनसे तप किया। बारह वर्षतक भूमिपर सीधी तरह सोकर मृतकानुकारी शवासनसे तप किया। बारह वर्ष तक पैर ऊपर तथा मस्तक भूमिपर धारण कर विपरीत मुद्रासे तप किया। यद्यपि श्रीनाथजीकी आज्ञा इस आसनके विषयमें साधारण तया स्थित रहनेकी थी। तथापि आपने आचार्यजीकी आज्ञाको और भी अधिक परिपक्व बनानेके लिये सुपारीपर मस्तक आरोपित कर अपनी असाधारण अनुलोमताका परिचय दिया। जिससे आपकी दिनचर्या महाकठिन दशामें परिणत हुई। और सञ्चित अपराध उससे पराजित हो आपके शरीरसे निर्वासित हुआ। यही नहीं बल्कि आपके शरीरमें इतना अधिक तेज बढ गया मानों साक्षात् चतुर्भुजी भगवान् आकर प्रविष्ट हो गये हों। यही कारण था जिस दिन आपके दण्डकी अवधिपूरी हुई उस दिन आपने अपने शिष्यसे कहा मैं किस ओर नेत्र खोलूं। जिस ओर की तू सम्मति प्रकट करेगा उसी ओर खोलूंगा। पाठक! आज वह दिन है आपकी तपश्चर्या समाप्तिके उपलक्ष्यमें अनेक राजा महाराजा लोग आकर एकत्रित हो गये थे। जो कुछ दूरीपर स्थित हो आभ्यन्तरिक भावसे आपको असंख्य धन्यवाद देते हुए हस्तोंमें विविधोपायन सामग्री धारण कर आपके महापुण्योपलब्ध पवित्र दर्शन करनेके लिये लालायित हो रहे थे। अतएव उन लोगोंको त्रैकोणिक पंक्ति बद्ध हुए देख शिष्य महानुभावने प्रार्थनाकी स्वामिन्! वामपार्श्वमें वर्तमान समुद्रकी ओर कृपा दृष्टि कीजिये. यह सुन उन्होंने वैसा ही किया। उनकी नेत्र ज्योतिःसहसा बहिर भूत हो प्रलयाग्निके रूपमें परिणत हुई। यद्यपि पुनः अनर्थोत्पत्तिके भयसे आपने उसके शमनार्थ किसी अन्य उपायका प्रयोग भी किया था तथापि उसने शान्त होते [२]

---

१ यह स्थल आधुनिक भुज राज्यान्तर्गत कच्छ माण्डवी, अपर नाम मुष्कामण्डीसे सम्भवतः बीस कोशकी दूरीपर विराजमान है।

२ इस पहाडसे आज तक भी कुष्ठका सूचक तादृश मलीनजल निकलता है।

समुद्रको तिरस्कृत किया। जिसके अत्यन्त सन्तप्तस्पर्शको न सहता हुआ रत्नाकर महानुभाव कई कोश पीछे हट गया। पाठक! देखिये योगी महानुभावोंका कैसा विचित्र चरित्र है। ये पद पद और बात २ पर उसी कृत्यका अवलम्बन करते है जिससे योगका महत्त्व प्रकट होनेपर भी लोगोंका चित्त इधर आकर्षित हो। आखिर हुआ भी यही कई एक महाभागोंने अपने चित्तमें दृढ निश्चय करलिया कि पूजा समर्पणके बाद हम इस बातसे नाथजीको सूचित करेंगे। यदि इन्होंने स्वीकृत किया तो आजसे ही हमको गृहीत व्यवहारसे मुक्त हुआ समझना चाहिये। अस्तु) दूरङ्गतनाथजीने अपनी दृष्टिका संहार कर शिष्यकी ओर इसारा किया। उसने शीघ्रताके साथ समीपस्थ राज संघको अग्रसर होनेकी सूचना दी। वे लोग आगे बढे और स्वहस्त गृहीत नाना प्रकारकी अर्चना सामग्री समर्पण करते हुए आपका मङ्गलप्रद आशीर्वाद ग्रहण करने लगे। इस स्थलके लिये यह दिन बडा ही अपूर्व एवं सौभाग्यका था। राजालोगोंने आपका असाधारण सत्कार कर वह अवसर उपस्थित किया जो राज्याभिषेकके समय भी होना दुर्घट है। अन्ततः पूजा समर्पणके साथ २ पूर्वोक्त वैरागी महानुभावोंको आपके समर्पित कर नृप समूह अपने २ स्थानपर गया। इधर आप उपलब्ध शिष्योंको योगका तत्व समझानेमें दत्तचित्त हुए।

इति श्री दूरङ्गतनाथ समाधि-वर्णन नामक ४३ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय ४४ ॥

पाठक! स्मरण रखिये आचार्य श्रीमद्योगेन्द्रगोरक्षनाथजी विक्रम सम्वत् २५ में द्वारका निष्ट योगि सङ्घके मध्यमें दूरङ्गतनाथजीको दण्ड विधि समझाकर प्रस्थानित हो गये थे। आप यवन जातीय अजपानाथ योगीके सहित समुद्र तटस्थ प्रदेशोंमें भ्रमण करते हुए हिंगलाज पर्वतपर पहुँचे। यहां कुछ दिन विश्राम कर फिर गान्धारादि देशोंमें पर्यटन करने लगे। और अपने अमृतायमान उपदेशसे जन साधारणको पवित्र करते तथा उनका चित्त स्वकीय मोक्षमार्गकी ओर आकृष्ट करते हुए कुछ कालमें शलेमान पर्वतपर गये। यहां अजपानाथजीके कतिपय शिष्य अपने २ शिष्योंको योगवित् बना रहे थे। उन्होंने ज्योंही आचार्यजी तथा स्वकीय गुरुजीको अकस्मात् आते हुए देखा त्योंही कुछ पादक्रम अग्रसर हो आप महानुभावोंका उचित रीतिसे स्वागतिक सत्कार किया। यह देख श्रीनाथजीने उनको प्रत्यभिवादनसे प्रोत्साहित करते हुए कहा कि महानुभावो! आज मैं आपलोगोंके इस अनुष्ठित कृत्यको देखकर महान् आनन्दित हुआ अपने आपमें फूला नहीं समाता हूं। तथा इस बातसे परिचित हो गया हूं कि जो मनुष्य किसी भी जातिको नीचोच्चकी दृष्टिसे देखते और उसके साथ वैसा ही नीचोच्चका व्यवहार करते हैं वे निस्सन्देह मन्द बुद्धि और विचारशून्य हैं। क्योंकि कोई भी जातिमात्र कभी नीच वा उच्च कोटिकी नहीं बन सकती है। यद्यपि संसार मात्रमें आज आर्य जाति सबसे उच्च और उत्तम कोटिमें गिनी जाती है तथापि हम उसके प्रत्येक मनुष्यको उसके अनुकूल उत्तम दृष्टिसे नहीं देख सकते हैं। उस जातिमें भी ऐसे मनुष्य कम नहीं हैं जो स्वोचित कृत्यसे पदच्युत हो अनुचित कृत्योंकी पराकाष्ठा दिखलाते हुए यवनोंसे भी आगे बढ जाते हैं। इसी प्रकार आर्य जातिकी तिर्यग् दृष्टिकी पात्र यवन जातिके भी प्रत्येक मनुष्यको हम तदनुकूल तिरछी दृष्टिसे नहीं देख सकते हैं। इसमें कतिपय मनुष्य ऐसे हैं जो मनुष्योचित वास्तविक कितने ही कृत्योंमें आर्योंसे आगे बढ जाते हैं। इस बातमें प्रमाणकी अन्वेषणा करनेके लिये कहीं दूर जानेकी आवश्यकता

नहीं आज आपलोग हमारी दृष्टिके सम्मुख ही खडे हैं। आपलोगोंने योगवित् बनकर दूसरोंको तद्वत् बनाते हुए न केवल श्रीमहादेवजीकी आज्ञाका पालन किया है वल्कि अपने आपकी अक्षुण्ण स्वच्छ कीर्ति स्तम्भको संसार मात्रमें स्थापित कर दिया है। इससे हम आपलोगोंको सप्रीति हार्दिक धन्यवाद देते हैं। और आशा रखते हैं कि आपलोग इस-कृत्यसे कभी उपरामी न होकर अनवरत सङ्लग्न रहेंगे। यह कहकर आपके शान्त होनेके समकालमें ही वे लोग सशिष्य आपके चरणोंमें मस्तक स्पर्शित करने लगे। तथा कहने लगे भगवन्! हमलोगोंने न तो कुछ किया और न कुछ करने योग्य ही हैं। आपकी कृपादृष्टि ही ऐसी अमोघ है जिसने हमको अपनी ओर आकृष्ट कर आज आपके ये अमृतमय वचन श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है। हां इतना अवश्य है आपकी इस अमोध भविष्यवाणीको सुनकर आज हमलोगोंको पूर्ण विश्वास हो गया है कि हमारे ऊपर आपकी कृपादृष्टि कम नहीं है। अतएव आजतक नहीं आया तो भविष्यमें वह एक दिन अवश्य आने वाला है जिसमें हमलोग आपके कथनानुसार संसारमें अवश्य अपने कीर्तिरूप स्तम्भको प्रतिष्ठित कर सकेंगे। उनका यह औत्साहिक कथन सुनकर आपने उसका समर्थन किया। और उनको आन्तरिक आशीर्वाद प्रदान कर अजपानाथजीसे विदा होनेकी आज्ञा मांगी। उसने कहा कि स्वामिन्! आपको विदा करनेके लिये तो मैं और ये महानुभाव सब तैयार खड़े हैं। परं मेरी इच्छा है कि आप प्रथम मुझे ही विदा कर दें। मैं श्रीभगवान् आदिनाथजीकी सेवामें उपस्थित हो अलक्ष्य पुरुषको लक्ष्य बनानेका प्रयत्न करना चाहता हूं। आपने सानन्दमन्द मुस्कराते हुए कहा कि अवश्य आप ऐसा कर सकते हैं। आपने अपना कार्य प्रशस्य रीतिसे पूर्ण किया है। फिर आपके इस गमनमें कोई खास वजह नहीं कि हम रूकावट करें। इसपर प्रसन्न हो अपने शिष्योंको सम्बोधित करते हुए उसने कहा कि मेर शिष्य वर्ग! मै इस बातसे कम सन्तुष्ट नहीं कि आपने मेरे उपदेशको अच्छा समझा है। वल्कि समझा ही नहीं दूसरोंको समझाकर उसका विस्तार भी खूब कर दिया है। जिसका फल यह हुआ कि आज मै अपने उत्तरदायित्वसे विमुक्त हो कृत कृत्य हुआ कैलास जाने की योग्यतान्वित हो गया हूं। इतना होनेपर भी मै यह और देखना चाहता हूं कि मेरे परोक्ष होनेपर भी आपलोग इसी सीधे महोन्नतिकारक मार्गमें गमन करते रहें। जिससे मै अलक्ष्य पुरुषकी गोदमें बैठा हुआ भी अपने आपको धन्य समझता रहूं। यह सुन उसके शिष्योंने चरणस्पर्शित करते हुए सान्त्वाविक वाक्य सुनाये। जिन्होंसे अत्यन्त प्रसन्न हो हार्दिक आशीर्वाद प्रयुक्त कर अजपानाथजी कैलासके यात्री बने। इधर श्रीनाथजी उन योगियोंसे सत्कृत होनेके अनन्तर प्रस्थानित हो शलेमान पर्वतसे पार हुए। जो

कटासराज तीर्थपर होते हुए पाञ्चाल देशीय एक पर्वतपर पहुँचकर कुछ कालके लिये विश्रामित हुए। यहां तककी यात्रामें सुखिराम और सूर्यमल्ल नामके दो मुमुक्षु जन आपके हस्तगत हुए थे। आप उनको दीक्षित करनेमें दत्तचित्त हुए। कुछ काल व्यतीत हुआ। वे योगक्रियाओंमें आत्यन्तिक निपुणता प्राप्त कर सके। और समाधि प्रकारको भी खूब समझ गये। यह देख आचार्यजीने उनको योगवित् बना देनेपर भी कदाचित् अवसरा-पर्यागिनी आह्निक विद्यामें भी चतुर किया। अनन्तर दोनों शिष्योंको दैनिक समाधि करते रहनेकी आज्ञा प्रदान कर कुछ कालके लिये स्वयं समाधिनिष्ठ हो गये। आप वैक्रमिक सम्वत् ५८ से १०० तक अर्थात् पचास वर्ष तक समाधिनिष्ठ रहे। पश्चात् सूर्यनाथ पवननाथ अपने इन दोनों शिष्यों तथा अन्य आगन्तुक योगियोंके सहित आप उत्तरा खण्डकी ओर प्रस्थानित हुए। और कुछ ही दिनमें हिमालयकी उपत्यका के समीप जा पहुँचे। यहां एक ग्रामके निकट आपने अपना पड़ाव डाल दिया। और दूध लानेकी अनुमति दे अपना एक शिष्य ग्राममें भेजा। वह गया और दूधके लिये उसने ग्रामीण लोगोंसे याचना की। उन्होंने उसका हास्य करनेकी अभिलाषासे अङ्गुलिका निर्देश करते हुए कहा महाराज! उस सम्मुखीन गलीमें अमुक नामका ब्राह्मण है उसके यहां बहुत दूध होता है। साथ ही वह साधुओंका भक्त भी है। कोई भी अवसर हो अकस्मात् साधु आ निकले तो इच्छानुसार दूध पिलाता तथा भोजन कराता है। यह सुन वह योगी नाम पूछता हुआ उसी ब्राह्मणके गृह आँगणमें जा पहुँचा। और देखा तो वह ब्राह्मण इस दशामें पाया कि उसके पास केवल एक धोती थी। जिसको कभी २ उसकी एक मात्र सहायक ब्राह्मणी धारण कर लेती थी। तथा कभी २ ब्राह्मण करता था अर्थात् भिक्षावृत्तिके लिये ग्राममें जानेके अवसरमें ब्राह्मण शाटिका धारण करता और ब्राह्मणी गृहमें नग्न बैठी रहती थी। उसके आनेपर भोजन बनाने आदिके अवसरपर जब उसको ब्राह्मणी धारण करती तब ब्राह्मण गृहमें नग्न बैठा रहता था। उनकी यह दशा देखकर पवननाथजीका हृदय भरआया। तथा साथ ही प्रसन्न भी हुआ। उसने सोचा कि लोगोंने जो मेरा हास्य किया है इसका गुरुजीके सम्मुख वर्णन करूंगा। जिससे सम्भव है गुरुजी इसकी ओर कुछ दृष्टि डालेंगे। और यह हास्य इसके लिये लाभदायक हो जायेगा। ठीक हुआ भी वैसा ही। जब वह महानुभाव किसी गृहान्तरसे दूध लेकर गुरुजीकी सेवामें पहुँचा तब

---

१ यहीं पहाड जेहलम प्रान्तके अन्तगत गोरक्षटीला नामसे प्रसिद्ध है।

२ यह प्रत्येक काम शीघ्रतासे करता और बहुत जल्दी चलता था इसी लिये श्रीनाथजीने प्रसन्न हो इसका नाम यह रक्खा।

३ यही ग्राम सिद्ध गोरासिया नामसे प्रसिद्ध आजकल जम्बूराज्यान्तर्गत है।

उसने लोगोंका हास्यवृत्तान्त श्रीनाथजीके श्रोत्रगत किया। वे तत्काल ही ब्राह्मणके घर पहुँचे। और उसको कह सुनाया कि लोगोंने हमारा इस प्रकारसे हास्य किया है। अतएव हम तेरे घरसे दूध ही नहीं पीवेंगे बल्कि तुझे इस ग्रामका माननीय शिरोमणि बना देंगे। लो यह विभूति इसको गृहाँगण और कोठेमें प्रक्षिप्त कर देना। कुछ देरके अनन्तर कोठेमें तो प्रभूत धन और रुचिकर वस्त्र प्राप्त होंगे। सन्ध्या होनेपर बहुत सी गौ तुम्हारे इस आँगणमें आयेंगी। तुम गौओंके आते ही दूध निकालने लग जाना। हम ठीक उसी अवसरपर आयेंगे। और दूध पीयें पिलायेंगे। यह सुन ब्राह्मण आपके चरणोंमें मस्तक लगाकर अभ्यर्थना करने लगा। और बडे ही विनम्र भावसे कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसने विभूतिको सादर ग्रहण किया। तदनु श्रीनाथजी तो अपने आसनपर आ विराजे। ब्राह्मणके जैसा करनेपर वैसा ही हुआ। अभी सायंकाल होना तो बाकी ही था प्रथम ही माङ्गलिक ध्वनि होने लगी। ग्राम्यलोग ब्राह्मणको अपूर्व वस्त्र तथा आभूषण धारण किये इधर उधर फिरता देख समझ गये कि ईश्वरने इसका भाग्य पलटनेके लिये ही हमसे हंसी कराई है। अथवा ठीक है जब ईश्वर किसीको कुछ देता वा उसके ऊपर प्रसन्न होता है तब ढोल नहीं बजाता है कि मैं इस प्रकार वा इस समय तुझे कुछ प्रदान करूंगा वा तेरे ऊपर प्रसन्न हूंगा। किन्तु उसके ऐसा करनेके लिये अनेक रास्ते हैं। ठीक यही उदाहरण आज हमारी दृष्टिके सम्मुख विराजमान है। लोगोंमें इस प्रकारकी वार्ता होते हुआते और सुनते सुनाते यह वृत्तान्त समीपस्थ अन्य ग्रामों तक विस्तृत हो गया। यह सुनते ही प्रत्यक्ष निश्चय करनेके वास्ते अनेक नरनारी इधर दौडने लगे। और पूर्व दृष्ट दरिद्री ब्राह्मणको सचमुच इस अवस्थामें देख महाश्चर्यसे ग्रसित हुए। इतने हीमें ऊपरसे सायंकाल भी आ पहुँचा। श्री नाथजीके वचनानुकूल अनेक ग्रामीण गौ रूपान्तर युक्त हुई ब्राह्मणके गृहाग्रचौकमें आकर एकत्रित होने लगी। देखते २ चौक गौओंसे परिपूर्ण हो गया। वत्स दूधसे तृप्त हो २ कर अपनी माताओंके मुखाग्र प्रदेशमें खडे हुए थे। जिनको जिन्हासे चाटती हुई गौ अपूर्व प्रमोद प्रकट कर रही थी। वह ब्राह्मण स्वयं दूध निकालता और निकलवाता श्रान्त हो गया परं समस्त गौ दोहनेमें न आई। बल्कि यहां तक हुआ कि उन गौओंका दूध स्वयं स्तनोंसे निकल पृथिवीपर गिरने लगा। इतने हीमें उधरसे समण्डालिक श्रीनाथजी भी आ गये। और आपने ब्राह्मणसे कहा लो पात्र इसको पूर्णकर सब महात्माओंको दूध पिलाओ। तदनन्तर यदि इच्छा होतो ये उपस्थित सेवक लोग भी पी सकते हैं जिन्होंने इस योगीके दूध मांगने पर पात्र भरपूर कर प्रथम हमको पिलाया था। यह सुन समस्त वे लोग जिन्होंने हास्य किया था लज्जितसे हो आपके पादस्पर्शी हुए प्रार्थना करने लगे कि भगवन्! क्षमा कीजिये हमलोगोंको आप

जैसे महात्माओंका सत्सङ्ग पर्याप्त नहीं मिला है इसी कारणसे हमलोगोंकी यह दशा है। तदनु श्री नाथजीने, अच्छा अब इस सत्संगसे विरहित न रहोगे, यह कहते हुए शालिपुर (स्यालकोट) की तरफ प्रस्थान किया। और नगरकी कुछ दूरीपर उत्तर दिशामें अपना आसन स्थिर किया। यह स्थल महाराजा शालिवाहनने अपने सैनिक घोड़ोंके घासके लिये अवरुद्ध किया हुआ था। इसमें विविध प्रकारके आरण्य पशुपक्षी निवास करते थे। तथा कई छोटे २ तालाव और एक कूप भी इसमें विद्यमान था। जिससे वर्ष भरमें केवल उतने ही दिन तक जल निकलता था जब तक कि घासकी कटाई रहती थी। ठीक इसी कूएसे जल लानेके लिये आपने अपने शिष्य पवननाथजीको उधर भेजा। वह गया और जल निकालनेके लिये कूएमें पात्र पाशा। पात्रके जलपर पडनेपर उसको कूप पातित एक मनुष्यने पकड लिया। यह देख योगी चकितसा होकर पूछने लगा कि अये! पात्र ग्रहण करनेवाले तू कौन है सत्य वतला दे। और यह भी बतलादे कि तू किस अभिप्रायसे यहां रहता है तथा किस उद्देशसे तूने पात्रको आश्रित किया है। इसके उत्तरार्थ उसने अपनी जीवन चर्य्याको प्रस्फुट करना आरम्भ किया। तथा कहा कि मैं इसी नगरके राजा महाराज शालिवाहनका पुत्र हूं। कृष्ण* मेरा नाम है। मैं एक दिन आहूत हुआ उपमाताके प्रासादमें गया था। वह मुझे देखकर विमोहित हो गई। और अपनी कुवासना पूरी करनेके लिये मुझसे विशेष आग्रह करने लगी। इतना होनेपर भी जब मैंने किसी प्रकार पाप समुद्रमें डूबना न स्वीकार किया तब उसने अपने चरित्रका विपरीत अर्थ घोषित कर पिताजीके हृदयको विक्षिप्त कर दिया। जिसका फल यह हुआ कि मैं वध्य समझा जा कर घातकोंके समर्पित किया गया। वे लोग मेरे हस्तपाद काटकर इस कूएमें डाल गये। बस उसी दिनसे मैं यहां पडा किसी प्रकार समय व्यतीत करता हूं। और गुरुगोरक्षनाथजीका ध्यान कर कभी यह भी निश्चित कर लेता हूं कि सायद किसी दिन वे मेरी इस दैन्य दशापर दृष्टि डालेंगे। क्योंकि उनके अवतारका उद्देश ही मेरे जैसे दीन पुरुषोंका उद्धार करना है। अतएव आप कौन हैं इस बातका परिचय दें। क्या आप कोई परदेशी हैं कि इसी नगरके, यदि परदेशी हो तो इस बातका पता लगा सकते हो कि आजकल गुरु गोरक्षनाथजी किस ओर विचरते हैं। अथवा मेरी इस दीनदशाकी सूचना उनके समीप पहुँचा सकते हो तो मैं अपना जिवन

---

* अपुत्र महाराजा शालिवाहन पुत्रोपलब्धर्था इच्छासे सर्व तीर्थ यात्रा करने गये। और जब रामेश्वर पहुँचे तब उन्होंने श्री महादेवजीकी पाठ पूजामें विशेष चित लगाया। एकदिन इसी देशस्थ कृष्णा नदी पर जाकर जब उन्होंने अधिक प्रार्थना की तब पुत्र प्राप्त होनेका एक लक्षण उनकी दृष्टिगोचर हुआ। उसपर विश्वसित और सन्तुष्ट हो वे अपनी राजधानीमें आये, और सचमुच पुत्र उत्पन्न होनेपर उक्त नदीस्थलका स्मारक लडकेका नाम कृष्ण रक्खा, जिसके छिन्न हस्त पैर फिर पूर्ण हो जानेसे उसका नाम पूर्णनाथ और चौरंगीनाथ प्रसिद्ध हुआ। अन्य ग्रंथ।

आपका प्रदान किया हुआ समझूंगा। यह सुन पवननाथजीने कहा कि ठहरो इन सब बातोंका निर्णय हम अभी कर देते हैं। अतः वह अवलम्बित रज्जुको उसी प्रकार छोडकर शीघ्रताके साथ गुरुजीके समीप आया। और उसका आद्योपान्त समस्त वृत्तान्त उनको सुनाया। दीनोद्धारक दयार्द्र हृदय श्री नाथजी अत्यन्त प्रफुल्लित हुए अविलम्बके साथ कूपँपर गये। और उसको बहिर निकालकर अपने शरीरसे स्पर्शित करते हुए कहने लगे बेटा हम तेरे हस्तपैर फिर तादवस्थ्य कर देत हैं यदि इच्छा हो और अपने ऊपर फिर आपत्ति आनेकी तुझे सम्भावना न दीख पडती हो तो वापिस जाकर अपुत्र हुए महाराजा शालिवाहनको फिर सपुत्र बना सकता है। पाठक! जैसी कुछ उसके साथ बीती थी आप उस घटनासे अपरिचित नहीं हैं। अतएव अधिक क्याकहें आप इसीसे समझ लीजिये श्रीनाथ-जीके अनेक युक्तियुक्त वाक्य सुनकर भी उसने वापिस लौटना स्वीकार न किया। अन्ततः श्रीनाथजीने अच्छा बेटा यदि यही बात है तो हमने तुझे न केवल हस्तपादोंसें ही पूर्ण बना दिया है बल्कि योगतत्त्व परीक्षामें पूर्ण बना देंगे, यह कहते हुए उसको अपनी मण्डलीमें सम्मिलितकर लिया। और वहांसे गमनकर आप काश्मीर देशस्थ श्री अमर नाथजीके पर्वतपर गये, ठीक इसी जगहपर आपने उसको योगवित् बनाया। अनन्तर यहांसें प्रस्थानित हो फिर भारतीय नींचे प्रान्तोंमें आकर भ्रमण करने लगे। और कतिपय वर्षोंके पश्चात् भ्रमण करते हुए अनेक प्रान्तोंको पारकर चीनदेशीय पिलाङ्ग टापुमें पहुँचे। यहां आपकी पूर्व निर्मापित गुहा थी उसमें कुछ दिनके लिये आप विश्रामित हुए। यहां एक कार्य ऐसा आपकी दृष्टिगोचर हुआ जिसका अनुष्ठान करना आपने उचित समझा। और वह कार्य था इस देशीय राणीको सन्तुष्ट करना। वह कतिपय वर्षसे आपके पूजा ध्यानमें विशेष दत्तचित्त रहती थी। उसका मुख्योद्देश था आपके शिष्य पूर्णनाथको अपना सहवासी बनाना। कारणकि वह अभीतक कुमारी बैठी हुई किसी कारणसे उसीपर अवलम्बित थी। आपने इस झगडेका फैसला कर देनेके अभिप्रायसे राजधानीकी ओर गमन किया; और उससे कुछ दूरीपर अपना आसन स्थित कर स्वकीय प्रिय शिष्य चौरङ्गीनाथको भिक्षा लानेके लिये नगरमें भेजा। आगे स्वयं राणीसाहिबा अपने हस्तसे अभीष्ट भिक्षा प्रदान कर योगियोंको विशेष सत्कृत किया करती थी। क्योंकि जिस दिन उसने यह सुना कि अद्वितीय सुन्दराकृति मेरा निश्चित वर कृष्ण योगी बना अभीतक सजीव ही है उसने उसी दिनसे यह कृत्य आरम्भ किया था। साथ ही जिन ज्योतिषियोंने उसको पूर्णके सजीव

---

* यह कूप अभीतक विद्यमान है। इसके जलसे स्नान करनेपर स्त्रियोंको पुत्रोपलब्ध होती है। इसके ऊपर जो स्नानागार बना हुआ है उसमें स्नान करती हुई स्त्रियोंको देखकर मैंने स्थानीय महन्तसे प्रश्न किया। उसने यही उत्तर दिया।

रहनेका पता दिया था उन्होंने उसके समस्त लक्षण भी वर्णित कर राणीके हृदयमें बैठा दिये थे। अतएव वह आगन्तुक योगियोंमें उन निर्दिष्ट चिन्होंका निरीक्षण भी किया करती थी। आज अकस्मात् ईश्वरके प्रेषित किये हुए वे महानुभाव भी नगरमें आ प्रविष्ट हुए; तथा लोगोंके निर्देशानुसार राणीके प्रासादमें पहुँचे। अलक्ष्य शब्दको सुनकर नित्यनियमानुसार वह कैसी भिक्षा रुचिकर है यह पूछनेके लिये नीचे उतर आई। बस देखते ही उसने उसका परिचय पानेमें कुछ भी देर न की। और अत्यन्त प्रसन्नताके साथ अपने प्रासादके ऊपर ले गइ। उसने सोचा था कि आप मेरी अभिलाषा पूरी करनेके लिये ही यहां आये है, परं इतने ही मे आपने कह सुनाया कि गुरुजी भी मण्डलीके साथ यहीं विराजमान है अतः उनके लिये शीघ्र भोजन ले जाना होगा, अच्छा है यदि अविलम्बसे ही तैयार हो जाय तो मे ले जाकर उनकी आज्ञा पालन कर सकूंगा। यह सुनकर राणीने इस अभिप्रायसे कि इनकी उन्हांसे भिक्षा मांगकर लाऊंगी, अनेक प्रकारके भोजनों सहित श्रीनाथजीकी सेवामें प्रस्थान किया। अधिक क्या भोजनान्तमें किसी प्रकारसे वे राणीके ऊपर प्रसन्न हो गये। और अनुचित कृत्य होनेपर भी प्रिय शिष्यको राणीके साथ जानेकी उन्होंने आज्ञा प्रदान कर दी; तदनन्तर आपतो देशान्तरके लिये रवाने हो गये। राणी प्रवृद्धानन्दसे अपने आपमें फूली न समाती हुई स्वकीय प्रासादमें आई। प्रधान पुरुषोंको विज्ञापित करते हुए उसने घोषित किया कि नगर सजाया जाय और अनेक प्रकारके दान पुण्य किये जायं। आज्ञा प्रचारित हुई। सब कार्य यथावत् होने लगे। सूर्य भगवान् अस्ताचलका अतिथि बननेके लिये उत्कण्ठित हुआ। उसका तेज संहृत होनेके साथ २ वायुमें शीतलता मिश्रित होने लगी; पक्षिगण दैनिक आहारवृत्तिसे निवृत्त हुए अपने २ आवास स्थानोंमें आ आकर विविध स्वरसे मधुर कलोल करने लगे। ऐसी ही दशामें अपने ही मन कल्पित प्रिय पति पुरुषके साथ राणीका उस शीतल वायुके सेवन करनेका मनोरथ हुआ। और वह यतिवरजीको साथ ले महलकी उत्तम भूमिपर चढी। बस अबतक ही राणीका कल्पित सुहाग वर्तमान था। नाथजीने अपने मुक्त करनेका यही अवसर उचित समझा। तथा गुरूपदिष्ट उदान वायुका निरोध कर प्रासादभित्तिपर बैठे हुए आपने जिस क्षणमें राणीकी दृष्टिसे अपनेको वञ्चित देखा उसी क्षणमें शरीरको आकाशाधारी बना लिया। इस कृत्यसे आप ज्योंही भित्तिसे कुछ दूर हुए त्योंही राणीने इधर देखते ही आपके गिर जानेके भ्रमसे पकडनेके लिये आगे हस्त बढाये। प्रिय पतिके ग्रहणमें लालायित हुई उसने अपने गिरनेका कुछ विचार न किया। बस उसके पैर दिवालसे भ्रष्ट हो गये। वह अत्यन्त वेगके साथ नीचे गिरी और ऐहलौकिक यात्रा समाप्त कर गई। यह देख कुछ देर पहले जहां २ नगरमें माङ्गलिक कृत्य हो रहे थे वहां घोर उदासीनताका साम्राज्य

स्थापित हुआ। (अस्तु) चौरङ्गीनाथजीने उसको अग्रिम जन्ममें अभीष्ट पति मिलनेका आशीर्वाद प्रदान कर आकाश गतिसे प्रस्थान किया। और कुछ देरमें आप अन्य ग्राम सीमान्तर्गत विश्रामित हुए गुरुजीके समीप पहुँचे। तथा जो कुछ वृत्तान्त बीता था सब आपने गुरुजीके सम्मुख प्रकट कर दिया। इससे श्रीनाथजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। और उसको अपनी उरः स्पर्शतासे सत्कृत करते हुए कहने लगे कि बेटा तू संसारसागरसे पार होनेकी अभिलाषासे हमारा आश्रय ग्रहणकर चुका था। अतएव यह नहीं सोच बैठना कि हमने तुझे राणीको प्रदान कर फिर उसी सांसारिक सागरमें प्रक्षिप्त करना उचित समझा था। किन्तु उसकी प्रार्थनानुसार उससे तेरा मिलाप करादेना उचित समझ कर भी हमारे हृदयमें यह दृढ विश्वास हो गया था कि जिस मनुष्यने जिस कार्यके न करने में अपने शरीर तकके जानेकी परवाह न की हो वह मनुष्य उस कार्यके करनेमें कभी उत्सुक नहीं होगा। अतएव हमारे विश्वासको पूरा कर तुम बहुत कुछ वस्तुओंके अधिकारी बन गये हो। परं यह बतलाइये राणीके लिये कुछ कृपा दृष्टि की है वा नहीं। उसने उत्तर दिया कि स्वामिन्! पतिके लिये उसने इस विषयक दशाका अनुभव करना पडा है। अतः मैं उसको ईप्सितपति प्राप्त होनेका आशिस दे आया हूं। श्रीनाथजीने इसका समर्थन कर वहांसे प्रस्थान किया। और भोट (भुटान) आदि अनेक देशोंमें भ्रमण करते हुए आप कुछ कालके अनन्तर कालिकोट (कलकत्ता) में आये। तथा अपने पूर्व वैश्रामिक स्थानपर आसन स्थिर कर कुछ दिनके लिये यहां ठहर गये। अन्तमें सब योगियोंको, हम कुछकाल पर्यन्त दाक्षिणात्य देशका भ्रमण कर योग प्रचारका निरीक्षण करेंगे तुमलोग भी अपने २ अभीष्ट स्थानोंमें जाओ समय २ पर सामाधिक दशामें परिणत होते रह कर भी प्रचार कार्यमें भाग लेते रहना, यह आज्ञा प्रदान कर पूर्णनाथजीको आपने सूचित किया कि बेटा तुझे एकवार अपनी राजधानीमें जाना होगा। तेरी वृद्धा माता तेरे वियोगसे नेत्र हीन हुई भी तेरी उस दुर्दशाका सदा स्मरण रखती हुई न मरी न सजीव है। जब कि तू हमारी कृपाका पात्र और इसीलिये अनेक सिद्धियोंका भण्डार बन चुका है तब तेरी माताकी यह दुरवस्था उसके नहीं तेरे दुःखके लिये समझनी चाहिये। अतएव तू जा और उसको अधम मार्गमें लटकती हुई को किसी उचित ठिकानेपर स्थापित करआ। यह सुन सबने आपकी आज्ञा पालनकी। और अपने २ मार्गपर पदार्पण किया।

इति श्रीनाथ पर्यटन वर्णन नामक ४४ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

चौरङ्गीनाथजी गुरुजीकी आज्ञा प्राप्त कर कलकत्तासे प्रस्थानित हुए किसी प्रकारके अनवरत गमन द्वारा एकदम शालिपुर पहुँचे। यहां आपने उस बागमें जो कि आपके जन्म दिन स्मारक रूपसे लगाया गया था, अपना आसन निश्चित किया। महाराजा शालीवाहन की तिर्यग् दृष्टिसे यह आराम भी वञ्चित न रह सका था। उसने जैसे ही आपके साथ महान् अनुचित और अविचारका व्यवहार किया था वैसे ही वहु प्रयत्नसे आरोपित इस बागकी परिचालक व्यवस्थाका भी भङ्ग कर डाला था! यही कारण था जहां कभी सहस्रों संख्यामें मनुष्य कार्य करते हुए इसके मनोरञ्जक सौन्दर्यको बढाते थे वहां आज एकाध मनुष्य पडा केवल पशु बारणका ही काम कर रहा है। कितने ही वृक्ष शुष्क होकर नष्ट हो गये थे। कितने ही इस दशामें पहुँचनेवाले थे। अधिक क्या जिस मनुष्यने इसकी उस समयकी सुन्दरता देखी थी वह कौन ऐसा मनुष्य था जो इस अवसरमें इसको देख अपने नेत्रोंसे दो बून्द न डालता हो। यह दशा देख आपका चित्त भी कुछ विक्षिप्त हुआ। और उसमें अनेक भाव उत्पन्न होने लगे। अन्ततः सावधान हो आपने गुरूपदिष्ट वार्षिकास्त्रका प्रयोग किया जिससे बागकी वहुत दिनोंसे उत्पन्न हुई तृषा शान्त हुई। प्रतिदिन शुष्क दशामें परिणत होनेवाले वृक्ष फिर अपने जीवित होनेकी आशा करने लगे। अधिक क्या बागके प्राकृतिक स्वभावमें परिवर्तन हो आया। यह जहां इस दशामें मालूम होता था कि मानों आपके कत्ल होनेका शोक कर रहा है वहां आज ऐसा प्रतीत होने लगा मानों सचमुच आपके आगमनपर प्रसन्नता प्रकट कर रहा है। टूटेफूटे पुष्पपेडोंमें फिर कलियोंका उद्गमन हुआ

जिनकी परस्परमें मिश्रित हुई सुगन्धी पूर्वावसरका स्मरण कराने लगी। सात्विक शीतल वायु मन्द गतिसे प्रचलित हुआ। यह देख वे पक्षी जो इससे नासिका सङ्कुचित कर अन्य बागोंमें चले गये थे फिर इसीमें आकर निवसित हुए। जिनके विभिन्न स्वरमाधुर्यने आपके विक्षिप्त चित्तको ठिकाने ला दिया। इतना होनेपर भी मूढ बागवासी मालाकारने यह नहीं सोचा कि अकस्मात् बागकी दशा पलट जानेका क्या कारण है। किन्तु उसने अनुमान किया कि अबके वर्षका ऋतु ही ऐसा अनुकूल है जिससे बागकी अघटित घटना उपस्थित हो गई। योगीको ऐसा करनेकी कौन जरूरत पड़ी जो किसीका बाग शूका वा हरा करे। यदि ऐसा ही होता तो आजपर्यन्त कईएक योगी यहां आये और इच्छा हुई उतने दिन निवासकर चले गये। उन्होंने ही इसको कभीका ऐसा कर दिया होता, अस्तु अन्ततः जब दिनोदिन बागकी चमन अवस्था बढती ही चली गई तब उसने अपने प्रतिवेशियों वा अपनेसे मिलनेवाले राजपुरुषोंसे इस विषयमें परामर्श करना आरम्भ किया। बल्कि यहांतक कि अननुभवित सुगन्ध पुष्पोंकी माला तैयार कर राजकीय कर्मचारियोंकी सेवामें भेजने लगा। कुछ दिन तो यह वार्ता सन्दिग्ध होनेपर भी उन लोगोंके मनकी मनहीमें रही। और उपहाररूपसे उसको कुछ देतेलेते हुए सोचते रहे कि सायद अपनी आजीविकार्थ प्रयत्नसे सींचकर इसने कोई वृक्ष ऐसा तैयार कर लिया होगा जिससे कि कुछ पुष्प उपलब्ध हुए जायें। परं जिस प्रकार वह प्रतिदिन मालायें भेजने लगा उसीं प्रकार उनका चित्त अधिकाधिक सन्देहग्रस्त होने लगा। और जब कभी वे यह निश्चय करते थे कि यह इतने तथा ऐसे पुष्प प्रतिदिन कहांसे लाता है। जिस बागमें यह रहता है उसमें इतने पुष्पोंका मिलना मुष्किल ही नहीं असम्भव है। तब आप ही अपने मनमें इस प्रकार समाधान भी कर बैठते थे कि अथवा ठीक है राजा साहिबका उपेक्षित होनेसे वह बाग सबलोगोंकी उपेक्षाका पात्र हो गया है। इसी लिये पुष्पग्राही लोग उधर कोईभी नहीं जाते हैं सायद यही कारण होगा कमसेकम होनेपर भी बडा बाग होनेसे इतने पुष्प अक्षर मिल ही जाते होंगे। तथापि यह बात अधिक दिन ऐसी सन्देहास्पद न रहसकी। उन लोगोंने स्वयं वायुसेवनके समय उधर जाकर उसका निरीक्षण किया। परं आज यह वह बाग न रहा था जो शून्यशान दशामें परिणत हो गया था। ये महानुभाव ज्यों ही बागके समीप पहुँचे थे त्यों ही इन्होंको उसमें बैठे हुए पक्षियोंके उद्घोषित कोलाहलसे उसके परिवर्त्तनकी सूचना मिलती गई थी। आखिर जब ये राजपुरुष बागके अन्तर प्रविष्ट हुए तब तो इन्होंने महान् आश्चर्यग्रस्त हो इस अघटित घटनाका कारण पूछना चाहा। तथा मालीसे कहा कि किसी ओरसे जलका आगमन नहीं होनेपरभी इस बागमें जलकी कोई त्रुटि मालुम नहीं होती है। यही कारण है दो सप्ताहके अन्तर्गत अकस्मात् बागका

विस्मापक दृश्य उपस्थित हो गया है । भला इसके विषयमें तुझे कुछ विदित है किस कारणसे यह ऐसा हुआ है । उसने उत्तर दिया कि लगभग दो वा-तीन सप्ताह हो गये एक दिन रात्रीके समय इस बागमें अच्छी वर्षा हुई थी । तदनन्तर जब मैं प्रातःकाल उठकर देखता हूं तब प्रतिदिन सूक्ष्म वर्षा हुई पाती है । जिससे एकाएक बागकी दशा पलटकर इस दर्जेपर पहुँची है । अतएव मैं स्वयं इस विषयमें सन्दिग्ध हूं । और मैंने इस आकस्मिक घटनाका हेतु जाननेकी चेष्टा भी की है । परन्तु अभीतक कृतकार्य नहीं हुआ हूं । यह सुन कारणाभिज्ञानसे निराश हुए वे इधर उधरकी आरामीय शोभा देखनेमें दत्तचित्त हुए । और परिक्रमण करते २ वे ज्योंही महात्माजीके आसन स्थलके समीप पहुँचे त्योंही उनकी दृष्टि एकाएक आपके मुखारविन्दके ऊपर पड़ी । वे देखते ही कुछ कह तो नहीं सके पर उस अवस्थानिष्ठ आपके शरीरका उनके हृदयागारमें शीघ्र स्मरण हो आया । और उनके आन्तरिक यह इच्छा उत्पन्न हुई कि हम महात्माजीसे कुछ क्षण वार्तालाप करें । आखिर उत्कट अभिलाषासे विवश हुए वे अग्रसर हुए । एवं उचित प्रणाम कर पासमें बैठ गये । और अनेक प्राकरणिक वृत्तान्तोंका उद्घाटन करने लगे । यद्यपि कुछ अवस्था भेदसे आपके प्राकृतिक दृश्यमें विभिन्नता आ गई थी तथापि वह इतनी नहीं थी कि आपका स्वरूप विलकुल परिवर्तित हो गया हो । अतएव पारस्परिक प्रश्नोत्तर करते कराते राजकीय पुरुषोंके हृदयागारमें दो विचारोंका युद्ध होने लगा । जब वे आपको परिचित कर यह विचार स्थिर करते थे कि यह वही राजकुमार है तब वे इस विचारसे सन्दिग्ध होते थे कि जब उसके हस्तपैर काटे जा चुके हैं तो उसका तो जीवित रहना ही असम्भ है । फिर किसी कारणसे सजीव ही रह गया हो तो हस्तपैर कहांसे आते जिन्होंके द्वारा कूपसे निकलकर वह आज इस दशामें पहुँच सकता । अन्ततः आपके शरीर विषयमें जो उनका सन्देह था वह तो आपके वाचानिक परिचयसे दूर हो गया । पर यह एक हस्तादि तादृश हो जानेका विस्मय उनके हृदयमें खटकता रहा । यही कारण था वे निशङ्क होकर यह प्रकट नहीं कर सके कि आप वे ही हमारे शिरके ताज हैं । आखिर चित्त द्विविधामें ही प्रणाम पूर्वक आपकी आज्ञा प्राप्तकर विविध वार्ताओंका परिवर्त्तन करते कराते वे स्वकीय निवास स्थानमें आये । और उन्होंने लब्धावसरमें बाग-विषयक घटनासे राजासाहिबको सूचित किया । साथ ही इस बातका भी उद्घाटन किया कि कतिपय दिनसे बागमें एक योगी ठहरा हुआ है । जिसके समस्त लक्षण मृतकराज कुमारके लक्षणोंसे सम्बन्ध रखते हैं । सम्भव है उसीकी कृपादृष्टिसे यह बाग इस भूत पूर्व अवस्थामे पहुँचा हो । क्योंकि इस घटनाका हमने सावधानतया अन्वेषित करनेपर भी अन्य कारण कोई उपलब्ध नहीं किया है । यह सुनकर राजा कुछ विस्मित और अधिक

आनन्दित होकर कह उठा कि प्रातःकाल होते ही मैं स्वयं उधर चलूंगा। एवं देखूंगा तुम्हारा कथन कहांतक सत्य है। प्रातःकालिक उद्देशमें निर्णीत होकर वे लोग स्वकीय कार्यमें संलग्न हुए। इधर राजासाहिब आज बहुत दिनोंके बाद विस्मृत वृत्तान्त पुत्रका स्मरण कर वैमोहिक अगाध समुद्रमें निमग्न हुआ अनेक भावोंमें परिणत होने लगा। पुत्रके प्राण हननेके अनन्तर आज पर्यन्त जो समय व्यतीत हुआ था उसमें कुछ २ लक्षण ऐसे भी दीखपड़े थे जिन्होंसे राजासाहिबको राणीके विषयमें सन्देह होने लगा था। वह कभी २ निश्चय कर बैठता था कि सम्भव है यह सब विपरीत जाल विस्तृत हुआ है। जिसमें बद्ध हुए मेरा नाश ही नहीं हुआ है बल्कि संसारके इतिहासमें मैं कलङ्कित प्रसिद्ध हो चुका हूं। जन्मारम्भसे ही पुत्रके शुभ लक्षण देख कहां तो मुझे उसके द्वारा संसारमें अपनी कीर्ति विस्तृत करनेकी आशा थी कहां इस दुष्टाकी मिथ्या पटूक्तियोंसे भ्रमित हो मैं अद्वितीय कलङ्कित निश्चित हुआ। मैं सब कुछ जानता हुआ भी अनजान बन गया। मैंने नहीं सोचा था कि मेरी यह इन्द्रिय लोलुपता कभी शान्त अवस्था भी धारण करेगी। और यह दुष्टा सदाके लिये मेरी प्रिय पात्र न रहेगी। हाय पुत्र कृष्ण! जनसमाज मोहन विषयमें तू सचमुच ही कृष्ण था। जिस इस दुष्टाके मोहान्धकारसे आच्छादित हो मैं तेरे साथ इतना बड़ा अनर्थकारी अन्याय कर बैठा यह भी तेरे वपु सौन्दर्यको देखकर अपने आपमें न रह सकी। केवल मेरे वा मेरे कुटुम्बके लिये ही नहीं समस्त भारतके लिये तू एक विचित्र वस्तु था। तेरी छवी और असाधारण लावण्यताके ऊपर देशी लोग भी मोहित हुए बिना न रह सके। तेरे साथ अपनी पुत्री और भगिनियोंका विवाह करनेके लिये उनके भेजे हुए दूत नित्य मेरे द्वारपर खड़े रहते थे। हाय पुत्र कृष्ण! तू आज सजीव होता तो मैं कितने ही राजामहाराजाओंका माननीय बन जाता। और उनलोगोंकी पुत्री वा बहिनें आज मुझे पिताकी तुल्य दृष्टिसे सत्कृत करती। हाय पुत्र कृष्ण! तू मेरे घरमें क्या बननेके लिये अवतरित हुआ था। और किस दशामें परिणत हुआ! तेरा वह वपुसौन्दर्य, जिसके कारणसे यदि आज तू जीवित होता तो मैं अनेक प्रधान घरानोंका सम्बन्धी बनजाता, समस्त पृथिवीमें विलीन हो गया। उसके साथ ही मेरा वह कष्ट उठाना भी, जो मैंने तेरी प्राप्तिके लिये अनेक सुदूरवर्त्ती तीर्थोंकी यात्रामें भ्रमित होकर उठाया था, धूलिमें मिश्रित हो गया। तेरी उपलब्धिके निमित्त किये गये असाधारण दानपुण्य तो व्यर्थ हुए ही सांसारिक इतिहास स्थिति पर्यन्त महा कलङ्ककटीका मेरे मस्तकपर चढ गया। हाय पुत्र कृष्ण! अब मैं तुझे कहां देखूं और क्या करूं। अपनी इस तीक्ष्णखड्गसे इस दुष्टाचारिणीका शिर उडा दूं तो मुझे दो हत्याओंका सामना करना पडेगा। हे भगवन्! अच्छा होता यदि आपकी इतनी कृपा होती

संसारमें या तो यह पापाचरणी जन्म ही न लेती वा इसका मेरे साथ कोई सम्बन्ध ही न होता । हाय पुत्र कृष्ण ! मैं तेरे जैसे पुत्रको प्राप्त हो कर भी आज दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हो गया । इति। पाठक ! स्मरण रखिये इस प्रकारका प्रलापात्मक निश्चय कर राजा क्रोधावेशसे दन्त कटकटाता हुआ राणीको अपराधिनी ठहरानेके लिये जब उसके पास जाता था तब वह अपनी चातुर्योक्तियोंसे फिर उसको प्रशान्त कर देती थी । विशेष करके अपने अपराधकी साक्षी के लिये वह प्रमाण मांगती थी । यही कारण था दृढ प्रमाणाभावसे महा क्रोधित हुआ भी राजा राणीको यमलोक पहुँचानेकी उपेक्षा कर अपने दंदह्यमान हृदयको किसी प्रकार शान्त कर लेता था । परन्तु इस शोक सन्तापने महाराजा शालिवाहनका हृदय घुण प्रखण्ड लकडी की तरह जरजरी भूत बना डाला था । जिससे राणीकी प्रतिष्ठा अब उसमें किञ्चित् भी अवकाश न पा रही थी । इधर जिस प्रकार राजाकी प्रीति उससे दूर होने लगी थी उसी प्रकार राणीकी मुखकान्ति मन्द होती आ रही थी । क्योंकि उसको प्रथम तो राजाका अपने विषयमें विमुख होना खटकता था । दूसरे इससे वह यह भी निश्चय करतीथी और महा भयभीत होतीथी कि राजा मेरे विषयमें जो घृणित हो गये हैं इससे मालूम होता है इन्होंने मेरे अनर्थ जालका यथार्थ भेद पा लिया है । तीसरे वह अपने दुष्टाचरणसे करा बैठने वाली हत्याके पापसे मन ही मनमें उसको याद कर प्रतिदिन क्लेशित रहती थी । बल्कि सच पूछिये तो उसके मुखारविन्दपर झिलकने वाली इसी पापहेतुक मलीनताको देखकर राजाके चित्तमें सन्देह होने लगा था । और वह अनुमान करता था कि सम्भव है यह सब इसीकी रचना है । जिसमें इसका अन्तःकरण साक्षी होनेके कारण उस पापको याद रखती हुई यह इस दशामें परिणत होती जा रही है । तथापि वह दृढ प्रमाणाभावसे वा उभयानर्थ भयसे छुरी कच्चे वाली दशाका अवलोकन करता हुआ किसी प्रकार समय व्यतीत कर रहा था । आज बहुत दिनोंके अनन्तर प्रिय पुत्रका अमृतमय स्मरण हृदयमें उपस्थित हुआ । विशेष करके योगीका दृश्य प्रिय पुत्रके समान सुनकर वह महान् आनन्दित हुआ । और उसके चित्तमें योगीके दर्शन करनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा उत्पन्न हुई । खैर अनेक सङ्कल्प विकल्पात्मक समुद्रमें निमग्न हुए उसने वह रात्री बडी ही कठिनताके साथ व्यतीत की । अन्धकार और प्रकाशका पारस्परिक युद्ध होने लगा । प्रकाशसे पराजित हो अन्धकार जिस प्रकार सङ्कुचित होता जा रहा था उसी प्रकार प्रकाश अपना विस्तार करता हुआ जा रहा था । ऐसा होते हुआ ते विजयलक्ष्मी पूर्णतया प्रकाशके हस्तगत हुई । यह देख प्रकाशस्वामी सूर्यनारायणकी अभ्यर्थनाके लिये पक्षी चूँ चूँ शब्दकी मधुर ध्वनि करने लगे । जिसने नेत्रावरुद्ध निद्रक राजाको दिनागमनकी सूचना दी । राजा उठा और स्नानादि क्रियाओंके अनन्तर नित्यकृत्य

पूजा पाठमें प्रवृत्त हुआ। परं आज इन्द्रियराज के वहां नहीं होनेसे राजा केवल अपना नियम ही पूरा कर सका। इतने ही में उधरसे राजकीय प्रधान पुरुष मन्त्री महाशय भी उपस्थित हुए। राजा उनके साथ बागकी शोभा और योगिराजके दर्शन करनेके लिये वहांसे चला। और कुछ ही देरमें ज्यों ही बागके समीप पहुँचा त्योंही उनकी यथार्थ उक्तिका उसको ठीक प्रमाण मिल गया। यह देख इस विषयमें असन्दिग्ध हो वह सीधा चौरङ्गीनाथजीके समीप गया। तथा स्वोचित उपायन प्रणामादिसे आपको सत्कृत कर अनुकूल दिशामें विराजमान हुआ। विराजमान ही नहीं बल्कि आपका दर्शन कर महा मोहान्धकारमें डूब गया। कितनी क्षण बीत गई वह चुप हुआ प्रस्तर प्रतिमाकी तरह निरन्तर दृष्टिसे आपकी ओर देखता रहा। लज्जा हेतुसे अत्यन्त कठिनताके साथ रोके हुए भी प्रेमाश्रु बलात् बाहिर हो राजाके सूक्ष्माञ्चलेको प्लावित करने लगे। आज पुत्र ध्यानके अतिरिक्त सांसारिक किसी भी वस्तुका उसे ध्यान नहींथा। उसका मन यह साक्षी देकर, कि सचमुच यह वही मेरा राज कुमार है, उसके साथ हठात् छातीसेछाती मिलाकर मिलनेके लिये अधीर हो रहा था। बल्कि ऐसा करनेके लिये राजाने कईकए वार उठकर आगे बढना चाहा। परं किसी प्रकार अपने उद्भूत हृदय वेगको उसने रोक ही लिया। उसकी रुकावटका जो भी कुछ कारण था वह यही था कि मन्त्रियों की तरह वह भी इसी बातमें सन्दिग्ध हुआ कि जब पुत्रके हस्त पेर छिन्न कर दिये गये थे तो उनका फिर तादृश होना सम्भव कैसे हो सकता है। अतएव अन्य दृश्य तथा वाणीसे अपना पुत्र होनेका निश्चय उपस्थित होनेपर भी एक इसी सन्देह ने उसके दृढ विश्वास नहीं होने दिया। यही कारण हुआ वह अधिक देर तक अपनी अत्यन्त खिन्न दशा का परिचय दे कर किसी प्रकार अपने हृदयमें धीरता धारण करता हुआ प्राकृत विषयकी ही वार्ता करने लगा। अर्थात् उसने कहा महात्माजी मैं आपसे निष्कपट हृदयसे सत्य कहता हूं आज संसारमें इतने बड़े साम्राज्यका अधीश्वर होकर भी जितना मैं दुःखी हूं उतना मैं नहीं समझता कोई अन्य पुरुष भी होगा। यह सुन प्राश्निक हुए आपने कहा कि यद्यपि मैं आपकी विचलित दशाको देखकर इस अनुमानके युक्त हो गया था कि आप किसी साधारण दुःखसे ग्रसित नहीं हैं और वैसा ही आपने कह भी डाला। तथापि मैं यह स्फुटतया पूछना चाहता हूं कि जिसने आपकी ऐसी शिथिल स्थिति बना डाली है वह कौन ऐसा दुःख है। प्रत्युत्तरार्थ राजाने कहा कि महाराज! यद्यपि मैं इस समय अपुत्र हूं मेरे लिये एक यही बडा दुःख हो सकता है। तथापि इस दुःखसे मैं उतना सन्तप्त नहीं जितना कि स्वकीय छोटी राणीके मिथ्या जटिलजालमें जकड़ीभूत होकर पुत्र रत्नकी हत्या कर बैठनेसे हूं। वह पुत्र जिस रीतिसे मैंने प्राप्त किया था उसको तथा पुत्रके समस्त लक्षणोंको देखकर तो मैं अपने

हृदयमें इस विश्वासको अवकाश नहीं देसका था कि उसने सचमुच उपमाताको कुत्सित दृष्टिसे देखा है। परं राणीकी प्रामाणिक् पङ्क्तियोंके पाशसे आवद्ध हो मैं इस कलङ्ककारी अनर्थके कर बैठनेमें समर्थ हुआ। जिससे भारत मात्रका एक लाल सदाके लिये हमारी दृष्टिके अगोचर हो गया। वह पुत्र होनहार प्रतीत होनेपर भी शारीरिक विचित्र सौन्दर्यादि गुणोंसे जन साधारणके हृदयमें प्रसन्नता स्थापित करने वाला था। जिसका रूप रङ्ग आपके दृश्यसे वहुत कुछ सम्बन्ध रखने वाला था। उस समय अनर्थपर उतरे हुए मैंने उसके हस्त पैर छिन्न करा दिये थे। यदि मुझे इस वातमें कोई प्रमाण मिलजाय कि वे फिर भी वैसे ही हो सकते हैं तो मैं आपको ही अपना पुत्र समझनेमें एक क्षणका विलम्ब नहीं कर सकता हूं। यह श्रवण कर आपने कहा कि हां ऐसा हो सकता है एक मनुष्यका शारीरिक दृश्य दूसरेकी समताको कहीं न कहीं घुणाक्षर न्यायसे प्राप्त कर भी लेता है। ऐसा ही मैं भी हूंगा। परं मैं आपसे यह पूछना चाहता हूं कि राणीने अपने कथनकी सत्यताके लिये आपको क्या प्रमाण दिखलाया। तथा जो दिखलाया वह अव भी विद्यमान है वा नहीं। राजाने उत्तर दिया, यद्यपि भगवान् जानें सत्य था वा कृत्रिम, राणीके शारीरिक दृश्यसे तो यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि यह अवश्य किसी मन्मथोन्मत्त मनुष्यका कृत्य है। तथापि मैं उसके उतने ही प्रमाणमें निष्ठा न कर जव प्रमाणान्तर मांगने लगा तव दासियोंने भी निशङ्क भावसे यह स्फुट कह सुनाया कि वात सचमुच ऐसी ही है हमारे देखते २ कृष्णने इस अनुचित कृत्यमें हस्त डाला है। यह सुनकर भी मैं कुछ दिन मौन रहा। और गुप्त रीतिसे दासियोंको सर्व प्रकारका भय दिखलाकर मैंने उनसे पृथक् २ इस रहस्यकी अन्वेषणा की। परं जव उन्होंने अपना प्राण देना उचित समझकर भी अपने सत्य घोषित वचनसे वापिस लौटना पाप समझा तव तो विवश होकर मैंने राणीकी अरुचि कर भी वातपर विश्वसित हो वह अनर्थ करना ही पड़ा। वे ही दासी अवतक सजीव है। यदि आपकी इच्छा हो तो मैं उनको वुला दूं। जिन्होंसे स्वयं निर्णय कर आप देख सकते हैं कि मैंने जो कुछ किया वह देशकालके अनुकूल उचित था वा वास्तविक अनर्थ ही। आपने कहा कि यद्यपि हम योगी हैं सदा किसी एक जगहपर स्थित नहीं रहते हैं। दो दिन आपके यहां तो चार दिन आगे किसीके कहीं निवास करते २ देश विदेशोंमें ही भ्रमण करते हैं। अतएव न तो हमलोगोंको सांसारिक मनुष्योंके ऐसे झगडोंमें हस्त डालना उचित है। और न हमारी ऐसे झगडोंमें हस्त डालने की कुछ अभिलाषा ही है। तथापि जव आप कहते हैं और इस वातके लिये आग्रह करते हैं तो मैं भी उनसे कुछ परामर्श कर देख लूं कि उनका कथन कहांतक सत्यता पूर्ण है। अतः आप उन्हींको क्या समस्त राणियोंको भी वुला भेजें। जिससे मेरे निरीक्षणमें कुछ भी

त्रुटि न रह जाय । यह सुन राजाने शीघ्र सूचना भेजकर राणियोंको बागमें बुला भेजा । राजकीय सूचक पुरुष प्रासादमें गया । राणियोंमें राजासाहिबकी आज्ञा प्रचारित की गई । इस पुराणी बातको फिर अङ्कुरित हुई सुनकर पुत्र गामिनी राणीका भीतरही भीतर कलेजा कटने लगा । और उसके लिये समस्त संसार जलमय दीखने लगा । वह आज एक बड़े प्रभाव-शाली राजाकी पत्नी होकर भी अपने आपको अकेली समझती हुई महाशोक सागरमें डूबने लगी । परं करती क्या आखिर सज्जीकृत शिविकामें सवार हो बागमें चलनेके लिये तैयार हुई । इधर कृष्णकी पूज्य माताके पास भी सूचना गई । उसने अनुमान किया कि अक्सर आते जाते योगी बागमें निवास करते ही रहते हैं । किसीसे राजासाहिबकी इस विषयमें कुछ वार्तायें हुई होंगी । जिनमें प्रकरण वशसे इस बातकी आवश्यकता समझी गई होगी कि फिर गवेषणा की जाय । परं इस विषयमें मेरा कोई प्रयोजन नहीं है ! असलमें यथार्थ बात तो यह थी जिस दिनसे पुत्र रत्न कृष्ण उसकी छातीसे पृथक् कर सदाके लिये नेत्रसे दूर ही नहीं हृदय विदारक दशामें परिणत किया गया था वह उसी दिनसे उस सपत्नी छोटी राणीसे घृणा किया करती थी । आजपर्यन्त न तो कभी उसने उसके साथ वार्तालाप किया और न कभी एक स्थलमें सहवास किया था । तथा न ऐसा करनेकी उसकी कोई आन्तरिक इच्छा ही थी । आज बहुत दिनोंके बाद ऐसा अवसर उपस्थित हुआ । उसने सोचलिया कि अवश्य उस दुष्टाके पास एक जगहपर बैठना होगा । और सम्भव है प्रकरण वशसे हृदयकी झाल न रुके और उस पापात्माके साथ कुछ कहना सुनना पडे । अतएव उसने सूचकको समझा दिया कि मेरी ओरसे महाराजाजीको विनम्र भावसे यह कह देना मुझे दीखना तो बन्ध हो ही गया है प्रतिदिन सुनना भी कम होता जा रहा है । ऐसी दशामें मेरा इस विषयमें तो कुछ प्रयोजन है ही नहीं यदि महात्माजीके पुण्योपलब्ध पवित्र दर्शनार्थ और अमृतमय उपदेशके श्रवणार्थ ही मैं वहां आनेका प्रयत्न करूं तो परमात्माने मैं इस योग्य भी न रक्खी । अतः मेरा वहांपर आना व्यर्थ है क्षमा कीजिये । ठीक यही प्रार्थना सूचकने वापिस जाकर महाराजा शालिवाहनको सुना दी । इसी समय सूचक पुरुषकी ओर इसारा करते हुए चौरङ्गीनाथजीने कहा कि नहीं उनको जरूर यहां आना होगा । यदि कम सुनने और न दीखनेकी बातका ही अवलम्बन है तो यह सुविधा हम उपस्थित कर देते हैं । लो यह लो हमारी भस्मी ले जाओ इसमेंसे कुछ तो उनको खिला देना और कुछ नेत्रोंके ऊपरी भागपर लगा देना भगवान् आदिनाथजीकी कृपा होगी दोनों समस्यायें हल हो जायेंगी । यह सुन समीपस्थ राजा तथा मन्त्री उपमन्त्री लोग भीतर ही भीतर प्रसन्न हुए । और उनको इस अवसरमें कुछ अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होनेके लक्षण दिखाई दिये । उधर सन्देश वाहक पुरुष भी प्रसन्न हुआ शीघ्र

महलोंमें पहुँचा । और महात्माजीकी बतलाई विधिके अनुकूल प्रयोग करनेकी सूचना पूर्वक वह विभूति उसने राणीके समर्पण की । राणीने ईश्वरको धन्यवाद दे सादर विभूति ग्रहण कर उसे उसी विधिसे कार्यरूपमें परिणत किया । बस उसको इसी अवधितक अन्धकारमय सृष्टि दिखाई देती थी । अब वह अन्धकार पुञ्ज न जानें किधर गया । उसको चारों ओर स्वच्छ शुभ्र प्रकाश दीखने लगा । यह देख वह ईश्वरीय आकस्मिक कृपाका अनुमान कर आभ्यन्तरिक रीतिसे प्रसन्न हुई । कृष्णमृत्युके अनन्तर पुत्रशोक सन्तप्त हृदय वाली उस विचारीका बहुत दिनोंके बाद आज कुछ चित्त ठिकाने आया । तथा इस शुभ लक्षणके आधारसे वह अपने कुछ सुदिन आनेकी आशा करने लगी । और उज्ज्वल कान्ति प्रसन्न मुखसे बोल उठी लाओ पाल्की तैयार है तो शीघ्र लाओ । शिविका प्रथमतः ही सज्जीकृत हुई खड़ी थी । वह आरोहस्थानपर लाई गई । जिसमें सवार हो वह शीघ्र बागमें पहुँची। इस महान् उपकारसे उपकृत हुई उसकी अभिलाषा थी कि मैं प्रथम महात्माजीके दर्शन पूर्वक उचित अभ्यर्थना कर अपने ऊपर हुए उसके उपकारका बदला चुकाऊंगी । परं ऐसा न करने देकर वह एक तम्बूमें, जो अन्तः पुर रूपसे प्रथम ही खड़ा किया गया था, बैठा दी गई । क्योंकि राजासे आपने यह प्रथम ही कह दिया था कि जबतक हम प्रकृत बातका ठीक निर्णय न कर लें तबतक माईलोगोंको हमारे स्पष्ट दर्शनसे वञ्चित रहकर पड़देके अन्तर रहना होगा । ठीक इसी आज्ञाके अनुकूल आभ्यन्तरिक प्रणाम तथा शिर झुकाकर वह तम्बूमें विराजमान हो गई । जिसका प्रसन्न मुख और दुःसह्य नेत्र ज्योतिः देखकर समस्त राणी और दासी चकित सी हो गई। तथा वह पुत्रघातिनी राणी, और उसकी मिथ्याभाषिणी सहचरी दासी, अपने मन ही मनमें अत्यन्त क्षुब्ध हुई । उन्होंने सोचा कि अबके इस अवसरपर बचना कठिन है । जिसने प्रणष्टनेत्रज्योतिः राणीकी दिव्यदृष्टि बना दी उसके लिये हमारा अनिष्ट करनेमें कौन बाधा हो सकती है । इसी प्रकारके संकल्प विकल्पोंमें जिस समय वे विलीन हो रही थी ठीक उसी समय आपने अपने एक ऐसे मन्त्रका अनुष्ठान किया जिससे उनके शरीरमें कुछ २ पीड़ा होने लगी। अब तो उनके होश और भी ठिकाने आ गये । उनके शरीरमें कम्पना उपस्थित हो गई।' ऐसी ही अवस्थामें आपने कहा कि माताओ! आप इस बातपर पूर्ण ध्यान रक्खें यद्यपि उचित मार्गसे भ्रष्ट न होना ही मनुष्यका मुख्य धर्म है । तथापि किसी अदृष्ट प्रतिकूलताके कारणसे मनुष्य उस मार्गपर चलनेमें भूल भी कर बैठे तो उस भूलको विनम्र भावसे स्वीकार कर लेना भी कम महत्त्वकी बात नहीं है। ऐसा करने वाला मनुष्य एकवार भूल जानेपर भी लोक दृष्टिसे घृणाका पात्र नहीं बन सकता है । ठीक इसीके अनुकूल जो कुछ बीत चुका है उसका स्मरण न कर अब तो आप सत्य २ कह सुनानेका उत्साह करें।

इससे आपकी भूल भूलके स्थानमें नहीं समझी जायेगी। और इससे जो कुछ आपको लाभ होगा वह ऐसा होगा जिससे आपके आज हीसे सुदिन आरम्भ हो जायेंगे। परं इतना और स्मरण रखना कि आप यह सोचकर, कि हम प्राथमिक कथनसे विपरीत कहेंगी तो हमारा अपराध प्रकट हो जायेगा, और उसके आधारपर राजा न जानें हमको कैसा कठिन दण्ड देगा, कभी मिथ्या न कह बैठना। ऐसा करनेसे लेनेके देने पड़ जायेंगे। यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि आप इसी जन्ममें नरकाधिकारिणी हो जायेंगी। प्रत्युत जन्मान्तरोंमें भी उससे नहीं बच सकेंगी। इसके अतिरिक्त आप यह भी नहीं समझ बैठना कि हमारा गूढ़ रहस्य अभीतक किसीने भी नहीं जाना है। हमने गुरुजीकी कृपासे ऐसी विधि प्राप्त की है जिसके द्वारा मनुष्यका शुभाशुभ कृत्य सहजमें ही जाना जा सकता है। अतएव हमने आपके वास्तविक तत्त्वको स्वयं तो समझ लिया है परन्तु हम राजाके और इन सब लोगोंके समक्ष आपके मुखसे उसको प्रकटित हुआ देखना चाहते हैं। इसके साथ ही हम एक बात और कह देना उचित समझते हैं। और वह यह है कि हम विवादके भूखे नहीं हैं। आपकी प्राथमिक एक वाणी ग्रहण करेंगे बस उसीके ऊपर स्वर्ग नरक निर्भर है। इसलिये आपको उचित है कि आप खूब सोच समझकर जो कुछ वृत्तान्त है सत्य २ कह सुनायें। पाठक! ध्यान दीजिये यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि नाथजी जो कुछ कह रहे थे वैसा करके न दिखलाते। अतएव अब उन विचारियोंके लिये रास्ता ही कौन रह गया था जिसमें प्रविष्ट हो अपने रहस्यको छिपाती हुई आपत्तियोंसे सर्वथा वञ्चित रहजातीं। अतएव उन्होंने इधर उधरकी समस्त परिवृत्तियोंकी उपेक्षा कर सत्य कह देनेमें ही अपना कल्याण समझा। अर्थात् राणीने स्पष्ट कह सुनाया कि महाराज निःसन्देह मेरा अपराध है। मैंने अपने इस क्षुद्र शरीरकी रक्षार्थ कुवासनाग्रस्त हो कर भी सुवासना प्रमाणित करनेके लिये विपरीत जालकी रचना की थी। इसी प्रकार दासियोंने भी प्रकटित कर दिया कि भगवन्! महाराणीके भयसे अथवा अपनी आजीविकाकी वृद्धिके हेतुसे समझो हमने असत्य भाषण कर इसके कथनका समर्थन किया है। यथार्थ में कुमारका कुछ भी दोष नहीं था। यही नहीं बल्कि वह एक अद्वितीय मातृ भक्त था। इसके हजार छल करनेपर भी उसने अपने मुखसे मातासे अतिरिक्त कोई शब्द नहीं निकाला था। और अपने आपको विमुक्त करनेके लिये वह बार २ इसके चरणोंमें मस्तक लगाता था। जिसका यह व्यवहार देखकर हमारा भी हृदय भर आया। परं अपने आपेमें न होनेके कारण यह उससे मस न हुई। अन्तमें उस विचारेने किसी प्रकार इससे विमुक्ति पाई। यह सुन राजाके शरीरमें महा क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुआ। जो राजाके हजार धैर्य धारण करनेपर भी अन्तर छिपा न रह सका। यही कारण

हुआ राजा विवश हो खड्ग हस्तमें धारण कर राणीका शिर काटनेको दौड पडा। जिसको मन्त्री लोगों और आपने बडी कठिनताके साथ आसनपर स्थित किया। राजाके इस क्रोधावेशसे यद्यपि राणी तथा दासियोंकी भूमि पीली हो गई थी। और उनका इस भयसे प्राण शुष्क हुआ जा रहा था कि राजा किसी प्रकार पडदेके भीतर तक आ पहुँचे तो उनकी तीक्ष्ण तलवारका वार व्यर्थ न जा कर अवश्य हमारे दो खण्ड कर डालेगा। तथापि उनके चित्तको धैर्यावलम्बित करनेके अभिप्रायसे आपने कहा कि राजन्! आप जो भी कार्य करेंगे वह हमारी आज्ञाके प्रतिकूल नहीं करने पायेंगे। अतएव आप इन विचारियोंके ऊपर इतना क्रोध न करें। इनका कोई अपराध नहीं उस अभागेके ललाटमें ऐसी ही रेखायें पडी थी जिनके अनुकूल उसने ऐसी कठिन आपत्तिका सामना करना अवश्य ही था। सो हो चुका उसके विषयमें किसी प्रकारके प्रायश्चित्त करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। परं यह ध्यान रखिये सच्चे मनुष्यका सदा ईश्वर सहायक रहता है। ऐसे मनुष्यका अनिष्ट करनेके लिये कोई सहस्रों क्या लक्षों लक्षों क्या करोडों उपाय करे तो भी उसका वाल तक वांका नहीं कर सकता है। इस वातके प्रमाण भूत हमारे इस पवित्र भारतमें अनेक प्रन्हादादि महानुभावोंके प्रसिद्ध होनेपर भी मैं आज आप लोगोंकी दृष्टि पथके ऊपर विराजमान हूं। मे सच्चा और अधिक सच्चा आपका वही पुत्र कृष्ण हूं। जिसको हस्त पैरोंसे रहित करा कर भी आपने कुछ सुखी समझा होगा। जिस कारणसे उसको कूएमें प्रक्षिप्त करनेकी आज्ञा प्रदान की गई। परं मैं सच्चा था। यही कारण हुआ इतना करनेपर भी आपका प्रयत्न सफल न हुआ। मैं करुणावतार जनोद्धारक योग मूर्ति गुरुगोरक्षनाथजीकी कृपासे फिर वैसा ही हो गया। वल्कि वैसा ही नहीं हुआ मै उस दर्जे तक पहुँचा हूं जहां मुझे फिर कभी ऐसे दुःखका अनुभव नहीं करना पडेगा। वस अधिकसे अधिक राजाने आपकी उक्ति यहीं तक श्रवण की। उसने सहसा आसनसे उठकर आपकी ग्रहणतार्थ धावा किया। और आपको दोनों हस्तोंसे पकड कर उन्मत्तकी तरह पड गया। उधर राजाको पुत्रसे सम्मिलित हुआ अनुमित कर राणीसे भी स्थगित न रहा गया। वह भी व्यावहारिक लज्जाका विस्मरण कर राजासे वञ्चित रहे आपके अङ्गको छातीसे लगाती हुई प्रेम मूर्च्छासे राजाकी सदृश ही अचेत हो गई। अये ईश्वर! तेरी रचित सृष्टिमें पुत्र भी एक विचित्र वस्तु है। नहीं जानते आपने यह वस्तु कितने मूल्यकी वनाई है। जिसके अभावमें विस्तृत साम्राज्य भी किम्प्रयोजन समझा जाता है। हम ज्यों ही संसारमें दृष्टि डाल कर देखते हैं त्योंही क्या दरिद्र धनाढ्य क्या राजा क्या महाराजा क्या मण्डलेश्वर सव ही इस वस्तुके लिये तेरी अभ्यर्थना करते रहते हैं। और इसके प्राप्त होनेपर ही अपने यथोपलब्ध साम्राज्योपभोग पर्यन्तको सफल समझते हुए भी स्वकीय जीवन चर्य्याको

सार्थक मानते हैं। प्राप्त होनेपर भी सौभाग्य यदि वह पुत्र सर्व लक्षण सम्पन्न हो तो माता पिताके आनन्दकी सीमा ही क्या हो सकती है। खैर इस विषयमें हम अधिक नहीं कहना चाहते हैं। संसारमें पुत्रके ऊपर जब पशुपक्षी भी हमको अपने शरीर तक न्योछावर करते दीख पड़ते हैं तब मनुष्यके पुत्र प्रेमकी पराकाष्ठा कहां तक हो सकती है यह अनुमान द्वारा ही जानने योग्य है। अथवा जिन पाठक महाशयोंको पुत्रोपलब्धिका सौभाग्य मिला है वे स्वयं इस रहस्यसे परिचित होंगे। इसी रहस्यमें विलीन सपत्नीक महाराजा शालिवाहन आज संसार सागरको आनन्दसागर समझकर उसमें डूब रहे थे। इस प्रकार उसको अपने आपमें न देखकर व्यावहारिक लज्जा उसके शरीरसे प्रस्थान कर चुकी थी। यही कारण था वह युद्ध प्रवृत्त तित्तरोंकी तरह पुत्रसे ग्रंथित हो उपस्थित जनताकी ओरसे सम्भवित होनेवाले उपहास्यकी किञ्चित् भी परवाह न करता था। एवं स्वकीय मुखसे कुछ भी शब्दोच्चारण न कर केवल प्रेमाश्रुओंसे स्वीय सूक्ष्म वस्त्र और नाथजीके शरीरको प्लावित कर रहा था। उसकी यह दशा देख उपस्थित जनता भी अपने हृदयको वशमें न रख सकी। उसका समुद्र पृष्की तरह विस्तृत हृदय अपने प्रेमाश्रु रूप तरङ्गोंको शरीरसे बहिर् फेंकने लगा। इधर वृक्षोंका भी यही समाचार था। वे सूक्ष्म वर्षाके कारणसे जल प्लावित पत्रोंसे विन्दु छोडते हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानों ये स्वयं भी प्रेमाश्रुपात कर जनताका अनुकरण कर रहे हैं। इधर पक्षिगण नेत्रोंके लिये उड्डीयमान होकर इस भावको प्रकटित करते थे मानों वे इस प्रेमाधिक्यको सह नहीं सकते थे। यही कारण था अब बागमें चूं तकका भी शब्द नहीं होता था। राजकीय मर्यादासे मौन धारण किये हुए प्रजाजन अश्रुपात द्वारा राजाका अनुकरण कर रहे थे। यह दृश्य बडाही विचित्र और हृदय ग्राही था। लगभग दो घडी पर्यन्त महाराजा शालिवाहन उसी अचेत दशामें स्थित रहे। अन्तमें स्वयं कुछ संज्ञोपलब्ध होकर राणीको प्रबोधित करने लगे। वह सचेत हुई। और चाहती थी कि पुत्रसे कुछ वार्ताकर प्रथम इसकी उस विषम स्थितिसे परिचित हो जाऊं। परं अभीतक उसके सौ प्रयत्न करनेपर भी मुखसे बोल न निकलता था। पूज्य माताकी यह दशा देखकर आपने कहा कि मात! आपने मेरे विषयमें इतना सीमा भञ्जक शोक नहीं करना चाहिये था। जिससे आपका शरीर ही केवल कृशताको प्राप्त नहीं हुआ है आपके नेत्र भी अपना कार्य समाप्त कर बैठे हैं। जिससे आपको जीवित दशामें ही मृतककी तरह समय व्यतीत करना पड़ा है। जब कि मैं रघुकुल भूषण श्रीरामचन्द्रजीके हस्त स्थापित श्रीरामेश्वर भगवान् के प्रसादसे आपको प्राप्त हुआ था तब आपने निःशोक होकर यह विश्वास रखना चाहिये था कि न तो मेरा पुत्र ऐसे कुत्सित कृत्यमें प्रवृत्त हो सकता है। और न ऐसी अविचार प्रयुक्त बाधायें उसका बालतक बांका कर सकती हैं। यह सुन

माताजीने करुणा स्वरसे किसी प्रकार शद्वोच्चारण कर कहा पुत्र ! तू जानता है परमात्माने स्त्री जातिको बहुत कुछ मृदु हृदयवाली बनाया है। जो शोकप्रद छोटेसे छोटा भी अभिनय उपस्थित होनेपर यह उसको अपने अधिकारमें नहीं रख सकती है। यही कारण हुआ मैं सब कुछ सोचती हुई भी उस अभिनयको देख दुर्दशा ग्रस्त हुए बिना न रहसकी। इसके अनन्तर आपने, अच्छा ईश्वर जिस दशामें रक्खै उसको उसी दशामें धन्यवाद देना चाहिये अबतक जो कुछ हुआ सो तो हो चुका उसके विषयमें आपको कुछ भी विचार न होना चाहिये अबतो आपको यही उचित है कि आप सामयिक नियमानुसार ईश्वराराधन तथा अनेक दानपुण्योंमें दत्तचित हो कर अपना आगमिक मार्ग स्वच्छ बनायें, यह कह कर अपनी मौसी और दासियोंको मिलनेके लिये समीप बुलाया। वे आई और आपका यथोचित सत्कार कर सम्मुख बैठ गई। आपने अपने अमृतायमान उपदेशसे उनके उत्तप्त हृदयको शान्त किया। तदनु अनेक राज पुरुष अपने २ प्रेमकी पराकाष्ठा दिखलाते हुए आपको सत्कृत करने लगे। ठीक ऐसी ही दशामें महाराजा शालिवाहनने किसी प्रकार खडे हो कर यह घोषित कर दिया कि राजकर्म चारिगण! आपके अधिनायक आज आपके हस्तगत हो गये हैं। आजसे ही आप मेरी आशा छोड कर इन्होंको अपना शिरताज महाराजा स्वीकृत कीजिये। मैं अनर्थकारी होनेके कारण इस भारको ग्रहण न करता हुआ ईश्वराराधनमें तत्परता करूंगा। जिससे इस जन्म निष्ठ अनर्थकारित्वरूप टींकको अपने मस्तकसे उतारकर जन्मान्तरमें इस भार ग्रहणके योग्य हो सकूंगा। यह सुन महाराजा शालिवाहनकी राजकार्योंकी ओरसे दृढ घृणा देख कर मन्त्री लोग तो चुप रहे। पर आपने कहा कि राजन् ! यद्यपि आप अज्ञानताके कारण अनर्थ कर बैठे और उसकी निवृत्तिके लिये आपकी अत्युत्कण्ठा भी है, तथापि मैं नहीं समझता कि वह अज्ञानता आपका अब तक भी पीछा छोड गई है। यही कारण है आप फिर दूसरा अनर्थ करनेके लिये प्रोत्साहित हो गये है। आपका यह अनर्थ, कि मुझे राज्यभार ग्रहण करनेको बाध्य करना, उससे किसी प्रकार भी कम नहीं है। बल्कि कहूंतो कह सकता हूं कि यह अनर्थ उससे कहीं अधिक महत्त्व रखता है। कारण कि आपके उस अनर्थसे तो मेरा कुछ भी न बिगडा है। प्रत्युत उस पद तक पहुँच गया हूं कि मैं चाहूंतो आपको उस अनर्थकारित्वसे ही मुक्त नहीं कर दूं बल्कि भारतमें आपको एक यशस्वी पुरुष प्रसिद्ध कर दूं। और आपके कथनानुसार यदि मैं राज्यभारको ग्रहण कर लूं तो आपतो उस दोषसे वञ्चित रह ही नहीं सकते है मैं भी अपने गम्य कल्याणप्रद मार्गसे भ्रष्ट हो जाऊं। मेरा ऐसा हो जाना आपके और मेरे दोनोंके लिये ही हानि कारक है। अतएव आप फिर इस उद्देशसे कोई शद्व मुखसे न निकाल पैठें। इसपर राजाने कहा खैर क्षमाकीजिये मैंने ऐसा कह कर मूलप्रदर्शित

की आप ऐसा न करें इसमें कोई आपत्तिकी बात नहीं। परन्तु मैं और आपकी माता आपके वियोगमें किसी प्रकार भी नहीं रह सकते हैं। अतएव हम दोनों वाणप्रस्थी हो आपके साथ वनपर्वतोंमें निवास करते हुए उस पाप परिहारके लिये प्रायश्चित्त करेंगे। ये लोग अपने राज्यको सम्भालें और उसका प्रबन्ध करें हमारा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि आप मुझे ऐसा न करनेके लिये बाध्य करें तो वह ठीक नहीं। कारण कि पुत्र तो कोई है ही नहीं मैं कुछ वर्षमें जब इस लोककी यात्रा समाप्त कर बैठूंगा तब भी तो इन लोगोंने ऐसा करना ही पड़ेगा। इससे उचित यही है कि ये लोग मुझे आज ही अवकाश दे दें जिससे मैं अपने अभीष्टको प्राप्त कर सकूंगा। इसपर आपने कहा कि खैर मरना तो अवश्यम्भावी है! राजकीय प्रवृत्तिमें तो किसी प्रकार इसका निवारण हो ही नहीं सकता है। यदि इसी बातकी अत्यन्त उत्कण्ठा हो कि मैं वह उपाय प्राप्त करूं जिससे मेरा बार २ मरण तथा जन्म न हो तो मेरी ओरसे आप आज ही वनोंवासी होते अब हो जायें ऐसा करनेके लिये आपको धन्यवाद है। परं पुत्र न होनेके कारणसे तथा मेरे साथ किये गये अन्यायके उद्देशसे आप वाणप्रस्थी धारण करते हो तो कृपा कीजिये आप वैसा न कर इसी अवस्थामें जहां तक होसके ईश्वराराधन तथा विशेष दान पुण्यसे अपना मार्ग स्वच्छ कीजिये यह पुत्राभावकी त्रुटि तो आपकी मैं दूर कर देता हूं। लीजिये कुछ तो गुरुका प्रसादरूप यह भस्मी है, इसको आप खाना और मेरी छोटी माताको खिलाना। इसके अतिरिक्त जिस कूपमें मैं डाला गया था उसका जल मंगाकर कुछ दिन व्यवहारमें लाना। ऐसा करनेसे आपको एक दूसरे कृष्णकी प्राप्ति होगी। वह जिस दिन जन्म ग्रहण करे उस दिन उक्त पापकी निवृत्त्यर्थ एक महायज्ञका आरम्भ करना और उस उपलक्ष्यमें अपने नामका सम्वत् प्रचलित कर देना। इस कृत्यसे आप न केवल उस पापका निवारण कर सकेंगे प्रत्युत संसारमें अपनी कीर्ति स्थापित कर सकेंगे। और इस कार्यमें आप अवश्य कृतकृत्य होंगे। यह सुन महाराजा शालिवाहन किसी प्रकार सन्तुष्ट हो गये। उपस्थित जनताने अपूर्व हर्ष ध्वनि की। आपकी माताके साथ २ उपमाता भी, जो कि राजाकी तिर्यग् दृष्टिसे दीन दशामें अपने दिन व्यतीत करती थी, आजसे अपने फिर उसी राणीके पद पर अभिषिक्त हुई समझ कर आनन्दमें निमग्न हुई। अधिक क्या इस उद्देशसे समस्त नगरमें ही नहीं राज्यभरमें मङ्गल मनाया गया। तदनन्तर कुछ दिनके निवास द्वारा पूज्य माताका हृदय शीतल कर फिर मिलनेका वचन दे आपने वहांसे सादर प्रस्थान किया।

इति श्री चौरङ्गिनाथ शालिपुर आगमन वर्णन नामक ५५ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

॥ अध्याय ४६ ॥
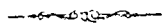
महाराजा शालिवाहनके असीम औत्साहिक सत्कारसे प्रसादित हुए पर्वतराज हिमालयकी शीतल कन्दराओंमें निवास कर कुछ दिन ब्रह्मरूपतोपस्थापक सामाधिक अवस्थामें विलीन होनेके अभिप्रायसे चौरङ्गिनाथजी शालिपुरसे प्रस्थानित हो उधर अग्रसर हुए। और सांसारिक दुःखत्रयात्मक अनलसे दन्दह्यमान हृदय मुमुक्षुजनोंके चित्तको स्वकीय अमृतायमान मोक्षप्रद योगो-पदेशसे और भी उपरामी बनाते हुए आप कुछ कालमें चन्द्रभागाके प्रभव स्थान तक पहुँचे। यहां जैसे स्थलमें निवसित हो आपने अपने कार्यका आरम्भ करनेकी धारणा की हुई थी वैसे अनेक स्थल आपकी दृष्टिगोचर हुए। एकसे एक रमणीय और चित्त प्रसादप्रद कन्दराओंको देखकर आपके हर्षकी सीमा न रही। पर्वतकी क्रमशः शिलापंक्तियों द्वारा नीचे गिरने वाले जल अपने खरल २ और कल २ शद्ब द्वारा मानों आपको निमन्त्रण दे रहे थे। इस समय आप एक ऐसे स्थलपर विराजमान थे जहांसे परितः अनेक कन्द-रायें सम्मुखीन होती थी। उनके मध्यमें खडे हुए आप बाजारमें आ उपस्थित होनेवाले असाधारण व्यापारीकी दशामें परिणत थे, अर्थात् जिस प्रकार वैसे मनुष्यके व्यापारसे असाधारण ही लाभ सोचकर बाजारी लोग उसको अपनी२ ओर आमन्त्रित करते हैं उसी प्रकार चौतरफ वर्तमान कन्दरायें अपने खरल२ और कल२ जल शद्बके द्वारा आ-पको अपनी२ ओर आकर्षित कर रही थी। तथा कह रही थी कि महात्माजी इधर आ-इये और यहां निवासकर हमको तथा हमारे जलको पवित्र कीजिये। पर आप एक व्यक्ति होनेके कारण उन सबका मान कैसे रख सकते थे। यही कारण हुआ अन्य सबको

शुक धैर्य देकर आप एक कन्दराकी ओर अग्रसर हुए। आपको सम्मुख आते हुए देख कर वृक्षोंमें बैठे हुए विविध विहङ्गमोंने अपने कन्दरात्मक स्थानकी विजय समझी। अतएव वे अपने परम मधुरतान्वित चूंचूं चींचीं ट्रंट्रं टींटीं आदि अनेक रसिक शब्दोंसे आप का स्वागत करनेके लिये प्रोत्साहित हुए। उधर अनेक अरण्य जन्तुओंने आपका शुभागमन देखकर कन्दरासे बहिर हो आपके लिये सुविधा उपस्थित की। अर्थात् सिंह महानुभाव यह सोचकर, कि मेरी गर्जनासे सम्भवतः महात्माजीके ध्यानमें बाधा उपस्थित होगी, गुहासे बहिर निकल गया। एवं भालु महानुभाव भी इस अभिप्रायसे, कि महात्माजीको शरीर यात्राके लिये समीप ही पर्याप्त फल फूल मिलते रहैं, कन्दरासे बहिर हो गये। इसी प्रकार शूकरोंने भी यह विचार कर, कि महात्माजीको स्वच्छ जलकी उपलब्धि होती रहेगी, कन्दरासे प्रस्थान किया। इस प्रकार आपके अहिंसात्मक व्रतने अनेक वन्य जन्तुओंके हृदयमें वह भाव उत्पन्न कर दिया कि जिससे वे आपकी क्रियाओंमें अपना २ व्यवधान सोचकर वहांसे अपसरित हो गये। केवल वही मृगादि जन्तु आपके सहवासमें रहे जो आपके कृत्यमें कुछ भी बाधा न पहुँचा सकते थे। और आपके प्रसाद द्वारा सिंहादिके भयसे विमुक्त हुए आपको निशङ्कावलोकन द्वारा असंख्य धन्यवाद दे रहे थे। बल्कि यहांतक कि आपके उपकारका बदला चुकानेके लिये वे आपके आसन समीपमें चरते २ अपनी अनेक प्रेतिक चेष्टाओंसे तथा आपके शरीर खर्जनसे आपको आनन्दित करते थे। आहा! पाठक! देखिये अहिंसेय व्रतका कैसा विचित्र प्रभाव है। इन हरिणोंका कभी मनुष्यके साथ सहचार न होनेपर भी आज ये निशङ्क होकर आपके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। ये प्रकाशमयी रात्रीमें जब आपके चौंतरफ बैठते थे तब आप गोसंघके मध्यमें विराजित योगिराज श्रीकृष्णचन्द्रजीकी शोभा धारण करते थे। उनके छोटे २ बच्चे खेलते २ आपके आसनके ऊपरतक चढ बैठते थे पर आप उनके क्रीडानन्दमें कभी बाधा नहीं डालते थे। यही कारण था उनकी आपके साथ अधिक प्रीति हो गई थी। जब कभी आप अनेक मधुर २ फल ग्रहण कर खानेके लिये उद्यत होते थे तब वे समस्त बच्चे सूंसूं और फूंफूं शब्द करते हुए आपके पास आकर चौतरफ खड़े हो जाते थे। कोई आपके घुटने चाटता था तो कोई भुजा चाटता था। कोई पृष्ठ चाटता था तो कोई जटाओंके बाल मुखसे पकड़ कर खैंचता था। कोई फलकी ओर जिह्वा प्रवृत करता था तो कोई बराबरसे कन्धान्त प्रदेशको चाटकर आपको रोमाञ्चिक दशामें परिणत करता था। यह देख आप भी उनका लाड खुश्क न रखते थे। उनको क्रमशः फल प्रदान कर स्वयं आदान करते थे। इस प्रकार आज पर्वतीय कुटुम्बके बीचमें बैठे हुए आप अपनेको देवराज इन्द्रसे भी सुखी समझते थे। साथ ही अपनी कूपपतना-

-वस्थापर दृष्टि डालकर जब इस सौख्यप्रद दशापर दृष्टिपात करते थे तब अपने हृदयसे स्वकीय गुरु श्रीमद्योगेन्द्राचार्य गोरक्षनाथजीके चरणयुगलका ध्यान धरते और उनको -बार२ नमस्कार करते थे। परं आपने आरण्यक जन्तुओंकी इस गोष्ठी सुखका अधिक दिन अनुभव करना उचित नहीं समझा। और फलाहारसे आप पवनाहारमें प्रयत्न करने लगे। कुछ दिनमें आपका यह अभ्यास दृढ हो गया। उधरसे आपने तबतक स्वकीय कार्योचित एक गुहा भी तैयार कर ली। जिसमें आप साप्ताहिक समाधिके क्रमसे समाधिनिष्ठ हुए। इस कृत्यमें आपके चौवीस वर्ष सानन्द और निर्विघ्न व्यतीत हो गये। इस कार्य क्षेमतापर भगवान् आदिनाथजीको तथा स्वकीय गुरु श्रीगोरक्षनाथजीको अनेक धन्यवाद देनेके अनन्तर आप पर्वतीय प्रीतिपात्र जन्तुओंके हृदयमें धैर्य स्थापित कर देशान्तर पर्यटनके लिये वहांसे प्रस्थानित हुए। और अनेक पार्वती विषम मार्गोको उल्लङ्घित करते हुए आप कुछ दिनमें श्रीज्वालादेवीके स्थानपर आये। उचित स्थलपर अपना आसन स्थिर कर आप कुछ विश्रान्ति हुए। और फिर अनुकूल अवसर देखकर देवीजीके दर्शन करनेको गये। स्वोचित वन्दनाभिधानसे सत्कृत करनेपर ज्वालाजी साक्षात् प्रकट हुई। और उसने विदित होनेपर भी प्रतिसत्कार करनेके अनन्तर आपका परिचय पूछा। आपने अपने विषयका देवीके अभिप्रायानुसार महाराजा शालिवाहनका पुत्र होने आदिका समस्त वृत्तान्त सुना डाला। यह सुनकर आपके ऊपर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। अधिक क्या उसने यतिवर समझकर गोदमें बैठाये हुए आपकी हृदयसे प्रशसा की। तथा कहा कि पुत्र मेरी प्रसन्नता निष्फल न हो इस हेतुसे मैं तुमको यह वरदान प्रदान करती हूं कि तुम भारतमें देवता* नामसे भूषित होगे। यह सुन देवीका मान रखनेके लिये आप खूब ही प्रसन्न हुए। और वर प्रदानपर कृतज्ञता प्रकट करते हुए आपने उसकी श्रद्धेय नमस्कार की। एवं फिर दर्शन करनेका वचन देकर उससे आसनपर जानेकी आज्ञा मांगी। उसने सादर आज्ञा देते हुए कहा पुत्र! अभी जाना नहीं। मेलेके थोडे ही दिन रह गये हैं उसमें तुमको श्रीमहादेवजीकी आज्ञा पालन करनेका अच्छा अवसर मिलेगा। यों तो खैर उस अवसर तक सम्भव है अन्य योगी भी आ ही जायेंगे। तथापि तुमको यह अवसर छोडना

---

* यही कारण है आपके निमित्तसे जहां २ तालाव बने हैं वे देवतावाले वा देववाले शब्दसे व्यवहृत होते है। ये विशेष करके रोहतक प्रान्तमें पाये जाते हैं। खेद है इस विषयका परिचायक सर्व देशी इतिहास न होनेसे आपका यह नाम केवल गृहस्थ लोगोंमें ही प्रचलित रह गया है। सो भी वहीं जिस प्रान्तमें आपके निमित्तसे तालाव और स्थान बने हुए है। आप पूजार्थ इन स्थानोंमें आने वाले यात्री आपकी स्तुतिके जो गीत गाया करते हैं वे प्रत्येक गीत देवता नामका भोग लगाया करते हैं। इसके अतिरिक्त योगिसमाजमें आप सिद्ध चौराङ्गीनाथ नाम प्रसिद्ध हैं। नाटक मण्डली आपको पूरणभक्त वा पूरणमल नामसे सत्कृत करती है।

उचित नहीं। आप ज्वाला माईकी इस आज्ञाको शिर नमन द्वारा स्वीकार कर अपने आसनपर गये। और कुछ दिन सानन्द निवास करते रहे। इधरसे मेलेका दिन समीप आया तो उधरसे यात्रीलोग एकत्रित होने लगे। देखते २ असंख्य नरनारियोंका समूह उपस्थित हो गया। कईएक राजपुरुष जो आपके परिचित थे मेलेके प्रबन्धार्थ यहां आये। उनका आपके साथ साक्षात्कार हुआ। उन्होंने आपको अनेक धन्यवाद देते हुए आपके वचनकी सफलतारूप महाराजा शालिवाहनकी भारत विजय करना, महायज्ञ करना, और उसमें अपना सम्वत्सर प्रचलित करना, आदि अनेक शुभ गाथायें सुनाई। आपने प्रसन्नता प्रकट करते हुए उनके कथनका सम्मान किया। तदनु वे लोग अपने कार्यमें दत्तचित्त हुए। इधर आप आगन्तुक योगियोंके साथ परामर्श करने लगे। आपने कहा कि महानुभावो! जिसको सुदूर स्थानपर पहुँचना है उसका केवल बैठे रहनेसे ही कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है। आपलोग जानते हैं कि हमलोगोंने इस जनताको परीक्षित करना है। और इसमें विद्यमान अत्यन्त रोगी मनुष्यको अपनी ओर आकर्षित कर ओषधि प्रदान करनी है। अतएव मैं चाहता हूं कि आपलोग अपनी २ सम्मति प्रकट कर दें कि इस कार्यमें उत्तीर्ण होनेके लिये किस उपायका अवलम्बन करना उचित है। योगियोंने उत्तर दिया कि वह आपकी ही इच्छापर निर्भर है। हमको तो अपना आगमन सफल करनेके लिये यही देखना है कि इस जनसमुदायमें जन्म मरणात्मक अत्यन्त प्रवल रोगसे कौन विमुक्त होनेकी अभिलाषासे हमारा आश्रय ग्रहण करता है। बस मुख्य प्रयोजन तो हमारा यही समालोचना करना है। इसके लिये अनेक उपाय हैं चाहो जिसको कार्यरूपमें परिणत करा सकते और कर सकते हो। यह सुन आप अत्यन्त प्रसन्न हुए। और आपने मेलेमें यह सुचना प्रचारित करा दी कि मेलेमें जो अन्धा कुष्ठी अथवा और किसी तरहका शारीरिक दुःख वाला मनुष्य हो वह हमारे समीप आ जाय आज उस दुःखसे रहित कर दिया जायेगा। बस इस सूचनाका मेलेमें पहुँचना ही था अनेक लोग इससे सूचित हुए कोई दुःख निवृत्तिके लिये तो कोई उनका कुतूहल देखनेके लिये आपके आसनस्थलका ओर दौड पडे। देखते २ थोडी ही देरमें सहस्रों मनुष्य एकत्रित हो गये। यह देख आपने अपना कार्य आरम्भ किया। पूर्वोक्त व्याधि ग्रस्त जो २ मनुष्य आपके अभिमुख होता आप गुरूपलब्ध मन्त्र संशोधित विभूतिके प्रभावसे उसको सुखी* बनाकर एक ओर करते

* यही कारण है अभीतक लोग इस देवके तालाबोंकी मिट्टी निकालकर इन दुःखोंसे मुक्त होते हैं। बोहरमें जितने योगी दर्शनी बनते हैं निर्विघ्न शीघ्र कान अच्छे होनेके हेतु तालाबकी मिट्टी निकालनी कबूल करते हैं। मैंने स्वयं ऐसा किया है। और दूसरी बार भी सौ टोकरी मिट्टी निकालकर एक असाधारण रोगसे छुटकारा पाया है।

गये । आपकी इस जनहितैषिताका लोगोंपर वडा ही प्रभाव पडा । फल यह हुआ कि जनता आपके दर्शन करने और उपायन समर्पित करनेके लिये अधीर हो गई । वह आपको पुष्पवर्षासे आच्छादित करती हुई आपकी ही नहीं पूज्यपाद गोरक्षनाथजी आदि समस्त योगेन्द्रोंकी प्रशंसा करती थी । ठीक इसी अवसरमें उपस्थित लोगोंको सम्बोधित करते हुए आपने कहा कि महानुभावो ! यह बात आपलोगोंसे न जानी हुई नहीं है कि संसारमें यदि कोई भी रोग न होता तो ओषधियों तथा तज्ज्ञाता वैद्य लोगोंकी कोई आवश्यकता नहीं थी । परन्तु ऐसा नही है हम जहां देखते हैं वहीं त्रिविध रोगका साम्राज्य हमारी दृष्टिगोचर होता है । जन्ममरणात्मक इन दो वडे रोगोंका तो कहना ही क्या है छोटे२ रोगोंसे सम्पीडित त्राहि२ शद्व करते हुए लोग हमारे हृदयको द्रवीभृत वना डालते हैं। परं उस परम पिता ईश्वरको अनेक हार्दिक धन्यवाद है संसारमें जितना ही रोगोंका प्राधान्य है उसने उतनी ही ओषधि रचकर संसारमें प्रचलित कर दी हैं । जिनके जानने वाले कमसे कम होनेपर भी संसारमें अनेक पुरुप हैं । आपलोग अनेक दुःखोंसे सम्पीडित रहते हुए भी उनके पास जा कर ओपधि ग्रहण न करो तो इसमें ईश्वरका वा वैद्योंका कुछ दोष नहीं है । तुमलोग अपने आपकी ही गलतीसे दुःख भोग रहे हो । दुःखोंसे मुक्त होनेकी इच्छा रखते हुए भी वैद्योंके आश्रयमें जानेका आलस्य करते हो। इसीलिये मैं आपलोगोंको सचेत करता हूं आप कृपया अपने आलस्यसे ही प्रथम विमुक्त हो जाइये । और फिर वैद्योंके शरणागत होनेकी कृपा कीजिये । फिर आप देखेंगे कि आपके वे दुःख, जो वहुत कालसे आपको व्यथित कर रहे थे, कहां गये । परं इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि जो रोगी मैंने इस समय नीरोग किये हैं इस वृत्तान्तको याद रखकर छोटेसे छोटे दुःखसे ग्रसित हो आपलोग अपने आपको वैद्य कहलाने वाले योगियोंके समीप न दौडे जायें । क्योंकि यों तो ऐसा दुःख कोई भी नहीं है जिसका योगी परिहार न कर सकता हो । परं मुख्यतया योगीलोग इन साधारण दुःखोंकी विनाशक ओषधि देने वाले वैद्य नहीं है । प्रत्युत ये लोग जन्ममरणात्मक प्रवल दुःखकी विनाशक योगात्मक ओषधि देने वाले हैं । अतएव उन छोटे मोटे दुःखोंकी विनाशक ओषधियोंकी ही आपको आवश्यकता हो तो योगियोंके पास न जाकर आप ग्रमीण वा नागरिक वैद्य लोगोंके समीप पहुँचिये । वैसी ओषधि वहुत मिल जायेंगी । हम योगीलोग न तो ऐसी ओषधि किसीको देते हैं और न इनके प्रदान करनेसे कोई वास्तविक लाभ ही समझते हे । ऐसी ओषधियोंके द्वारा किसीके- दुःखका दूर कर देना वैसा ही है जैसा किसीको एक समय भोजन खिला देना । एक कालिक भोजन प्रदानसे क्या होता है सायं खिलाया तो प्रातः और प्रातः खिलाया तो सायंकाल फिर डङ्कनी क्षुधा कलेजा काटने लगती है । इसी प्रकार एक ओषधिसे एक

रोग शान्त किया तो दूसरा और तैयार है। संसारमें रोगोंका तो कोई अन्त है ही नहीं आप चलिये कहांतक शान्त करते चलेंगे। बल्कि शान्त क्या करेंगे करने वाले और कराने वाले दोनों स्वयं ही शान्त हो जायेंगे। अतएव जिसके निवारण करनेपर फिर किसी अन्य रोगका मुख न देखना पडे ऐसे जन्म मरणात्मक रोगकी योगात्मक औषधि ग्रहण करनेकी यदि किसी महानुभावकी इच्छा हो तो वह हमलोगोंके सकाशसे मिल सकती है। यदि आप इस दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो चुके हैं. और इससे मुक्त होनेकी यदि आपके अत्यन्त उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई है. एवं औषधिके न मिलनेसे ही यदि आप कुछ मन्दोत्साह हो गये हैं. तो आइये हमारे आश्रित हो कृपया इस औषधिको समझ लीजिये। इसका सम्यक् प्रयोग करनेसे केवल आप ही दुःखोंसे मुक्त नहीं हो जायेंगे बल्कि दूसरोंको विमुक्त करनेकी योग्यताको प्राप्त कर सकेंगे। अधिक दूर जानेकी आवश्यकता नहीं आप मुझे ही ले लीजिये। मैं वही मनुष्य हूं जो महाराजा शालिवाहनजीके द्वारा हस्त पैरोंसे रहित होकर कूपमें प्रक्षिप्त किया गया था। मैं उस दशामें किसी प्रकार सजीव रहनेपर पूज्यपाद करुणानिधि गुरु गोरक्षनाथजीकी कृपाके द्वारा न केवल हस्त पैरों वाला बन गया बल्कि इस दर्जे तक पहुँचा आज आपलोगोंके देखते २ कतिपय लोगोंको साधारण दुःखोंसे विमुक्त कर सका हूं। क्यों ऐसा क्यों हुआ और यह क्या बात है। यह सब इसी योगरूप औषधिकी महिमा है। अतएव मैं एकबार फिर कहता हूं इस औषधिका जिघृक्षु महानुभाव निशङ्कतया हमारा आश्रय ग्रहण कर सकता है। याद रक्खो! मुमुक्षुओंके लिये ऐसा अवसर सदा उपस्थित नहीं रहता है। इत्यादि कह कर जब आप शान्त हुए तब उपस्थित लोगोंने फिर आपके ऊपर पुष्पवर्षा की। तथा अनेक प्रकारकी भेट पूजा समर्पित करते हुए उन्होंने आपकी लोक प्रियतापर असंख्य धन्यवाद दिया। और वनखण्डी तथा नन्द नामके दो मुमुक्षु महानुभावोंको आपके समर्पित कर वे लोग अपने२ स्थानोंपर गये। यह देख आपने अपना प्रयत्न सफल समझा। तथा उक्त दोनों मुमुक्षु महानुभावोंको निरञ्जननाथजीके शिष्य तारकनाथजीके अर्पण कर दिया। और उनको सूचित कर दिया कि आप इनको अभीष्ट स्थानपर ले जायें। एवं सर्व दुःख निवारक योगात्मक औषधिके ज्ञाता बनादें। जिसके सेवनसे उक्त दो बडे दुःखोंसे मुक्त होनेपर ये आपको हार्दिक धन्यवाद देंगे। तारकनाथजीने आपकी यह आज्ञा शिरपर धारण की। तथा उन वैरागी सज्जनोंको साथ लेकर आप तिब्बतकी ओर गमन कर गये। इधर चौरङ्गिनाथजी नीचे प्रान्तोंमें उतरकर पर्यटन करने लगे। आप संसारानल सन्तप्त हृदय मुमुक्षु मनुष्योंकी गवेषणा करते२ कुछ दिनके अनन्तर रोहतासगढ (आधुनिक काल प्रसिद्ध रोहतक) प्रान्तमें पहुँचे। यहां एक गङ्गदत्त नामका नैष्ठिक ब्राह्मण आपकी शरणमें आया।

उसने अनेकवार समझानेपर भी जब आपका शिष्यत्व ग्रहण करना ही समुचित कार्य समझा तब तो आपने उसको सादर शरण दी, और उसको गङ्गदत्तसे गङ्गनाथ बनानेके लिये किसी मनोरञ्जक सर्व क्रिया अनुकूल स्थलकी अन्वेषणामें आप दत्तचित्त हुए। सौभाग्य तादृश स्थल भी आपको इसी प्रान्तमें उपलब्ध हो गया। जोकि प्रणष्ट रोहतास-गढसे पांच कोश और आधुनिक काल निवसित रोहतकसे सात कोशकी दूरीपर उत्तरीय दिशामें अभीतक विद्यमान है। यह वन वडा ही रमणीय और अनेक वन्य पशु पक्षियोंसे सम्पूरित था। इसके मध्यमें एक तालाव भी था जोकि वार्षिक जलको धारण कर उसके द्वारा समस्त वन निवासी पशु पक्षियोंकी तृषा शान्त करता था। ठीक इसी वनस्थ इस तालावके पूर्वीय प्रदेशमें आपने अपना आसन स्थिरकर प्रिय गङ्गदत्त महाशयको योग सोपानों पर चढाना आरम्भ किया। अधिक क्या आपने कुछ ही दिनमें उसको स्व समान पूर्ण योग वित् बना दिया। और सूचित कर दिया कि यदि हमारे समीप रहनेकी इच्छा होतो रह सकते हो नही तो हमने ज्ञानात्मक प्रकाश दीपक तुम्हारे हस्तमें प्रदान कर ही दिया है। तुम स्वयं इसके प्रकाशमें रहकर अन्य मनुष्योंको प्रकाश निवासी बनाते हुए श्री महादेवजीकी आज्ञाका पालन करो। जिससे तुम्हारे साथ होने वाला मेरा प्रयत्न सफल हो और तुम अपने उत्तरदायित्वसे मुक्त हो सको। गङ्गनाथजीने कहा कि स्वामिन्! प्रत्येक मनुष्यको अपने २ उत्तरदायित्वसे मुक्त होना अपना प्राथमिक कार्य समझना चाहिये। और ऐसा ही करना मुझे भी समुचित है। तथापि मेरी आन्तरिक यह भावना है कि मै कुछ दिन आपकी ही चरणच्छायामें निवास करू। एवं प्रत्युपकारार्थ आपकी सेवा कर प्रथम आपके साधारण ऋणसे अनृण हो जाऊं। आपने प्रिय शिष्यकी यह प्रार्थना अङ्गीकार कर ली और दोनों महानुभाव सानन्द समय व्यतीत करने लगे, यद्यपि शिष्यके योगक्रिया कुशल बना देनेके अनन्तर आपका यहा रहनेका कोई खास कार्य नहीं था तथापि यह स्थल आपके रुचिकर होनेके साथ २ इतना अनुकूल था कि कुछ दिनके लिये और भी यहीं रहना आपने उचित समझा। अवतक पारितिक ग्रामोंके लोगोंको आपके स्वभाव एवं शक्तिशालिताका अच्छा परिचय मिल चुका था। वे लोग दूधादि पेय और खाद्य पदार्थोंसे आपकी यथेष्ट श्रद्धेय सेवा करते थे। जिसके प्रत्युपकारार्थ आप भी उनको केवल शुष्क आशीर्वाद देकर ही सन्तोषित न करते थे। प्रत्युत अनेक आध्यात्मिक आधिभौतिक व्याधियोंसे विमुक्त कर अनन्त सुख पहुँचाते थे। परं शोकका विषय है कि संसार

* यह यही तालाव है जो खिडवाली ग्रामसे आधकोश दक्षिण दिशामें विराजमान और देवबाला जोहड नामसे प्रसिद्ध है। इसपर आपकी धूनि है जिसके पूजनार्थ माघ चतुर्दशीको साधारण मेळा लगता है। देखते हैं समयका परिवर्तन साधारण भी रहने देता है कि

व्याधियोंका अन्त नहीं। यही कारण हुआ एक दो आदि मनुष्य प्रतिदिन उपस्थित हो आपकी गुहाका द्वार खटखटाने लगे। फल यह हुआ कि आपकी प्रत्याहिक निर्विघ्न ध्यानचर्य्या विघ्नित होने लगी। यह देख आपने आसपासके ग्रामोंमें आज्ञा प्रचारित कर दी कि कोई भी मनुष्य हो उसे हमारा साक्षात् हो वा न हो अपनी व्याधिके निवारणार्थ यदि वह हमारी कृपाका पात्र बनना चाहे तो हमारे तालावकी उचित पारिमाणिक मिट्टी निकाल जाय। ऐसा करनेसे उसकी शारीरिक व्याधि अवश्य शान्त हो जाया करेगी। इसके अतिरिक्त उक्त लाभके लिये किसीको हमारा साक्षात् करके ही मौखिक वाणी द्वारा हार्दिक आशीर्वाद ग्रहण करना हो तो बार्षिक माघ मासकी चतुर्दशीको उपस्थित हो वैसा कर सकेगा। उस दिन हम अपनी समाधिको स्थगित कर उसकी सम्भवित अभिलाषा पूर्ण करेंगे। आपकी यह आज्ञा शीघ्र ग्रामोंमें प्रसृत हो गई। किसी २ के अतिरिक्त सब लोगोंका आना बन्ध हो गया। परन्तु निर्दिष्ट दिनके उपलक्ष्यमें आपकी जनहितैषितापर मुग्ध हुए क्या दुःखी और क्या सुखी अधिक लोग आपके दर्शन करनेके लिये अधीर हो उठे। अतएव विविध प्रकारकी पूजाभेठ समर्पित करनेवाले आगन्तुक लोग आज मेला शब्दसे वाच्य हुए। यथाशक्ति आनीत पूजा सामग्रीसे आपको सत्कृत करनेपर भी ये लोग आपकी बार २ हार्दिक प्रणाम कर अपनी असाधारण श्रद्धा प्रकट करते थे। तथा आपका शुभाशीर्वाद ग्रहण करनेके अनन्तर आपके तालावकी मिट्टी निकालते और वाञ्छित फल प्राप्त करते हुए सानन्द वापिस लौट जाते थे। इस प्रकार सांसारिक लोगोंका दुःख निवारण करते और अपना आगमिक मार्ग स्वच्छ करते हुए आपके कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। अर्थात् विक्रम सम्वत् १५१ से लेकर २७० तक आपने यहां निवास किया। इसके अनन्तर आप देशान्तर पर्यटनके लिये यहांसे प्रस्थानित हो गये। आजका विश्रामस्थान आपने उक्त रोहतासगढ नगरके तीन कोश पूर्व दिशामें विराजमान स्थलको ही निश्चित किया। यह स्थल सात्विकता एवं रमणीयतामें पूर्वोक्तकी समता रखता हुआ भी उतना अनुकूल नहीं था। कारण कि रोहतासगढ और इन्द्र प्रस्थ (दिल्ली) से सम्बन्ध रखनेवाला एक विस्तृत मार्ग इससे कुछ भी दूर नहीं था। इसमें प्रतिदिन अनेक पान्थ लोग आते जाते थे। जिनकी विविध शब्द ध्वनि इस स्थलको एकान्त उपाधि नहीं धारण करने देती थी। तथापि आपने इस जगह भी कुछ दिन निवास करना निश्चित किया। एक दिन सायंकाल होनेपर जब कि, आप अग्नि चेतन कर धूप ध्यान द्वारा भगवान् आदिनाथजीकी तथा स्वकीय गुरुश्रीनाथजीकी बन्दना कर रहे थे, ठीक इसी अवसरपर अनेक बैलसमूहका अधिपति एक व्यापारी (बणजारा) इस मार्गसे आ निकला। जो कि यमुनापारसे शर्कर खरीद कर आगे मारुस्थलीय प्रान्तोंमें वेचनेके लिये

जा रहा था । वह जब आपके सम्मुखीन मार्गसे गमन कर रहा था तब उसकी दृष्टि सहसा आपकी ओर पडी । उसने तत्काल ही किसी आवश्यकीय प्रयोजनार्थ अग्निलानेके लिये अपने एक भृत्यको इधर भेजा । वह शीघ्र आपके समीप आया । और अभिवादन पूर्वक उसने अग्नि देनेके लिये-आपको सूचित किया । आप अग्नि प्रदान करते २ उससे पूछ उठे कि आपलोग क्या ले रहे हैं और कहां जाते हैं । उसने सोचा कि मैं यथार्थ बात खाण्ड बतलाऊंगा तो सम्भव है महात्माजी मांग बैठेंगे जिससे बड़ा झञ्झट उपस्थित होगा । इस लिये मैं खारी बतला दूं तो सब झगड़ा तय हो जायेगा । ठीक इसी मन्तव्यके अनुकूल उसने उत्तर दिया कि महाराज! हमलोग इधरसे लवण खरीद कर लाये हैं । आगे जहां कुछ लाभपर बिकेगा बेच कर वापिस लौटेंगे । यह सुन आपने ठीक है यह कह कर उसको विदा किया । और आपने ध्यानावस्थित हो अपने आन्तरिक चक्षुसे उनकी वाणिज्य सामग्रीकी अवलोकना की । इससे आपको मालूम हुआ कि उस मनुष्यने याचनाभयसे मिथ्याभाषण किया है जो शर्करा होनेपर भी उसको लवण बतला डाला है । खैर लवण बतलाया है तो लवण ही सही, आप यह वचन दे कर अपने कार्यमें दत्तचित्त हुए । उधर वे रोहतासगढमें पहुँचे । और रात्रीको विश्राम कर प्रातः काल होते ही कुछ विक्रय क्रयार्थ जब उन्होंने गूँण खोली तबतो उन्होंमें लवण भरा दृष्टिगोचर हुआ । यह देखकर यूथाधिपतिका श्वास नींचेका नींचे और ऊपरका ऊपर रह गया । और ऐसा क्यों एवं किस कारणसे हुआ है इस बातकी अधिक गवेषणा करनेपर भी उसके कोई कारण सम्मुखीन नहीं हुआ । यद्यपि वह मनुष्य, जो नाथजीके सकाशसे अग्नि ले गया था, इस मामलेको समझ गया था । तथापि उसने स्वामीके भयसे-यह स्फुट नहीं किया । अन्ततः जब स्वामीने सबको अभय प्रदान कर यह कहा कि इस विषयमें किसीको कुछ ज्ञात हो तो बतला दे कारण जाननेपर सम्भवहै कोई उपाय दृष्टिगोचर हो जायेगा । जिससे सुदिन हुए तो हम इस हानिसे बच सकेंगे । तब उसने कहा कि स्वामिन्! कल मार्गमें आते समय आपने जहां मुझे अग्नि लानेको भेजा था वहां एक योगी विराजमान था । उसने अग्नि प्रदान करते हुए मेरेसे पूछा था कि क्या ले रहे हो, मैने यदि यह मांग बैठेगा तो मार्गमें कौन गूँण खोलता फिरेगा, यह सोचकर उसके आगे हम लवण भर रहे हैं, यह कहडाला था। यदि यही कुछ कारण हो तो हो अन्य हेतु इस विषयमें हमको कोई मालूम नहीं होता है । यह सुनते ही बणजारेको निश्चय हो गया कि निःसन्देह यही कारण है । तदनु अरे मूर्ख! सर्प सब जगह टेढा चलता है परं बम्बईमें तो नहीं, उसको यह कहकर वह उचित पूजा सामग्री ले अपने साथियोंके सहित वापिस लौटा । तथा चौरङ्गिनाथजीकी सेवामें उपस्थित हो उपायन समर्पण पूर्वक अपराध क्षमा करनेके लिये

विनम्र भावसे श्रद्धेय अनेक अभ्यर्थना करने लगा। यह देख आप शीघ्र प्रसन्न हो गये। एवं कह उठे कि इस बातका कोई शोक न करो। तुम जाओ और देखो वह खाण्ड ही हुई मिलेगी। और बहुत लाभसे बिकेगी। यह सुन कर वे हार्दिक प्रणाम कर अपने विश्रामपर आये। और उन्होंने जब गूँण खोलकर देखी तो तादवस्थ्य शर्करा मिली। तथा जहांतहां बेचनेपर नाथजीके आशीर्वादानुसार अधिक लाभसे ही बिकी। नाथजीकी इस भयानक एवं रोचक लीलाका बणजारेके चित्तपर बडा ही प्रभाव पड़ा। जिससे वह प्रत्युपकार करनेके लिये अधीर हो उठा। अधिक क्या वह अपने संघके सहित फिर वापिस लौटा। और आपके एक दो बार नहीं २ करनेपर भी उसने इस बातका स्मारक आपका मन्दिर[1] तथा एक दूसरा मकान निर्मापित कराया। विक्रम सम्वत् २८५ तथा शालिवाहन सम्वत् १५० में बड़े समारोहसे इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा की गई। यह प्रतिष्ठा माघ मासकी चतुर्दशीको ही हुई थी। अतएव उक्तस्थलकी तरह आजसे यहां[2] भी आपका वार्षिक मेला प्रचलित हुआ। जो शिथिल अवस्थामें परिणत हुआ आजतक भी उस पवित्र दिवसका स्मारक बना हुआ है। (अस्तु) तदनन्तर कुछ ही दिन निवास कर पूर्व निश्चयके अनुसार आप दक्षिण देशमें भ्रमण करनेके लिये यहांसे प्रस्थानित हुए।

इति श्रीचौरङ्गिनाथ भ्रमण वर्णन नामक ४६ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

---

१ यह मन्दिर उन्हीं उतनी लम्बी-चौडी ईंटोंका बना हुआ है जो आजतक समीपस्थ प्रणष्ट नगर-खोकरा कोटसे निकलती हैं। इससे सम्भव है यह नगर इस मन्दिर स्थापनासे पहले ही नष्ट हो गया था। इसीसे ईंट निकालकर यह मन्दिर बनाया गया मालूम होता है। दूसरी बात यह भी है कि आप निर्जन वन देखकर यहां विश्रामित हुए थे। यदि आर्ध कोशपर ही यह नगर आबाद होता तो इस बनका निर्जन होना सम्भव नहीं हो सकता था।

२ यह वही जगह है जहां आज कल प्रसिद्ध बोहरकी गद्दी योगाश्रम नामक स्थान विराजमान है। इसकी नींव पूज्यपाद योगेन्द्र श्रीमस्तनाथजीने ही डाली थी। जो चौरङ्गिनाथजीसे लगभग १५२५ वैक्रमिक सम्वत्के बाद यहां प्रतिष्ठित हुए थे। इसीसे चौरङ्गिनाथजीके पुरातन मेलेका तिरस्कार हो गया है।

॥ अध्याय ४७ ॥

पाठक महाभाग! क्षमा कीजिये मैं सिंहावलोकन न्यायसे एकवार फिर आपका ध्यान उक्त अध्यायोंकी ओर आकर्षित करता हूं। आप कृपया कालीकोट (कलकत्ते) वाले वृत्तान्तपर दृष्टिपात करनेका प्रयास करें। ऐसा करनेसे आप एकवार फिर इस बातसे परिचित हो जायेंगे कि श्रीनाथजी स्वयं दाक्षिणात्य प्रान्तोंको लक्षित कर समीपस्थ योगियोंको स्वच्छन्दतासे विचरणकी आज्ञा प्रदान करनेके अनन्तर जब वहांसे गमन कर गये थे, तब वे योगी भी अपने २ अभीष्ट स्थानके उद्देशसे प्रस्थानित हुए पर्यटन करने लगे थे। उनमें यद्यपि अन्य योगी एकाकी भ्रमण द्वारा योगोपदेश कर अपने कर्तव्य पालनमें अग्रसर हुए थे, तथापि सूर्यनाथ और पवननाथ ये दोनों महानुभाव एकत्रित रहते हुए ही इस कार्यमें दत्तचित्त हुए। आप गुरुजीसे पृथक् होनेके अनन्तर सर्प गतिसे कतिपय वर्ष पर्यन्त इधर उधरके अनेक प्रान्तोंमें भ्रमण कर तीर्थराज प्रयाग प्रान्तमें आये। यहाँ आपके गुरुभाई भर्तृनाथजी कुछ दिनसे गति स्थगित कर रहे थे। इनसे आपका अपूर्व प्रैतिक साक्षात्कार हुआ। और कुछ दिनके लिये आप भी यहां विश्रामित हो गये। आप लोगोंका कईएक दिन योगप्रचार विषयक पारस्परिक परामर्श होता रहा। अन्तिम दिन जबकि दोनों महानुभाव प्रस्थानाभिमुख हुए तब भर्तृनाथजीने पूछा कि आप लोगोंका अब किस ओर जानेका विचार है। उन्होंने उत्तर दिया कि हम उसी पाञ्चाल देशीय पहाड़ीपर जायेंगे जहां हमको योगदीक्षा प्राप्त हुई थी। क्योंकि कुछ वर्ष समाधिनिष्ठ होनेकी इच्छा है इस कार्यके लिये हमको वही स्थल विशेष रुचिकर है। सम्भव हो सकता है कि वहांतक के देशाटनमें कोई मुमुक्षु शरणागत

---

१ यह स्थान चिरनारगढ है। यहां भर्तृनाथजीकी धूनि आज तक विद्यमान है। जो प्रयागसे लगभग ५० कोशकी दूरीपर आधुनिक मिर्जापुर जिलेमें है।

हो जायेंगे तो उनकी दीक्षा प्रणालीके कारणसे इस कार्यमें कुछ कालका विलम्ब हो जायेगा। यदि ऐसा न हुआ तो बस वहां पहुँचनेकी ही देरी है हम शीघ्र उस अवस्थामें परिणत होनेवाले हैं। तदनु भर्तृनाथजीने कहा कि अच्छा आप चलिये। कोई मुमुक्षु हस्तगत हुआ तो हम भी कुछ दिनमें वहीं आते हैं। और यह भी सम्भव है आपलोगोंका भी पर्यटन निष्फल नहीं जायेगा अवश्य कोई न कोई महोपरामी महाभाग उपस्थित हो आपलोगोंको अपना उत्तरदायित्व हल करनेका अवसर देगा। जिससे आप मुझे वहां इसी अवस्थामें उपलब्ध हो सकेंगे। यह सुन उन्होंने, खैर जैसी श्रीनाथजीकी इच्छा होगी वैसी दृष्टिगोचर हो ही जायेगी हमारा तो दोनों बातोंसे कल्याण है, यह कहकर आदेश २ शब्दोच्चारणके साथ शिरनमन पूर्वक वहांसे प्रस्थान किया। और भवसागर तरणानुकूल योगात्मक नौकासे परिचित होनेके लिये जनोंको प्रेरसाहित करते हुए आप कुछ दिनमें लक्षित स्थान आधुनिक प्रख्यात गोरक्ष टीला पहाड़पर पहुँचे। आपका यह भ्रमण भर्तृनाथजीकी अमोघ सम्भावनानुसार चार परम वैरागी सज्जनोंने सार्थक किया। अतएव आप अपना उद्देशित सामाधिक कार्य स्थगित कर प्रथम दोदोको ग्रहण करनेके साथ २ ही शिष्योंको संसार समुद्रोल्लङ्घनक्षम योगरूप नौकाका जटिलजालावरुद्ध मर्मस्थान दर्शाने लगे। आपलोगोंके इस कृत्यमें प्रवृत्त होनेसे कुछ ही दिन पश्चात् उधरसे भर्तृनाथजी भी असंख्य युगसे सांसारिक अगाध पङ्कपतित हुए स्वोद्धारेच्छु एक महानुभावको स्वीयभुजावलम्बित कर वहीं आ उपस्थित हुए। और दो चार दिनके विश्रामानन्तर उनकी तरह आप भी अपने शिष्यको गम्यस्थानका मार्ग प्रदर्शित करनेमें तत्पर हुए। यह महानुभाव जैसा आप चाहते थे ठीक वैसा ही समाहितचित्त उत्तमाधिकारी निकला। अतएव आपने यमनियमादिकी उपेक्षा कर केवल अभ्यास वैराग्यसे ही उसको योगवित् बनानेके अभिप्रायसे प्रथम शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्तिके लिये षट्कर्मोंमें निपुण किया। तदनन्तर कुछ दिनमें उक्त दो उपायोंसे ही जब वह सामाधिक दशामें विलीन होनेका ठीक २ प्रकार समझ गया तब आपने उसके लिये अनपेक्षित भी मन्द मध्यमाधिकारीके उपकारक उपायोंसे उसको विज्ञापित करना आरम्भ किया। और बतलाया कि अये महाभाग! यदि मन्द अधिकारी कोई पुरुष तुमसे योगमार्गमें प्रवृत्ति करानेका विशेष आग्रह करै तो तुम उसको इन षट् कर्मों और यम नियमादि अष्ट अङ्गोंमें पूर्ण कुशल करके ही वैसा कर सकोगे। अतः ऐसे पुरुष के लिये अष्टाङ्गोंकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इस बात पर दृढ विश्वास न रखने वालेको कुछ दिनके विलम्बसे अकृतकार्य होकर फिर इसी क्रमपर आना पडेगा। इसके अतिरिक्त यदि कोई मध्यमाधिकारी पुरुष योगवित् बनने के अभिप्रायसे तुम्हारे शरणागत हो तो उसको कृतकृत्य करनेके लिये तुम्हें केवल अनशनादि उचित व्रत, तथा प्रणवजप और प्रणिधान इन तीन उपायोंसे ही कार्य लेकर

अन्य यमादिकी उपेक्षा करनी होगी । तदन्य सौभाग्य वश यदि उत्तमाधिकारी कोई सज्जन तुम्हारा आश्रय ग्रहण करै तो उसको अभीष्ट सिद्धिप्रद प्रकारको तुमने स्वय ही अनुष्ठित किया है । उसका इसीसे कार्य निर्वाहित होजानेसे मन्द मध्यमाधिकारीके प्रकारको केवल तुम्हरि तरह समझ लेना ही उचित होगा । इस तरह प्रयत्नाप्रयत्न साध्य प्रकार त्रयका ज्ञान प्राप्त कर वह अत्यन्त आनन्दित हुआ । तथा धन्य गुरो ! २ शब्दोच्चारण करता हुआ गुरुजीके चरण युगलमें बार २ मस्तक लगाने लगा । एवं गुरुजीकी असाधारण प्रीति देखकर गदगद हो कहने लगा कि स्वामिन् ! सम्भव है होजायेगी परं इस समय मेरेपास ऐसी कोई वस्तु नहीं जिससे मैं आपके महत्तर उपकारका बदला चुका सकूं । यह सुन भर्तृनाथजीने कहा कि अयेभद्र ! यह बात सदा याद रखनी चाहिये कि शिष्यके लिये यदि गुरूपकारका बदला चुकाना है तो इससे उत्तम और कुछ नहीं कि वह गुरूपदेशको अबन्ध्य बनादे । ऐसा न करने वाला मनुष्य अन्य शारीरिक सेवादि सहस्र कृत्योंसे भी यथार्थ रूपमें गुरुका बदला नहीं चुका सकता हैं । और न आभ्यन्तरिक भावसे गुरु उसके ऊपर प्रसन्न ही होता है । इस बातमें प्रमाण अन्वेषणाके लिये कहीं दूरजानेकी आवश्यकता नहीं है । प्रत्येक मनुष्यमें घटा लीजिये कोई भी मनुष्य किसीका परममित्र वा सेवक बना हो और अनेक प्रकारकी चिकनी चोपडी बातें करता हो एवं उसमें इतना स्नेह रखता हो कि उसके वियोगमें एक घडी भी धैर्य न धर सकता हो । इतना होनेपर भी यदि वह अपरामित्रके वा सेव्यके द्वारा निर्दिष्ट सदुपदेशमें आस्था न रखता हो तो वे उसके विषयमें नासिका सङ्कुचित करने लग जाते हैं । अतएव इससे यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि कोई भी मनुष्य किसी दूसरेके उपकारपर प्रत्युपकार करना चाहता हो वा उसको प्रसन्न करना चाहता हो तो वह उसके गृहीत पथपर सविश्वास पदार्पण करै । ठीक इसीके अनुकूल जब तुम अपने प्रबल पांच शत्रुओंके साथ युद्ध करनेके उद्देशसे हमारे अवलम्बित मार्गपर आ डटे हो बल्कि आ डटे ही नहीं तुमने युद्धोपयोगी सामग्री भी सङ्गृहीत करली हैं तब यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि हमारा बदला चुकानेके लिये किसी और बातकी आवश्यकता है । किन्तु तुमने हमारे प्रयुक्तोपदेशको सविश्वास और शीघ्रताके साथ जो ग्रहण किया है हमने इसीको सब कुछ प्रत्युपकार समझ लिया है । रह गई उपदेश चरितार्थताकी बात, उसमें हम कुछ सन्देह ही नहीं करते हैं । क्योंकि हमारे उपदेशमें कौशल्य प्राप्त करना कभी निष्फल नहीं हो सकता है । आपके इस कथनसे शिष्य महानुभावके हृदयागारमें आपके विषयकी भक्ति श्रद्धाका जो प्रवाह प्रचलित हुआ उसका परिमाण लिखना लेखनीकी शक्तिसे बहिर है । वह प्रथम तो प्रत्येक क्रिया प्रदानमें प्रदर्शित होनेवाली आपकी असाधारण चतुरता और प्रीतिपर ही मुग्ध हो गया था । दूसरे आपको प्रत्युपकारार्थ निरीह समझ कर उसके आन्तरिक स्थानमें

जो धारणा सञ्चरित हुई वह सर्वथा अकथनीया थी। ठीक उसीका उद्घाटन करनेके अभिप्रायसे उसने कहा कि स्वामिन्! यों तो ईश्वरीय वास्तविक इच्छाका मर्मजानना बडाही दुष्कर है नहीं कह सकते उसकी अनुकूलताके अनुसार कुछ कालमें क्यासे क्या हो जाय तथापि स्वकीय चित्तकी भावना आपके अभिमुख प्रस्फुट करता हूं मैं प्राणान्त पर्यन्त भी आपके पुण्योपदेशसे संस्कृत हुए अपने शरीरको कलङ्कित करनेवाली प्रमत्ता धारणा नहीं करूंगा। तथा भगवान् न करे मैं आहङ्कारिक वाक्य कह डालूं परं इतना अवश्य कहूंगा कि मेरी उचित कर्तव्य पालनाको देखकर आप अपने चित्तमें स्वयं यह निश्चय करनेको बाध्य होंगे कि अवश्व हमने पात्रमें ही वस्त्वारोप किया है। यह सुनकर भर्तृनाथजी अत्यन्त प्रसन्न हुए कहने लगे हां यह अवश्य है किसी भी देशकी उन्नति अवनतिको उसका वाणिज्य सूचित कर सकता है। अर्थात् इसका मतलब यह हुआ कि कोई भी मनुष्य किसी देशके व्यापारकी उन्नति देखकर भ्रमण किये विना ही उस देशकी उन्नतिका निश्चय करलेता है। ठीक इसी प्रकार हमने तुम्हारे सादर क्रिया ग्रहणतामें प्रदर्शित होनेवाले श्रद्धेय व्यापारसे यह प्रथम ही निश्चित कर लिया है कि हमारा जितना उपदेश तुम्होरेमें प्रविष्ट हो चुका है वह किसी प्रकार भी किम्प्रयोजन नहीं हो सकता है। प्रत्युत भगवान् आदिनाथजी सहायक हो जायें तो तुम्हें इसके द्वारा जीवतासे विरहित हो जानेका अवसर प्राप्त हो सकेगा। तदनन्तर शिष्यको पूर्ण अधिकारी प्रमाणित कर आपने उसको मान्त्रिक आस्त्रिक विद्याओंमें असाधारण कुशलता प्राप्त कराना आरम्भ किया। उसी प्रकार कुछ दिन और सानन्द व्यतीत होने लगे। पाठक! सम्भव है यह बात आपसे अनवगत नहीं होगी कि संसारमें जितने मनुष्य देखे जाते हैं पूर्वजन्माचरित अदृष्टाख्य कर्मकी पोटली उन सबके साथ विद्यमान रहती है। वह भी यह स्मरण नहीं रखना कि जैसे प्रत्येक व्यक्तिमें जीवात्मा समरस है वैसी ही समता रखनेवाली होगी। प्रत्युत समस्त व्यक्ति जितने भेदमें परिणत हुई हैं उतने ही भेदान्वित वे कर्म पोटली भी समझनी चाहियें। यही कारण है उनके अनुकूल विविध कार्योंमें अवतरित व्यक्ति विविध प्रकारसे ही कृताकृत कार्य देखी जाती हैं। कोई भी मनुष्य किसी कार्यमें एक दिन प्रवृत्त रहता हुआ निपुणता प्राप्त करता है तो कोई मनुष्य अर्ध दिवसमें ही उसका मर्म समझ जाता है। कोई एक तीसरा ऐसा अनार्थ मिलता है वह उसी कार्यमें कुशल होनेकी अभिलाषासे दो वा तीन दिन तक खर्च कर डालता है। ठीक यही वृत्त यहां भी उपस्थित हुआ। भर्तृनाथजीका शिष्य उन्हीं क्रियाओंमें अन्य योगियोंसे पीछे प्रवृत्त होनेपर भी पहले उत्तीर्ण हुआ। प्रिय शिष्यकी यह विलक्षण प्रतिभा देखकर भर्तृनाथजीके आनन्दका ठिकाना न रहा। आप परम हर्षित हृदयसे अस्फुटतया उसकी प्रशंसा करने लगे। और उसको दैनिक समाधिका

अवलम्बन करनेकी आज्ञा प्रदान कर गुरु भाइयोंके परामर्शानुसार कुछ कालके लिये स्वयं भी समाधि निष्ठ हो गये । इधर कुछ ही दिनके अनन्तर सूर्यनाथजी तथा पवननाथजीने भी अपने २ शिष्योंको तादृश बना दिया । तथा स्वकीय पूर्व चिन्तनके अनुकूल शिष्योंको अभ्यास परिपक्व करते रहनेका आदेश दे कर ये भी उसी अवस्थामें अवतरित हुए । भगवान् आदिनाथजीकी सानुकूल अपरिमित कृपाके प्रतापसे आप लोगोंका यह काल निर्विघ्नताके साथ अतिक्रमित हुआ । भर्तृनाथजीके समाधिका उद्घाटन कर बैठनेपर भी सूर्यनाथादिका अभी कुछ ही समय अवशिष्ट था । ऐसी ही दशामें आपने देशान्तर भ्रमणार्थ गमन करनेका सङ्कल्प किया । एवं इस विषयमें अपने द्वय शिष्यका अभिमत लेनेके लिये उससे कहा कि भद्र ! हम अन्यत्र जाना चाहते हैं । बोलो तुम्हारी क्या इच्छा है हमारे साथ चलना है अथवा यहीं रखना है वा अन्यत्र जाना है । उसने कहा कि स्वामिन् ! यह आपकी आज्ञापर ही अवलम्बित है । यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि जो अनुष्ठातव्य कृत्य है वह आपसे अनवगत होगा ; प्रत्युत तीनोंकी ग्राह्याग्राह्यता आपके अभिमुख विद्यमान हैं । जिस किसीका भी आदेश प्रदान करेंगे । मुझे वही शिरोधार्य स्वीकृत होगी ! इसपर भा यहतो स्पष्ट ही है कि अब यहां निवसित रहनेका मेरा कोई आवश्यकीय प्रयोजन दृष्टिगोचर नहीं हैं । अवशिष्ट रह गई दो बात उनमें जिस ओर भी आप मुझे प्रवृत्त करेंगे मानो मुझे अपना कर्तव्य पालन करनेका अवसर प्रदान करेंगे । सौभाग्य यदि आप स्वकीय चरण-च्छायामें रक्खेंगे तो मैं आपकी सेवा कर आपविषयक उत्तरदायित्वसे मुक्त होनेका लाभ उठाऊं गा । इसके अतिरिक्त अन्यत्र योग प्रचारार्थ प्रेषित करेंगे तो मैं उसमें प्रयत्न शील हो कर श्री महादेवजीके उतरदायित्वसे विमुक्त हो सकूंगा । यह सुन मन्द मुस्कराकर आपने कहा कि अच्छा दो चार दिनके अन्तर ही यहांसे चलेंगे । तुमको कुछ दिन पर्यन्त हमारे साथ ही रहना होगा । उसने गुरुजीके इस निश्चयात्मक आदेशको हस्ताञ्जलि बद्ध हुए शिरनमन द्वारा अङ्गीकृत किया । तथा अपने अपरिमित आनन्दान्वित हृदयागारमें अनेक भावनाओंका उद्गार करता हुआ वह प्रास्थानिक पवित्र दिवसकी प्रतिपालना करने लगा । अर्थात् वह अपने विषयमें मैं कुछ वर्ष पहले क्या था और क्या बन गया, यह विचार कर हर्ष शोक दोनोंका ही उद्घाटन करने लगा। उसने यद्यपि, मैं असंख्य जन्मान्तरोंसे इस सांसारिक दुःखत्रयसे निरस्कृत होता हुआ चला आ रहा था सौभाग्य अबके इससे विमुक्ति पानेके लक्षण अभिमुख हुए, यह सोचकर तो महा हर्ष प्रकट किया । एवं इसी बातका अधिकार लेकर वह भगवान् आदिनाथजीसे आरम्भ कर प्रधान योगाचार्योंकी विनम्र अभ्यर्थना करता २ इस शिलोच्चय स्थलकी भी प्रशंसा करने लगा । जड वस्तुकी स्तुति करना समुचित नहीं है यह समझता

हुआ भी उसका परम हर्ष हर्षित हृदय प्रेरणा किये विना ही यह कहनेको बाध्य हुआ कि धन्य है हे अद्रे ! तुम्हें धन्य है मेरे इतना महत्व और पवित्रत्व प्राप्त करनेके समय मुझे तुमने अपने ऊपर धारण किया । जिससे अनुष्ठित कृत्यके लिये जैसे सौख्यप्रद पवित्र स्थानिक निवासकी आवश्यकता होती है मुझे वैसा ही सर्वथानुकूल निवास प्राप्त हो सका। इसका फल यह हुआ कि मैं अपने ध्येयकी प्राप्तिके साधक कार्य वृन्दसे उत्तीर्ण हो गया । इस उपकारके लिये मैं तुम्हें फिर धन्यवाद देता हूं तुम धन्य हो ३ । परं क्षमा कीजिये अब मैं तुमसे वियोगित होने वाला हूं । तथापि वह इस क्षणके अनन्तर यह स्मरण कर, शोक ग्रस्त हुआ कि अहो राईकी ओटमें पर्वत छिपा हुआ है, यह कहने वाले किञ्चित् भी भूल नहीं करते हैं । यद्यपि अज्ञानाच्छादित हृदय सांसारिक मूढ लोग इस कहावतका ज्योंका त्यों अर्थ लगाकर इसको तो सोलों आने झूठ और इसके कथन करने वालेको असत्य भाषी बतला डालते हैं । तथापि जो मनुष्य कभी अनुकूलादृष्ट वशात् अपने हृदयको अज्ञानाच्छादनसे लब्धावकाश कर देखता है तो उसको इस बातमें किञ्चित् भी असत्यता नहीं दीख पड़ती है । कारणकि अज्ञानान्धकारसे विरहित स्वच्छ हृदयसे उसको इस कहावतका मर्म स्पष्टतया प्रतीत होने लगता है । और वह निश्चय करता है कि इस कहावतमें राईका अर्थ सत्सङ्गति निष्ट किञ्चित् दुःख है । एवं पर्वतका अर्थ असंख्य कल्पोंमें होने वाला दुःख है । जो महोच्छ्रायमान मेरु पर्वतकी समानता रखता है । मेरु पर्वतकी अपेक्षा राई जितने परिमाणमें वर्तमान है इस दुःख ढेरकी अपेक्षा वह सत्सङ्गति निष्ट दुःख उतने ही परिमाणसे युक्त कहा जा सकता है । उसी राईकी समानता रखने वाले सत्सङ्गति निष्ट दुःखकी आडमें यह पर्वतकी समानता रखने वाला असंख्य काल्पिक दुःख ढेर छिपा हुआ है । कोई भी महाभाग मनुष्य यदि इस बातपर पूर्ण विश्वास ले आवे और योगवित् सत्पुरुषकी सङ्गति निष्ट योगक्रियाविषयक राई पारिमाणिक उस दुःखसे पार हो जाय तो इस कल्पान्तर्गत पर्वत पारिमाणिक दुःखसे उच्छ्वसित होना उसको कुछ भी काठिन नहीं है। इसीका नाम है राईकी ओटमें पर्वतका छिपना। ठीक इसी बातको साभिप्राय जाननेके लिये आज भगवान् श्रीमहादेवजीने मुझे अवसर प्राप्त किया । जिसमें यथार्थ अनुभव कर आज मैं स्वयं उसका प्रमाणभूत हो सका । अहो क्या ही आश्चर्यकी बात है इस अज्ञानमें कितनी प्रबल और कैसी विचित्र शक्ति है । सुगमसे सुगम उपायके समीप होनेपर भी वह मनुष्योंको उसका साक्षात् न होने दे कर कल्पों पर्यन्त महा दुःखमें डाले रहता है । हे मनुष्यो ! यदि तुम मेरी आवाजको सुनते हो तो राईकी ओटमें पर्वत छिपा है निःसन्देह छिपा है । इसको किञ्चित् भी झूठ नहीं समझो । तुम्हारे भलेके लिये मैं शुद्ध भावसे तुम्हें चेतावनी देता हूं कि यह बात सोलों आने सत्य है । अतएव तुम जहां बहुत कालसे इस

मेरु पर्वत समान दुःखका अनुभव करते आये और कर रहे हो वहां कृपा कर जिस राई समान छोटे दुःखका मैंने अनुभव किया है उसका अनुभव करनेके लिये तुम भी कटिबद्ध हो जाओ। फिर देखोगे और निश्चय करोगे वह महा दुःखात्मक पर्वत राईकी आडमें छिपा हुआ था कि नहीं। यदि यह कहो कि चेतावनी देने वाला स्वयं दुःखत्रयसे विमुक्त नहीं हुआ है किन्तु अभी तो उसने मुक्तिके साधन ही प्राप्त किये हैं। फिर वह महा दुःखसे पार होनेकी जो हमको सूचना देता है यह सङ्गत कैसे हो सकती है। तो इस कथनको मै हृदयसे स्वीकृत करूंगा। एवं तुम्हारी पुष्टिके लिये कह भी दूंगा कि अवश्य मैं अभी असाधारण दुःखसे मुक्त नहीं हुआ हूं। परं साथमें यह कहे विना नहीं रह सकता कि यहांतक पहुँचनेपर मैंने जिन अनेक सांसारिक साधारण दुःखोंको उल्लङ्घित किया है उनके अभावसे मुझे इतना आनन्द हो गया है जिससे मैं सहजमें ही यह निश्चय कर सकता हूं कि अब वह स्थान दूर नहीं जिसमें प्रविष्ट हो दुःखत्रयसे विरहित हो सकूंगा। इत्यादि अनेक उपस्थित सङ्कल्पोंमें विलीन होनेके अनन्तर उसने अपने गुरुभाई अन्य योगियोंको सूचित किया कि हमतो अभी एक दो दिनमें ही देशान्तर पर्यटनके लिये यहांसे प्रस्थान करने वाले हैं। अतः कृपादृष्टि रखना और पारस्परिक गोष्ठीमें प्रसङ्गवशसे कोई अनुचित शब्द निकल गया हो उसके विषयमें क्षमाप्रदान करना, सम्भव है पूज्यपादजियोंके जागरित होनेपर आपलोग भी देशान्तरके लिये शीघ्र गमन करेंगे। जिससे फिर कहीं न कहीं दर्शन लाभ होगा। उन्होंने कहा कि यह तो निश्चय ही है दो दिन आगे पीछे अपने कार्यमें अवतरित होनेके लिये हमको भी यहांसे प्रस्थानित होना ही पडेगा। क्योंकि प्रयोजनसे अतिरिक्त यहां निवास करनेका कोई विशेष महात्म्य नहीं है। परं यह है कि जबतक गुरुजी समाधि निष्ठ हैं तबतक यहां ठहरना ही उचित है। आशा है अवधि समीप होनेसे अब तो गुरुजी भी शीघ्र समाधिका उद्घाटन करने वाले हैं। अतएव आप कुछ ही दिन और यहीं ठहरें फिर साथ ही भ्रमणोन्मुख होवेंगे। कतिपय वर्षके सहवाससे हमलोग आपके प्रेमपाशसे आबद्ध हो गये हैं। यही कारण है परस्परमें अनेक उचित प्राकरणिक वार्तालाप करते कराते हम लोगोंका सौख्यप्रद समय व्यतीत हो रहा है। उसने कहा कि यह सब आप लोगोंकी कृपा है। मैंने जो आपके संसर्गसे लाभ उठाया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। मैं आपलोगोंके अपूर्व प्रैतिक व्यवहारपर हार्दिक धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता हूं। परं इस विषयमें तो क्षमा ही कीजिये। मैं अधिक दिन यहां ठहरनेके लिये समर्थ नहीं हूं। क्योंकि गुरुजी निश्चय कर चुके हैं कल वा परुत् दिन वे अवश्य प्रस्थानित होने वाले हैं। यह सुन उनमेंसे भावीके प्रेरित हुए एक योगीने सहसा यह शब्दोच्चारण किया कि आप यहां ठहरनेके लिये असमर्थ क्यों हैं। गुरुजी जायेंगे तो यह

तो नहीं कि इस स्थलको ही उठा ले जायेंगे। इधरसे इसका यह कहकर विश्राम लेना हुआ तो उधरसे वायु सेवनार्थ वहिर गये हुए भर्तृनाथजी दैवगत्या वहां आ निकले। यह देख वे शाङ्कितसे होकर प्रकरणान्तरकी वात करने लगे। परन्तु उनकी इस शङ्काका कारण शब्द आपसे अश्रुत न रहा। इतना होनेपर भी आपने उनके सम्मुख तो कुछ प्रस्ताव नहीं किया परं अपने चित्तमें यह दृढ निश्चय कर लिया कि इनको ऐसा ही करके दिखलाना उचित है। आखिर एक दो दिन वीते तीसरा दिन आनेको तैयार हुआ। आपने. अपने शिष्यको विज्ञापित कर दिया कि तुम अपने इसी आसनपर विराजमान रहना। हम एक ऐसा उपाय करेंगे जिससे केवल हमको ही चलना पडेगा। तुम विना ही पादक्रम किये हमारे साथ चल सकोगे। वह सत्य वचन यह कह कर गुरुजीकी आज्ञाके अनुसार स्थित रहा। उधर आपने गुरुप्रदत्त विचित्र विधाका अनुष्ठान किया। जिसके अमोघ प्रतापसे सूर्यनाथादिके आसनसे कुछ अन्तरपर जहां आपका आसन स्थित था उस जगहका पहाड फट कर पृथक् हो गया। यह देख प्रसन्न होते हुए आपने उसको वहांसे उठाकर कहीं अन्यत्र स्थापित[1] किया। पाठक इस चरित्रसे योगके महत्त्वका जो लोगोंके हृदयपर प्रभाव पडा उसका आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

इति श्रीभर्तृनाथाद्रि वहन वर्णन नामक ४७ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

१ समस्त योगी लोग, यह पहाड उसको स्वीकृत करते हैं जा आधुनिक शरगोधा जिलेमें सिद्ध करना नामसे प्रसिद्ध है, यहां योगियोंका एक माननीय स्थान भी है।

अध्येतृवर्ग ! आपको सूचित किया जाता है कि श्रीनाथजी कालीकोटसे गमन करनेके अनन्तर वि. सम्वत् ४०० तक दक्षिण भारतीय एवं उत्तरभारतीय प्रत्येक प्रान्तोंमें भ्रमण करते रहे। यद्यपि आपने इस दीर्घकालका कतिपय स्थलोंमें समाधिके द्वारा अन्यसर्वत्र योगोपदेशके द्वारा अति क्रमण किया है। और अधिकारी पुरुषोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये अनेक यथा सम्भवित चमत्कारोंका उद्घाटन किया है। तथापि ग्रन्थ वृद्धि भयसे मैं उन सबका व्यास न करता हुआ केवल समासतया मुख्य घटनाओंको ही आपके समक्ष कर देना समुचित समझता हूं। श्रीनाथजी देश २ और प्रान्त २ में अपने उद्देशका सम्यक्तया निरीक्षण कर आज बहुत दिनके बाद फिर उसी आधुनिक टीला प्रसिद्ध पहाडपर आरूढ हुए। यहां भी कुछ काल पर्यन्त फिर सामाधिक अवस्थाका अनुभव करनेके अनन्तर आप हिमालय पर्वतकी ओर अग्रसर हुए। जो त्रिविध दुःखाक्रमणहतपराक्रम सांसारिक पङ्कपतित निज जनोंको उद्धृत करनेके अभिप्रायसे अनेक विध विचित्र चरित्रोंका उद्धार करते हुए कुछ दिनमें ज्वालादेवीके स्थानपर पहुँचे। वहां देवीने प्रकट हो आपको साक्षात् दर्शन दिया। तथा कुशल वार्तादि विषयक गौष्ठिक प्रश्नोत्तरके अनन्तर उसने आपको भोजन करनेके लिये सूचित किया। आपने कहा कि इस बातके लिये तो क्षमा करनी होगी। हमको भोजनकी नहीं केवल आपके दर्शनकी ही क्षुधा थी सो निवृत्त हो गई। देवीने कहा कि खैर यह तो कुछ बात नहीं दर्शनकी क्षुधा दर्शनसे और भोजनकी क्षुधा तो भोजनसे ही निवारित होती है। यदि मेरी प्रार्थनाको अमोघ बनाना चाहें तो आप क्षुधाके

बिना भी थोडा बहुत ग्रहण कर ऐसा कर सकते हैं। परं आपके नासिका सङ्कुचित कर सहसा नाटनेसे मुझे और ही कुछ रहस्य प्रतीत होता है। अतएव आप कृपा कर यथार्थ वृत्तान्त प्रकट कर भोजनादानकी स्वाभाविक इच्छा नहीं होनेसे आप अनङ्गीकार करते हैं या अन्य कारणसे यदि कोई अन्य ही कारण। है तो मैं उसका भी ठीक प्रबन्ध कर अनुकूल व्यवस्था स्थापित कर सकती हू। आपने कहा कि रहस्य प्रतीत होनेपरभी आप पूछनेका आग्रह करती हैं तो हम स्फुट ही कर देते हैं। भोजन अस्वीकारका हेतु यह है कि हम लोग योगी हैं हमको आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकारका शुद्धतात्मक नियम प्रथम ही दृढतया धारण करना पडता है। ऐसी दशामें आपका भोजन जो, मांस मदिरासे विरहित नहीं है, हम ग्रहण करलें तो हमारी क्रमशः दोनों प्रकारकी शुद्धि जाती रहे। ऐसा होनेपर ज्यों २ हमारी कालचर्य्या यापित होती जायेगी त्यों २ हमको अपने अधःपतनका मुख देखना पडेगा। अतएव आपके इस भोजनको हम स्वयं ग्रहण न करते हुए यह चेतावनी देते हैं कि आपको भी ऐसे भक्ष्यके लिये अधिक लालायित नहीं होना चाहिये। खैर यह भी रहो आपका किया शुभाशुभ कृत्य हमारे गले नहीं पड सकता है परन्तु इतनी तो कृपा ही रखना फिर किसी योगीको ऐसे भोजन प्रदानके लिये आमन्त्रित नहीं करना। ऐसा हुआ तो समझलो आप हमारे शापकी पात्र बन जायेंगी जिससे आपकी यह संसार व्यापी प्रतिष्ठा जो आज हो रही है समस्त धूलिमें मिल जायेगी। रहगई अन्य प्रबन्ध करनेकी बात, यह यदि करना चाहें तो हमारी इच्छानुसार करना होगा। देवीने कहा कि योगिराजजी आप जानते ही हैं मैं ऐसे भोजनसे विशेष घृणा तो नहीं किया करती हूं परं आभ्यन्तरिक इच्छासे यह नहीं चाहती कि लोग मुझे ऐसे ही भक्ष्य प्रदान किया करें। किन्तु समयानुसार लोगोंकी बुद्धिका परिवर्तन होने लगा है जिससे वे कुछ तो मेरे बहानेसे और अधिक अपने जिव्हास्वादनके वशङ्गत होनेस बहुलतया इसी भक्ष्यको व्यवहृत करने लगे हैं। उनकी आन्तरिक मुझ विषयक श्रद्धा तो न्यून और इस भक्ष्य व्यवहारमें प्रवृत्ति अधिक देखकर मैं उनकी प्रार्थनापर ध्यान भी कुछ ऐसा ही देने लगी हूं। जिससे वे अपनी अभीष्ट सिद्धिसे हस्त धो बैठनेपर भी केवल इस भक्ष्यास्वादनसे ही आनन्द मना लेते हैं। इस प्रकार अपना परिश्रम निष्फल देखते हुए भी लोगोंमें जिव्हास्वादन लोलुपतासे कुछ ऐसी प्रथा प्रचलित हो गई है। खैर कुछ भी हो समयका प्रवाह अवरुद्ध होना अत्यन्त दुष्कर है। आप अपने विषयमें मुझे आज्ञापित करें भोजनके लिये कैसे प्रबन्धकी आवश्यकता है जिसको शीघ्र सम्पादित कर आपके अतिथि सत्कारसे अनृण हो कर कर्तव्य पालनामें उत्तीर्ण हो जाऊंगी। यह सुन श्रीनाथजीने कहा कि यदि यही बात है तो तुम्हारा अतिथि सत्कारतो पूर्ण हुआ जो कि हमने सहर्ष स्वीकृत किया। परं एक

काम करना चाहिये और वह यह है कि हमारी दालभात वा खिचडी वनानेकी अभिलाषा है जिसमें जल आपका और अन्न हमारा होगा। आप किसी पात्रमें जल चढाकर उसको जवतक हम भैक्ष्येयाअन्न लेकर आवें तवतक उवालदियें तैयार रखना। साथ ही इस वातका भी स्मरण रखना कि हमारा वापिस लौटना हमारी इच्छापर ही निर्भर रहेगा। अतएव इस विषयमें शीघ्र प्रतीक्षा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम कभी लौटें तवतक आपको इस वृत्तान्तका स्मारकरूप होकर तादवस्थ्य रहना होगा। भगवती ज्वालादेवीने आपकी यह आज्ञा सहर्ष स्वीकार की। और आपको भिक्षार्थ पर्यटन करनेके लिये यहांसे विदा किया। मेर श्रीपदभाक् पूज्य तथा स्वास्ति पदभाक् सुहृद्, पाठक महानुभाव! जीहां। आइये इस वृत्तान्तके लिखते २ जो मेरा हृदय विक्षिप्त हो गया है इसको शान्ति देनके लिये कुछ क्षण पारस्परिक परामर्श कर लें। और नेत्रोंकी अश्रुपातात्मक वर्षाको जवतकहो होने दे लें। नहीं तो सम्भव है इस वर्षासे कापीके प्लावित होनेपर अधिक देर कार्य स्थगित करना पडेगा। पाठक, कहिये और चलिये किस विपयमें चलना है। अनुवादक, चलना तो किसी विपयमें नहीं मैं केवल आपसे यहीं पूछना चाहता हूं क्या आप वतलानेकी कृपा करेंगे कि श्रीनाथजीने ज्वालादेवीका भोजन अस्वीकार कर यह स्मारक चिन्ह, जो आजतक विद्यमान है, क्यों स्थापित किया था। पाठक, आप ही वतलाइये हम तो केवल इतना ही जानते हैं जैसा कि सुननेमें आता है कि श्रीनाथजी देवीको हांडीके नीचे अग्नि जलाते रहनेकी आज्ञा प्रदान कर स्वयं भिक्षार्थ भ्रमण करनेको चले गये थे। वस इससे अधिक हम और कुछ नहीं जानते है एवं न कभी जाननेकी अत्युत्कट अभिलाषा ही की है। अनुवादक, अच्छा मैं वतलाता हूं कृपया ध्यानसे पढिये पढिये ही नहीं समझिये और अपने उत्तराधिकारियोंको समझानेकी कृपा कीजिये। श्रीनाथजीने इस अभिप्रायसे उक्त वृत्तान्तकी स्थापना की है। उन्होंने हमको चेतावनी देते हुए समझाया है कि हे योगियो! तुम्हारा अपने नैयमिक शौचत्वकी रक्षार्थ शुद्ध भोजन स्वयं वनाकर अथवा अन्यत्र भिक्षा मांग कर ग्रहण कर लेना तो सर्वथा उचित होगा परं अभक्ष्य भक्षणके ग्रहणार्थ हमारी तरह नासिका सङ्कुचित न कर आगे हस्त वढाना कभी उचित नहीं समझा जायेगा। वल्कि इतना ही नहीं हस्त वढाया तो समझ लो मनुष्यत्वसे वञ्चित कर दियें जाओगे। अतएव ज्वालानिष्ठ इस स्मारक चिन्हसे सूचित होनेवाली हमारी चेतावनीपर दृढ विश्वास रखता हुआ जो महानुभाव अभक्ष्य पदार्थके विषयमें हमारा अनुकरण करेगा वही हमारी सन्तान और अपने अपको गोगी कहलानेके योग्य हो सकता है। अन्यथाकार करनेवालेका कोई अधिकार नहीं कि वह योगी, इस महा गौरवान्वित शब्दसे सुशोभित होनेके लिये अग्रसर हो। धन्य है श्रीनाथजी आपको धन्य है

एकवार नहीं अनेकवार धन्य हैं। आपने अपनी सन्तानको हरएक तरहसे सन्मार्गकी ओर चलानेके निमित्त कुछ भी उठा नहीं रक्खा है। परन्तु खेद है आपकी सन्तति आधुनिक योगिसमाजमें अधिकांश ऐसे मनुष्य प्रविष्ट हो गये हैं जिन्होंने अपने नेत्रोंके ऊपर पट्टी बान्ध लई है। यही कारण है वे आपकी प्रत्यक्ष भी इत्यादि चेतावनियोंपर कुछ भी दृष्टिपात नहीं करते हैं। और अभक्ष्यास्वादनमें लोलुप हुए उसके ग्रहणार्थ हस्तप्रसृत कर आपकी आज्ञाको उपेक्षित करते हैं। बल्कि यही नहीं कि वे नींचसे नीच शब्दवाच्य पुरुष स्वयं ही ऐसा करते हों प्रत्युत अपनी चातुरुक्तियोंसे अवरुद्ध हुए भोलेभाले सेवकोंको भी उन अभक्ष्य पदार्थोंके ग्रहणार्थ विवश करते हैं। और उनको भयानक वाक्य सुनाते हैं कि वाह २ यह तो भैरुंका वा देवीका खाजा ही है इसको स्वीकार न करोगे तो भैरुं वा देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं होंगे, जिससे तुम्हारा अनुष्ठान निष्फल हो जायेगा। आखिर वे विचारे क्या करें। किसी आशाकी पिपासासे वशंगत हो सेवक विचारोंको इनके नरकोत्पादक जटिल जालसे जकडी भूत होना ही पडता है। खैर कुछ भी हो इन योगीनामको दूषित करनेवाले यवन संस्कारी पुरुषोंके जालमें बद्ध होनेसे पहले सेवक महानुभावोंको श्रीनाथजीकी चेतावनीपर विशेष ध्यान देना चाहिये। उनकी आज्ञासे विरुद्ध अनुष्ठान करनेपर इन कालियुगिक जीवोंके देवता भैरुं और देवीकी तो वात ही क्या है सृष्टि कर्ता ब्रह्मा भी प्रसन्न होनेके लिये समर्थ नहीं है।-इस वास्ते सेवक लोगों और वञ्चित योगियोंको चाहिये कि ऐसे लोगोंको कर्णच्छिद्री देखकर योगी न समझ बैठें। ये तो संसारमें देवी और भैरुके नामसे अन्यथा डींग हांक कर केवल अस्थि चूपनेके लिये ही अवतरित हुए हैं। अहो अविद्ये! तुझे नमस्कार है ३ तू जितनी ही दूर रहे उतना ही शुकर है। अब भी यदि तेरी भेट पूरी हो गई हो तो कृपा कर दे। और जहां तक तेरा प्रसार हो चुका है वहीं तक में सन्तोष कर ले। ऐसा करनेसे तेरा बडा ही उपकार होगा। नहीं तो सम्भव है पूज्यपाद योगेन्द्र गोरक्षनाथजी आदि महानुभावोंकी कुछ ही अवशिष्ट रही कीर्ति समस्त रसातलमें पहुँच जायेगी। क्या तुझे मालूम नहीं जिस योगी नामधारीके ऊपर तेरी छाया पडती है वह चाहे पृथिवी उलटपलट हो जाय परं, जिसके मुखपर भैरुंका प्याला सुशोभित नहीं हुआ है वह सच्चा योगी नहीं है, यह कहता हुआ कुछ भी अगा पीछा नहीं देखता है। अतएव भगवति प्रकृते! मैं फिर तुझे नमस्कार करता हूं तथा तेरे चरणोंमें मस्तक स्पर्शित करता हूं तू मेरी विनम्र वन्दनापर कुछ ध्यान दे और क्षमा कर। योगि-समाजका पीछा छोड दे। अब तो इसकी प्रतिष्ठा निःसन्देह रसातलमें पहुँचने वाली है। इस समाजके विषयमें जो, संसार कभी यह भावना रखता था कि जरासी तिरछी दृष्टि होनेपर न जानें यह क्या कर बैठेगा, आज वही संसार इसके पीछे ताडी वजाता हुआ धूलि फैंकता

है। यह क्या बात है और कुछ नहीं सब तेरी कृपा है। अतः क्षमा कर तेरी बहुत दाल गल चुकी है। अब तो तुझे चाहिये कि तू अपनी छायाको सङ्कुचित कर ले। मैं हृदयसे तुझे विदा करता हूं। और यह अच्छी तरह जानता हूं कि तू अत्यन्त बलवती है। जिसने चेतन शक्तिको भी इस प्रकार अपने हस्तका खिलौना बनाकर इच्छानुसार नचा रक्खा है। (अस्तु) पाठक! कृपा कीजिये और पूर्व प्रकरणमें ध्यान दीजिये। श्रीनाथजी ज्वालाजीसे प्रस्थान कर नीचेके अनेक प्रान्तोंमें इधर उधर भ्रमण करने लगे। एवं पूर्व दिशाके अभिमुख हो मार्गागत नगर ग्रामोंके लोगोंको भिक्षा प्रदान करनेके लिये सूचित करने लगे। परन्तु पाठक! स्मरण रखना श्रीनाथजीने केवल भिक्षा लेनेके लिये पात्र हस्तमें धारण नहीं किया था। यदि ऐसा ही होता तो यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि उनको वहां भिक्षा नहीं मिल सकती थी। किन्तु उन्होंने तो, हमने देवीका त्याज्य भोजन ग्रहण नही किया इसी प्रकार कोई भी योगी ग्रहण न करै, इस बातको भविष्यके लिये स्मारक चिन्ह बनाना था। अतएव आप इतनी भिक्षा मांगते थे जिसकी पूर्ति कोई नागरिक वा ग्रामीण पुरुष न कर सकता था। वे लोग अपनी श्रद्धानुसार जितनी कुछ भिक्षा सर्मपित करते थे उससे आपका पात्र छोटासा होनेपर भी मन्त्र संशोधित होनेके कारण भरपूर नहीं होता था। आपके इस पात्रकी जो, सेर अन्नके परिमाणवाला दीखनेपर भी कतिपय मण अन्नको हजम कर जाता था, यह शक्ति देखकर लोग बडे ही विस्मत होते थे। तथा योगके महत्त्वकी दुर्विज्ञेय लीला बतलाकर हस्तसे हस्त विमर्दन करने लगते थे। यह देख मन्द मुस्कराते हुए आपने कहा कि अये सेवक लोगो! इस पात्रके विषयमें हमारा यही वरदान है कि जब कोई इतना अन्न प्रदान कर दे जितना कि हम मांग रहे है तभी तू सुभर हो ना अन्यथा नहीं। यही कारण है जबतक यह अपनी मांग पूरी नहीं देखता तब तक उससे न्यून पारिमाणिक अन्नसे पूर्ण नहीं होता है। यह सुन उपायान्तराभावसे विचारे वे लोग मौन ही रह जाते थे। और आप अग्रिम मार्गका अनुसरण करते थे। इसी प्रकार अपने रंगमें मस्त हुए आप कुछ दिनके अनन्तर मानपुर (आधुनिक प्रसिद्ध गोरखपुर) में पहुँचे। और मान तालावपर आसन स्थिर कर आपने इसी याचनाको नगरमें प्रचारित किया। अधिक क्या अपनी २ शक्तिके अनुसार भिक्षा प्रदान करनेके लिये बहुसंख्यक लोग उपस्थित हुए। परन्तु पूर्वकी तरह आपका पात्र अपनी पूर्तिका मुख न देख सका। ठीक इसी अवसरपर एक महानुभाव, जो पाटन नगरका रहने वाला था और यहां किसी कार्यवशसे आया हुआ था, विनम्र भावसे अभ्यर्थना करता हुआ बोल उठा। भगवन्! यदि इतने अन्नसे भी, जितना कि लोगोंने देना स्वीकार किया है, आपका पात्र पूर्ण होगा तो मैं नहीं जानता इसको कितने और अन्नकी आवश्यकता है। परं इतना मैं

ओरसे कर देता हूं कि आप अपने चरणरजसे मेरे नगरको पवित्र करें तो मेरी कतिपय लक्षरूपयेकी सत्ता है अपने सहित आपके समर्पण कर दूंगा। यदि उस समग्र सामग्री वैकयिक अन्नसे आपका प्रयोजन कुछ सिद्धि प्राप्त कर ले तो मैं अपने आपको धन्य ही नहीं कृतकृत्य समझ लूंगा। कारणकि उसके भोक्ता पुत्रका अभाव होनेसे मुझे मरणावसरमें भी यही सन्देह करना पडेगा कि न जाने किन २ अनर्थोंमें उस द्रव्यका उपयोग होगा। उनकी अपेक्षा मेरे उपस्थित रहते हुए ही वह आपके पवित्र कार्यका सहायक वन जाय तो इससे उत्तम और क्या हो सकता है। यह सुन कुछ मुस्कराते हुए श्रीनाथजीने कहा कि धन्य है वीर पुरुष तुझे धन्य है। इतने भ्रमणोंमें तन मन धनसे हमारे पात्रको पूर्ण करनेकी चेष्टा वाला एक तूही वीर पुरुष निकला है। परं यह ध्यान रखना हमने भिक्षा लेना नहीं कोई अन्य प्रयोजन सिद्ध करना था सो हो चुका है। तुम अपनी सत्ताको अपने अधीनस्थ रखते हुए भुक्त बनाओ। यदि पुत्राभावसे यह उपभोग सुखमय प्रतीत न होता हो तो यह त्रुटि पूरी करनी बड़ी बात नहीं है। पाठक! अधिक न कहकर हम केवल इतना ही कह देना समुचित समझते हैं वह महानुभाव मुमुक्षु था। अतएव उसने, महाराज! आपको तीनों चीज अर्पण करनेका वचन दे चुका हूं इससे पीछे हटकर मैं अपना कल्याण नहीं देखता हूं, इस वातका हठकर आपका आश्रय ग्रहण किया। उसको इस प्रकार अपने वचनकी पालनामें दृढ हुआ देखकर श्रीनाथजी उसके ऊपर प्रसन्न हो गये। और कहने लगे कि हम पाटनमें आयेंगे। तुम जाओ तबतक अपने सत्वका ठीक प्रवन्ध कर लो आदि सुहृद्गणको भी सन्तोषित करो। ऐसा होनेपर निःसन्देह तुम हमारी संगतिमें प्रविष्ट हो सकोगे। आपकी इस आज्ञापर शिर झुकाकर वह उसी समय वहांसे प्रस्थानित हो गया। इधर आप यहांसे उठकर कुछ दूरं पश्चिमकी ओर एक अनुकूल स्थलपर जा विराजे। यहां एक तृणकी कुटी तैयार कराकर आपने लोगोंको आज्ञापित किया कि जो कोई जितना अन्न देना चाहे इसमें लाकर डाल दे। यह आज्ञा पाते ही सब लोग जिसकी जितनी शक्तिथी उसके अनुसार दाल चावल लेकर आपकी सेवामें उपस्थित हुए। कुछ ही देरमें वह कुटी निरवकाश हो गई। यह देख आपने आज्ञा दी कि आसपासके ग्रामोंमें जहांतक हो सके सूचना भेज दी जाय। गरीब लोग जितनी आवश्यकता हो उतना अन्न उठा ले जायेंगे। लोगोंने अग्रिम दिन आपकी यह आज्ञा पूरी कर दी। परन्तु दिन इस अन्नके ग्राहक लोगोंके झुण्डके झुण्ड आ खड़े हुए। श्रीनाथजी, लोगोंके द्वारा उनके आनीत अश्वगर्दभादि वाह्य वस्तुओंमें अन्न भराने लगे। अधिक क्या जितना अन्न नगरके लोगोंने आपके समर्पित किया था उसका कई गुणा खर्च करनेपर भी कुटिया टससे मस न हुई। यह देखते हुए लोग अत्यन्त विस्मयात्मक

अर्णवमें गोते लगाने लगे। तथा परस्परमें वार्त्ता करने लगे कि देखो योगियोंकी कैसी अगम्य लीला है। इनको दिया तथा इनसे लिया न जानें कहां जाता और कहांसे आता है। जब हम इनके पात्रमें डालते हैं तब तो वह भरनेमें नहीं आता है एवं इनकी कुटीसे निकालते हैं तो यह रिक्त होनेमें नहीं आता है। अथवा ठीक है योगसे अगम्य कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकारकी धीरतासे होने वाला उनका यह आलाप श्रीनाथजीके भी श्रोत्रगत हो गया। अतएव आपने, लो कुटी हम रिक्त कर देते हैं तुम क्यों आश्चर्य करते हो, यह कहकर परिपक्व करनेके लिये कुछ तो मिश्रित दाल चावल पृथक् निकलवा लिये अवशिष्ट अपने पात्रमें विलीन कर लिये। और एक कटाहा मंगाकर रक्षित अन्नको पक्व बनानेकी आज्ञा दी। कुछ ही देरमें यह कार्य सफल हो गया। प्रथम आपने खिचड़ी ग्रहण की। अनन्तर जनपंक्तिमें वितीर्ण की गई। उपस्थित कतिपय सहस्र मनुष्योंकी क्षुधा शान्त करनेपर भी कटाहने अपना तलीय भाग नहीं दिखलाया। अन्ततः जब समस्त मनुष्य भोजनादानसे लब्धावकाश हो गये तब आपने सम्बोधन करते हुए लोगोंको अपने इस कृत्यका यथार्थ उद्देश सुनाया। और कहा कि यद्यपि समयका प्रवाह अपना प्रभाव अवश्य दिखलायेगा तथापि यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि उस प्रभावमें प्रवाहित न होनेके लिये कोई वञ्चित रहना चाहेगा तो नहीं रह सकेगा। किन्तु वह उससे वञ्चित रहता हुआ हमारे मार्गका स्मारक भी बना रह सकेगा। खैर जो भी कुछ हो हमारे अनुयायी कहलाने वाले सज्जन समयके चक्रमें न पड़ जायें हमने इसी अभिप्रायसे देवी ज्वालाजीके त्याज्य भोजनको अस्वीकार कर भिक्षापात्र हस्तमें धारण करते हुए इस वृत्तका उद्धार किया है। आशा है आप लोग भी इस स्मारक चिन्हको सम्भवित अनुकूलताके साथ प्रचलित रक्खेंगे।* आपके इस कथनपर शिर झुकाते हुए लोगोंने वाचनिक नियम किया। जिससे आप अत्यन्त प्रसन्न हुए। और लोगोंको हार्दिक आशीर्वाद प्रदान कर देवी पाटनकी ओर प्रस्थान कर गये। आगे उक्त महानुभाव गृह प्रबन्धकी ओरसे सर्वथा निश्चित हो आपके शुभागमनकी प्रतिपालना कर ही रहा था। उसने स्वागतिक होते ही अपना शरीर आपके समर्पण कर दिया। आप उसको सादर ग्रहण कर उत्तरकी ओर बढे। और धवलगिरि नामक पर्वतपर जाकर उसको अपने गृहकी कुञ्जी बतलाने लगे।

इति श्रीनाथ भिक्षार्थ पर्यटन वर्णन नामक ४८ अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

---

* जनताकी ओरसे एक उचित स्थान बनाया जाकर उसमें इस बातका स्मारक चिन्ह खिचड़ीका चढ़ावा आरम्भ हुआ। और नगरका नाम मानपुरकी जगह गोरखपुर प्रसिद्ध हुआ। यहांके लोग आज तक इस चढ़ावेको व्यवहृत करते हैं।

॥ अध्याय ४९ ॥
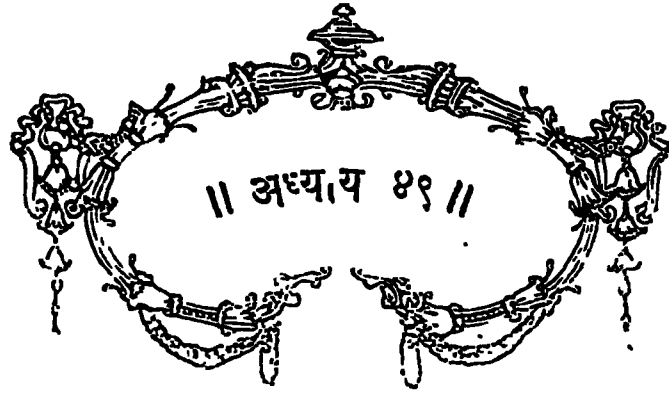
धवल गिरि पर्वतस्थ श्रीनाथजीने यद्यपि अपने प्रिय शिष्यको योग साधनीभूत क्रियाओंमें प्रवृत्त कर दिया था, तथापि एक आकस्मिक ऐसा विघ्न उपस्थित हुआ जिसको प्रथम निवारित करना उचित समझ कर आपने अपना कार्य स्थगित कर दिया। और वह यह था कि यहांसे लगभग ८०, ९० कोशकी दूरीपर पूर्व दिशामें वर्तमान त्रिशूल गङ्गाके प्रभवस्थान पर्वतपर वाममार्गी लोगोंका एकदल एकत्रित हो, किस प्रकारसे हम अपने अभिमतका साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं, इस विषयमें परामर्श कर रहा था। अन्ततः बहुत छान बीनके पश्चात् उसने स्थिर किया कि आज कल सर्वत्र श्रीनाथजीके यशका डङ्का बज रहा है यदि वे हमारे मार्गको सत्कृत कर दें तो यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि सांसारिकलोग फिर भी हमको घृणा की दृष्टिसे ही देखते रहेंगे। प्रत्युत समस्त राजा प्रजा लोग, जोकि श्रीनाथजीमें असाधारण श्रद्धा भक्ति रखते हैं, पवित्र समझ कर हमारे मार्गको सादर ग्रहण कर लेंगे। ऐसा होनेपर हम निन्दासे तो मुक्त हो ही जायेंगे सम्भव है संसारमें हमारी प्रतिष्ठा भी हो जायेगी। ठीक इसी निश्चयके अनुसार उन्होंने श्रीनाथजीका आह्वान किया। अतएव आप इस आरम्भित कार्यको विश्रामित कर सशिष्य वहां पहुँचे। और पारस्परिक आदर सत्कारके अनन्तर आपने अपने आव्हान कारणको स्फुट करनेके लिये उनको आज्ञापित किया। उन्होंने विनम्र अभ्यर्थना करते हुए आपको सूचित किया कि आप कृपा कर हमारे मार्ग विषयक प्रधानत्वको स्वीकृत करलें। यह सुन आपने कहा कि हम यह पूछना चाहते हैं आप यथार्थ रीतिसे प्रकट कर दें कि आप अपनी प्रतिष्ठा चाहते

हैं वा प्रतिष्ठा की उपेक्षा कर अपने अवलम्बित मार्गकी वृद्धि करना चाहते हैं। यदि प्रतिष्ठा चाहते हैं तो आप अन्य सब झगडोंको छोडकर केवल योगक्रियाओंसे ही सम्बन्ध जोड लें। इसके अतिरिक्त यदि गृहीत मतकी पुष्टि करना चाहते हैं तो हम नहीं सह सकते कि साधुओंका कार्य जहां मुमुक्षुजनोंको सन्मार्गपर चढा देना है वहां वे उन विचारोंको कुत्सित पथमें प्रविष्ट करनेके लिये कटिबद्ध हो जायें। उन्होंने कहा कि यद्यपि हमारा मूल सिद्धान्त यही है कि सांसारिक घृणित लोगोंके हृदयोंमें हमारी प्रतिष्ठा भी लब्धावकाश हो जाय। तथापि यह नहीं कि वह इस मतके अभावसे जन्य हो। किन्तु इससे सम्बन्ध रखने वाली ही प्रतिष्ठा होनी चाहिये। आपने कहा कि इस मागसे सम्बन्ध रखते हुए न तो आप लोगोंकी प्रतिष्ठा होगी एवं न हम आपका सहचार ही रखनेको तैयार हैं। इस प्रकार कापालियोंकी शुष्क आशा लतामें जल वर्षनेका अवसर उपस्थित न हुआ। न तो उन्होंने अपने निकृष्ट मार्गका परित्याग करना स्वीकार किया। और न उसके सद्भावमें श्रीनाथजीने उनसे सहचार रक्खा। अन्ततः त्यक्त कार्यमें फिर प्रवृत्त होनेके लिये श्रीनाथजी यहांसे चलनेके अनुकूल अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। परं इतने ही में एक मामला और आपके सम्मुखीन हुआ। और वह मामला यह था कि उसी जगहपर विराजमान भगवान् नीलकण्ठकी[1] यात्रार्थ आये हुए मत्स्येन्द्री[2] जातिके लोगोंने आपसे प्रार्थना करी कि वर्तमान महाराजा महीन्द्र देवजी बौद्ध लोगोंका विशेष सत्कार कर हमको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। यही कारण है दिनोदिन हमारी जातिका ह्रास होता जा रहा है। इससे तो सम्भव है कुछ ही दिनमें हमारी जातिका एवं पूज्यपाद देवता मत्स्येन्द्रनाथजीका नामो निशान तक लुप्त हो जायेगा। अतएव आपको चाहिये कि इस विषयमें किसी उचित उपायको अवलम्बित करें। यह सुन आपने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उनको सान्तोषिक वाक्योंसे धैर्यावलम्बित कर आप यहांसे प्रस्थानित हुए। जो ललित पाटनके समीप जाकर भोगमती गङ्गापर विश्रामित हुए। तथा एक ऐसे मन्त्रका अनुष्ठान कर, कि जबतक कोई हमको इस आसनसे न उठा सके तबतक इस प्रान्तमें वर्षा नहीं होगी, कुछ दिनके लिये दृढासनासीन हो गये। इसी प्रकार एकदो के क्रमसे तीन वर्ष व्यतीत होनेको आये परं वर्षाका कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया। यह देख राजा महीन्द्र देव बडे ही चकित हुए। और कई एक छोटे मोटे यज्ञ भी अनुष्ठित किये गये। तथापि

१ एक जलाशयमे स्वाभाविक अण्डाकार शिला विद्यमान है। लोग उसीको नीलकण्ठ महादेव मान कर पूजते हैं।

२ नैपाल राज्यमें यह जाति आज तक भी विद्यमान है। मत्स्येन्द्रनाथजीको मुख्य देवता माननेसे ही कभी इसका यह नाम पडा था।

उनका कोई सान्तोषिक फल दृष्टि गोचर न हुआ। अन्तमें ज्योतिषियोंसे परामर्श कर उसने इस वर्षाभावके कारणकी गवेषणाकी। बहुत ध्यान दीनके अनन्तर ज्योतिषियोंने यथार्थ वृत्तान्तका उद्घाटन किया कि आपके ऊपर योगेन्द्र गोरक्षनाथजी तिर्यग् दृष्टि किये बैठे हुए हैं। और उन्होंने यह प्रण किया है कि जबतक हम इस आसनसे न उठेंगे तबतक यहां वर्षा न होगी। राजाने कहा कि फिर इस बातका साधक उपाय क्या है। यदि कोई समुचित उपाय दृष्टिगोचर होजाय तो उसका आश्रय ग्रहण कर योगेन्द्रजीको प्रसादित करलेंगे। सम्भव है अपनेसे कोई प्रामत्तिक कार्य अनुष्ठित हो गया होगा परं यह असम्भव नहीं कि योगेन्द्रजी प्रसन्न नहीं होंगे। हमको विश्वास है कि ये लोग जब कभी किसीके ऊपर कुपित होते हैं तो स्वार्थके उद्देशसे नहीं किन्तु परहितोद्देशसे ही हुआ करते हैं। इस परभी योगेन्द्र गोरक्षनाथजीका तो अवतार ही इस मुख्योद्देशसे हुआ है कि सन्मार्गसे च्युत हुए लोग उनका आश्रय ग्रहण कर फिर उसी मार्गपर चढजायें। अतएव मैं भी यदि किसी उचित मार्गसे भ्रष्ट हो गया हूंगा तो उनके आश्रित हो शीघ्र उसको अवलम्बित कर सकूंगा। आपलोग जो सम्भवित हो वह उपाय शीघ्र प्रकटित कर दें। उन्होंने बतलाया कि आपके कट्टर बौद्ध हो जानेसे यहांके अधिष्ठातृ देवता मत्स्येन्द्रनाथजीकी प्रतिष्ठामें बहुत कुछ न्यूनता आ गई है। जो कुछ लोग इस देवताके ऊपर असाधारण विश्वास रखते हैं और इसी कारणसे उनकी एक मत्स्येन्द्रीजाति पृथक् प्रतिष्ठित हुई चली आ रही है उनके विषयमें राजकीय लोग बहुत घृणित व्यवहार करते हैं। इस बातको केवल हमारा ज्योतिष ही नहीं बतला रहा है बल्कि कुछ हमने अपने श्रोत्रोंद्वारा भी श्रवण किया है। राजाने पूछा कि कब और किस प्रकार यह बात सुननेमें आई थी। उन्होंने उत्तर दिया कि आज नहीं इन बातोंको श्रवण किये तीन वर्ष बीत चुके समझें। कपालीलोगों और योगेन्द्रजीके पारस्परिक परामर्शानन्तर श्री नलिकण्ठ यात्रार्थ गये हुए उक्त लोगोंने श्रीनाथजीके अभिमुख इस विषयकी प्रार्थना उपस्थित कीथी ठीक उसी समय। लोगोंकी बातपर ध्यान देकर योगेन्द्रजी पाटनमें आये। और भोगमती पर आसनासीन हुए अबतक विराज मान हैं। उनकी आन्तरिक इच्छा स्वकीय गुरुजीको फिर तादवस्थ्य प्रतिष्ठित करनेकी है। अतएव हम, यदि आप उसपर कटिबद्ध होजायें तो, एक ऐसा उपाय बतलाते हैं जिससे मत्स्येन्द्रनाथकी प्रतिष्ठा भी हो जायगी और इनका आसन खुल जायेगा जिससे फिर शीघ्र वर्षा होने लगेगी और सम्भव है श्रीनाथजी आपके ऊपर असाधारण प्रसन्न भी हो जायंगे। राजाने कहा कि हां बस ऐसी ही कोई युक्ति बतलाओ। उन्होंने कहा कि उनके गुरु श्रीमत्स्येन्द्र-

नाथजीकी एक प्रतिमा तैयार कराई जाय। जिसको आत्यन्तिक श्रद्धेय सत्कारके साथ रथयात्रासे इनके अभिमुख ले जाया जाय। यह देख श्रीनाथजी गुरुजीकी आदेशात्मकप्रणति करनेकेलिये खड़ेहो जायेंगे। बस इतनी ही देरी समझना चाहिये। इनके खड़े होते ही समस्त समस्यायें, जोकि उपस्थित हो रही हैं, हल हो जायेंगी। तदनु महाराजा महीन्द्र देवने ठीक इसी अनुष्ठानका आश्रय ग्रहण किया। तथा वह इसमें कृतकार्य भी हो सका। परं खैर श्रीनाथजीने अपने वार्षिक अलका संहार तो कर लिया एवं राजाको यह आज्ञा भी प्रदान कर दी कि गुरुजीकी इस प्रतिष्ठामें किसी प्रकार भी न्यूनता न आने देनेका प्रयत्न *करना होगा। तथापि अपनी प्रसन्नताका कोई लक्षण प्रकट नहीं किया। और राजन्! तुमको सावधान रहकर हमारे इस कृत्यके मर्मको समझनेकी अत्यन्त आवश्यकता है केवल यह कहकर यहांसे प्रस्थान किया। जो कतिपय कोशकी दूरीपर जाकर आप अपने प्रिय शिष्यको फिर आरम्भित व्यक्त क्रियाओंका तत्व समझाने लगे। इस कार्यमें प्रवृत्त हुए आपके ज्यों २ दिन व्यतीत होते थे त्यों २ आपका शिष्य आपकी उपदेश ग्रहणताको सार्थक करता हुआ जा रहा था। इसी क्रमसे आपके लगभग चौदह वर्ष व्यतीत हो चले। शिष्य महानुभाव आपका नाम चरितार्थ करने वाली दशामें प्रविष्ट हो चुका। परं एक वृद्धा स्त्री और उसके पुत्रसे अतिरिक्त किसी मनुष्यने भी ऐसा व्यवहार उपस्थित नहीं किया कि जिससे उसके सन्मार्गमें चलनेका प्रमाण मिल सके। एवं न राजाकी ओरसे ही कोई ऐसा प्रबन्ध था कि जिससे कुत्सित कृत्योंकी तरफ बढते हुए लोगोंके मार्गमें कुछ बाधा उपस्थित हो सकै। अथवा ठीक है राजाके कर्तव्याकर्तव्य विमूढ हो जानेपर प्रजाके वैसे हो जानेमें देर ही क्या हो सकती है। यही कारण हुआ श्रीनाथजीके द्वारा सचेत करनेपर भी जितना होना चाहिये था राजा उतना सचेत नहीं हुआ। उसकी यह मन्द गति देखकर राजकीय लोग भी उससे आगे बढ सके जिससे उक्त मत्स्येन्द्री जातिके लोगोंका मुख उज्वल होनेके बदले तिरस्कृति हेतुक मलीनता ही धारण करता रहा। मतलब निकल जानेपर मत्स्येन्द्र-नाथजीकी प्रातिष्ठेय रथयात्रा भी निमित्त मात्र ही प्रतीत होने लगी। यह देखकर श्रीनाथजीके अनुमानकी सत्यतामें प्रमाण मिल गया। राजा महीदेवके स्वकीय शरणागत होनेके समय आपने प्रथम ही यह अनुमान किया था कि बौद्ध लोग अपनी दाल गलनेके प्रयत्नमें राजाको अपनी ओर आकर्षित करेंगे। ऐसा होनेसे यह असम्भव नहीं कि राजा फिर

* इसी समयसे श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीकी रथयात्रा प्रचलित हुई। जो आजतक तादवस्थ्य चली आ रही है। वर्षके पहले दिन मूर्तिको स्नान करानेके अनन्तर राजाकी तलवार आपके चरणमें रखकर पूजी जाती है। वहां एक मास तक निवास करनेपर किसी शुभ मुहूर्त और पुण्यदिनमें मूर्ति वापिस लाई जाती है। नेपालमें यह उत्सव बडा ही महत्त्व रखता है।

हमारी चेतावनीको भूल जाय जिससे हमको फिर इसके प्रतिकूल किसी अनुष्ठानका आश्रय लेना पडे । ठीक यही कारण था आप उसको कोई विशेष वर प्रदान न कर मौन रीतिसे ही इधर चले आये थे । और राजधानीसे लगभग पन्द्रह बीस कोशकी दूरीपर* ही विश्रामित हो गये थे । एवं आप इस विचारसे युक्त थे कि जबतक शिष्यको शिक्षित करेंगे तबतक राजाकी तथा राजकीय पुरुषों और प्रजाकी बुद्धि ठिकाने आ गई तो सौभाग्यकी बात है नहींतो किसी विशेष उपायके अवलम्बन द्वारा उचित प्रबन्ध करनेपर ही यहांसे चलना होगा । अब सचमुच ही आपको वह लक्षण दीखपडा जिसके अनुकूल आपने उक्त निश्चयको सार्थक किये बिना आपने अपना छुटकारा नहीं समझा था। अतएव आप अपनी इच्छा पूरी करनेके लिये किसी सुगम उपायकी गवेषणामें दत्तचित्त हुए तथा कुछ क्षणिक विचारा विचारके अनन्तर आपने निश्चय किया कि राजा महीन्द्रदेवको पदच्युत कर किसी अन्य सुयोग्य व्यक्तिको सिंहासनाभिषिक्त कर देना विशेष उचित होगा । साथ ही यह भी अनुमान किया कि इस कार्यको पूर्ण कर देना कोई साधारण बात नहीं है । कारण कि प्रथम तो आजकल बौद्ध लोगोंका अत्यन्त प्राधान्य है जो समस्त राजाके पक्षपाती होनेके कारण उसके पदच्युत न होनेके प्रयत्नमें ही अपनी सर्व शक्ति खर्च करेंगे । द्वितीय किसी प्रकार यह कार्य भी सम्पादित हो गया तो सिंहासनासीन करनेके लिये इस राजाके कोई सुयोग्य पुत्र भी नहीं है। ऐसी दशामें प्राथमिक आवश्यकता इस बातकी है कि राज्य सञ्चालनानुकूल कोई ऐसी व्यक्ति अन्वेषित की जाय जो हमारे चिन्तित मनोरथको सफल करने वाली हो । अन्ततः आपका ध्यान एकाएक उक्त वृद्धा स्त्रीके अद्वितीय पुत्रकी ओर आकर्षित हुआ । यह महानुभाव अपने गृहमें मातृद्वितीय ही था । और गोसेवा विशेष हेतुसे अपनी जीवनचर्य्या प्रचलित कर रहा था । आज लगा तार बारह वा तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके श्रीनाथजीके विषयमें होनेवाली इस महाशयकी तथा इसकी पूज्य माताकी सेवा-भक्तिका निरन्तर युद्ध चल रहा था। कभी किसी अवसर और विषयमें माताकी सेवा अपना असाधारण रूप दिखलाती थी तो कभी किसी अवसर एवं विषयमें पुत्रकी श्रद्धेय सेवा उससे भी अधिक महत्व सूचित करती थी । अधिक क्या इस प्रकार प्रतिदिन उत्तरोत्तर प्रवृद्ध होने वाली माता पुत्रकी श्रद्धेय सेवाने आपके हृदय स्थानपर अच्छा प्रभाव डाल दिया था। अतएव आपने इसी महानुभावको महाराजा महीन्द्रदेवका प्रतिनिधि बनानेका सङ्कल्प किया । और मैं इसको राजा बना दूंगा तो इसके उपकारपर प्रत्युपकार करनेमें तथा राजाके परिवर्तन करनेमें कृतकार्य हो सकूंगा आपने एक पन्थ और ये दो कार्य

---

* यह वही स्थान है जो गोरखा नामसे प्रसिद्ध है । जिसमें इसी नामकी सेना भी रहती है । अर्थात् उसका नाम गोरखा रेजीमेन्ट है ।

समझकर एक दिन स्वकीय कृपापात्र उस लडकेसे यह प्रस्ताव किया। यह सुनकर वह विचारा स्तब्ध नेत्र हो कुछ देरतक निरन्तरावलोकन द्वारा आपके चरणकमलकी ओर निहारता रहा। और अपने मुखसे कुछ भी न बोला। क्योंकि उसके तो यह बात सो सहस्र लक्षों क्या करोडों कोश भी समीप नहीं थी कि मैं भी राज्य सिंहासनासीन होनेके योग्य हूं वा हो जाऊंगा। फिर वह विचारा इस विषयमें शीघ्रताके साथ क्या उत्तर देता। (अस्तु) कुछ क्षणके अनन्तर उसने विचलित मुखसे ही किसी प्रकार यह शब्द निकाला कि भगवन्! मैं एक सीधा जैसा मनुष्य हूं। अतएव मैं आपके मतलबको नहीं समझ सकता हूं कि आप किस अभिप्रायसे आज ऐसा अश्रुतपूर्व वाक्य बोल रहे हैं। यों तो जिस मनुष्यके ऊपर आपकी कृपादृष्टि हो जाय और उसे जो भी आप देना चाहें दे सकते हैं। क्योंकि आप योगेन्द्र हैं आप जैसे शक्तिशाली महानुभावोंको कोई भी वस्तु अगम्य नहीं है जिसके प्रदानमें आपकी असमर्थता सूचित होती हो। तथापि मैं अपनी दशापर दृष्टि डाल कर सहसा इस बातमें असन्दिग्ध नहीं हो सकता हूं कि ठीक आप जैसा कह रहे हैं वैसा ही वृत्तान्त अवश्यम्भावी है। श्रीनाथजीने अपनी असन्दिग्ध स्पष्ट युक्तिसे उसके विक्षिप्त हृदयमें निश्चयता प्राप्तकी, जिसके श्रवण करनेके साथ २ ही वह समझ गया कि यह ठीक कहा है निरीहभावसे की हुई महात्माओंकी सेवा बिना फल प्राप्त किये समीपसे नहीं जाती है। अतएव उसने अनेक विनम्र प्रणतिके अनन्तर हार्दिक कृतज्ञता प्रकट कर माताकी सम्मति लेनेके पश्चात् आपको प्रत्युत्तर देनेके लिये विज्ञापित किया। यह सुन आपने सहर्ष आज्ञा दी। वह शिर झुका कर शीघ्र माताके समीप पहुँचा। और श्रीनाथजीकी प्रसन्नताका समस्त समाचार उसने माताको सुनाया। जिसके श्रवण मात्रसे इसकी भी ठीक वही दशा हुई जो कि पुत्रकी हुई थी। परं कुछ क्षणमें सचेत होनेके अनन्तर वह प्रिय वसन्तके साथ ही शीघ्र श्रीनाथजीके चरणारविन्दकी सेवामें उपस्थित हुई। और कहने लगी भगवन्! क्या मैं यह निश्चय कर सकती हूं कि आपने जो कुछ मेरे इस पुत्रके अभिमुख कहा है वह अवश्यम्भावी है। यदि यह सत्य है तो यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि मैं जैसी अपने आपको मान बैठी हूं वैसी ही दरिद्रा स्त्री हूं। प्रत्युत एक भाग्यशाली पुरुषकी जन्मदात्री होनेके कारण सर्व सम्पन्न कही जा सकती हूं। अतएव आप अपने आन्तरिक भावसे यह प्रस्फुट करदें कि आपके कथनका यथार्थ रहस्य क्या है। श्रीनाथजीने कहा कि जैसी तुम्हारी अस्खलित सेवा है तुम्हारी वैसा ही विश्वास रखनेकी आवश्यकता है। हम जो सङ्कल्प कर चुके हैं वह व्यर्थ नहीं जा सकता है। तुम दृढ निश्चय करलो और समझलो तुम्हारी इस अतीव साधारण जीवनचर्य्याका आजहीसे परिवर्तन हो चुका है। इतना होनेपर भी यह कार्य इसी बातपर अवलम्बित है कि हमारी निर्दिष्ट विधिसे तुम एक कदम भी वापिस न हटो।

उसने सपुत्र आपके चरण स्पर्शित करते हुए कहा कि पूज्यपाद ! आपकी महती कृपादेवी ही हमको इतना साहस देगी जिसके हेतुसे आपके द्वारा प्रदर्शित मार्गसे हम कुछभी पीछे न हटेंगे । अतः बतलाइये और प्रकट कीजिये हमको किस विधिका आश्रय ग्रहण करना उचित है । यह सुन आपने आज्ञा प्रदान करी कि समीपस्थ तालाबकी आर्द्रमृत्तिकाके कुछ मनुष्य पुतले तैयार करो । यह आज्ञा श्रवण कर माता पुत्र अविलम्बसे ही इस कार्यमें प्रवृत्त हुए । और भावी वशात् इसमें सफलता भी प्राप्त कर सके । यह देख प्रसन्न मुख हुए श्रीनाथजीने अपने सँजीवन मन्त्रको आश्रित किया । जिसके अमोघ प्रयोगसे सचमुच मनुष्य तैयार होकर वे आपसे अभ्यर्थना करते हुए कह उठे कि भगवन् ! कहिये और बतलाइये किस कार्य सिद्धिकी आवश्यकता है । आपने ठहरो २ यह कह कर वृद्धा स्त्री के तेजस्वी तरुण पुत्र वसन्तकी ओर इसारा करते हुए कहा कि भद्र ! ये वीर पुरुष तेरे असाधारण सहायक होंगे जो परिपन्थीसे कभी पराजित न होकर उसको स्वयं पराजयके समुद्रमें विलीन कर देंगे । अतएव तुम जाओ और राजा महीन्द्रदेव जो हमारी तिर्यग् दृष्टिका पात्र हो चुका है उसपर विजय प्राप्त कर स्वयं सिंहासनासीन हो जाओ । यह सुन वह आपके चरणोंमें गिरा । और अपने मस्तकपर गुरुचरण रज धारण कर तथा हस्तमें गुरुपताका लिये हुए सहायक वीर पुरुषोंके सहित राजधानीकी ओर अग्रसर हुआ । अधिक क्या श्रीनाथजीकी अमोघ इच्छानुसार उसने राजा महीदेवको अविलम्बसे ही पराजित करलिया । राजकर्मचारियोंके लाख शिरपटकनेपर भी राजप्रासादके ऊपर श्रीनाथजीकी पताका फर्राने लगी । राजा महीदेव सहकारियोंके सहित प्राण बचाकर राजधानीका परित्याग कर गया । और इस आकस्मिक दुर्विज्ञेय विस्मापक घटनाके विषयमें अन्वेषणा करने लगा ऐसा करनेपर उसको ज्ञात हुआ कि श्रीनाथजीकी तिर्यग् दृष्टिका ही यह समस्त फल उदय हुआ है । अतएव वह अपूर्व श्रद्धेय व्यवहारसे श्रीनाथजीकी शरणमें प्राप्त हुआ अपराध क्षमा करनेकी अभ्यर्थना करने लगा । यह देख आपने स्पष्ट कह सुनाया कि हम जो निश्चय करचुके हैं वह कभी अन्यथा नहीं होगा । यदि तुमको अपना अवशिष्ट जीवन सुखसे व्यतीत करना है तो हमारी इस बातपर सहमत हो जाओ कि उस साहसीपुरुष वसन्तको अपना पुत्र स्वीकार कर उसे सिंहासन प्रदान करदो और स्वयं ईश्वराराधनसे समय व्यतीत किया करो । ऐसा करनेसे हमारी प्रतिज्ञातो सफल हो ही जायेगी तुम्हारी जीवन चर्य्यामें भी कुछ विघ्न उपस्थित न होगा । यह सुन उपायान्तराभावसे, या श्रीनाथ-जीकी असाधारण कृपाके पात्र सुयोग्य पुत्रकी उपलब्धि हेतुक प्रसन्नतासे, राजा किसी प्रकार आपके कथनपर सहमत हो गया । तदनन्तर राजाके सहित श्रीनाथजी राजधानीमें आये । और बडे समारोहके साथ वसन्तको महाराजा महीन्द्रदेवका दत्तकपुत्र उद्घोषित कर

वि. सं. ४२० में वसन्तदेव या वसन्तसेन नामसे सिंहासनाभिषिक्त करते हुए आपने अपनी प्रतिज्ञाओंसे उसको जकडीभूत बना दिया। तथा स्पष्ट कह सुनाया कि जबतक इन प्रतिज्ञाओंका पूरी तरहसे पालन होता रहेगा तबतक यह साम्राज्य अपनी गौरवगरीमासे कभी वञ्चित न हो सकेगा। इस प्रकार आप अपना चिन्त्य कार्य पूराकर यहांसे कार्यान्तर सम्पादनाके लिये प्रस्थानित हुए। इधर महाराजा वसन्तदेव अत्यन्त कुशलताके साथ राज्य कार्यका सञ्चालन करने लगे। * इसी महानुभावसे गोरखा जातिका बीज वपन हुआ है। परन्तु (नैपालका प्राचीन इतिहास) इस नामका पुस्तक जो हमको पटियाला राज्यान्तर्गत भाटिण्डा, की लायब्रेरीसे उपलब्ध हुआ है उसमें लिखा है कि नैपालके राजा पृथिवीनारायणने अपने राज्यकी सबसे अधिक सीमा बढाकर गोरखापर्वत पर्यन्त राज्य किया था इसी कारण महाराजका नाम गोरखा पडा और फिर उसके अनुयायी गोरखा जातिमें परिणत हुए। निःसन्देह लेखकने यह महान् भूल की है। पृथिवी नारायणसे पहले ही मत्स्येन्द्री जातिकी तरह गोरखाजाति भी विद्यमान थी। हां यह अवश्य है कि महाराजा वसन्तदेवके बाद श्रीनाथजीकी आज्ञाओंका भंग हो जानेसे राज्यकी दशा गिर गई थी। जिससे राज्य कई भागोंमें विभक्त हो गया था। फिर वसन्तदेवसे लगभग १४५० वर्ष पीछे पृथिवी नारायणका प्रादुर्भाव हुआ जिसने कीर्तिपुरादि के तेजरसिंहादि राजाओंके साथ बार २ घोर युद्ध किया। जिसमें उसने कुछ सफलता भी प्राप्त की। नैपालके उक्त इतिहासमें तथा मुरादाबाद निवासी पं. बलदेवप्रसाद द्वारा लिखित एक दूसरे (नैपालका इतिहास) इस नामके पुस्तकमें यद्यपि पृथिवी नारायणको, गोरखा राजा, इस शब्दसे व्यवहृत किया है। तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि वह गोरखाजातिका मूल पुरुष था। किन्तु जैसे कीर्ति पुरादिके राजा तेजरसिंहादिको निवारजातिका होनेसे निवारी राजा कहा जाता था वैसे ही पृथिवी नारायणको गोरखा जतिका होनेसे गोरखा राजा कहा जाता था। अतएव यह गोरखा जातिका विधाता नहीं था। यह सौभाग्य तो श्रीनाथजीके अत्यन्त कृपापात्र महाराजा महीन्द्रदेवके दत्तकपुत्र वसन्तदेवको ही उपलब्ध हुआ था। इतने दीर्घ समयको प्राप्त होकर ही (गोरखा) यह नाम भुट्टानसे लेकर काश्मीर राज्य तकके हिमालय पर्वतमें रहने वाले समस्त पर्वतीय लोगोंमें व्याप्त हो गया। इतने विस्तृत देशमें रहनेवाला कोई भी मनुष्य जब भारतके नीचे देशमें आता है तब यहांके लोग उसे गोरखा या गोरखिया कह कर पुकारते हैं। गोरक्षनाथजीके विषयमें भक्तिभावका विस्तार करने वाले वसन्तदेवके बिना और इतना दीर्घ-काल व्यतीत हुए बिना, यह सम्भव नहीं कि आजसे करीब १५० वर्ष पहले होनेवाले पृथिवी नारायणके सम्बन्धसे यह नाम इतने ही अल्पकालमें इतने दूरतक व्याप्त हो जाय। नैपालके इस पं. बलदेवप्रसाद द्वारा लिखित इतिहासमें यह भी लिखा है कि गोरखा लोग राजपूतानासे

नेपालमें आयें। परं यह भी गलत है, नतो ये लोग इधरसे आये और न कोई गोरखाजाति राजपूतानेमें प्रसिद्ध है अस्तु * । पाठक ! सन्तोषका विषय है इस महानुभावने श्रीनाथ-जीके नियमोंको प्राणपणसे निवार्हित किया । ठीक आज ही से इस देशके पूज्यदेवता श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीकी फिर पूर्ववत् असाधारण प्रतिष्ठा प्रचलित हुई । बल्कि ऐसी प्रतिष्ठासे श्रीनाथजी भी वञ्चित न रहे । यहां तक कि मुख्यतया राज्यके अधीश्वर ही आप समझे जाने लगे । राजपूताने के भील लोगोंकी तरह यहांके पहाडी लोग भी गौआदि माननीय पशुओंको जो अभक्ष्य नहीं समझते थे इत्यादि प्रथाओंका समूल विच्छेद किया गया। देवी देवताओंकी फिर सात्विक रीतिसे पूजा होने लगी । परदेशी लोगोंके साथ और दैवी सम्प्रदायके लोगोंके साथ उचित व्यवहार किये जाने लगे । गौब्राह्मण, विरक्त पुरुषोंको कष्ट पहुँचाने वाले मनुष्य के लिये शूलीका दण्ड निर्धारित किया गया। अधिक क्या समस्त पूर्वीय अनुचित प्रथाओंका समूल उच्छेद होनेके कारण साम्राज्यमें परिवर्तन ही उपस्थित हो गया ।

इति श्रीनाथ नेपाल राज्य परिवर्तन करण वर्णन नामक ४९ अध्याय ।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी

॥ अध्याय ५० ॥

वैक्रमिक सम्वत् ४२० में नेपाल राज्यका उचित प्रबन्ध कर श्रीनाथजी पर्वतीय प्रदेशोंमें भ्रमण करने लगे। जो अनेक विषम मार्गोको उल्लङ्घित कर कुछ दिनके बाद तिब्बत और तिब्बतसे चीन साम्राज्यान्तर्गत प्रविष्ट हुए। इसके कतिपय प्रान्तीय विचरणके द्वारा अपने योगोपदेशात्मक ढोलकी आवाज लोगोंके श्रोत्रोंतक पहुँचाकर आप तुर्कि स्थानमें पहुँचे। यद्यपि चीन देश और इस तुर्कि स्थानमें भ्रमण करते हुए आपके कतिपय वर्ष व्यतीत हो गये थे। तथापि इस बातका कोई निश्चयात्मक उल्लेख नहीं पाया गया कि आपने इन देशोंमें कितने मुमुक्षु जनोंको उद्धृत किया। अन्ततः इस सुदीर्घ पर्यटनका परिश्रम उठाकर भी आप श्रान्त न हुए। और कुछ वर्षके अनन्तर अर्ब देशमें पहुँचे। वहांसे इस देशीय लोगोंके मक्का* नामक माननीय पवित्र स्थानके समीप जाकर एक अनुकूल स्थलमें आपने अपना आसन स्थिर किया। यहांतकके लोग अजपानाथके शिष्योंके भ्रमण द्वारा योगके महत्त्वमें कुछ आस्था रखने लगे थे। यही कारण था आपका आसन स्थल समग्र दिन आपके दर्शनार्थ आगन्तुक लोगोंसे परिपूर्ण रहता था। एक दिन सायंकाल होते ही जब आपकी आज्ञानुसार वे समस्त लोग अपने २ गृहपर चले गये तब इस देशमें आगन्तुक योगियोंके मुखसे जो लोगोंने आपकी महिमा सुन रक्खी थीं आपने किसी न किसी प्रकारके अनुष्ठान द्वारा उसको सार्थक कर लोगोंके हृदयागारमें अपनी उतनी ही प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित करनेका विचार स्थिर

---

* जीवनचरित्र वा अन्य कई ग्रन्थोंसे यह स्पष्ट है कि हज़रतमुहम्मदजीने इस मन्दिरमें प्रतिष्ठित प्रतिमाओंको स्वयं तोड़ा था। इससे यह सूचित हुआ कि यह स्थान आपसे, जिसको आज १३४१ वर्ष हुए है, बहुत पहलेका है। परं यह निश्चित नहीं कि इसका पुरातन नाम यही है वा अन्य कोई, इस अनुवाद्य ग्रन्थमें केवल मन्दिर शब्द लिखा हुआ था।

किया। अतएव आप लोगोंके चले जानेपर कुछ अन्धकारके समय रूपान्तरमें परिणत हो मक्केशरीफके प्रार्थनेय विस्तृत स्थलमें पहुँचे। और मन्दिरद्वारके अभिमुख पैर कर सो गये। तदनु कुछ ही देरमें प्रार्थना करनेका अवसर उपस्थित हुआ। एवं प्रथम प्रार्थकने आकर ज्योंही देखा तो उसको मक्केके सम्मुख पैर किये हुए एक मनुष्य सोता हुआ दिखाई दिया। यह देख उसने कहा कि अरे! तू कौन है जो प्रार्थनावसरसे पहले ही यहां आ सोया है। उठ और अपने आपको सम्भाल किधर पैर कररहा है। यह सुनकर भी आप गाढ निद्रास्थ पुरुषकी तरह मौनत्वाश्रित हुए सोते ही रहे। बल्कि यहांतक कि उसके अतीव समीप आकर जगानेके लिये अनेक प्रयत्न करनेपर भी आप टससे मस न हुए। इससे वह कुछ क्रुद्ध हुआ। और आपके पैर पकड़कर मन्दिर द्वारके विपरीत करने लगा। पैरोंके हस्त लगाने और उनको इधर करने तक तो वह यही समझ रहा था कि यह यहींका कोई मनुष्य है परन्तु यह उसको आत्यन्तिक विस्मयमें डालने वाला कोई अन्य ही मनुष्य निकला। कारणकि वह जब २ आपके पैर पकडकर जिस २ ओर फेरता था। उसको उसी २ ओर मन्दिरका द्वार दिखलाइ देता था। हय देख वह स्वयं आश्चर्यके समुद्रमें विलीन हुआ अन्य मनुष्योंके समीप गया। उसने उनको भी इस घटनासे विज्ञापित किया। इधर प्रार्थनाका अवसर भी आ पहुँचा था। अतएव कुछ मनुष्य तो प्रार्थना करनेके लिये और अधिक इस श्रुत कुतूहलके निश्चय प्राप्त करनेके लिये वहां आ उपस्थित हुए। तथा आपको फिर तादृश चक्र देकर श्रुत वृत्तान्तका निश्चय करने लगे। परन्तु बात असत्य नहीं थी उन्होंने जिस २ और आपके पैर किये उसी २ ओर मक्केका दर्शन हुआ। समस्त दर्शक लोग हस्तसे हस्त विमर्दन करते और विविध विचित्रो दाहरणोंके सहित अनेक गाथाओंका उद्घाटन करते थे। ठीक ऐसी ही दशामें श्रीनाथजीने अपना वास्तविक वेष स्फुटकर उनसे कहा कि उपस्थित सज्जनों! इस घटनाको देखकर तुमको विशेष चकित नहीं होना चाहिये। यद्यपि योगियोंके लिये यही क्या इससे भी अधिक महान् आश्चर्योत्पादक घटना उपस्थित कर दिखलाना कोई बडी बात नहीं है। तथापि इसका यह मतलब नहीं कि योगी लोग इन्हीं सिद्धियोंसे अपने आपको कृतकृत्य समझते हों। कृतकृत्य होनेके लिये तो ब्रह्मरूपावस्थाकी प्रापक नैरन्तर्य सामाधिक दशा ही विशेष उपकारक हो सकती है। फिर क्या बात है हमलोग कृतकृत्य करने वाली उस दशाका परित्याग कर जहां तहां इन सिद्धियोंका उद्गार क्यों और किस कारणसे किया करते हैं। यह इसी हेतुसे किया करते हैं कि उस सामाधिक दशामें निपुण होकर हम स्वयं तो कृतकृत्य होनेके योग्य हो गये हैं पर करुणानिधि भगवान् आदिनाथजीकी प्रेरणा-नुसार अन्य मुमुक्षु जनोंको भी उस पदपर चढानेकी अभिलाषा रखते हैं। और अपनी

सिद्धिरूप यन्त्रके द्वारा अनेक जनसमुदायको अपनी ओर आकर्षित कर निरीक्षण किया करते हैं कि इस समुदायमें कौन ऐसा पुरुष है जो उस पदपर चढनेके लिये तैयार हो। ठीक इसीके अनुकूल मैंने अपनी सिद्धिस्वरूप यन्त्रसे तुमको आकर्षित कर एकत्रित किया है। और मुमुक्षु जनान्वेषणाके तथा कर्तव्य पालनाके लिये यह और प्रकट कर देता हूं कि जिस शुद्धाशय महानुभावको सांसारिक विविध विचित्र दुःखोंने अत्यन्त तिरस्कृत करडाला हो और वह इसी लिये स्वयं उनसे निसङ्ग रहनेकी अभिलाषा कर प्रत्युत उन्हींका तिरस्कार करना चाहता हो तो आजसे ही गार्हस्थ्यमोह पाशको खण्डशःकर किसी योगीका आश्रय ग्रहण करले। आज वह दिन है जिसमें सुयोग्य योगियोंका सम्मेलन होना दुर्लभ नहीं है। इतना होनेपर भी कोई मुमुक्षु मनुष्य इधर ध्यान न देकर दुःख त्रयसे पीडित रहै तो उसका ऐसा करना वैसाही है जैसा किसीका जल प्रवाहित नदीके कूलपर बैठा रह कर भी तृषासे आकुल रहना। बस यही आवाज हमने आप लोगोंके श्रोतों तक पहुँचानीथी। अब हम अपने आसन पर जाते हैं। भगवान् मक्षाधीश महादेव तुमको कल्याण प्रदान करे। इस कथन के अनन्तर आपतो अपने आसन पर आ विराजे, उपस्थित लोग स्वकीयाभीष्ट कार्यमें प्रवृत्त हुए। यद्यपि प्रातःकाल होते ही फिर अनेक नर नारियोंने उपस्थित हो आपकी उचित अभ्यर्थनाकी और चार ४ मुमुक्षु महानुभावोंके हृदयको आपकी चेतावनीरूप बाणने असाधारण विभिन्न भी कर दिया तथापि इस समय कोई मनुष्य आपकी शरणमें नहीं आया। तदनु आप यहांसे प्रस्थानित हो फिर भ्रमण करने लगे। और कुछ समयके अनन्तर भारत विभाजक शलेमान पर्वतपर आ विराजे। उधर उक्त चारों मुमुक्षु महानुभाव यद्यपि किसी विशेष कारणसे उस समयतो आपकी चरण च्छायामें न आसके थे परन्तु पीछेसे एकत्र सम्मति कर वे महोपरामी हुए आपके अनुगामी बने। और जिधर आपके गमनका परिचय मिलता गया उधर चलते रहे। परं हत भाग्य वे अभीतक आपको प्राप्त न कर सकेथे। यहां जब कि श्रीनाथजी इस पर्वत पर निवास करनेवाले स्वशिष्य शिक्षारत योगियोंके विशेष आग्रहानुरोधसे दो चार दिन विश्रामित होगये तब तो उनको भी आपके निकट आ प्राप्त होनेका कुछ सुभीता मिला। तथा सम्भवथा कि आप एक अथवा दो दिन भी और गति स्थगित रखते तो उनको आपकी चरण च्छायामें बैठ कर स्वकीय गमन श्रान्ति निवारण करनेका सौभाग्य प्राप्त होजाता, परं जिस दिन वे इस स्थान पर पहुँचे उस दिन आप इस पर्वतसे नीचे उतर चुकेथे। योगियोंके द्वारा यह समाचार उपलब्ध कर वे भी अविलम्बसेही नीचे अवतारित हुए। और शीघ्र गतिसे आपका अनुसरण करते हुए अन्ततःआपके अतीव समीपतक पहुँच ही गये। इधर उनका इस भावसे अपने पीछे

चलते आना आपसे भी अविदित न रह गया था। अतएव आपने अपने मन्त्र प्रभावसे *पृथिवीमें गर्त निर्माण कर उनको देखते ही उसमें प्रवेश किया। यह देख वे बडे ही खिन्न चित्त हुए। और समझ गये कि हम लोग सौभाग्य शाली नहीं हैं। जबकि श्रीनाथजी मुमुक्षुजनोद्धारके लिये ही देशाटन करते हैं तब हमको देखकर उनका अन्तर्धान होना इस बातको स्पष्ट सूचित कर रहा है कि हम दुर्भाग्यशाली एवं योग क्रियाओंके अनधिकारी मनुष्य हैं। अब क्या करें और उनको कैसे प्राप्त करें। अच्छा होता यदि उसी समय उनके चरणकमलका आश्रय ग्रहण कर लेते। किसीने यह सच कहा है कि अवसर बीता फिर हस्तगत होना सुलभ नहीं होता है। हम लोगोंने अवसर उल्लङ्घित कर कितने ही दिनके निरन्तर गमनका असाधारण परिश्रम भी उठाया तो भी लक्ष्यवस्तुको प्राप्त न कर सके। अच्छा जो भी कुछ हो शुद्ध सङ्कल्पसे पीछे हटना समझदार मनुष्योंका काम नहीं है। हम लोगोंने जो कुछ धावन प्रधावन किया सो किया अब एक कदम भर भी आगे नहीं चलेंगे। एवं एक कदमभर पीछे भी न हटकर अपने प्राणोंकी यहीं अन्तिम दशा देखेंगे। जिससे कुछ ही दिनमें यह स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि देखें श्रीनाथजी हमको अपना आश्रय देते हैं अथवा हमको अपने प्राणपत्ती बनाने देते हैं। इत्यादि विचारा विचारके अनन्तर आपकी प्राप्तिके उद्देशसे अपने प्राणों तकको न्योछावर करनेका दृढ निश्चय कर वे चारों महानुभाव उसी जगह बैठ गये। और श्रीनाथजीका ध्यान रखते हुए पूर्व चिन्तित वृत्तके पूरा करनेका प्रयत्न करने लगे। इधर श्रीनाथजी उनके परोक्ष भागमें कुछ ही अन्तरपर पृथिवीसे बहिर निकल कर उनकी विश्वासता एवं दृढताको परीक्षित कर रहे थे। आपने अभिमतानुकूल जब इस बातमें उनको उत्तीर्ण देखा तबतो अत्यन्त प्रसन्न होकर आप उनके सम्मुख आ खडे हुए। यह देखते ही उनकी शुष्क आशालता फिर हरीभरी हो उठी। और वे सादर आपके चरणोंमें गिरे। अधिक क्या आपने उनको स्वीकार कर धैर्यान्वित किया। और अपने सन्देशके साथ स्वकीय शिष्य सूर्यनाथकी सेवामें प्रेषित किया। इस प्रकार उनको उचित मार्गपर चढाकर आप फिर यहांसे प्रस्थानित हुए। और मारुस्थलीय तथा मध्यवाड आदि प्रान्तोंमें भ्रमण करते हुए कुछ दिनमें गिरनार पर्वत पर पहुँचे। यहां कुछ दिनके विश्रामसे आपने अपने उत्तर दायित्वकी सफलताका पूर्ण रीतिसे अवगमन किया। सौभाग्य आपको अपना कार्य प्रशस्य विधिसे समाप्त हुआ दीख पडा। यही कारण हुआ आपने अपने आपको सर्वसाधारणकी दृष्टिसे परोक्ष बनानेका सङ्कल्प किया। और योगिसमाजको एकत्रित करनेके लिये सूचना

---

* यह स्थल शाहेदी पिशावर नगरके समीप है और इस वृत्तान्तका स्मारक रूप यहां प्रति रविवार हिन्दु मुस्लिम लोगोंका मेला भी लगता है।

भी प्रेषित कर दी। कुछ ही दिनके बीतनेपर सूचित योगियोंने उपस्थित हो गिरनार शिखरको आच्छादित कर लिया। यह देख आपने अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए कहा कि उपस्थित योगिवृन्द! भगवान् आदिनाथजीकी आज्ञा, जो हमको गुरुद्वारा प्राप्त हुई थी, यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि उसके पालन करनेमें हमने कुछ उठा रक्खा हो। प्रत्युत इतने दीर्घकाल पर्यन्त नैरन्तर्य प्रयत्नसे आज तक हमने उसको असाधारण विस्तारमें परिणत कर दिया है। यही कारण है वह भारतके ही प्रत्येक प्रान्तोंमें नहीं अन्य देशीय प्रान्तोंमें भी सादर व्यवहृत की जाती है। ऐसी दशामें ईश्वर न करे हम अहङ्कारका शब्द कह उठे परं इतना जो कि प्रत्यक्ष है अब कहें तो कह सकते हैं कि हम अपने कार्यमें कृतार्थ हो अलक्ष पुरुषकी गोदमें बैठनेके योग्य बन गये हैं। अतएव हम आजसे आपलोगोंके वर्तमान सम्बन्धका परित्याग कर उसी जगह बैठनेके विशेष उद्योगमें लीन होनेके निमित्त यहांसे प्रस्थान करते हैं। भगवान् आदिनाथ आपको और आपके प्रचारको सकुशल बनाया रक्खें। परं चलते समय हम आपको एक सूचनासे और सूचित करना चाहते हैं। और वह यह है कि संसारमें प्रकृति एवं ईश्वरके नियमानुसार किसी भी मनुष्यने किसी कार्यको न तो सदा किया है और न कोई सदा करेगा। किन्तु दो दिन पहले वा हमारेकी तरह दो दिन पीछे उसको अवश्य ही उस कार्यसे विरहित होना पडता है। अतएव वह कार्य प्रचलित रहना न रहना अनुयायी लोगोंके ऊपर ही निर्भरता रखता है यदि अनुयायी लोग सुयोग्य होते रहें और अपनी उचित प्रथाका सञ्चालन करते रहें तो उसके द्वारा उनका तो भला होता ही है साथमें मनुष्यसमाजका भी भला हो सकता है। अन्य था जो सम्भव है सो होता ही है। इसलिये हम चाहते हैं कि जिस प्रकार गुरुजियोंकी उपस्थिति अनुपस्थितिमें हमने इस प्रथाको प्रतिष्ठित रक्खा है आपलोग भी इसको ऐसी ही रखनेका प्रयत्न करते रहें। और इस कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिये यम नियमादि आठ सिद्धान्त सोपानोंमें अनास्था रखने वाले मनुष्यको कभी अपना कृपापात्र न बनायें। कभी भूलकर भी ऐसा करनेमें प्रवृत्त हुए तो समझ लो हमारी यह प्रतिष्ठा बालूकी भीत बन जायेगी। जो उन अनधिकारियोंकी ओरसे मरम्मतका असम्भव होनेके कारण शीघ्र ही नष्टभ्रष्ट हो जायेगी। बस हमने तो यही कहना था। अब हम जाते हैं। गुरुभाई गोपीचन्दनाथ! तथा शिष्य भर्तृनाथ! देखना हम जाते हैं, यह कहकर आपने अपने शरीरको लघु बनाते हुए उदान वायुको वशंगत किया। उधर इस कृत्यमें परिणत होते समय आपको योगिसमाजने अपनी विनम्र अन्तिम प्रणतिसे सत्कृत किया। और आपके, दोनोंका, नाम उच्चरण करनेसे उसने आजसे ही गोपीचन्दनाथ भर्तृनाथजीको अपने सर्व प्रधान निश्चित कर लिया। इस प्रकार असाधारण प्रैतिक प्रणतिके तथा अपने

भावार्थ समझनेके प्रत्युपकारार्थ फिर आशिस प्रदान करते हुए श्रीनाथजी वि. सं. ४५० में आकाश गतिके द्वारा कैलासके लिये उड्डीयमान हुए। आजका दिन बडा ही विलक्षण था। जिसमें भारतको ही नहीं पार्श्ववर्त्ती अन्य देशोंको भी अपने असाधारण प्रकाशसे प्रकाशित कर भारतका एक सूर्य चिरकालके लिये अस्ताचलकी ओटमें छिप गया। परन्तु पाठक! ध्यान रखिये सूर्यके अस्त होते ही यद्यपि प्रगाढ अन्धकारका साम्राज्य नहीं होता है तथापि ज्यों २ उसके अस्त होनेके अनन्तर अधिक क्षण व्यतीत होते हैं त्यों २ अन्धकार अपना आधिपत्य स्थापित करता जाता है। ठीक इसी उदाहरणका स्थल योगिसमाज बने बिना न रहा। खेद और अत्यन्त खेदके साथ कहना पडता है कि यद्यपि श्रीनाथजीका पाश्चात्य प्रकाशरूप जबतक भर्तृनाथादि महानुभाव देशमें प्रत्यक्षतया भ्रमण करते रहे तबतक तो अनधिकारी पुरुष समाजात्मक अन्धकारकी योगिसमाजात्मक संसारमें कुछ भी दाल न गली थी। तथापि श्रीनाथात्मक सूर्यके अस्त हो जानेपर ज्यों २ काल बीतने लगा और उसका गोपीचन्दनाथ तथा भर्तृनाथात्मक अवशिष्ट प्रकाश भी जब कुछ कालमें सङ्कुचित हो उसी सूर्यकी जगह जा विलीन हुआ तब तो अनधिकारी पुरुष रूप अन्धकारकी खूब ही दाल गलने लगी। और थोडे ही दिनमें उसका योगिसमाज रूप संसारमें पूर्ण साम्राज्य स्थापित हो गया। इसमें जो २ असाधारण अनर्थ उपस्थित हुए वे इसमें नहीं भगवान् आदिनाथ स्वास्थ्य प्रदान करे तो एक आधुनिक पृथक् इतिहासमें वर्णन करूंगा। यह इतिहास श्रीनाथजीको आजसे अपना अधिनायक न देखकर स्वयं भी आगे बढना स्थगित करता है। वन्देमातरम्।

इति श्री नाथान्तर्धान वर्णन नामक ५० अध्याय।

अनुवादक—चन्द्रनाथ योगी.

(विविध विषय)

॥ शास्त्रानुकूल समाज १ ॥

संसारमें यह वार्ता प्रसिद्ध है कि कोई भी मनुष्य चाहे जातिपांतीके विषयमें न्यूनकोटिका हो परं अपूर्व लोक हितैषितापर जिसने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया हो और उसकी यह भावना दृढ हो चुकी हो कि वह संसारकी उन्नतिमें अपनी उन्नति और अवनतिमें अपनी अवनति समझता हो तथा लोकोपकारक जिसमें अन्य भी अनेक गुण पाये जाते हों उस मनुष्यके ऊपर मुग्ध हुए तथा अपने तनमनधनको न्योछावर करते हुए लोग उसकी जातिपांतीके विषयमें उठनेवाले प्रश्नोंको न केवल त्याग ही देते हैं बल्कि उनका कभी नाम तक भी न लेते हैं। ठीक यही बात, जिसमें ब्रह्मचर्य अवस्थासे ही— संन्यास धारण करलेनेका निषेध नहीं है ऐसे इस धर्म शास्त्राज्ञा अप्रतिकूल योगि समाजके विषयमें भी हुई समझना चाहिये। इसके उदय कालमें कभी ऐसा ही अवसर उपास्थित हुआ था। जिसमें इसकी असाधारण जनोद्धारकतात्मक अपूर्वलोक हितैषितापर मुग्ध हुए लोगोंने मनुस्मृति आदि धर्म ग्रन्थोंमें, किस अवस्थामें संन्यास लेनेकी आज्ञा है, इत्यादि समस्त रहस्यको समझते हुए भी इस समाजके समालोचक बनकर कभी इसके विषयमें जिकरा तक न किया। परन्तु बलिहारी है इस कालचक्रकी, जिसमें कोई भी वस्तु सदा एक रस नहीं रहती है। यही कारण हुआ इस समाजकी वह असाधारण लोक हितैषिता दीर्घकाल पर्यन्त अपना साम्राज्य स्थापित रखकर फिर चिरकालके लिये प्रस्थानित हो गई। जिसका आज कहीं भी दिग्दर्शन होना दुष्कर ही नहीं असम्भव हो रहा है। यह देखकर उसके फलसे वञ्चित रहते हुए लोगोंकी अब आँखें खुल आई। अतएव वे अब पुकार २ कर कहने लगे हैं कि दिखलाओ २ शास्त्रोक्त संन्यासाश्रमसे अतिरिक्त यह पञ्चम आश्रम जो कि योग पन्थ नामसे प्रसिद्ध हो चुका है कहां लिखा है। उन महानुभावोंको हम यह बतला देना चाहते हैं कि (त्रयोधर्मस्कन्धाः)इत्यादिके द्वारा केवल अनुवाद मात्र होनेसे वेदके किसी भी स्थलमें वर्णाश्रमोंके विषयकी विशेष व्याख्या न होनेके कारण मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थोंमें ही (लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः—ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्। श्लोक ३१ अ० १। वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयभागमायुषः—चतुर्थमायुषो भागं

त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत् ३३ । आश्रमादाश्रमंगत्वा हुतमोहो जितेन्द्रियः-भिक्षावलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्यवर्धते ३४ अ. ६× इत्यादिके द्वारा उसकी विशेष रूपसे उपलब्धि है । इन ग्रन्थोंके निर्माता कौन हैं मनु आदि, उधर योगि समाजके संगठन करनेवाले कौन हैं श्री महादेवजी ! कहिये और बतलाइये इन सब महानुभावोंमें आप किसको अधिक श्रद्धास्पद समझते हैं । यदि आप सचमुच वास्तविक बातकी ओर झूकेंगे तो श्रीमहादेवजीके ही पक्षपाती हो सकेंगे । और उनकी आज्ञाको ही विशेष सत्कार दे सकेंगे । इसके अतिरिक्त पौराणिक दृष्टिसे आप सभी महानुभावोंके विषयमें समान बुद्धि रक्खेंगे तो भी सर्वथा यह नियम नहीं है कि समान कोटिगत कोई पुरुष किसी कृत्यका उद्धार कर दे तो सर्वदा वह विशेष आदरणीय समझा जाय । किन्तु उसी कोटिका कोई अन्य पुरुष यदि पूर्व कृत्यसे भी अधिक उत्तम कृत्य कर बैठे तो वह प्राथमिकसे अधिक माननीय और पूर्वीय कृत्यको तिरस्कृत करनेवाला समझा जाता है । आज भी कोई व्यवहारोपयोगिकलाकौशल्य निपुण मनुष्य एक दूसरेसे अनूठी शिल्पताका चमत्कार दिखलाता है वह विशेष लोकोपकारिणी हो तो लोग उसका प्राथमिकसे अधिक सपुरस्कार सम्मान करते हैं और कृतज्ञताके साथ उसको ग्रहण भी करलेते हैं । इसी प्रकार महाराज मनु आदि द्वारा प्रचारित हुई चतुर्थाश्रमीय संन्यासात्मक प्रथासे इस प्रथाको भी उत्तम एवं अधिक जनोपकारिका समझ कर इसे सादर स्वीकार करना चाहिये । यदि यह कहो कि ऐसा होनेपर पूज्य महानुभावोंकी आज्ञा एक दूसरेकी आज्ञाका खण्डन करने वाली निश्चित होगी क्योंकि मनुजीकी तो ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वाणप्रस्थके अनन्तर संन्यासी बननेकी आज्ञा है और श्रीमहादेवजीकी सभी अवस्थाओंमें संन्यास धारण करनेकी आज्ञा निश्चित हुई तो हम यह बतला सकते हैं कि मनुजीकी आज्ञा सर्वथा नियम बद्ध नहीं है । अर्थात् उसका यह नियम नहीं है कि मनुष्यको तीन आश्रमोंके पश्चात् ही संन्यासी होनेका अधिकार है । किन्तु यह नियम है कि जो मनुष्य इतना विषयासक्त हो, कि तीनो आश्रमस्थ दशामें जिसके कभी यह उत्कण्ठा उपस्थित न हुई हो कि ईश्वरका प्रिय बनना चाहिये, इस चतुर्थावस्थामें तो उसको भी अवश्य विषयोंका परित्याग करना चाहिये । और ईश्वरका प्रियपात्र बननेके लिये यथासाध्य प्रयत्न करना चाहिये । परन्तु जो मनुष्य स्वभावसे ही विषयलोलुप नहीं होता हुआ हरएक समय और हरएक दशामें ईश्वरकी कृपा प्रसादका भिक्षु रहता है ऐसा मनुष्य अपना अमूल्य समय नष्ट न करे । वह चाहे जभी संन्यासी हो सकता है । मनुजीकी आज्ञाका यही अभिप्राय है । जिसकी पुष्टि (यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजे॰ वनाद्गृहाद्वा) अर्थात् वनमें हो या घरमें हो जिस समय वैराग्य हो जाय उसी समय संन्यासी हो जाना चाहिये, इत्यादि श्रुति वाक्य भी करते हैं । इससे आप समझ गये होंगे कि श्रीमहादेवजीने

इस मार्गको प्रचलित कर मनु महाराजादिकी आज्ञाका भङ्ग नहीं किया है। प्रत्युत दुर्विज्ञेय वेद आज्ञाको प्रस्फुट कर मुमुक्षुओंका मनु आदिकी आज्ञा विषयक भ्रम दूर किया है। इसीलिये यह प्रथा मनु आदि द्वारा प्रदर्शित प्रथासे अधिक जनोपकारक भी समझना चाहिये। यदि आ बाल वैरागी मनुष्य, जो कि सर्वत्यागी हुए विना अपने उद्देशकी सिद्धि नहीं कर सकता है, भला आप ही बतलाइये वह चतुर्थावस्थामें आज्ञापित मनुजीकी विधिकी प्रतीक्षा करता रहे तो उसका कितना स्वार्थ नष्ट हो सकता है। जहां तृषा शान्त करनेको जल न मिले वहां स्नान कैसे कर सकता है ठीक इसी कहावतके अनुसार उस अन्त दशामें तो जबकि कीड़ी मोकोड़ी मरने आदिके द्वारा होने वाला पाप ही निवारित होना दुष्कर है तब वह मनुष्य अपने आपको संसारार्णवसे पार करनेका सुभीता कैसे प्राप्त कर सकता है। अर्थात् नहीं कर सकता। अतएव मुमुक्षु जनोंके मोक्षसाधक योगक्रियाओंमें कुशलता प्राप्त करनेके लिये यह संस्था महोपकारक समझी जा सकती है। और समझी गई है। जिसकी महोपकारकताका प्रमाण लोक प्रसिद्ध नवनाथ चौरासी सिद्ध आज हमारी स्मृतिगोचर हैं। जो सदाके लिये संसारसागरसे पार हुए अलक्ष पुरुषकी गोदमें जा विराजे हैं। क्या आप बतला सकते हैं किसी दूसरी विधिसे भी इतने शीघ्र इतने महानुभाव ऐसे पदपर पहुँचे हों। यदि नहीं तो इस बातका यह स्पष्ट अर्थ है कि आबाल मुमुक्षु महानुभाव अन्तिम अवस्थामें होनेवाली मनु आदिकी संन्यस्त विषयक आज्ञापर टकटकी लगायें रहकर अपना समय हस्तसे न जाने दें। प्रत्युत सर्व त्यागी हो शीघ्र ही किसी सुयोग्य योगीका आश्रय ग्रहण कर अपने गम्यस्थानको समीप करें। अतएव योगिसमाज अर्थात् इस प्रथाकी अत्यन्त आवश्यकता थी। यही विचार कर करुणानिधि भगवान् श्रीमहादेवजीने इसका उद्धार किया है। जिससे उनको आदिनाथ कहलानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इससे आप समझ चुके होंगे कि योगिसमाजका संगठन वेद विरुद्ध और निष्प्रयोजन नहीं है। तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि योगिसमाज धर्मशास्त्रोक्त संन्याससे बहिरभूत है किन्तु सिद्धान्तित योगोपाय द्वारा ही बहुलतया ब्रह्म प्राप्ति करनेके कारण संन्यासित्वोपहित हुआ भी (योगिसमाज) इस महा गौरवजनक शब्दसे अपने आपको विशेष सत्कृत समझता है। यही कारण है संन्यासित्वका अभिमान न रखने वाले वैरागी, उदासियोंकी तरह योगियोंके शवका अग्निसंस्कार नहीं होकर धर्मशास्त्रानुसार भूमि सामाधिक संस्कार ही होता है

॥ कर्णकुण्डल २ ॥

भारतवर्ष प्राचीन कालसे ही केवल व्यावहारिक विद्यामें नहीं ब्रह्मविद्यामें भी अन्य देशोंकी अपेक्षा विशेष उत्कर्षता प्राप्त करता चला आया है। परं सदा किसीकी बात बनी रहनी बडी ही दुष्कर है। यही कारण हुआ कुछ समयसे भारतमें ब्रह्मविद्याका तो क्या अहर्निश व्यवहारमें आने वाली लौकिक विद्याका भी अभावसा दीखने लगा था। परन्तु सौभाग्यका विषय है अब समयने कुछ पलटा खाया है। जिसमें समस्त प्रकारकी विद्याओंमें लालायित हुए नवीन प्रतिभाशाली नवयुवक यथा साध्य प्रयत्न करने लगे हैं। उस परम पिता ईश्वरको असंख्य हार्दिक धन्यवाद हैं जिसकी कृपाकारण कलापसे इन देशीय महानुभावोंमें कितने ही अपने प्रयत्नकी सफलता देख चुके हैं और देखते जा रहे हैं। इनमें ऐसे पुरुष भी अनेक हैं जो उक्त प्रश्नोंके साथ २ इस योगिसमाज निष्ठ कर्णच्छिद्र प्रथाके उद्देशसे यह भी प्रश्न जोड दिया करते हैं कि ऐसा करनेकी आज्ञा देने वाला लेख कौन शास्त्रमें है जिसको देखकर हम भी इस व्यवहारको उचित समझ लें। कारणकि कोई भी प्रथा प्रचलित की जाय वह श्रद्धेय जभी हो सकती है कि यातो माननीय शास्त्र-विधिके अनुकूल हो अथवा शास्त्रविधिसे घनिष्ट सम्बन्ध न रखती हो तो असाधारण लाभ देने वाली हो। परन्तु योगसाधनीभूत किसी क्रियाओंमें सहायक होनेके कारण यह कर्ण-च्छिद्रता कुछ लाभदायक हो ऐसा तो सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त शास्त्राज्ञानुरोधसे ही हम इसको कुछ सत्कार दे सकते हैं। अतः कहिये और बतलाइये कौन शास्त्रमें ऐसा करनेकी आज्ञा है। उन महानुभावोंके इस प्रश्नके उत्तरार्थ हम यह कह सकते और निःस्वार्थ भावसे यह स्वीकार कर सकते हैं कि हां हम भी आपके मन्तव्यमें सम्मिलित हैं। योगियोंका मुख्य सिद्धान्त योगोपाय द्वारा दुःखत्रयसे स्वकीय पिण्ड छुटा कर उससे दूसरोंको भी विमुक्त करनेका है जैसा कि सब योगाचार्योंने किया है। ठीक इसी योगके साधनोंमें इस कृत्यकी किसीमें गणना नहीं है। गणना ही नहीं यह कुछ उपयोगी भी नहीं है। अतएव अनुपयोगी अनुपकारी होनेके कारण इसका किसी शास्त्रमें उल्लेख नहीं है। तो फिर किस कारणसे यह प्रथा प्रचलित हुई। और क्यों व्यवहारमें लाई जाती है। इसका हेतु यह है कि श्रीमहादेवजी जिस स्वरूपसे विद्यमान थे उन्होंने अपने शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ ज्वालेन्द्रनाथजीको भी वही स्वरूप प्रदान किया था। इस वृत्तान्तको आप उनके शिष्य होनेके वर्णनमें पढ ही चुके हैं। उक्त दोनों महानुभावोंने आग्रहके साथ गुरुजीसे स्वकीय स्वपरू प्रदान करनेकी अभ्यर्थना की थी। जिससे प्रसन्न हो श्रीमहादेवजीने उनको स्ववेष प्रदान करना

ही पडा। जिसमें कुण्डल धारणताका भी समावेश था। वस जो चिन्ह गुरुजीसे मिला उन्होंने वही अपने शिष्योंको दिया। इसी परम्परासे यह प्रथा प्रचलित हुई। नाद जनेऊ और कुण्डलादिसे युक्त ही पुरुष अपने आपको योगी कहलानेका दावा रखते हुए यह समाज श्रीमहादेवजीने ही संगठित किया है, इस वृत्तान्तका स्मारक रूप वन गये, इसी हेतुसे आजतक भी योगिसमाजके अनुयायित्वको अवलम्बित करने वाले योगी अपनेको शैव समझते हुए इस चिन्हको सत्कारके सहित धारण करते हैं। इस चिन्हके धारण करनेकी आज्ञा देनेवाले लेखको पूछने वाले महानुभावोंको वह लेख देखना उचित है जिसने श्रीमाहादेवजीको इस चिन्हके धारण करनेकी अनुमति दी हो। यदि वह मिल जाय तो आपका प्रश्न हल हुआ। आप उसीको आज्ञापक समझ लें। नहींतो लेखके अभावमें जब श्रीमहादेवजीने ही स्वयं इस चिन्हको धारण किया तो परम्परासे आगत इस चिन्ह धारणाके लिये हमको भी आज्ञापक लेखकी विशेष आवश्यकता नहीं है। और न श्रीमहादेवजीके प्रदानित इस चिन्हको सत्कार देते हुए हम लोग अपवादके एवं भूलके पात्र वन सकते हैं। इसपर भी यदि यह कहो कि शिवपुराणादिके लेखानुसार श्रीमहादेवजीका चर्माच्छादन शेली नाद एवं भस्म धारणादि चिन्हको स्वीकार कर सकते हैं। जिसके साथ कुण्डलोंका भी सहचार हो तो खैर हम उसमें अविश्वास नहीं रखते। परं साथमें यह विश्वास नहीं रखते कि उनके कुण्डल आधुनिक योगियोंकी तरह कर्णके मध्य भागमें विस्तृत छिद्र निष्ट हों। तो आपके इस कथनपर हम भी सहमत हो सकते हैं। और इस वातका हठ नहीं कर सकते हैं कि श्रीमहादेवजीके कुण्डल आधुनिकं योगियोंकी सदृश ही होंगे। परन्तु अधोभागमें अर्थात् नीचे होनेपर भी यह सम्भव है कि कुछ समयके अनन्तर परम्परा चलनेपर किसी माननीय योगीने यह सोचकर कर्णके मध्यमें कुण्डल धारण करनेकी आज्ञा दे दी हो कि अनधिकारी नहीं जो पूरा अधिकारी और वैराग्यवान् होगा वही पुरुष इस समाजमें पाविष्ट हो सकेगा। इस प्रकार इसमें न्यूनाधिक भाव करनेकी प्रतीति होनेपर भी यह सम्भव नहीं कि किसी साधारण योगीने अपनी ओरसे ही इस चिन्ह धारणात्मक प्रथाको प्रचलित किया हो जिसमें शास्त्रके लेखकी विशेष आवश्यकता पडे। हमको तो परम्परागत कुछ ऐसा किम्वदन्ति प्रवाद सुननेमें आया है कि जिस समय कारिणपानाथजीके शिष्यने श्रीनाथजीके विषयमें अविश्वास प्रकट किया था, जिसके अपराधमें शापका पात्र बनाकर वह समाजसे निकाल दिया गया था, उसी समयसे श्रीनाथजीने इस विशेषताका आरम्भ किया था। वहुत सम्भव है कि अवश्य ऐसा ही हुआ होगा। साधारण पुरुषकी आज्ञा प्रथम तो समाजको स्वीकृत होनी ही दुष्कर है। किसी कारणसे कुछ दिनके लिये स्वीकृत भी हुई तो उसमें इतनी श्रद्धा होनी और उस आज्ञाका चिरस्थायिनी होना सर्वथा असम्भव है। खैर जो भी कुछ

हो आगामी समयपर दृष्टि रखते हुए किसी विचारशील अन्य योगीने अथवा श्रीनाथजीने नीचेका चीरा ऊपर कर देना रूप विशेषता की है यह हमको अङ्गीकार है। किन्तु कुण्डल धारण प्रस्थाका नवीन शिरेसे प्रचलित करना अङ्गीकार नहीं। इसपर भी यदि यह कहो कि श्रीमहादेवजीके तो कुण्डल हैं ही नहीं, तो आपके पास कोई प्रमाण नहीं कि यह भी कह बैठें कि श्रीविष्णुजीके तथा उनके अवतारी रामकृष्णादिके भी कुण्डल नहीं हैं। क्योंकि रामलीला तथा कृष्णलीलाओंमें उनके प्रतिनिधि होने वाले लडकोंको आज तक भी तदनुकूल कुण्डल धारण कराये जाते हैं। क्या इनकी आज्ञा देने वाला भी लेख आपने कहीं देखा है। यदि देखा है तो उसीको आज्ञापक समझ लीजिये। इतना होनेपर भी यदि लेख ही देखनेका हठ करें (तो वैणवीं धारये यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम्, यज्ञोपवीतं वेदंच शुभे रौक्मे च कुण्डले। मनु- श्लोक. ३६ अ. ४– अर्थात् सदा आत्माके हितमें तत्पर रहने वाला महानुभाव बांसका दण्ड और यज्ञोपवीत तथा कुशाकी मुष्टि एवं सुन्दर सुवर्णके कुण्डल, इनको धारण करे आपको यह लेख देखना चाहिये। इन कुण्डलोंके नीचे और योगियोंके मध्य भागमें होनेसे कुछ भेद समझें तो वह हमने बतला ही दिया है। योगियोंने कुछ भविष्य लाभकी आशासे इस प्रथामें अधिक भाव कर दिया तो इसका कोई आश्चर्य नहीं। एवं न इसका यही अर्थ हो सकता है कि उन्होंने इस प्रथाको प्रचलित किया है। अतएव यह बात स्पष्ट है कोई भी प्रथा हो जिसका प्रथम शिरेसे आरम्भ किया जाता है उसके लिये ही आज्ञापक माननीय शास्त्रलेखकी आज्ञाका मुख ताकना पडता है। परं जो प्रथा अनादि कालसे ही प्रचलित है किसी असाधारण लाभकी आशासे उसमें न्यूनाधिक भाव करनेके लिये वैसा करनेकी बडीसी आवश्यकता नहीं। इससे यह स्पष्ट हो गया कि लाभार्थ वैसी प्रथामें कुछ फेर हुआ तो न तो वह शास्त्रविरुद्ध है और न अपवादका पात्र ही कहा जा सकता है। विष्णु तथा रामादिके कर्णोंमें अवलम्बित होने वाले आभूषणोंका नाम जैसे कुण्डल है वही नाम योगियोंके कर्णोंमें अवलम्बित होनेवालोंका है। जो आजतक भी नहीं पलटा है। हां इतना कुछ भेद अवश्य हो गया है कि कर्णच्छेदनके पन्दरह बीस रोजके अनन्तर जो मृत्तिकाके वे कुण्डल डाले ले जाते हैं जिनका चक्र, राम कृष्णादिकी प्रतिमानिष्ठ कुण्डलोंका देखा जाता है, ठीक उतना ही विस्तृत होता है योगी लोग विशेष करके उन्हींको आजकल कुण्डल कहा करते हैं। इनके अनन्तर डाले जाने वाले अल्प भारी कुण्डलोंको कभी २ कुण्डल और अधिक बार दर्शन करते हैं। इतने विचारसे यह सिद्ध हो गया कि श्रीकृष्णादिके कुण्डल देखनेसे श्रीमहादेवजीके भी उनका सम्भव है। और उन्हींका अनुकरण करने वाले हम किसी आज्ञापक लेखकी आवश्यकता नहीं समझते हैं।
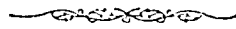
॥ योगियोंका सिद्धान्त और कर्तव्या कर्तव्य ३ ॥
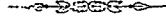
योगियोंका सिद्धान्त केवल योगोपायसे प्राप्त किये ज्ञान द्वारा दुःखत्रयसे विमुक्ति पाना है । विमुक्तिपानेमें जैसे योग साधन है इसी प्रकार योगके भी साधन हैं । उन यमनियमादि आठ साधनोंका श्रद्धेय बुद्धिके साथ गुरूपदेशानुकूल पालन करना अर्थात् उनका ग्रहण करना ही योगियोंका मुख्य कर्तव्य है । तथा इन्हीं आठ साधनोंसे अन्य उन कृत्योंमें, जो कि भ्रान्तिसे योगके साधन प्रतीत होते हों, प्रवृत्त होना योगियोंका अकर्तव्य है । यमनियम आदि आठ साधनोंसे शून्य रहते हुए योगियोंके ऐसे ये कृत्य हैं कि वलि, जन्त्र,मन्त्र,सेदेवी भैरव आदिको प्रसन्न कर उच्चाटन मारणादि क्रियाओंका प्राप्त करना । ध्यान लगनेकी सुगमताके हेतु मादक (नशेली) चीजोंका सेवन करना, क्रिया करते २ शरीर दुर्बल होनेपर उसको सवल बनानेके भ्रमसे मांसादि अग्राह्य वस्तुका ग्रहण करना । इत्यादि असाधन कृत्योंमें प्रवृत्त होना अकर्तव्य है । योगिसमाजमें प्रविष्ट हो कर इस अकर्तव्यपर चलने वाला कुत्सित चरित्र योगी जैसे सूर्यको मलीन न बनाकर धूलि वापिस पडनेपर स्वयं मलीन हो जाता है इसी प्रकार अपने कुत्सित चरित्रसे महा पवित्र वस्तु योग मार्गको दूषित न कर स्वयं भ्रष्ट हो मनुष्यत्वसे गिर जाता है । अतएव योगिसमाजमें प्रविष्ट होनेवाले महानुभावोंको इस वातसे खूब जानकारी प्राप्त करलेनी चाहिये कि हमारा कर्तव्य अकर्तव्य क्या है । आज कल वालासुन्दरी आदिकी उपासनामें समय नष्ट करते हुए योगी अपने आपको कृतकृत्य समझ कर मनमानी चीज खाते तथा मनमाना व्यवहार करते हैं । पर ध्यान रखना कभी वह दिन भी आयेगा उनकी ग्रीवा पकड कर यह पूछा जायेगा कि इस कृत्यकी योगके आठ साधनोंमें किसमें गणना है ॥

॥ योगवित्का कर्तव्य ४ ॥

प्रथम कहा कर्तव्य योगका अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधिका साधक है। उसमें निपुण होनेके बाद योगियोंका क्या कर्तव्य है वह यह है कि समाधिके द्वारा चैतन्य स्वरूपकी उपलब्धिके लिये अधिक समय व्यय करता हुआ भी योगी जागरित दशामें समय २ पर जनोपकारके लिये जनोंको योगका प्रभाव दिखलाता रहे। जैसा कि श्रीनाथादि योगाचार्योंने दिखलाया है। बल्कि सच पूछिये तो मैं तो यहां तक कहनेको तैयार हूं कि योगिसमाजका (नाथपन्थ) नाम ही इस जनोपकारताके कारणसे पड़ा है। श्री महादेवजीके-विद्वान्लोगोंने आशुतोष विश्वनाथ-और अविद्वान् लोगोंने भोलानाथ अर्थात् भूलेभटके जनोंको रास्तेपर लानेवालेस्वामी इत्यादिकी उपाधि इसी लिये लगा रक्खी हैं कि उनके हृदयमें जनोपकारताकी मात्रा अधिक हैं। यही कारण है वे थोड़ीसी स्तुति करनेपर शीघ्र प्रसन्न हो प्रार्थक की कामना पूर्ण करते हैं। जिससे उनकी विश्वनाथ भोलानाथ उपाधि खूब ही चरितार्थ हो जाती हैं। आपने अपना अन्वर्थनाम देखकर ही अपने शिष्योंका मत्स्येन्द्रनाथ ज्वालेन्द्रनाथ नाम रक्खा था। परं हर्षका विषय हैं वे महानुभाव केवल नाम रखनेसे ही नाथ न रहे किन्तु असाधारण जनोपकार कर गुरुजीकी तरह नामके अन्वर्थ भी हो गये। उन्होंने कलियुगके देवी भैरवभूत प्रेतादि अनेक भयानक देवी देवताओंको वशीभूत कर जनताके हृदयोंसे उनकी ओरका झूठा भय दूर किया। तथा सहस्रों वर्ष पर्यन्त प्रत्येक देशोंमें भ्रमण कर कितने ही पुरुषोंको योगवित् बनाकर दुःखत्रयसे विमुक्त कर डाला। उनका ऐसा अपूर्व हित देखकर जनताने उनको अपने हृदयका नाथ अर्थात् स्वामी निश्चित किया। ठीक इसी प्रकार जितने योगाचार्य हुए उन सभीने जनोंका ऐसा हित उपस्थित किया जिससे उनके हृदयमें आपोआप यह भावना उत्पन्न हो गई कि अवश्य ये हमारे नाथ अर्थात् मालिक हैं। जो अपने उद्देशसे विचलित न होते हुए हमको पुत्रकी तरह सन्मार्गमें प्रेरित करते हैं। अतएव स्वोद्देशपर डटे रहकर असाधारण जनोपकारके द्वारा उनका नाथ अर्थात् मालिक बनना ही है पन्थ अर्थात् मार्ग जिसका इस हेतुसे योगि समाजका नाम नाथपन्थ तथा योगियोंका नाम नाथ.पन्थी और नाथ पदान्त प्रचलित हुआ। बहुत लोग यह समझ रखते हैं कि योगियोंको कर्णच्छिद्री होनेके कारण नाथ उपाधिसे युक्त किया जाता है। परं वे भूल रहे हैं ऐसा ही होता तो जो कुण्डलधारी नहीं है उसको नाथ क्यों कहाजाता। अतएव इससे यह बात निर्वाद सिद्ध है कि चाहे कुण्डलधारी हो या न हो जो अपने मार्गमें डटा

रह कर जनोंके लिये असाधारण उपकारका अनुष्ठान करता है जनता उसीको अपने हृदयसे स्वागत कर नाथ समझती और कहने लगती है। जब कोई योगी दूसरेसे पूछता है कि अमुक स्थानमें रहनेवाला किस नामका योगी है। तब वह बतलाता है कि अमुक नाथ है। जब फिर वह पूछता है अवघड नाथ है फिर दर्शनी, तब वह कि बतलाता है कि ऐसा है। इससे यह निश्चय हुआ कि दर्शनीका ही नाम नाथ नहीं है! यदि ऐसा ही नियम होतो नाम बतलानेपर यह सन्देह नहीं होना चाहिये कि फलाणें स्थानपर रहनेवाला नाथ अवघड है कि दर्शनी। खैर जो भी कुछ हो अपनी नाथ उपाधिकी रक्षार्थ योगियोंको जनोपकार अवश्य करना चाहिये। परं खेद है आज कालके धनी योगी, जिन विचारे सेव. कोंका खून चूष कर धनी बन बैठे हैं उनको महादुःखी देखकर भी झटिति यह कह बैठते हैं कि ले श्वशुरोंके द्वारे हम क्यों जावें, क्या हम भूखे हैं जो उनकी खुसामन्द करें। सौ दुनियां मरती जन्मती है हमने किसीसे क्या लेना है। ठीक है योगीजी अब आपको बिलकुल कुछ नहीं लेना है। जो लेना था सो पाकेटमें आही चुका है। शोक ३

॥ गुरु ५ ॥

योगोपायद्वारा मोक्ष चाहनेवाला जब कोई पुरुष किसी योगीके समीप जाय और उसका शिष्य बनना चाहे तब उन दोनों महानुभावोंको यथार्थ बातकी ओर ध्यान देना चाहिये। और वह यह है कि शिष्य होनेवाला यदि पूर्ण योगवित् गुरु मिले तो उसका शिष्य हो नहीं तो गृहस्थाश्रम विहित कर्मोसे ही अपने आपको शुद्धाशय बनानेका यत्न करे। उधर गुरुको भी चाहिये यदि वह स्वयं योगवित् होकर शिष्यको स्वसदृश बनानेका सामर्थ्य रखता हो तो उसे शिष्य बनावे नहीं तो साफ कह दे कि भाई हम स्वयं अधम लटक रहे हैं। ऐसा करनेसे दो लाभ हो सकते हैं। शिष्य अधम लटकनेसे बचता है। बाबाजी उसके लटकानेके दोषसे वञ्चित रहजाता है। यदि यह कहा जाय कि वह समय गया, इस समय कोई योगवित् गुरुतो मिलेगा नहीं और विना योगवित् हुए कोई शिष्य बनावेगा नहीं तो ऐसे तो समाजका ही अन्त हो जायेगा, तो श्रीनाथजी तथा कारिणपानाथजीका संवाद ध्यानमें रखना चाहिये। श्रीनाथजीने स्वयं यह घोषणा कर दी है कि जो हमारे मार्गमें निपुणता प्राप्त नहीं करेगा न तो वह हमारा अनुयायी समझा जायेगा और न उसका यह हक है कि अन्ध परम्परा प्रचालित करनेके लिये दूसरोंको उपदेश करे। इससे सिद्ध

है कि योगवित्को ही गुरुबननेका अधिकार है और उसीको गुरु बनना चाहिये भी। ऐसा गुरु न मिलनेपर शिष्य न बनाने बननेसे सम्प्रदाय लुप्त होनेका भय हो तो हम पूछते हैं इसके कायम रखनेकी ही आज्ञा किसने दी है। श्रीमहादेवजीका उसको प्रचलित करनेका अभिप्राय केवल मुमुक्षुजनोंका उद्धार करनेका था, सो हो ही चुका। श्रीनाथजीने भी यह स्पष्ट कह डाला था कि, कारिणपानाथजी! समाजका प्रचलित रहना न रहना मुमुक्षुजनोंके ऊपर निर्भर है। जबतक वे मिलते रहेंगे तबतक योगवित् गुरु मिलते रहकर उन्हें भी योग वित् बनाते रहेंगे। परं जब उनका अभाव हुआ तो गुरु भी प्रत्यक्ष न रहेंगे। क्योंकि उनका तो प्रयोजन मुमुक्षुओंको उद्धृत करनेका है न कि ढोंग स्थित रखनेका। अतएव समाज कायम रखनेके अभिमानसे जो अनधिकारीको शिष्य बनाकर अपनी परम्परा चलाते हैं वे वाग्कि दण्डके भागी होंगे। कारण कि ऐसा करनेसे उनके दो अपराध निश्चित होते हैं। एक तो सम्प्रदाय लुप्त होनेके अभिमानसे अनधिकारीको शिष्य बनाकर श्रीनाथजीकी आज्ञाभङ्ग करना, दूसरा योगाचार्योंके अमर होनेमें अविश्वास प्रकट करना। क्यों कि इनको योगाचार्योंकी सत्तामें पूर्ण विश्वास होतो ये न तो समाज लुप्त होनेका सङ्कल्प उठावें और न इसको प्रचलित रखनेके लिये किसी अनधिकारीको शिष्य बनावें। परं इससे यह सिद्ध है कि जिस प्रकार इन गुरु बननेकी इच्छा वालोंमें योगक्रियाओंका लेश तक भी नहीं है इसी प्रकार ये ब्रह्माण्डभरमें योगेन्द्रोंका लेश तक नहीं समझते हैं। इसी लिये अन्ध परम्पराभी चलाते हैं। परन्तु ध्यान रखना चाहिये जिन्होंने इस समाजका संगठन किया है वे ही इसको कायम भी रख सकते हैं। जो सदासे रख रहे हैं और रक्खें भी गे। क्यों कि वे अजर अमर हैं। संसारमें न जानें कितनी वार अपना नाटक दिखा चुके हैं और दिखावेंगे। हमारा झूठा अभिमान है। हम कुछ शक्ति नहीं रखते जो वैसा करें। हम तुच्छ हैं अनधिकारी हैं। उनके नाम प्रतिष्ठा और समाजको कलङ्कित करनेके सिवाय और कर ही क्या सकते हैं। इस लिये हमको चाहिये कि बहुत सावधानीसे रहैं। झूठे अभिमानसे आचार्योंकी आज्ञा भंगकर अपराधीन बनें॥

॥ व्यवहार ६ ॥

गुरु शिष्यका पारस्परिक व्यवहार वैसा ही होना चाहिये जैसा कि इस ग्रन्थसे सूचित होता है। अर्थात् शिष्य गुरुके महत्वको पूरीतरह समझे। प्रत्युपकारार्थ तीन समय नहीं तो दो समय अवश्य गुरुजीकी आदेशात्मक हार्दिक प्रणति करे। तथा गुरुसे उचित स्थानपर बैठे और उचित आलाप करे। यदि गुरुकी अनुमति होतो समीप रहे नहीं तो

समाधिद्वारा एवं योगोपदेश द्वारा अपने उत्तरदायित्वको हल करे। परं इस बातका खूब ध्यान रक्खे कि गुरु उसकी भलाईके लिये जो चाहता है वह उसी बातको करे। जो बात गुरु चाहता है वह यह है कि मेरा शिष्य ईश्वरका प्यारा बने न कि मेरा ही। क्योंकि इसका और मेरा भी उसीके प्यारे बननेसे कल्याण है। अतएव योगियोंको स्मरण रखना चाहिये अपनी स्वाभाविक अवस्थामें भी ईश्वरके प्रिय पात्र बननेके लिये उसकी महिमा कथन करना चाहें तो केवल प्रणवजापसे अतिरिक्त और टायें २ न करें। इस बातका रहस्य न समझने वाले योगी शिवगोरक्ष २ बाबा २ गुरु २ रटते २ तुमाम दिन व्यतीत कर देते हैं। यदि उनसे यह पूछा जाय कि जिनका तुम नाम रटते हो उन्होंने तुमको यही उपदेश दिया था कि और। यदि यही दिया हो तो तुमको सोचना चाहिये कि वे भी इसी नाम रटनेसे पार हुए कि और से, यदि इसीसे पार हुए तो यह कहना असत्य है आज तक कोई भी अपने ही नाम रटनेसे पार नहीं हुआ है। यदि औरसे कहो तो तुम भी उसीको क्यों न पकडो जिसको उक्त तीनोंने पकडा है। पेडसे शाखा शाखासे प्रशाखा और उससे भी पत्तोंपर उतरनेकी क्या आवश्यकता है। क्या तुम नहीं जानते हो पेडसे शाखा कमजोर होती है। और उससे भी प्रशाखा तथा उससे पत्ते तो इतने कमजोर होते हैं कि पेडके रहते २ न जाने कितनी वार गिर जाया करते हैं। अतएव पत्तेका स्वभाव है कि टूट जाता है जिससे अधःपतन होकर सर्वस्व खो बैठनेका भय है। यद्यपि (स एष सर्वेषामपि गुरुः) इत्यादि दार्शनिक सूचनाके अनुसार गुरु नाम ईश्वरका भी है। इसलिये गुरु २ जपनेसे भी हम ईश्वरका ही जाप कर सकते हैं। तथापि कोई बात हो उसका फल अभिप्रायके अनुकूल हुआ करता है। किसी एकाधके विना सबका यह अभिप्राय नहीं होता है कि वे इत्यादि सूचनानुसार ईश्वरको ही गुरु मानते हों। किन्तु वे इसी शिखा कर्त्तक गुरुका उद्देश रखते हैं। शिष्यकी तरह जब गुरु स्वयं मनुष्यत्वावच्छिन्न हुआ ईश्वरके प्रिय बननेका प्रयत्न कर रहा है तब शिष्यके जापको कैसे समझेगा और उसकी आशाके अनुकूल फल कैसे दे सकेगा। परं खेद है यह बात किसीके सामने कही जाती है तो वह लडनेको तैयार हो गुरुमें अविश्वास प्रकट करानेका दोष लगा बैठता है। मैं कहता हूं आप कृपा करें गुस्से न हों और यह न सोचें कि सचमुच जैसा आप समझ बैठे हैं मैं वैसा ही कर रहा हूं। किन्तु मैं यह प्रकट करना चाहता हूं जिस स्थानमें हमको जाना हैं उसमें जब एक निष्कण्टक सीधा रास्ता जाता है तो उसको छोडकर सकण्टक असीधे रास्तेसे पहुँचना कहांकी बुद्धि मानी है। किन्तु नहीं। यदि यह कहा जाय कि गुरु बाबा और गोरक्ष नामकी रटना द्वारा ईश्वरका प्रिय बनना सकण्टक रास्ता कैसे है तो मैं यह बतला सकता हूं कि यह रास्ता जितना ही काटों वाला

हैं और इससे जो २ अनर्थ उत्पन्न होते हैं वे सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो आपसे भी छिपे न रहेंगे। जिसके उदाहरणकी अन्वेषणार्थ दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। योगिसमाजमें ही ले लीजिये। इस समाजमें जो आज इतना वैमनस्य दीख रहा है कि एकके दूसरेको देखते ही आँखोंसे द्वेषाग्निकी लटायें दीप्त हो जाती हैं। यह सब इसी रास्तेका अर्थात् रटनाओंका फल है। कहीं भी नाके घाटेपर बाबाकी रटना सुन उनके और गोरक्षकी रटना सुन इनके शीघ्र द्वेषाग्निका अङ्कुर उत्पन्न हो जाता है। जो थोडासा भी तृण मिल जानेपर प्रज्वलित हो जाया करता है। जिससे सांसारिक लोगोंको योगिसमाजकी आभ्यन्तरिक स्थितिका अच्छा पता लग जाता है। कहिये इससे भी अधिक आप और क्या कांटे समझते हैं। यदि हमलोग पहलेसें ही पेडरूप प्रणव जापसे या खैर शाखारूप शिव गोरक्ष जापसे ही सम्बन्ध रखते तो आज यह सकण्टक रास्तेपर चलनेका दोष हमको दूषित न करता। हां श्रीनाथजी, बाबा, और गुरु हमारे पूज्य अवश्य हैं अतएव प्रतिदिन सान्ध्य समय तथा अन्य उपलक्ष्योंपर अपनी विनम्र प्रणतिसे उन्हें सत्कृत करना हमारा कर्तव्य है न कि उन्हें अपना ध्येय बना लेना। ऐसा करनेसे ध्याताओंकी परस्परमें एककी दूसरेके ध्येयमें श्रद्धा न होगी। ऐसा होनेसे ध्याताओंमें भी मतभेद और आभ्यन्तरिक मनोमालीन्य हुए विना न रहेगा। ऐसा होनेसे दोनोंका पारस्परिक हार्दिक प्रेम एवं सद्भाव नष्ट होनेके कारण एक दूसरेके दबावकी परवाह न करेगा। बस इस आजादीमें प्रविष्ट होनेपर मनुष्य क्या नहीं कर बैठता है। किन्तु सब कुछ। अतः फिर तो उस समाजकी प्रतिष्ठा इस प्रकार रसातलमें चली जाती है जिस प्रकार आज सनातन धर्मकी अथवा भारतकी चली गई। इसमें शैव, वैष्णव, शाक्तिक, आदि अनेक सम्प्रदाय हैं। जिनके ध्याता लोग एक दूसरेके ध्येयमें श्रद्धा नहीं रखते हैं। यही कारण है आपत्ति कालमें एक दूसरेकी सहायता न करता हुआ बल्कि दूर बैठा तमासा देखता हुआ उसका उपहास करता है। इस प्रकार छोटी मोटी असंख्य शक्तियोंमें परिणत होकर एक दूसरेकी सहायता न करनेसे वा एक दूसरेके दबावकी लापरवाही करनेसे यह सनातन धर्म वा भारतवर्ष अपनी महती गौरवगरीमा एवं प्रतिष्ठा खो बैठा है। जिसका फिर स्थापित होना सबका एक ध्येय बननेपर निर्भर है। अतः आपलोग भी क्षमा करें और सत्य समझें मैं सौ बार सोचकर आपलोगोंको चेतावनी दे रहा हूं आप प्रणव वाच्य ईश्वरसे अतिरिक्त अपना ध्येय न बनावें। ठीक ऐसा करनेसे ही आपकी भी प्रतिष्ठा तादवस्थ्य रह सकेगी अन्यथा नहीं। यदि मेरे इस अनुरोधपर आपको कुछ भी सन्देह हो और आप यह सोचते हों कि हमको विपरीत मार्गपर चलाया जा रहा है तो आपको नीचे लिखें योगशास्त्रके सूत्रोंकी ओर ध्यान देना चाहिये (तस्य वाचकः प्रणवः) ईश्वरका वाचक प्रणव शद्ब है। और ईश्वर इससे वाच्य है। (ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽन्तराया

भावश्च) ईश्वरमें सर्व कर्मोंका अर्पण करनारूप जो प्रणिधान है उससे, जिस प्रकार सदृशतया एक शास्त्रके अभ्याससे दूसरे शास्त्रका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार ईश्वर शुद्ध है प्रसन्न है केवल है अव्यय है ठीक ऐसा ही मैं भी हूं इस रीतिसे जीवात्माका साक्षात्कार और सर्व विघ्नोंका अभाव तथा आसन्नतमाख्य योग सिद्ध होता है । अतएव दुःखत्रयसे मुक्ति पानेके लिये उपाय गुरुसे सीखो परं मुक्तिका साधक जाप केवल ईश्वरका ही करो । ऐसा न करनेसे जिस भारी हानिका मुख योगियोंको देखना पडा है उस हानिसे अन्य नवीन साम्प्रदायिक लोग भी वञ्चित न रहे हैं । कबीर साहिबका उपदेश जो श्रद्धेयसत्य नामकी डोरीपर चलनेका था उसको छोडकर कबीर पन्थी उलटे कबीरके नामकी ही डुगडुगी बजाने लग गये । और उनको उलटे छोटा समझ कर बडा बनानेकी अभिलाषासे हमारे कबीर साहिबने गोरक्षनाथको जीतकर अपना चेला बनाया । रामचन्द्रजीने कबीरजीकी कृपासे ही लङ्का जिती । कृष्णजीने कबीरसाहबकी कृपासे ही गोवर्धन पर्वत उठाया था । इत्यादि अनर्गल गप्पोंके पोथे तैयार करने और उनके द्वारा संसारको भ्रममें डालनेको कटिबद्ध हो गये । यही कारण हुआ अनुयायियोंमेंसे महात्मा कबीरसाहिबजीकी समताको कोई भी न पहुँच सका । यही वृत्त उदासीनोंका भी समझना चाहिये । महात्मा नानक साहिबका जो उपदेश था कि प्रथम सन्तोंके दास बनकर हरिके दास बनो । इसको छोडकर अनुयायी लोग आपको ही सब कुछ समझने लगे । और गुरुसाहिबको बडा बनानेके लिये अनेक ग्रन्थोंकी रचना करने लगे । आपको कोई जनकका अवतार बतलाता है तो कोई कुशवंशीय राजाका अवतार बतलाता है । एवं कोई जैसेके तैसे बतलाता है तो कोई विष्णुका अवतार लिख रहा है । कोई गोष्ठी विवादमें उनके द्वारा गोरक्षनाथजीको पराजय कर रहा है तो कोई दत्तात्रेयजी आदिको उनके चरणोंमें गिराता है । इन्होंने गोरक्षनाथजी आदिका जितना पीछा दबाया है वह सर्वथा असहनीय और कबीरानुयायियोंसे अधिक है । यही कारण है इस पक्षोंपर उतर आनेकी अनर्गल विधिसे इनकी जो आज हानि दीख रही है वह सबसे शोचनीय है । अतएव इति ॥
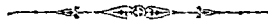
॥ आदेश ७ ॥

यद्यपि जहां कहीं काम पड़ा है हमने ग्रन्थमें आजकलकी रवाजके अनुसार 'आदेश शद्ब' ही लिख दिया है । तथापि सर्वत्र आदेशकी जगहपर आदीश शद्ब समझना चाहिये । क्योंकि आदेशका प्रधान अर्थ आज्ञा होनेपर भी दूसरे वे ही अर्थ हो सकते हैं जो कभी नमस्कार अथवा ईश्वरके बोधक नहीं हो सकते हैं । अतएव आज्ञार्थ प्रधान यह आदेश शद्ब योगियोंका पुरातन और सिद्धान्तित शद्ब नहीं है । योगीलोग प्राचीन कालसे ही पारस्परिक प्रणतिके समय जिस शद्बका व्यवहार करते चले आये हैं वह सिद्धान्तित शद्ब आदीश ही है । जिसको बहुत दूर न जाकर हम भगवान् आदिनाथ महादेवजीका वाचक कह सकते हैं । योगीलोग पारस्परिक मिलापके समय अथवा मेल रहते हुए भी सान्ध्य प्रणतिके समय आदीश शद्बका उच्चारण क्यों करते थे इसमें उनके अनेक गूढ अभिप्राय छिपे हुए हैं । और वे ये हैं कि परस्परमें नमस्कार करते हुए दोनों या अधिक योगी आदीश शद्बका उच्चारण कर इस भावको प्रकट करते हैं कि

१. अये महानुभाव! उस आदीश अर्थात् भगवान् आदिनाथजीकी महती कृपा है जो हमलोग आज भी विघ्नोंसे रहित हुए सौख्यप्रद दर्शन मेलोंका लाभ उठा रहे हैं ॥

२. अये महानुभाव! आदीश अर्थात् भगवान् आदिनाथ ही एक ऐसे हैं जो सबसे पहलेके हैं और पीछे तक रहेंगे । अन्य हम तुम सब अस्थायी हैं। फिर कितने दिनके लिये सांसारिक पदार्थोंमें निष्ठा रक्खें और अभिमान करें । अतएव एक उन्हींकी ओर निष्ठा रखकर हम भी चिरस्थायी क्यों न बन जायें ॥

३. अये महानुभाव! जब आपने यह मार्ग ग्रहण किया है तब इसकी क्रिया कठिनतासे आप किञ्चित् भी शिथिल उत्साह हों तो आपको आदीश अर्थात् भगवान् आदिनाथजीकी आँण है ॥

४. अये महानुभाव! हमको प्रत्येक समय प्रत्येक स्थलपर सदा अपना शुद्ध मनोरथ रखना चाहिये क्योंकि चित्तमें कुछ भी गड़बड़ी हुई तो आदीश आदिनाथजी सब देखते हैं ॥

५. अथवा अये आदीश! आदिनाथ! आप कृपालु हैं अतएव हमारे ऊपर आप सदा ऐसी कृपादृष्टि रक्खा करें जिससे हम सदा ऐसे ही आनन्दका अनुभव करते और परस्परमें प्रीति रखते रहें ॥

६. अये आदीश ! आदिनाथ ! हम आपके प्रदत्त इस स्वकीय स्वरूपके द्वारा आपको वन्दना करते हैं और प्रार्थना करते है कि आप हमको सदा याद रखकर अपनी ओर आकर्षित करते रहैं जिससे हमको फिर संसारमें न आना पडे ॥

७. अये आदीश! आदिनाथ! अनेक योनियोंमें असंख्य दुःख भोगनेके अनन्तर आज यह आपकी ही दयालुताका फल है जो हम उनसे पिण्ड छुटा कर अनेक सुख भोग रहे हैं ॥

८. अये आदीश ! आदिनाथ ! हम आपकी ही सन्तति हैं अतएव आप हमारे लिये सदा हितका चिन्तन किया करें और ऐसा सुभीता उपस्थित किया करें जिससे हमारे इस आनन्दका तथा पारस्परिक दार्शनिक प्रेमका वियोग न हो ॥

९. प्रणातिकालिक आदीश शब्दके उच्चारणसे ये भाव प्रकट किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त ये भी बात सूचित होती हैं कि जिसने इस समाजको सङ्गठित किया है वे आदीश अर्थात् भगवान् आदिनाथ ही हैं ॥

१०. अथवा जिस प्रकार गृहस्थाश्रमी लोग भी एक दूसरेसे मिलनेके समय खुशी प्रकट करनेके लिये भगवान्‌का पवित्र नाम रामराम उच्चारण करते हैं इसी प्रकार इधर भी समझना ठीक है ॥

परन्तु ये उपरोक्तादि अभिप्राय, ध्यान रखना चाहिये, आदीश शब्दके ही निकल सकते हैं न कि आदेशके। क्योंकि यह शब्द योगियोंका निश्चित किया हुआ आदि शब्द नहीं है। किन्तु बहुत कालके बाद जबसे योगिसमाजके ऊपर कुछ असभ्यताने आक्रमण किया है तब यह भी आदीशके स्थानमें घुस बैठा है। जैसेकि मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, ज्वालेन्द्र, कारिणपा, योगी, आदि शब्दोंके स्थानमें मच्छन्दर, गोरख, जलन्धर, कान्हीपा, जोगी, घुस बैठे हैं। अतएव जिस प्रकार धीरे २ गोरखादि शब्दोंकी जगह फिर असली नाम गोरक्षादि उच्चरित होने लगे हैं उसी प्रकार आदेशकी जगह भी असली आदीशका उच्चारण होना उचित है। यद्यपि इस बातको नईसी समझते हुए निरक्षर ही नहीं कितने ही साक्षर महानुभाव भी चौंक उठकर नासिका सङ्कुचित कर बैठेंगे तथापि उनका वैसा करना और समझना ऐसा ही होगा जैसा कि भोलेभाले योगियोंका। अर्थात् आप निरक्षर नशेबाज कुण्डा पन्थी किसी नागे योगीके पास जायें और उसको यह कहें कि गोरक्षनाथजीके गुरु मत्स्येन्द्रनाथजी थे मच्छन्दनाथ नहीं अतः तुम हमेशा उनका नाम मत्स्येन्द्रनाथजी ही बोला करें। तो वह, सूर्य इधरसे उधर क्यों न हो जाय पर, आपकी बात कभी न मानेगा। और लडेगा नहीं तो यह अवश्य कहेगा कि लो यह आज कहांसे नवा उलटा नाम बतलानेको आ खडा

हुआ हमने तो ऐसा नाम, जो बोलना भी मुश्किल है, कभी नहीं सुना, हमतो सदासे मच्छन्दर ही सुनते आये हैं। क्या पहलेके लोग बेवकूफ थे जो ऐसा कहते चले आये हैं। परन्तु क्या आप यह कह सकते हैं कि उसका मच्छन्दर ही ठीक बतलाना और सदासे व्यवहृत हुआ निश्चित करना बुद्धिमत्ता है। ठीक इसी प्रकार आपको भी यह शब्द नवा मालूम होगा परं यथार्थमें नवा न समझ कर मत्स्येन्द्रादि शब्दोंकी तरह पुरातन साङ्केतिक शब्द समझना। क्योंकि यह तो आप जानते ही हैं कोई भी उद्बोधक शब्द हो बिना किसी गूढ रहस्यके प्रचलित नहीं किया जाता है। अर्थात् ऐसे शब्दकी ओटमें कोई विलक्षण वृत्तान्त छिपा रहता है। जो उसके उच्चारण करने से मनुष्यके शरीरमें नवीन जीवन भर देता है। जैसे मेवाडमें एक खमान शब्द प्रचलित है। यह भी आदीशकी तरह महाराजा साहिबके सम्मुख होनेपर प्रणतिके समय अधिकतर व्यवहृत होता है। इतिहास न जानने वाले कितने ही राजपूत लोग इस शब्दका केवल अपरोक्ष अर्थ धन्यवाद, वा नमस्कार हुशियारी, ही समझा करते हैं। परं यथार्थमें यह शब्द बडे ही मूल्यका है। यह मुरदेके शरीरको फिर जिला उठानेवाला है। इसके पीछे जो रहस्य छिपा हुआ है वह ऐतिहासिक रसज्ञोंसे न जाना हुआ नहीं है। अर्थात् बहुत पीढी गुजर चुकी हैं मेवाडमें खमानी नामके एक राजा हुए थे जो महागौरवान्वित और अत्यन्त पराक्रमी थे। युद्धमें जिधर भी झुकते थे शत्रुओंके छक्के छुट जाते थे। उनकी इस रणवीरतापर सामन्त मण्डली अत्यन्त प्रसन्न थी जो युद्धके समय अन्नदाता खमान, इस शब्दकी ध्वनि करती हुई उनका उत्साह बढाती थी। उस समय तो इस शब्दका यद्यपि यह अर्थ था कि महाराजा श्री खमानजीकी जय हो। तथापि उनके बाद भी जब यह शब्द प्रचलित रहा तब इसका एक नहीं अनेक अर्थ निश्चित हो गये। और वे ये थे कि बहादुरी करनेके बाद जब कोई सरदार महाराजको झुक कर प्रणाम करता हुआ अन्नदाता खमान यह शब्द बोलता था तब इसका यह अभिप्राय समझाजाता था कि अन्नदाताजी आप महाराजा खमानजीकी तरह बडे ही सूरवीर पराक्रमी और सहकारी प्रिय हैं।

और बहादुरी करनेके लिये तैयार होनेपर जब कोई महाराजको प्रणाम करता हुआ यह शब्द बोलता था तब इसका महावीर महाराजा खमानका नाम याद दिलाकर महाराजको अपने वंशके गौरवका स्मरण कराते हुए उनके शरीरमें जोश भरनेका, अभिप्राय समझाजाता था। अर्थात् महाराजा खमानकी तरह जब तक प्राण रहें अपने गौरवको नहीं जाने देना चाहिये। इस बातमें महाराजको दृढ बनाया जाता था।

अथवा शत्रुका अधिक बल देखकर महाराजके फिकरमें पडजाने पर कोई मुजरा करता हुआ यह शब्द उच्चारण करता था तब इसका यह अभिप्राय समझा

जाता था कि अये अन्नदाताजी आप भी तो महाराजा खमानकी सन्तति हैं अतः प्राण जायें तो कोई बडी बात नहीं परं हतोत्साह होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । इसी प्रकार कभी २ लापरवाहीमें भी इस शब्दका प्रयोग हुआ करता था । जैसे कोई बहादुरी करनेपर महाराज स्वयं अपने कामकी प्रशंसा करते होते उस समय कोई प्रधान सरदार खमान अन्नदाताजी यह कहकर हुंकारा भरता था तो उसका यह भी अभिप्राय होताथा कि अन्नदाताजी आखिर तो आप महाराजा खमानकी सन्तति हैं फिर आपके लिये ऐसा कर दिखलाना बडी बात ही क्या है किन्तु नहीं है । इसके अतिरिक्त महाराजके युद्ध करते समय या कहीं खण्डरोंमें चलते समय अथवा स्थानादिके जीने आदिसे उतरते समय डिगमग होनेपर कोई खमान अन्नदाताकी घोषणा करता तो महाराज सम्भालो, उसका यह अभिप्राय समझा जाता था । इस प्रकार यह महागौरवान्वित खमान शब्द, जो कि आज कल मेवाडमें ही नहीं राजपूताने मात्रमें विस्तृत हो गया है, इत्यादि अनेक अभिप्राय सूचित कर समग्र मेवाडी इतिहासका स्मारक हो जाता है । यही कारण है यह शब्द ऐसे गौरव शील इतिहासको अपनी ओटमें छिपायें रखनेके हेतु बडे ही मूल्यका है । ठीक इसी प्रकार आदीश शब्द भी समझना चाहिये । यह पूर्वोक्तादि अभिप्राय प्रकट कर योगि समाजके इतिहासका स्मरण कराता है । अतएव इस अमूल्य आदीश शब्दका ही सर्वत्र आदर करना सर्वथा उचित है न कि आदेशका । क्यों कि यह निरभिप्राय और गयलड शब्द है ।

॥ भर्तृनाथजी ८ ॥

योगि सम्प्रदाय प्रचलित पारम्पर्य प्रवादके और इस इतिहासके आधार पर हम गोरक्षनाथजीके शिष्य होनेवाले भर्तृको तथा सम्वत् कर्ता विक्रमको आपसमें भाई स्वीकार करते हैं । इसके अतिरिक्त एक इतिहास जो कि हमको उज्जयिनीसे उपलब्ध हुआ है वह भी हमारे मतकी पुष्टि करता है । और जो मनुष्य दो भर्तृ तथा दो या इससे भी अधिक विक्रम बतलाकर कौनसा भर्तृ और विक्रम भाई थे यह सन्देह किया करते हैं उनके निश्चयमें सहायक हो सकता है । उसमें लिखा है कि उज्जयिनीमें चन्द्रगुप्त नामका एक राजा हुआ है । जिसके कोई पुत्र नहीं केवल एक पुत्री थी । वह जानकार होनेपर विवाहके विषयमें पिताका शिथिल विचार देखकर एक दिन स्वयं पिताके समीप जाकर कहने लगी कि पिताजी मेरी अवस्थाकी ओर भी आपका कुछ ख्याल है क्या, उसने कहा

पुत्रि ! पुत्र न होनेके कारण मैं तेरा वर ही कोई ऐसा देख रहा हूं जो कि शास्त्रवेत्ता और सर्वगुण सम्पन्न हो, उसको पुत्रके स्थानमें समझ कर उसके गुणोंसे मैं भी कुछ लाभ उठाऊं। और कल्याणका रास्ता खोज निकालूं। लड़कीने कहा कि फिर ऐसा वर क्या आपके महलमें आयेगा। कभी नहीं। क्योंकि ऐसे पुरुषोंको, जैसा कि आपको अभीष्ट है, इस बातमें बहुत लालायितता नहीं हुआ करती है। अतः आप सचमुच यदि ऐसे वरकी अन्वेषणा करते हैं तो राजपुरुषोंके द्वारा बाह्यगवेषणा कराइये। जिससे आपकी और मेरी दोनोंकी कामना पूरी हो जायेगी। यह सुन उसने ऐसा ही किया। इससे ठीक वैसे ही वरकी उपलब्धि हुई। जो गोविन्द भगवान् नामका ब्राह्मण और उज्जयिनीका ही रहनेवाला था। आखिर पुत्री उसको देदी गई, इतना होनेपर भी विजातीय कुमारीसे कल्याण न समझ कर उसने एक ब्राह्मण कुमारी भी विवाही, उधर राजाका जामाता समझकर एक वैश्यने भी अपनी कन्या उसके अर्पणकी। इसी प्रकार एक शूद्रने भी अपनी कन्या उसे दी। इस तरह चारस्त्रियों और प्रचुर धनका पति हो वह सुखसे जीवन व्यतीत करने लगा। उसके कुछ ही वर्षमें क्रमसे भर्तृ, विक्रम, भट्ट, शंख, नामके चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें भर्तृ ब्राह्मणीका विक्रम क्षत्रियाणीका भट्ट वैश्याका शंख शूद्राका पुत्र था। गोविन्द भगवान् इन चारों कुमारोंको लगभग बीस वर्ष पर्यन्त विद्यामें निपुण कर उनके साथ एक दिन राजदरबारमें पहुँचा। और यह कह कर, कि राजन्! ये आपके ही पुत्र हैं चाहें जिसकार्यमें नियत कर दें, उनको राजाके समर्पण कर आया। राजाने बडे हर्षके साथ उनको स्वीकार कर लिया। और उनको युद्ध विद्यामें कुशल बनाया। जिसमें इन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। दैव वशात् इतने ही में किसी पूर्वीय राजाने चन्द्र गुप्तके ऊपर आक्रमण किया। अधिक क्या इसने अपने चारों दत्तक पुत्रोंकी असाधारण बीरताके कारण उसको यहां तक पराजित किया कि उसका नगर पटना भी इसने अपने अधिकारमें करलिया और उज्जयिनीका राज्य अपने बडे पुत्र भर्तृको प्रदान कर स्वयं पटनामें ही रहने लगा। परं हतभाग्य थोडे ही दिनमें वह स्वर्गका यात्री बन गया। इस प्रकार भर्तृ ही एक बडे साम्राज्यका अधिष्ठाता नियत हो गया। यह युद्ध विद्यामें अपने तीनों भाइयोंकी समता रखता हुआ भी शास्त्रज्ञानमें कुछ आगे बढ गया था। परं सौभाग्य इस ज्ञान प्राप्तिके सार्थक होनेमें एक सुभीता उपस्थित हुआ। और वह यह था कि किसी ब्राह्मणने अनुष्ठान द्वारा देवीको प्रसन्न कर उससे अमरफल प्राप्त किया था। जो उसने स्वयं न खा कर महाराजा भर्तृको देदिया था। भर्तृने अपनी राणीको और राणीने मित्र किसी पुरुषको उसने अपनी प्रियपात्र वेश्याको उसने फिर महाराज भर्तृको ही ला दिया। इस चरित्रसे घृणित हुए भर्तृके ज्ञानकी मात्रा और भी बढ गई। जिससे वैरागी हो राज्य परित्याग कर बनोवासी

हो गया । वहां विरक्त विद्वानोंकी गोष्ठीमें सुखसे जीवन वीताने लगा । अपनी विद्वत्ताको सार्थक वनानेके लिये उसने महर्षि पतञ्जलि रचित वैयाकरण महाभाष्यपर वाक्यपदीयकी रचना की । इसके भाई भट्टने भी, जो राज कार्यमें लिप्त हुआ भी इसकी आरण्य संगतिमें भाग लिया करता था, भट्टी काव्यकी रचना की । उधर भर्तृके सिंहासन त्यागनेके अनन्तर इसका छोटा भाई विक्रम सिंहासन पर अभिषिक्त हो ही चुका था । कुछ वर्ष सुखसे राज्य करनेके बाद उसका शालिवाहनके साथ युद्ध आरम्भ हुआ । जिसमें विक्रम मारा गया । शालिवाहनने विजयी हो अपने सम्वत्की प्रतिष्ठा की । जो आज १८४५ का है । इससे यह बात विना ही बतलायें आपोआप समझमें आजाती है कि १९८० सम्वत्के प्रतिष्ठाता विक्रम, शालिवाहनके साथ लडकर मरने वाले विक्रमसे १३५ वर्ष पहले हुआ। उसीका भाई भर्तृ था जोकि गोरक्षनाथ-जीका शिष्य हुआ । यदि इस चन्द्रगुप्तके पुत्रवत् स्वीकार किये ब्राह्मण भर्तृको ही हम श्रीनाथजीका शिष्य समझनेका साहस करें तो कईएक कारण ऐसे हैं जो इस बातमें बाधा डालते हैं । और वे ये हैं कि एक तो यह भर्तृ वनोवासी होकर विद्वत् संन्यासी हुआ कि योगी इसका उस इतिहासमें कोई निर्णय नहीं किया है । दूसरे उसने अपना नाम रखनेके लिये महा भाष्यपर लेखनी उठाई, श्रीनाथजीका शिष्य होनेपर, यह बात होनी असम्भव है । प्रथम तो योगीलोग ऐसे काम द्वारा नाम रखनेकी इच्छा ही नहीं किया करते हैं । यदि उसने ऐसी इच्छा की भी हो तो श्रीनाथजीने उसको योगक्रियाओंमें प्रेरित कर यह काम करनेका अवकाश ही कैसे दिया होगा । इसपर भी यह विचार कर लें कि शिष्य होनेके पहले यह कार्य किया होगा अतः यही भर्तृ श्रीनाथजीका शिष्य हो तो यह बडा अन्तर है इसको जिस राणीके चरित्रसे वैराग्य हुआ उसका नाम सैन्ध्यसेना या सिन्धुमती लिखा है । जो व्याभिचारिणी थी। हमारे अभीष्ट भर्तृकी राणीका नाम पिंगला था जो अद्वितीय पतिव्रता थी। जिसके अद्वितीय पातिव्रत्य धर्मने ही भर्तृको योगी बनाया था । यह बात प्राचीन कालसे योगिसमाजमें तथा अन्यत्र भी प्रसिद्ध है । इसके अतिरिक्त यह भी प्रसिद्ध है कि भर्तृ और गोपीचन्द्र मामा भानजा थे । इसी भर्तृको यदि श्रीनाथजीका शिष्य समझ लिया जाय तो इसके वाहिन कहां थी जिसके उदरसे गोपीचन्द्र जन्म लेता । इसके पिता गोविन्द ब्राह्मणके ही कोई पुत्री हुई हो तो उसका क्षत्रियके साथ विवाह होना असम्भव है । चन्द्रगुप्तके अन्य पुत्री हो गई हो तो वह उसकी वहिन कैसे हो सकती है । इत्यादि विचारसे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे अभीष्ट भर्तृ और विक्रम ही भ्रातृ सम्बन्धसे बन्धे थे । इतना होनेपर भी हम अपनी युक्तियोंपर विशेष विश्वास नहीं रखते हैं किन्तु इतिहासके लेखपर ही अधिक विश्वास रखते है कारणकि युक्ति सर्वथा सत्य भी नहीं हुआ करती हैं । हां हो सकता है जिसका

इतिहास लिखा जाय उसकी ऐतिहासिक वस्तुके समकालिक पुरुष उसका यथार्थ उल्लेख कर सकता है। पीछे तो लोग अपना २ अनुमान लडाया करते हैं और अपना २ भाव पूरा करनेके लिये उसके अनुकूल ही सत्यासत्य युक्ति लगाया करते हैं। लोगोंमें आज जो ऐतिहासिक अनेक सन्देह बडे हुए हैं उनका कारण ऐसी ही युक्ति हैं। उज्जयिनीमें पण्डित काशीनाथजीसे जब मैंने इस विषयमें परामर्श किया तब उन्होंने ठीक यह कहा था कि किसी भी विषयका इतिहास चाहने वाला यदि स्वयं अन्वेषक और लेखक हो तो इतिहासमें कुछ सत्यता आ सकती है। परं खेद है बहुतसे इतिहास रचनेकी इच्छा वाले लोग अन्वेषक लेखक दोनों बातोंसे तटस्थ ही रहते हैं। और अन्य पुरुषोंके द्वारा ऐतिहासिक घटनाओंकी गवेषणा करते हैं। एवं अन्य पुरुषसे ही लिखाते हैं। वे लोग आखिर नोकर ही ठहरे जिस किसी ढंगसे हो वेतन हजम करनेका रास्ता तो विचारोंको निकालना ही पडेगा। बात सत्यतासे कितना सम्बन्ध रखती है इस विषयमें अधिक विचार करनेकी उनको क्या आवश्यकता पडी। थोडे ही दिन हुए अब अलवर नरेशकी ओरसे आये हुए पुरुषोंने यहां भर्तृ विक्रमके विषयकी कुछ अन्वेषणा की थी। परं उनकी यह अन्वेषणा कुछ राजत्व ढंगसे सम्बन्ध रखती थी। इसी लिये उस विषयके ज्ञाता हमलोग अन्तर्मुख हो गये। जिससे जो तत्त्व उनके हस्तगत होने वाला था वह न हुआ। और वे अपना वेतन तथा आगमन सफल करनेके लिये यथोपलब्ध कुछ लिख ले गये। इस प्रकार जितनी युक्ति लडाई जाती हैं उनमें कुछ अन्तर अवश्य रहा करता है। जिससे इतिहासोंके पारस्परिक घोटालेको देखकर लोगोंको सन्देह होना स्वाभाविक ही है। अतएव हम अधिक युक्ति उपस्थित न कर पूर्वोक्त विचारसे ही पाठकोंको यह निश्चय कराना चाहते हैं कि प्रथम भर्तृ और विक्रम ही परस्परमें भाई थे यही भर्तृ श्रीनाथजीका शिष्य हुआ।

॥ भर्तृहरिशतक ९ ॥

पाठक! उज्जयिनीसे प्राप्त होनेवाले इतिहासके उक्त लेखानुसार यह बात स्पष्टतया प्रतीत हो गई कि वि. सं. १३५ के लगभग होनेवाले गुप्तमहाराजके दत्तक पुत्र भर्तृ अपनी सैन्ध्य सेना राणीके व्यभिचार कारणसे विरक्त हो गये थे। और इससे यह बात भी स्फुट हो गई कि यह विख्यात शतकग्रन्थ भी महा भाष्यपर लेखनी उठाने वाले इसी भर्तृका है। जैसा कि (यां चिन्तयामिसततम्) से प्रथम ही सूचित किया है न कि पिङ्गलाके अद्वितीय पातिव्रत्य धर्मपर मुग्ध होने वाले और श्रीनाथजीके शिष्य होने वाले प्रथम भर्तृका। यद्यपि

ऐसा माननेसे एक प्रसिद्ध विद्वान्को योगिसमाजसे पृथक् किया जाता है तथापि इतिहास जिस बातको सूचित कर रहा हो उसको स्वार्थहानिके उद्देशसे न मानना भी एक अपनी धृष्टता प्रगट करना है। इसके अतिरिक्त हमारा अन्तःकरण भी साक्षी दे रहा है कि निःसन्देह बात ऐसी ही है। यदि इस निश्चयका कारण पूछा जाय तो हम यह बतला सकते हैं कि जिस समय योगिसमाजका उदय हुआ क्या उस समय योगके सूचक ग्रन्थ नहीं थे किन्तु थे। फिर मत्स्येन्द्रादि योगाचार्योंने स्वयं गुरु बनकर योगदीक्षा द्वारा मुमुक्षु जनोंका उद्धार किया तो इससे यह बात निर्विवाद हो जाती है कि योगीलोग स्वयं शिक्षा प्रदान द्वारा जितना जनोंका लाभ समझते हैं उतना ग्रान्थिक शिक्षासे नहीं। यही कारण है कुछ उलटा अर्थ हो गया है सही परं उस बातका असर योगियोंपर आजतक पडता आ रहा है। कोई क्रिया वा मन्त्रादि हो सम्मुख सीखे तो और कण्ठ करे तो करे परं ये लिखायेंगे कभी नहीं। फिर ऐसी दशामें कोई वजह नहीं कि भर्तृजी ग्रान्थिक शिक्षासे लाभ पहुँचानेकी इच्छासे ग्रन्थ रचना कर बैठते। इसपर यदि यह विचार किया जाय कि गुरुके विना न आने वाली योगविषयकी ही ग्रान्थिक शिक्षा विशेष उपकारक नहीं होती। अन्य नीति आदि विषयकी जो ग्रन्थसे जायमान शिक्षा है वह तो जनोंकी उपकारक हो सकती है अतः इसी उद्देशसे उसने शतककी रचना की हो। तो हम आपसे पूछेंगे कि भर्तृजीने यह ग्रन्थ श्रीनाथजीका शिष्य होनेसे पहले बनाया कि पीछे। यदि पहले कहो तो आपके कथनमें (भिक्षाशनं तदपि नीरसमेक बारं शय्याचभूः परिजनो निज देह मात्रम्। वस्त्रं च जीर्ण शतखण्ड मलीन कन्था हाहा तथापि विषया न परित्यजन्ति) इत्यादि श्लोक बाधा डालेंगे। क्योंकि उसका राज्य करते समय भिक्षा मांगकर खाना और कूडियोंसे उठाये सैंकडो मलीन वस्त्र टुकडोंकी सीई हुई गूदडी पहनना असम्भव है। यदि श्रीनाथजीका शिष्य होनेके बाद बनाया कहो तो भी इत्यादि श्लोक बाधा डालेंगे। क्योंकि गोरक्षनाथजीकी दीक्षा अनिष्फल थी। अतएव यह सम्भव नहीं कि उनका शिष्य बनकर भी भर्तृ सांसारिक विषयोंसे पीडित ही रहा हो जिसका यह कहना, कि खेद है ऐसी दशामें मुझे सांसारिक भोग नहीं छोडते हैं, संगत हो सके। किन्तु यह निश्चय है कि श्रीनाथजीने शिष्य बनाते ही उसको योगक्रियाओंमें प्रेरित कर पूर्ण योगवित् अर्थात् चित्तवृत्ति निरोधशील बनादिया था। बल्कि यही नहीं श्रीनाथजीने उसको अमर होनेका आशीर्वाद भी दे दिया था। इसलिये उसके ऐसा होनेमें न तो कोई सन्देह करता है और न करेगा। सच पूछिये तो लोकप्रसिद्ध, जबतक माता धरतरी तबतक गोपीचन्द भरथरी, यह उक्ति इस बातमें और भी निश्चय करा देती है। फिर कोई वजह नहीं कि मुझे विषय नहीं छोडते हैं वह ऐसी २ पुकारें लगाता फिरता। अतएव यह ग्रन्थ प्रथम भर्तृका ही निश्चित होता है। इसका प्रत्येक श्लोक अपने चरित्रको ब्राह्मण

भर्तृके ऊपर ही संगत करता है। शतकमें होनेवाला स्त्रीचरित्रवर्णन भी इस बातको सूचित कर रहा है कि ऐसे रहस्यको वेही कथन कर सकता है जो सैन्ध्यसेना जैसी खानेके और तथा दिखानेके दान्त और प्रकट करने वाली स्त्रीका पति हो एवं (गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य) अर्थात् वह समय कब आयेगा जब श्रीगङ्गाजीके किनारे हिमालय पर्वतकी शिलापर पद्मासनसे ध्यानानिष्ट हुए मेरे बूढे २ मृग अपने सींगोंसे खर्ज किया करेंगे। इत्यादि कथन भी यही सूचित करता है कि जिसको ऐसा करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं हुई है वही ऐसी अभ्यर्थना कर सकता है। तथा (विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोह महिमा) अर्थात् अहो खेद है मोहकी क्या ही विचित्र महिमा है। सांसारिक परिणाम अच्छा नहीं है हम इस बातको अच्छी तरह जानते हुए भी अनेक व्याधिरूप जालोंसे गूंथे हुए भोगोंको मनसे नहीं छोडते और न वे हमको ही छोडते हैं। इत्यादि कथन भी यही प्रकट करता है कि विरक्त होनेपर भी उसकी राग शान्ति नहीं हुई थी। यह बात श्रीनाथजीके शिष्यमें सम्भव न होकर इसी भर्तृमें सम्भव हो सकती है। सम्भव है कि इसने क्रोधसे स्त्री और राज्यका त्याग किया था। फिर लज्जासे वापिस तो न आ सका होगा परं पूर्व समस्त घटनाओंका स्मरण कर धैर्य धरनेके लिये ऐसा विलाप किया होगा। एवं (यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजन सकाशादवगतम्) विद्वज्जनोंकी संगतिमें जाकर जब मैंने कुछ वास्तविक विचार प्राप्त किया तब तो मेरा समस्त अभिमान जाता रहा। इत्यादि कथनसे भी इसी भर्तृकी पुष्टि होती है जिसने विद्वत्संन्यासियोंकी गोष्ठीसे कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त किया था न कि योगवित् होने वाले की। यद्यपि (लीयें परे ब्रह्मणि) इत्यन्त श्लोकसे हम कहें तो यह कह सकते हैं कि पांचों भूतोंका सम्बन्ध छोडकर पर ब्रह्ममें लीन होनेकी योग्यता योगवित् होनेसे श्रीनाथजीके शिष्य भर्तृमें प्रतीत होती है। अतः इसीका रचा यह ग्रन्थ है। तथापि देवीके आराधनसे उपलब्ध उस अमरफलको, जो कि ब्राह्मणके सकाशसे प्राप्त हुआ था, इस पिछले भर्तृने खा लिया था तब यह सम्भव है कि कुछ काल पीछे उसके प्रभावसे वह इस दर्जेपर पहुँच गया हो। बल्कि कई विद्वान् ऐसा ही मानते हैं कि यह ग्रन्थ पिछले भर्तृका है। और उसने तीनों शतक तीन अवस्थाओंमें रचे हैं। जिनमें नीति राजावस्थामें, शृंगार राज्यत्याग वियोग अवस्थामें, वैराग्य महान् वैरागी त्यागी होकर तत्त्वविदवस्थामें (अस्तु) इस विषयमें जितनी ही लेखनी चलाई जाती है उतना ही जाल विस्तृत हो जाता है। कौनसा विक्रम और भर्तृ भाई थे तथा शतक कौनसे भर्तृकी रचना है अथवा उनके नामसे किसी और की, इस समालोचनामें कोलब्रुकसाहेब, मी. नन्दागीर, मी. तिलंग, डा. भाऊदाजी, मी. फरग्युसन, मेरुतुंगाचार्य, कृष्णशास्त्री, चीनीयात्रीइत्सग, शेषगिरिशास्त्री आदि महानुभावोंने स्वकीय लेखनीको बहुत ही प्रवाहित किया है। यदि इन सबका मत म-

यहां अङ्कित कर देता तो आपका वहुत समय खर्च होनेके साथ २ आप उसे पढते २ भी थक जाते । अतएव इस विषयमें अब मैं अपनी लेखनीको स्थगित करता हूं । इसपर भी यदि आप मेरे आलस्यपर असन्तुष्ट हों तो आपको मुम्बईस्थ गुजराती प्रिंटिंग प्रेस कोटमें छपने वाले गुजराती शतकत्रयके आदि विक्रम भर्तृके वृत्तको देखना चाहिये । जिसके देखनेसे आप और भी भ्रमजालमें पड सकते हैं क्योंकि इन्होंने वृत्तका शरीर न पकडकर हस्तपैरादि एक २ अंग ही पकडे हैं ॥

॥ सावधान १० ॥

(योगिजनो ! पङ्कादपि रत्नंग्राह्यम्) अर्थात् नीति हमको यह शिखलाती है कि रत्न यदि कीचडमें पडा हो तो भी बुद्धिमान् पुरुषको यह अवश्य उठा लेना चाहिये । ठीक इसी विचारके अनुकूल यदि आपलोग मुझे तिर्यग् दृष्टिसे देखते हों तो भी मुझसे वहिर्-भूत होने वाले मेरे वाक्योंको, जोकि आपको रत्नवत् लाभ देने वाले होंगे, अवश्य ग्रहण करलेना उचित है । पढते २ यहांतक आ पहुँचनेपर आपको खूब यह मालूम हो गया होगा कि मैं अपनी सम्प्रदायके विषयमें कैसे २ विचार रखता हूं । यदि अब भी कुछ कसर रह गई हो तो कृपया सावधानीके साथ यह लेख पढना उसकी अवश्य पूर्ति हो जायेगी । वल्कि यही नहीं इस लेखसे प्रकट होनेवाले मेर विचारपर आपने कुछ भी ध्यान दिया और उसको आप कुछ भी अमलमें लाये तो यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा किन्तु आप भी अपना कर्तव्य पालन कर सकेंगे । यदि आज मुझे कोई पूछे या मेरे हृदयपर हस्त धरकर देखे तो यह यही सूचित करनेके लिये तैयार होगा कि हमारी या और भी सम्प्रदाय जो जबसे अपने सिद्धान्तसे गिर चुकी तभीसे लुप्त हो जाती या हो जायें तो कहीं अच्छा है । क्योंकि सिद्धान्तसे भ्रष्ट होनेपर वह समाज अपना और दूसरेका कोई भला नहीं कर सकता है । फिर ऐसे अलाभदायक मनुष्य माण्डलेसे देशका कुचला जाना देशकी स्थितिको और भी नाजुक करने वाला है । वल्कि इसी वातको ध्यानमें रखकर ही तो स्वयं श्रीनाथजीने कारिणपानाथजीके अभिमुख यह कहा था कि मुमुक्षुओंके अभावमें समाजके संगठित रहनेका कोई प्रयोजन नहीं । तथापि खैर किसी कारणसे यह सम्प्रदाय प्रचलित ही रही और समयके अनिवार्य प्रभावसे इसमें योगाक्रियाओंका अभाव उपस्थित हुआ तो ऐसा तो नहीं होना चाहिये कि हम और लोगोंसे पीछे पडे रहें जिससे लोग हमको लण्ठ और असभ्य समझकर हमारेसे घृणा करें । प्रत्युत जब (योगी)

इस महागौरव सूचक शब्दसे हम अपनेको अत्यन्त गौरवान्वित समझते हैं और उस सम्प्रदायमें प्रविष्ट हैं जिसके सिद्धान्तका मर्म समझकर एक दो नहीं चौरासी किम्बा इससे भी अधिक महानुभाव इस जीवत्वोपाधिसे विमुक्त हो गये हैं। तब अधिक नहीं तो कमसे कम हमको और लोगोंसे पीछे तो न रहना चाहिये। आप अन्य सम्प्रदायोंकी ओर तो दृष्टि डाल कर देखें कहीं, अखिल भारतीय परिव्राजक मण्डल, स्थापित है तो कहीं, आल इण्डिया उदासीन महामण्डल, प्रतिष्ठित है। जो अवसर प्राप्त होनेपर देशकालके अनुसार अपनी त्रुटियोंका विच्छेद कर संसारमें अपनी प्रतिष्ठा कायम रखता है। परं कहिये आपकी तरफ क्या है। जहां देखिये झूठा मान वडाई और अहंकार दिखलाई देता है। हां यह अवश्य है कि इन तीन वातोंसे कोई भी साम्प्रदायिक नहीं वचा है परं जो मौका पडनेपर इनको दूर धरकर सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा रखनेसे ही अपनी प्रतिष्ठा समझता है उसको मैं कभी दोषी टहरानेके लिये तैयार नहीं। दोषी वे हैं अन्य सम्प्रदायोंको वरावरसे उन्नत हुई जाती देखकर भी टससे मस न होते हैं। प्रत्युत दिनपर दिन मान वडाई और ईर्षाके कुठले वने जा रहे हैं। यों तो देखनेसे आपलोगोंके पास सब कुछ दीखता है। लक्ष्मीका कोई पारा वार नहीं मनुष्य भी वहुत है उनमें विद्वान् भी खैर हैं ही। परं नहीं है कोई ऐसा माईका लाल महन्त महानुभाव, जो अपनी सम्प्रदायकी अवनतिपर दो बून्द अश्रु डालता हो। नहीं है ऐसा माईका लाल जो प्रतिदिन इसकी उन्नतिके ही उपाय सोचा करता हो। नहीं है ऐसा माईका लाल जो सम्प्रदायकी प्रतिष्ठाके आगे अपनी प्रतिष्ठाको तुच्छ समझता हो। नहीं है ऐसा माईका लाल जो मान वडाई इर्षा आदिको अपने शरीरसे वहिर कर हरएकके स्थानपर जा करके अपनेको छोटेकी तरह जितलाता हुआ विनम्र पार्थनाके द्वारा उनके हृदयमें इस, मेरे रोनेको, सुनानेके लिये कटिबद्ध हो जाय। यदि है तो आइये महानुभाव! आपको अपनी सम्प्रदायकी उन्नतिके लिये कटिवद्ध हुआ देख न केवल मैं ही वल्कि मेरे वहानेसे श्रीनाथजी भी आपका हार्दिक स्वागत करते हैं। यही नहीं प्रतिध्वनि भी यही कहती है कि आप अवश्य अपने प्रयत्नको सफल देखेंगे। क्या आपको मालूम नहीं संसारमें दो ही आसन प्रसिद्ध हैं। एक तो रूई आदिके गदेलोंका और दूसरा प्रतिष्ठाका, जो प्रथम आसनको सब कुछ समझते हैं वे समझते रहें। और किसीका एक फुट ऊंचा देखें तो मणोंक रूई डालकर वे और दो हस्त उससे भी ऊंचा वना लें। तथा अपने आपेमें और अपने घरके मनुष्योंमें अपनी महन्तीका ठाठ जमा लें परं घरसे वहिर उस ठाठका क्या मूल्य है यह तो आपसे भी छिपा नहीं है। अतएव यदि सचमुच आप इस ठाठको पसन्द न करके एक प्रतिष्ठाका ही आसन चाहते हैं। और वह भी सम्प्रदायकी प्रतिष्ठाके पीछे, तो आइये महानुभाव! आगेको पैर वढाइये। कौन ऐसा

अभागा और श्रीनाथजीका द्रोही होगा जो आपके पीछे न चलेगा । यदि नहीं भी चलेगा तो कमसे कम इतना तो होगा कि आप श्रीनाथजीके उत्तरदायित्वसे मुक्त हो जायेंग । सम्प्रदायकी अवनतिके कलंकसे कलंकित वे होंगे जो मेरी और आपकी गलाफाडी पुकारको न सुननेके लिये अपने श्रोत्रोंमें डाटे लगावेंगे । और सम्प्रदायकी उन्नति अवनतिका तथा श्रीनाथजीके उपकारका कुछ भी विचार न कर अपने ऐसो आरामको ही प्रधान समझेंगे । परं आपको इससे कुछ भी हताश न होना चाहिये । कारणकि पापके घडेको रिक्त करनेमें तो अधिक प्रयत्न करना पडता है अतएव यदि वह कुछ खाली है तो उसे खूब भरनेदें फिर तो उसके फूटनेमें कुछ भी विलम्ब न होगा । बल्कि सच पूछिये तो इस घटके फोडने अर्थात् ऐसे कृतघ्नोंको उनके कृत्यका उचित दण्ड देनेके लिये ही तो श्रीमत्स्येन्द्रनाजी फिर प्रकट होने वाले हैं। यदि उनलोगोंको मेरी इस चेतावनीपर कुछ भी विश्वास न हो तो उन्होंको बृ. ना. पु. के (कलेः पादेगते चैकस्मिन्धोरंच धरातले । सर्वैप्रत्यन्नतां प्राप्य साधयेदाखिलं जनम् ॥ ८ ॥ मोहनाद्यै रुपायैस्तु म्लेच्छ प्रायाञ्जनांस्तदा कृत्वावशे महाभागे गमये त्विपदंकलेः) ॥ ९ ॥ इत्यादि श्लोक देखने चाहियें । जो पुकार २ कर हमें यह बतला रहे हैं कि हे योगियो ! समयके अनुसार जो कृत्य बनना सम्भव है उससे कभी च्युत नहीं हो जाना । यदि आवाजको अपने कानों तक पहुँचने देकर भी जो मूढमति सांसारिकऐसोआराममें लम्पट रहेंगे । और इसीलिये वे पृथिवीपर घोर पापका साम्राज्य स्थापित करेंगे । ऐसे यवन संस्कारी दुष्टाशय योगिवेषधारी कपटियोंको दण्ड देनेके लिये कलियुगका एक चरण बीतनेपर श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी अवतार लेंगे । इसपर भी यदि वे यह कहें कि कलियुगका चार लाख बत्तीस हजार परिमाण है । जिसका एक चरण एक लाख और आठ हजारका हुआ है । जिसमेंसे अभी पांच ही हजार बीते हैं और एक लाख तीन हजार बाकी हैं। अतएव इतने दीर्घ समय तक तो ऐस लूट लें पीछे जो होगा सो देखा जायेगा । इस विचारपर मैं उनको यह बतला देता हूं कि उनके जितने ही दिन बीतते जायेंगे वे उतना ही गुनागारीका भार अपने शिरपर लादते जायेंगे । जो उस समय तक इतना हो जायेगा जिसको शिरसे उतार देना कठिन ही नहीं असम्भव हो जायेगा । जिसके न उतरनेसे वे मनुष्यत्वसे वांचित भी किये जायें तो इममें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । ठीक ऐसी ही जटिल समस्याको ध्यानमें रखता हुआ कौन ऐसा कर्मोंका मारा योगी होगा जो आपकी बातोंको अनसुनी कर आपके पीछे न चलेगा । अतः आइये महानुभाव मैं आपके साथ हार्दिक सम्मति प्रकट करता हूं । आप जरा आगे पद बढावें । और माननीय महन्तोंको एक सूत्रमें बान्धनेका बीडा उठावें । तथा उनको समझा दें कि यातो स्थान छोड २ कर पहाडोंमें चले जाओ या शिष्य मुण्डने बन्ध कर दो कुछ दिनमें सम्प्रदायकी इतिश्री हो जायेगी । जिससे सब

झगडा ही मिट जायेगा। परं आपलोग यदि संसारमें बसना चाहते हो और बडी २ जागीरोंका संचालन करना चाहते हो तो सबके एक सूत्रमें बन्धे बिना आपलोगोंका यह बेडा कभी पार उतरने वाला नहीं है। अतएव इस कुम्भकर्णीय निद्राको छोडो और आँख खोलकर देखो संसारमें किधरकी कैसी हवा चल रही है। जब कि लोग अन्त्यज जातियों तकको अपनी छातीसे लगानेके लिये दौडे जा रहे हैं। और अपनी अनेक छोटी विभक्त शक्तियोंको एकत्रित करनेके ध्यानमें लगे हुए हैं तब ऐसी दशामें आपलोगोंका अपने २ घरके राजा बने रहना तथा मन आया कृत्य करते कुछ भी आगा पीछा न देखकर अपने शिरपर आचार्य या किसी दूसरे भाईका कुछ भी खौफ न रखना कहां तक ठीक है। आप ऐसे लोगोंको खूब समझा दें कि इसका नाम महन्ती नहीं है कि कहीं का स्थान हाथ लगा उसके सब कुछ आप ही बन बैठकर सम्प्रदायमें चाहे कुछ होता रहे अपने ऐसोआरामकी ताकसे मुख नहीं मोडना, और सम्प्रदायकी प्रतिष्ठासे अपनी प्रतिष्ठा बडी समझना। तथा अपने शरीरका कोई जरासा भी तिरस्कार कर देतो उसकी बाबत तो थैलीकी थैली खर्च कर डालना और समाजके किसी लाभके लिये मांगने वालेसे बात तक भी करनेमें अपनी शानसे खिलाफ समझते हुए पैसा तक न देना। खेद है लोगोंके क्या उलटे संस्कार होगये हैं। महन्ती प्राप्त करनेकेसाथ २ उनके ऊपर आचार्यका, सम्प्रदायका, और स्थानीय साधुओंका जो उत्तरदायित्व अर्थात् बोझा पडता है उसको न समझकर केवल यही समझ लेते हैं बस अब क्या है यह जो कुछ पदार्थ मिला है हमारे ऐस लूटनेके लिये ही है फिर हमें कसर क्यों छोडनी चाहिये। परन्तु आप उनसे पूछना कि जो लोग बडी श्रद्धाके साथ बद्धाञ्जलि हुए आप लोगोंको सिंहासनारूढ करते हैं क्या उनका यह उद्देश होता है कि आप अपने ही शरीरको पालते रहें क्या उनका यह अभिप्राय होता है कि आप पीछे हमको भूलजाना। क्या उनकी यह आज्ञा होती है कि इस जागीरमें सम्प्रदायका वा हमारा कुछ भी हक न समझ कर केवल अपना ही समझना। किन्तु उनका यह उद्देश होता है कि अये श्री महाराज! आजसे इस सम्प्रदायरूप खेतीके आप रक्षक बनायें जा रहे हैं ऐसा न हो कभी दुष्टाशय मनुष्य रूप मृग इसको चरजायें, ऐसा हुआ तो समझ लें आचार्यजीके तर्कके सामने इनका जबाब दे ही होकर आपको खडा होना पडेगा। अतएव आवश्यकता इस बातकी है कि आप रात दिन जागते रहें। और सम्प्रदायरूप खेतीकी पूरी तरहसे रक्षा करते हुए हमको भी अपनी बुद्धि चातुर्यसे अपने तन्त्रमें रखते हुए सन्मार्गका दर्शन कराते रहें। एवं कभी इन्द्रिय परायणताके कीट न बन कर आत्म सुधारक परमार्थके काम करते रहैं। परं खेद है मारे शोकके शरीर कम्पने लगता है हस्तसे लेखनी छूटजाती है। अतएव बडे

कष्टके साथ लिखता हूं इस विचारका आज महन्तोंमें लेशतक नहीं पाया जाता है। यदि किसी एकने भी इस बातको अपना जीवनोद्देश समझ लिया होता कि वह आगे पड कर सबका शिर जोड देता तो आज मुझे यह आक्षेप करनेके लिये लेखनी न उठानी पडती। खैर (गंत न शोचामि) के अनुसार मैं अब अपनी हृदयस्थ झालोंको लहरित न करके आपसे केवल यही अनुरोध करता हूं कि आप एक दूसरेको जगा दें। और उसके हृदयागारमें इस भावनाकी नदी प्रवाहित कर दें कि (संघशक्तिः कलियुगे) कलियुगके प्रभावसे कोई एक तो ऐसा होना दुष्कर है कि वह सम्प्रदाय मात्रको अपने तन्त्रमें रख सके। सब भाई मिल कर एकता स्थापित करो। आज कलियुगमें यहीं शक्तिका आधार है। इसीमें इतना पावर है आप लोग जो करना चाहो सो कर सकोगे। इस पावरके आगे प्रजा तो क्या राजा भी आपके प्रस्तावको हृदयसे सत्कार देंगे। अतएव और तो क्या इसके विना संसारमें हमारी गणना नहीं हो सकती है। इसके विना सभ्यसमाजमें हम आसन प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसके विना और तो क्या हम अपनी सम्प्रदायकी दिवाल भी खडी नहीं रख सकते हैं। एकताके अभावमें यह दिवाल अबसे पहले आधेसे अधिक गिर चुकी है। यदि अब भी आप लोग निद्रा देवीकी गोदमें सूते पडे रहोगे और इसी लिये इस दिवालकी मरम्मत न कर पाओगे तो समझ लो कुछ ही और दिनमें गिर कर नष्ट भ्रष्ट हो जायेगी। और इस दिवालकी आडमें जलनेवाला पूज्य पाद गोरक्ष-नाथादि योगाचार्योंका यशरूप दीपक वायु वेगसे एकदम बुझ जायेगा। हाय! कौन ऐसा अभागा योगी होगा जो इस कलंकके टीके को मस्तकपर आता देख कर भी अपने हृदयको पत्थर कर निश्चिन्त बैठा रहेगा। परं खेद है इस दीपकके तद्वत् स्थायी रखनेकी जुम्मेवारी किसके ऊपर है इस बातको गद्दी तकियों के आश्रयका आनन्द लेने वाले हमारे माननीय महन्त लोग न जानें कभी अपने हृदयमें अवकाश देते हैं कि नहीं, मेरा हृदयतो कबूल करता है नहीं देते हैं। यदि देते तो आज इस इतिहासका रंग कुछ दूसरा ही होता। परं खैर जो हुआ सो वापिस नहीं आता, पीछली सब बातोंको भूल कर आगेका ठीक रास्ता खोज निकालना चाहिये। जिसपर चलकर हमलोग अपनी हानिका परिहार कर सकें। आज तो प्रत्येक भारतवासीने देशके ऊपर आई आपत्तियोंके छप्परको उठाना है। यदि आप लोग भी उसके नीचे शिर दे उसे कुछ ऊपर उठावें तो सौभाग्यकी बात है। नहीं तो आपकी यह शिथिलता राष्ट्रिय इतिहासमें लिखी जायेगी। और फिर उसका क्या परिणाम होगा उसको आप लोग ही सोचलें। जब कि काशीमें हो चुकनेवाली हिन्दु महा-सभाके प्रमुख नेताओंने अपनी गलाफाडी आवाजको प्रत्येक हिन्दु समाजके कर्णों तक पहुँचाया। और सबसे अपने २ प्रतिनिधि भेजनेकी प्रार्थना की। तब उसको श्रवण कर

और तो क्या नवीन सम्प्रदायी कबीर दासी रामस्नेहियों तकने अपनी २ सभाकर उसमें निश्चित प्रतिनिधि उधर भेजे । परं अत्यन्त कष्ट और खेदके साथ पूछता हूं आप लोग बतलावें आपके समाजमें इस विषयकी कहां सभा हुई और उसमें निश्चित कर कौन प्रतिनिधि उधर भेजा गया । यदि नहीं तो क्या इसका यह अर्थ नहीं कि आपकी सम्प्रदायमें वास्तविकताका लेश भी न रह गया है । और इसी लिये भारतमें इसका कहीं भी आसन नहीं है । और आसन न होनेसे इसका कुछ भी मूल्य नहीं है । और मूल्य न होनेसे आप सोचें इसका भविष्य कैसा जटिल है । ऐसी भयानक स्थितिको सम्मुख रखते हुए किसका ऐसा कट्टर हृदय होगा जो दो बून्द अश्रु डालनेके लिये उद्यत न हो जायेगा । यदि नहीं होगा तो इसका भी यह अर्थ है कि हमारी निद्रा अभी बहुत बाकी है । और इसी लिये हमारी दुर्दशाका अन्त भी अभी दूर है । यही कारण है मारवाडी, मेवाडी, काठियावाडी, एवं देवीपाटन आदि पूर्वीय कितने ही बडी २ जागीरों वाले मठ गृहस्थ हो गये और हो रहे हैं । जिससे सम्प्रदायकी बहुत कुछ हानि हो चुकी है । यही क्यों बल्कि पतन ही हो चुका है । कुछ दिन मान बडाई और इर्षाके कुठले और बने रहो बस फिर देखोगे सम्प्रदायके नाम तक रहनेकी भी मुसीबत आ जायेगी । अतएव मैं आप लोगोंसे हार्दिक प्रार्थना करता हूं । अब तो आप लोग कृपा करें और वर्तमान वायु मण्डलकी लहर पिछानें । आई, वैराग्य, राम, और कपलाणी, आदि हानिकारक कल्पित पन्थोंकी प्रथाका भंगकर एक श्रीनाथजीको अपना आचार्य और योगको अपना पन्थ समझें । मैं बिना निश्चय किये और झूठ कहता हूं तो मुझे स्वयं श्रीनाथजी दण्ड दें, आपलोगोंने जो योगिसमाजमें बारह पन्थ समझ रक्खे हैं ये निःसन्देह झूठे और अत्यन्त हानिकारक हैं । जो लोग श्रीमहादेवजीके वा श्रीनाथजीके द्वारा इनकी प्रतिष्ठा हुई समझते हैं वे स्वयं भारी भूलके जालमें फंसकर अपनी सन्ततिको भी उसमें फंसानेका उपाय कर रहे हैं। देखिये आज बारह पन्थमें दरियानाथ भी एक पन्थ माना जाता है । पहले तो एक यही बडी लज्जा और अज्ञानकी बात है कि लोग मनुष्यको भी पन्थ मानने लगे । खैर यह भी रहा परं दरियानाथजी नाटेश्वरी पन्थके योगी थे जो अच्छे महात्मा थे । उनके अनुयायी योगियोंको दरियानाथी कहा जाता है । अब बतलाओ इस थोडेसे दिनसे प्रचलित हुए पन्थको श्रीमहादेवजी वा श्रीनाथजी कब स्थापित करने आये थे। इसी प्रकार आई पन्थियोंमें बाबा मस्तनाथजी अच्छे महात्मा हो गये हैं । उनके अनुयायियोंको जब कोई पूछता है कि तुम कौन पन्थके हो तब वे कहते हैं कि हम बाबा के योगी हैं । बल्कि पूछने वाले भी उनको बाबाके ही मानते हैं । यद्यपि अबतक तो पूछने वाले और बतलाने वाले कुछ २ यह भी समझते हैं कि यह भी आई पन्थ ही है । परं कुछ दिनमें यह बात उड जाने

वाली है । बस फिर दरियानाथकी तरह बाबा भी एक पृथक् पन्थ खडा हो जायेगा । अब बोलो इसको प्रचालित करनेके लिये उन दोनोंमें कौन आया था । खैर यह भी रहो यदि इससे आपलोग नाराज होते हैं । और इनको श्रीमहादेवजीके द्वारा स्थापित किये प्राचीन पन्थ मानते हैं । तो चलो हम भी आपके पीछे चलते हैं और ऐसा ही मानते हैं । तथापि इस प्रथाको तोड देना हीं उचित है । क्योंकि यदि ऐसा करनेपर आपलोग यह समझें कि श्रीमहादेवजीकी वा श्रीनाथजीकी आज्ञाका भंग होगा तो, मैं आपसे पूछूंगा कि आज उनकी और कौनसी आज्ञाका पालन हो रहा है । अतएव जब जहां और अनेक ऐसी आज्ञायें जिनका भंग करनेसे समाजकी बहुत हानि होती है तब वहां एक ऐसी आज्ञा, जिसका भंग करनेसे समाजकी उन्नति सम्भवित है, वह क्यों नहीं भग्न कर दी जाय । क्या आपको मालूम नहीं जबसे इन निष्प्रयोजन पन्थोंकी कल्पना हुई है तभीसे समाजको ईर्ष्या द्वेषने अपनी राजधानी बना लिया है । और इसे इतना कमजोर कर दिया है कि एक मनुष्य कितना ही अनर्थ कर बैठे दूसरा चूँतक नहीं कर सकता है और करे भी तो उसका उसके ऊपर कुछ प्रभाव नहीं पडता है । यही कारण है बारह २ ग्रामोंकी जागीरोंका उपभोग करने वाले गोरखमठी आदीके महन्तोंने भेख और भेखकी मर्यादाको तुच्छ समझकर उसके भयकी कुछ भी परवाह न करते हुए विवाह प्रथा प्रचलित कर दी है । हाय ! अविद्या तेरा नाश हो जाय, जब आज वह अवसर उपस्थित हो चुका है कि न एकाध सम्प्रदाय, बल्कि सारा देश तेरेसे अपना पिण्ड छुडानेका उपाय कर रहा है और छुडा भी चुका है तब तू अबतक इस सम्प्रदायके पीछे क्यों पडी है । न जानें अभी कितने समय तक हमारे हृदयको दग्ध रक्खे और हमको रोता रक्खेगी । यदि तेरी इतनी कृपा होजाती कि यातो तू इस समाजमें आती ही नहीं और आती भी तो कुछ समय पहेल इसे छोड कर चलीजाती तो आज यह दृश्य हमारे मर्मस्थान में आघात न पहुँचाता कि जो जगह महामान्य पूज्यपाद योगाचार्य गोरक्षनाथजीके चरणोंसे पवित्र हुई, जो जगह उन पुण्यात्माओंका निवास स्थान नियत हुई थी, जिस जगहमें बैठकर वे आत्मानन्दमें लीन हुए थे, आज उसी महापवित्र जगहको वेश्याओंके कृत्यसे दूषित किया जा रहा है। अहो खेद है ३ अये श्रीनाथजी ! कहां गहरी समाधिमें बैठ गये । आज वह टुकडा, जो कि आपके चरण रजसे पवित्र हुई जगहके दर्शनार्थ आनेवाले महात्माओंके लिये प्रदान किया गया था, उनके मुखसे निकाल कर विवाह सादियोंमें भांड रण्डियोंको खिलाया जाता है । शोक शोक शोक ! अये इत्यादि अनर्थोंको देखने और सुनने वाले महन्तो ! आप लोगोंके नेत्र और श्रोत्रेन्द्रिय अन्धे और बहरे क्यों नहीं हो जाते। क्या सम्प्रदायमें ऐसे अनर्थ उपस्थित रहते हुए भी आप लोग अपनी महन्तीका अभिमान रखते हैं । खेद ३ असलमें

मूल बाततो यह है कि (सराजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता चसः । चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्यप्रातिभूः स्मृतः ॥ मनु श्लो. १७ अ. ७ । इत्यादि शास्त्र आज्ञाके अनुसार जो राजा राज पुरुष तथा धर्मका साक्षी और चारों आश्रमोंको शिक्षादेनेवाला अर्थात् इनको अपने २ धर्मपर चलानेवाला एक दण्ड ही स्वीकार किया गया है वह दण्ड भेखसे उठ गया है । जिसके अभावमें जो कोई जितना मन आया कृत्य न कर बैठे उतना ही शुकर है । फिर कौन क्या मुँह लेकर दूसरेको कह सकता है । यद्यपि इसका यह तो अर्थ नहीं है कि किसी न किसी कुकर्मसे कोई भी वञ्चित न हो । किन्तु कितने ही ऐसे महानुभाव हैं जिनको महात्मा कहता हुआ मैं कुछ भी जिव्हा नहीं दबा सकता हूं । तथापि जब तक उनके महात्मापनेसे सम्प्रदायका स्थायी उपकार प्रसिद्ध नहीं होता है तब तक उनकी भी वैसे ही लोगोंमें गणना है । अतएव उन महानुभावोंने अपना बल बढ़ाकर कुकर्मियोंका बल क्षीण कर देना चाहिये । और उनको सचेत करदेना चाहिये कि खबरदार हो जाओ हम मृत नहीं पड़े हैं जिससे तुम दुष्ट मनुष्यरूप मृग हमारी सम्प्रदायरूप खेतीको चरते ही चले जाओ । जिस दिन उन कुकर्मियोंको फटकारने वाली आप लोगोंकी यह आवाज मेरे भी श्रोत्रों तक पहुँचेगी उस दिन मैं जीवित हूंगा वा मृतक मेरी आत्मा जो हर्ष प्रकट करेगी और आपको धन्यवाद देगी वह उतना होगा जिसको लेखनीसे लिखना असम्भव है। हर्ष ३ । सचमुच यदि आप इतना कर बैठे तो मैं अपने जन्म और परिश्रमको सफल समझूंगा । परन्तु उस विधिको, जो कि आपने आरम्भ करनी हैं, विना लिखे मैं अपनी लेखनीको स्थगित नहीं कर सकता हूं । आपको चाहिये कि अपनी सम्प्रदायके अखिल देशीय महन्तोंकी उचित स्थानपर एक बृहत्सभा करें । और उसमें यह घोषित कर, कि सम्प्रदायकी उन्नतिके लिये उपाय सोचना हैं, उन निश्चित पुरुषोंकी जो अपनी सम्प्रदायकी अवनतिपर दो बून्द अश्रु डालते हों एक कमेटी स्थापित करें । तथा सबसे यथा शक्ति चन्दा एकत्रित करें । जिससे उचित स्थानपर एक साम्प्रदायिक विद्यालय खोला जाय । और यह नियम रखदिया जाय कि जो निश्चित समय तक इस विद्यालयमें शिक्षा प्राप्त करेगा वही गुरुके सिंहासनका अधिकारी हो सकेगा । यदि दो या अधिक गुरुभाई शिक्षा प्राप्त करने वाले हों तो उनमें जिसका आचरण सर्वथा उचित समझा जाय वही अधिकारी हो। परं सब ही महात्मा हों तो बड़ेका अधिकार होना चाहिये। और उक्त कमेटीको भी यह पूरा अधिकार होना चाहिये कि वह विद्यालयका अच्छी प्रकार संचालन करती रहनेपर भी यथा अवसर पर प्रत्येक स्थानमें दौरा कर यह देखा करे कि किस महन्तका कैसा आचरण है । और वह अपनी सम्पत्तिको अनुचित व्यवहारमें तो खर्च नहीं करता है । यदि सचमुच वह ऐसा ही निकले तो कमेटीको अधिकार होना चाहिये कि वह

उसको पदच्युत करनेके साथ २ उचित दण्ड दे सके। इस व्यवस्थाकी प्रतिष्ठा होनेपर आप देखेंगे आपकी सम्प्रदायकी वह त्रुटि जो आज दीख पडती है अपना बधना बोरिया बान्ध कर किधर जाती है। तथा संसारमें आपका कौनसा आसन होता है। भेखके द्वारा स्थापित की हुई कमेटीमें इतना पावर हो जायेगा कि उसकी बातको राजा लोग भी शिर झुका कर स्वीकार करेंगे। और उनके राज्यमें जो बडी २ जागीरों वाले घर बडे स्थान हैं उनको उसके अर्पण कर देंगे। क्यों कि (वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता॥ मनु ३५ श्लो. ७ अ. इत्यादि शास्त्र आज्ञाके अनुसार वर्णाश्रमोंका रक्षक परमात्माने राजाको ही रचा है अर्थात् किसीको भी वर्ण और आश्रमसे भ्रष्ट न होने देनेकी जुम्मेवारी परमात्माने जब राजाको ही दी है। और इस आज्ञा तथा युक्तिको जब वह कमेटी राजाके सम्मुख रक्खेगी तब कौन ऐसा राजा होगा जो शास्त्रकी आज्ञाके लात मारकर अपनेको मूढ मतिका भाजन एवं शास्त्रके प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट करेगा। यद्यपि अधिक राजालोग दान किसको देना चाहिये किसको नहीं इत्यादि शास्त्रीय आज्ञाकी लापरवाही सी करते हुए जागीरोंके विषयमें होनेवाले अपने पूर्वजोंके नियम और आँणको ही महत्त्वकी समझते हैं। और जागीरोंके आधुनिक मालिकोंके कर्तव्यकी ओर विशेष दृष्टि नहीं देते हैं तथापि जब आप लोग इस व्यवस्थामें आ जाओगे तब यह सम्भव नहीं कि भेखकी आज्ञाके लात मार कर भी वे अपने पूर्वजोंकी आज्ञाको ही बडी समझेंगे। किन्तु, अतएव इति।

धन्यवाद ११ ॥

पाठक! आइये? हस्तगृहीत ग्रन्थ किस प्रकार आपके नयनानन्दका भाजन हुआ जरा इस बातको भी सुन लीजिये। वि. सं. १९७९ के भाद्रपद मासमें मैं व्याधिसे इतना अधिक आक्रान्त हुआ था कि न केवल मैंने ही बल्कि योगाश्रम विद्यालयके निवासी सभी महानुभावोंने मेरे इस पाञ्चभौतिक पुतलेके कुछ दिन और स्थायी रहनेकी निःसन्देह आशा छोड दी थी। ठीक ऐसी ही जीवन संशयित दशामें प्राणगमनकी प्रतीक्षा करते हुए मुझे एक योगीका दर्शन हुआ। जो कि उत्कटासन लगाये हुए था। उसे देख मैंने आभ्यन्तरिक नमस्कार कर कहा महाराज! आप इस आसनमें बहुत अभ्यस्त हैं। उसने उत्तर दिया कि हां जिसने इनका महत्त्व समझनेकी अत्युत्कट इच्छा की है वह ऐसा ही अभ्यस्त हुआ है और हो भी सकता है। परन्तु तुम्हें तो चाहिये कि तुम, हमारे उन चरित्रों एवं लोकोपकारोंकी, जो कि लुप्त प्रायः हुए जा रहे हैं, आज प्रकट करनेकी

कितनी आवश्यकता है, इस बातको खूब समझ लो। क्योंकि ऐसा समझने और कर दिखलानेका सम्भव विद्वानों और उनमें भी ऐतिहासिक रहस्यज्ञोंमें ही हो सकता है। इस कथनकी समाप्तिके साथ २ ही वह वन्द्य मूर्ति लोप हो गई। व्याधिसे अतीवाक्रान्त होनेके कारण मैं यह तो निश्चय नहीं कर सका कि मेरी वह स्वाप्निक दशा थी वा जाग्रत, परं प्रातःकाल होनेके साथ २ ही मैं इतना स्वस्थ हो गया मानों व्याधिसे मुक्त हुए सप्ताह बीत चुका है। यही कारण हुआ मैंने उस वन्द्य मूर्तिको योगेन्द्र गोरक्षनाथजी निश्चित कर अनेक हार्दिक नमस्कार किया। और उनकी तथा भगवान् आदिनाथजीकी स्तुतिके श्लोकोंकी रचना करना आरम्भ किया। जो कुछ प्रयत्न करनेपर ११ श्लोक रचनानुकूल हुए। जिनमें आठ श्रीनाथजीके और तीन आदिनाथजीके थे। सौभाग्यका विषय हुआ माननीय अध्यापक महानुभावजीकी समालोचना होनेपर उनकी स्थिति सन्तोषजनक निकली। अनन्तर उक्त घटनाको मैंने उक्त अध्यापकजीकी सेवामें निवेदित किया। तथा स्वकीय सहाध्यायियोंके अभिमुख भी वर्णित किया। बल्कि निज गुरु स्वामीजियोंको भी इस वृत्तान्तसे सूचित किया। और योगाचार्योंके अपूर्व लोकोपकारक चरित्रोंको एकत्रित करानेके लिये उनसे प्रार्थना की। परं खेद है उन्होंने मेरे यथार्थ कथनपर विश्वास न कर मुझ विषयक, इसे आगे पढनेसे ग्लानि हो गई मालूम होती है, इत्यादि काल्पनिक अर्थ लगाये। और मुझे इस कार्य सम्पादनार्थ उत्साहित करनेके बदले बल्कि निषिद्ध किया। और मुझे, आगे पढ २, इस बार २ की उक्तिसे बाधित किया। जिससे मेरे मनोरथकी लता हरित होनेके स्थानमें प्रतिदिन शुष्क होने लगी। यद्यपि श्रद्धेयजियोंके निषेधसे कुछ दिनतो मुझे हतोत्साह और क्षुब्ध चित्त रहना पडा तथापि उनके ऐसा करनेका यह अर्थ कदापि नहीं था कि वे इस कार्यको रुचि कर एवं करणीय न समझते थे। किन्तु उनका जोकि सच है, यह अभिप्राय था उन्होंने सोचा इसके अन्तःकरणमें अभीसे ऐसे संस्कार घुसे हैं तो इसके पूरा विद्वान् होनेपर उनका बहुत अच्छा फल होगा। (अस्तु) जो भी कुछ हो मैंने जो पूज्यपादजियोंके वचनकी उपेक्षा की है इसपर उनसे क्षमा मांगता हूं। और उनके वचनकी लापरवाहीका हेतु बतला ही चुका हूं। जब कि एक अलौकिक मूर्तिका इसारा मेरे हृदयमें स्थान पा चुका था तब मैं कबतक उस बुना उधेडीमें रह सकता था। आखिर जो अवश्यम्भावी था वह हो कर ही रहा। मैं हरिद्वारस्थ योगाश्रम विद्यालयसे बाहर निकला और देशाटन करने लगा। हर्ष है इतिहासकी समग्र सामग्री इस प्रकार उपलब्ध हो गई मानों इसारा करनेवाली उसी दृष्ट मूर्तिकी एकत्रित की हुई थी। जिनके संगृहीत करनेमें कुछ सुभीता सा जान पडा। यही कारण हुआ लगभग आठ मासके बीतते २ यह ग्रन्थ पूर्ण हो गया। इसके प्रकाशित

करनेका भार जिस महानुभावने अपने ऊपर लेनेका निश्चय किया था उसका देहान्त हुआ सुन कर मैं इसको प्रकाशित करानेकी इच्छासे मुम्बई गया। और दातारोंकी गवेषणा करने लगा। इतने ही मैं एकाएक मेरे—एको मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा—इस बातकी स्मृति उपस्थित हुई। तत्काल ही मैंने अहमदाबाद योगाश्रमके अधिष्ठाता महात्मा शिवनाथजीसे इस विषयक परामर्श करनेकी अभिलाषा की और एक पत्र उधर भेजा। अधिक क्या हर्षका विषय है आपने पत्र देखते ही ग्रन्थ मुद्रण व्ययभारको अपने शिरपर धारण कर लिया। आपने यह कार्य कर न केवल मेरा वा अपना बल्कि सम्प्रदाय मात्रका उपकार किया है। इसके विषयमें मैं जो कृतज्ञता प्रकट करता हुआ अपरिमित हर्षको प्राप्त हुआ हूं उसका मूल्य कितना है यह बतलानेमें असमर्थ हूं। साथ ही मैं यह भी जो कि सच्च है साभिमान कह सकता हूं कि आज योगिसमाजमें आप जैसे उदार–न्यायशील–मानापमानसे रहित दूरदर्शी थोडे भी महात्मा होते तो इस समाजकी इतनी दुर्दशा, जो आज पराकाष्ठाको पहुँच चुकी है, शीघ्र ही निवारित हो जाती। परं खेद है, साधवो नहि सर्वत्र, वाली कहावतका खूब साम्राज्य उपस्थित है। मुझे आशा है भगवान् गोरक्षनाथजीके अनुयायित्वका अभिमान रखने वाले अन्य महानुभाव भी इनके गुणोंसे लाभ उठायेंगे। शिवनाथजी वि. सं. १९६७ में जब इस जगहपर आये तब इस मन्दिरकी जो अवस्था थी उसका वर्णन करते तथा, यह लक्षों धनाढ्य हिन्दु लोगोंकी नगरी है फिर भी इस मन्दिरकी ऐसी दशा कैसे हुई, यह विचार करते महादुःख होता है। शिवालयकी प्रतिमा सब खण्डित होनेसे मन्दिर अपूज्य हो चुका था। स्थान गिरजानेसे एक मनुष्यके निवास करने योग्य भी आश्रय नहीं था। आपने स्वकीय तथा सेवकीय शारीरिक परिश्रमसे और फिर उदार दातारोंके सकाशसे आगन्तुक अतिथियोंके निवासानुकूल स्थानका निर्माण कराया। एवं शिवालयकी मरम्मत भी कराई और उसमें महारुद्र यज्ञ पूर्वक नूतन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराई। अधिक क्या आपके उद्योगसे यह निर्जन स्थान इस पदपर पहुँचा कि इसमें आनेवाले न केवल योगिसाम्प्रदायिक साधुओंका बल्कि सर्व साम्प्रदायिक साधुओंका सन्तोष जनक सत्कार होने लगा। बल्कि यहां तक कि आपने अन्न धन वसन आदि की याचना करनेवाला मनुष्य यथा शक्ति प्रदानसे रिक्त हस्त न जाने दिया। इतना होनेपर भी आपकी उदारता न्यून न होनेके स्थानमें अधिकाधिक होती गई। क्यों कि अपने गुरुद्वारेके मुख्याचार्य महात्मा श्रीमस्तनाथजीकी, योगियो! तुम परोपकारके लिये जितनी ही मुट्ठी खुली रक्खोगे अपने विषयमें ईश्वरकी उससे अधिक खुली देखोगे, यह उक्ति आपके हृदयमें खूब अधिकार जमा चुकी थी। अतएव आपने स्थानमें सञ्चित हो जानेवाले घोडागाडी और बैलगाडी पर्यन्त सामानको तन्निवार दान करदिया। आप भोज्योपलक्ष्य

उपस्थित कर वस्तु ग्राहक लोगोंको निमन्त्रित करनेपर भोजनानन्तर उनको, जिसको जो वस्तु रुचिकर हो ले जाओ, यह आज्ञा दे स्वयं बहिर बैठ जाते थे। इस त्याग और उदारपनके साथ २ ही प्रेमने भी आपमें इतना स्थान पाया है कि योगी मात्रको श्रीनाथजीका स्वरूप समझकर उससे कभी उसका पन्थ तक नहीं पूछा करते हैं। बल्कि मैं निशंक होकर यह कह सकता हूं कि (परगुण परमाणून् पर्वती कृत्य नित्यं निज हृदि विकशन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः) इस श्लोकका अभिप्राय जैसा आपने समझा है वैसा योगिसाम्प्रदायिक किसी अन्यने सायद ही समझा हो। सौभाग्यका विषय है आप अपने मानापमानका कुछ भी विचार न कर दूसरोंके परमाणु तुल्य गुणोंको पर्वतकी समान बनाकर भी शान्त न हुए। इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेके साथ २ आपने यह भी दृढ संकल्प करलिया कि मैं जीवन भर जिससे सम्प्रदायकी वर्तमान शोचनीय दशा हल होकर उन्नति हो वही उपाय करूंगा। धन्य है २ शिवनाथजी आपको धन्यवाद हैं। तथा आपके सेवकोंको भी धन्यवाद है जिनके सकाशसे आप उचित कार्य कर सके। एवं उस परम पिता परमात्माको भी असंख्य हार्दिक धन्यवाद है जिसने आपको इस अत्यन्तावश्यकीय कार्य की ओर प्रेरित किया। हे भगवन्! हे दयालो! मैं आपसे विनम्र अभ्यर्थना करता हूं आप ऐसे २ और भी कईएक महानुभावोंको पैदा करें। जिनके द्वारा समाज की वे अनेक त्रुटि, जो आज मेरे हृदयको दग्ध किये जा रही हैं, सब दूर हो जायें। अलम्— वन्दे मातरम् ॥

श्रेणित्रयनिर्दिष्टभवद्भिरध्येतृभिः क्षन्तव्योऽयं साम्प्रदायिकावनतिज दुःख दुःखितो लेखकः— मि० का० शु० १२ सं. १९८० ॥ शके, १८४५ ॥

—-—-

॥ आण ॥

श्रद्धेय पाठक! ऐसा हुआ करता है कि मनुष्य समाजमें किसी एकका किया कार्य सबको अनुकूल प्रतीत नहीं होता है। उनमें किसी न किसीको सर्वांशमें नहीं तो किसी एकाध अंशमें वह कार्य इतना प्रातिकूल मालूम होता है वह अपनी विपरीत बुद्धिसे प्रेरित हो कर स्वकीय मन्तव्यको सार्थक करनेके लिये लेखनी उठा बैठता है। जिसका फल यह होता है कि उन दो लेखोंका अवलोकन कर अनुयायी लोग द्विविधामें पड़ जाते हैं। और दोनों लेखोंमें भिन्नतारूप डाकिनी प्रकट हो वह काम करती है कि वे लोग उसको प्रमाणिक मानते न इसको। ऐसा होनेसे दोनोंका परिश्रम व्यर्थ जाता है। और वह समाज फिर उन नीति मर्यादाओंसे, जो कि उस ग्रन्थमें प्रस्फुट की गईथी, हस्त धो बैठता है। अतएव मैं समाजके अधिष्ठाता श्रीनाथजीकी आँण दिलाता हूं आप इस ग्रन्थके विपक्षमें लेखनी न उठावें। हां यदि इसे मेरी ही कृति समझकर आपको कुछ इसमें अविश्वास प्राप्त हुआ हो तो आपको चाहिये कि मेरेसे इस बातका निर्णय करलें, मैं यथाशक्ति आपका अविश्वास दूर करनेका प्रयत्न करूंगा, यदि मेरे देहान्त होनेपर किसीकी यह दशा हो तो उसे चाहिये वह दूसरे विद्वानोंकी सम्मतिसे ही लेखनी उठानेका अधिकारी बने। किन्तु ग्रन्थमें बुद्धि दृष्टि और लेखनीके दोषसे जो मेरी वास्तविक त्रुटि जान पड़ती हो उसके निकालने द्वारा ग्रन्थकी उन्नति करनेकी मनाई नहीं है। बल्कि अन्य ग्रन्थ लिखते भी यह ध्यान रखना चाहिये कि उसमें इस ग्रन्थके साथ किसी अंशमें भी विरोध न आजाय॥

नोट—यदि मेरे साथ उपरोक्त विषयमें पत्र व्यवहार करनेकी आवश्यकता हो तो निम्न लिखित पतेसे करें। योगाश्रम दूधेश्वररोड पो.—शाहीबाग अहमदाबाद १। योगाश्रम विद्यालय मायापुरी—हरिद्वार २। योगाश्रम बोहर—पो० खास— जि० रोहतक ३॥

भवताम् कृ.—

चन्द्रनाथ योगी.